जैनहितैषी।

मासिकपत्र।

नौवाँ भाग

सम्पादक—

श्रीनाथूराम प्रेमी।

प्रकाशक—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,

हीराबाग पो० गिरगांव—बम्बई।

वीर नि० सम्वत् २४३९।

जैनहितैषी

नौवें भागकी

विषयानुक्रमणिका ।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

नववां भाग] कार्तिक, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [पहला अंक

नये वर्षका प्रारम्भ।

आज जैनहितैषी अपने नये वर्षमें प्रवेश करता है और जीव मात्रके हितैषी जिन भगवानसे प्रार्थना करता है कि वे इसे अपने कर्तव्यको पालन करनेकी पहलेसे अधिक शक्ति देवें; साथ ही अपने ग्राहक अनुग्राहक और पाठक महाशयोंसे आशा करता है कि वे इसपर स्नेह कृपा और वत्सलताकी उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें।

पिछला वर्ष जैनहितैषीके लिए और वर्षोंकी अपेक्षा अच्छा गया। इसकी ग्राहकसंख्यामें यथेष्ट वृद्धि हुई और चन्दा भी कोई हजार ग्राहकोंसे वसूल हो गया। लेखादि कैसे निकले इसके विषयमें कुछ कहनेका तो हमें अधिकार नहीं; परन्तु इतना हम अवश्य कहते हैं कि जितनी हमारी शक्ति है और जितना हमें अवकाश मिलता है उसके अनुसार प्रयत्न करनेमें हम कोई बात

उठा नहीं रखते। बारहवें अंकके अन्तमें जो विषयसूची प्रकाशित की गई है, उससे पाठक देखेंगे कि उनके पास लगभग ६०० पृष्ठकी एक ऐसी पुस्तक (फाइल) तैयार हो गई है जिसके अधिकांश लेख स्थायी सुपाठ्य और संग्रहमें रखने योग्य हैं।

यहांपर अपने समाजके सुशिक्षितोंको यह उलाहना दिये विना हमसे नहीं रहा जाता कि उनसे जैनहितैषीको बहुत ही कम सहायता मिलती है। दूसरे अच्छेसे अच्छे मासिक पत्रोंकी यह हालत है कि उनके सम्पादकोंको प्रत्येक अंकमें एक ही दो लेख या नोट लिखना पड़ते हैं--शेष सब लेख उन्हें बाहरसे ही मिल जाते हैं; परन्तु इसके विपरीत वर्षभरमें १०—९ को छोड़कर जैनहितैषीके सारेके सारे लेख हमको ही लिखना पड़ते हैं। पिछले वर्ष हमने कई सुयोग्य महाशयोंकी सेवामें पत्र भी भेजे कि वे हितैषीके लिए लेख भेजनेकी कृपा किया करें; परन्तु एक दो सज्जनोंको छोड़कर किसीने भी हमारी इच्छाको पूर्ण नहीं की। इस साल हम फिर भी प्रार्थना करते हैं और आशा करते हैं कि दश पांच उच्चशिक्षा प्राप्त सज्जनोंका ध्यान इस ओर जायगा और उनके लेखोंसे हितैषीको शोभा और सहायता मिलेगी।

ग्राहकोंकी जैनहितैषीके विषयमें सबसे बड़ी शिकायत रहती है कि वह समयपर नहीं निकलता है। यह शिकायत हमको बहुत खटकती है और हम चाहते भी हैं कि इसको दूर कर दें; परन्तु इस समय इसके दूर करनेका हमारे पास उपाय नहीं। क्योंकि एक तो हमारे शरीरकी यह अवस्था है कि सालभरमें दो तीन महीने उसे खाटपर पड़े रहनेके लिए चाहिए, दूसरे बाहरसे ऐसे लेख हमें मिलते नहीं जिनके द्वारा हमारी अस्वस्थतामें हितैषीका कलेवर पूरा

कर दिया जाय और तीसरे हमारे पास ऐसे सहायक नहीं जो हमें इस कार्यमें कुछ सहायता पहुंचावें। साराका सारा कार्य हमें स्वयं करना पड़ता है। और तो क्या उपहारके ग्रंथ भी हमें ही लिखने या सम्पादन करना पड़ते हैं। इन सब कारणोंसे जब तक हम इस त्रुटिको पूरी नहीं कर सकते हैं, तबतक ग्राहकोंको चाहिए कि यदि हितैषीमें और कोई गुण हों तो उन्हींपर दृष्टि रखकर इसे अपनाये रहें।

यद्यपि गतवर्षमें भी जैनहितैषीके अंक समयपर न निकले, तो भी यह विशेषता रही कि वे सब जुदा जुदा निकले—दो दो या इससे अधिक एक साथ न निकले। इस वर्ष भी जहांतक होगा सब अंक जुदा जुदा ही निकाले जायँगे। विगत वर्ष हितैषीकी पृष्ठ-संख्या ४० थी, गतवर्षमें बढ़ाकर वह ४८ पृष्ठ कर दी गई और इस वर्ष भी यदि ग्राहकसंख्या संतोष योग्य हो गई, तो उसमें कुछ न कुछ वृद्धि और भी कर दी जायगी।

हितैषीका गतवर्षका उपहार देखकर हमारे बहुतसे मित्रोंने कहा था कि अबका उपहार बहुत बड़ा दिया गया है—एक छोटेसे पत्रके ग्राहकोंको ९०० पृष्ठका ग्रन्थ देना साधारण बात नहीं है। हमारा विचार है कि इस वर्ष भी वैसा ही उपहार दिया जाय और इस बातकी परीक्षाकी जाय कि ऐसे उत्तमोत्तम और बड़े बड़े ग्रन्थ प्रतिवर्ष देनेसे जैनसमाजके एक पत्रके अधिकसे अधिक कितने ग्राहक हो सकते हैं। उपहारके ग्रन्थ निश्चित हो चुके हैं। कई बातोंमें इस वर्षका उपहार पिछले उपहारसे भी महत्त्वका होगा। मोक्षमार्गप्रकाश केवल धार्मिक ग्रन्थ था—धार्मिक दृष्टिसे ही वह महत्त्वका ग्रन्थ था; परन्तु इस वर्षका उपहार धार्मिक

सामाजिक और साहित्य तीनों ही दृष्टियोंसे महत्त्वका होगा। पिछले उपहारकी भाषा सर्वोपयोगिनी न थी; परन्तु इस बारके ग्रन्थोंकी भाषा सर्वोपयोगिनी प्रौढ सरल और परिमार्जित हिन्दी है। उपहारका एक ग्रन्थ तैयार है और दूसरा तैयार हो रहा है।

अन्तमें इतना और कहकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं कि हितैषीकी सब प्रकारकी उन्नतिका होना ग्राहकों और पाठकोंकी कृपाकर निर्भर है। समाजसे जितने जितने अधिक ग्राहकोंकी सहायता मिलती जायगी, उतनी ही उतनी इसकी उन्नति होती जायगी। हम चाहते हैं कि जैनहितैषी हिन्दीका एक सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्र बन जाय और इसमें सब लोगोंके पढ़ने योग्य सब प्रकारके लेख कविता चारित्र चित्रादि प्रकाशित होने लगें। श्रीजी हमें अपनी इस इच्छाके पूर्ण करनेकी शक्ति देवें।

——:०:——

कर्नाटक–जैन–कवि।

(अंक ९ वेंसे आगे।)

३२ उदयादित्य—समय ईस्वी सन् ११९० के लगभग। कविरत्नशेखर, साहित्यविद्याधर, राजसुकविरत्नाभरण, कविराजशेखर, साहित्यरत्नाकर आदि इसके उपनाम थे। इसका बनाया हुआ केवल उदयादित्यालंकार नामका एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है; परन्तु इसकी विरदावली तथा रचनाचातुर्य देखकर अनुमान होता है कि इसने और भी कई ग्रन्थ बनाये होंगे। उदयादित्यालंकार केवल ७२ पद्योंका ग्रन्थ है जिसमें काव्यभेद, रीति, रस, काव्यके गुण, अलङ्कार आदि बातोंका संक्षेपसे वर्णन है। पूर्वकालीन कवियोंमेंसे इसने केवल मुञ्ज, भोज और श्रीहर्ष इन

तीन संस्कृत कवियोंका ही स्मरण किया है; कानड़ीके एक भी कविका स्मरण नहीं किया। उक्त ग्रन्थमें एक जगह लिखा है कि यह सिंहासनपर आरूढ होकर राज्यकार्य करता था। इससे मालूम होता है कि यह कोई माण्डलिक राजा था। अपने ग्रन्थमें यद्यपि इसने समयका उल्लेख नहीं किया है, तो भी अनुमानसे इसका समय ११५० के लगभग सिद्ध होता है। क्योंकि ईस्वी सन् १००४ से १०५९ तक राज्य करनेवाले भोजदेवका इसने स्मरण किया है, इससे भोजदेवके पीछे और मल्लिकार्जुन महाकविने जो कि १२४५ में हुआ है—अपने सूक्तिसुधार्णव महाकाव्यमें इसका एक पद्य उद्धृत किया है इससे उसके पहले इसका अस्तित्व होना चाहिए।

३४ सुमनोबाण—समय ई०सन् ११५० के लगभग। इस-समय इस कविका बनाया हुआ कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; तो भी मल्लिकार्जुन, जन्न, केशिराज आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि-योंने इसकी प्रशंसा की है। इससे मालूम होता है कि यह कोई श्रेष्ठकवि था। जन्न कविने अपने अनन्तनाथपुराणमें जैन पुरा-णोंके रचयिता कवियोंका उल्लेख करते समय इसका भी उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि इसने भी किसी पुराणग्रन्थकी रचना की होगी। यह जन्न कविका पिता, मल्लिकार्जुनका ससुर, और मल्लिकार्जुनके पुत्र केशिराज कविका नाना था; ऐसा उक्त तीनों कवियोंके रचे हुए यशोधर काव्य, सूक्तिसुधार्णव और शब्द-मणिदर्पण ग्रन्थोंसे मालूम होता है। जन्न कविके एक पद्यसे जान पड़ता है कि उसका शिक्षागुरु द्वितीय नागवर्म तो चालुक्यनरेश जगदेकमल्लके दरबारका कटकोपाध्याय था और पिता सुमनोबाण बल्लाल नरसिंहके दरबारमें कटकोपाध्याय था। बल्लाल नरसिंहदेवने

११३६से ११७१ तक राज्य किया है। इससे इस कविका समय ११५०के लगभग निश्चित किया जा सकता है। इस कविका वास्तविक नाम शंकर था और सुमनोबाण तथा बाललोचन ये इसके उपनाम थे। मालूम होता है यह कवि पहले स्मार्त था, जैनधर्मको इसने पीछे धारण किया था। इसके स्मार्त होनेका कुछ कुछ आभास इससे भी मिलता है कि इसका नाम शंकर, स्त्रीका नाम गंगा और जामाताका मल्लिकार्जुन था।

३५ **वृत्तिविलास**—समय ईस्वीसन् ११६०। इसके धर्मपरीक्षा और शास्त्रसार नामके दो ग्रन्थोंका पता लगता है। धर्मपरीक्षा अमितगतिकृत संस्कृत धर्मपरीक्षाके आधारसे रची गई है। इसकी रचना बहुत ही सरल और सुन्दर है। इसके गद्यपद्यमय दश आश्वास हैं। प्रारंभमें वर्द्धमानस्वामीकी स्तुति की है। फिर सिद्धपरमेष्ठी, यक्षयक्षिणी, और सरस्वतीको नमस्कार करके केवलियोंसे लेकर द्वितीय हेमदेव तक गुरुओंका स्मरण किया है। ग्रन्थके अन्तमें " विनमदमरमुकुटतटघटितमणिगणमरीचिमञ्जरीपुञ्जरञ्जितपादारविन्दभगवदर्हत्परमेश्वरवदनविनिर्गतश्रुताम्भोधिवर्द्धनसुधाकरे श्रीमदमरकीर्तिरावुल्लव्रतीश्वरचरणसरसीरुहषट्पदवृत्तिविलासविरचिते धर्मपरीक्षाग्रन्थे—" इत्यादि गद्य दिया है। दूसरे ग्रन्थ शास्त्रसारका कुछ भाग 'प्राक्काव्यमाला' नामकी कनड़ी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुआ है; परन्तु पूरा ग्रन्थ इस समय दुष्प्राप्य है। अपने ग्रन्थमें इसने अपने समय आदिका कुछ भी परिचय नहीं दिया है; परन्तु इसने जिन शुभकीर्ति व्रती, सैद्धान्तिक माघनन्दि यति, भानुकीर्ति यति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति (कविका गुरु), अभयसूरि, वादीश्वर आदि जैनाचार्योंका स्तवन किया है, उनके सम-

यका विचार करनेसे इसका समय ११६० के लगभग निश्चित होता है। उक्त आचार्योंमेंसे शुभकीर्ति १११९ में स्वर्गवास करने वाले मेघचन्द्रके समकालीन थे। माघनन्दि सैद्धान्तिकका समय ११६० है। भानुकीर्ति ११६३ में समाधिस्थ होनेवाले देवकीर्तिके सहपाठी थे। अभयसूरि, बल्लाल नरेश और चारुकीर्ति पण्डितके समकालीन थे। क्योंकि ऐसा उल्लेख मिलता है कि अभयसूरिने इन दोनोंको एक बड़ी भारी व्याधिसे मुक्त करके श्रवणबेलगुलमें निवास कराया था। बल्लाल विष्णुवर्धन राजाका भाई था और चारुकीर्ति श्रुतकीर्तिका पुत्र था। श्रवणबेलगुलके जैन गुरुओंने 'चारुकीर्ति पण्डिताचार्य'का पद १११७ के अनन्तर धारण किया था। इससे मालूम होता है कि यह चारुकीर्ति श्रवणबेलगुलका सबसे प्रथम चारुकीर्ति पण्डित होगा। श्रवणबेलगुलके १११ वें शिलालेखमें विशालकीर्तिके शिष्य शुभकीर्ति, शुभकीर्तिके शिष्य धर्मभूषण और धर्मभूषणके शिष्य अमलकीर्ति बतलाये गये हैं और शुभकीर्ति १११९ में स्वर्गस्थ होनेवाले मेघचन्द्रके समकालीन थे, इसलिए शुभकीर्तिके शिष्य धर्मभूषण और प्रशिष्य अमलकीर्तिका समय ११५० के लगभग होना चाहिए। ये अमलकीर्ति या अमरकीर्ति ही वृत्तिविलासके गुरु थे। शिलालेखकी गुरुपरम्परा और धर्मपरीक्षोल्लिखित गुरुपरम्परा बराबर मिलती है।

३६ बालचन्द्र—समय ईस्वी सन् ११७०। ये आध्यात्मिक बालचन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये मूलसंघ–देशीयगण–पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्दके अन्वयमें थे। इनके गुरुका नाम नयकीर्ति था। नयकीर्तिका स्वर्गवास ११७७ में हुआ था। दमनन्दि इनके भाईका

---

१ इनके बनाये हुए 'आर्यतिलक' नामके प्राकृत ग्रन्थका उल्लेख मिलता है।

नाम था । अनेक शिलालेखोंमें इनकी स्तुतिक पद्य मिलते हैं । इनकी बनाई हुई समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय (प्राभृतत्रय), परमात्म-प्रकाश, तत्त्वार्थ आदि कई ग्रन्थोंकी कानड़ी टीकायें हैं जो बहुत ही उच्च श्रेणीकी हैं। एक जिनस्तुति नामका उत्तम स्तोत्र भी इनका बनाया हुआ है । प्राभृतकत्रयके व्याख्यानके अन्तमें इन्होंने निम्नलिखित गद्यपंक्ति दी है:—"इति समस्तसैद्धान्तिक-चक्रवर्तिश्रीनयकीर्तिनन्दन-विनेयजनानन्दन- निजरुचिसागरनन्दि-परमात्मदेवसेवासादितात्मस्वभावनित्यानन्द-बालचन्द्रदेवविरचिता समयसारप्राभृतसूत्रानुगततात्पर्यवृत्तिः ।" इनकी तत्वार्थसूत्रकी टीकाका नाम 'तत्त्वरत्नप्रदीपिका' है । यह टीका कुमारचन्द्र भट्टा-रकके प्रतिबोधके लिए बनाई गई, ऐसा उल्लेख उक्त टीकामें ही मिलता है ।

३७ नेमिचन्द्र—समय ई० सन् ११७० । यह बहुत प्रसिद्ध कवि हुआ है । वीरबल्लालदेव और लक्ष्मणदेव इन दो राजाओंकी सभामें इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । कलाकान्त, कविराजमल्ल, कवि-धवल, शृङ्गारकारागृह, कविराजकुंजर, साहित्यविद्याधर, विद्याव-धूवल्लभ, सुकविकण्ठाभरण, विश्वविद्याविनोद, भारती-चित्तचोर, चतुर्भाषाकविचक्रवर्ती, सुकरकविशेखर, कृतिकुलदीप आदि इसके विरद थे । इसके बनाये हुए लीलावती और नेमिनाथपुराण नामके दो ग्रन्थ हैं । लीलावती कनड़ी भाषाका चम्पूग्रन्थ है । इसमें १४ आश्वास हैं । कविने केवल एक वर्षमें इसे बनाकर पूर्ण किया था। यह ग्रन्थ मुख्यतः शृंगाररसात्मक है । इसकी कथाका सार यह है—" कदम्बवंशीय राजाओंकी राजधानी जयन्तीपुर अथवा अथवा जनवास नामके नगरमें चूडामणि नामका राजा राज्य क-

रता था। उसकी प्रधान रानीका नाम पद्मावती और पुत्रका नाम कन्दर्पदेव था। गुणगन्ध नामक मंत्रीका पुत्र मकरन्द राजकुमारका बहुत ही प्यारा मित्र था। कन्दर्प एक दिन स्वप्नमें एक रूपवती स्त्रीके दर्शन करके उसपर अतिशय आसक्त हो गया। दूसरे दिन उस स्त्रीकी खोजमें वह अपने मित्रके साथ उस दिशाकी ओर चल दिया जिस दिशाकी ओर उसने उसे स्वप्नमें जाते देखा था। चलते चलते वह कुसुमपुर नामके नगरमें पहुंचा। वहांके राजा शृंगारशेखरकी लीलावती नामकी एक रूपवती राजकुमारी थी। इस राजकुमारीने भी स्वप्नमें एक राजकुमारको देखा था और उसपर अपना तन मन वार दिया था। स्वप्नदृष्ट राजकुमारकी खोजमें उसने कई दूत इधर उधर भेजे थे। उन दूतोंके द्वारा लीलावती और कन्दर्पका परिचय हो गया और अन्तमें उन दोनोंका विवाह हो गया। लीलावतीको प्राप्त करके कन्दर्प अपनी राजधानीको लौट आया और सुखपूर्वक राज्यकार्य सम्पादन करने लगा।" इसका कथाभाग सुबन्धु कविकी वासवदत्ताका अनुकरण मालूम होता है। बाहुबलि कविने (ई० स० १६००) अपने नागकुमारचरितमें लीलावतीकी प्रशंसामें लिखा है कि "लीलावतीको दृष्टिदोष (नजर) न लग जाय, इस भयसे कादम्बरीको दग्ध करके उसे मानो तिलक लगा दिया है।" इस उक्तिका उल्लेख देवचन्द्र दोड्डय्य आदि और भी कई कवियोंने किया है। गरज यह कि लीलावती ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर है। इसकी रचना गंभीर, शृङ्गाररसपूरित और हृदयहारिणी है। इससे कविकी प्रतिभा शब्दसामग्री और वाक्पद्धति अनन्यसाधारण प्रतीत होती है। दूसरा ग्रन्थ नेमिनाथपुराण है। इसमें बावीसवें तीर्थंकर नेमिना-

थका चरित्र है। वीरवल्लाल नरेश (११७१–१२१९) के पद्मनाभ नामक मंत्रीकी प्रेरणासे यह बनाया गया था। यह ग्रन्थ अधूरा मालूम होता हैं। क्योंकि इसके प्रारंभमें यह प्रतिज्ञा की गई है कि नेमिनाथकी कथामें गौणतासे वसुदेव कृष्ण और कन्दर्पकी कथाका भी समावेश किया जायगा; परन्तु आठवें आश्वासमें कंस-वध तकका कथाभाग कहकर ही ग्रन्थ समाप्त कर दिया गया है। आश्चर्य नहीं जो ग्रन्थ पूर्ण होनेके पहले ही कविका देहान्त हो गया हो। इस ग्रन्थका नाम अर्धनेमि भी शायद इसी लिए पड़ गया है। इस ग्रन्थके प्रारंभमें तीर्थंकर, सिद्ध, यक्षयाक्षिणी, और गणधरकी स्तुतिकरके गृद्धपिच्छिसे लेकर पूज्यपादपर्यन्त आचार्योंका स्मरण किया गया है। प्रत्येक आश्वासके अन्तमें निम्नलिखित गद्य मिलता है "इति मृदुपदबन्धबन्धुरसरस्वतीसौभाग्यव्यङ्ग्यभङ्गी-निधानदीपवर्ति–चतुर्भाषाकविचक्रवर्तिनेमिचन्द्रकृते श्रीमत्प्रतापचक्र-वर्तिश्रीवीरबल्लालप्रसादासादित–महाप्रधान पदवीविराजितसज्जेवल्ल-पद्मनाभदेवकारिते नेमिनाथपुराणे–" लालावती ग्रन्थके अन्तमें इसने एक पद्यमें लिखा है कि लक्ष्मणदेव राजा समुद्रवलयांकित पृथ्वीका स्वामी है। इसी लक्ष्मणदेवका कर्णपार्य ने (११४०) अपने नेमिनाथ पुराणमें उल्लेख किया है। कर्णपार्यके समयमें लक्ष्मणदेव सिंहासनारूढ नहीं हुआ था; उसका पिता या बड़ाभाई विजयादित्य राज्य करता था; परन्तु नेमिचन्द्रके समय वह राज्यका स्वामी था। इससे हम ई०स० ११४० में रहनेवाले कर्णपार्यकी एक पीढ़ीके अनन्तर नेमिचन्द्रका समय निश्चित करते हैं। इसके सिवा नेमिचन्द्रने नेमिपुराणकी रचना जिस वीर बल्लालके मंत्री पद्मनाभकी प्रेरणासे की है, उसका समय ११७२ से १२१९ पर्यन्त है। इससे

भी उक्त समय ठीक प्रतीत होता है। नेमिपुराण लीलावतीके पीछे बनाया गया है, यह कहनेकी तो कुछ जरूरत ही नहीं है। जन्न, पार्श्व, कमलभव, मधुर, मंगरस, बाहुबालि आदि पिछले कवियोंने इस कविकी बहुत प्रशंसा की है,

३८ बूचिराज—समय ई०स० ११७३। यह वीर बल्लाल राजाका मंत्री और श्रीपाल त्रैविद्यका शिष्य था। इसका कोई भी ग्रन्थ प्राप्य नहीं है; परन्तु कहते हैं कि यह पोन्नके सरीखा मार्मिक और श्रेष्ठ कवि था। इसने अपना सारा ऐश्वर्य जिनसेवामें लगादिया था।

३९ बोप्पण पण्डित—समय ई० स० ११८०। ‘सुजनोत्तंस’ इसका उपनाम था। अच्चण्ण, पार्श्व, केशिराज आदि कवियोंने इसकी बहुत प्रशंसा की है। केशिराजने इसका ‘सुकविसमाजनुत’ कहकर उल्लेख किया है और इसकी ग्रन्थपद्धतिको लक्ष्यभूत मानकर अपनी रचना की है। इससे जान पड़ता है कि यह अनेक ग्रन्थोंका रचयिता होगा; परन्तु इस समय उसकी केवल दो छोटी छोटी रचनायें ही मिलती हैं, जिनमेंसे एकतो गोमटेश्वरकी स्तुति है और दूसरी ‘निर्वाणलक्ष्मीपति नक्षत्रमालिका’ नामकी कविता है। गोमटेश्वरकी स्तुतिमें कनडीके २७ पद्य हैं जो कि श्रवणबेलगुलके ८९ वें शिलालेखपर लिखे हुए हैं। नयकीर्तिके शिष्य आध्यात्मिक बालचन्द्रकी प्रेरणासे यह स्तुति बनाई गई थी। इससे मालूम होता है कि यह बालचन्द्रका समकालीन था और जिस शिलालेखपर उक्त स्तुति लिखी है, वह ११८०का लिखा हुआ है। अतएव यही इसका समय है। निर्वाणलक्ष्मीपतिनक्षत्रमालिकामें २७ पद्य हैं और प्रत्येक पद्यमें ‘निर्वाणलक्ष्मीपति’ पद आया है।

[क्रमशः]

हमारी जातीय दुर्बलता।

मनुष्यमें बहुतसी दुर्बलतायें हैं। मनुष्य भूल और दुर्बलता-ओंका घर कहा जा सकता है। कोई मनुष्य पूर्णतया पूर्ण नहीं है, इसलिए कोई 'सोसाइटी' कोई दल या कोई समाज ऐसा नहीं मिल सकता जो सर्वथा दोषोंसे रहित हो। क्योंकि ये सब पृथक् पृथक् मनु-ष्योंसे बने हुए हैं। संसारमें ऐसी आशा करना कि लोगोंमें कमी न रहे, वृथा है। इस भूलसे सुरक्षित रहनेके लिए बहुत समयसे उद्योग हो रहा है; परन्तु इच्छित फल कुछ नहीं हुआ। संसारकी सम्पूर्ण जातियोंमें यह दोष दिखलाई देगा; किन्तु जितने भयानक रूपसे इसने जैनियोंका गला दबोच रक्खा है उतना किसी और जातिका नहीं। यह हमारी जातीय दुर्बलता है, यह हमारा जातीय दोष है और यही हमको पग पगपर गिराता रहता है।

यह दूसरी बात है कि अकेले अकेले मनुष्य जो अपने साथ अटल धैर्य और असाधारण साहस लाते हैं अपनी जातिके उपहास-की परवा न करते हुए अपने उद्देश्यकी पूर्ति कर लें; परन्तु विचार करनेपर एक भी ऐसा दृष्टान्त न मिलेगा कि उनके प्रतिकूल आन्दोलन न किया गया हो, और उनके पददलित करनेकी चेष्टा न की गई हो।

इतिहास देखनेसे मालूम होता है कि गुरु गोविन्दसिंहजीके साथ कैसा वर्ताव किया गया। यद्यपि सबको यह अच्छी तरह ज्ञात था कि वे केवल हिन्दू जाति और हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिए कटिबद्ध हो रहे हैं; इसी कार्यमें उनके पिता गुरु तेगबहादुरजी बलिप्रदान हुए, दो लड़के युद्धमें मारे गये, और दो नन्हें नन्हें

बच्चे दीवारोंमें चुन दिये गये, फिर भी अज्ञानी लोग उनकी विरुद्धता ही करते रहे। महात्मा बुद्धदेव जो दयाके अवतार थे और जिन्होंने केवल मात्र देशके उद्धारके लिए राजसिंहासनको त्याग कर भिखारियोंके चिथड़े पहिन लिये थे उनपर भी अनेक प्रकारके अनुचित आक्षेप किये गये।

हमारी जातीय दुर्बलताओंमें सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि अनुचित उपहास और अनुचित आक्रमणकी घृणित टेवने हम सबके हृदयरूपी मंदिरमें स्थान पालिया है। लोग बिच्छूकी तरह डंक मारनेसे विरत नहीं रहते। प्रायः यह उपहास और आक्षेप सर्वथा मिथ्या और अनुचित होता है। ईर्षा, द्वेष, और संकीर्णताके कारणसे एक मनुष्य दूसरे मनुष्यकी प्रतिष्ठा, प्रशंसा और सन्मान भावको देख नहीं सकता और झूठे अपवाद गढ़ने लगता है। इस आक्षेपके परदेमें व्यक्तिगत ईर्षा, द्वेष और सबसे अधिक काम करते दिखाई देते हैं।

इस समय भी जो सच्चे काम करनेवाले हैं उनके मार्गमें बड़ी बड़ी कठिन रुकावटें उपस्थित हैं। ये बेचारे देशोन्नति और देशोद्धारके लिए अधिक संग्राम कर रहे हैं। एक ओर एक महात्मा अपने निजके लाभको तिलाञ्जलि देकर जातिके अनाथ बालकोंको बचानेका यत्न कर रहा है, दूसरा महात्मा जातिके बच्चोंकी शिक्षाका भार अपने सिरपर उठा रहा है, तीसरा धार्मिक और सामाजिक सुधारके कार्यमें लग रहा है; परन्तु क्या इनकी कदरदानी की जा रही है? जैनी इन महात्माओंके त्याग, कार्य और संग्रामको कब अनुभव कर सकते हैं? उल्टा दोषारोपण और कलंकप्रयोगकी ओर उनकी अधिक रुचि रहती है। इनकी प्रतिष्ठा

और प्रशंसाके कारण वह और जले मरते हैं। वे चाहते हैं कि किसी प्रकार ये बदनाम कर दिये जायँ ताकि इनकी प्रतिष्ठा न हो; परन्तु कोई इनसे प्रश्न करे कि भला बताओ तो सही उनकी बदनामीसे तुमको क्या मिल जायगा? संभवतः इसका उत्तर कुछ न होगा।

इस जगह हम एक सच्चा दृष्टान्त अंकित करते हैं जिससे हमारे पाठकोंको ज्ञात होगा कि हमारे देशमें ईर्षा द्वेषका रोग कितना फैला हुआ है।

एक मदरसासे छुट्टी पाकर दो तीन लड़के अपने घरोंको जा रहे थे। संयोगसे उसी समय एक बग्घी खड़खड़ाती हुई उधरसे गुजरी। सब लड़कोंने उसके पीछे चढ़ना चाहा। दो फुर्तीले थे वे उछलकर चढ़ गये। तीसरेको जगह न मिली। तब उसने ईर्षाके मारे आगे दौड़कर कोचवानसे कहा "देखो, पीछे दो लड़के बैठे हुए हैं।" कोचवानने चाबुक चलाया। लड़कोंको चोट लगी। वे नीचे उतर पड़े, और तीसरा खुश होकर भाग गया।

जो कमीनेपनकी आदत उस तीसरे लड़केमें थी वह किसी न किसी प्रकार हमारे बहुतसे भाईयोंमें भी प्रविष्ट हो गई है। इसी कारण लोग परस्पर झगड़ रहे हैं और स्वार्थान्धताके कारण हाथापाई कर रहे हैं। ऐसे लोगोंका न दीन ही सुधरता है और न दुनिया ही सँभलती है। इस बुरे दोषके कारण वे न केवल दूसरोंकी दृष्टिमें तुच्छ हैं बरन् स्वयं अपनी दृष्टिमें भी गिरे हुए हैं। जिसका निरादर दूसरे करते हैं, वह तो सँभल भी जाता है; परन्तु जो अपने आपको तुच्छ और अप्रतिष्ठित करता है उसके उन्नतिके मार्ग चारों औरसे बंद समझना चाहिए। हमारी जातीय खराबीका

यह बहुत बड़ा कारण है। परमात्मा जाने इसमें कभी कमी भी आवेगी या नहीं।

जिस समय किसी सच्चे मनुष्यके हृदयमें सचाईका प्रकाश चमकने लगता है, उस समय वह दमके दममें नीच लोगोंसे ऊपर आ जाता है और कुछ न कुछ कार्यकर दिखाता है। पड़ोसियोंकी ईर्षाग्नि भड़ककर हानि पहुंचाना चाहती है; परन्तु जहां ये अपनी धुनके पक्के अपनी टेवमें लगे होते हैं वहां वे अपने असाधारण श्रेष्ठ स्वभाव और सहनशीलतासे अपने उद्देश्यमें कृतकार्यता लाभ ही करके छोड़ते हैं।

प्राचीन समयमें ऐसे ही प्रकृतिधारी मनुष्योंने दमके दममें तख्ता पलट दिया; परन्तु अब वर्तमान समयकी सभ्यता चाहती है कि लोग सम्मिलित शक्ति और सम्मिलित उद्योगसे काम लें। अब जो काम होगा, वह मिलकर ही होगा। अब अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। वह केवल एक क्षणके लिए अपने हृदय और शरीरको चीरता हुआ आंदोलन कर सकता है; परन्तु उसका बलिदान इतना लाभदायक न हो सकेगा और न इच्छित फलही उत्पन्न होंगे। इस लिए जरूर है कि लोग इस कठिन विषयके सुलझानेके उपाय सोचें और समयकी आवश्यकताको देखें।

जैनियोंको चाहिए कि अब सोच विचार करते हुए अनुचित ईर्षा, द्वेष, बैर विरोधको त्याग दें और इन दोषोंपर प्रबल होनेके उपाय सोचें। यदि वे अपने काम करनेवालोंकी साहसवृद्धि नहीं

---

* इस लेखके लिखनेमें हमें तत्त्वदर्शीसे बहुत सहायता मिली है। अतः हम उसके संपादक महाशयके कृतज्ञ हैं। लेखक।

कर सकते तो न सही, अपने बुरे व्यवहारसे उनको साहसहीन तो न बनावें।

मैयालाल जैन-टीचर,
गाडरवारा।

अब हमें किस मार्गसे चलना होगा?

Religion is use; Jainism is a Life and the virtues do not exist at all except in as far as they are being translated into daily and hourly practice.

जैनधर्म और जैनधर्मानुयायियोंकी उन्नतिके लिए इस समय अनेक मार्ग स्वीकार किये गये हैं और अनेक मार्ग बतलाये जाते हैं; परन्तु एक तो इस समय जैनियोंमें कोई गुप्तदृष्टिवाला (Seer) पुरुष नहीं और दूसरे इस बातका ज्ञान प्राप्त करनेकी ओर भी किसीका लक्ष्य नहीं कि दूसरे देशोंने और दूसरे धर्मवालोंने अबतक जो जो मार्ग ग्रहण किये हैं, उनसे उन्हें क्या क्या लाभ और हानियां उठानी पड़ी हैं। इसलिए देशकालादिकी सब प्रकार अनुकूलता होनेपर भी जैनियोंकी उन्नति जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं होती है।

मनुष्यको जिस समाजमें रहना हो और खास करके सुखी रहना हो, उस समाजकी और उस समयकी परिस्थितिका अभ्यास करनेकी या ज्ञान प्राप्त करनेकी उसे उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि उसे अपने गुण दोषोंका अर्थात् अपने स्वभावका अभ्यास करनेकी है। अज्ञान ही मिथ्यात्व है और अपने समाजकी परिस्थितिकी ओर बहरे कान करना यदि पहले दरजेका नहीं तो दूसरे

दरजेका मिथ्यात्व अवश्य है। तब ऐसी अज्ञानदशामें रहस्यपूर्ण सम्यक्त्वकी संभावना कैसे हो सकती है? और सम्यक्त्वके विना मनुष्य अपना और अपने समाजका उद्धार कैसे कर सकता है? अब यदि अपनी परिस्थितियोंका ज्ञान प्राप्त करना सम्यक्त्वका या ज्ञानका अन्तर्भेद है, तो बतलाइए कि प्रत्येक उच्चाशयसम्पन्न जैनीका यह कर्तव्य क्यों न होना चाहिए कि वह अपने घरकी और अपने आसपास दिखनेवाले जगतकी प्रवृत्ति तथा प्रगतिका अध्ययन करे?

सारे देश और सारे धर्म धीरे धीरे नई नई बातें सीखते जा रहे हैं और जड़वादमेंसे निकलकर चेतनवादमें आ रहे हैं। इस समय यूरोपियन जिज्ञासु अध्यात्मविद्या और सांसारिक सुखके साधन इन दो विषयोंमें बहुत ही तरक्की करते दिखाई देते हैं। सिद्धिके लिए जिस मनकी निर्मलता और बलवृद्धिकी आवश्यकताको जैन-ग्रन्थ स्वीकार करते हैं, उसके आरोग्य और विकाशके लिए ऐसी अनेक प्रकारकी खोजें की गई हैं कि जिनसे जैनी सर्वथा अजान हैं। मानसशास्त्र (Physiology) दिनपर दिन आगे बढ़ रहा है और वह धर्मकी उन गुप्त बातोंपर जिन्हें कि हमने अभीतक निरर्थक शब्दोंके समान संग्रह कर रक्खी थीं आश्चर्यजनक प्रकाश डालता जाता है। शरीर-रचनाकी बारीक जांच होनेसे बहुतसी योगासनोंका वास्तविक रहस्य मालूम होगया है और उसका परिणाम यह हुआ है कि शरीर और मनसम्बन्धी रोग खास खास स्नायुओं (Nerves) को गति देनेवाली कसरत करनेसे आराम किये जाने लगे हैं। इस विषयके कई ग्रन्थ भी बन गये हैं। इसी प्रकार स्थूल या औदारिक देहको निद्रित करके सूक्ष्म देहके द्वारा अनेक प्रकारके अनुभव प्राप्त करनेकी विद्या भी विकाशको प्राप्त होती

जाती है। इस तरह जिज्ञासुजन सब ही ओरसे सिद्धियोंके प्राप्त करनेके उद्योगमें लग रहे हैं और " जो करता है सो पाता है " इस कहावतके अनुसार वे सब नहीं तो थोड़ी थोड़ी सफलता अवश्य ही प्राप्त कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि हम केवल अपने पुराने शास्त्रोंके शब्दोंको—केवल शब्दोंको ही पकड़े रहें और सारी दुनियाकी ओर पीठ किये रहें, तो बतलाइए हमारी प्रगति या उन्नति कैसे हो ?

हमारे यहां एक पक्ष ऐसा है जो कहता है कि सूत्र या सिद्धान्तोंके पढ़नेका अधिकार केवल साधु या मुनियोंको है। इस पक्षके कथनमें यदि कुछ सत्यता है तो यही है कि सूत्रों या सिद्धान्तोंमें अनेक रहस्य भरे हुए हैं और अनेक अपेक्षाओंसे उन रहस्योंका उद्घाटन होता है। इसलिए उक्त सूत्रों या सिद्धान्तोंके शरीरकी त्वचाको चतुराईसे दूर करके, उसके भीतर छुपे हुए अगम्य मर्मस्थानको निकालकर बतला देना, यह किसी बढ़ई या लुहारका नहीं किन्तु सुचतुर शस्त्रवैद्य (Physician) का काम है। अतिशय पवित्रभाववाले और अन्तर्दृष्टिवाले पुरुषोंसे ही यह कार्य बन सकता है। हम सूत्रोंके केवल ऊपरसे दिखनेवाले अर्थमें ही उलझ रहे हैं और उनके भीतर छुपे हुए मर्मके शोधनेको मिथ्यात्व समझते हैं। यह हमारी बहुत बड़ी भूल है और इससे हम आत्मशक्तिका पाना तो बहुत बड़ी बात है मानसिक शक्ति (मनोबल) को भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। पहले हमारे मुनिजनोंमें ऐसे बहुतसे अन्तर्दृष्टा थे कि जिनके सहवाससे इस प्रकारके ज्ञानकी प्राप्ति होती थी। उस समय गुप्त शक्तियोंकी प्राप्ति प्रायः भक्तिके द्वारा ही होती थी और ज्ञानमार्गमें अधिक प्रयत्न किये बिना भी काम निकल जाता था। क्योंकि ज्ञानयोग और भक्तियोग

दोनों ही एक लक्ष्य बिन्दु तक पहुंचनेके मार्ग हैं। अर्थप्राप्ति अथवा सिद्धिके मुख्य तीन मार्ग हैं। इनमेंसे भक्तियोग नामक मार्गके लिए पूर्वका समय बहुत ही अनुकूल था। दूसरा मार्ग ज्ञानयोगका है। इस मार्गपर चलनेवाला पुरुष नाना प्रकारके ज्ञान प्राप्त करनेका ही प्रयत्न करता है और उन ज्ञानोंसे अपने आत्माका विकाश करता है। और तीसरा मार्ग प्राणीमात्रकी सेवाका अथवा कर्मयोगका है कि जिसमें मनुष्य किसी प्रकारके फलकी आशा न रखकर, केवल आत्माकी सगाईके लिए–प्रेमके लिए–या शुभकर्मोंमें रहनेवाली स्वाभाविक भलाईके लिए ही सत्कर्म करता है और यह निर्मल प्रेममय भलाई करते करते जब वह अहंपनेके भूलनेका अभ्यास कर चुकता है तब एक समय ऐसा आता है कि जब मनुष्यके अन्तरंगमें आत्मानुभवके दीपकका उजाला हो जाता है।

अब हमें देखना चाहिए कि हमारे जैनसमाजमें उपर्युक्त ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोगका सेवन कितना और किसप्रकारसे होता है। जैनसमाज साधु और श्रावक इन दो भेदोंमें विभक्त है। साधुओंकी अधिकता श्वेताम्बर और ढूंढिया सम्प्रदायमें है। दिगम्बर सम्प्रदायमें यद्यपि दश पांच भट्टारक दिखलाई देते हैं; जो अपनेको जैनसाधु बतलाते हैं; परन्तु वास्तवमें पूछा जाय तो इस सम्प्रदायमें साधुओंका एक प्रकारसे अभाव ही है। धर्मोपदेशादिका कार्य इस सम्प्रदायके त्यागी ब्रह्मचारी या पण्डित आदि करते हैं। अस्तु। अब पहले इन तीनों सम्प्रदायोंमें जैसे और जितने साधु या त्यागी आदि हैं उनकी स्थितिका विचार किया जाय तो मालूम होगा कि उनमें प्रतिशत ७५ महात्मा तो ऐसे हैं जिन्हें

वास्तविक ज्ञान होना तो दूरकी बात है जिन शास्त्रोंमें जैनज्ञान संगृहीत है उनकी भाषाको भी समझनेकी शक्ति नहीं है । तब समझ लीजिए कि वे शब्दोंके अन्तरङ्ग मर्मको कितना समझते होंगे। सैकड़ा पीछे पचास महात्माओंकी तो यह हालत है कि उनमें अपनी मातृभाषामें भी एक छोटासा लेख लिखनेकी या अपने विचारोंको दूसरोंको स्पष्टतापूर्वक समझा देनेकी भी शक्ति नहीं है। इन आधुनिक साधुओं या त्यागी ब्रह्मचारियोंकी कलमसे लिखा हुआ एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं दीखता है जो स्वतन्त्र अध्ययन और मनन-पूर्वक लिखा गया हो। जो दश पांच ग्रन्थ दिखते हैं भी, वे या तो दूसरे ग्रन्थोंके अपूर्ण अनुवाद हैं या पूर्व ग्रन्थोंके अवतरण हैं। योग अध्यात्म या इससे भी कम कठिन, व्यावहारिक नीति आदि विषयोंको भी वे अच्छी तरहसे नहीं जानते हैं। परन्तु मजा यह है कि इतनेपर भी वे अपनेको केवलज्ञानीके पुत्र समझते हैं ! जब धर्मके नेताओंकी ऐसी दशा है तब बतलाइए उन्नतिकी क्या आशा की जासकती है ? ज्ञान प्राप्तिके लिए एकान्तवास, सब प्रकारके झगड़ोंसे विरक्ति, शान्तता, नम्रता और उद्योगशीलता आदि जिन जिन बातोंकी आवश्यकता है, वे शायद ही इस समय किसी साधुमें होंगीं। भोले श्रावक उन्हें जो अनुचित महत्त्व दे देते हैं और अपनी भोली भक्तिसे जो उन्हें मानके शिखरपर चढ़ा देते हैं इससे, तथा ज्ञानयोगके पथिकके लिए जिस योग्यताकी आवश्यकता है उसके उत्पन्न हुए बिना ही जो दीक्षा देनेकी पद्धति चल गई है उससे; जैनियोंके साधु और त्यागियोंकी ज्ञानयोगमें प्रगति होना एक प्रकारासे बन्द ही होगई है।

कर्मयोगके विषयमें तो हमारी समझमें वर्तमान जैन साधुओंसे

किसी प्रकारकी आशा रखना ही व्यर्थ है। क्योंकि इस योगमें 'अहंता' को भूलकर केवल भलाईके लिए भलाई करना—अपना कर्तव्य समझकर दूसरोंका उपकार करना-ही धर्म है। परंतु यहां तो गण गच्छ या पन्थके अहंपने तथा मोहका कुछ ठिकाना ही नहीं है। सब ही चाहते हैं कि हम अपने गच्छ या पन्थके उद्धारक कहलावें और इसी आशासे उनके सारे प्रयत्न होते हैं। सच्चा कर्मयोगी वह है जो उद्धारक बननेकी अथवा दूसरी किसी भी प्रकारकी आशा नहीं रखता। अपने प्रयत्नका विरुद्ध परिणाम देखकर न वह कभी दुखी होता है और न प्रयत्न करनेसे थकता है। वह सारे कार्य प्राणीमात्रपर निर्मल प्रेम करनेके लिए करता है। घड़ीभरके लिए भी उसे निकम्मा बैठा रहना पसन्द नहीं। पन्थ बढ़ें चाहे घटें, आपको चाहे लोग महापुरुष कहें चाहे मिथ्याती कहें, चाहे आचार्य-पद मिले चाहे संघसे बाहर होना पड़े; परंतु जब देना तब सच्ची सलाह देना और जब कोई पूछे तब सत्य ही कहना—अर्धसत्य या लुड़कती हुई दुटप्पी बात न कहना, इस प्रकारके सच्चे कर्मयोगी साधु बतलाइए जैनियोंमें कहां हैं? हज़ारों मनुष्य रोगोंकी वेदनासे तड़फ रहे हैं, लाखों मनुष्य अज्ञान अन्धकारमें पड़े हुए दुख पा रहे हैं, और करोडों भाई अन्नके विना बिलबिला रहे हैं; परन्तु हमारे साधुओंसे यह नहीं बनता कि वे अपने भक्तोंसे दूसरे निरुपयोगी कामोंमें रुपया खर्च न कराके इन दुखियोंके उद्धार-कार्यमें रुपया लगवावें। भगवानका आदेश है कि "मनुष्यको एक समयमात्रका भी प्रमाद न करना चाहिए।" यह कर्मयोगीका मुद्रालेख (motto) या गुरुमन्त्र है। इसलिए वह आलस्य, अहंपन, कषाय आदि प्रमादोंमें न पड़कर अपने प्रत्येक पलको निर्मल

प्रेमभावसे किये हुए उत्तम कामोंके द्वारा सफल किया करता है। जैनियोंको इस समय ऐसे ही कर्मयोगी साधुओंकी जरूरत है।

अब रहा भक्तियोग, सो यह तो जैनसाधुओंमें केवल कहने सुननेहीके लिए रह गया है। जब एक साधु दूसरे साधुको शायद ही कहीं आदरकी दृष्टिसे देखता है, तब भक्ति करनेकी तो बात ही क्या कहीं जाय? इस समय एक पन्थके समस्त साधुओंका कोई एक साधु सिरमौर नहीं बन सकता। इसीसे सूचित होता है कि भक्तिमार्ग प्रायः कण्टकाकीर्ण हो गया है। साक्षात् जिनेन्द्रदेवके विषयमें भी जैनसाधुओंकी कितनी भक्ति है, यह बात विचारणीय है; परन्तु इस विषयमें हम अब और अधिक कहकर "गूलर फोड़कर पंखियां उड़ाने"की कहावतको चरितार्थ नहीं करना चाहते। इतना ही कहना बस होगा कि इन साधुओंमेंसे जिनभक्तिका भी प्रायः लोप होता जाता है। भक्तिमार्गके पथिकके मुखपर प्रभाव, शान्ति, गंभीरता, प्रसन्नता और साहसके चिह्न सदा विराजमान् रहते हैं। भक्ति बहुत बड़ी कीमती चीज है। यह ऐसी विलक्षण जड़ी है कि इसके स्पर्श मात्रसे लोहा सोना हो जाता है। परमात्माके गुणोंको लघु आत्मामें आकर्षित करनेके लिये यह लोह–चुम्बक है, सारे दुःखों और शत्रुओंसे रक्षा करनेवाली ढाल है और सिद्धिकी अव्यर्थ कुंजी है।

जब जैनसाधुओंमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोगकी इतनी कमी है, तब श्रावकोंमें तो और भी अधिक होगी और ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योंकि साधुओंसे श्रावक नीचे दरजेके हैं।

पचीस या तीस वर्षकी अवस्था तक कठोर ब्रह्मचर्यका पालन करके और गृहजंजालसे जुदा रहके सांसारिक और आध्यात्मिक

ज्ञानकी प्राप्ति करनेवाले ज्ञानयोगी श्रावक बतलाइए आपमें कितने हैं? सायन्सका अभ्यास करनेवाले कितने हैं? मानस शास्त्रका मनन करनेवाले कितने हैं? संस्कृत–प्राकृत भाषाका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके मूल शास्त्रोंके बांचनेवाले कितने हैं? और यूरोप अमेरिकाके 'रिव्यू आफ रिव्यूज' तथा 'दि माइण्ड' जैसे पत्रोंके आफिसोंमें रहकर जिन्होंने उच्च श्रेणीके समाचारपत्रोंके सम्पादन करनेकी योग्यता प्राप्त कर ली है ऐसे कितने हैं? बतलाइए ऐसे कितने जैनी हैं जो राजनीतिक, नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और मद्यपाननिषेधक, मांसाहारनिषेधक आदि देशोपकारी आन्दोलनोंमें शामिल होकर कुछ काम करते हैं? दो चार ऐसे पुरुषोंके ही नाम बतलाइए जो पाठशालाओं मन्दिरों और तीर्थक्षेत्रादिकोंका सार्वजनिक धन हजम कर जानेवाले पापियोंके विरुद्ध निर्भय होकर आन्दोलन करते हैं? कुछ ऐसे ही लोगोंके नाम गिनाइए जो दो चार खास खास पुरुषोंके अभिमानादिके कारण उठे हुए कलहसे सारे समाजको अशान्तिके गड्ढेमें पड़ते देखकर अपने हाथका सहारा देते हों। सार्वजनिक हितके लिए अपनी कीर्तिमें भी बट्टा लगवानेके लिये प्रसन्नतासे तैयार होनेवाले श्रावक आज कितने हैं? और परोपकारिणी संस्थाओंके लिये रास्तोंमें एक एक पैसा भीख मांगनेवाले विलायतके मिथ्यातियोंकी भी बराबरी करनेवाले कर्मयोगी कितने हैं?

बड़े आश्चर्यकी बात है कि यद्यपि हमारे उक्त सब प्रश्नोंका उत्तर प्रायः 'नहीं' ही मिलता है—हमारी धार्मिक योग्यता इतनी बढ़ी चढ़ी है, तो भी हम दूसरे धर्मवालोंको जैनी बनानेका दम भरते हैं। हम समझते हैं कि हम धर्मात्मा हैं इसलिए दूसरोंको

भी अपने समान धर्मात्मा बनानेका मोह हमारे सिरपर सवार हो गया है; परन्तु मेरी समझमें जब तक जैनियोंमें 'कर्मयोग' का प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है तब तक इस प्रयत्नसे हानिके सिवा कोई लाभ नहीं हो सकता। जैनसमाज परोपकारके खयालसे अथवा स्वार्थत्यागके विचारसे जितने पीछे पड़ा हुआ है, उतने पीछे शायद ही कोई दूसरी समाज हो। मांसाहारी और मिथ्याती कहलानेवाले मुक्तिफौजके संचालकोंने लाखों भूखे मरनेवाले प्राणियोंको अन्नवस्त्र देकर बचाया है, लाखों दुराचारियोंको सदाचारी बनाया है, और जो कैदी कैदखानोंसे छूटकर या तो अपने जीवनको और भी नीच बनाते हैं या आत्मघात करके भयंकर शान्तिका अनुभव करनेको उत्सुक होते हैं उन्हें मुक्त होते ही व्यापार कला-कौशल्यादि सिखलाने और जीविका निर्वाहके योग्य बना देनेका अतिशय पुण्यकार्य भी उन्होंने अपने हाथमें ले लिया है। आज बहुतसे पारसी विद्वान् और ब्राह्मण विद्वान् हजार हजार रुपये मासिक वेतनकी नौकरियां छोड़कर परोपकारी संस्थाओंकी मुफ्तमें सेवा कर रहे हैं। इसका नाम कर्मयोग है। क्या जैनी अपने समाजमें भी ऐसे दो चार दृष्टान्त बतला सकते हैं? यदि नहीं तो जबतक ऐसे प्रत्यक्ष गुण जैनसमाजमें दिखलाई न देने लगें तबतक 'हमारे शास्त्रोंमें सब कुछ है' इस तरह कहने मात्रसे कुछ होनेका नहीं। इस समय हमें द्रव्यसाधु और द्रव्यश्रावकोंकी जरूरत नहीं। अब हम भावसाधु और भावश्रावक चाहते हैं। हम प्राणान्तक कष्टोंको चुपचाप सहन करनेवाले योगीश्वरोंके भक्त हैं, लाखों-करोड़ोंका दान करनेवाले दानवीरोंके वंशज हैं और उन भगवान् ऋषभदेवके अनुयायी हैं जिन्होंने यह जानकर भी कि हम इसी

भवमें मुक्त हो जायँगे सारे संसारके हितके लिए सारा विज्ञान (Sciences) और सारी कलाएँ (Arts) सिखलाई थीं। इतने-पर भी क्या कारण है जो हम ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियो-गसे बिलकुल खाली हो गये हैं?

सबसे पहले कारणकी खोज करनी चाहिए। क्योंकि जबतक कारण मालूम न हो, तबतक वास्तविक उपाय नहीं किया जा सकता। हम पूछते हैं कि क्या आजकलके श्रावक जैनधर्मके गुरुओंका या पण्डितोंका उपदेश सुननेसे इंकार करते हैं? कदापि नहीं। क्या जैन-गुरुओं या पण्डितोंकी संख्या यथेष्ट नहीं है? बहुत है। क्या जैनशास्त्र थोड़े हैं? हरगिज नहीं। क्या धर्ममार्गमें धनखर्च नहीं किया जाता? खूब किया जाता है, बल्कि जितना चाहिए उससे भी जियादा किया जाता है। जब हमारे प्रश्नोंका उत्तर उक्त प्रकारसे मिलता है तब कहना होगा कि जैनियोंकी इस अजैनताका कारण सामान्य श्रावकोंमें तो नहीं है। बेचारा श्रावक समूह अपने साधुओं और पण्डितोंका जूंआ अब तक बराबर अपने कन्धोंपर लादे आ रहा है और मानो ये हमें किसी देवलोकमें ले जावेंगे ऐसी श्रद्धा या अन्धश्रद्धासे अपनी बुद्धिकी और विचारशक्तिकी लगाम इनके हाथमें देकर और यह विश्वास रख कर कि इनके सिवा सारा संसार पापी है—मिथ्याती है—नरकमें जानेके लिए ही सृजित हुआ है—इन द्रव्य क्षेत्रकाल भावके ज्ञानसे सर्वथा शून्य हांकनेवालोंके इशारेसे चल रहा है। इस प्रकारकी श्रद्धा यदि कोई अच्छा गुण हो, तो कहना होगा कि यह गुण अन्यधर्मियोंकी अपेक्षा श्रावकोंमें बहुत अधिक है; परन्तु इसके होनेपर भी यह समूह अन्य समू-होंकी अपेक्षा धर्म नामके तत्त्वसे बिलकुल अनभिज्ञ है। यहां हमें

एक विद्वानका वचन याद आता है कि "मनुष्य जिसे पूजता है उसीके समान हो जाता है।" मनुष्यपर जितना असर शिक्षकोंके प्रतिदिनके आचरणका पड़ता है उतना किसीका भी नहीं पड़ता। शिक्षकोंके हृदयमें यदि भक्तियोग हो तो शिष्य भक्तिपरायण बनते हैं, शिक्षकोंके मस्तकमें यदि ज्ञानयोग हो तो शिष्य विद्या-विलासी बनते हैं और शिक्षकोंके हाथ पैरोंमें यदि कर्मयोग हो तो शिष्य परोपकारी कर्मयोगी बनते हैं। जिसे हम जन्मसे ही सर्वोत्कृष्ट, सबसे अधिक पूज्य और सबसे अधिक अनुकरणीय मानते आ रहे हैं हमारे मनपर उसके वर्तावसे अधिक प्रभाव दूसरे किसी भी पदार्थका, दूसरी किसी भी घटनाका, या दूसरी किसी भी पुस्तकका नहीं पड़ सकता। यदि कोई धर्मसम्प्रदाय या कोई पाठशाला आगे बढ़नेकी अपेक्षा नीचेको ढलती दिखलाई देवे, तो उसके उन्नत करनेका सबसे अच्छा मार्ग यही है कि शिक्षक बदल दिये जायँ। यदि अच्छे शिक्षक न मिल सकते हों तो इन आलसी, झगड़ालू, स्वार्थी और दुराचारी मनुष्य बनानेवाली पाठशालाओंमें ताले ही लगा देने चाहिए और जिन विद्यार्थियोंको उनके माबाप अपने घर कुछ पढ़ा लिखा सकते हों उन्हे अपने घर चले जाने देना चाहिए, या कोई दूसरी पाठशाला तलाश कर लेने देना चाहिए। पर जिनके लिए ऐसा कोई भी प्रबन्ध न हो सकता हो, उन्हें इस अमानुषिक शिक्षामें समय गँवाने देनेकी अपेक्षा मूर्ख ही रहने देना चाहिए। हमारी समझमें उस पढ़नेकी अपेक्षा यह न पढ़ना कुछ कम हानिकारी है। एक बड़े भारी विद्वानका कथन है:—

As to the nation, can that kind of union save her, which is not for righteousness? Can you unite the people by keeping them in the dark? Would national harmony be

secured by sworn slavery to error and superstition? Suppose all the sailors work in a common direction but that direction be negative, not one with the evolutionary course, not truth-ward; would that be desirable ? Such a boat is bound to be shattered to pieces on a rock, and, perhaps the sooner the better...union in purity and truth alone is practicable."

उक्त महात्माके ही निम्नलिखित वाक्य सच्चे सुधारकोंके लिए बड़े कीमती हैं:—

Every statue (Smrite) stands there to say; 'Yesterday we agreed so and so, but how feel you this article today ?' Every institution is a currency which we stamp with our own portrait; it soon becomes unrecognizable and in process of time must return to the mint. Nature exults in forming, dissolving and reforming her crystals. Changeless change is the essential condition of life.

नियम और संस्थायें किस लिए हैं ? मनुष्यजातिको आगे बढ़ानेके लिए, पशुत्वमेंसे मनुष्यत्वमें लानेके लिए और मनुष्यत्वमेंसे देवत्वमें पहुंचानेके लिए। नियम, कानून और संस्थायें मनुष्योंके लिए बनी हैं, कुछ मनुष्य नियम और संस्थाओंके लिए नहीं बने। मनुष्यको अधिकार है कि वह बदली हुई परिस्थितिके अनुसार नये नियम और नई संस्थायें बनावे। वे मनुष्य कितने अभागी हैं कि जिनका 'भविष्यत्' 'भूत' में है, जिनकी दृष्टिके आगे निरन्तर भूतकाल ही रहता है और जो कभी वर्तमानकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। स्थल और समय दोनों बदला करते हैं। जहां पहले एटलाण्टिक भूभाग था, वहां आज महासमुद्र लहरा रहा है। उक्त भूभागमें जानेके लिए यदि किसी प्राचीन ग्रन्थमें यह लिखा हो कि वहांको गाड़ी आदि सामग्री तैयार करके जाना

चाहिये, तो उसके अनुसार तैयार हो कर जानेसे जानते हो वहां हमारी क्या दशा होगी ? आज पासिफिक महासागरमें जानेके लिए बड़े बड़े आगबोट हैं। अब यदि इन आगबोटोंके चलानेवाले अपने सफरकी कुछ सूचनायें एक डायरीमें लिख रक्खें और उस डायरीको उनका हजार पांचसौ पीढ़ी पीछेका एक वारिस पाकर उसके अनुसार अपना स्टीमर उस पुराने मार्गसे ले जाय, तो मालूम है उसका क्या हाल होगा ? उक्त मार्ग धीरे धीरे पृथ्वीरूप बनता जा रहा है, एलास्काके आखातके आगेका भाग ऊपरको उठने लगा है और बेहरिंग समुद्रके बहुत जल्दी अदृश्य हो जानेके लक्षण दीख रहे हैं; जिससे एशिया और अमेरिकाके बीचमें खुश्की रास्ता हो जायगा। उस समय आजकलके आगबोटवालोंकी डायरी, बतलाइए किस काममें आयगी ? अब हमें तप, सामायिक, स्वाध्याय, दान, पूजादि सब ही कार्य वर्तमान समय, संहनन, देशस्थिति और दूसरी अनेक परिस्थितियोंका विचार करके करना चाहिए। परन्तु भूत और वर्तमानकी सारी परिस्थितियोंका गहरा अभ्यास और मुकाबिला किये विना इस प्रकारके मार्ग-प्रदर्शक शास्त्रकी रचना नहीं हो सकती।

साधु और श्रावकोंके दोनों ही आश्रम बहुत ही चतुराई और दूर-दर्शितासे बनाये गये हैं; परन्तु 'साधु आश्रम' प्रायःज्ञानयोगके मार्गके लिए ही बनाया गया है और इस समय इस दुखी देशको सबसे अधिक आवश्यकता कर्मयोगकी है। इसलिए सबसे अधिक लक्ष्य कर्मयोगी उत्पन्न करनेकी ओर ही देना चाहिए। अब जो नई दीक्षायें दी जावें वे साधु आश्रममें प्रवेश करनेके लिए नहीं; किन्तु कर्मयोगियोंके आश्रममें प्रवेश करनेके लिए दीजानी चाहिए। जो पुराने साधु हैं उन्हें इस बातके लिए मजबूर करना चाहिए

कि वे गृहस्थोंके किसी भी झगड़ेमें न पडकर केवल ज्ञानयोगमें मग्न रहें। जब तक कोई साधु सूत्रग्रन्थों या सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन करके उनका रहस्य न समझने लगे और योगादि विषयोंका जानकार न हो जाय, तब तक उसे दूसरे कामोंमें हाथ डालनेसे या सलाह देनेसे रोकना चाहिए। उसे यह न भूल जाना चाहिये कि मैंने इसी लिए दीक्षा ली है और हमें भी उसे लक्ष्यसे च्युत होते देख अटकाना चाहिए। हमारे साधु तो इस समय दूरसे दर्शन करने योग्य वस्तु बन गये हैं। इसलिए उन्हें सुधारना चाहिए और वर्तमानमें हमें अपनी सारी शक्ति, सारी भक्ति और सारी दौलतका खर्च केवल कर्मयोगी उत्पन्न करनेके लिए करना चाहिए।

यह प्रश्न बहुत गंभीर और गहन है कि कर्मयोगी कैसे उत्पन्न किये जायँ। इस प्रकारका प्रयत्न पहले भी किया जा चुका है और गोरजी, यति तथा भट्टारक आदि बहुधा इसी आशयसे निर्माण किये गये थे। अनेक विद्याओंका अध्ययन करके और ब्रह्मचर्यकी पालनासे शक्ति संचय करके जगह जगह पर्यटन करते हुए परोपकारके कार्य करना यही इनका कर्तव्य था। यदि ये अपने कर्तव्यकी पालना करते रहते तो इनसे समाजका बहुत बड़ा कल्याण होता; परन्तु जब इन्होंने अपने आसपासकी परिस्थितिकी ओरसे और दूसरोंके ज्ञानगुणकी ओरसे बिलकुल ही आंखें मूंद लीं, तब अहंकार, स्वार्थपरायणता और इन्द्रियलोलुपताने इन्हें ऐसा दबाया कि फिर ये उठ ही न सके। वर्तमानके नये सुधारक इनके उक्त परिणामसे बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। इस समय हमें चाहिए कि जैनियोंके तीनों सम्प्रदायोंमेंसे तीव्र बुद्धिवाले युवा चुनकर एकत्र करें और उन्हें संस्कृत, प्राकृत और अँगरेजी इन तीनों

भाषाओंका अच्छा ज्ञान सम्पादन कराके मानसशास्त्र, सायन्स, फिलासोफी, शरीरशास्त्र और योगका अभ्यास करनेकी सुगमता कर देवें। जब वे इन विषयोंका पांच छह वर्ष तक अध्ययन कर चुकें तब वर्ष दो वर्षके लिए यूरोप, अमेरिका, जापान जैसे देशोंमें उक्त विद्याओंका विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिए भेज दिये जायँ और जब वहांसे लौट आवें तब आर्थिक सहायता देकर उनमें से किसीको समाचारपत्रके सम्पादन करनेका, किसीको नवीन पद्धतिसे जैनशास्त्रोंका अनुवाद करनेका, किसीको साधुओंको अपनी पठित विद्याओंका ज्ञान करा देनेका, किसीको नई पद्धतिके अनुसार विना दवाईके रोग अच्छे करनेकी विद्या प्रचार करनेका, और किसीको सार्वजनिक स्कूलों तथा कालेजोंमें जैनधर्मके तत्त्वोंके साथ नई खोजोंका मिलान करके व्याख्यान देनेका काम सौंपना चाहिए। विचार करनेसे ये सब बातें बहुत मुश्किल मालूम होंगीं; परन्तु हमें यह भी तो सोचना चाहिए कि एक नई सृष्टि उत्पन्न करनेका कार्य क्या सहज होता है? लाखों मनुष्योंको भूख, दुःख, अश्रद्धा, अन्धश्रद्धा और अधर्मसे बचानेके कार्य कहीं सहज हुए हैं? जो काम जितना कठिन होता है वह उतना लाभदायक भी होता है। जैनधर्मकी बारह भावनाओंमें, भविष्यके ये नये प्रकाशवाले जैनी सारा ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग देख सकेंगे और यह निश्चय समझ लो कि इन तीन तारोंके जोड विना कोई भी मनुष्य–सरंगी मधुर स्वर निकालनेमें समर्थ नहीं हो सकती है। भाइयो, लोगोंको विलासप्रियता, आलस्य, अज्ञान, सन्देह, डरपोकपन, अन्धश्रद्धा, अश्रद्धा और भूतकालके स्वप्नोंसे बचाओ; चौदहलाख जैनियोंमें परस्पर कन्या-व्यवहार

जारी करके पच्चीस वर्षकी अवस्थाके पहले विवाहसम्बन्ध मत होने दो; स्त्रियोंमेंसे उद्योगहीनता और अज्ञानताको निकाल दो; पुरुषोंको केवल उपवासोंसे दुर्बल नहीं किन्तु ऊनोदर तप, ब्रह्मचर्य और व्यायामसे सुदृढ़ और सहनशील बनाओ; लक्ष्मीके पतियोंको लक्ष्माके पिता या भाई बनाओ; दातारोंको पुण्य या मान बड़ाईके बदले प्रेमभावकी भावना भाना सिखलाओ; जैनियोंको भारतवासियोंसे जुदा न रखके भारत ही क्यों सारी पृथ्वीके मित्र बनानेका प्रयत्न करो; क्रियाओंके निर्जीव पुतलेको भक्तिके मंत्रसे सजीव बनाओ और उसे कर्मयोगका खड्ग देकर जीवनयुद्धमें भेजो; अज्ञानको ज्ञानमें और ज्ञानको भक्तिमें बदल दो; जो सेवाधर्मको अपना कर्तव्य समझने लगे हैं उन्हें सेवाधर्मको आनन्द समझकर पालना सिखलाओ; जो शिक्षित कहलाते हैं उनके हृदयोंको शिक्षित करो; जिनके हृदय हैं उनके मस्तिष्कोंको शिक्षित करो; 'अमुक अमुक काम मत करो' इस तरह निषेधयुक्त आज्ञायें दे देकर लोगोंको निषिद्ध कार्योंकी सूचना मत दो; किन्तु केवल वास्तविक सत्योंको युक्तिपूर्वक सिखाओ, भूतकालके संचित ज्ञानको वर्तमानके उपयोगमें लाना सिखलाओ और केवल उसीमें चिपटे रहनेको मिथ्यात्व समझनेका उपदेश दो; प्रत्येक जैनीके जीमें यह बात जमा दो कि शरीर मन और आत्मा इन तीनोंमेंसे एककी भी आरोग्यतापर ध्यान न देनेवाला आत्मघाती है; जिसकी, चाहे जैसी परिस्थितिमें झूठ बोलनेकी इच्छा नहीं होती और जिसकी मानससृष्टिमें कभी स्वप्नमें भी अहंपनेकी और दुनियाके झगड़ोंकी वासना उत्पन्न नहीं होती उसके सिवा दूसरा कोई साधुपनेके पदका अधिकारी नहीं है, यह प्रत्येक व्यक्तिको समझा दो; और प्रत्येक जैनीको बत-

ला दो कि फलकी आशा रक्खे विना निरन्तर उद्योग, स्वार्थत्याग, सबपर निर्मल प्रेम, प्रसन्नता, निर्भयता, स्वावलम्बन और परमतत्त्वकी जिज्ञासा इसीसे उन्नति या उदय हो सकता है। हमारे लिए केवल यही एक रास्ता है, अपने धर्मकी पताकाको उड़ानेवाला यही एक पवन है, अपने वीर नामकी गर्जना करनेवाला यही एक शङ्ख है, यही साधुओंका साधुपना और श्रावकोंका श्रावकपना है, यही वीसवीं शताब्दीका धर्म है, यही कान्फरेंसों, महासभाओं, समाचारपत्रों और व्याख्यानदाताओंका मिशन है और यही अपनी ऐहिक और आत्मिक मुक्तिया स्वतंत्रताका मार्ग है। *

Shake, shake off Delusion !
Wake, wake up ! Be Free !
Liberty ! Liberty !
Liberty !

Fade, fade, each earthly joy: Mahavir is mine !
Break all useless ties: Mahavir is mine !

Dark is the wilderness,
'Earth' has no resting-place ?

Mahavir alone can bless, Mahavir is mine !
Tempt not my soul away; Mahavir is mine !
Here would I ever stay; Mahavir is mine !

Perishing things of clay,
Born but for one brief day,

Pass from my heart away ! Mahavir is mine !
Farewell, Ye dreams of 'Night' Mahavir is mine !
Lost in this dawning 'Light' Mahavir is mine !

* 'जैनश्वेताम्बर कान्फरेन्स हेरल्ड' के एक लेखका भावानुवाद। यद्यपि इसके प्रत्येक विचारसे हम सहमत नहीं हैं तो भी लेख बहुत उदारता तथा दूरदर्शितासे लिखा गया है और वर्तमानमें ऐसे लेखोंकी बहुत जरूरत हैं इस लिए हमने इसका अनुवाद करना उचित समझा। —सम्पादक।

All that my soul has tried
Let but a dismal void;
Mahavir has satisfied; Mahavir is mine !
Farewell, mortality ! Mahavir is mine !
Welcome, eternity ! Mahavir is mine !
Welcome, O Love and Light
Welcome all-pervading Might
Welcome my Saviour's sight; Mahavir is mine !

समयधर्म ।

तारनपन्थ ।

(३)

जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं—जब तारनस्वामीने तत्कालीन आवश्यकताकी पूर्ति करनेका विचार किया, तब यद्यपि उन्होंने ढूंढक पन्थके ढांचेका अनुकरण किया होगा—ढूंढक पन्थका ढांचा देखकर उन्हें अपने पन्थका ढांचा बनानेकी स्फूर्ति हुई होगी तथापि 'एक कार्यके अनेक कारण होते हैं' इस न्यायके अनुसार ऐसा मालूम होता है कि उस समयका विचार-वातावरण भी तारनपन्थके ढांचे बननेका एक कारण होगा और इसी कारणसे उसके पहले ढूंढकपन्थका ढांचा बना होगा।

हम देखते हैं कि विक्रमकी पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीमें कबीर, नानक, दादूदयाल, आदि जितने पन्थप्रवर्तक महात्मा हो गये हैं प्रायः वे सब ही अपने समयके एक प्रकारके सुधारक या रिफार्मर थे। उन दिनों इस देशमें मुसलमानोंका खूब दौरदौरा था। इनकी एकजातीयता, एकेश्वरवादिता और मूर्तिपूजारहितता आदि बातोंका उनके विचारोंपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था।

इसलिए उन्होंने समझा था कि हिन्दूधर्मकी रक्षा तब तक न हो सकेगी, जब तक इसमेंसे 'मैं ब्राह्मण और तू शूद्र, मैं बड़ा और तू छोटा' आदि विचारोंका मूलभूत जातिभेद, तेतीस कोटि देवताओंकी पूजा और मूर्तिपूजा आदि बातें न निकल जायँगी। इसकी रक्षा करनेके लिए इसमें कुछ रूपान्तर करनेकी आवश्यकता है। इस समझके अनुसार उन्होंने अपने अपने पन्थोंका वीजारोपण किया था और उस मुसलमानी सभ्यताके प्रभावान्वित समयमें उनके इस प्रयत्नसे लाभ भी बहुत हुआ था। उनके पन्थ प्रायः वेदान्त या अध्यात्म-मूलक थे और उनमें ब्राह्मणसे लेकर शूद्र तक सबको समान अधिकार थे। जहां उस समयके पुरातन हिन्दूधर्मानुयायी नीच जातियोंसे घृणा करके प्रकारान्तरमें उन्हें मुसलमान बन जानेके लिए लाचार करते थे, तहां ये उदार विचारवाले साधु सन्त नीच ऊंच सबको अपने गलेसे लगाकर हिन्दूधर्माभिमानी बनाते थे।

कबीर पन्थके स्थापक महात्मा कबीर और सिक्खोंके गुरु नानक तारनस्वामीके प्रायः समकालीन थे। क्योंकि कबीरका समय वि० संवत् १४७९के लगभग माना जाता है और नानकका जन्म १५२६ में तथा मृत्यु १५९६ में हुई थी। जब उनके विचारोंपर मुसलमान धर्मका उक्त प्रकारका प्रभाव पड़ा था, तब संभव है कि लोंकाशाह और तारनस्वामीपर भी पड़ा होगा और उसीसे इन दोनोंने अपने पन्थोंके ढांचे तैयार किये होंगे।

इस प्रभावका पहला फल मूर्तिपूजाका निषेध है। यह फल दोनों ही पन्थोंमें स्पष्ट रूपसे दिखलाई देता है। तारनस्वामीने मूर्ति-पूजाका खूब जोरशोरसे निषेध किया है। नीचे हम उनके ग्रन्थोंसे **कुछ प्रमाण देते हैं:—**

तेतीस कोटी सावय पूजे अरहंतदेव भाएण ।
पूज्जमी फल इयदेति पुन जाय निग्गोयं ॥
अरहो भोगो छंडो निव्वाणगया निरंजनो होई ।
सो संसारय किज्जे ते पुण जाय निग्गोयं ॥
हुंडायसप्पिणी आए त्रेसठसालाय पंच पाषाणं ।
चक्रहर मान भंगं उपसर्गे जिनवरं देहं ॥

इनका अभिप्राय यह है कि इस पंचमकालमें ३३ करोड़ श्रावक पाषाणदिमें अरहंतकी स्थापना कर पूजेंगे और उससे निगोद गतिको प्राप्त करेंगे। जो अरहंत भोगोंको छोड़कर निर्वाणको प्राप्त होकर निरंजन हो गये, उन्हें जो पाषाणमें स्थापन कर संसारी बनाता है वह निगोदको जाता है। हुंडावसर्पिणी कालके दोषसे लोग जिनेन्द्र भगवानको पाषाणमें स्थापित करके उनका उपसर्ग करते हैं।[1]

तारनपन्थकी एक 'चौदह मंगल' नामकी भाषाकी पोथी है। यह किसी तारनपन्थी पण्डितकी बनाई हुई है। उसमें लिखा है—

यह रे पंचम काल, धर्म नहिं जानियौ।
ग्रंन्थसहित निर्ग्रन्थ, कुदेवहिं मानियौ ॥
विकथा विनय अपार, धर्मतासौ कहौ।
देहिं कुपात्रे दान, तो दुरगति दुख सहौ।
न्यानव्रत विनु दानकर, कर्म अति उपजाइयौ।
पाखान भीतर लेय क्रीतम, ताहि माथौ नाइयौ ॥
सोई दुःख सब ही जानि भविजन, सुख कबहुं न गाईयौ
तारन तरन सब दुःख नासैं, सिद्ध मंगल गाइयौ ॥

इसका अर्थ स्पष्ट ही है ।

---

१ यह अभिप्राय हमने तारन पंथी पंडित टेकचन्द्रजीके एक लेखके आधारसे लिखा है। मूल गाथाओंका यह अभिप्राय अटकलपच्ची निकाला गया है। वास्तवमें उक्त गाथाओंमें कर्ता क्रिया कर्मका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। तारन-

दूसरा फल जातिभेदनिषेध है । ढूंढकपन्थका जातिभेदके विषयमें क्या सिद्धान्त है सो तो हमको मालूम नहीं; परन्तु तारनस्वामीके विचार इससे अवश्य ही विरुद्ध रहे होगें। ऐसा मालूम होता है कि इस विषयमें उन्होंने कबीर आदिका ही अनुकरण किया है। यद्यपि वर्तमान तारनपन्थी भाइयोंके जातिसम्बन्धी विचार और रीतिरवाज उनके पड़ोसियोंके ही समान हो गये हैं और एक दुर्बल तथा छोटेसे समाजमें ऐसा होना स्वाभाविक है; तो भी कई बातोंसे इस बातका अनुमान होता है कि तारनस्वामी स्वयं जातिभेदके अनुकूल न थे। एक तो रुइयारमन नामका पुरुष जो कि मुसलमान या किसी दूसरी छोटी जातिका था और जो भविष्यत्कालके पद्मनाभ तीर्थंकरका गणधर होगा, तारनस्वामीके मुख्य शिष्योंमेंसे था। दूसरे तारनपन्थियोंके तीर्थ मल्हारगढ़में लुकमानशाह नामक मुसल्मानकी, एक नटकी और कई और और लोगोंकी समाधियां या चबूतरे हैं जिनपर बहुतसे तारनपंथी नारियल चढ़ाते हैं। ये सब तारनपन्थके अनुयायी थे। इससे मालूम होता है तारनस्वामी मुसलमान शूद्र आदि सबको ही एक दृष्टिसे देखते थे और सबको अपने धर्मकी दीक्षा देते थे। तारनपन्थकी एक दो जातियोंके विषयमें यह अब तक प्रसिद्धि चली आती है कि पहले वे कोई छोटी जातियां थीं। छदमस्तवाणीमें लिखा है कि तारनस्वामीने पांच लाख जीवोंको संबोधा। यदि इसका अर्थ यह हो कि

स्वामीकी सारी रचना इसी प्रकारकी ऊटपटांग है। २ यह आक्षेप भट्टारकोंको ही लक्ष्य करके लिखा गया जान पड़ता है। न्यानसमुच्चयसारमें इस अभिप्रायकी बहुतसी गाथायें हैं। विशेष करके १९६, २०१, २०४, और २०५ की गाथायें देखना चाहिए।

उन्होंने पांच लाख मनुष्योंको अपना अनुयायी बनाया और इसमें कुछ अतिशयोक्ति न हो तो कहना होगा कि उनमें सबसे अधिक संख्या छोटी जातिवालोंकी होगी जो कि बिलकुल भोले भाले और धर्मतत्त्वोंसे अनभिज्ञ रहे होंगे। इसी कारण उनपर तारनस्वामीका प्रभाव पड़ सका होगा।

तारनपन्थके चैत्यालयोंमें जो प्रसाद बांटा जाता है और जिसे सब लोग खाते हैं, वह आश्चर्य नहीं कि पहले जातिभेदनिषेधक प्रीतिभोजनका ही एक रूप हो। इस विषयमें अच्छी तरह अनुसन्धान करनेसे बहुतसी बातोंका पता लग सकता है।

तीसरा फल क्रियाकाण्डके प्रपंचोंका अभाव और वेदान्त या अध्यात्मकी मुख्यता है। तारनपन्थके चैत्यालयोंमें ग्रन्थोंका दर्शन, स्वाध्याय, आरती उतारना और सामायिक आदि कार्य ही होते हैं, दूसरे क्रियाकाण्डोंका प्रायः अभाव रहता है। आध्यात्मिकताके विषयमें देखा जाय तो तारनस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें जो कुछ कहा है यद्यपि वह असम्बद्ध, अस्पष्ट और अलौकिक भाषामय है तथापि उससे यह मालूम पड़ता है कि उनके विचार अध्यात्मिक थे। सम्यक्त्व, ज्ञान, उपशम, आत्मबोध, आत्मानन्द, वैराग्य आदिकी उन्होंने अपनी भाषामें बहुत महिमा गाई है। तारनपन्थके अनुयायी जो तारनस्वामीके गुणगान करते हैं, उनसे भी मालूम होता है कि बड़े क्षमाशील, धीर, गंभीर, शान्त, उदार, नम्र, और आत्मानुभवी थे। उनका चरित्र अवश्य ही अच्छा रहा होगा और उसीके प्रभावसे उनके हजारों शिष्य हुए होंगे।

तारनपन्थका इन सब बातोंका विचार करनेसे हम कह सकते हैं कि यदि इसके स्थापक जैनधर्मके तत्त्वोंके अच्छे जानकार होते,

दश बीस विद्वानोंको उन्होंने अपना अनुयायी बना लिया होता, और अपने पन्थका पूरा ढांचा बनाकर वे उसे ग्रन्थोंमें व्यवस्थित पद्धतिसे लिख गये होते, तो यह पन्थ आज बहुत उन्नति करता और वर्तमान समयमें तो जब कि अंगरेजी सम्यताके प्रभावसे जाति पाँतिके बखेड़ोंसे और क्रियाकाण्डोंसे लोगोंको अरुचि होती जाती है इसका खूब विस्तार होता। परन्तु अब इन बातोंके सोचनेसे लाभ नहीं। तारनपन्थके भाग्यमें अब उन्नातिके कोई लक्षण नहीं दिख-लाई देते। क्यों कि न उसमें विद्या है और न साहित्य है। और इन दो चीजोंके विना कोई भी सम्प्रदाय या समाज उठ नहीं सकता।

[क्रमशः।

स्वामी विवेकानन्दके उदार उपदेश* ।

" भारतीय लोगो, तुम जन्मभर सिर्फ बड़बड़ ही करते रहना, करना कुछ नहीं। इन जापानी लोगोंको आकर देखोगे तो तुम खुद ही लज्जित होंगे और फिर चिमगीदड़ोंकी तरह दरी खोरि-योंमें अपने मुंह छुपाते फिरोगे। पर तुम इधर आ ही कैसे सकते हो? घरसे बाहर निकलते ही तुम्हारे शास्त्र पहले ही तुम्हें बाधित करेंगे। आज हजारों वर्षसे तुम आनन्दपूर्वक सुखकी नींद ले रहे हो और नाना प्रकारकी रूढियोंको चिपटाये बैठे हो। तुम्हारी आंखें अब भी

* श्रीयुत पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी सम्पादित " स्वामी विवेकानंदका पत्र-व्यवहार " से चुने गये।

नहीं खुलतीं। अपनी वर्तमान दशा सुधारनेके लिए तुम अब भी भी क्या कर रहे हो? हाथमें बड़े बड़े पोथे लेकर फिरना, यूरोपियन लोगोंसे अधूरे प्राप्त किये हुए ज्ञानकी बड़बड़ करना और २९–३० रुपयेकी क्षुद्रवृत्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करते रहना–बहुत ही हुआ तो वकील बन गये, बस समझ लिया कि मोक्षपद हाथ आ गया–बस इतनी ही आजकल तुम्हारी इस जन्मकी इतिकर्तव्यता हो रही है। विद्योपार्जनकी अवस्था अभी पूरी पूरी खतम भी नहीं हुई है कि भूखे बच्चोंका तांता पीछे लगा लिया! बस यही तुम्हारा सुख है। अरे रे! क्या समुद्रमें इतना पानी नहीं है कि तुम अपनी इन लम्बी लम्बी पदवियों और यूनिवर्सिटीके पुंछल्लों और सर्टिफिकटोंके सहित उसमें जलसमाधि ले लो?"

* * * * *

"प्यारे भाइयो, क्या तुम यह भी भूल गये कि हम मनुष्य हैं? उठो और भटभिक्षुकोंकी बनाई हुई रूढ़ियां जो तुम्हें पग-पगपर बाधा डालती हैं एक तरफ हटा दो। ....पहले इस भारी नागफांससे छूटो। अब अपने बिलोंसे बाहर निकलकर जरा दूसरे लोगोंकी तरफ आंखें खोलकर देखो। मनुष्य जातिपर तुम कुछ प्रेम करते हो या नहीं? तुम तो कहते हो कि हमें जन्मभूमि प्यारी है, तो फिर आओ चलो, आगे हो जाओ, पीछे फिरकर न देखना। हमारे साथ कोई आता है या नहीं, यह भी मत देखना; बराबर सामने दृष्टि रहने दो। आज भारतको सच्चे एक ही हजार मनुष्योंकी आवश्यकता है। पर ये मनुष्य ही चाहिए पशु नहीं।"

* * * * * *

"कार्यका आरम्भ पहले तरुण और सुशिक्षित लोगोंमें होने दो। ऐसे स्वार्थत्यागी तरुणोंका एक समुदाय बनाना चाहिए। याद रक्खो कि स्वार्थत्यागके विना संसारमें कोई भी बात सिद्ध नहीं हो सकती। इसमें आत्मप्रशंसाकी क्षुद्र वासनाओं–यशः कीर्ति आदि सब प्रकारकी इच्छाओंको प्रथम ही तिलांजलि देना चाहिए। बराबर कार्यमें डूबे रहो। लोग क्या कहते हैं, गाली देते हैं या यश गाते हैं, सो देखना हमारा काम नहीं। ऐसा एक छोटासा भी समुदाय यदि तैयार हो गया तो वह बड़े बड़े काम बातकी बातमें उठा लेगा। घासकी रस्सीसे मतवाला हाथी भी बाँध डाला जाता है। ऐसे समुदायमें ईश्वरीय तेजका वास रहता है। चलो तो, उठो, रात खतम हो गई और देखो अब यह अरुणकी आरक्त प्रभा फैलने लगी है। अब समुद्रमें ज्वार आवेगा। उसकी प्रचण्ड लहरें जब बहने लगेंगीं तब उन्हें रोकनेकी किसीको सामर्थ्य नहीं। अटल आत्मविश्वास ही तुम्हारा केवट है। इसकी सहायताके बिना एक कदम भी न रखना। डरका तो लेश भी न चाहिए। भीतियुक्त अन्तःकरण अत्यन्त भयंकर पापका गर्त्त ही है। इसलिए भयको हृदयसे पहले ही निकाल दो।"

* * * * * *

"जब यह भावना दृढ होती जाती है कि हम कोई बड़ा काम कर रहे हैं तब गर्व उत्पन्न होनेका बहुत डर रहता है। इस लिए सावधानी रक्खो कि वह उत्पन्न न होने पावे। क्योंकि यह दुष्ट शत्रु जब एकवार घेर लेता है तब अपना ही मत दूसरोंपर लादनेकी आदत पड़ जाती है। इस कारण बहुत बार साधारण व्यक्तियोंका अनादर हो जाता है। और अन्तमें सारा काम मिट्टी हो

जाता है। इस लिए यह खूब ध्यानमें रक्खो कि किसी व्यक्तिका निरादर न होने पावे। मुझे इस समय यहां सफलता प्राप्त हो रही है इसलिए, अथवा तुम्हारे काममें भी वहां थोड़ी बहुत सफलता होने लगे, सो आनन्दमें न फूल जाना। क्योंकि यदि तुम इतने ही आनन्दमें डूब जाओगे तो आगे जो बहुतसा काम करना है उसे कौन करेगा?"

* * *

"हम जिसपर चढ़ जानेकी इच्छा रखते हैं वह पर्वतका शिखर कितना ऊंचा है सो भी तो देखते रहो। इसका परिणाम क्या है सो पहले ही निर्णय हो चुका है। यह पहले ही निश्चित हो चुका है कि भारतभूमि जो आजकल सब प्रकारसे दीन हो रही है उसके सुखका दिन जल्दी ही आनेवाला है। बस, तुम्हारे काममें लगने-हीकी देरी है।"

* * *

"तुम्हें एक बात और बतलानी है कि इन कामोंमें श्रीमान् कहलानेवालोंपर बिलकुल ही भरोसा न रखना। ये लोक बिलकुल ही मृतपिण्ड मिट्टीके धोंधे होते हैं। इस कामके लिए तुम्हारे समान गरीब हलके दरजेके परन्तु विश्वासनीय मनुष्य योग्य हैं।........ मैं अपने देशके श्रीमान् और बड़े कहलानेवाले लोगोंसे मिला और अब अन्तमें इस परदेशमें (अमेरिकामें) मददकी भीख मांग रहा हूं। मुझे विश्वास है कि अन्तमें वह परमात्मा मेरी सहायता करेगा इसमें कुछ भी फर्क नहीं पड़ सकता। यदि कहीं भूख और शीतसे इस देहका यहीं पात हो गया तो, हे भारतके मेरे तरुण मित्रो मैं तुम्हारे लिए एक सम्पत्ति छोड़ जाऊंगा। दीन, दुर्बल, निराश्रित,

और अत्याचारके नीचे दबनेवाले मेरे बान्धवोंके सुखके लिए तुम अपना जीवन दे दो। तुम विरासतके नातेसे मेरे इसी वचनका निर्वाह मेरे बाद करो।"

*   *   *

"हममेंसे कुछ तरुण क्रिश्चियन हो रहे हैं, यह देखकर तुम बुरा न मानना। वर्तमान रूढ़ियोंसे जकड़े हुए समाजमें यह न हो तो और क्या हो? कोई भी समाज हो, उसकी वृद्धिके लिए—उसे उन्नतावस्था प्राप्त होनेके लिए प्रथम स्वतन्त्रता चाहिए। तुम्हारे पूर्वजोंने आत्माको सब स्वतन्त्रता दे दी और इस कारण धर्मकी वृद्धि हुई; परन्तु उन्होंने शरीरको पूरी परतन्त्रतामें रक्खा, इस कारण समाजकी बाढ़ रुक गई है। पश्चिमी देशोंकी दशा इसके विरुद्ध है। वहां समाजको पूर्ण स्वतंत्रता है धर्मको नहीं। दोनों ओर ये दो भिन्न भिन्न न्यूनतायें हैं।"

*   *   *

"भारतको बाह्य अथवा भौतिक सुधारकी बहुत आवश्यकता है। इस लिए यंत्रकला और अन्य वैज्ञानिक ज्ञानका प्रचार अपने देशमें खूब तेजीसे करना चाहिए। पाश्चात्योंको जितना अधिक मिल सके उतना ही तत्त्वज्ञान चाहिए। वे आध्यात्मिक सुधारमें बिलकुल पीछे हैं। भारतके लोगोंकी वृत्ति अनेक शतकोंसे धार्मिक बन रही है, इस कारण जो सुधारके प्रयत्न धर्मके आधारपर न होंगे वे अवश्य ही निष्फल होंगे। उसी प्रकार धार्मिक वृत्ति जागृत किये विना भी कोई सुधारविषयक प्रयत्न भारतमें सफल नहीं हो सकता। भारतके पहले सुधारकोंने जो यह समझा कि यहां धर्मका उच्छेद हुए विना सुधार नहीं हो सकता, यही उनकी

बड़ी भारी भूल हुई। इसका कारण यही है कि उनमेंसे बहुधा किसीने भी आर्यधर्मतत्त्वोंका अच्छी तरह अभ्यास न किया था और आर्यधर्म जो सब धर्मोंकी प्रत्यक्ष जननी है उसका सच्चा रहस्य जाननेके लिए जिस शिक्षाकी आवश्यकता है, वह उनमेंसे एकको भी न मिली थी। यह मैं फिर साफ साफ कह देता हूं कि अपनी वर्तमान दशा सुधारनेके लिए अपना धर्म छोड़नेकी कोई आवश्यक्तता नहीं है। किंबहुना मैं यह कहता हूं कि हम अपने धर्मको भूल गये हैं, इसी कारण हमारी यह दशा हुई है और यह प्रमाणपूर्वक सिद्ध करनेके लिए मैं तैयार हूं।

धर्मज्ञानदानकी वर्तमान प्रणाली ठीक नहीं है। आजकल ऐसी दशा होगई है कि जो धार्मिक ज्ञान चाहता हो उसे गृहस्थी करीब करीब छोड़नी ही चाहिए, सांसारिक सुखोंसे बिलकुल अलिप्त रहना चाहिए; पर यह दशा अब बदलनी चाहिए और इसके लिए हमें तात्त्विक धर्मका अच्छा अभ्यास करना चाहिए। इससे यह समझमें आजायगा कि अपनी वर्तमानदशामें उन तत्त्वोंका प्रयोग कैसे किया जा सकता है। धीरे धीरे और दृढताके साथ यह काम करना चाहिए।"

* * *

अपने बान्धवोंके विषयमें क्या तुम्हारे हृदयमें सच्चा प्रेम है? यदि है तो तुम्हें अपयशका बिलकुल डर नहीं। आज न सही, कल सफलता अवश्य ही होनी चाहिए। किंबहुना तुम्हारी सफलता या निष्फलतापर ही मैं तुह्मारे बन्धुप्रेमकी परीक्षा करूंगा। तुम यदि हतसफल हुए तो मैं समझ लूंगा कि सच्चा प्रेम तुम्हारे हृदयमें था ही नहीं। मैं कहता हूं, इस मार्गमें तुम स्वयं अपना ही

हित पहले कितना साधते हो, इसकी क्या तुम्हें कल्पना भी है? तुम्हें ईश्वरकी भेट करना है न? तो फिर भूखों मरनेवाले, इन हजारों चलते फिरते ईश्वरोंकी सेवा करो। परमात्मा तुम्हें तब ही मिलेगा। अरे, गंगाके पानीमें सिर्फ डुब्बी मारनेहीसे क्या फायदा? ईश्वर गंगामें डुबकी मार कर नहीं बैठा! पहले इन चलते फिरते ईश्वरोंकी सच्ची भक्ति करो। इनके विषयमें आदर और प्रेम होना चाहिए। इतनेपर तुम्हें प्रत्यक्ष जान पड़ेगा कि सच्चे प्रेममें कितनी सामर्थ्य है।"

* * * *

"किसी तड़फड़ाते हुए नरकके कीड़ेको मेरी संगतिसे यदि लाभ होना संभव हो, तो उसके लिए नरकवास भोगने तकको मैं तैयार हूं।"

* * * *

"कोई आयरिश मनुष्य जब पहले पहल न्यूयार्कमें आता है तब उसे देखो तो वह अकालमें वृद्ध हुआसा, मुखसे कान्तिरहित और सत्रह जगहोंसे टेढ़ा दीख पड़ता है; पर उसीको जब फिर छह महीनेके बाद देखो तब वह पहचाना भी नहीं जा सकता। उसकी दृष्टि गरुड़के समान तेज हो जाती है और वह छाती उठा कर चलता हुआ दीख पड़ता है। यह क्यों? यह फर्क कैसे हो गया? इसपर हमारा वेदान्त यह उत्तर देता है—"भैया रे, पहले तू अपने उस देशमें था, जहांकी हवा अनन्त कालकी गुलामीसे इतनी दूषित हो गई है कि तेरे मनमें उल्लासका कभी स्पर्श भी नहीं हुआ। वृक्ष, घर आदि निर्जीव पदार्थ भी यही कहते थे कि तू संसारमें क्यों जी रहा है? पर अब वह बात नहीं है। यहां तुझे सारी

सृष्टि आनन्दमय दीखने लगी, तेरे हृदयका आत्मविश्वास जो अस्त हो गया था वह अब फिर उदित होने लगा और यही तेरे इस अन्तरका कारण है। आयर्लेण्डका शूद्र अमेरिकामें आते ही ब्राह्मण हो गया और उसी समय सृष्टिदेवी उससे बोल उठी- 'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान् निबोधत'।"

* * * *

'शिक्षा' यह शब्द बहुत व्यापक अर्थका है। विस्तृत वाचनसे ज्ञानदर्शक शब्दोंका बड़ा संग्रह मस्तिष्कमें कर लेना शिक्षा नहीं है। इसे यदि शिक्षा कहेंगे तो एक बड़े कोशको भी सुशिक्षित कह सकेंगे। उसी प्रकार अनेक प्रकारके विषयोंपर मत दे लेना भी सुशिक्षितका लक्षण नहीं है। जिस पठन, मनन, अथवा आचरणसे हम अपनी इच्छाशक्तिका निग्रह करके उसे योग्य मार्गपर ला सकते हैं और प्रत्यक्ष फलदायी कर सकते हैं उसे शिक्षा कहते हैं। तो फिर जिस शिक्षासे इच्छाशक्ति जागृत नहीं होती; किन्तु वह निद्रारोगसे ग्रसित होकर मृत्युपथपर आरूढ़ करती है उसे क्या शिक्षा नाम दिया जा सकता है? मैं तो यह कहता हूं कि मनुष्यकी बुद्धिवृद्धिके लिए पूर्ण अवकाश और स्वतन्त्रता मिलनेपर उसके वर्तावमें कुछ समय तक प्रमाद भी होंगे। पर मेरी समझमें ये प्रमाद भी उस शुद्ध आचरणसे श्रेष्ठ होंगे जो केवल यान्त्रिक पद्धतिसे होता रहता है। यदि यह सच है तो ऐसे निर्जीव मृतपिण्डोंसे बने हुए समाजका सृष्टिमें क्या महत्त्व है? ये श्रृंखलायें यदि न होतीं, तो सब राष्ट्रोंमें अगुआ कहलानेका जिसे हक है और जहांकी भूमि सारी पृथ्वीको ज्ञान देनेवाली खानि है वही राष्ट्र क्या आज-गुलामोंका राष्ट्र और वही

भूमि क्या आज मूर्खताकी जन्मदात्रीके उज्वल नामसे प्रसिद्ध हो रही होती ?"

*　　*　　*　　*

"परोपकारके लिए जीना ही वास्तविक जीना और बढ़ना है। इसके विरुद्ध केवल सांसारिक सुखोंकी लालसासे—सिर्फ अपने ही शरीरसुखके लिए जीना मानो अपनी बाढ़ कम करके मृत्युपन्थमें लगना है। इस समय तुम्हारे पास जो लोग दीख रहे हैं उनमें सैकड़ा पीछे नब्बे (नहीं नहीं इससे भी अधिक) मरे हुए हैं। वे सच्चे मनुष्य नहीं हैं केवल आकारमें मनुष्योंके सदृश दिख पड़नेवाले पिशाच हैं। ऊपरकी व्याख्याके अनुसार सचमुच जीवित पुरुष भला कितने मिल सकेंगे ? मेरे प्यारे बच्चो, तुम अपने अन्तःकरणमें दूसरोंके विषयमें कुछ न कुछ सच्ची सहानुभूति अवश्य रक्खो। सच पूछो तो इस सहानुभूतिसे तुम्हें पागल बन जाना चाहिए, तुम्हारा हृदय धड़कना बन्द हो जाना चाहिए और तुम्हारे मस्तिष्कमें एकदम खलबली मच जानी चाहिए।"

*　　*　　*　　*

"आजकल अँगरेजोंसे अधिक अधिकार मांगनेके लिए सभायें करनेमें दिलो जानसे लग रहे हैं; पर अंगरेज लोग मन ही मन इन सभाओंकी पर हँस रहे हैं। जो लोग हानिकारक रूढ़ियोंकी शृङ्खलासे जकड़कर दूसरोंको गुलाम बनाते हैं वे क्या स्वयं स्वतन्त्र रहनेके योग्य कभी हो सकते हैं ? अंगरेज लोग यदि कल अपनी खुशीसे भारतको छोड़ कर चले जायँ, तो क्या तुम्हें कुछ वास्तविक लाभ हो सकता है ? तुम्हारी अयोग्यता तुम्हें उस स्वतन्त्रताका उपभोग कभी न करने देगी। रूढियोंके दास्य-पङ्कमें लोटनेवाले गुलामो, तुम स्वतन्त्रता क्यों मांगते हो ? क्या और नये गुलाम तैयार करनेके लिए ?"

सम्पादकीय टिप्पणियां।

१. बम्बई प्रान्तके जैनियोंकी मनुष्यगणना।

गत मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि इस बम्बई-प्रान्तमें ४,८९,९५२ जैनी रहते हैं। इनमें श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों शामिल हैं। जैनियोंकी सबसे अधिक बस्ती गुजरातके देशी राज्यों-में है। इस राज्योंमें उनकी संख्या २,१३,००४ है। इसके बाद कर्नाटक प्रान्तके देशी राज्य हैं, जिनमें उनकी संख्या ६२,२८६ है। अंगरेजी गुजरातमें ९९,९०९, बेलगांवमें ४१,५३३, बम्बई शहरमें २०,४६० अहमदनगरमें १९,२८४, सतारामें १४,८८३, खानदेशमें १३,१९७, पूनामें ११,७३१, धारवाड़में १०,४१३, नासिकमें ७,९०२, शोलापुरमें ७,६४३, बीजापुरमें ३,२३५, रत्नागिरीमें १,९१३, महाराष्ट्रके देशी राज्योंमें १,८२०, कुला-बामें १,४११, सिन्धमें १,३४९, कानड़ामें १,२९१, कोंकणमें ५३३ और एडनमें २३५ जैनी रहते हैं। गुजरातमें अधिक संख्या श्वेताम्बरोंकी और दक्षिण कर्नाटकमें दिगम्बरोंकी है।

२. बम्बई प्रान्तके जैनियोंकी सामाजिक स्थिति।

उक्त मनुष्य संख्यामें २,५४,६५१ पुरुष और २,३५,३०१ स्त्रियाँ हैं। यह बात विशेष ध्यानमें रखने योग्य है कि इस प्रान्तमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां लगभग २० हजार कम हैं। उक्त दो लाख ३५ हजारसे ऊपर स्त्रियोंमेंसे ५७,६४२ स्त्रियां विधवा हैं। अर्थात् लगभग एक चतुर्थांश स्त्रियां विधवा हैं। इन विधवाओंमें ५ वर्षकी उमर तककी ४०, पांचसे १० वर्षकी उमर तककी १३०, दशसे १५ तककी उमरकी ४५९, पन्द्रहसे वीस तककी

९७६ और बीससे ऊपरकी शेष हैं। जैनसमाजकी यह दशा बड़ी ही शोचनीय है। बाल्यविवाहका भी यहां खूब जोर शोर है। पांच वर्षकी उमरके भीतरके २१८, पांचसे दशतकके ५०७ और दशसे पन्द्रह तकके २,१६३ लड़के ऐसे हैं जिनका विवाह हो चुका है। लड़कियोंकी इससे भी अधिक दुर्दशा है। उनमें पांच वर्षके भीतरकी ६९२, पांचसे दशतककी २,८२५ और दशसे पन्द्रह तक ८,९३५ लड़कियां ऐसी हैं जिनके विवाह हो चुके हैं। बिधुर अर्थात् रंडुओंकी संख्यासे भी बाल्यविवाहकी प्रबलताका पता लगता है। पांच वर्षकी उमरके १५३, दशवर्ष तकके १९६ और पन्द्रह तकके १७५ बच्चे रंडुये हैं। इतनी छोटी उमरमें रंडुए कहलानेका सौभाग्य इसी देशके निवासियोंको प्राप्त है। पन्द्रह वर्षसे बीस वर्षके भीतरकी अविवाहित लड़कियां इस प्रान्तमें १,३२८ हैं। परन्तु इसका कारण यह नहीं है कि प्रौढ विवाहके विचारसे ये अविघाहित रक्खी गई हैं। नहीं, वृद्ध पुरुषोंसे अधिक धन लेनेकी आशासे ही बहुत करके इनकी रखवाली हो रही है। गुजरातकी हूमड़ आदि कई जातियोंमें लड़कियोंके खासे रुपये खड़े होते हैं। जितनी अधिक उमरकी लड़की हो उतने ही अधिक रुपये मिलते हैं। दक्षिण और कर्नाटकप्रान्तमें बहुतसी स्त्रियां जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहनेकी प्रतिज्ञा कर लेती हैं। ऐसी एक कुमारी स्त्री बम्बईके श्राविकाश्रममें भी है। मालूम होता है इसी रवाजके कारण बीस तीस और चालीस वर्षसे भी ऊपरकी बहुतसी स्त्रियां कुँवारी हैं। सतारा जिलेमें वीसवर्षसे ऊपरकी ३६ और चालीस वर्षसे ऊपरकी ५ स्त्रियां कुँवारी हैं। शोलापुर जिलेमें वीससे ऊपरकी १५ और ४० से ऊपरकी ६ कुँवारी हैं। अन्य बेल-

गांव, धारवाड़ आदि जिलोंमें भी करीब करीब इतनी ही संख्या है। बहुतसी स्त्रियां जातिकी संकीर्णतासे वरका योग न मिलनेसे भी कुमारी रहती होंगीं, ऐसा मालूम होता है। वीस वर्षसे ऊपरके अविवाहित पुरुषोंकी भी संख्या कम नहीं है, जिसके कारण विवाहोंकी मँहगाई, निर्धनता, कन्याविक्रय और जातिकी संकीर्णतासे कन्याओंका न मिलना आदि मालूम होते हैं। सतारा जिलेमें २० से ४० वर्षके भीतरके ३८५ और ४० से ऊपरके ८१ पुरुष अविवाहित हैं। शोलापुरमें वीससे ऊपरके ३०१ और ४० से ऊपरके ७९, बेलगांवमें २० से ऊपरके ७७२ और ४० से ऊपरके ११३, धारवाड़में २० से ऊपरके ३९३ और ४० से ऊपरके ३८, कोल्हापुरमें बीससे ऊपरके ७३१ और ४० से ऊपरके ९५, और कर्नाटकमें बीससे ऊपरके ४५४ और ४० से ऊपरके ३७ पुरुष अविवाहित हैं। इस प्रान्तकी उक्त सामाजिक दशाका अच्छी तरहसे विचार करनेसे जैनियोंकी संख्या घटनेके बहुतसे कारण मालूम हो जाते हैं।

३. शिक्षासम्बन्धी अवस्था।

अन्य साधारण जातियोंकी अपेक्षा सम्मिलित जैनियोंमें शिक्षितोंकी संख्या कुछ सन्तोषप्रद है। पुरुषोंमें १,०७,५०८ और स्त्रियोंमें वर १२,९०५ शिक्षित हैं। अर्थात् सैकड़ा पीछे ४२ पुरुष और स्त्रियोंमें ५ को शिक्षा मिली है। परन्तु हमको यह न भूल जाना चाहिए कि इस संख्यामें वे भी शामिल हैं जो केवल अपने दस्तखत कर लेना या किसी तरहसे लिखनेका काम चला लेना जानते हैं। वास्तवमें जिन्हें शिक्षित कहते हैं उनकी संख्या तो बहुत ही कम है। शिक्षाके सम्बन्धमें इस प्रान्तके श्वेताम्बरी भाइ-

योंकी अवस्था दिगम्बरियोंकी अपेक्षा बहुत अच्छी है; बल्कि सैकड़ा पीछे जो ४२ पुरुष शिक्षित गिने गये हैं वे श्वेताम्बरी भाइयोंके ही कारण गिने गये हैं। जिन जिलोंमें दिगम्बरियोंकी ही बस्ती अधिक है, वहांका हिसाब देखनेसे इस बातका निश्चय हो जाता है। बेलगांव जिलेमें सैकड़ा पीछे केवल १३॥ पुरुष ही पढ़े लिखे हैं। कोल्हापुरमें १७॥, सतारामें २१ और धारबाड़में ३० जैनी पुरुष पढ़े लिखे हैं। इन चार पांच जिलोंकी संख्यासे ही दिगम्बरियोंकी शिक्षा सम्बम्धी हालतका अनुमान हो जाता है। बम्बई प्रान्त भरके जैनियोंमें अंगरेजी जाननेवाले पुरुष ६१९२ और स्त्रियां ५९ हैं।

४. दि० जैनप्रान्तिक सभा बम्बईका वार्षिक अधिवेशन।

दिगम्बर जैनप्रान्तिक सभा बम्बईका बारहवां वार्षिक अधिवेशन अबकी बार बम्बईमें ही होना निश्चित हुआ है। ता० २७ और २८ दिसम्बरको सभाकी बैठकें होंगीं। सभापतिका आसन लखनौ-निवासी बाबू अजितप्रसादजी, एम. ए., एल. एल. बी. स्वीकार करेंगे। प्रान्तिक सभाका यह अधिवेशन बम्बईमें कोई दश वर्षके बाद होता है। प्रायः सब ही समाजहितैषियों और विद्वानोंके बुलानेका प्रयत्न किया गया है और खास खास सज्जनोंके आनेकी सूचनायें भी मिल चुकी हैं। इससे आशा की जाती है कि अबके अधिवेशनमें प्रान्तिक सभा कुछ महत्त्वके कार्य करके दिखलायगी। सभाके कार्यकर्त्ताओंको चाहिए कि अब वे बाबू और पंडित, सेठ और विद्वान्, मारवाड़ी और गुजराती आदि भेदभावोंको भूलकर एक दिलसे काम करें और समाजकी वर्तमान आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके लिये कटिबद्ध हो जावें।

५ हमारे कुछ प्रस्ताव।

प्रान्तिक सभाके अधिवेशनके लिये हम यहांपर थोड़ेसे ऐसे प्रस्ताव उपस्थित करते हैं, जिनके कि पास होनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है:—

१. इस समय जैनियोंके समक्ष सबसे महत्त्वका प्रश्न यह उपस्थित है कि उनकी संख्या बड़ी तेजीसे घट रही है। इस लिए प्रान्तिक सभाको इस विषयकी चर्चा विशेष प्रयत्नके साथ करना चाहिए। जैसा कि हम अपने पिछले लेखोंमें बतला चुके हैं, इस क्षयरोगसे बचनेके लिये सबसे पहले जैनियोंकी समस्त जातियोंमें बेटीव्यवहारकी पद्धति जारी करनेकी आवश्यकता है। प्रान्तिक सभाको अपने समाजके विद्वानोंके समक्ष इस प्रस्तावको उपस्थित करके पास कराना चाहिए और यदि इसमें मतभेद हो—तत्काल ही इस विषयमें अपनी राय कायम करना उचित न समझा जाय तो कमसे कम समाचारपत्रोंमें तो इसकी चर्चा करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

२. बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीने प्रगट किया है कि वह जैनियों और सिक्खोंकी धर्मशिक्षाका प्रबन्ध करेगी, इसलिए थोड़े ही समयमें हमें दो चार ऐसे विद्वानोंकी आवश्यकता होगी, जो उक्त यूनीवर्सिटीके कॉलेजोंमें जैनधर्मकी शिक्षा दे सकें। परन्तु हम देखते हैं कि जैनियोंमें ऐसे विद्वानोंका एक प्रकारसे अभाव ही है जो उक्त कार्यको कुशलतापूर्वक करसकें। इस कार्यके लिए ऐसे विद्वान् आवश्यक होंगे जो पाश्चात्य विद्याके भी पण्डित हों और जैनधर्मके भी विद्वान् हों। हमारे समाजके विद्वानोंकी यह दशा है कि वे या तो अंगरेजीके ही पण्डित हैं या संस्कृत और धर्मशास्त्रोंके

ही पण्डित हैं। इसलिए हमारी समझमें प्रान्तिक सभाको चाहिए कि वह कमसे कम दो तीन ग्रेज्युएटोंको चुनकर सन्तोषप्रद स्कॉलर्शिप देकर किसी जैन विद्वानके पास दो तीन वर्षके लिए धर्मशास्त्रोंका अभ्यास करनेके लिए रख दें और उन्हें इस कार्यके सम्पादन कर सकने योग्य बना दे। यह बहुत ही आवश्यक प्रस्ताव है। इसके लिए स्कॉलर्शिपका प्रबन्ध भी खास तौरसे करना चाहिए। यदि हम यह न कर सकेंगे तो हिन्दू यूनीवर्सिटीमें जैनधर्मकी शिक्षाका प्रबन्ध होना न होना हमारे लिए बराबर होगा।

३. तीर्थ क्षेत्रकमेटीके अधिकारमें बहुतसे तीर्थोंका प्रबन्ध आ गया है और धीरे धीरे और भी कई तीर्थोंका प्रबन्ध हस्तगत हो जानेकी आशा है। अनेक तीर्थोंमें इतनी आमदनी होती है कि उससे वहांपर एक एक दो दो पाठशालायें तथा अनाथालय आदि संस्थायें चलसकती हैं। इस लिए प्रान्तिक सभाको तीर्थक्षेत्रकमेटीसे प्रेरणा करनी चाहिए कि वह मुख्य मुख्य तीर्थोंपर फिलहाल कमसे कम एक एक पाठशाला अवश्य खोले और उनमें उस तीर्थके आश्रित रहनेवाले भील आदि लोगोंके बालकोंको तथा आसपासके जैनी बालकोंको पढ़ानेका प्रबन्ध करे।

४. सभाको 'सस्तु साहित्य प्रचारक मण्डल' के ढांचेपर एक संस्था स्वयं खोलने या खुलवानेका प्रयत्न करना चाहिए। इस संस्थाकी ओरसे संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, और मराठी भाषाओंमें जैनग्रन्थ छपने चाहिए और वे लागतके मूल्यपर बेचे जाने चाहिए। इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। सब ही जानते हैं कि इस समय ऐसी संस्थाकी बड़ी भारी जरूरत है।

५. देखते हैं कि जैनियोंकी संस्कृत पाठशालाओंमें वैसे विद्यार्थी तैयार नहीं होते हैं जैसोंकी कि आशा की जाती थी और इसका कारण यह मालूम होता है कि इन पाठशालाओंमें पाश्चात्य शिक्षाका कोई भी प्रबन्ध नहीं है। वर्तमान समयकी परिस्थितियोंका विचार करनेसे यह एक प्रकारसे निर्विवाद सिद्ध है कि विना पूर्वीय और पश्चिमीय ज्ञानका सम्मिलन कराये हमारी आवश्यकताओंके समझनेवाले युवक तैयार नहीं हो सकते हैं। पुरानी शिक्षापद्धति भी वर्तमान समयके लिए उपयागी नहीं है। इसलिए अब एक ऐसी संस्थाकी नीव डालनेकी आवश्यकता है जिसमें उक्त दोनों प्रकारकी शिक्षाओंका प्रबन्ध हो। इसके लिए हमें हिन्दू कॉलेज बनारस, मुहम्मडन कालेज, अलीगढ़ और दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज लाहोरका अनुकरण करना चाहिए। यद्यपि पहले पहले इतनी बडी संस्थाका स्थापित करना कठिन होगा, तो भी एक हाईस्कूलके रूपमें उसका प्रारंभ कर देना बहुत ही आवश्यक प्रतीत होता है। 'प्रगति आणि जिनविजय' के सम्पादकने भी प्रान्तिक सभाके विचार करनेके लिए इसी प्रकारका एक नोट किया है।

६. प्रायः सारे भारतवर्षके विद्वानोंने इस बातको स्वीकार किया है कि भारतकी राष्ट्रभाषा बननेकी योग्यता हिन्दीमें और राष्ट्रलिपि बननेकी योग्यता नागरी (बालबोधी) लिपिमें है। इसलिए देशहितैषी लोग इस भाषा और लिपिको सर्वव्यापिनी बनानेका उद्योग कर रहे हैं। जैनसमाज भी राष्ट्रका एक अंग है। इस लिए उसे भी चाहिए कि वह इस उद्योगमें योग देवे। इसके लिए प्रान्तिक सभा बम्बईको यह प्रस्ताव करना चाहिए कि

जैनियोंके समाचारपत्र और जैनग्रन्थ जहांतक हो नागरीलिपिमें प्रकाशित किये जायं, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंके पत्रोंमें कुछ लेख हिन्दीके भी रहें, समस्त जैन पाठशालाओंमें हिन्दी भाषाका ज्ञान कराया जाय, जैनग्रन्थोंके प्रकाशित करनेका प्रबन्ध सबसे अधिक हिन्दी भाषामें किया जाय और महाजन लोग अपने बही खाते, सराफी मारबाड़ी या मोड़ीमें न रखकर नागरी लिपिमें रक्खें और इसी लिपिमें पत्रव्यवहार करें।

७. महासभाके वर्तमान अनुचित कामोंपर शोक प्रकाशित किया जाय और यह प्रगट कर दिया जाय कि यदि वह अपनी पालिशीको शीघ्र ही न बदलेगी तो प्रान्तिक सभाको लाचार होकर उसकी प्रधानताको अस्वीकार करना पड़ेगा। इस वर्ष उसके उच्छृङ्खल कार्यकर्त्ताओंने प्रबन्धकारिणी कमेटीमेंसे दो चारको छोड़कर प्रायः सब ही जातिहितैषियों और समाजके काम करनेवालोंको अलग कर दिया है, महाविद्यालयको विना विचारे मथुरामें लापटका है और जैनगजटको दुर्दशाके गड्ढेमें ढकेल दिया है। ये सब काम न केवल उसके कार्यकर्त्ताओंकी उच्छृङ्खलताको सूचित करते हैं किन्तु हद्द दरजेकी गलती भी बतला रहे हैं।

पुस्तक-समालोचन।

दिगम्बरजैनका खास अंक—गुजराती दिगम्बर जैनके सम्पादक श्रीयुक्त मूलचन्द कसनदासजी कापड़िया बड़े ही उत्साही और परिश्रमी युवक हैं। आपने इस वर्ष दीपमालिकाका बड़ा भारी

अंक प्रकाशित किया है। जैनियोंमें इस प्रकारका साहस करनेवाले सबसे पहले आप ही हैं। इस अंकके प्रकाशित करनेमें आपने बड़ा परिश्रम और बड़ा खर्च किया है। रायल अठपेजी साइजके १२० पृष्ठोंके सिवा इस अंकमें ५९ चित्र हैं! जैनसमाजके प्रायः सब ही विद्वानों, धनवानों, त्यागियों, ब्रह्मचारियों भट्टारकों और जातिसेवकोंके चित्र इसमें आ गये हैं। जैन बोर्डिंग स्कूल बम्बई, अहमदाबाद, कोल्हापुर, श्राविकाश्रम आदि संस्थाओंके भी कई फोटू हैं। कव्हर पेज बहुत ही सुन्दरताके साथ तीन रंगसे छापा गया है और उसपर मोहरसका संसारस्वरूप–दर्शक चित्र भी दिया गया है। लेख हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंगरेजी संस्कृत और प्राकृत इन छह भाषाओंके प्रकाशित किये गये हैं। हिन्दी और अंगरेजीके चार चार, मराठीके तीन, संस्कृतके दो, प्राकृतका १ और गुजरातीके २९ लेख हैं। अंगरेजीके लेख मि० हर्वट वारन, मि० जुगमन्दरलाल एम. ए, मि० लट्ठे एम. ए., और मि० पी. वी. जगदीश अय्यर एम. ए. (मद्रास) इन चार विद्वोनोंके लिखे हुए हैं। इनके सिवा और एक दो लेखोंको छोड़कर कोई लेख महत्त्वके नहीं। इतने बड़े और कीमती अंककी यह कमी हमको बहुत खटकी। अच्छे लेखोंके संग्रहकी ओर चित्रोंसे भी अधिक ध्यान देना चाहिए था। सम्पादकीय लेखोंकी हिन्दी भी अच्छी नहीं। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि अबसे दिगम्बर जैनमें हिन्दीके भी लेख रहा करेंगे; परन्तु इससे भी अधिक खुशी तब होगी, जब वे अच्छी हिन्दीमें निकलेंगे। इस अंकका मूल्य सिर्फ एक रुपया है। प्रत्येक जैनीको यह अंक मँगाना चाहिए और सम्पादक महाशयके परिश्रमको सफल करना चाहिए।

उपहारके ग्रन्थ—दिगम्बर जैनके ग्राहकोंको उक्त दीपमालिकाके अंकके सिवा उसके उत्साही सम्पादकने इस वर्षके उपहारमें दो ग्रन्थ और भी दिये हैं। एक मनोरमा और दूसरा हनुमानचरित्र। पहला ग्रन्थ हिन्दी मनोरमा उपन्यासका गुजराती अनुवाद है-और दूसरा ग्रन्थ हिन्दीका है। इसे खंडवाके श्रीयुक्त सुखचंद पदमसा पोरवाड़ने लिखा है। हनुमानजीकी कथा संक्षेपमें सरल भाषामें लिखी गई है। भाषा भी बुरी नहीं। दिगम्बर जैनका वार्षिक मूल १॥) है।

शिवसतसई—गवर्नमेंट हाईस्कूल अजमेरके अध्यापक पं० शिवदत्त काव्यतीर्थने इस पुस्तकको लिखी है। इसमें हिन्दीके विविधविषयक ७०० दोहे हैं जो संस्कृतके अनेक सुभाषित और नीतिग्रन्थोंके श्लोकोंकी छाया लेकर रचे गये हैं। दोहे शिक्षाप्रद, सरल और सुन्दर हैं। मूल्य चार आना। मिलनेका पता पं० रामदत्त शर्मा, हेडपण्डित, मिशन हाईस्कूल, अजमेर।

स्वामी विवेकानन्दका पत्रव्यवहार—लेखक, पं० लक्ष्मीधरवाजपेयी, सम्पादक हिन्दी चित्रमयजगत् और प्रकाशक, कुँवर हनुमन्तसिंह, राजपूत एंग्लो ओरियंटल प्रेस, आगरा। मूल्य छह आना। इस पुस्तकमें सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विवेकानन्दजीके उन पत्रोंका संग्रह है जो उन्होंने अपने मित्रों तथा परिचित जनोंको लिखे थे। इन पत्रोंको यदि हम कर्मवीरोंके विजयगीत, परार्थपरताके आदर्श और वर्तमानयुगके मार्गदर्शक कहें तो अत्युक्ति न होगी। पत्रोंका प्रत्येक वाक्य बहुमूल्य और निरन्तर स्मरण रखने योग्य है। प्रत्येक भारतमाताके सुपूतको ये पत्र पढ़ने चाहिए।

हिन्दी सरल और सुन्दर है। इन पत्रोंके कुछ अंशोंको हम इस अंकमें प्रकाशित करते हैं।

भाग्यवती—पंजाबमें कोई ३०–३९ वर्ष पहले पं० श्रद्धारामजी नामके एक बड़े भारी विद्वान् हो गये हैं। संस्कृत, फारसी, उर्दू, पंजाबी आदि भाषाओंके पण्डित होनेके सिवा आप हिन्दीके एक अच्छे कवि और लेखक थे। हिन्दीमें आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। आपका सत्यामृतप्रवाह नामका ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है कि आपके विचार बहुत ही स्वाधीन और नवीन युगके अनुरूप थे। एक सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके अस्तित्वमें आपको विश्वास न था। वेदोंको भी आप ईश्वरीय ग्रन्थ न मानकर पुराने समयके साधारण ग्रन्थ मानते थे। इन बातोंका आपने अपने ग्रन्थमें बड़ी योग्यतासे प्रतिपादन किया है। आपका चरित्र भी बहुत विशद और परोपकारपूर्ण था। इसके कारण आप राजा प्रजा आदि सबहीके प्रीतिभाजन हुए थे। यह भाग्यवती नामकी पुस्तक भी आपकी लिखी हुई है। इसमें एक मनोरंजक कथाके सहारे स्त्रियोपयोगी शिक्षायें दी गई हैं। भाषा सरल है। साधारण पढ़ी लिखी स्त्रियां भी इसे समझ सकती हैं और अपने चरित्रको सुन्दर बना सकती हैं। पंजाबकी कन्या पाठशालाओंमें यह बहुत समयसे प्रचलित है और भी कई प्रान्तोंमें इसका प्रचार है। इसे पं०जीकी विधवा पण्डिता महताबकौरने पांचवीं बार छपाई है। मूल्य ॥।) । मिलनेका पता—स्वामी तुलसीदेव, हरिज्ञान मन्दिर, लाहौर।

दिल्हीदरबार—इस पुस्तकको 'जैन' के सम्पादक श्रीयुक्त भगूभाई फतेहचन्द कारभारीने लिखकर प्रकाशित की है। इसकी

भाषा गुजराती है। पिछले देहलीदरबारका इसमें सविस्तर वर्णन दिया है। महाराज पंचम जार्जका जीवनचरित, देहलीका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास, पिछले दो दरबारोंका वर्णन, राज्याभिषेक विधि आदि प्रायः सब ही जानने योग्य बातोंका इसमें संग्रह है। भाषा सरल और मार्जित है। प्रारंभमें महाराज और महाराणीका सुन्दर चित्र है। रायल सोलहपेजी साइजके लगभग ३५० पृष्ठोंकी जिल्द बँधी हुई पुस्तकका मूल्य एक रुपया कुछ अधिक नहीं। जो भाई गुजराती समझ सकते हैं और दरबारका इतिहास जानना चाहते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मिलनेका ठिकाना—एन. एम. त्रिपाठी एण्ड कम्पनी, कालबादेवी—बम्बई।

आत्मावबोधकुलक—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जयशेखरसूरि नामके एक प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। यह ग्रन्थ भी उन्हींकी कृति है। इसमें ४१ गाथायें हैं और उनमें आत्मबोध कराया गया है। शुद्ध आत्माका विचार होनेके कारण इस ग्रन्थको तीनों सम्प्रदायके अध्यात्मप्रेमी पढ़ सकते हैं। गाथाओंके नीचे संस्कृत छाया, फिर उनका गुजराती अर्थ और अन्तमें खूब विस्तारके साथ विवेचन (गुजराती) किया गया है। विवेचन करनेवाले सुप्रसिद्ध लेखक और वक्ता पं० फतेहचन्द कर्पूरचंद लालन हैं। आपका विवेचन क्या है एक लम्बा चौड़ा भाष्य है जिसमें आपने अपने सारे अध्यात्मिक विचार भर दिये हैं। भाष्य बिलकुल नई पद्धतिका है और उसमें जगह जगह पाश्चात्य विचारोंकी झलक पाई जाती है। हमारी समझमें इस ग्रन्थके स्वाध्यायसे प्रत्येक अध्यात्मप्रेमीको प्रसन्नता होगी। डेमी अठपेजी साइजके १०० से अधिक

पृष्ठोंकी साधी पुस्तकका मूल्य ।≈) और पक्की जिल्दवालीका ॥)
है। मिलनेका पता—" मेसर्स मेघजी हीरजी एण्ड कम्पनी, बुक-
सेलर, पायधूनी बम्बई।"

इनके सिवा जैनबोर्डिंग हाउस बिजनौर और लाहौर, भा०
तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई, दि० जै० प्रा० सभा बम्बई, जैनसिद्धान्त-
भवन आरा, जैनश्राविकाश्रम बम्बई, भारतीभवन, फीरोजाबाद,
आदि संस्थाओंकी वार्षिक रिपोर्टें, अजमेरके शास्त्रार्थका विवरण,
वर्धा बोर्डिंगकी नियमावली आदि पुस्तकें भी हमारे पास आई हैं
जिन्हें हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। स्थानाभावके कारण हम इनकी
समालोचना न कर सके।

विविधसमाचार।

झालरापाटनमें चन्दा—ऐलक पन्नालालजीके केशलोंचके
समय झालरापाटनमें ३० हजार रुपयेका चन्दा हुआ। सुनते हैं
इस द्रव्यसे वहां एक पाठशाला खोली जायगी।

दो विद्वानोंकी मृत्यु—इस मासमें दो प्रसिद्ध विद्वानोंकी मृत्यु
होगई—एक तो बंगलाके प्रसिद्ध लेखक और 'देशकी बात' आदि
पुस्तकोंके रचयिता पं० सखाराम गणेश देवस्करकी और दूसरी
सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० मोहनलान विष्णुलाल पाण्ड्याकी। इनकी
मृत्युसे देशको जो क्षति पहुंची है वह शीघ्र ही भरनेवाली नहीं।

ऋषभब्रह्मचर्याश्रम—हस्तिनापुरका अधिवेशन खूब धूमधाम-
से हुआ। लगभग छह हजार रुपयेका चन्दा होगया।

कर्नाटक प्रान्तमें प्रतिष्ठामहोत्सव—मूडबिद्रीके समीप शिर-
ताडी ग्राममें आगामी ७ फरवरीसे २१ फरवरी सन् १९१३ तक

मन्दिरप्रतिष्ठा और पञ्चकल्याणक महोत्सव होगा। श्रीमान 'देव-राज सेमित' नामके सेठ यह उत्सव करावेंगे और तौलव देशके सब ही प्रतिष्ठित और विद्वान् पुरुष पधारेंगे। दक्षिण कनड़ा जैन-सभाके अधिवेशन होंगे। इस ओरसे जानेवालोंको मंगलूर स्टेशन-पर उतरना चाहिए। वहां सवारीका प्रबन्ध रहेगा।

बड़वानीका मेला—ता० १९ जनवरीसे २२ जनवरी सन् १९१३ तक बड़वानी सिद्धक्षेत्रका मेला होगा। अनेक विद्वा-नोंके पधारनेकी आशा है। आर. एम. रेलवेके मऊ स्टेशनसे यह स्थान ४० मील दूर है। सवारियां सब तरहकी मिलती हैं।

आवश्यकता—दिगम्बर जैन बोर्डिंग स्कूल वर्धाके लिए एक सुयोग्य सुपरिन्टेन्डेंट, एक रसोइया और १९ विद्यार्थियोंकी आव-श्यकता है। इस विषयमें बोर्डिंगके सेक्रेटेरी श्रीयुक्त जयचन्द्र श्राव-णेसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

लेखकोंको पारितोषिक—मरुदेवी, वामादेवी, त्रिशला, ब्राह्मी-सुन्दरी, सीता, द्रौपदी, चेलना, राधिका, मन्दोदरी, अंजनासुन्दरी, मनोरमा और मैनासुन्दरी इन १२ पौराणिक स्त्रियोंके जीवनचरित्र नवीन शैलीसे लिखनेवालोंको प्रत्येक उत्तम चरित्रके पीछे पांच रुपया पारितोषिक दिया जायगा। लेख ३१ जनवरी १९१३ तक "बाबू देवेन्द्रप्रसादजी जैन, हिन्दू कॉलेज बोर्डिंग नं० २, बनारस" के पतेसे भेजना चाहिए।

स्वाधीनता ।

तत्त्ववेत्ता जॉन स्टुअर्ट मिलकी लिबर्टीका हिन्दी अनुवाद ।

तत्त्ववेत्ता जॉन स्टुअर्ट मिल ।

सरस्वतीसम्पादक पं० महावीप्रसादजी द्विवेदीकृत

स्वाधीनता।

अंगरेजी लिबर्टीका हिंदी अनुवाद

और

जॉन स्टुअर्ट मिलका विस्तृत जीवनचरित।

शिक्षित समाजमें बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होंनें प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जॉन स्टुअर्ट मिलका नाम न सुना हो। इंग्लेंडके सरस्वतीमन्दिरमें मिल साहबका आसन बहुत ही ऊंचा और प्रतिष्ठित है। वे बड़े प्रौढ, सत्यप्रिय, और स्वाधीनचेता विद्वान् थे। उन्होंने बडे बड़े गहन विषयोंके ग्रन्थ लिखे है। उनके ग्रन्थोंके प्रभावसे इंगालिस्तानमें अनेक उपयोगी सामाजिक और राजनैतिक सुधार किये गये थे। उनकी कलममें आश्चर्यकारिणी शक्ति थी। यों तो उनके सब ही ग्रन्थ अपूर्व हैं; परंतु उनमे 'लिबर्टी' का सबसे अधिक मान है। अगरेजी साहित्यमे स्वाधीनताके तत्त्वोंका प्रतिपादन करनेवाला यह अद्वितीय ग्रन्थ है। इसकी भाषा बड़ी ही ओजस्विनी है; पर साथ ही रसमयी और साफ है। विचार-शृङ्खला और सिद्धान्त प्रतिपादनकी शैली बहुत ही सुन्दर है। मिल साहबने अपने सिद्धान्तोंको ऐसे उत्कट प्रमाणो और उदाहरणोसे प्रतिपादित किया है कि उन्हे विवश होकर स्वीकार करना ही पड़ता है। इसे पढ़कर अगणित आदमियोंके विचारोमें बड़ा भारा परिवर्तन हुआ है। प्रसिद्ध विद्वान् चार्ल्स किंगस्ले (Charles Kingsley) ने इस पुस्तकको जब पढ़ना आरंभ किया तब वे ऐसे तल्लीन हुए कि समाप्त करके ही उठे। उन्होंने कहा था कि "इस ग्रन्थके अध्ययनेन मुझे एक परिवर्तित मनुष्य बना दिया।" उनपर इसका प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि वे उसी समयसे एक दूसरे मनुष्य हो गये।

यह 'स्वाधीनता' उसी प्रभावशाली ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ मार्मिक लेखक पण्डित महावीर-प्रसादजी द्विवेदी है। आपका अनुवाद कैसा हुआ होगा, हिन्दीके पाठकोंको इसका परिचय देनेकी आवश्यकता नही। इस ग्रन्थकी समालोचनामें प० व्येकटेश नारायण त्रिपाठी, एम्. ए. ने लिखा है—"ऐसी पुस्तकका हिन्दीमें अनुवाद करना एक बहुत ही बडा काम है। इस कार्यको सफलताके साथ करनेके लिये हिन्दीसाहित्य ससारमे द्विवेदीजी ही ऐसे विद्वानका काम था। इतने गहन और क्लिष्ट ग्रन्थके अनुवाद करनेमे मिलके भावको ठीक ठीक, सरल, शुद्ध और साथ ही साथ सुपाठय भाषामे प्रगट करना कोई आसान बात नही। जिस खूबी और योग्यतासे द्विवेदीजीने ऐसे दुस्तर कार्यको किया है उसके लिये हम सब आपके बडे ही कृतज्ञ है। द्विवेदीजीमे नवीन शब्दरचनाकी शक्ति असाधारण, लेखन चातुरा अपूर्व, भाषापाण्डित्य और सस्कृतमे प्रवीणता असामान्य है। इस लिये कोई आश्चर्य नही कि मिलकी पुस्तकके अनुवाद करनेमें द्विवेदीजीको इतनी कामयाबी हुई।......अनुवाद बहुत ही सरल और सुबोध है। .. द्विवेदीजीने इस पुस्तकका अनुवाद करके हिन्दीसाहित्यका और देशका जो उपकार किया है, वह बहुत बडा है। यह उपकार हमारे हृदयोमे चिरस्थायी रहेगा। यदि द्विवेदीजाने इस स्वाधीनताके अनुवादको छोडकर और कोई साहित्यसेवा न की होती, तो भी उन्होंने बडा भारी काम किया था, क्योंकि हिन्दी ससारमे ऐसी पुस्तकका प्रकाशित होना एक बडे मार्केकी बात है। इसके पूर्व कि ऐसे गहन और क्लिष्ट ग्रन्थ लिखे जाय, हिन्दीसाहित्यकी उन्नति और पढनेवालोकी विचारशक्ति और रुचिमें बहुत ही परिवर्तन होनेकी आवश्यकता है। स्वाधीनताका प्रकाशन हिन्दीसाहित्यकी वृद्धिका एक बडा चिह्न है। हर एक हिन्दी-हितैषीको प्रफुल्लित होना चाहिये।

जिन सिद्धान्तोका विवेचन इस ग्रन्थमे किया गया है इस समय उनके प्रचारकी बडी भारी जरूरत है। जिन्होने इस ग्रन्थको पढा है उनका विचार है कि इसके सिद्धान्तोको सोनेके अक्षरोमे लिखवाकर प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखना चाहिये। क्योंकि इस देशमें अन्धपरम्प-

राका ही एक मात्र सन्मान और आदर है। विचारकी स्वतंत्रता और व्यवहारकी स्वाधीनताका हमारा समाज सख्त विरोधी है। प्रचलित रीति रवाजोंके जो दास हैं समाजमें उनकी प्रशंसा है; परंतु जो इस दासत्वको स्वीकार नहीं करते और सोच विचारकर काम करते हैं उनके भाग्यमें समाजकी गालियां खाना ही बदा है। समाज चाहता है कि व्यक्ति सिर्फ लकीरका फकीर ही बना रहे, अपनी बुद्धि और विचार-शक्तिको सत्यकी खोज और सत्यके पालनमें कदापि काममें न लावे। इससे हमारी उन्नतिमें कितनी बाधा पड़ रही है, इसे प्रत्येक विचारशील समझ सकता है। इस बड़ी भारी बाधाको दूर करनेके लिये स्वाधीनताके सिद्धान्तोंके प्रचारकी बड़ी भारी आवश्यकता है। इस लिए इस ग्रन्थकी प्रत्येक घर और प्रत्येक पुस्तकालयमें प्रतिष्ठा होनी चाहिये।

इस ग्रन्थके साथमें तत्त्ववेत्ता मिलका लगभग ६० पृष्ठव्यापी विस्तृत जीवनचरित भी दिया गया है। मिल जैसे महात्माके जीवनचरितसे पाठकोंको कितनी शिक्षायें मिलेंगी इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। यह जीवनचरित स्वयं मिलके लिखे हुए 'आत्मचरित' के आधारसे लिखा गया है। हिन्दीमें इस प्रकारका शायद यह पहला ही जीवन-चरित हो।

ग्रन्थके साथमें जा० स्टु० मिल और पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीके दो सुन्दर चित्र भी है। छपाई सुन्दर, जिल्द मजबूत कपड़ेकी और मनोहर, पृष्ठ संख्या ४००। मूल्य सिर्फ दो रुपया। डांकखर्च जुदा।

आशा है हिन्दीहितैषी इस सर्वांगसुन्दर ग्रन्थकी एक एक प्रति मंगाकर हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे जिससे हम इसी प्रकारके और भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ छपाकर प्रकाशित कर सकें।

ग्रन्थ मिलनेका पता—

मैनेजर, जैन-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

नववां भाग] मार्गशीर्ष, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [दूसरा अंक.

जैन लाजिक (न्याय)।

(४)

उमास्वाति (ई० सन् १—८५)

१६. जैनसिद्धान्तमें सात तत्त्व माने गये हैं:—१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बन्ध, ५ संवर, ६ निर्जरा और ७ मोक्ष। तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार—जिसको उमास्वाति नामके एक आचार्यने भाष्यसहित बनाया है—ये तत्त्व प्रमाण द्वारा समझमें आ सकते हैं जो इस सूत्रमें सम्यग्ज्ञानके कारण और नयके अर्थमें लाया गया है।

१७. ये उमास्वाति 'वाचकश्रमण' नामसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इनको 'नागर-वाचक' भी कहते थे और अत्यन्त सम्भव है कि यह पद उनकी शाखाका सूचक है। हिन्दूसिद्धान्तकार माधवाचार्य उनको उमास्वातिवाचकाचार्य कहते हैं। ४८ वर्ष ८ मास और

१. देखो सर्व दर्शनसंग्रहमें जैनदर्शन।

६ दिवसकी उनकी आयु हुई और सम्वत् १४२ अर्थात् ईस्वीसन् ८९ में उन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया। तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उमास्वाति अपने विषयमें लिखते हैं कि मैं न्यग्रोधिक नामक ग्राममें पैदा हुआ था किन्तु तत्त्वार्थाधिगमसूत्रको मैंने कुसुमपुर या पाटली पुत्र (जिसको आजकल पटना कहते हैं) में लिखा। मैं कौभीषणि

---

२. न्यग्रोधिकाप्रसूतेन विहरता पुरवरे कुसुमनाम्नि ।
कौभीषणिना स्वातितनयेन वात्सीसुतेनार्घ्यम् ॥ ३ ॥
अर्हद्वचनं सम्यग्गुरुक्रमेणागतं समुपधार्य्य ।
दुःखार्तं च दुरागमविहतमतिं लोकमवलोक्य ॥ ४ ॥
इदमुच्चैर्नागरवाचकेन सत्वानुकम्पया दृब्धम् ।
तत्त्वार्थाधिगमाख्यं स्पष्टमुमास्वातिना शास्त्रम् ॥ ५ ॥
(तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, अध्याय १०, पृष्ठ २३३।)

इसी तरहका हाल सिद्धसेनगणिकी तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी टीकामें पाया जाता है। यह हाल पिटर्सन साहबने संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थोंकी ४ थी रिपोर्टके पृष्ठ १६ में लिखा है। उमास्वातिके विषयमें विशेष जाननेके लिए पिटर्सन साहबकी संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थोंकी चौथी रिपोर्टके पृष्ठ १६ को देखो। जहां वे लिखते हैं कि डाक्टर हर्नल द्वारा इन्डियन एण्टिकेरीमें जो दिगम्बरपट्टावली प्रकाशित हुई है उसमें उमास्वामी(जो सम्भव है कि उमास्वाति ही हैं)कुन्दकुन्दाचार्य और द्वितीय लोहाचार्यके बीचमें सरस्वतीगच्छमें छठे दिगम्बरसूर्य माने गये हैं। डाक्टर हर्नलके मतानुसार (देखो सरस्वती गच्छकी २ पट्टावली, डाक्टर हर्नलकी इण्डियन एण्टिकेरीकी अक्टूबर सन् १८९१ की २० वीं जिल्दके पृष्ठ ३५१ में) उमास्वाति सन् ४४ ई० में हुए और ८४ वर्ष, ८ मास, ६ दिवस तक जीवित रहे। डाक्टर हर्नल यह भी लिखते हैं कि काष्ठासंघ उमास्वामीके समयमें ही प्रकट हुआ। (पर यह ठीक नहीं।—**सम्पादक**)

उमास्वातिके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, पूजाप्रकरण, जम्बूद्वीपसमास, और प्रशमरति ये ग्रन्थ एशियाटिक सोसायटी बंगाल, कलकत्ता, द्वारा एक जिल्दमें प्रकाशित हो गये हैं जिनके अन्तमें इस प्रकार है:—

कृतिः सिताम्बराचार्यस्य महाकवेरुमास्वातिवाचकस्य इति ।

गोत्रमें हूं। मेरे पिता स्वाती थे और इसी कारण कभी २ मुझे स्वातितनय कहते हैं। मुझको वात्सीसुत भी कहते हैं कारण कि मेरी माता उमा वत्सगोत्रकी थी। जिनप्रभसूरिके तीर्थकल्पमें यह लिखा है कि उमास्वाति ५०० संस्कृत प्रकरणोंके रचयिता थे। कहते हैं कि वे श्वेताम्बर आम्नायके थे। यद्यपि इस पुस्तकके दूसरे पैरेके अनुसार यह सम्भव है कि श्वेताम्बर दिगम्बरका भेद उस समयतक प्रकट भी न हुआ था।

१८. परोक्ष व प्रत्यक्षज्ञान—यह ऊपर लिखा जा चुका है कि तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें प्रमाण सम्यग्ज्ञानके व सम्यग्ज्ञानके कारण-के अर्थमें आता है। पहले अर्थमें इस सूत्रके अनुसार प्रमाण दो प्रकारका है:—१ परोक्षज्ञान जो इन्द्रियोंकी सहायतासे प्राप्त होता है। २ प्रत्यक्षज्ञान जो विना इन्द्रियोंकी सहायताके स्वयं प्राप्त होता है। परोक्षज्ञानमें मतिज्ञान व श्रुतज्ञान शामिल हैं, कारण कि ये ज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायतासे प्राप्त होते हैं। अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान जो योगसे होते हैं, प्रत्यक्षज्ञान हैं[1]। क्योंकि ये विना किसी प्रकारकी इन्द्रियोंकी सहायताके प्राप्त होते हैं।

१९. उमास्वातिका मत है कि अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव, सम्यग्ज्ञान (प्रमाण) के पृथक् २

---

१. मन और इन्द्रियोंकी सहायतासे विद्यमान पदार्थोंका जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। युक्ति और अध्ययनसे भूत, भविष्यत्, वर्तमान पदार्थोंका जो ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। उन चीजोंके ज्ञानकी जिनको हम इन्द्रियों और मन द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते अवधिज्ञान कहते हैं। दूसरोंके मनमें तिष्ठते हुए पदार्थोंको जानना मनःपर्ययज्ञान है। सकलप्रत्यक्ष अव्या-बाध पूर्ण ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं।

कारण नहीं हैं। वे इनको परोक्षज्ञानमें गर्भित करते हैं। इनके मतानुसार इनमें अधिकतर इन्द्रियों और पदार्थोंके सन्निकर्षके निमित्तसे हैं और कुछ प्रमाणके भेद हैं ही नहीं।

२०. यह बात ध्यान देने योग्य है कि उमास्वाति और अन्य पूर्वके जैनसिद्धान्तकारोंके अनुसार सर्व इन्द्रियजनक ज्ञान परोक्ष हैं। आत्मा उनको स्वयं ग्रहण नहीं करती; किन्तु इन्द्रियों द्वारा ही प्राप्त करती है। इस तरह परोक्ष व प्रत्यक्ष शब्दोंका इन सिद्धान्तकारोंने उससे बिलकुल विपरीत प्रयोग किया है जो आधुनिक ब्राह्मण व जैन न्यायमें किया जाता है—अर्थात् जैन-शास्त्रोंमें इसको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

२१. नय—नय उसे कहते हैं जो पदार्थोंमें रहनेवाले अनेक धर्मोंको भिन्न भिन्न अपेक्षासे वर्णन करें। इसके ५ भेद हैं:—नैगम संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और शब्द।

---

१. तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके प्रथम अध्यायके १२ वें सूत्रकी टीकामें उमास्वाति कहते है कि:—"अनुमानोपमानागमार्थापत्तिसम्भवाभावानपि च प्रमाणानीति केचिन्मन्यन्ते तत्कथमेतदिति अत्रोच्यते। सर्वाण्येतानि मतिश्रुतयोरन्तर्भूतानि इन्द्रियार्थसन्निकर्षनिमित्तत्वात्॥" (तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, पृष्ठ १५) तत्त्वार्थाधिगमसूत्रके १-६ की टीकामें उमास्वाति कहते हैं:-"चतुर्विधमित्येके" (तत्वार्थाधिगमसूत्र पृ. ९) १-३५ की टीकामें चार प्रमाणोंके विषयमें इस प्रकार कहते हैं कि:-"यथा वा प्रत्यक्षानुमानोपमानाप्तवचनै. प्रमाणैरेकोऽर्थ. प्रमीयते स्वविषयनियमात् न च ता विप्रतिपत्तयो भवन्ति तद्वन्नयवादा इति।" (तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० ३५) वे चार प्रकारके प्रमाण वही मालूम होते हैं जो हिन्दू नैय्यायिक अक्षपाद गौतमके न्यायसूत्रमें कहे गये है; किन्तु यही ४ प्रमाण धनपतसिंहद्वारा कलकत्तेमें प्रकाशित जैनियोंके स्थानांगसूत्रके पृ० ३०९ में हेतुके उपभेदोंमें कहे गये हैं।

२. नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दाः नयाः॥ १-३४॥
(तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० ३२)

२२. नैगम—नैगम वह नय है जो पदार्थके सामान्य विशेष दोनों गुणोंको समझावे और उन दोनोंमें कोई भेद नहीं। जैसे 'बांस।' जब हम इस शब्दको कहते हैं तो हम बहुतसे गुणोंको जाहिर करते हैं, जिनमेंसे कुछ खास बांसमें ही जाते हैं और शेष इसमें और अन्य वृक्षोंमें सामान्यतया पाये जाते हैं। हम इन दो प्रकारके गुणोंमें कोई भेद नहीं करते।

२३. संग्रह—वह नय है जो केवल सामान्य गुणोंको ही कहे और विशेषको बिलकुल न कहे।

२४. व्यवहार—वह नय है जो केवल विशेष गुणको ही कहें सामान्य विशेषके विना कुछ भी नहीं है। यदि आप किसीसे एक पौधा लानेके लिये कहें, तो वह किसी विशेष जातिका पौधा लायगा, सामान्य पौधा जिसकी कोई जाति न हो नहीं ला सकता।

२५. ऋजुसूत्र—वह नय है जो अतीत और अनागत इन दोनों पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करे। किसी पदार्थकी भूत भविष्यत् पर्यायपर विचार करना बिलकुल निरर्थक है। उसकी वर्तमान समयकी अवस्थाका विचार करनेसे ही सब काम निकल सकते हैं। जैसे किसी व्यक्तिसे जो पूर्व जन्ममें मेरा पुत्र था किन्तु अब किसी जगह राजकुमार हुआ है मुझे कुछ लाभ नहीं है। ऋजुसूत्र नय केवल भावको ग्रहण करता है और इसके अतिरिक्त नाम, स्थापना, द्रव्य, किसीको ग्रहण नहीं करता। गवालेको इन्द्र कहनेसे वह वास्तवमें इन्द्र नहीं हो सकता। राजाकी मूर्ति राजाके कार्य नहीं कर सकती। वे कारण जो मुझमें विद्यमान हैं और जो मुझे पुनर्जन्ममें दूसरे शरीरमें ले जायँगे अब मुझको उस शरीरसम्बन्धी सुख भोगनेके योग्य नहीं बना सकते।

२६. शब्द—वह नय है जो यथार्थ अभिधान कराता है।[1] इसके तीन भेद हैं—पहला साम्प्रत, दूसरा समभिरूढ, तीसरा एवंभूत। संस्कृतमें घड़ेको घट, कुम्भ अथवा कलश कहते हैं और ये पर्यायवाची शब्द हैं। शब्दको उसके प्रसिद्ध अर्थमें प्रयोग करनेको साम्प्रत कहते हैं, चाहे वह अर्थ उसकी व्युत्पत्तिसे न निकलता हो। जैसे शत्रु, इस शब्दकी व्युत्पत्तिसे इसके अर्थ नाश करनेवालेके हैं; परन्तु इसके प्रसिद्ध अर्थ दुश्मनके हैं। समभिरूढ नय पर्यायवाची शब्दोंमें ठीक ठीक भेद करता है और हरहालतमें उस शब्दको ग्रहण करता है जो व्याकरणके अनुसार बिलकुल ठीक ठीक लगता हो। एवम्भूतनय पदार्थोंको ऐसी संज्ञा देता है जैसी उनकी वास्तविक दशा होती है। जैसे किसी पुरुषको उस समय तक शक्र न कहना चाहिए जब तक उसमें ऐसी शक्ति न हो जो इस नामसे प्रकट होती है। (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.।

१. उमास्वाति १–३५ की टीकामें कहते हैं कि—"यथार्थाभिधानं शब्दः। नामादिषु प्रसिद्धपूर्वाच्छद्वात् अर्थे प्रत्ययः साम्प्रतः सत्सु अर्थेषु असंक्रमः समभिरूढः। व्यञ्जनार्थयोरेवम्भूत इति॥" (तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ३२)

अभिनन्दनपत्र[1]।

(१)

जिनधर्मका मर्मज्ञ औ, विस्तारकर्त्ता कौन है ?
नि:स्वार्थतासे धर्म-सेवा,—कार्य करता कौन है ?
पर-वादमें स्याद्वादका, झंडा उड़ाता कौन है ?
सत्पक्षके सम्मुख न धनको, सिर झुकाता कौन है ?

(२)

प्राचीन और नवीन मतका, प्रवर पण्डित कौन है ?
वक्तृत्व—लेखन—वाद—आदिक, कलामण्डित कौन है ?
इत्यादि प्रश्नोंका सदुत्तर, यही मिलता एक है।
" गोपालदास सुधीबरैया-वंश-भूषण एक है ॥

(३)

अत एव इस प्रान्तिकसभाने, हृदयके उल्लाससे।
कर्तव्यपालनके लिए, निजभक्तिभावविकाशसे ॥
यह वर्णमय लघुभेट, सम्मुख की उपस्थित आपके।
स्वीकार हो हे प्राज्ञवर, आगार सुगुण-कलापके ॥

(४)

'स्याद्वादवारिधि' शुभ इसी, उपनामके वर योगको।
अपनाइए औ कीजिए, महनीय इस संयोगको ॥
समझें न पर कुछ आपका, हमने किया सत्कार है।
केवल हमारी भक्तिका, यह आन्तरिक उद्गार है ॥

---

१ यह अभिनन्दनपत्र दि० जै० प्रा० स० बम्बईके द्वारा उसके इसी अधिवेशनमें न्यायवाचस्पति पं० गोपालदासजी बरैयाको समर्पण किया गया था।

(५)

बढ़ता न वारिधि-मान, उसको यदि जगत् वारिधि कहे ।
वह तो बड़ा है स्वयं ही, कोई कहे या ना कहे ॥
इस ही प्रकार अपार है, स्याद्वादविद्या आपमें ।
'स्याद्वादवारिधि' पद अपेक्षित, है न उसके मापमें ।

(६)

परहित-निरत हो इस सभाकी, जड़ जमाई आपने ।
चिरकाल श्रमजल सींचकर, ऊंची बनाई आपने ॥
यह आपकी है वस्तु, इसको भूलिएगा मत कभी ।
केवल यही करते निवेदन, नम्र होकर हम सभी ॥

जीवन-संगीत ।

(१)

"वृथा जन्म इस जगमें अपना, सपनासा है जीवन, यार
कौन तुम्हारा, तुम हो किसके, झूठे पिता पुत्र परिवार ॥"
अहो कहो मत मित्रवरो तुम कातर होकर ऐसी बात ।
वे गँवार हैं जो यों कहकर रोया करते हैं दिन-रात ॥

(२)

उत्तम करनी बिना न मिलता धरणीपर नर-देह पवित्र ।
सबसे श्रेष्ठ यही है चोला, ऐसा और न पाओ मित्र ॥
झूठे दृश्य बाहरीमें तुम भूलो नहीं, कहा लो मान ।
निर्भय-यत्न किये जय पाओ, 'जीव नित्य है'-यह सच जान ॥

(३)

सुखकी आशा धरो नहीं, पा दुःख निराशा परो नहीं ।
हैं उद्देश्य न ये जीवनके, इनकी चिन्ता करो नहीं ।
कालचक्र-कृत सुख-दुख फिरते चक्र—नेमिके क्रमसे रोज।
सोचो तो, दुख कौन सहेगा ? सुखकी तो हम करते खोज ॥

(४)

जग—उन्नति—हित हो संसारी, करो निरन्तर अपना काम।
बुरी बातसे मुँहको मोड़ो, छोड़ो छलको आठों याम ॥
उदय—अस्त हो—होकर दिनकर करते जीवन छिन छिन छीन ।
'गया समय फिर हाथ न आवे'—जान न चूकें पुरुष प्रवीन ॥

(५)

शिथिल शरीर नहीं हो जबतक, रहे इन्द्रियोंमें कुछ सार ।
तबतक कर लो देश-भलाई, अपनी उन्नति, जाति-सुधार ॥
बल, सम्पत्ति, सहायक, सम्बल;—काल करे सबका संहार ।
क्षणभंगुर जीवनमें कुछ तो कीर्ति कमा लो, कर उपकार ॥

(६)

कर्मभूमिमें आकर बनिए कर्मवीर होकर निश्शंक ।
होता यश-कल्याण सुकृतसे, बुरे कर्ममें कष्ट-कलंक ॥
जन्म मरणकी चिन्ता छोड़ो, रुके न रोकेसे भी काल ।
महिमा मिले न, पैर पसारे, इससे सीखो सुखद सुचाल ॥

(७)

इस तनके लालन-पालनमें फँसकर विषय-वासना बीच ।
अन्धकारमय करे 'भविष्यत' जो कोई वह है अति नीच ॥

चिन्ता कर कातर होनेसे, होनेका है नहीं सुधार ।
वे दिन फेर फिरानाँ है तो करो सत्य संकल्प उदार ॥

(८)

अपना अपना काम करो सब, भजो भक्तिसे इष्ट प्रधान ।
सावधान होकर व्रत साधो, साधु बनो जैसे जापान ॥
होंगे ही संकल्प सिद्ध सब, स्वावलम्बपर करो विचार ।
कल्प कल्प तक सुयश तुम्हारा गावेगा सारा संसार ।

(९)

बड़े लोग जिस पथपर चलकर हुए आज प्रातःस्मरणीय ।
लक्ष्य बनाओ वही राह तो होगे तुम भी आदरणीय ॥
चरण-चिन्ह निज कर दो अंकित समय-समुद्र-किनारे शीघ्र ॥
उन्हें लक्ष्य कर और लोग भी आवेंगे यश-द्वारे शीघ्र ॥

(१०)

देखो चंचल योगी जन भी पाते हैं न कभी परमार्थ ।
जो प्रण करो, पूर्ण कर डालो, है पुरुषोंका यह पुरुषार्थ ॥
यह अमूल्य जीवन न गँवाओ वृथा स्वार्थमें होकर अन्ध ।
नीति-रीतिसे प्रीति करो बस पढ़कर मेरा प्रौढ़ प्रबन्ध ॥

रूपनारायण पाण्डेय ।
(कमलाकर)
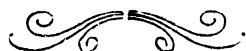
समुद्रयात्रा ।

हमारे देशमें समुद्रयात्राका आन्दोलन ठीक वैसा ही है जैसा कि समुद्रका आन्दोलन ! समाचारपत्रोंके वाक्योच्छ्वासोंसे उसमें फेन उठ रहा है और पुस्तकोंकी लेख-लहरोंसे वह खूब ही चंचल हो रहा है—परस्परके आघात प्रतिघातोंकी भी कमी नहीं है ।

झगड़ा केवल इसी बातपर चल रहा है कि समुद्रयात्रा शास्त्रसे सिद्ध है या विरुद्ध; परन्तु यह कोई नहीं पूछता कि समुद्रयात्रा अच्छी है या बुरी । क्योंकि हमारी समझमें जो बात अन्य विचारोंसे अच्छी है अथवा जिसमें किसी प्रकारकी बुराईका सम्बन्ध नहीं, हो सकता है कि वह शास्त्रमतसे अच्छी न हो । हम इस बातको जोर देकर नहीं कह सकते कि जिसमें हमारा कल्याण है, हमारे शास्त्रोंका विधान भी वही है । यदि हम ऐसा कह सकते तो उस कल्याणकी ओरसे युक्तियोंको खींच कर शास्त्रोंके साथ मिला देते । पहले हम दिखलाते कि अमुक कार्य हमारे लिए कल्याणकारी है और पीछे दिखलाते कि उसमें हमारे शास्त्रोंकी सम्मति है ।

समुद्रयात्रा उपकारी है इसके सहस्रों प्रमाण मौजूद रहनेपर भी यदि शास्त्रमें उसके विरुद्ध एक भी वाक्य मिल जाय तो वे सब प्रमाण व्यर्थ हैं । इसका मतलब यही है कि हम लोगोंके पास सत्यकी अपेक्षा वचन बड़ा है और मानवीय शास्त्रके सामने प्राकृतिक शास्त्र व्यर्थ है ।

ऐसा भी नहीं है कि सब जगह शास्त्र ही बलवान् हो । बहुतेरे कहते हैं कि हमारे ऋषियोंमें ऐसी अलौकिक बुद्धि थी कि उनके निर्धा-

रित किये हुए शास्त्रोंके विधान हम अन्य समस्त प्रमाणोंकी अवहेलना करके, अंधविश्वासके साथ, निर्भय होकर पालन करते जा सकते हैं; किन्तु देखते हैं कि समाजमें अनेक मौकोंपर शास्त्रविधियों और ऋषिवाक्योंका भी उल्लंघन किया जाता है और उस समय लोकाचार और देशाचारकी दोहाई दी जाती है।

इससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि शास्त्रविधि अभ्रान्त नहीं है। यदि होती तो लोकाचार जब उसे किसी तरह व्यर्थ करता तो उसे दोषी ठहरना उचित था। और यदि लोकाचारको शास्त्रविधि संशोधनका भार दिया जाता है, तो फिर शास्त्रविधिकी अमोघता नहीं रहती। इससे साफ मानना पड़ता है कि शास्त्रशासन सब जगह और सब कालमें नहीं चलता। यदि ऐसा है तो हमारे कर्तव्योंको निर्धारित करनेवाला कौन है? बुद्धि भी नहीं और शास्त्रवाक्य भी नहीं, क्या केवल एक लोकाचार? परन्तु उसे राह बतलानेवाला कौन है? क्योंकि लोकाचार अभ्रान्त नहीं है इसके शास्त्रोंमें सहस्त्रों प्रमाण मौजूद हैं। यदि लोकाचार अभ्रान्त होता तो पृथ्वीमें न तो इतने विप्लव होते और न इतने संस्कारकोंका अभ्युदय होता।

जिस लोकसमाजमें जीवनप्रवाह नहीं होता, उसमें जड़ लोकाचार अपने आपको संशोधित नहीं कर सकता। प्रवाहका जल तो सदैव बहते रहनेके कारण अपने दूषित अंशको धीरे धीरे दूर कर देता है; किन्तु बद्धजलमें दोषोंका प्रवेश हो जानेसे वह उसे संशोधित नहीं कर सकता—उसमें दोष बढ़ते ही जाते हैं।

हमारा समाज बद्धसमाज है। एक तो वह आभ्यन्तरीय सहस्त्रों नियमोंसे बद्ध है, दूसरे अंगरेजी आइनोंने उसे चारों ओरसे जकड़

रक्खा है। स्वदेशी राजाओंको समाजसंशोधनका स्वाभाविक अधिकार था और प्राचीन कालमें वे लोग इस कार्यको करते भी थे, किन्तु अनधिकारी अंगरेजोंने हमारे समाजको जिस अवस्थामें अपने हाथोंसे पकड़ा ठीक उसी अवस्थामें वे अब भी मजबूतीके साथ पकड़े हुए हैं। वे न तो स्वयं ही कोई नया नियम प्रचलित करनेका साहस करते हैं और न बाहरसे ही किन्हीं नियमोंको प्रवेश करने देते हैं। कौन कार्य करने योग्य है और कौन नहीं, यह उन्होंने अन्धभावसे निर्दिष्ट कर दिया है। इस कारण हमारे समाजको इस समय कोई स्वाभाविक सचेतन शक्ति सहज ही परिवर्तित नहीं कर सकती।

ऐसी जकड़ी हुई समाजमें लोकाचारको मानना, मानो एक मृतदेवताकी पूजा करना है। उसे एक निश्चल, निश्चेष्ट जड़—कङ्काल समझना चाहिए जो न कुछ सोचता है, न अनुभव करता है और न समयानुसार परिवर्तन करनेकी आवश्यकता समझ सकता है। उसमें इधर उधर हिलनेकी भी शक्ति नहीं। सारी हतभाग्य जाति और उसके उपासक यदि उसके सामने पड़कर प्राण देनेको भी तैयार हो जाँय तो भी वह उन्हें कल्याणमार्गकी ओर उँगली उठाकर नहीं दिखला सकता।

जो लोग शास्त्रोंसे सामग्री एकत्रित करके, लोकाचारके ऊपर आघात करनेकी चेष्टा करते हैं, वे मानो मरे हुएको मारना चाहते हैं। जिसे वेदना बोध नहीं होती; उसपर हथियार चलाते हैं—और जो अंधा है उसे दीपक दिखलाते हैं। फलतः हथियारोंकी धार मुड़ जाती है और दीपशिखाका प्रकाश व्यर्थ जाता है।

एक बात और भी जाननेे योग्य है कि शास्त्र भी एक समयका लोकाचार है। वह अन्य समयके लोकाचारको अपने पक्षमें

सम्मिलित करके वर्तमान लोकाचारपर आक्रमण करना चाहता है। वह कहता है कि प्राचीन कालमें समुद्रयात्राके लिए कोई रुकावट न थी। वर्तमान लोकाचार कहता है कि तब न थी तो न सही, अब तो है। बतलाइए, इसका क्या उत्तर है?

यह तो एक शत्रुके पंजेसे छूटनेके लिए दूसरे शत्रुको बुलाना हुआ! मुगलोंके हाथसे बचनेके लिए पठानोंके हाथ आत्मसमर्पण करना इसीको कहते हैं! जिसमें कुछ भी निजकी शक्ति है वह ऐसे विपत्तिके खेल नहीं खेलना चाहता।

हम लोगोंमें क्या निजकी कुछ भी शक्ति नहीं है? हमारे समाजमें यदि किसी दोषका संचार हो, या उसकी कोई व्यवस्था हमारी सम्पूर्ण जातिके उन्नतिपथमें विघ्नस्वरूप होकर अपने पाषाणरूपी मस्तकको ऊपर उठावे, तो उसे दूर करनेके लिए क्या हमें पहले यह खोजकर निकालना होगा कि बहुत प्राचीन कालमें उसकी कोई निषेधविधि थी या नहीं? दैवात् यदि पाई गई तो कुछ दिनोंके लिए तो पंडितों पंडितों, और शास्त्रों शास्त्रोंमें एक देशव्यापी आन्दोलन उठ खड़ा होता है-और यदि दैवात् उसके विरुद्ध एक भी अनुस्वार विसर्गयुक्त वचन न मिला, तो क्या हम ऐसे निरुपाय हैं कि जातिकी सम्पूर्ण कमी और दोषोंको शिरोधार्य करके उसका भार वहन करते रहें और यहां तक कि उसे पवित्र कहके उसकी पूजा करते रहें? क्या प्राचीन होनेसे दोष भी पूजनीय होजाते हैं?

क्या हम अपनी कर्तव्यबुद्धिके बलसे अपना सिर उठाकर यह नहीं कह सकते कि पहले क्या था और अब क्या है, इसके जाननेकी हमें जरूरत नहीं। हम तो हमारे समाजमें जो दोष हैं उन्हें दूर करेंगे और जो हमें कल्याणकारी कार्य जँचेंगे उनका आव्हान करेंगे।

अपने शुभाशुभ ज्ञानको तो हाथ पैर तोड़कर लंगड़ा बना डालना और जब कोई बड़ी भारी आवश्यकता आ पड़े—देशके एक महान् अनिष्टको दूर करना हो, तब सारे पुराणों और संहिताओंसे एक वचन—खंडको ढूंढ़नेके लिए आकुल व्याकुल होते फिरना! क्या और भी किसी देशमें समाजकी हानिलाभका विचार करनेवाले नव युवकोंमें इस तरहके बाल्यखेल प्रचलित हैं?

हमारी धर्मबुद्धिको सिंहासनच्युत करके उसकी जगह जिस लोकाचारको बिठाया है वह इतना मूढ़ और अंध है कि अपने नियमोंकी भी ठीक ठीक रक्षा नहीं कर सकता। एक ओर तो हजारों हिन्दू यवनोंके जहाजमें चढ़कर उड़ीसा मद्रास और सिंहल आदिका भ्रमण कर आते हैं; परन्तु उनके विषयमें कोई चूं भी नहीं करता; परन्तु इस ओर यह कहके कि समुद्रयात्रा विधिसंगत नहीं है लोग चीत्कार मचाते हैं। देशमें सैकड़ों मनुष्य अभक्ष्य और यवनोंका अन्न खा रहे हैं—और खुली तौरसे यवनोंके हाथकी बनाई हुई मदिरा पीते हैं तो भी लोग इसकी ओर आंख उठाकर नहीं देखते; परन्तु विलायत जानेसे अनाचार बढ़ जायगा इस आशंकासे वे सदैव शंकित रहते हैं? पर यहां युक्तियां देना निष्फल है। जिसके नेत्र हैं उसे ये सब बातें उसकी आखोंमें अंगुली देकर दिखानेकी आवश्यकता नहीं। इस लोकाचार नामक जड़ मूर्तिके मस्तकके भीतर मेधाशक्ति तो है ही नहीं, वह तो एक निश्चल पाषाण सरीखी है। कौएको भय दिखानेके लिए जिस तरह कृषक लोग खेतमें हंडीको रँगकर टाँग देते हैं—लोकाचार भी उसी तरह की रँगी हुई हंडी है। जो उसके जड़त्वको जानता है वह उसे तुच्छ समझ कर उससे घृणा करता है

और जो उससे डरता है भयसे उसकी कर्त्तव्यबुद्धि पलायन कर जाती है।

आजकल अनेक पुस्तकों वा समाचारपत्रोंमें हमारे वर्तमान लोकाचारके अनेक दोष दिखलाए जाते हैं। कहा जाता है कि एक ओर तो हम लाचार या अंध होकर न जाने कितने अनाचार करते हैं और दूसरी ओर सामान्य आचार विचारोंको लेकर ही ही रातादिन झगड़ा करते हैं; तथा बालकी खाल निकाला करते हैं: परन्तु जब हम सोचते है तब हँसी आती है कि ये सब बातें किससे कही जा रही हैं? बच्चे गुड़ियोंके साथ भी तो इसी तरह बातचीत करते हैं! कौन कहता है कि लोकाचार युक्ति अथवा शास्त्रके आधारपर प्रचलित हुआ है? वह स्वयं भी तो ऐसा बड़ा अपराध स्वीकार नहीं करता! तब उससे युक्तिकी बातें क्यों कही जाती हैं?

समाजमें जो जो परिवर्तन हुए हैं वे विना युक्तिके ही साधित हुए हैं। गुरुगोविन्दसिंह और चैतन्यने जब, इस जातिबंधनसे जकड़े हुए देशमें जातिभेदको शिथिल किया तब उन्होंने उसे युक्तिबलसे नहीं चरित्रबलसे किया था।

"समुद्रयात्रासे उपकार है, मनु-संहिताका निषेध भारतवासियोंको सदैवके लिए विना कारण पृथ्वीके एक अंशमें कैद रखना चाहता है, यह कैदकी आज्ञा बिलकुल अन्याय और अनिष्टजनक है, देश विदेशमें जाकर ज्ञान अर्जन करने और उन्नतिके लिए कोई भी प्राचीन विधि हम लोगोंको वंचित नहीं रख सकती, हमें इस समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वीपर भ्रमण करनेका अधिकार है"—हम लोगोंका यदि ऐसा मत हो तो फिर हमें और कुछ सुननेकी जरूरत नहीं—कोई भी श्लोकखंड हमको भय नहीं दिखा सकता और कोई भी लोकाचार हमें नहीं रोक सकता।

बाँध भी टूट गया है। अब शास्त्र और लोकाचारका मुँह-ताककर कोई भी नहीं बैठा रहता। भारतमाताके झुंडके झुंड सन्तान समुद्र पार जाने लगे हैं और बलहीन समाज उनका कुछ भी प्रतिबंध नहीं कर सकता है।

जब समाजका प्रधान बल, नीतिबल चला गया है, तब लोग अधिक दिन तक उसका भय नहीं मान सकते। जो समाज मिथ्या और कपटको क्षमा करता है, अर्धगुप्त अनाचारोंको जानकर और सुनकर भी नेत्र बंद रखता है, जिसके नियमोंमें कोई नैतिक कारण तथा कोई युक्ति नहीं है वह समाज नितान्त दुर्बल है। समाजके समस्त विश्वास यदि दृढ़ होते और उन विश्वासोंके अनुसार वह वह अपने समस्त कामकाज नियमित करता तो उसका उल्लंघन करना अवश्य ही बहुत कठिन होता।

जो लोग अपनी शुभ बुद्धिका भरोसा न रख केवल शास्त्रकी दोहाई देकर समुद्रयात्रा करना चाहते हैं, वे दुर्बल हैं। कारण कि उनके पक्षमें कोई युक्ति नहीं। यदि शास्त्रकी युक्ति दी जाय तो पहले ही कहा जा चुका है कि समाज शास्त्रके अनुसार चलता नहीं।

लोकाचार समुद्रयात्राका निषेध एक विशेष प्रयोजनसे करता है। हिन्दू समाजके अनेक नियमोंका परस्पर दृढ़ सम्बन्ध है। एकके टूटनेसे दूसरा भी भँग हो सकता है। रीत्यानुसार स्त्री-शिक्षा प्रचलित करनेसे बाल्यविवाहके नियमको तोड़ना पड़ता है, बाल्यविवाहकी रीति उठानेसे क्रमशः स्वाधीन विवाहकी पद्धति आती है, स्वाधीन विवाहके प्रचलित होनेसे समाजका बड़ा भारी रूपान्तर होना अवश्यम्भावी हो जाता है और जातिभेदकी जड़

क्रमशः जीर्ण होने लग जाती है; परन्तु ऐसा सोचकर क्या अब कोई स्त्री-शिक्षाको बंद कर सकता है?

समुद्रलंघन करके विदेशयात्रा करना भी हमारे वर्तमान समाजकी रक्षाके लिए सर्वथा अनुकूल नहीं है। हमारे समाजमें किसी तरहकी स्वाधीनताका अवसर नहीं है। वह चाहता है कि हम निश्चेष्ट, निश्चल और अंधभावसे समाजके अंधकूपमें सदैव इसी रूपसे पड़े रहें—मृत्युके समान दूसरी शान्त अवस्था नहीं है। उसी अगाध शान्ति-लाभके लिए जहां तक सम्भव है हमारी जीवनशक्ति लुप्तकी जाती है। एक समग्र बड़ी जातिको भलीभांति निश्चेष्ट और निर्जीव बना डालनेके लिए कुछ थोड़ा आयोजन नहीं करना पड़ता। कारण कि मनुष्यत्वके भीतर एक अमर जीवनका बीज पड़ा हुआ है। यदि किसी छिद्रके द्वारा स्वाधीन सूर्यका प्रकाश और वृष्टिधारा उस बीज तक पहुंच गई तो वह फिरसे अंकुरित, पल्लवित तथा विकशित होनेकी चष्टा करने लगता है। इसी भयसे हमारा हिन्दूसमाज कहींसे भी कोई छिद्र नहीं रखना चाहता। इसमें सन्देह नहीं है कि समुद्रयात्रासे नये नये देशोंकी नयी नयी सभ्यताका आदर्श लेकर हमारे विचारोंका बन्धन टूट जायगा। जिन सब नियमोंको हम विना संशयके सदासे पालते आरहे हैं—जिनके विषयमें कभी तर्क और शंकाओंको स्थान नहीं मिला, उनके विपयमें नाना प्रकारकी युक्तियों, तर्कनाओं और सन्देहोंका उदय होगा और यही मानसिक आन्दोलन हिन्दूसमाजके लिए सबसे अधिक भयकी बात है। बाहरसे तो म्लेच्छ-संसर्ग और समुद्र—उल्लंघनकी कुछ परवा नहीं, परन्तु अभ्यन्तरमें स्वाधीन-मनुष्यत्वका संचार होना ही यथार्थमें लोकाचारके विरुद्ध है।

यह कैसे दुःखकी बात है कि हम समुद्रोल्लंघन न भी करें, तो भी मनुसंहिताकी आज्ञा अन्य जातियोंको समुद्रका उल्लंघन करनेसे नहीं रोक सकती। नये ज्ञान, नये आदर्श, नये विश्वास और नये सन्देह जहाजोंमें लद लदकर हमारे यहां आ रहे हैं, पर उन्हें कोई नहीं रोकता। वास्तवमें हमने शुरूसे ही गलती की। समाज रक्षाके लिए यदि हमें इतना भय था तो हमें उचित था कि पहलेहीसे यत्नपूर्वक अंगरेजी शिक्षाको रोकते। पर्वतको मुहम्मदके पास जानेका निषेध तो कर दिया, परन्तु यदि मुहम्मद ही पर्वतके पास पहुंच जावे तो इसका क्या उपाय? हम इंग्लेंड तो न जांयगे; किन्तु अंगरेजी शिक्षा तो हमारे घर घरमें प्रवेश कर रही है। इसीसे तो कहते हैं कि बांध टूट गया। मूलमें आघात न पहुंचता तो जो आज इतनी वाक्यचातुरी और शास्त्रसंधानकी धूम मच रही है, इसकी कुछ भी आवश्यकता न होती।

मूढ़ लोकाचार ऐसा अंध और कपटाचारी है कि वह इस ओर देखता तक नहीं। कट्टरसे भी कट्टर हिन्दू अपने पुत्रको बाल्यकालसे अंगरेजी पढ़ाता है और यहांतक कि मातृभाषाको भी नहीं सिखलाता। जब शिक्षाप्रचारकसमितिमें यह प्रस्ताव रक्खा जाता है कि विश्वविद्यालयोंमें मातृभाषाकी शिक्षा रक्खी जाय तब इस देशके लोग ही इसका सबसे अधिक विरोध करते हैं!

क्लर्की न करनेसे पेट नहीं भरता। परीक्षा पास करनी ही पड़ती है। पास न करनेसे नौकरी चूल्हेमें जाय, विवाह करना भी दुःसाध्य हो जाता है। हमारे देशमें अंगरेजी शिक्षाकी मर्यादा ऐसी जड़ पकड़ गई है।

किन्तु यह कैसा भ्रम और कैसी दुराशा है कि अंगरेजी शिक्षासे हम केवल उतना ही सीखें जितनेसे कि हमारी क्लर्कगीरी चल

जाय–शेष बातें हमारे अन्तरंगमें प्रवेश न कर पावें ! यह क्या कभी हो सकता है ? दीपशिखा केवल प्रकाश ही नहीं करती; बत्तीको जलाती है और तेलको शेष करती है। अंगरेजी शिक्षा केवल बड़ी बड़ी नौकरियां ही नहीं देती है, किन्तु लोकाचारके सूत्रोंको भी पलपलमें भस्म करती है।

जितने दिनोंतक यह शिक्षा चलेगी और जबतक इस शिक्षापर हमारी जीविका अवलम्बित रहेगी, तबतक शास्त्रके निषेध और भय चाहे जितने क्यों न दिखलाए जायँ; पर भारतवासी समुद्रपार जायँगे, और पृथ्वीके समस्त उन्नतिपथके यात्रियोंके साथ यात्रा करनेकी जी जानसे चेष्टा करेंगे।*

शिवसहाय चौबे,

देवरी–सागर।

नोट—इस लेखको पाठक खूब ध्यान देकर पढ़ें। यह एक बड़े नामी विद्वानका लिखा हुआ है। इसमें समुद्रयात्राके विषयमें शास्त्राज्ञाओं और लोकाचारकी उपेक्षा करके अपनी शुभाशुभ बुद्धिसे विचार करनेपर जोर दिया गया है। अर्थात् यदि हम अपनी विचारशक्तिसे यह समझ सकते हैं कि समुद्रयात्रासे लाभ है–उसमें कोई बुराई नहीं–हमारे श्रद्धान और चारित्रमें कोई दोष नहीं लग सकता, तो उसके करनेमें कोई हर्ज नहीं–और शास्त्र प्रमाण ढूंढ़नेकी तथा लोकाचारसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं। इस लेखमें जो जगह जगह शास्त्रविधिको उपेक्षणीय बतलाया है, उससे पाठक धार्मिक या तात्त्विक शास्त्र न समझ लेवें। लेखकका अभिप्राय उन शास्त्रोंसे है जो लौकिक बातोंका विधि निषेध करते हैं। ऐसे शास्त्र अपने अपने समयके लोकाचार हैं। उनमें परिवर्तन हुआ ही करता है। उन्हें स्थिर–शास्त्र समझ लेना भूल है। प्रत्येक कार्यको अच्छा बुरा प्रतिपादन करनेवाली मनुष्यकी शुभाशुभविचारशक्ति है और यह निश्चय है कि वह आप्तप्रणीत व्यापक शास्त्रोंसे अविरुद्ध ही होती है। जो कार्य अच्छा है,

---

* कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके एक बंगलालेखका अनुवाद।

शास्त्र उसे कभी बुरा नहीं कह सकता और अच्छे कार्यको जो बुरा बतलाता है, उसे शास्त्र ही नहीं कहना चाहिए। संसारमें बहुतसे ऐसे नये नये कार्य होते हैं, जो पहले नहीं होते थे। अब यदि आप उनके लिए शास्त्रोंमें आज्ञा ढूंढ़ते फिरेंगे तो कहांसे मिलेगी ? ऐसे कामोंके विषयमें हमें अपनी बुद्धिसे सोच लेना चाहिए कि ये वास्तवमें अच्छे हैं या बुरे और शास्त्रोंके इस प्रकारके व्यापक वचनोंसे उनके अच्छे बुरेपनका निश्चय कर लेना चाहिए। जैसे कि सोमदेवसूरिने कहा है कि जिन कामोंमें श्रद्धान और चारित्रमें दोष नहीं लगता वे सब लौकिक विधियां मान्य हैं। यह संतोषकी बात है कि जैन-ग्रन्थोंमें समुद्रयात्राका कहीं निषेध नहीं है–प्रत्युत इसी प्रकारके बहुतसे प्रमाण मिलते हैं कि पहलेके श्रावक जहाजोंमें बहुत दूर दूरके देशोंमें जाते थे। फिर अब क्यों न जाना चाहिए ? हमारी बुद्धि भी समुद्रयात्रामें कोई दोष नहीं देखती।

-सम्पादक

कर्नाटक–जैन–कवि।

(गतांकसे आगे।)

४०. अग्गल—समय ईस्वी सन् ११८९। इसके पिताका नाम शान्तीश, माताका पोचांबिका, और गुरुका श्रुतकीर्ति त्रैविद्य था। यह कवि मूलसङ्घ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्दान्वयमें हुआ है। इंगलेश्वर नामके ग्राममें इसका जन्म हुआ था। इसके जैनजनमनोहरचरित, कवि-कुल-कलभ-व्रातयूथाधिनाथ, काव्य-कर्णधार, भारती-बालनेत्र, साहित्यविद्याविनोद, जिनसमय-सरस्सार-केलि-मराल और सुललितकवितानर्तकीनृत्यरंग आदि विरद थे। इसके एक पद्यसे मालूम होता है कि यह किसी राज-दरबारका प्रसिद्ध कवि था। इसका बनाया हुआ एक चन्द्रप्रभपुराण ही मिलता है। इस ग्रन्थमें आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभका चरित लिखा गया

है। मद्रास लायब्रेरीमें जो बिलगी नामक स्थानका शिलालेख है उससे मालूम होता है कविने यह ग्रन्थ अपने गुरु श्रुतकीर्ति त्रैविद्यदेवकी आज्ञासे लिखा था। ग्रन्थकी रचनाका समय शक संवत् १०११ हैं, ऐसा उसके एक पद्यसे मालूम होता है। इस ग्रन्थकी भाषा बहुत ही प्रौढ और संस्कृत-पद-बहुल है। ग्रन्थमें १६ आश्वास हैं और प्रत्येक आश्वासके अन्तमें निम्नलिखित गद्य है—" इति परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूत—प्रवचनसरित्सरिन्नाथ—श्रुतकीर्तित्रैविद्यचक्रवर्ति—पदपद्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गलदेवविरचिते चन्द्रप्रभचरिते—" आच्चण्ण, देवकवि, अण्डय्य, कमलभव, बाहुबलि और पार्श्व आदि कवियोंने अपने ग्रन्थोंमें इस कविकी प्रशंसा की है।

४१. **आच्चण्ण**—समय ई० स० ११९५। यह कवि भारद्वाजगोत्री जैन ब्राह्मण था। इसके पिताका नाम केशवराज, माताका मल्लाम्बिका, गुरुका नन्दियोगीश्वर[1] और ग्रामका पुरीकरनगर (पुलगिर) था। इसके पिता केशवराजने और रेचण नामके सेनापतिने जो कि वसुधैकबान्धवके नामसे प्रसिद्ध था वर्द्धमानपुराण नामक ग्रन्थका प्रारंभ किया था; परन्तु दुर्दैवसे उनका शरीरान्त हो गया और तब उक्त ग्रन्थको आच्चण्णने समाप्त किया। इस कविकी पार्श्वकविने अपने पार्श्वनाथ पुराणमें जो कि १२०५ में रचा गया है प्रशंसा की है। इससे स्पष्ट है कि यह १२०५से पहले हो गया है और इसने अपने पूर्वकालीन कवियोंकी स्तुति करते समय अग्गल कविकी जो कि ११८९ में हुआ है प्रशंसा की है, इससे यह ११८९ के पीछे हुआ हैं। इसके सिवा रेचणचमूपति कलचूरि

---

१ मद्रासके प्राच्यकोशालयके एक शिला लेखसे मालूम होता है कि नन्दियोगीश्वर ११८९ में मौजूद थे।

राजाका मंत्री था और शिलालेखोंसे मालूम होता है कि आहव-मल्लके (११८१–११८३) के और नवीन हयशालवंशके वीरं-वल्लाल (११७२–१२१९) के समयमें भी वह जीवित था। इससे इस कविका समय ११९९ के लगभग निश्चित होता है। वर्द्ध-मान पुराणमें महावीर तीर्थंकरका चरित्र है। इसमें १६ आश्वास हैं। इसकी रचना अनुप्रास यमक आदि शब्दालंकारोंसे युक्त और प्रौढ है। इस कविका और कोई ग्रन्थ नहीं मिलता।

४२. **बालचन्द्र कविकन्दर्प**—समय ई० स० १२०० के लगभग। जन्नकवि (१२०९) के लेखसे मालूम होता है कि यह उसकी पत्नी लकुमादेवीका गुरु था। इसके पिताका नाम सकलचन्द्र और गुरुका माधवचन्द्र था। जन्न और पार्श्व कविकी उक्तियोंसे मालूम होता है कि यह एक प्रसिद्ध कवि था; परन्तु इसका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं।

४३. **बन्धुवर्म**—इसके विषयमें सिवा इसके कि यह वैश्य जातिका था और किसी बातका पता नहीं लगता। इसके बनाये हुए हरिवंशाभ्युदय और जीवसम्बोधन नामके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। पहला ग्रन्थ गद्यपद्यमय है और उसके १४ आश्वास हैं। दूसरा ग्रन्थ पद्यमय है और उसके १२ अध्यायोंमें अध्रुव अशरण आदि बारह भावनाओंका वर्णन है। इसकी रचना ललित और नीति–वैराग्यमय है। कमलभव नामक कविने जो कि १२३५ में हुआ है उसकी प्रशंसाकी है, इससे यह १२३५ के पहले १२०० के लगभग हुआ होगा।

४३. **काशियण्ण**—यह कवि ई० स० १२०० के लगभग हुआ है। इसका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं; परन्तु पार्श्वकविके

पार्श्वपुराणसे मालूम होता है कि इसने सिंहप्रायोपगमन नामका ग्रन्थ बनाया है।

४४. **वासुदेव**—समय ई० सन् १२०० । पार्श्वकविने कर्नाटक कवियोंका स्तवन करते समय इसका भी उल्लेख किया है, इससे जान पड़ता है कि यह एक प्रसिद्ध कवि था; परन्तु इसका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। महालक्ष्मीविरचित रामपट्टाभिषेकमें एक वासुदेव कविकी स्तुति की गई है। संभवतः यह वही वासुदेव होगा।

४५. **पार्श्वपण्डित**—समय ई० स० १२०५। यह सौंदत्तिके रट्टराजवंशीय राजा कार्तवीर्य चौथे (१२०२–१२२०) का सभाकवि था। इसने अपने एक पद्यमें कहा है कि कार्तवीर्यका पुत्र लक्ष्मणोर्वीय था। यह लक्ष्मणोर्वीय १२२९ में राज्य करता था। इसके सिवा बाम्बे रायल एशियाटिक सोसायटीके जर्नलमें जो एक शिलालेख प्रकाशित हुआ है, उसे पार्श्वकविने शक संवत् ११२७ अर्थात् ईस्वी सन् १२०५ में लिखा था। उसमें लिखा है कि कोण्डीमण्डलके वेणुग्राममें रट्टवंशीय राजा कार्तवीर्य जो कि मल्लिकार्जुनके सहोदर भाई थे राज्य करते थे और उन्होंने अपने मण्डलके आचार्य शुभचन्द्र भट्टारकके लिए उक्त ग्राम कररहित कर दिया था। यह शिलालेख पार्श्वकविका ही लिखा हुआ है। इसमें इस कारण और भी कोई सन्देह नहीं रहता कि कविने अपने पार्श्वपुराणमें जिस कविकुलतिलक विरदको अपने नामके साथ जोड़ी है, वही उक्त शिलालेखके भी अन्तिम पद्यमें लिखी है। इससे इसका समय १२०५ के लगभग निश्चित होता है। सुकविजनमनोहर्षशस्यप्रवर्ष, विबुधजन–मनःपद्मिनीपद्ममित्र, कविकुलतिलक आदि इसके प्रशंसा–सूचक उपनाम थे। इसका

बनाया हुआ एक पार्श्वनाथपुराण नामका ग्रन्थ ही उपलब्ध है। यह गद्यपद्यमय ग्रन्थ है। इसके १६ आश्वास हैं। इसके प्रारंभमें पार्श्वजिनकी स्तुति करके कविने सिद्धसेनसे लेकर वीरनन्दि पर्यन्त गुरुओंकी और फिर पंप, पोन्न, रन्न, धनंजय, भूपालदेव, अच्चण्ण, अग्गल, नागचन्द्र, वोप्पण, आदि पूर्व कवियोंकी स्तुति की है। कविने अपने इस ग्रन्थकी स्वयं चार पद्योंमें प्रशंसा की है। अकलंकभट्टने अपने शब्दानुशासनमें (१६०४) में इस ग्रन्थके बहुतसे पद्य उदाहरणस्वरूप संग्रह किये हैं।

४६. **कल्लय्य**—यह लक्ष्मरसका पुत्र था। इसने बीर बल्लाल राजाके समयमें (१२०६) में चित्रदुर्गका २३ वां शिलालेख लिखा है। उससे मालूम होता है कि यह एक अच्छा कवि था।

४७. **जन्न**—समय ई० स० १२०९। इसका जन्म कम्मे नामक वंशमें हुआ था। इसके पिताका नाम शंकर और माताका गंगादेवी था। शंकर हयशालवंशीय राजा नरसिंहके यहां कटकोपाध्याय (युद्धविद्याका शिक्षक?) था। गंगादेवीके गुरु काणूरगणके रामचन्द्रदेव नामक मुनि थे जो माधवचन्द्रके शिष्य थे। रामचन्द्रदेव जगदेकमल्लके दरबारके कटकोपाध्याय थे। ये जन्नके गुरु नागवर्मके भी गुरु थे। जन्नकवि सूक्तिसुधार्णव ग्रन्थके कर्त्ता मल्लिकार्जुनका बहनोई और शब्दमणिदर्पणके कर्त्ता केशिराजका भानजा था। यह चोल कुलके नरसिंहदेव राजाके यहां सभाकवि सेनानायक और मंत्री भी रहा है। यह बड़ा भारी धर्मात्मा था। इसने किलेकल दुर्गमें अनन्तनाथका मन्दिर और द्वारसमुद्रके विजयी पार्श्वनाथके मन्दिरका महाद्वार बनवाया था। यशोधरचरित, अनन्तनाथपुराण और शिवायस्मरतन्त्र नामके तीन ग्रन्थ इसके रचे हुए मिलते हैं।

विनोद-विवेक-लहरी।

[१]

मधुर गीत।

किसीने एक सुन्दर गीत गाया। बहुत कालसे भूले हुए सुख-स्वप्नकी तरह इस मधुरगीतने मेरे कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश किया। यह इतना मधुर क्यों मालूम हुआ? वास्तवमें गीत तो बहुत सुन्दर नहीं है। पथिक रास्ता चलता हुआ अपने आप ही गाता जा रहा है। चाँदनी रात देखकर उसके हृदयका आनन्द उमड़ पड़ा है। उसका कंठ स्वभावहीसे मधुर है। इस मधुमासमें वह अपने कण्ठसे अपने मानसिक सुखकी मधुरताको विकीर्ण करता हुआ जा रहा है। तब जिस तरह सितारसे अंगुलिका स्पर्श होते ही वह झनझना उठती है, उसी प्रकार इस गीतध्वनिने मेरे हृदयको क्यों आलोडित कर दिया?

क्यों, इसका उत्तर कौन देगा? चाँदनी रात है। नदीकी रेतमें चाँदनी हँस रही है। अर्द्धावृता सुन्दरीकी नीली साड़ीके समान शीर्णशरीरा और नील-सलिला तरंगिनी रेत-राशिको वेष्टित करके चली जा रही है। राजमार्गपर मूर्तिमान् आनन्द दिखलाई देता है। बालक बालिकायें, युवक युवतियां, प्रौढ़ा और वृद्धायें निर्मल चन्द्रकिरणोंसे स्नात होकर आनन्दित हो रही हैं। केवल मैं ही एक आनन्दरहित हूं—जान पड़ता है कि इसी कारण इस गीतसे मेरा हृदययन्त्र बज उठा है।

मैं अकेला हूं, इसी लिए इस गीतसे मेरा शरीर रोमाञ्चित हो गया है। इस बहुजनसंकुल नगरीमें इन आनन्दमय बहुजन—स्रोतों-में मैं अकेला हूं। मैं सोचता हूं कि मैं इन अनन्तजन—स्रोतोंमें मिल-

कर–इस आनन्दतरङ्गताडित अनन्त जलबुब्दुदोंके बीचमें और एक बुब्दुद क्यों न हुआ ? एक एक बिन्दु जल मिलकर ही तो समुद्र बना है; मैं जलबिन्दु हूं, तब इस समुद्रमें क्यों नहीं मिल जाता ?

यह मैं नहीं जानता। केवल यही जानता हूं कि मैं अकेला हूं। किसीको अकेला न रहना चाहिए। यदि कोई तुम्हारा प्रणयभागी न हुआ, तो समझ लो कि तुम्हारा जन्म व्यर्थ गया। फूल सुगन्धित होते हैं; किन्तु यदि कोई उनका सूंघनेवाला न होता तो उन्हें सुगंधित न कह सकते। क्यों कि सूंघनेकी शक्तिके अभावमें सुगन्धि है ही क्या ? फूल अपने लिए नहीं फूलते हैं। तुम अपने हृदय कुसुमको दूसरोंके लिए विकसित या प्रफुल्लित करो।

पर यह तो मैंने बतलाया ही नहीं कि यह केवल एक बार सुना हुआ गीत इतना मधुर क्यों मालूम हुआ। तो लो, इसका कारण सुन लो। मैंने बहुत दिनोंसे कोई आनन्दोत्थित गीत नहीं सुना था, बहुत दिनोंसे आनन्दका भी अनुभव नहीं किया था। युवावस्थामें जिस समय पृथिवी सुन्दर थी, जब मैं प्रत्येक फूलमें सुगन्धि पाता था, प्रत्येक पत्तेकी खड़कनमें मधुर शब्द सुनता था, प्रत्येक नक्षत्रमें चित्रा–रोहिणीकी शोभा देखता था और प्रत्येक मनुष्यके मुखपर सरलता देखता था, उसी समय आनन्द था। पृथिवी अब भी वही है, संसार अब भी वही है, मनुष्यचरित्र अब भी वही है, परन्तु यह हृदय अब वह नहीं है। उस समय गीत सुनकर जो आनन्द होता था, इस समय इस गीतको सुनकर उसी आनन्दका स्मरण हो आया। जिस अवस्थामें और जिस सुखमें उस आनन्दका अनुभव करता था, इस समय उसी अवस्था और उसी सुखकी

याद आ गई। थोड़ी देरके लिए मैंने फिर यौवन पा लिया, पह-लेकी तरह मन ही मन अपने बन्धु जनोंमें जा बैठा और पहले ही जैसी अकारण–संजात उच्च हँसी हँसने लगा। इस समय जिन बातोंको निष्प्रयोजन समझकर नहीं बोलता हूं, उस समय उन्हें चित्तकी निष्प्रयोजन चंचलताके कारण बोलता था। अब भी उसी तरह वे सब बातें कहने लगा और दूसरोंके प्रणयको अकृत्रिम हृदयसे अकृत्रिम समझकर मन ही मन ग्रहण करने लगा। इस तरह थोड़ी देरके लिए भ्रान्ति हो गई—पूर्वकी अवस्थाको वर्त-मानकी अवस्था समझने लगा, इसीलिए यह गीत इतना मधुर मालूम हुआ। उस समय गीत अच्छे लगते थे, पर अब नहीं लगते। चित्तकी जिस प्रफुल्लताके कारण वे अच्छे लगते थे, वह प्रफुल्लता अब नहीं है, इसी लिए अच्छे नहीं लगते। जिस समय मैं मनके भीतर मनको छुपाकर उस गये हुए यौवनसुखका विचार करता था, उसी समय इस पहलेकी याद दिलानेवाले गीतने कानोंमें प्रवेश किया, इस कारण यह इतना मधुर मालूम हुआ।

वह प्रफुल्लता और वह सुख अब कहां गया? क्या सुखकी साम-ग्रियां कम हो गई हैं? लाभ और हानि दोनों ही संसारके नियम हैं; परन्तु उसके साथ यह भी नियम है कि हानिकी अपेक्षा लाभ अधिक है। तुम अपने जीवनका मार्ग जितना ही अतिवाहित करोगे, सामग्री उतनी ही अधिक सञ्चय करोगे। तब अधिक उमर होनेसे स्फूर्ति क्यों कम हो जाती है? पृथ्वी वैसी सुन्दर क्यों नहीं दिख-लाई देती? आकाशके तारे वैसे क्यों नहीं चमकते? जो भूमि उस समय तृणपल्लवमय, कुसुमसुवासित, स्वच्छ नदीके तीरसे सिंचित

और वसन्तवायुसे धोई हुई जान पड़ती थी, वह अब रेतीली मरु-भूमिके समान क्यों मालूम होती है? केवल इस लिए कि हमारे सामनेसे रंगीन काच हट गया है। आशा ही वह रंगीन काच है। यौवनमें अर्जित सुख तो अल्प होता है; परन्तु सुखकी आशा अप-रिमित होती है। इस समय अर्जित सुख तो अधिक है; परन्तु वह ब्रह्माण्डव्यापिनी नहीं है! उस समय मालूम न था कि किससे क्या होता है, इसलिए अपरिमित आशायें करता था; परन्तु अब जान लिया है कि संसारचक्रपर चढ़कर जहांका तहां फिर लौटकर आना होगा। जिस समय सोचता हूं कि यह आगे बढ़ा, उस समय केवल चक्कर ही खाता हूं। इस समय समझा है कि संसारसमुद्रमें तैरना आरंभ करते ही; तरंगें मुझे धक्के दे देकर फिर किनारे-पर फेंक देंगीं। अब जाना है कि इस जंगलमें रास्ता नहीं है, इस प्रदेशमें जलाशय नहीं हे, इस नदीका पार नहीं है, इस सागरमें द्वीप नहीं है और इस अन्धकारमें तारे नहीं हैं। अब समझ लिया है कि फूलोंमें कीड़े हैं, कोमल पल्लवोंमें कांटे हैं, आकाशमें काले मेघ हैं, निर्मल नदीमें भैंारें हैं, फलोंमें विष है, बगीचोंमें सर्प हैं और मनुष्य-हृदयमें केवल अपना ही आदर है। अब जाना है कि सारे वृक्षोंमें फल नहीं होते, सारे फूलोंमें गन्ध नहीं होती, सारे मेघ बरसनेवाले नहीं होते, सारे वनोंमें चंदन नहीं होता, और सारे हाथियोंमें मोती नहीं होते। अब समझा है कि काच भी हीरेके समान उज्ज्वल है, पीतल भी सोनेके समान पीला है, कीचड़ भी चन्दनके समान स्निग्ध है, और कांसा भी चांदीके समान मधुर नाद करनेवाला है। पर अभी क्या कह रहा था, सो तो भूल ही गया। हां, याद आगई, गीतध्वनिकी बात थी! वह अच्छी तो लगी थी; परन्तु उसे फिर दूसरी बार नहीं

सुनना चाहता। जिस तरह वह मनुष्य कण्ठसे उत्पन्न हुआ संगीत है, उसी तरह संसारमें एक संगीत और है। उसे वे ही सुन सकते हैं जो संसार-रसके रसिया हैं। मेरा चित्त अब उसी संगीतके सुननेके लिए व्याकुल है। तो क्या अब गीत नहीं सुनोगे? सुनूंगा; परन्तु नाना प्रकारके बाजोंकी ध्वनिसे मिला हुआ और बहुतसे कंठोंसे निस्रत हुआ वह पहलेका सुना हुआ गीत अब नहीं सुनूंगा। क्योंकि न वे अब गानेवाले हैं, न वह उमर है और न वह आशा है। किन्तु उसके बदले जो सूनूंगा वह बहुत ही आनन्ददायक है। इस समय उस अनन्यसहाय एक मात्र गीतध्वनिसे मेरे कर्णविवर परिपूरित हो रहे हैं। जानते हो, वह कौनसा गीत है? सुनो, वह संसारका सर्वव्यापी संगीत प्रेम है। वह प्रेमगीत ही इस समय मेरे कानोंमें मधुर झंकार कर रहा है। मैं चाहता हूं कि समाजकी हृदयतंत्री इस महासंगीतसे अनन्त कालतक बजती रहे। यदि मनुष्य जातिपर मेरा प्रेम बना रहे, तो फिर मैं और सुख नहीं चाहता।

श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

१. बम्बईका रथोत्सवसमारम्भ।

बम्बईके रथोत्सवका मेला खूब धूमधामके साथ समाप्त होगया। भीड़ खासी थी। पंजाब, यू. पी, राजपूताना, मालवा, बुन्देलखंड, सी. पी., बरार, गुजरात और दक्षिण आदि सब ही प्रान्तोंके दर्शकोंने मेलेकी शोभा बढ़ाई थी। स्या० वा० पं० गोपालदासजी बरैया और उनकी शिष्यमण्डली, पं० बंशीधरजी शास्त्री, पं०

पासू गोपालशास्त्री, पं० कस्तूरचन्दजी, आदि पंडित; बाबु जुगमंदरलालजी बैरिस्टर–एट्ला, बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए., बाबू चेतनदासजी बी. ए., लाला सुलतानसिंहजी वकील (मेरठ), बाबू सूरजभानजी वकील, रायबहादुर बाबू लालविहारी वकील (सतना), मि० चवरे वकील (आकोला), मि० नेमिचन्दजी वकील (धाराशिव), मि० बालचन्दजी वकील (मोडनिम्ब-शोलापुर), मि० बालचन्द अभयचन्द बी. ए. बार्वीकर, मि० गोकुलचन्दजी वकील (दमोह) आदि ग्रेज्युएट; कुँवर दिग्विजयसिंहजी, बाबू चन्द्रसेनजी वैद्य, बाबा भगीरथजी वर्णी आदि धर्मप्रचारक; ऐलक पन्नालालजी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, आदि त्यागी; शेठ हीराचन्दनेमीचन्दजी, शेठ रामचन्दनाथाजी, सेठ हीराचन्द रामचन्द, कुँवर रामस्वरूपजी रानेवाले आदि धनिक, और दिगम्बरजैन, वन्दे जिनवरं, जैन वाग्विलास, सुमति, जैनरत्नमाला आदि पत्रोंके सम्पादक; इस प्रकार सब ही तरहके गण्यमाण्य पुरुषोंका इस अवसरपर समागम हुआ था। रथका जुलूस, गीत, नृत्य भजन पूजनादि कार्य खूब ठाट बाटके साथ हुए। दिगम्बर जैनप्रान्तिक सभाके वार्षिक अधिवेशनकी तीन, महिला परिषदकी दो; पब्लिक मीटिंगकी तीन, साधारण व्याख्यान सभाकी एक और दिगम्बरजैन महामंडलकी दो बैठकें हुईं। किसी संस्थाके लिए कोई खास चन्दा न होसका। केवल नवीन स्थापित दिगम्बरजैनमण्डलके लिए दो हजार रुपयेके लगभग सहायता मिली; परन्तु इसके लिए कोई खास अपील न की गई थी, थोड़ासा प्राइवेट प्रयत्न ही किया गया था। श्राविकाश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम और समितिके लिए भी थोड़ी थोड़ी सहायतायें मिली हैं। प्रान्तिक सभाकी

अपील हुई थी, परन्तु कुछ लोगोंकी कृपासे सभामें क्षोभ होजानेसे सफलता न हुई । केवल दो तीन रकमें ही आ सकीं !

२. सभापति महाशयका व्याख्यान।

बम्बईके इस उत्सवमें हम सबसे अधिक महत्त्व दि० जैनप्रान्तिकसभा बम्बईके सभापति बाबू अजितप्रसादजी एम. ए. एल एल. बी. के व्याख्यानको देंगे। सभापतिका आसन बहुत ही महत्त्वका है। उसपर आसीन होनेका अधिकार उसी व्यक्तिको हो सकता है जो अपने समाजको देश कालकी परिस्थितियोंके अनुसार यह बतला सके कि अब उसे किस मार्गसे गमन करना होगा और कौन सा मार्ग उसके लिए हितकारी होगा । यह कोई छोटा मोटा कार्य नहीं है। इसके लिए विस्तृतज्ञान, उदारविचार, विशाल अनुभव और असाधारण निर्भीकताकी जरूरत है। प्रान्तिकसभाके इस अधिवेशनके सभापतिमें उक्त सब ही गुण हैं और इसके लिए उनका व्याख्यान ही प्रमाणस्वरूप है । हम अपने पाठकोंसे आग्रहपूर्वक सिफारिश करते हैं कि वे उक्त व्याख्यानको जो कि अन्यत्र दिया गया है विचारपूर्वक पढ़ें। जहांतक हमको स्मरण है आजतक जैनियोंकी किसी भी सभाके सभापतिका व्याख्यान इतना अच्छा नहीं हुआ । यह व्याख्यान हमको जैनसमाजमें एक नये युगके प्रादुर्भावकी सूचना देता है और बतलाता है कि भाइयो, यह तुम्हारी उन्नतिका मार्ग तुम्हारे सामने है अब कमर कसके चलनेके लिए तैयार हो जा ओ।

३. व्याख्यानका प्रभाव।

सभापति महाशयके व्याख्यानको पढ़नेसे मालूम होता है । कि उन्होंने उसे बहुत ही सावधानी और दूरदर्शितासे लिखा है उसके

लिखते समय उनके सामने जैनसमाज़के संकीर्णविचारवालोंकी अव-स्थाका दृश्य बराबर रहा है और इस कारण उस दृश्यमें कोई विकृति उत्पन्न न हो जाय इसका उन्होंने अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया है; परन्तु जैनसमाजकी जो अवस्था सोची जाती है वास्तवमें वह उससे भी बहुत अधिक शोचनीय है । इस अवस्थाका दृश्य उन लोगोंने अच्छी तरहसे देखा होगा जो ता० २९ को सभापति महाशयके व्याख्यान होनेके समय प्रान्तिक सभाके जल्सेमें उपस्थित थे । व्याख्यान समाप्त होते ही बम्बईके कुछ सज्जन ऐसे बिगड़े कि उन्हें शान्त करना कठिन हो गया । यह कहना कठिन है कि उक्त बिगड़नेवाले सज्जनोंने उक्त व्याख्या-नको अच्छी तरहसे सुना समझा था या नहीं; परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके क्रोधका पारा केवल जातिबन्धनका उच्छेद आदि दो चार शब्दोंको सुनकर ही अन्तिम डिगरी तक पहुंच गया था ! यह सोचनेका कष्ट उठाना किसीने भी स्वीकार नहीं किया कि इन शब्दोंका पूर्वापर सम्बन्ध क्या है और जाति-भेदके न रखनेके विषयमें व्याख्यानदाता कौन सी युक्ति देते हैं। सभापति महाशय नहीं चाहते थे कि सभामें किसी प्रकारकी अशा-न्ति खड़ी हो जाय और मुझे कोई कठोर नीतिका अवलम्बन करना पड़े, इसलिए उन्होंने अपना अभिप्राय इन शब्दोंमें कह दिया कि "व्याख्यानमें मैंने अपने निजी विचार प्रगट किये हैं— उनका जिम्मेवार केवल मैं हूं न कि सभा। इनको मानना न आप लोगोंके अधिकारमें है" परन्तु इसका कोई फल न हुआ। मूर्खताके सामने बुद्धिको हारना पड़ा और अल्पजनमतने बहुमतको दबा दिया। केवल दश वीस महात्माओंने ऐसा हुल्लड मचाया कि उस

दिनकी सभाका कार्य समाप्त कर देना पडा। पिछेसे मालूम हुआ कि जैनसमाजके परम शुभचिन्तक सेठ लोगोंकी ओरसे दो गुप्तचर आये हुए हैं और उन्हींके कृपाकटाक्षसे यह सब कार्य हुआ है। गुप्तचर महाशयोंने उसी दिन अपने सेठोंको तार देकर सूचना दे दी कि हमने बाजी मार ली !

४ विषयनिर्वाचिनी समितिकी बैठक।

उसी दिन रातको सब्जैक्टकमेटीकी बैठक हुई। जिन लोगोंने दो पहरको अपने श्रीमुखोंसे यहां तक कह डाला था कि हमको ऐसे सभापति नहीं चाहिए—हमने इन्हें चुना नहीं और इस लिए जिनका कमेटीमें उपस्थित होना सर्वथा अनुचित था उनमेंसे भी कई सज्जनोंने पधारनेकी उदारता दिखलाई और जिन्हें अस्वीकृत किया था उन्हींके सभापतित्वको मानकर कमेटीके कार्यमें योग दिया ! अस्तु। कमेटीका कार्य प्रारंभ हुआ। इस कमेटीमें यदि सबसे अधिक महत्त्वकी और अश्रुतपूर्व बात हुई तो यह कि कई प्रस्ताव वीस वीस पच्चीस पच्चीस अनुकूल मत और चार चार पांच पांच प्रतिकूल मत मिलनेपर भी अस्वीकृत किये गये ! प्रान्तिक सभाके दो चार प्रतिष्ठा नेता चाहते थे कि इस अधिवेशनमें कोई काम भले ही न हो—आवश्यक प्रस्ताव भले ही रह जायँ; परन्तु विरोध न होने पावे और सभाका कार्य शान्तितासे समाप्त हो जाय। उनका यह विचार कहां तक ठीक था और इसका परिणाम अच्छा है या बुरा, इस विषयमें हम फिर कभी लिखेंगे; इस समय हम इतना ही कहना चाहते हैं कि उक्त नेताओंके लिहाजसे किसीने प्रतिवाद करना उचित न समझा और इसलिए थोड़ेसे कन्याविक्रयादि मामूली प्रस्तावोंका निर्वाचन करके कमेटी उठ गई। विरोधी महाशयोंने इस कार्यवाहीको अपनी बड़ी भारी विजय समझकर प्रसन्नता प्राप्त की।

५ समाप्तिके समयका क्षोभ ।

दूसरे दिन (ता० ३० दिसम्बरको) दोपहरकी बैठक शान्तिता-पूर्वक हुई। कुछ कार्य शेष रह गया था, इस लिए तीसरी बैठक रातको की गई। कलकी कार्रबाईकी बहुतसे लोगोंके चित्तोंपर विशेष करके बरार और दक्षिणवासियोंपर गहरी चोट लगी थी और इस कारण उनमें बड़ी उत्तेजना फैली थी। वे कहते थे कि बम्बई प्रान्तिकसभा केवल बम्बईके दश पांच मारवाड़ियों या धनियोंकी नहीं है, उसमें हम लोग भी शामिल हैं। तब उसके सभापतिकी किसी प्रकारकी अविनयको हम अपनी मानहानि समझते हैं। हम लोग यहांपर अपना अपमान करानेके लिए नहीं आये हैं। इस लिए जब तक हुल्लड़ मचानेवाले माफी न मांगेंगे तबतक हमें सन्तोष न होगा। इसके लिए आवश्यकता होनेपर पुलिसका भी प्रबन्ध करना चाहिए; परन्तु उनकी इस उत्तेजनाको कई सज्जनोंने विशेष करके सभापति महाशयने समझा बुझाकर दबा दी। उन्होंने कहा, हमें ऐसी छोटी छोटी बातोंपर खयाल न करना चाहिए। क्योंकि हमें काम करना है। समाजके सेवक मानापमानके विचारोंसे दूर ही रहते हैं। इस तरह उस समय तो लोग शान्त हो गये और जबतक सभाका कार्य समाप्त न हुआ तबतक चुपचाप बैठे रहे; परन्तु ज्यों ही सभाके विसर्जन होनेका समय आया त्यों ही शोलापुरके एक महाशय जो कि सभापति साहबका आभार माननेके लिए प्लेटफार्मपर आये थे—अपने हृदयके उद्रेकको न रोक सके। उन्होंने जोशमें आकर बड़ी ही निर्भयताके साथ पिछले दिनकी भद्दी कार्यवाही-की समालोचना कर डाली और लोगोंको स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि तुम चाहे जितनी उछलकूद मचाकर अपनी अज्ञानताका परि-

चय दो; परन्तु स्मरण रक्खो एक दिन तुम्हें भी इसी मार्गपर चलना होगा जिसे सभापति साहबने अपने व्याख्यानमें बतलाया है। हमारा और हमारी प्रान्तिकसभाका यह सौभाग्य है जो उसे ऐसे उदार विद्वान् और निर्भीक सभापतिकी प्राप्ति हुई। यह आलोचना वास्तविक होनेपर भी इतनी तीव्र थी कि कलवाले सज्जन अधीर होकर फिर हुल्लड़ मचानेको तैयार हो गये। तूतू मैं मैं शुरू हो गई। यद्यपि उस समय प्रयत्न करनेपर भी शान्ति न हुई, तो भी दक्षिण और बरारके लोगोंकी उत्तेजना देखकर हुल्लड़ मचानेवाले सीमासे आगे न बढ़ पाये। इधर सभापति महाशयका हार तुर्रों और फूलोंकी वर्षासे खूब सत्कार किया गया और सैकड़ों लोग 'जैनधर्मकी जय' बोलते हुए उन्हें डेरेतक पहुंचानेके लिए गये। इस तरह प्रान्तिक सभाका अधिवेशन समाप्त हुआ और वह सूरतकी कांग्रेस बनने बनते रह गई।

६ परिणाममें सफलता।

हमारे उक्त नोटोंसे बहुतसे पाठक शायद यह अनुमान करेंगे कि प्रान्तिकसभाके इस अधिवेशनमें सफलता नहीं हुई; परन्तु हमारी समझमें इस प्रकारका अनुमान करना ठीक न होगा। यद्यपि सभाके लिए कोई चन्दा न हुआ, बहुतसे आवश्यक प्रस्ताव रह गये और उसकी दो बैठककोंमें क्षोभ हो गया यह एक खेदकी बात है; परन्तु उसे सफलता अवश्य प्राप्त हुई है। जो लोग अशान्ति उठानेवाले थे और जिन्हें कुछ बाहरसे आये हुए महात्माओंने बहकाकर उत्तेजित किया था, उन्होंने पीछेसे पश्चात्ताप किया है और उनमेंसे कई भाइयोंने तो सभापित साहबकी विदाईके समय उनका स्टेशनपर जाकर प्रसन्नतापूर्वक अभ्यर्थन किया था। यह क्या कोई कम सफलता है? अशा-

न्ति तथा उत्तेजनाको असफलता समझना भूल है। सच पूछो तो इसके विना नये विचारोंकी प्रगति होती ही नहीं। इस तरहके घात प्रतिघातोंसे ही उन्नतिका मार्ग साफ होता है और संकीर्णताको उदारताकी ओर अग्रसर होना पड़ता है।

७ दूसरी महत्त्वकी बातें।

ता० ३० की बैठकमें यह बात प्रगट की गई कि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज कलकत्तेके प्रो० महामहोपाध्याय पं० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम. ए., पी. एच. डी. आदि विद्वानोंने स्याद्वाद-वारिधि पं० गोपालदासजी बरैयाको उनके जैन शास्त्रोंके असाधारण पाण्डित्य और तर्कशास्त्रकी अनन्य साधारण व्युत्पत्तिसे मोहित होकर '**न्यायवाचस्पति**'की पदवी प्रदान की है। यह जानकर सभाजनोंके हर्षका पारावार नहीं रहा। जैनियोंके लिए यह बात बड़े गौरवकी है कि उनके एक विद्वानका जैनेतर विद्वानोंके द्वारा इतना ऊंचा सत्कार हुआ। दूसरी उल्लेख योग्य बात यह हुई कि सतना (रीवां)के रायबहादुर श्रीयुक्त लालबिहारी बी.ए. वकील ने सभामें उपस्थित होकर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया और उसमें जैनधर्मका महत्त्व बतलाकर प्रगट किया कि मुझे जैनधर्मपर बड़ी भारी श्रद्धा हुई है। आप एक अच्छे प्रतिष्ठित और विद्वान् पुरुष हैं। कुँवर दिग्विजयसिंहजीके समागमसे आपने जैनधर्म स्वीकार किया है। आपके द्वारा जैनधर्मकी उन्नतिमें बहुत कुछ सहायता मिलनेकी आशा है। आपके उद्योगसे थोड़े दिन पहले रीवां और सतनामें जैन पाठशाला, जैन सभा और एक पुस्तकालयकी प्रतिष्ठा हो चुकी है। आप बड़े उत्साही और काम करनेवाले हैं। आपके उद्योगसे इलाहाबादमें

एक 'भारतीभवन' नामका पुस्तकालय बहुत समयसे चल रहा है और उसकी आर्थिक अवस्था बहुत संतोषप्रद है। जैनसमाजमें ऐसे पुरुषोंकी बहुत आवश्यकता है। तीसरी लिखने योग्य बात पब्लिक व्याख्यानोंकी है। बम्बईके जैनेतर भाइयोंको जैनधर्मका परिचय करानेके लिए इस उत्सवके समय तीन सभायें की गईं जिनमेंसे दो माधवबागमें और एक फ्रामजी कावसजी हालमें हुईं। बाबू जुगमन्दिरलाल एम. ए. बैरिस्टर एट. ला, सेठ हीराचन्द नेमीचन्दजी आ०म० और पं० फतहचन्द कपूरचन्द लालन इन तीन महाशयोंने उक्त सभाओंमें सभापतिका आसन ग्रहण किया था। बाबू अर्जुनलाल जी सेठी बी. ए., कुँवर दिग्विजयसिंहजी, पं० लालन, स्या० वा० पं० गोपालदासजी बरैया, पं० माणिकचन्द्रजी आदि विद्वानोंके व्याख्यान हुए और उनका सर्व साधारणपर अच्छा प्रभाव पड़ा। वर्तमानमें इस प्रकारके व्याख्यानोंकी प्रत्येक शहरोंमें आवश्यकता है। लोग जैनधर्मका स्वरूप समझना चाहते हैं, हमें उनकी जिज्ञासाको मिटाना चाहिए।

दिगम्बर जैनमहामंडलकी स्थापना।

अब वह समय आ गया है कि हम घरसे बाहर निकलकर दूसरे लोगोंको बतलावें कि हमारा धर्मरूपी हीरा कितना बहुमूल्य है। इसके लिए बहुतसे उत्साही सज्जनोंने इस बातकी आवश्यकता समझी कि एक ऐसी संस्था स्थापित की जाय जिसके द्वारा जैनधर्मके जाननेवाले दश पांच निस्वार्थ पुरुष देश विदेशमें भ्रमण करके धर्मका स्वरूप सर्व साधारणको समझावें। जब यह प्रस्ताव ता० २९ की रातको प्रान्तिक सभाकी सब्जैक्ट कमेटीमें पेश किया गया और उसके लिए सेठ पदमराजजी रानीवालोंने एक हजार रुपया

देना स्वीकार किया, तब दो चार लोगोंने यह कहा कि यह कार्य भारतवर्षमें ही होना चाहिए—विदेशोंमें नहीं। क्योंकि विदेशोंमें जानेसे धर्म नहीं रह सकता। इसपर बहुत वादविवाद हुआ। अन्तमें जब वोट लिये गये तब बहुमत विदेशोंमें जानेके ही अनुकुल हुआ; परन्तु विरोध बढनेके खयालसे प्रस्तावकने यह प्रस्ताव उठा लिया। कुछ लोगोंकी सम्मति यह हुई कि इस प्रस्तावका उद्देश्य फिलहाल देशमें ही धर्मप्रचार करनेका रक्खा जाय; परन्तु सेठ पदमराजजी जो इस कार्यमें सहायता करना चाहते थे, इस संकीर्णताको स्वीकार करनेके लिए राजी न हुए। इस आवश्यक प्रस्तावका उठालेनेसे कई सज्जनोंको बहुत उद्वेग हुआ और उसका फल यह हुआ कि सब्जैक्ट कमेटीके उठ जाने बाद 'दिगम्बरजैनमहामण्डल' नामकी एक स्वतंत्र संस्था खोलनेका निश्चय किया गया। दूसरे दिन मण्डलकी दो बैठकें हुईं और उसमें नियमावलि पास कराई गई तथा प्रबन्धकारिणी कमेटीका चुनाव किया गया। इस संस्थाकी ओरसे हिन्दी भाषामें एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया जायगा जिसका प्रबन्ध हो रहा है। बहुत थोडेसे प्रयत्नसे मण्डलको लगभग दो हजार रुपयोंकी सहायता मिल गई है। इससे मालूम होता है कि लोकमत इसके अनुकूल है। शिक्षित और उत्साही पुरुषोंको चाहिए कि वे इस मण्डलके मेंबर बनें और इसको एक काम करनेवाली संस्था बनानेके लिए कटिबद्ध हो जावें। मण्डलके सेक्रेटरी बाबू अजितप्रसादजी एम.ए, एल. एल. एल. बी. लखनौ और सभापति सेठ पदमराजजी रानीवाले बनाये गये हैं। फारेन सेक्रेटरीका काम लाला जुगमन्दरलालजी, एम. ए. बैरिस्टर एटला, इलाहाबाद करेंगे।

९ एक समाजसेवकका पृथक्त्व।

यह जानकर हमको बडा दुःख हुआ कि जैनसमाचार और जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुक्त वडीलाल मोतीलाल शाहको जैन-समाजके सेवाकार्यसे अन्तिम विदाई लेनी पड़ी है। हमारे बहु-तसे पाठक उक्त महाशयसे परिचित होंगे। आप बडे ही उदार, उत्साही, जोशीले और निर्भीक लेखक हैं। आपने अपने जोशीले लेखोंसे स्थानकवासी जैनसमाजमें एक नवीन युगका अविर्भाव कर दिया है। आपने लगातार १४ वर्ष तक जैनसमाजकी उन्नति-के लिए अश्रान्त परिश्रम किया है। विना किसीकी महायताके आप एक साप्ताहिक और एक मासिक पत्रका बराबर सम्पादक करते रहे। बीचमें आपने एक हिन्दीका पाक्षिक पत्र भी निकालाथा और तब आप तीनों पत्रोंके सारे लेख अकेले ही लिखते थे। अपने ग्राहकोंको आप उपहार ग्रन्थ भी इतने अधिक देते रहे हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। किसी किसी वर्षमें आपने बारह बारह पुस्तकें उपहारमें दी हैं। इन पुस्तकोंका सम्पादन भी प्रायः आपहीको करना पडता था। समाजके प्रायः प्रत्येक कार्य और प्रत्येक आन्दोलनमें भी आपको शामिल होना पडता था। सालमें कई बार आप दौरेके लिए निकलते थे और महीनों तक जैनस-माजको उन्नतिके पथपर अग्रसर करनेका उद्योग करते थे। पत्रसम्पादन, उपहारवितरण और दौरे आदिमें आपने अपनी गांठके हजारों रुपया लगा दिये। तीनों पत्रोंमें आपको बराबर घाटा लगता रहा; पर आप इससे निराश नहीं हुए—अपने उद्देश्योंकी सिद्धिके प्रयत्नमें बराबर लगे रहे। आपके उद्योगसे स्थानकवासी समाजमें कई अच्छी अच्छी संस्थायें स्थापित हुई हैं

स्थानकवासी कान्फरेंसकी स्थापनामें आपहीका उद्योग प्रधान था। अपने उदार और स्वाधीन विचारोंके कारण आप बहुतसे गतानुगतिकोंके कोपभाजन हो गये और उसका परिणाम यह हुआ कि आपको समाजसेवाका फल चखनेके लिए कई महीनोंके लिए जेलकी भी हवा खानी पड़ी! इस कष्टको आपने आनन्द-पूर्वक सहन किया और आगे भी सब प्रकारकी आपत्तियोंको सहन करनेके लिए आप तैयार थे; परन्तु १४ वर्षके लगातार परिश्रमसे आपकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंने जबाब दे दिया, इसलिए डाक्टरोंकी सम्मतिसे आपको समाजसेवाका कार्य चार छह वर्षके लिए बिलकुल छोड़ देना पडा है। अब आपने बम्बईमें 'मेसर्स डी. मणिलाल' नामकी दूकान खोली है जिसमें मिल और जीनफेक्टरी आदि कारखानोंके उपयोगमें आनेवाला सब प्रकारका सामान मिलता है। इस कार्यसे आपका स्वास्थ्य भी सुधर जायगा और आर्थिक अवस्था भी अच्छी हो जायगी। जैनसमाचारको और भारतबन्धु प्रेसको तो आपने बिलकुल बन्द कर दिया है, रहा जैनहितेच्छु, सो उसको आपके पिता श्रीयुक्त मोतीलाल मनसुखरामजी सम्पादन करेंगे। आपके इस तरह जुदा होनेसे आपके विरोधियोंको बहुत प्रसन्नता हुई है; परन्तु इसके लिए आप अपने अन्तिम लेखमें लिखते हैं कि मैं "अपनी भयंकर तलवारको किसी कुएमें नहीं फेंक देता हूं—किन्तु दीवालपर टांग देता हूं। जब कोई पुरुष निःसीम नीचताका वर्ताव करनेके लिए तैयार होगा, तब यह कुछ दीवालहीपर न टँगी रहेगी। प्रसंग आनेपर यह बहुत समय तक गति पाई हुई तलवार चेतनशक्तिकी सहायताके विना भी उछल पड़ेगी और यह शक्ति जिसका कि पवित्र-

ताकी रक्षा करना ही धर्म है, आसुरी प्रकृतियोंपर आक्रमण किये विना कभी चूकेगी।" इस जोशीले युवकके चरित्रसे हमारे पाठक बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस समय समाज़ सेवाके कार्यमें अपने सर्वस्वका अर्पण कर देनेवाले ऐसे हजारों कर्मवीरोंकी जरूरत है।

१० जैनधर्मको कलंकित करनेवाले त्यागी।

मालूम होता है कि अब भट्टारकोंकी जगह त्यागी ब्रह्मचारी ले लेवेंगे। अभी जैनसमाजका भाग्य ऐसा नहीं दिखता कि उसका मूर्ख और पाखंडियोंके शासनसे पिंड छूट जाय। उसकी तो किसी न किसी प्रकारसे प्रतारणा होती ही रहेगी। जबतक अज्ञान अन्धकार फैला हुआ है, तबतक ऐसा होना स्वभाविक ही है। भट्टारकोंकी श्रद्धा उठ चली है; परन्तु अब उनके स्थानमें बहुतसे त्यागी महात्मा विराजमान् होने लगे हैं। इन्होंने अपने नये वेष, नये ढोंग और नयी चर्यासे भोले समाज़पर अटूट श्रद्धा जमाना शुरू किया है। हजारों लाखों भोले भक्त इनके दर्शनसे अपनेको कृतकृत्य समझ रहे हैं; परन्तु अफसोस! कोई यह नहीं पूछता कि इनमें कुछ ज्ञान, सच्चा वैराग्य और शान्ति आदि साधूचित गुण भी हैं या नहीं। साधारण लोगोंकी देखादेखी अच्छे अच्छे समझदार भी इनके बाह्य चारित्रपर मुग्ध हो रहे हैं। इनके आदरसत्कारके लिए जो ठाठ बाट रचे जाते हैं उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। यह ठाठ बाट जैन धर्मकी प्रभावनाके लिए किये जाते हैं, परन्तु हमारी समझमें तो इनसे उलटी अप्रभावना होती है। जहां अपूज्य पूजे जाते हैं, वहां प्रभावनाका होना असंभव है। इस विषयमें हमारे पास ललितपुरसे बाबू दयाचन्द्रजी जैन बी. ए. का एक लम्बा चौड़ा लेख आया है। उसमें वे लिखते हैं कि "भाइयो, यह समय

अन्धश्रद्धाका नहीं हैं। परीक्षा करके देखो। दुनियां दोरंगी है। इसका बहिरंग और है और अन्तरंग और। बाहर भेड़ और अन्दर भेड़िया। इनको त्यागी कहना ही गलत है। ये बहुरूपये हैं जो त्यागकी ओटमें अन्धश्रद्धा रखनेवाले जैनियोंकी शिकार करते हैं। इनकी कषायें अत्यन्त तीव्र हैं। बुद्धिका इनमें लेश नहीं। इनके शरीरपर यद्यपि कीमती वस्त्र नहीं हैं; परन्तु इनके सन्दूकचोंमें रेशम व मखमलके गद्दे तकिये लगे हैं। दरी तो दो रुपयेमें आती है पर इनके पास तीन तीन चार चार रुपयोंकी चटाइयां हैं! दिखलानेको ये एक पैसा भी हाथमें नहीं लेते; परन्तु इनके बाक्सोंमें स्टाम्प, कागज, बैनामा, रहननामा, और दस्तावेजें रक्खी हुई हैं। ये यहां वहांसे स्वाध्यायके नामसे ग्रन्थ लेते हैं और उन्हें बाक्सोंमें बन्द कराकराके अपने सम्बन्धियोंके पास भेजते हैं जहां उनके टके बनाये जाते हैं! ये धर्मके उपदेशक बनते हैं, पर धर्मका नाम भी नहीं जानते। इनकी प्रबल इच्छा रहती है कि लोग हमें अरहंतदेव समझें और मुनिमहाराज कहकर पुकारें; परन्तु काम इनके गृहस्थों जैसे भी नहीं। हमने ललितपुरमें ऐसे कई त्यागियोंके दर्शन किये हैं। हम उनका नाम लिखना उचित नहीं समझते। श्रीमान् क्षुल्लक........ तो उनमें सबसे बढ़े चढ़े हुए हैं और मेरठ वगैरहके लोगोंकी उनपर अटूट श्रद्धा है। कोई इनसे यह नहीं पूछता कि जो शास्त्र आपने अमुक ग्रामोंके भंडारोंसे लिये हैं वे कहां हैं? जरीकी टोपियां, मखमलके टुकड़े जो भोली भाली अज्ञानग्रसित स्त्रियोंसे लिये हैं, वे कहां हैं? जाखलौन और ललितपुर आदि स्टेशनोंपर आपने कितने वाक्स भेजे? बन्धुओ, अब इनसे सचेत हो जाओ। ये आपको धर्मपर नहीं लगा सकते किन्तु आप ही इनको धर्मपर

लगाओ। इनकी कषायोंको मन्द कराओ और इन्हें विद्याभ्यास करनेके लिए जोर दो। प्रत्येक जैनीका कर्तव्य है कि वह इन मूर्ख त्यागियोंकी मण्डलीकी बाढ़को रोककर इनके स्थानमें ज्ञानी और मन्दकषायी त्यागियोंके बढ़ानेका उद्योग करे।"

११ अमेरिकामें आर्यसभ्यता।

इंडियन रिव्यूकी सितम्बरकी संख्यामें एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें सिद्ध किया गया है कि ईस्वीसन्के लगभग १३०० वर्ष पहले भारतवासी आर्योंने चीन देशके रास्तेसे उत्तर अमेरिकामें जाकर उपनिवेश स्थापन किया था। इसके बाद वहां समय समयपर शाक्त, तान्त्रिक, शैव, नागपूजक, बौद्ध आदि भारतीय धर्मवाले जाते रहे हैं। पीछे पीछे इस उपनिवेशका विस्तार हन्डूराज, मेक्सिको, ग्वाटीमाला और दक्षिण अमेरिका तक हो गया था। पुरातत्त्वशोधकोंको वहांके प्राचीन जंगलोंके भीतर जो देवमूर्तियां, मंत्र, यंत्र, पूजाके उपकरण, सूर्यपूजकोंके गणना-प्रस्तर, आदि पदार्थ मिले हैं, उनसे मालूम होता है कि वे अवश्य ही प्राचीन भारतवासियोंकी सभ्यताके चिन्ह हैं और वर्तमान ताम्रवर्ण जंगली जातिके पहले वहांपर सभ्य जनोंका निवास था; परन्तु यह नहीं मालूम होता कि किस समय, और किस नैसर्गिक कारणसे भारत और अमेरिकाका सम्बन्ध टूट गया और क्यों एक प्रबल जाति बर्बरतासे आच्छन्न हो गई।

विविध समाचार।

चन्देकी वसूली—हिन्दू विश्वविद्यालयके चन्देकी वसूलीमें बहुत विलम्ब हो रहा है। अभी तक केवल १७ लाख रुपया वसूल हुए

हैं। जब तक ५० लाख वसूल न हो जावेंगे, तब सरकारसे चार्टरके सम्बन्धमें लिखा पढ़ी न की जा सकेगी।

सम्मेलनकी सफलता—अबकी बार कलकत्तेमें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन सफलतापूर्वक हुआ। प्रतिनिधियोंकी संख्या और वर्षोंकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। अनेक प्रभावशाली बंगाली विद्वान् भी उसमें शामिल हुए थे। एक स्थायीफंड खोला गया है जिसमें लगभग ६०००) की प्राप्ति हो चुकी है। प्रत्येक हिन्दीहितैषीको इसमें सहायता देना चाहिए। कई विद्वानोंसे विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य आदि विषयोंकी पुस्तकें लिखनेकी स्वीकारता ली गई है।

नये बैरिस्टर—मि० मकनजी झूठाभाई और हीरालाल मोतीलाल शाह नामके दो श्वेताम्बर जैन युवक इस वर्ष विलायतमें बैरिष्टरीकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं। खुशीकी बात है।

पशुवध बन्द—श्वेताम्बरजैनकान्फ्रेंसके उद्योगसे अब तक १२० रियासतोंमें दशहराके समय जो पशुवध होता था वह बन्द हो गया है। इस वर्ष उसने बजाणा, रंगपुर, हाथीपुरा, रामपुरा, महुआ, कलोल, और लेंच आदि रियासतोंमें भी पशुवध बन्द कराके प्रशंसनीय कार्य किया है।

कोचीनमें स्कूल—जैनसमाचारके सम्पादक श्रीयुक्त वाडीलाल मोतीलालके उद्योगसे कोचीन (मलबार) में वहांके हिन्दू और जैनी भाइयोंने मिलकर एक गुजराती–अंगरेजी स्कूल खोलनेका निश्चय किया है।

स्थानकवासी कान्फरेंस—आगामी २७–२८–२९ फरवरीको सिकन्दराबाद (हैदराबाद) में स्थानकवासी जैन कान्फरेंसका वार्षिक अधिवेशन होगा।

आवश्यक सूचना।

उपहारका दूसरा ग्रन्थ तैयार हो रहा है। कई कारणोंसे वह समयपर तैयार न हो सका, इसलिए इस अङ्कके साथ न भेजा जा सका। प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे आगामी अंकके तैयार होने तक छपके तैयार हो जाय। ग्राहक महाशयोंको धैर्य रखना चाहिये।

जो महाशय ग्राहक न रहना चाहें वे इस अंकको और पहले अंकको वापिस कर दें।

अनुभवानन्द।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका लिखा हुआ आध्यात्मिक ग्रन्थ मूल्य आठआना

मुफ्तमें मंगा लीजिए।

धर्मपरीक्षा उत्तरार्ध, ब्रह्मविलास उत्तरार्ध पुण्यास्रव, रत्नकरंड बड़ा आदि कई पुस्तकें हमारे यहां अधूरी हैं। हम इन्हें स्वाध्याय करनेवाले भाइयोंको मुफ्त भेज देना चाहते हैं मंगानेवालोंको केवल डांकखर्चके लिए छह आनेके टिकट भेज देना चाहिए। दूसरी पुस्तकें मंगानेवालोंको डांकखर्च भेजनेकी जरूरत नहीं। उनकी पुस्तकोंके साथ ही वी. पी. से भेज देंगे।

त्यागी ब्रह्मचारियोंके फोटो।

१ ऐलक पन्नालालजी, २ क्षुल्लक मुन्नालालजी, ३ ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, ४ त्यागी आनन्दीलालजी, ५ दिगम्बर मुनि निल्लीकारजी, ६ भट्टारक लक्ष्मी-सेनजी, ७ बाबा भागीरथजी गेंदनलालजी ये सात फोटो हमारे यहां विक्रीके लिए तैयार हैं। मोहरसके चित्र भी छपाये गये हैं। प्रत्येक फोटूका मूल्य एक आना। आठों एक साथ मंगानेसे सात आना। चार आनेसे कमका वी. पी. न भेजा जायगा।

जैनहितैषीके अंकोंकी जरूरत।

हमारी आठवें वर्षकी फाइलोंमें जैनहितैषीके पांचवें और सातवें अंक नहीं हैं। जो महाशय फाइल न रखना चाहें यदि वे उक्त अंक हमारे पास भेज दें तो हम उनके बहुत कृतज्ञ होंगे।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,
गिरगांव–मुंबई।

नये छपे हुए ग्रन्थ।

गोमठसार कर्मकाण्ड।

मूल, संस्कृत छाया, और संक्षिप्त भाषा टीका सहित छपकर तैयार है। मूल्य दो रुपया।

जिनशतकालंकार।

इसमें स्वामी समन्तभद्राचार्यके रचे हुए १०० चित्रकाव्य हैं और उनमें जिनभगवानकी स्तुति की गई है। पहले मूल, फिर नरसिंहभट्टकी संस्कृत टीका और उसके नीचे पं० लालारामजीकृत हिन्दी भावार्थ है। मूल्य १२आना।

हनुमानचरित्र।

इसमें अंजना पवनंजयके पुत्र हनुमानजीका संक्षिप्त चरित्र सरस भाषामें दिया गया है। इसे खंडवाके श्रीयुक्त सुखचन्द पदमशाह पोरवालने बनाया है। मूल्य छह आने।

जान स्टुअर्ट मिलका जीवनचरित।

'स्वाधीनता' आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके बनानेवाले और अपनी लेखनीकी शक्तिसे यूरोपमें एक नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले इस विद्वानका जीवनचरित प्रत्येक शिक्षित पुरुषको पढ़ना चाहिए। इसे जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुक्त नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मूल्य चार आने।

ठोक पीटकर वैद्यराज।

यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हंसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आजकल बिना पढे लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सो भी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

जैनेन्द्रपंचाध्यायी सूत्रपाठ।

जैनेन्द्रव्याकरणके मूलसूत्र मात्र जुदा छपाये गये हैं। मूल्य चार आना।

क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है?

बाबू दयाचन्दजी बी. ए. का लिखा हुआ यह छोटासा निबन्ध हाल ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य एक पैसा। बांटनेवालोंको सौ सौ पचास कापियां मंगा लेना चाहिए।

मैनेजर—जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय, गिरगांव, बम्बई।

श्रीवीतरागायनमः

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः
यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

प्रिय भ्रातृगण और महिलागण !

आज मेरे हर्षका पारावार नहीं है जब कि मैं अपने आपको एक अद्वितीय स्वधर्मजातीयमण्डलीमें पाता हूँ. जिसको अनेक वात्सल्य व प्रभावनागुणालंकृत भव्य पुरुष--रत्नोंने अथक परिश्रमसे स्थापित की है, "अहिंसा परमो धर्मः" "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" "जयतु जैनशासनम्" "सत्वेषु मैत्री" इत्यादि पताकाएँ जहां फहरा रही हैं, तथा स्याद्वादके अजेय रक्षक जहां अहर्निश पहरा देते हैं । आप महानुभावोंने जात्युन्नति व धर्म्मोन्नतिके महान् पवित्र कार्य्यमें अग्रेसर होनेका अनन्य सौभाग्य मुझ अल्पज्ञको प्रदान किया इसका मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ; परन्तु "निधि प्राप्तिसे निधि रक्षा कठिनतर है," इस उक्तिके अनुसार मुझे सन्देह है कि इस पदयोग्य कर्तव्योंका पालन मैं कर सकूंगा वा नहीं । तथापि आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म्म है. और मुझे परम आशा है कि जब आप सज्जनोंने मुझे इस जातिसेवाके उच्चासनपर उन्नत किया है, तो तद्योग्य शुभ भावनाओंका बल भी प्रदान करेंगे, जिससे मैं आप बन्धुओंकी निर्दोष सेवा कर सकूं । मुझे भरोसा है कि महात्मा, त्यागी, ब्रह्मचारी अपने वरप्रदानसे

वयोवृद्ध पूज्य अपनी आशिसे, समावस्थावाले भ्रातृवर्ग अपने कार्यकौशल्य और हितैषितासे, तथा कनिष्ठ भ्राता अपने स्नेह व विश्वासपूर्वक अनुगमनसे अवलम्बन देकर मुझको कृतार्थ करेंगे।

भ्रातृवर्ग, जबसे यह मुम्बापुरी सतरहवीं शताब्दीमें इंगलेन्डके राजा चार्ल्सकी रानीको पोर्तुगालवालोंसे स्त्रीधनके रूपमें मिली, तबहीसे इस नगरीमें पाश्चात्य देशोंकी वाणिज्य वस्तुओंका व्यवहार दिन प्रतिदिन बढ़ा और इसमें लक्ष्मीका वास हुआ, तथा इसके सौन्दर्यने भी आश्चर्यजनक उन्नति की। आज भारतमें बम्बईके समान कोई नगर नहीं है; समस्त प्रान्तोंके व्यापारी वर्गका यह केन्द्र है, और यहाँपर प्रायः प्रत्येक मुख्य २ नगरोंके निवासी दृष्टिमें आते हैं। बम्बईको यदि भारतप्रतिनिधि नगर कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी। जो २ उन्नतिके कार्य इस प्रान्तिक सभा और इसके सभासदों द्वारा अद्यावधि सम्पादित हुए हैं, वे इतने महत्व और आदर्श रूपसे हुए हैं कि जो भारतप्रतिनिधि—नगरस्थ सभाके योग्य हैं, और जिसको प्रत्येक सभा अनुकरणीय स्वीकार करती है। इस प्रान्तसे जो शुद्ध ज्योति चहुँ ओर जैनियोंके घरोंमें पहुँची है, और उससे जो अज्ञान अन्धकार दूर हुआ है, उसके लिए आबाल वृद्ध आभारी हैं। ग्रन्थमुद्रणद्वारा जिनवाणीका जीर्णोद्धार, जिनोदित संस्कारोंका प्रचार, परीक्षालय द्वारा धार्मिकविद्याका प्रसार, आदर्श बोर्डिंग स्थापन आदि मुख्य २ उन्नतिके कार्य इस प्रान्तके विद्वानों व धनिकोंकी धर्मज्ञता, दूरदर्शिता और उदारताका प्रत्यक्ष परिचय दे रहे हैं। वास्तविक 'यथा नाम तथा गुणः' **जैनमित्र** इसी प्रान्तिक सभाका मुख पत्र है। जैनजातिमेंमें केवल एक यंही ऐसा पत्र है जो एक ग्रहत्यागी, उदासीनवृत्ति, हितोपदेशी,

ब्रह्मचारीद्वारा सम्पादित होता है; और इसी कारण इस पत्रकी सत्यवक्तृता, निर्भयता, निजाधीनता और मैत्री भाव दिन प्रतिदिन वृद्धिगत है। यहाँके धनाढ्योंने सार्वजनिक कार्योंमें भी प्रशंसनीय कदम बढ़ाया है; हीराबागकी धर्मशाला, ऐलक पन्नालाल औषधालय, हीराचन्द गुमानजी बोर्डिंग और श्राविकाश्रम उसका नमूना हैं। आप महानुभावोंके सर्वोपरि सराहने योग्य और उत्कृष्ट उपकारके कार्य द्वारा तीर्थोंका सुप्रबन्ध हो रहा है और सर्व स्थितिके यात्रियोंको समस्त प्रकारका आराम मिलता है। मुझे भलीभांति मालूम है कि इन कार्योंमें आप लोगोंका बड़ी २ कठिनाइयोंसे मुकाबिला हुआ है, आपको अन्धविश्वास और स्वार्थपरताके धक्के झेलने पड़े हैं। परन्तु आपने जिस नीति और धर्मदृढतासे कार्य किया है वह सबपर विदित है, और इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि, यह सभा इस ही प्रान्तमें नहीं किन्तु समस्त भारतका प्रतिनिधि रूपसे उपकार कर रही है; और इसकी प्रत्येक कार्यवाही धर्म्मानुकूल, समयानुसार और सर्वमान्य होती है, अतः जो कुछ भी धर्म्मोन्नति व देशोन्नतिके कार्य आप लोग करेंगे वे आदर्शरूप लाभकारी और शिक्षाप्रद ही होंगे; और मुझे विश्वास है कि कोई भी धर्म्मप्रेमी व उन्नति इच्छुक जैन बन्धु उनमें "कथं" "कस्मात्" न करेगा।

सज्जनवृन्द, संसार परिवर्तनशील है; "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" का अटल सिद्धांत अस्तित्वके प्रत्येक रूपरूपान्तरपर अङ्कित हैं। आज भोगभूमियोंके दिन नहीं हैं, चतुर्थ काल भी नहीं है; हमारे पुराणोंमें जैसी जीवनियोंका उल्लेख है आज वे हमको स्वप्नमें भी नहीं दिखलाई देतीं; ऋषभदेवसे ऐहिक और पारमार्थिक मार्ग-

प्रणेता, रामचन्द्रसे नीतिज्ञ और लोकमतदर्शी राजा, युधिष्ठिरसे सत्यवादी, अर्जुन जैसे शूरवीर, कुंदकुंदाचार्य्य जैसे तत्त्वज्ञ, अकलंक निकलंक जैसे धर्म्मरक्षार्थ प्राणोत्सर्गी, समंतभद्राचार्य्य जैसे नैय्यायिक, पूज्यपादस्वामी जैसे बहुविषयज्ञ, अमृतचन्द्र और अमितगति आचार्य्य जैसे अध्यात्मरसिक, विद्यानंदसे वादी अब भारतमें नहीं हैं। प्राचीन और आधुनिक भारतमें दिन रातका भेद है. अब तोः—

सुबह होती है, शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।

अकथनीय शोकका अवसर है कि अनभिज्ञ विदेशी तो क्या स्वयं भारतवासी ही महावीर तीर्थेश्वरके व्यक्ति-अस्तित्वपर सन्देह करने लगे हैं और अनादि जैनधर्मको बौद्धधर्मकी शाखा बताकर उसके भिन्न अस्तित्वपर ही पानी फेरनेको तय्यार हैं। यह देखकर अपार खेद होता है कि लाखों ग्रन्थ भण्डारोंमें पड़े पड़े दीमकोंके भोज्य और दिग्गज विद्वानोंकी परिश्रमसे की हुई कृतियां नष्टप्राय हो रही हैं। हमको यह विचारकर उत्साहहीन होना पड़ता है कि जैनियोंकी संख्या चौदह लक्षसे भी न्यून हो गई। हाय! षष्ठ कालके उन्नीस हजार वर्ष दूर रहनेपर भी लाखों रुपयोंकी लागतोंके धर्ममन्दिरोंकी ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि उनके लिए वेतनपर भी पुजारी नहीं मिलते और ख्याति पूजाके अर्थ भी कोई मरम्मत नहीं कराता। शिखर सम्मेद जैसी पवित्र मोक्षभूमिपर गृहस्थियोंके निवासस्थान बननेका प्रस्ताव और उसपर स्वत्वप्राप्तिके अर्थ दिगम्बर स्वेताम्बर भाइयोंमें कहानीके गुरुके दो शिष्योंके समान झगड़ा पड़ना हमको एक बार हताश कर देता है। हमारा हृदय इस दुःखको नही सह सकता कि इस छोटीसी जैन जातिमें दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, मूर्तिपूजक, मूर्तिनिन्दक,

भीखमपथी, तपगच्छ, खरतरगच्छ, तेरापंथी, वीसपंथी, गुमानपंथी, समैया, दस्सापक्ष, बीसापक्ष, शुद्धाम्नायी, अशुद्धाम्नायी, छापापक्षी, छापानिंदक आदि परस्परविरोधी मतभेद इतने खड़े हो गए हैं कि एक दूसरेकी हानिमें आनन्द मानकर सामान्योन्नतिमें भी मेल करनेसे संकोच करते हैं और सामुदायिक जैनत्वके बलको खोए बैठें हैं। उद्योगी व सिंहवृत्तिसे जीविका प्राप्त करनेवाले भारतवासी ऐसे निरुद्यमी और पुरुषार्थहीन हो गए हैं कि हजारों बार प्रस्ताव पास होने व उपदेश देनेपर भी कन्याविक्रय जैसे घृणित व्यापारमें मुग्ध हैं। परम शोक है कि जैनसमाज उन अनेक ताम्रपत्र तथा शिलालेखोंको जो कि श्रद्धानपुष्टि और गौरवके लिए लिखे गये थे भूले पड़े हैं और प्राचीनइतिहासप्रेमी, राज्याधिकारी तथा इतर अजैन महाशय खोज करके उनका महत्त्व बताते वा अर्थ समझाते हैं। अति विषादका अवसर हैं कि जिस जैनधर्मका चहुँ ओर डंका बज रहा था, और वर्तमानमें भी जिसके अनुयायी भारतीय व्यापारके तिहाई मालिक समझे जाते हैं, उन्ही क्षत्रियसन्तान जैनोंका एक भी प्रतिनिधि Viceroy की कौन्सिलमें दृष्टगत नही होता। विस्मयस्थान है किजिन जैनियोंने असंख्यात जीवोंके प्राण यज्ञ-होमकी अग्निसे बचाये, उन्ही आत्मस्वरूपके मर्मज्ञ, शुद्ध निर्दोषी परमात्माके उपासक, दयाधर्म्मके प्रचारक जैनियोंपर लोग वाम-मार्गी और नास्तिक शब्दोंकी पुष्पवृष्टि करके अपनी कृतज्ञताका परिचय दे रहे हैं। परम आश्चर्य्य है कि भारतसन्तान संस्कृतविद्या व आत्मविज्ञानकी उपेक्षा करके विदेशीय भाषाओं और विद्या-ओंपर ऐसी मुग्ध हो जावे कि भारतीय आचार्यों और विद्वानोंके वाक्य, उनका आयुर्वेद, ज्योतिष, मन्त्रविद्या, तन्त्रशास्त्रादि विना

पढ़े विचारे ही मिथ्या आडम्बर समझने लगे, और देशीय रीति रिवाजोंको त्यागकर उदरपरतन्त्रताके साथ २ खानपान रहन सहन वस्त्राभूषणमें भी परतन्त्र हो जावे। शारीरिक शिक्षाकी प्रणाली भारतसे छूमंतर हो गई है और भारतसन्तान बालविवाहके विषसे वीर्यहीन और बलहीन, तथा अप्राकृतिक शिक्षापद्धतिसे आँख फूटी और कमर टूटी होकर आत्मरक्षामें भी अशक्य है। खेदका स्थान है कि पारस्परिक खानपान विवाहादि कार्य्योंमें वर्णव्यवस्थाके उपरान्त जातिचक्रकी भी अर्गला लगा दी गई है और बालविवाहकी तरह अनावश्यक तथा हानिकर प्रतीत होनेपर भी यह निगल हटाई नहीं जाती; जिससे एक वर्ण और एक धर्म्मावलम्बी आपसमें भोजनादि करके अपने वात्सल्यभावको व्यवहृत रूपमें प्रगट कर सकें।

परन्तु, सज्जनवृन्द, जिस परिवर्तन नियमसे भारतका पतन हुआ वह ही परिवर्तन नियम अब इसको उन्नत भी कर रहा है। अब भारतमें पुनरुत्थान सूर्यका उदय हुआ है। बहुत काल तक पाश्चात्य देशोंको यथायोग्य जागृत करता हुआ, सबको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार अनेक व्यवसायोंमें लगाता हुआ उन्नतिका सूर्य भारतभूमिपर उदय होकर भारतवासियोंको जगा रहा है, देशप्रेमकी शीतल और मृदु समीर पराक्रमके सुगन्ध सहित चहुँ ओर चल रही है, कलाकौशलके पक्षी अपने मनोहर कलकलसे निरुद्योगियोंके चित्तको भी आकर्षित कर रहे हैं, और राज्यभक्तिकी सुखबीणा ऐसी मधुर बज रही है कि समस्त भारतमें शान्ति तथा एकताहीका आलाप सुनाई देता है, अविद्याकी रजनीने विदाई ली है, और ज्ञानके उजालेके सामने भ्रम व कदा-

ग्रहके तारे अस्त हो चुके हैं, धर्म्ममन्दिरोंके घंटे भी जोर जोरसे बजने लगे हैं, और उपदेशकरूपी कुक्कुट अपने रवसे सोनेवालोंको अन्धविश्वासकी निद्रा त्यागनेके लिए पुकार रहे हैं, और सम्राट् जार्जका न्याय-नक्कारा लार्ड हार्डिंगके हाथोंसे प्रभातध्वनि कर रहा है।

बन्धुओ, ऐसे प्रभातके होते ही भारतमें अनेक प्रकारके जागृतिसूचक व्यवसाय शुरू हो गये हैं। राष्ट्रोन्नतिके लिए National Congress, Muslim league, व्यापार व शिल्पकी उन्नतिके लिये Industrial Conference, साधारण सदाचारप्रचारके लिए Temperance Society, एकलिपि प्रचारके अर्थ 'एकलिपि परिषद', सर्व धर्म्मोंके तत्त्व खोजनेके उद्देशसे Convention of all religions, इत्यादि अनेक प्रकारकी देशव्यापकसभाएं अपना अपना कार्य बहुत परिश्रमसे कर रही हैं। स्थान २ पर कालिज्, स्कूल, बोर्डिंग, गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, अनाथालय, विधवाश्रम, Technical school, इतिहास society, पांज़रापोल आदि भाँति २ की संस्थाएं स्थापन हो रही हैं। विज्ञान और शिल्पके आविष्कार भी होने लगे हैं; और यद्यपि सस्ता और महीन नहीं तो भी भारतमें सर्व प्रकारका आवश्यक सामान बनने लगा है। इधर धार्मिक मैदानमें भी बड़ी प्रतिद्वन्दतासे घुड़दोड हो रही है; सर्वमतावलम्बी अपने २ धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रचारमें तनमनधनसे कटिबद्ध हैं, और यथाशक्ति नवीन २ प्रकारके उपाय कार्यमें ला रहे हैं। शिक्षालय, रोगचिकित्सालय (Hospital), अनाथ अपाहजोंका भरणपोषण, उपदेशकप्रेषण, आदि द्वारोंसे भिन्न २ धर्म्मोंका प्रचार हो रहा है।

धार्मिक श्रद्धान, शिल्पकला, वाणिज्यव्यापार, राज्यनीति आदि जीवनके प्रत्येक विभागमें एक नवीन ही जागृति शुरू हो गई है और हरएक दूरदर्शी देख सकता है कि यह जागृति भारतमें क्या २ न कर दिखावेगी।

महाशयो, मुझे यह कहते हुए बहुत हर्ष होता है कि हमारी जैनसमाज भी यद्यपि सबके पीछे जागृत हुई है तथापि अब समयकी चाल पूर्ण नहीं तो कुछ २ समझने लगी है। बम्बई, शोलापुर, लाहोर, जबलपुर, अलाहाबाद आदि स्थानोंके बोर्डिंग, भारतजैनमहामण्डल, जैन अनाथाश्रम, काशी स्याद्वाद महाविद्यालय, जैन सिद्धान्त पाठशाला मुरैना, बङ्गीय सार्वधर्मपरिषद, भारतवर्षीय जैनशिक्षाप्रचारक समिति जयपुर, जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, श्राविकाश्रम बम्बई, श्रीजैनसिद्धान्त भवन आरा, और श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, आदि संस्थाओंसे यह बात भली भाँति स्पष्ट है। नगरों और ग्रामोंमें जैनबालसभाएँ व पाठशालाएँ खुलती जा रही हैं, और नवयुवकोंकी प्रेरणासे व्यर्थ रिवाजों और धर्मविमुख तथा जैन नामको लजानेवाली कुरीतियोंका शनैः शनै ह्रास हो रहा है। इधर जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा ने स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी पंडित गोपालदासजी, तथा क्षत्रिय कुँवर दिग्विजयसिंहजीके द्वारा समस्त भारतमें सिंहगर्जनासे जैनधर्म्मकी घोषणा फेर दी है, और अब आत्मस्वरूपगवेषियोंको जैनधर्म्मका महत्त्व प्रगट होने लगा है। बावा भागीरथजी वर्णीके उपदेशसे स्थूल बुद्धिके जाटोंने भी जैनधर्म्म अंगीकार किया है; और भारतमें ही क्या इग्लैंडमें भी भारत जैन महामण्डलके सभापति जुगमन्दरलाल बैरिस्टर तथा पण्डित लालनके उपदेशसे

मि. वॉरनने जैनधर्म्मानुसार पंचाणुव्रत ग्रहण किये हैं और इसमें अत्युक्ति नहीं होगी यदि हम कहैं कि उक्त वारन महाशयने जैनधर्म्मके श्रद्धान, ज्ञान और चारित्रमें हममेंसे हजारोंको एक आश्चर्यजनक दूरीपर पीछे छोड़ दिया है। धर्म्मप्रेमियो, मुझे आशा है कि उपर्युक्त उन्नतिसूचक कार्योंको सुनकर हरएक जैनबन्धुके मुखसे हर्षसहित 'जैनधर्म्मकी जय' ऐसे शब्द अवश्य निकलेंगे; क्योंकि अपनी मातृभूमि और स्वधर्म्म तथा स्वधर्म्मियोंकी उन्नतिपर हर्षित न होनेवाले जीवन मृत होते हैं। परन्तु आनन्द वास्तविक वह ही होता है जो दिन प्रतिदिन स्थिर और वृद्धिगत होता रहै, और यह उस ही समय सम्भव है जब कि आप लोग स्वयं निजाधारपर उस आनन्दप्राप्तिकी चेष्टा करेंगे।

मुझे खेद है कि अभी आप लोगोंमें ९९९ प्रतिसहस्र तो अचेत सो रहें हैं, उनको लेश भी खबर नहीं है कि संसारमें क्या २ परिवर्तन हो गये हैं, और भावीमें क्या होते जावेंगे; उनमें निजकी विचारशक्तिका अंश भी नहीं दिखलाई देता, और वे-क्या धार्मिक विश्वासोंमें, और क्या सामाजिक उन्नतिमें—अन्यजनोंके हांके हुए हँकते हैं। ऐसे व्यक्ति सदैव परमुखापेक्षी रहते हैं और उनके लौकिक व पारमार्थिक उभय प्रकारके व्यवहार विना पेंदेके लोटेकी तरह इधर उधर लुढ़कते रहते हैं। १० प्रतिलक्ष हममें ऐसे मिलेंगे जो अपनेको बहुज्ञानी और जैनधर्म्मके सच्चे हितैषी बताते हैं, और जो समझे हुए हैं कि उनके विचार ही सर्वज्ञवचनानुकूल हैं। परन्तु यदि आप गूढ दृष्टिसे कार्य लेंगे तो स्पष्ट विदित होगा कि जो अपने आपको बहुज्ञ कहते हैं, और जिनको दूसरोंके विचार सुनने तकका धैर्य नहीं होता वे ही प्रथम श्रेणीके अज्ञ होते हैं।

ऐसे पुरुषोंके विचारोंकी परिधि केवल गली सड़ी रूढि होती है; उनकी क्रियाएँ भावशून्य और दिखलावेकी होती हैं, और उनकी जात्युन्नतिका केन्द्र स्वाभिमानपोषण है। इतिहासके पत्रोंको खोलके देखिये तो आपको बोध हो जावेगा कि स्वमति-शक्तिरहित जन-समाजके नेतृत्वका पद यदि भाग्यवश ऐसे महानुभावोंको प्राप्त हो जाता है तो वह समाज कभी न कभी अवश्य दुर्निवार आपत्तिमें गिरकर अपना सर्वस्व खो बैठती है। २ प्रतिलक्ष इस प्रकारके सज्जन हैं जो उन्नति व उन्नतिके मार्गको सुष्ठु विचारपूर्वक अनुभव करते हैं, जो आर्षवाक्य और उनके सत्यार्थको ही उन्नतिका सूत्र समझते हैं, जो स्वतन्त्रतया विचारोंके लेनदेनका व्यापार ही उन्नतिधन मानते हैं; परन्तु इतना होते हुए भी बहुमतकी प्रतीक्षामें समय खो रहे हैं। अब आप स्वयं विचार सकते हैं कि इस समय जैनजातिका पुनरुत्थान कितने गिने चुने व्यक्तियोंके आधारपर है।

विवेकी भ्रातृगण, मैं आपको खुले तौरसे जताये देता हूँ कि यह समय पुनरुत्थानका है; विद्याकी ज्योति और उसकी अनिवार्य सहचरी तर्कशक्ति घर २ में पहुँच रही है। स्वयं निश्चय किये विना अब कोई किसीकी बात नहीं मानेगा और न भयसे कोई अपने मनोगत भावोंको छुपानेहीका प्रयास करेगा। "कथं, कस्मात्" की वायु बड़े वेगसे चल रही है, और "पहिलेसे ऐसा ही होता है" ऐसा उत्तर अब जिज्ञासाकी क्षुधाको तृप्त नहीं कर सकता। अब मातापिता वा गुरुओंको अपनी सन्तान वा शिष्य-वर्गको प्रत्येक आज्ञाके लिए हेतु देने होंगे, थप्पड़ व कम्चीसे काम नहीं चलेगा। यह परीक्षाप्रधानी समय क्या लौकिक और क्या

पारमार्थिक सर्व प्रकारके विश्वासोंकी नींव तक पहुँच रहा है। जिनकी नीव कच्ची है अथवा जो इस समयमें अनावश्यक हैं ऐसे विश्वास और क्रियाएँ जड़से उखाडकर फैंकी जा रही हैं; परन्तु जिनकी बुनियाद पक्की है और जो समयकी जुरूरतको भी पूरणेवाले हैं, वे चाहे प्राचीन हों वा अर्वाचीन, सब सहर्ष जमाये जाते हैं, और आदर सत्कार प्राप्त करते हैं। कई पुराने रीति रिवाज टूट रहे हैं और नवीन उनकी जगहपर स्थान पा रहे हैं, कई परम्परागत अन्धश्रद्धाओं और क्रियाओंसे विश्वास उठ गया है; कई प्राचीन विधियोंका पुनर्जन्म–संस्कार हो रहा है और कई नवीनका उनमें मिश्रण किया गया है। अब पुराने स्वर्णपात्रोंमें नवीन पानी भरा जाता है। कालकी बेरोक गति अनादि कालसे ऐसा ही करती आ रही है; द्रव्य नाश नहीं होता, परन्तु उसकी पर्यायोंमें रूपान्तर अवश्य होता है; सत्य नाश नहीं होता, परन्तु उसके व्यवहार मार्गमें जुरूर फेरफार करना होगा; तीर्थक्षेत्रोंकी यात्राएँ बन्द नहीं होंगी, परन्तु बैलगाड़ीके स्थानपर रेलगाड़ीमें सवार होना होगा, मोटरोंमें बैठना होगा, और थोड़े ही कालके पश्चात् स्यात् उड़नखटोलेंमें भी जाना पड़ेगा। यदि इससे विरोध होगा तो यात्राएँ होना ही बन्द हो जावेंगीं। मूलको नाश करके शाखाकी रक्षा करनेवाले सर्वस्व ही खो बैठते हैं। यदि पूछा जाय कि ऐसा क्यों होता है, तो इसका उत्तर समय ही देगा।

प्रिय बन्धुओ, ऐसे पुनरुत्थानके समयमें आप लोगोंको भी अपनी पुरानी टूटी फूटी चाल बदलनी होगी, व्यर्थके कदाग्रह छोड़ने होंगे; “ नवीन बात तो धर्मविरुद्ध ही होती है, ” ऐसे विश्वास गिरा देने होंगे, आपको जैनाचार्योंकी बहुत सी पुरातन

दबी हुई आज्ञाओंको उन्नति-सूर्यकी रोशनीमें लाना होगा, और अनेक व्यर्थ दिखलावेके आडम्बरोंको त्यागना पड़ेगा। समय आपसे आपके विश्वास और क्रियाओंके प्रमाण मांगेगा और आपको उनकी सिद्धि शास्त्रानुसार करनी होगी; अन्यथा विपक्षावस्थामें उनको छोड़ना होगा। 'शास्त्र छपाना महान् पाप है,' 'अंग्रेजी पढ़नेवाले भ्रष्ट होते हैं, 'सम्यक्त्वी तो इस समयमें होना ही असंभवसा है,' "त्यागी व्रती तो कोई हो ही नहीं सकता;" "बाप-दादोंकी रसम छूट नहीं सकती," "स्त्रियां पढ़ने लिखनेसे विधवा हो जाती हैं," इत्यादि अनेक एकान्त विश्वासोंका आपको बहिष्कार करना पड़ेगा। अब जैनधर्म्म पूर्वाचार्योंकी आज्ञानुसार ही चलेगा, कपोलकल्पित व कषायप्रेरित बातोंसे इसकी गति नहीं हो सकती। तदुपरांत इस समय पदार्थविज्ञानके अनेक अद्भुत उपयोगी आविष्कारोंसे दुनियांकी अवस्था बदल गई है। हमारे समस्त कार्य अब समयानुसार उचित रीतियोंसे होंगे अतः हम लोगोंको यदि जीवित रहना है, तो शिक्षामें, धार्मिक विश्वासों व क्रियाओंमें, पारस्परिक व्यवहारोंमें, वाणिज्य व्यवसायोंमें, रीतिरिवाजोंमें, खानेपीने पहिनने आदिके नियमोंमें अर्थात् जविनके प्रत्येक कार्यमें हमको धर्मसे अविरुद्ध परिवर्तन अवश्य करने पड़ेंगे, और यद्यपि थोड़े समयके लिए, व्रण चीरनेकी वेदनाके समान यह परिवर्तन स्थूलदृष्टिमें खटकेंगे, परन्तु वास्तवमें इन्हींसे जैनधर्म्मकी रक्षा होगी, और जैनका अबाध्य अस्तित्व इन्हींसे रहेगा, कालान्तरमें ये ही परिवर्तन सर्वमान्य व निर्दोष माने जाकर दृढ रूपसे व्यवहृत हो जावेंगे।

धर्मवीरो, अब समय निद्रा व आलस्यका नहीं है और न बहुमतकी अपेक्षा व लोकमतसे भय करनेका है। हम सबको कमर कसके खड़े हो जाना चाहिए और निर्भय होकर अप्रतिहत परिश्रमसे भगवान् महावीरकी जय बोलते, धर्मोन्नति व देशोन्नतिके मैदानमें बाजी जीतनी चाहिए। समय आपके मुखकी ओर देख रहा है, विज्ञानकी वायु जैनधर्म्मके अनुकूल चल रही है और राजनीति भी तुम्हें ही सहारा देती है।

एक समय वह था जब इतिहासलेखकोंने जैनधर्म्मको बौद्ध-धर्म्मकी शाखा लिख दिया था, आज भी एक दिन है कि जैकोबी, व्यूलर, हरटेल आदि विद्वान् अपनी खोजसे जैनधर्म्म व जैन Philosophy के स्वतन्त्रताके विषयमें सैकड़ों प्रमाण दे चुके हैं; पाश्चात्य देशोंकी Vegetarian Societies, Societies for the Prevention of Cruelty to Animals, मांसाहारनिषेधक सभाएँ शान्तिप्रचारक सभाएँ, प्रत्यक्ष सूचना दे रही हैं कि अब मानवजाति उस ही धर्म्मको श्रेष्ठ और धारण करने योग्य समझेगी जिसमें 'जीवदया' और 'अहिंसा परमो धर्म्मः'का उपदेश पूर्वापर विरोधरहित दिया गया हो, जो प्राणवधमें कदापि धर्म्म न समझे तथा जिसमें आवश्यक अनावश्यक हिंसाका भेद ही न हो। उपर्युक्त गुणोंसे विशिष्ट धर्म्म पृथ्वीमें केवल जैनमत ही है, और मुझे प्रत्यक्षवत् भासता है कि अब वह समय दूर नहीं है जब कि जैनधर्म्म पुनः दुनियाँभरका मान्य-धर्म्म हो जावेगा। अब चहुँओर स्वतन्त्र-शासनकी पुकार हो रही है और मुझे कोई बाधा विदित नहीं होती कि बाह्य स्वतन्त्रताके अभिलाषी, आत्मिक स्वावलंबनकी ओर क्यो न झुकेंगे। जैनधर्म्म स्वभुजबलावलम्बी क्षत्रियोंद्वारा

प्रणीत हुआ है; इसमें मोक्ष, ईश्वरकी कृपा व उससे भिक्षा मांगनेसे नहीं मिलता और न मोक्षके लिए जैनधर्म्म किसीकी सिफारिशहीकी जरूरत समझता है। इस धर्मकी नींवका पत्थर आत्मकृपाका प्रत्यक्ष सिद्धान्त है। इस उन्नत समयमें जैनधर्म्म ही सार्वधर्म्म होगा। जिस प्रकार 'एकलिपि परिषद्' नागरीलिपिका प्रचार कर रही है, उस ही प्रकार 'एक धर्म्मपरिषद्' की भी आवश्यकता होगी, और वह 'एकधर्म्म' वीतराग अर्हत्प्रणीत आत्मशासन-प्रचारक जैनधर्म्म ही होगा। ऐसे सुअवसरको पाकर भी यदि हम लोग गद्दोंपर पड़े पड़े करवटें बदलते रहेंगे तो मुझे यह ही कहना पड़ेगा कि हम केवल नाममात्रके जैनी हैं; जैनधर्म्मका जोश हममें नहीं है, और जो कुछ सभा आदि हम करते हैं वे केवल ख्यातिलाभके लिए हैं। और हमारी आत्माएँ अभी उन अन्धेरी कोठरियोंमें ही हैं, जहाँ उन्नतिकी झलक नहीं पहुँची।

बन्धुओ, धर्म्मोन्नति व जात्युन्नतिके लिए जो २ मार्ग साधारणतः आजकल बताये जाते हैं वे आप महानुभावोंसे अविदित नहीं हैं, धार्मिक व लौकिक विद्याका प्रचार, स्त्रीशिक्षा, कुरीतिनिवारण, व्यर्थव्ययनिषेध, ऐक्यवृद्धि, आदि अनेक उन्नतिके साधनोंपर प्रत्येक वर्ष सभाओंमें प्रस्ताव पास होते हैं; परन्तु हम उन्नतिके निकट कितने पहुँचे, हमारी गति मन्द है वा तेज, अन्य जातियोंसे हम कितने पीछे हैं और अब शीघ्र सफलता कैसे प्राप्त होगी, हमारी समाज अभीतक बातों ही बातोंसे सन्तुष्ट होनेवाली है वा कुछ करके भी दिखलानेवाली है, हमारी संख्या ह्रासपर है वा वृद्धिपर, और क्यों? इत्यादि विषयोंपर हम लोग बहुत ही कम विचार करते हैं। हम सबसे पीछे जागृत हुए हैं अतः हमको अब अपनी चाल बढ़ाना चाहिए।

प्रिय बन्धुवर्ग, इस समय आप महाशयोंके सन्मुख मैं कतिपय ऐसे विषय रखता हूँ कि जो हमारी शीघ्र व दृढगतिके लिए ऐसे ही आवश्यक व अनिवार्य हैं जैसे कि जीवपुद्गलकी गतिके लिए धर्म्मद्रव्य; और जिनके विना हमारे प्रायः सर्व प्रस्ताव शाब्दिक रूपमें ही रह जाते हैं।

आत्मसमर्पण

बन्धुओ, प्रत्येक धर्म्म व ज्ञातिका गौरव उसके त्यागभावपर निर्भर है; और विशेष करके यह त्यागभाव जैनधर्म्मका तो एक मुख्य अंग है। हमारे नेता अनादिकालसे त्यागी ही होते आये हैं; और जबसे इसमें त्रुटि होने लगी है, तबहीसे पारस्परिक विरोध, थोकबन्दी आदि ऐक्य-नाशक दोषोंने हमारे सामाजिक बलको नष्ट कर दिया है। समदृष्टि और सर्वाकर्षण नेताके मुख्य गुण हैं और ये त्यागहीसे उत्पन्न होते हैं; परन्तु त्यागसे मेरा मतलब अक्रमत्यागसे नहीं है कि जिसने वास्तविक त्यागके उद्देशहीको हममें से लुप्त कर दिया है, त्यागसे मेरा प्रयोजन आचार्योक्त क्रमानुसार, ज्ञानपूर्वक प्रतिमा सेवनसे है; त्यागसे मेरा अर्थ आत्मोन्नतिकी उस अग्निसे है कि जिसमें अहंकार व ममत्वकी आहुति हो जाती है और जीवन एक परोपकारमयी ज्योति होकर समस्त संसारके लिए पूज्य आदर्श होता है। यद्यपि ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, श्रीऋषभ-ब्रह्मचर्याश्रमके संस्थापक बाबा भागीरथजी, ब्रह्मचारी भगवानदी-नजी, व गेंदनलालजीने शिक्षित, जातिहितैषी, धर्म्मज्ञ त्यागियोंके अभावको कुछ दूर किया है, तथापि जो संख्या ऐसे त्यागियोंकी समाजोन्नतिके लिए आवश्यक है, उसका सहस्रांश भी पूरा नहीं है। शिक्षित त्यागी क्या कर सकते हैं, और समाजकी उन्नति

ऐसे ही महात्माओंसे हो सकती है, यह बात इनकी जीवनीसे स्पष्ट विदित है, अतः एक ऐसे बृहत् त्यागीमण्डलकी स्थापना होनी चाहिए कि जिसके सभासद गृहत्यागी, वा परिमित वृत्तिके गृहस्थ हों। वे सर्व एक नियमित शासनपद्धतिके अनुसार जातिसेवाका कार्य करें। हमारा धर्म्म और समय चाहता है कि क्या धनिक प्रतिष्ठित और क्या पण्डितजन सर्वको मिलकर जातिसेवाके लिए अपना जीवन समर्पण करना चाहिए; केवल बातोंसे अब कार्य नहीं चलेगा। धर्म्मोन्नतिके व्यापारमें जितनी अधिक त्यागकी पूंजी आप लोग लगायेंगे उतना ही अधिक लाभ व दृढ प्रभावना होगी। दो चार सौ वा हजार दश हजारकी सम्पत्ति छोड़नेवालेका प्रभाव इस समय ज्यादा नहीं पड़ सकता। जैनधर्म्मकी सच्ची प्रभावना तब ही होगी जब कि सेठ साहूकार राजकीयपदाङ्कित महोदयगण, वकील बैरिस्टर, इंजिनिअर, डाक्टर संसारके प्रवृत्ति मार्गको जलाञ्जलि देकर निवृत्तिमार्गमें आवेंगे और वज्रदन्त चक्रवर्तिकी सी वैराग्य भावना भावेंगे।

जातिशृङ्खलासे मोक्ष.

धार्मिक बन्धुओ, इस त्यागी मण्डलकी स्थापनाके साथ २ आपको जातिभेदके अनावश्यक व शास्त्राज्ञाबाह्य बन्धनको भी शनैः२ढीला करके सर्वथा तोड़ डालना चाहिए। हमारे शास्त्रोंमें वर्णाश्रम धर्म्मका लेख है, प्रायश्चित्तपाठोंमें भी वर्णोंका ही कथन है; भगवद्जिनसेनाचार्यकृत महापुराण भी इसहीकी साक्षी देता है कि आदिब्रह्मा श्रीऋषभदेवने क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यह वर्णत्रय स्थापन किया और तत्पश्चात् उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीने ब्राह्मणवर्ण स्थापन किया। इस प्रकार चार वर्णोंका व्यवहार कर्म्मभूमिकी आदिमें प्रारंभ

हुआ था। अग्रवाल, खण्डेलवाल, परवार, ओसवाल, हूमड़, शेत-वाल आदि भेदोंका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता और जैसे खण्डेला ग्रामके क्षत्रिय तथा इतर वर्णीय, जैनधर्म अंगीकार करने-वाले खण्डेलवालोंके नामसे विख्यात हुए, राजा अग्रकी सन्तान-वाले अग्रवाल कहलाए; इस ही प्रकार अनेक जातियां उत्पन्न हुईं और होती रहती हैं। इक्ष्वाकुवंश, हरिवश, कुरुवंश आदि वंशोंकी उत्पत्ति भी इस ही तरह हुई है। परन्तु जैसी खानापानादि व्यवहारकी संकीर्णता इस समय दिखलाई देती है, वैसी पहिले कभी नहीं थी। धार्मिक सिद्धान्त और प्रकृतिके अनुसार वर्णाश्रम बन्धनकी आवश्यकता तो प्रतीत होती है; परन्तु जातिभेद तो व्यर्थ उन्नतिबाधक व वात्सल्यघातक जंजीर है। इससे हमारी मूल वर्णा-श्रम धर्म्मशृंखलाहीका पता जाता रहा। मुझे कोई कारण नहीं विदित होता कि जैनधर्म्मालम्बिनी समान वर्णकी जातियाँ परस्प-रमें राटीबेटी व्यवहार क्यों न करें? न धर्म्म ही इसको रोकता है और न कोई लौकिक हित ही इससे होता है। जिन जातियोंमें जैन व अजैन दोनों धर्म्म प्रचलित हैं, उनमें यदि जैनकी अल्प संख्या होती है तो वे अजैनसे विवाह आदि व्यवहार करते हुए बहुत दुःख सहते हैं और उनकी पुत्रियोंको विवश जैनधर्म्म त्यागना पड़ता है; अजैनोंकी पुत्रियाँ जो उनके घरोंमें आती हैं वे जैन संस्कारसे शून्य होती हैं, जिससे भावी सन्तानं भी जैनत्वशून्य ही रहती है। धर्म्मोन्नतिके प्रेमियो, जरा विचारो कि इस जातिबन्धनसे धर्म्मको कितनी हानि पहुँची है? इसे हठ और हानिकारक रूढि न कहें तो क्या कहा जावे? अतः यदि आप धर्म्मोन्नतिके इच्छुक हैं तो वर्णाश्रम धर्म्मको दृढ कीजिए और जातिबन्धनको उच्छेद

कर जैनधर्म्मकी वात्सल्य डोरसे जैनजातिको बलिष्ठ करनेका उद्योग कीजिए।

बन्धुओ, कौन ऐसा जैनी है, जिसका हृदय इस बातको सुनकर दुःखित नहीं होता कि गत मनुष्यगणनामें जैनियोंकी संख्या करीब १२ लक्षके आई है। ई० स० १९०१ की गणनासे करीब एक लक्ष जैनी कम हो गये हैं; प्रत्येक मनुष्य-गणनामें जैन-संख्या न्यून ही न्यून होती जाती है, और यदि यह ही न्हासक्रम जारी रहा तो १५० वर्षके पश्चात् भारतवर्षमें जैनी नामको भी न मिलेगा। आपको विदित है कि हर एक धर्म्म व जातिका बल उसकी जनसंख्यापर निर्भर है। अन्य धर्म्मावलम्बियोंकी अपेक्षा हमारी संख्या मुट्ठीभर है, फिर हमारा प्रभाव व राष्ट्रबल क्या हो सकता है ? तदुपरान्त जिस स्रोतमेंसे पानी खर्च ही खर्च होगा और आमद कुछ नहीं होगी, फिर वह शुष्क न होगा तो क्या होगा ? कर्म्मोंके आश्रवनिरोध और निर्जरासे तो मोक्ष ही होता है। यदि हममें मिथ्यात्वविमोचनके द्वारा नवीन संस्कृत जैन न बढ़ेंगे तो हम लोग स्वयं भी उत्साहहीन हो जावेंगे। बन्द तालावका पानी गन्दा अवश्य हो जाता है। आज कुँअर दिग्विजयसिंहजी जो काम कर रहे हैं, और थोड़ेसे समयमें जो कुछ उन्होंने अपने जीवनको उदाहरणरूप करके दिखलाया है वह किसी भी जैनने करके न दिखलाया। इसका कारण वह ही है कि हम लोग निजको जैनधर्म्मके ठेकेदार समझते हैं। ऋषियोंकी छोड़ी हुई निधियोंके हम कोषाध्यक्ष हैं। परन्तु कृपण हो गये हैं। जैनधर्म्मके प्रकाशनसे हम विमुख हो रहे हैं, हमारे सिवाय किसी अन्यका जैनी होना हम असंभव समझते हैं। यदि कोई

जैनधर्म्म अंगीकार करता है तो हम उसको अपनेमें मिलाना और उसका यथायोग्य आदर सत्कार करना बुरा समझते हैं। हमको यह विचार नहीं होता कि तीर्थंकरोंके समवसरणमें सर्व प्रकारके मनुष्य उपदेश सुननेको आते थे। वहाँ तिर्यंच तक भी वर्जित नहीं थे, फिर शूद्र मनुष्योंकी बात ही क्या? हमारे आचार्योंने भी ऐसा ही किया है। जैसे आजकल ईसाई व आर्यसमाजी ग्रामोंके ग्राम ईसाई वा दयानन्दी बना लेते हैं, वैसे ही जैनाचार्य करते थे, इतिहास इसका स्पष्ट प्रमाण देता है। खेद है कि हम लोग हमारे पूर्वजों-के मार्गोंको त्यागते जाते हैं और निजकल्पित रोकें लगा २ कर अपने आपको नाश कर रहे हैं। सज्जनो, अब समय भी बलवान् हो गया है, जैनधर्म्मके विषयमें जिज्ञासा चहुँओर फैल गई है, आत्माएँ अपना भोग मांगने लगी हैं, आपको स्मरण रहे कि आप जैनधर्म्मको कितना भी छुपाकर रखिये, आप कितने ही दृढ बद्धमुष्टि रहिए, यह धर्म्मामृत दूसरोंके हाथोंमें भी जा वेगा; यह भगवान महावीरका प्रसाद लोग बाँट २ कर अवश्य खायेंगे, इसलिए आप ही सुगमतासे इसके प्रचारमें कटिबद्ध होकर यशके भागी हो जावें तो अच्छा है; अन्यथा समय तो जो कुछ चाहेगा वह करा ही लेगा। अब चमत्कारके दिन हैं, बीसियों सम्यक्त्वी जीव प्रगट होंगे, यहाँ तककी शूद्र और म्लेछ भी सम्यक्त्वी होकर मोक्षसुखके पात्र बनेंगे। ब्रिटिश–शासनके शान्तिमय राज्यमें अब निर्भय होकर जैनधर्मका झंडा खडा करना चाहिए। जीवमात्रको चाहे किसी भी जाति व वर्णका क्यों न हो हमको जिनवाणी, बिना संकोच सुनानी चाहिए और जैनकी संख्या बढ़ानी चाहिए, जिससे हमारा धार्मिक व सामाजिक बल भी स्थिर रहे तथा अधिक जीवोंका कल्याण भी हो।

इस मिथ्यात्वविमोचनके लिए निम्नलिखित बातोंकी बहुत आवश्यकता है; आवश्यकता ही नहीं किन्तु मैं यह कहूँगा कि इनके विना हम मिथ्यात्वविमोचनका कार्य ही भले प्रकार चला नहीं सकते। मिथ्यात्वविमोचनके लिए मुख्य साधन चार हैं–(१) जैनसिद्धान्तप्रचारक मण्डल Jain Publishing Society (२) जैन सार्वजनिक पुस्तकालय Jain Public Library (३) जैन नित्याध्ययन पाठ और (४) जैनधर्मशब्दकोष। इन चारों कार्योंकी आवश्यकता स्वयं विदित है; और ये एक साथ ही संपादित होने चाहिए। क्रिश्चियन लोगोंकी बाइबल आज दिन ९९९ भाषाओंमें अनुवादित है। हम लोगोंको भी सर्वसाधारणोपयोगी एक 'जैन नित्याध्ययन पाठ' बनाना चाहिए और उसको दुनियाँ भरकी भाषाओंमें अनुवादित करके प्रकाशित करना चाहिए। हमको प्रत्येक स्थानमें ऐसे पुस्तकालय स्थापन करने चाहिएँ जहां सर्वसाधारणकी स्वतन्त्रतया गति हो और जहां जैनधर्म्म व साहित्य पढ़नेको मिल सके। इसके विना धर्म्मका प्रचार सुगम नहीं होता।

बन्धुओ, उपर्युक्त विषय आपके सन्मुख रखकर मैं अन्तमें फिर अपनी वह ही पुरानी शिक्षासम्बन्धी टेर सुनाता हूँ कि जिसको सुनते २ स्यात् आप थक गये होंगे; परन्तु मैं अभीष्टप्राप्ति तक चुप नहीं बैठूँगा। यह है मेरा प्यारा उन्नति–गर्भ The Central Jain College ऐसे कालिजके अभावसे ही हमारे नव युवक जैनश्रद्धानसे शून्य रह धर्म्मभ्रष्ट होकर सामुदायिक बलको घटा रहे हैं। सिक्खोंका खालसा कालिज, दयानंदियोंका वैदिक कालिज, मुसल्मानोंका अलीगढ़ कालिज, और हिन्दुओंका सेंट्रल हिन्दू का-

लिज ही नहीं किन्तु हिन्दूयूनिवर्सिटी भी, जैन कालिजकी अनिवार्य्य आवश्यकताका प्रत्यक्ष प्रमाण दे रही है। मिसेज वेसन्टने बनारसमें हिन्दू कालिज स्थापन करके अब एक नये थियासोफ़िकल कालिजकी अदयार मदरासमें स्थापना करनेका संकल्प किया है। धर्म्मबन्धुओ, बहुत कहनेसे क्या? यदि आपका संसारमें धन और यशकी प्राप्ति, राज्यसन्मान, राज्याधिकार और लोकोन्नतिके साथ साथ धर्म्मरक्षाका उत्साह है तो "शुभस्य शीघ्रम्" की उक्तिपर कार्य्यबद्ध होकर इसी समय इस विद्यामंदिरकी नीव डालनेका दृढ संकल्प करके कार्य्य प्रारम्भ कर दीजिये।

मुझे यह प्रगट करते हुए हर्ष होता है कि धार्म्मिक व लौकिक शिक्षाके प्रचारका काम जैनशिक्षाप्रचारक समिति जयपुर वर्तमान आवश्यक रीतिके अनुसार कर रही है और महापुराणकी आज्ञानुसार बालकोंको ब्रह्मचारी रखकर उदासीन त्यागियोंके सत्संगमें धार्म्मिक तथा लौकिक शिक्षाप्रदानका प्रबन्ध श्रीऋषभब्रह्मचर्य्याश्रम हस्तिनापुरमें प्रारम्भ हो गया है।

आप महानुभावोंको उचित है कि इन संस्थाओंकी तनमनधनसे सहायता करें तथा ऐसी ही संस्थाएँ प्रत्येक प्रान्तमें स्थापन करके शिक्षाके प्रचारमें कटिबद्ध हों। हमें स्त्रीशिक्षाके लिये भी एक आदर्श विद्यालयकी आवश्यकता है, और मेरा अभीष्ट उस दिन पूर्ण होगा जब कि आप श्राविकाश्रम बम्बईको उन्नत करके Jain Women's College के रूपमें प्ररूपण कर देंगे।

सज्जनो, जो २ मुख्य और उपादेय विषय मैंने आपके सामने रक्खे हैं, यदि उनपर हम लोग कटिबद्ध होकर प्रयास करें तो कठिन नहीं हैं। हम लोग अष्ट कर्मोंको नाश करके

सिद्ध होनेकी इच्छा रखनेवाले हैं हमारे सामने ऐसे कौनसे कार्य हैं जिनको हम न कर सकें ? हां ! प्रारंभमें, 'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु' इस नीतिके श्लोकानुसार दृढ रहना आवश्यक है, और यथार्थ तो यह है कि जबतक परीषह न सहेंगे तबतक हम मनोरथ प्राप्त ही कैसे कर सकते हैं ? मुझे आशा है कि आप लोग कठिनाइयोंको झेलते हुए आगे २ पदारोपण करते जावेंगे और उस दिनको शीघ्र ही दिखा देंगे जब कि घर २ में प्रातःकाल पंच णमोकार मन्त्रका जाप हुआ करेगा, और भगवान महावीरके शासनकी जयध्वनि चहुँओर गूंज उठेगी।

धर्म्मबन्धुओ, मैं अब अपनी मनोकामनाओंको प्रगट करके इस भाषणको समाप्त करता हूँ, और आशा करता हूँ कि आप सब धर्म्मभक्त इन कामनाओंको अपनी प्रार्थनाके समय अवश्य स्मरण करेंगे। मेरी कामना है कि गुरुदेवके प्रसादसे वह दिन आवे कि हम लोग पारस्परिक द्वेष, इर्षाको त्याग कर धर्मोन्नति व जात्युन्नतिमें कटिबद्ध हो जावें। मेरी तीव्र इच्छा है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, आदि भिन्न २ आम्नायाश्रयी पारस्परिक धार्मिक भेदोंके कारण सामान्योन्नतिमें पृथक् न रहेंगे किन्तु जैन सामुदायिक बलको वृद्धिंगत करनेमें प्रयत्नशील होंगे और शीघ्र ही एक Central Jain College खड़ा कर देंगे। मेरी उत्कट अभिलाषा है कि जैनियोंके घर घरमें विद्या, धन, धान्यादिकी वृद्धि हो, आबालवृद्ध यथा शक्ति त्रिकाल सामायिक व स्वाध्याय करें, जैनधर्म्मके सिद्धान्तोंकी चर्चा ऐसी रोचक और प्रिय हो जैसे ताश खेलना और पतंग उड़ाना, जैनधर्म्मका स्वरूप प्रत्येक जैनीके जीवनचरित्र और व्यवहार कार्य्यसे विदित हो, और जैनधर्म्मका

महत्त्व हमारी प्रत्येक लौकिक क्रियापर अङ्कित हो। और मेरी लालसा है कि मुझे उस समयके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हो, जब कि ग्राम २ में धर्म्मज्ञ Graduate जैन मुनियोंका संघ विहार करताहुआ जीवोंको भवाब्धिमें गिरनेसे बचावे, और मैं उनके दर्शनोंसे अपने नेत्रोंको सफल करके उनहींमें तन्मय हो जाऊँ। मेरी अन्तिम प्रार्थना है कि:—

"क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्, धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग्विकिरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायी।"

इति शुभम्।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

नववाँ भाग] पौष, श्रीवीर नि०सं०२४३९ [तीसरा अंक।

विनोद-विवेक-लहरी।

(६)

उदर-दर्शन।

वेन्थाम हितवाद-दर्शनकी रचना करके यूरोपमें अक्षय कीर्ति स्थापन कर गये हैं। मैं हितवाद-दर्शनका विरोधी नहीं-अनुमोदक हूं; किन्तु इस बातको आप जानते हैं या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं कि मैं भी एक सुयोग्य दार्शनिक पण्डित हूं। मैंने उक्त हितवाद-दर्शनका आधार लेकर, कुछ तोड़ मरोड़ कर और कुछ नवीन गढ़कर एक नये दर्शनशास्त्रकी रचना की है। वास्तवमें देखा जाय, तो यह भारतवर्षमें प्रचलित हितवाद-दर्शनकी केवल एक नई व्याख्या है। यहां मैं उसका स्थूल अभिप्राय संक्षेपरूपसे निबद्ध करता हूं। यह दर्शन प्राचीन पद्धतिके अनुसार सूत्र रूपमें लिखा गया है और साथ ही उसका भाष्य भी कर दिया

गया है। इसके सूत्रोंकी रचना मैंने हिन्दीमें ही की है; परन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि मैं संस्कृत नहीं जानता। नहीं मैं संस्कृतका महान् पण्डित हूं—मेरे पीछे पद-वियोंके बड़े बड़े पुंछल्ले भी लगे हैं; परंतु साधारण पाठक संस्कृत समझ नहीं सकेंगे, इसलिए उनपर द्रवीभूत होकर मैंने हिन्दीमें ही सूत्र और भाष्यकी सृष्टि की है। लीजिए, अब मैं अपने दर्शन-शास्त्रका प्रारंभ करता हूं:—

ओं नमो भगवते उदरदेवाय।

अथ सूत्रावतारः—जीवशरीरस्थ वृहत् गह्वर विशेषको उदर कहते हैं॥ १॥

भाष्य—'वृहत्' शब्दसे यह द्योतित होता है कि नाक, कान आदि क्षुद्र गह्वरोंको (गड्ढोंको) उदर नहीं कह सकते। यदि कहेंगे, तो बड़ा भारी दोष उपस्थित हो जायगा।

'जीवशरीरस्थ' पदसे सूत्रकारकी दूरदर्शिता प्रगट होती है। यदि यह विशेषण न दिया जाता, तो कोई पर्वत-गुहा आदिको ही उदर समझ लेता और उसकी पूर्ति करनेका प्रयत्न करने लगता।

'गह्वर'—यद्यपि जीवशरीरस्थ गह्वर विशेष ही उदर शब्दका वाच्य है; तथापि अवस्था विशेषमें अञ्जलि आदि भी उदरमें गिन लिये जाते हैं। इसलिए कभी उदरकी और कभी अञ्जलिकी पूर्ति करनी चाहिए।

सूत्र—उदरकी त्रिविध पूर्ति ही परम पुरुषार्थ है॥ २॥

भाष्य—सांख्यका भी यही मत है। आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक इस प्रकार त्रिविध उदरपूर्ति है।

आधिभौतिक—लड्डू, पेड़ा, बर्फी, हलुआ, पूरी, कचौरी आदिभौतिक सामग्रीके द्वारा जो उदरपूर्ति की जाती है, उसे आधिभौतिक पूर्ति कहते हैं।

आध्यात्मिक—जो लोग बड़े आदमियोंके वचनोंसे लुब्ध होकर काल व्यतीत करते हैं, उनकी आध्यात्मिक-उदरपूर्ति कही जाती है।

आधिदैविक—दैवकी कृपासे प्लीहा, यकृत आदि रोगोंके द्वारा जिनका उदर भर जाता है. उनकी आधिदैविक उदरपूर्ति है।

सूत्र—इनमें आधिभौतिक पूर्ति ही विहित है ॥ ३ ॥

भाष्य—'विहित' शब्दसे अन्यान्य पूर्तियोंका निषेध हुआ कि नहीं, इसकी मीमांसा आगेके भाष्यकार करेंगे।

अब सिद्ध हुआ कि उदर नामक महा गह्वरमें लड्डू पेड़ा आदि भौतिक पदार्थोंका प्रवेश ही पुरुषार्थ है। अतएव आगे इस बात-की विवेचना की जाती है कि इस गड्ढेमें किस किस प्रकारसे उक्त भूतोंका प्रवेश कराया जा सकता है।

सूत्र—पूर्व पण्डितोंने पुरुषार्थके विद्या, बुद्धि, परिश्रम, उपासना, बल और प्रतारणा ये छह उपाय बतलाये हैं।

भाष्य—१ विद्या किसे कहते हैं, इसका समझना कठिन है। किसी किसीका मत है कि लिखना, पढ़ना सीखनेको विद्या कहते हैं। कोई कोई कहते हैं कि विद्याके लिए विशेष लिखना पढ़ना सीखनेकी ज़रूरत नहीं। पुस्तकें लिखना और अखबारोंमें लेख लिखना आनेसे ही काम चल जाता है। परन्तु कोई कोई इसका विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि जो लिखना पढ़ना अच्छी तरहसे नहीं जानता, वह ये काम कैसे कर सकता है? किन्तु हमारी समझमें इस प्रकारका तर्क करना बिलकुल वाहियात है। मगरका बच्चा अण्डेसे

निकलते ही पानीमें डुबकी लगाता है—उसे सीखनेकी जरूरत नहीं होती। इसी प्रकारसे हमारे देशके लोगोंमें विद्या स्वतःसिद्ध होती है—उन्हें लिखना पढ़ना सीखनेकी आवश्यकता नहीं।

२ बुद्धि—जिस आश्चर्यकारिणी शक्तिके द्वारा आमको इमली और इमलीको आम बना सकते हैं, उसी शक्तिको बुद्धि कहते हैं। जिस तरह कृपण अपने संचित किये हुए धनको आप ही देख सकता है दूसरे लोग उसे नहीं देख सकते, उसी प्रकार हमारी इस बुद्धिको दूसरे नहीं देख सकते—हम ही देख सकते हैं। पृथिवीकी समस्त सामग्रियोंकी अपेक्षा मालूम होता है कि जगतमें इसीकी अधिकता है। क्योंकि कभी किसीको यह कहते नहीं सुना कि इसे हमने थोड़ी पाई है।

३ परिश्रम—ठीक वक्तपर गरम गरम भोजन करना, तत्पश्चात् कोमल बिछौनेपर नींद लेना, हवा खानेको जाना, पान खाना, तम्बाकू पीना, स्त्रीके साथ सरस वार्तालाप करना इत्यादि गुरुतर कार्योंके सम्पादन करनेका नाम परिश्रम है।

४ उपासना—किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें यदि कोई बात कही जाती है, तो या तो उसका गुणकीर्तन किया जाता है या दोषकीर्तन। अकसर लोगोंका यह खयाल है कि दोषोंके न होनेपर भी दोषकीर्तन करनेको निन्दा और दोषोंके होनेपर दोष वर्णन करनेको स्पष्टवादिता कहते हैं, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं हैं। किसी क्षमताशाली व्यक्तिके वास्तवमें दोषी होनेपर भी दोषकीर्तन करनेको निन्दा और दोषी न होनेपर भी दोषकीर्तन करनेको स्पष्टवक्तृता या रसिकता कहते हैं। और गुणोंको विषयमें देखा जाय, तो गुणहीनके गुणकीर्तन करनेको न्यायनिष्ठता और वास्तविक गुणीके

गुणकीर्तन करनेको उपासना कहते हैं। यहां उपासनासे यही अभिप्राय लेना चाहिए।

५ बल—बड़ी बड़ी लम्बी चौड़ी बातें मारना, लाल लाल आँखें दिखलाकर जोर जोरसे चिल्लाना, धमकाना, मुँहसे अनर्गल उर्दू अँगरेजी और निष्ठीवन (थूक) की वृष्टि करना; दांतोंसे होंठ चबाना, दांत पीसना, थप्पड़ लात घूंसा बतलाना और इसी तरह साढ़े त्रेपन प्रकारकी और और अंगभंगी बतलाना और विपक्षकी थोड़ी भी तैयारी देखकर 'नौ दो ग्यारह' हो जाना—इत्यादिको बल कहते हैं।

बल छह प्रकारके हैं, यथा—

मौखिक—गाली, गलौज, निन्दा, आदि।

हस्त—तर्जनी, घूंसा, मुक्का दिखलाना आदि।

पाद—पलायनादि।

चाक्षुष—रोना आदि। यथा चाणाक्य पण्डितस्य "बालानां रोदनं बलं" इत्यादि।

त्वाच—मारपीट सहन करना आदि।

मानस—द्वेष, हिंसा आदि।

६. प्रतारणा—निम्न लिखित व्यक्तियोंको प्रतारक समझना चाहिए। एक, दूकानदार। प्रमाण लीजिए—दूकानदार चीज बेचकर दाम मांगता है। जितने दाम देनेवाले हैं, उन सबका ही प्रायः यह मत रहता है कि हम चीज खरीदते वक्त ठगा गये।

दूसरे, चिकित्सिक। प्रमाण—रोगीके अच्छे हो जानेपर यदि वैद्य फीस मांगता है, तो रोगी अकसर यही सिद्धान्त कर बैठते हैं

कि अच्छे तो हम आप ही आप हो गये हैं. ये हजरत यों ही बातें बनाकर हमें ठगना चाहते हैं।

तीसरे, धर्मोपदेशक। ये सबमे प्रसिद्ध प्रतारक (ठग) हैं। ये ठग हैं. इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि ये किसीसे धनादि पानेकी इच्छा नहीं रखते। इत्यादि।

सूत्र—इन छह प्रकारके उपायोंद्वारा उदरपूर्ति या पुरुषार्थ-साधन असाध्य है ॥ ९ ॥

भाष्य—इस सूत्रसे पूर्व पण्डितोंके मतका खण्डन किया गया। विद्यादि छह प्रकारके उपायोंसे उदरपूर्ति नहीं हो सकती, इसके यहां क्रमशः सुबूत दिये जाते हैं—

विद्या—विद्यासे यदि उदरपूर्ति होती. तो हिन्दीके समाचार-पत्र भूखे क्यों मरते?

बुद्धि—यदि बुद्धिसे उदरपूर्ति होती, तो गधे बोझा क्यों ढोते?

परिश्रम—परिश्रमसे यदि होती, तो बाबू लोग क्लर्कगीरी क्यों करते?

उपासना—यदि उपासनासे होती, तो साहब लोगोंका अनुग्रह कमलाकान्तपर क्यों नहीं?

बल—यदि बलसे होती. तो हम पढ़कर मार क्यों खाते?

प्रतारणा—यदि प्रतारणासे होती, तो कभी कभी शराबकी दूकानोंका दीवाला क्यों निकलता है?

सूत्र—उदरपूर्ति या पुरुषार्थ केवल हितसाधनके द्वारा साध्य है ॥ ६ ॥

भाष्य—उदाहरणः—ब्राह्मण पंडित, लोगोंके कानोंमें मन्त्र फूंककर उनका हितसाधन करते हैं। प्रतिष्ठाचार्य लोग हजार दो हजार रुपया लेकर प्रतिष्ठा करानेवालेका हितसाधन करते हैं। यूरोपकी जातियोंने अनेक जंगली जातियोंका हितसाधन किया है। रूस इस समय ईराण और मंगोलियाके हितसाधनमें लग रहा है, बालकन राष्ट्र टर्कीका हितसाधन कर रहे हैं और इंग्लेंड तिब्बतका हितसाधन करना चाहता है। न्यायाधीश न्याय करके देशका हित-साधन करते हैं और प्रकाशक लोग बुरी भली पुस्तकें प्रकाश करके देशका हितसाधन करते हैं। इन सबकी प्रचुर परिमाणसे उदर-पूर्ति होती है।

सूत्र—अतएव सबको देशका हितसाधन करना चाहिए।

भाष्य—इस अन्तिम सूत्रके द्वारा हितवाददर्शन और उदरद-र्शनकी एकताका प्रतिपादन किया गया। अतएव यहींपर कमला-कान्त शर्माके सूत्रग्रन्थकी समाप्ति हो गई। भरोसा है कि भारत-वासी इसे सप्तम दर्शनशास्त्र समझकर अपने मस्तकपर चढ़ावेंगे।

श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती।

पुस्तकालय।

एक अँगरेज विद्वानने लगभग पांचसौ वर्ष पहले पुस्तकोंकी प्रशं-सामें लिखा हैः—“ग्रन्थ हमारे गुरु हैं; परन्तु वे दूसरे गुरुओंके समान अपने विद्यार्थियोंको ज्ञानदान देते समय न छड़ी या बेतका उपयोग करते हैं, न कठोर वचन कहते हैं और न उन्हें कभी तनख्वाह देनी पड़ती है। वे कभी आराम नहीं करते। तुम जब

उनके पास जाओ, तब ही सिखानेके लिए तैयार रहते हैं। तुम्हारी शंकाओंका वे खुले दिलसे समाधान करते हैं, कोई बात तुमसे छुपाकर नहीं रखते। उनके विषयमें यदि तुम्हारी अश्रद्धा हो जाय, तो वे अप्रसन्न नहीं होते और तुम्हारी मूर्खता देखकर वे कभी हँसते नहीं। एक पुस्तकालयका दर्जा जो कि सब प्रकारके ज्ञानोंका भंडार है, धनके भंडारसे बहुत ऊंचा है। जो मनुष्य सत्यप्रेमी है, जो सच्चे सुखकी प्राप्ति करना चाहता है, जो विविध शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, और जिसकी इच्छा धर्मका रहस्य समझनेकी है, उसे ग्रन्थोंके साथ परिचय रखना बहुत ज़रूरी है।"

वर्तमान समयमें तो इस कथनकी यथार्थता और भी अधिक स्पष्टतासे दिखती है। इस समय देखिए, पुस्तकें कितनी सुलभ हो गई हैं। छापनेकी कलाके कारण पुस्तकें सुवाच्य, सुन्दर और विपुल हो गई हैं, साथ ही उनका सस्तापन भी हद्द दर्जेपर पहुंच गया है। पान तम्बाकूके लिए एक दिनमें जितना खर्च लगता है, उतने ही खर्चसे एक सप्ताह भरके वांचने योग्य पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं। प्राचीन समयमें पुस्तकोंके लिए बहुत दाम खर्च करना पड़ते थे और उतनेपर भी उनका मिलना बहुत कठिन था। प्राचीन कालकी पुस्तकें ताड़पत्रोंपर लिखी जाती थीं और उनके बांचनेमें बहुत परिश्रम करना पड़ता था; परन्तु वर्तमानमें वे बहुत ही सुन्दर कागजोंपर छापी जाती हैं और बड़े बड़े गहन विषयों-की पुस्तकें भी अब आरामसे बांची जा सकती हैं। अब हमें प्राचीन कालके ग्रन्थोंके सिवा हजारों नये नये ग्रन्थ भी पढ़नेके लिए मिलते हैं! पहले केवल इसी देशके ग्रन्थ मिलते थे; परन्तु अब समस्त संसारके विद्वानोंके ग्रन्थ हमारे लिए सुलभ हैं! अब रसायनशास्त्र,

भूगर्भशास्त्र, मानसशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र आदि अनेक नये नये शास्त्र बन गये हैं और बनते जाते हैं । वर्तमानमें जो नयी नयी बातोंकी खोजें की गई हैं, उनके योगसे इतिहास, भूगोल, ज्योतिष आदि विषय पहलेकी अपेक्षा बहुत ही मनोरम हो गये हैं ।

पदार्थविज्ञान आदि शास्त्रोंके योगसे इग्लेंड आदि देश इतने धनाढ्य हो गये हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है । इन शास्त्रोंके कारण सम्पत्तिकी वृद्धि तो होती ही है, साथ ही बहुतसी बातोंमें हमारा खर्च भी कम हो जाता है । इससे समझना चाहिये कि पाठशाला, पुस्तकालय, पदार्थसंग्रहालय (अजायबघर) आदि स्थापित करनेमें जो धन खर्च किया जाता है, वह व्यर्थ नहीं जाता— उससे देशके धनकी बढ़वारी होती है । परन्तु पाठशालाओं और सार्वजनिक पुस्तकालयोंके स्थापित करनेका मुख्य उद्देश्य धनवृद्धि करना नहीं । सर्वसाधारण लोगोंके जीवनको सुखी बनाना ही उनके स्थापित करनेका उद्देश्य है । सामान्य लोगोंकी अपेक्षा शहरोंके मजदूरोंके लिए पुस्तकालयोंकी बहुत आवश्यकता है । उनकी निरन्तरकी मजदूरी बड़ी ही दुःखदायक होती है । यदि विचारदृष्टिसे देखा जाय, तो उनकी अपेक्षा जंगली लोगोंका जीवन सुखकारक होता है । क्योंकि उन्हें निरन्तर एक ही प्रकारका काम नहीं करना पड़ता । एक जंगलसे दूसरे जंगलमें जाकर रहना, अपने रहनेके लिये झोपड़ियां बांधना, जो पदार्थ मिल जावे, उसे ही पकाकर या कच्चा ही खा लेना, शिकार करनेके लिए जुदा जुदा तरहके उपाय करना, इस तरह उन्हें कभी कुछ और कभी कुछ करना पड़ता है । इसी प्रकारसे किसीनोंके कामोंमें भी बहुत अदलबदल हुआ करती है । उन्हें जोतना, बोना, नींदना, खेतोंकी रखवाली

करना, बाड़ी लगाना, काटना, मींजना, उड़ावनी करना, आदि तरह तरहके काम करना पड़ते हैं। ये सब काम हमें जितने सहज मालूम होते हैं, उतने नहीं हैं। इन कामोंसे उन्हें अपनी बुद्धिसे बहुत कुछ काम लेना पड़ता है। **वर्डस्वर्थ** नामक प्रसिद्ध कविके विषयमें एक आख्यायिका इस प्रकार प्रसिद्ध है कि–
"एक बार किसी मनुष्यकी इच्छा हुई कि मैं उक्त कविके अध्ययन करनेके स्थानको देखूं। जब उसने कविके नौकरसे पूछा कि वह स्थान कहां है? तब उसने उत्तर दिया कि मेरे मालकके बैठनेका स्थान तो यह है; परन्तु उनका अधिक अध्ययन प्रायः खेतों और जंगलोंमें ही होता है।" गरज यह कि किसानोंको खेतीके कामकाजोंसे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। उन्हें खेतीके सम्बन्धमें कितना ज्ञान होता है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। उन्हें यद्यपि पुस्तकोंसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता–खेतीसे ही होता है, तो भी ज्ञानके विषयमें उनकी योग्यता कुछ कम नहीं। परन्तु जिन्हें दूकानोंमें या कारखानोंमें बैठकर काम करना पड़ता है, उनका जीवन बड़ा ही दयाजनक है। उन्हें निरन्तर एक ही प्रकारका काम करना पड़ता है। देशके व्यापारकी ज्यों ज्यों वृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों श्रमविभाग बढ़ता जाता है और उससे मजदूरोंका काम कष्टजनक होता जाता है। उदाहरणके लिए किसी एक कुर्सियां बनानेवाले बड़े भारी कारखानेको ले लीजिए। उसमें जितने मजदूर काम करते हैं, उनमेंसे कुछ तो ऐसे होते हैं जिन्हें सारे दिन कुर्सियोंके केवल पाँव ही बनाना पड़ते हैं, कुछ ऐसे हैं जो केवल हाथ ही बनाते रहते हैं और कुछ ऐसे हैं जो केवल पालिश ही किया करते हैं। यह ठीक है कि इस तरहसे प्रत्येक मजदूर

अपने अपने काममें बहुत होशयार हो जाता है और काम भी जल्दी होता है; परन्तु इस प्रकारके मजदूरोंका मन बहुत ही संकुचित हो जाता है और वे एक प्रकारके बोलने चालनेवाले यंत्र ही बन जाते हैं। बम्बई सरीखे शहरोंके मजदूरोंकी यही दशा है और ज्यों ज्यों यंत्रकलाका प्रचार बढ़ता जायगा, त्यों त्यों अन्यान्य शहरोंमें भी यही हाल होता जायगा। इन मजदूरोंके मनकी संकीर्णता मिटानेके लिए और उनके जीवनको कुछ अंशोंमें सुखमय बनानेके लिये पुस्तकालयों सरीखा दूसरा उपाय नहीं। यह ठीक है कि मजदूरोंको अवकाश बहुत कम मिलता है; परन्तु जब मिलता है, तब वे उसे आलस्य या व्यसनोंमें खो देते हैं। यह ठीक नहीं। फुरसतका वक्त बड़ी ही कीमती चीज़ है। यदि उसका उचित उपयोग किया जाय, तो उससे बहुत कुछ आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है और यदि वही आलसमें खो दिया जाय, तो उलटा दुःख होता है। यदि किसी मनुष्यको काम न हो-रोजगार न हो, तो उसे अपने समयका क्या उपयोग करना चाहिए? मेरी समझमें यदि वह किसी पुस्तकालयमें जायगा, तो अपने समयका बहुत कुछ सदुपयोग कर सकेगा।

जिस कारण हम अपने बच्चोंको शिक्षा देते हैं, उसी कारण प्रौढ़ अवस्थाके मनुष्योंको भी शिक्षाकी आवश्यकता है। वर्तमानमें जहां तहां प्रारंभिक पाठशालायें खुल गई हैं। उनमें छोटे छोटे बच्चोंको शिक्षा दी जाती है। वहां वे लिखना पढ़ना सीख लेतें हैं और बांचनेका भी उन्हें शौक लग जाता है। हमको विश्वास है कि शिक्षासे मनुष्य सुधर जाते हैं और वे अपने काम अच्छी तरहसे करने लगते हैं। इसीलिए हम बच्चोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करते हैं;

परन्तु क्या बच्चोंको ही शिक्षाकी जरूरत है—प्रौढ़ पुरुषोंको नहीं ? नहीं, केवल बालकपनकी शिक्षासे मनुष्योंका काम नहीं चल सकता। उन्हें प्रौढ़ावस्थामें भी शिक्षा मिलनी चाहिए। इन प्रौढ़ पुरुषोंकी पाठशालाओंको ही पुस्तकालय कहते हैं। जो बचपनमें पढ़ लिख गये हैं, उन्हें बड़ी उमरमें भी पुस्तकें मिलनेकी तजवीज होनी चाहिए। यह बड़ी खुशीकी बात है कि सुदैवसे पुस्तकोंका दुर्भिक्ष पड़नेकी कभी संभावना नहीं। एक गरीब स्त्रीने जब पहले पहले समुद्र देखा तब वह बोली, "अहाहा! यह देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ कि जगतमें अधिक नहीं, पर एक वस्तु तो अवश्य ही ऐसी है कि जो सब मनुष्योंको यथेच्छ मिल सकती है।" पुस्तकोंकी बात भी ऐसी ही है। सब मनुष्योंकी पूर्तिके योग्य पुस्तकें संग्रह करना कुछ बहुत कठिन नहीं और जो पुस्तकें बहुत ही अच्छी हैं, उनकी संख्या तो बहुत ही थोड़ी है। बांचनेका आनन्द धनी और गरीब दोनोंके लिए एकहीसा सुलभ है। बहुत थोड़ी बातें ऐसी हैं, जिनमें इस प्रकार एकहीसी सुलभता हो। वर्तमानमें हमारी दशा ऐसी है कि हमारे पास जितनी चीजें हैं, उनकी अपेक्षा अधिक चीजोंके लिए हमारा निरन्तर जी चला करता है—जितनी हम चाहते हैं, उतनी वे मिलती नहीं; परन्तु दैवयोगसे पुस्तकोंके विषयमें यह बात नहीं। पुस्तकें तो हम जितनी बांच सकते हैं, उनसे भी अधिक हमें मिल सकती हैं।

यह बात अब हम लोगोंकी समझमें आने लगी है कि शिक्षा जन्मभर जारी रहनी चाहिए। हम यह भी समझ गये हैं कि बालकोंकी शिक्षा केवल शब्द और व्याकरण सिखला देनेसे ही पूरी नहीं हो जाती, उन्हें इस प्रकारकी भी शिक्षा मिलनी चाहिए

जिससे वे हस्तकलाकौशल्य भी सीख जावें और उनकी अवलोकनशक्ति भी खिल उठें। इसी प्रकार, प्रौढ स्त्रीपुरुषोंका केवल यही कर्तव्य नहीं है कि शारीरिक श्रम करके केवल धनके पीछे पडे रहना और दूसरे किसी प्रकारके विचारोंको पास ही न फटकने देना। नहीं, उन्हें अपना थोड़ा बहुत समय ज्ञानकी प्राप्ति करने और अपनी मानसिक उन्नति करनेमें भी खर्च करना चाहिए। इसके सिवा, प्रत्येक मनुष्यको मनुष्य जातिके ज्ञानकी थोड़ी बहुत वृद्धि करनेमें भी यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। कितने ही छोटे दर्जेका मनुष्य क्यों न हो, उसे इस काममें सफलता मिल सकती है। अभीतक हम शारीरिक श्रमकी योग्यताको अच्छी तरहसे नहीं समझते। बहुतोंका ख़याल है कि कोई नई तरहकी खोज करना या नये नये आविष्कार करना, यह काम सामान्य लोगोंकी शक्तिसे बाहर है। इसे वे ही लोग कर सकते हैं जिनकी बुद्धि विशाल है और जो बड़े बड़े कीमती यंत्रोंके खरीदनेकी शक्ति रखते हैं; परन्तु यह ख्याल गलत है। इग्लेंड देशको उन्नतिके शिखरपर पहुंचा देनेवाले कौन हैं? यह ठकि है कि वहांके चतुर राजाओंने, चालाक राजकर्मचारियोंने, शूर सिपाहियोंने, मजबूत जहाजोंने, दूरदूरके देशोंका पता लगाकर राज्य स्थापित करनेवालोंने, और विद्वान् तत्त्वज्ञानियोंने उक्त उन्नतिमें बहुत बडी सहायता पहुंचाई है—इसमें सन्देह नहीं; परन्तु वहांके मजदूरोंने भी इसमें कुछ कम सहायता नहीं की है। यह नहीं कि उन्होंने केवल शारीरिक श्रम ही किया हो—नहीं, उन्होंने अपने बुद्धिबलसे भी इंग्लेंडका बहुत बडा उपकार किया है।

भापके यंत्रका आविष्कार करनेवाला **वॉट**, एक बढ़ईका लड़का था। **हेनरीकार्ट** एक मजदूरका लड़का था। उसने यंत्रविद्यामें

बहुत बड़े बड़े सुधार किये, जिनसे कि इंग्लेंडकी सम्पत्तिकी बहुत ही वृद्धि हुई। **हंटस्मेन** एक घड़ीसाजका लड़का था। उसने पौलादको ओंटनेकी युक्ति निकाली। **क्राम्पटन** कपड़ा बुननेवाला जुलाहा था। **वेजवुल्ड** कुँभार था। इसी प्रकार **बिंडले, टेल्फर, मशट,** और **नीलसन,** आदि आविष्कारक भी मजदूरी पेशेवाले थे।

भापके बलसे चलनेवाली गाड़ी तैयार करनेवाला **स्टीफन्सन** एक चरवाहा था। अठारह वर्षकी उमर तक तो उसको लिखना पढ़ना भी न आता था। **डाल्टन** जुलाहा था। **फ्यारडे** और **न्यूकम** लुहार थे। **आर्कराईट** पहले नाईका पेशा करता था। सर-**हँफ्रेडेवी** एक दवाकी दूकानमें उम्मेदवारी करता था। इन्होंने और इसी प्रकारके दूसरे अनेक लोगोंने संसारके बहुत बड़े बड़े उपकार किये हैं। जिस देशमें ये लोग उत्पन्न हुए, उस देशके लोगोंको इनके विषयमें बड़ा भारी अभिमान है और उसका होना स्वाभाविक है।

आप अकसर सुना करते हैं कि अमुक राष्ट्र उन्नतिस्थितिको प्राप्त हो गये हैं और यह ठीक है कि कुछ राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंकी अपेक्षा बहुत उन्नत है, परन्तु वास्तवमें देखा जाय, तो यह उन्नत विशेषण; जिसको पूर्णरूपसे लागू हो सके, ऐसा एक भी राष्ट्र पृथ्वीमें नहीं है। ऐसा राष्ट्र वही हो सकता है, जिसके प्रत्येक मनुष्यको बांचनेका शौक है और जहांके प्रत्येक मनुष्यको पुस्तकोंकी प्राप्तिका सुभीता है। हमें अपने देशकी उन्नति करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिए। पुस्तकालयोंकी स्थापना करना देशकी उन्नतिका एक सर्वश्रेष्ठ प्रयत्न है।

बहुतसे लोग ऐसे हैं जिनका जन्म क्या है, मानो एक सख्त मजदूरीकी सजा ही है। ऐसे लोगोंको सुख और मनोरंजनकी प्राप्तिके लिये पुस्तकालयोंकी स्थापना करनेके समान दूसरा कोई साधन नहीं।

प्रसिद्ध विद्वान् **सर जान हरशल**ने कहा है—"यदि मुझे ईश्वरसे कोई ऐसी वस्तु मांगनी हो—जो सब दशाओंमें मेरे काम आवे, बड़ीसे बड़ी विपत्तिके आनेपर और सारे जगतकी मुझपर वक्र-दृष्टि होनेपर भी जो मुझे सुख और आनन्द दे सके—तो मैं एक बांचनेकी अभिरुचि ही मांगूंगा। जिस मनुष्यको बांचनेका शौक लग गया है और उस शौकके पूरा करनेके जिसके पास साधन हैं, उसे कभी सुखकी कमी नहीं पड़ सकती। उसे सब समयोंके अतिशय विद्वान्, विनोदी, दयालु, शूर, सद्गुणी और मनुष्य जातिके भूषणभूत महात्माओंकी संगति मिलती है, उसे सब देशोंमें और सब समयोंमें रहनेका श्रेय मिलता है और उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि सारा जगत मेरे ही लिए निर्माण किया गया है।"

पुस्तकें क्या हैं एक प्रकारके सजीव प्राणी ही हैं। मिल्टन कहता है—"ग्रन्थकर्त्ताके चैतन्यके समान ही काम करनेवाली चैतन्यशक्ति उसके ग्रन्थोंमें रहती है।" इसीलिए कहते हैं कि बड़े बड़े ग्रन्थकार सदा अमर रहते हैं। जिनके विशाल मनकी साक्षी उनकी रचनाका प्रत्येक वाक्य हर समय दिया करता है, उनकी मृत्यु बतलाना कदापि सत्य नहीं। अपनी आगामी पीढ़ीके हृदयमन्दिरमें जो निरन्तर निवास करते हैं, उन्हें मृत बतलाना सरासर झूठ है।

ग्रन्थ, ऐसे खजाने हैं जिनकी रक्षा हजारों वर्षोंसे की जा रही है और जिनमें बराबर संचय होता रहता है।

नाना प्रकारके व्यसनोंमें जितना धन खर्च किया जाता है, उसे देखते हुए ऐसा कौन होगा जो कहेगा कि पुस्तकोंके खरीदनेमें जो धन खर्च किया जाता है, वह फिजूल खर्च है? वास्तवमें जितना पैसा किसी एक व्यसनमें खर्च किया जाता है, उसका शतांश भी पुस्तकोंके लिए खर्च नहीं किया जाता। इस समय जिन स्थानोंमें शराबकी दूकानें, जुआरियोंके अड्डे, और अफीम, गांजा, भांग आदिकी दूकानें दिखलाई देती हैं; वहां जिस दिन पुस्तकालय दिखलाई देने लगेंगे, वह दिन बड़ा ही धन्य होगा। *

जैन लाजिक (न्याय)।

(५)

दूसरा अध्याय।

ऐतिहासिक काल (ईस्वी सन् ४९३ से)।

जैनियोंके लिखित ग्रन्थ।

२७. महावीरस्वामीके उपदिष्ट सिद्धान्त—जो जैनागमोंमें वर्णन किये गये हैं—कई शताब्दियोंतक गुरुशिष्यपरंपराको मौखिक ही प्राप्त होते रहे। पीछे वीर नि०सं० ९८०अर्थात् ईस्वी सन् ४९३ में वे वल्लभीकी सभामें देवर्धिगणिके द्वारा—जिनका कि दूसरा नाम क्षमाश्रमण भी था—लिपिबद्ध किये गये। इस कथनके अनुसार

* सर जॉन लबकके The Use of Life नामक ग्रन्थके एक लेखका भावानुवाद।

जैनसाहित्यका सच्चा इतिहास ईस्वी सन् ४९३ से (देवर्धिगणि-द्वारा सूत्र ग्रन्थोंके लिपिबद्ध होनेके समयसे) प्रारम्भ होता है–जो कुछ इसके पहले हुआ वह कथामात्र है।

सिद्धसेन दिवाकर (ई० सन् ५३३ के लगभग)।

२८. ऐतिहासिक कालक सबसे पहले न्यायशास्त्रको नियमबद्ध लिखनेवाले जैन लेखक सिद्धसेन दिवाकर मालूम होते हैं। इनसे पहले शायद जैनन्यायका कोई खास ग्रन्थ मौजूद नहीं था। उस समय न्यायकी बातें धर्म और सिद्धान्त ग्रन्थोंमें ही गर्भित थीं। इन्होंने ही सबसे पहले न्यायावतार नामका न्यायग्रन्थ बनाकर न्यायशास्त्रकी स्थापना की। यह छोटासा ग्रन्थ केवल ३२ श्लोकोंका है।

---

१ देखो, डाक्टर क्लाटकी खरतरगच्छकी पट्टावली—जो कि इंडियन एन्टिक्वेरीकी सितम्बर सन् १८८२ की जिल्द ११ पृष्ठ २४७ में प्रकाशित हुई है—और डाक्टर जैकोबीके कल्पसूत्रकी भूमिका पृष्ठ १५ तथा विनयविजयगणिकी कल्पसूत्रकी टीका जिसमें लिखा है कि—

> वलहीपुरम्मि नयरे देवड्ढिपमुहसयलसंघेहिं।
> पुव्वे आगम लिहिऊ नवसयअसीआनुवीराउ ॥ १ ॥

देवर्धिगणिके कल्पसूत्रमें (डाक्टर जैकोबी द्वारा सम्पादित, पृष्ठ ६७) लिखा है:-समणस्स भगवो महावीरस्स जावसव्व दुक्खप्पहिणस्स नववासस्स-याथिम विक्कमतइ दसमस्सय वासस्सयस्सा अयं असी इमे संवच्चरे काले गच्छइ इति।

२ देखो, बम्बई सरकारके लिए खरीदे हुए हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचीमें नं० ७४१ और पिटर्सन साहबकी पांचवीं रिपोर्टका पृष्ठ २८८। न्यायावतारकी एक हस्तलिखित प्रति मुनि श्रीधर्मविजय और इन्द्रविजयने मेरे लिए भावनगरसे मंगवाई थी।

२९. सिद्धसेन दिवाकर सम्मतितर्क सूत्रके भी कर्ता हैं। यह तत्त्वज्ञानका ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और इसमें न्यायके सिद्धान्तोंका विशदरूपसे विवेचन किया गया है। प्रद्युम्नसूरिने अपने विचारसारप्रकरणमें और जिनसेनसूरिने अपने आदिपुराणमें (ई. स. ७८३ में) सिद्धसेन दिवाकरका—जो कि श्वेताम्बर-सम्प्रदायके थे—जिक्र किया है।

३०. सिद्धसेनदिवाकर वृद्ध वादिसूरिके शिष्य थे। कहते हैं कि उन्होंने दीक्षाके समय कुमुदचन्द्र नाम धारण किया था। आपने अपने मन्त्रबल और स्तोत्रबलसे उज्जयिनीके महाकालके मन्दिरमें रुद्रके चिह्नके टुकड़े टुकड़े कर दिये थे और कल्याण-मन्दिर नामका स्तोत्र पढ़कर उसमेंसे पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा प्रगट की थी। जैनियोंका विश्वास है कि आपने वीर संवत् ४७० में अर्थात् ईस्वी सन्के ५७ वर्ष पहले विक्रमादित्य राजाको जैनी बनाया था।

१—पंचेवय वरि समए सिद्धसेनदिवायरोय जयपयड़ो।
छच्चसए वीसहिए लक्कथुऊ अज्जरक्खिपहू ॥ २६ ॥

(विचारसार प्रकरण, पिटर्सन साहबकी तीसरी रिपोर्ट पृष्ठ २७२)

२—प्रभावकचरित ९, सर्ग, ५ श्लोक ५७।

३—सिद्धसेन दिवाकरके विषयमें विशेष जाननेके लिए निम्नलिखित पुस्तकें देखोः—१सितम्बर सन् १८८२ की इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द ११ पृष्ठ २४७ में छपी हुई डाक्टर क्लाट द्वारा सम्पादित खरतरगच्छकी पट्टावली, २ डाक्टर आर. जी. भाण्डारकरकी सन् १८८३-८४ की हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थोंकी रिपोर्ट पृष्ट ११८, १४० तथा ३ कलकत्तेकी बिबलियोथिका इंडिका सीरीजमें प्रकाशित और मिस्टर टानीद्वारा अनुवादित प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ १०-१४।

३१. परन्तु उज्जयिनीके विक्रमादित्य इतने प्राचीन नहीं मालूम होते। इतिहासकारोंने मालवेके राजा यशोधर्मदेवको ही विक्रमादित्य सिद्ध किया है जिसने कि एलबेरुनीके मतानुसार ई० सन् ५३३ में कोरूर नामक स्थानमें हूण लोगोंको परास्त किया था। इतिहासज्ञोंका यह कथन चीनके प्रसिद्ध यात्री हुएनसंगके बयानसे बिलकुल मिलता है। वह ईस्वी सन् ६२९ में भारतमें आया था। उसने लिखा है कि मेरे आनेसे ६० वर्ष पहले एक बड़ा भारी बलवान् राजा उज्जयिनीमें राज्य करता था। यह बहुत करके विक्रमादित्य ही होगा। इसके सिवा ऐसा ज्ञात हुआ है कि वराहमिहिर—जो कि विक्रमादित्यके दरबारके नौरत्नोंमेंसे एक था—ईस्वी सन् ५०५ और ५८७ के बीचमें हुआ है। अतएव यह बहुत सम्भव है कि विक्रमादित्य और उसके समकालीन सिद्धसेन दिवाकर उज्जयिनीमें ईस्वी सन् ५३३ के लगभग हुए हों। मुझे विश्वास है कि सिद्धसेन दिवाकर क्षपणकके[3] अतिरिक्त

१— देखो, बील साहबके बौद्धमतके पत्र, जिल्द २ पृष्ठ २६१।

२ बराहमिहिरने अपने ज्योतिष-ग्रन्थमें गणितका प्रथम वर्ष शक संवत् ४२७ अर्थात् ईस्वीसन् ५०५ नियत किया है। इससे उसका उक्त समयमें होना सिद्ध होता है:—

सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।

अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये ॥ ८ ॥

(डाक्टर जी. थीबो और म० म० सुधाकर द्विवेदीद्वारा सम्पादित पञ्चसिद्धान्तिका, पहला अध्याय।

इसके सिवा इस विषयमें डाक्टर थीबोकी पञ्चसिद्धान्तिकाकी भूमिकाका पृष्ठ ३० भी देखो।

३ नौरत्न ये हैं:—

और कोई न थे—जो हिन्दुओंके कथनानुसार विक्रमादित्यके दरबारके नौ रत्नोंमें थे।

३२. न्यायावतार—जो संस्कृत पद्यमें है—प्रमाण और नयका निरूपण करता है।

३३. प्रमाण सम्यग्ज्ञान है जो विना किसी प्रकारकी बाधाके निज और परपदार्थोंको प्रकाशित करता है। उसके दो भेद हैं:—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष दो प्रकारका है:—व्यावहारिक और पारमार्थिक। १ व्यावहारिक प्रत्यक्ष वह है, जो पांचों इन्द्रियों और मनके द्वारा प्राप्त होता है। २ पारमार्थिक प्रत्यक्ष वह है जो अनन्तज्ञान है और आत्माकी पूर्ण विशुद्धताके प्रकाशसे प्राप्त होता है। इसको केवलज्ञान कहते हैं।

३४. परोक्ष प्रमाण भी दो प्रकारका है:—अनुमान और शब्द। शब्द वह ज्ञान है जो श्रद्धास्पद व्यक्तियोंके मुखसे अथवा शास्त्रोंसे प्राप्त होता है। जैसे, किसी नवयुवकको यह नहीं मालूम कि यह नदी पार होनेके लायक है या नहीं, परन्तु उसी समय यदि

धन्वन्तरि. क्षपणकोऽमरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेःसभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥
(ज्योतिर्विदाभरण)

पचतंत्र, ब्राह्मणोंके अनेक संस्कृत ग्रन्थ, अवदानकल्पलता तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थोंमें जैनियोंको क्षपणक कहा है।

भगवद्भाषितं तत्तु सुभद्रणे निवेदितं। श्रुत्वा क्षपणक. क्षिप्रमभूद्द्वेषविषाकुलः॥
तस्य सर्वज्ञतां वेत्ति सुभद्रो यदि मद्गिरा।. तदेष श्रमणश्रद्धां त्यक्ष्यति-श्रमणादरात॥
(अवदानकल्पलता, ज्योतिष्कावदान।)

उसके पास रहनेवाला कोई अनुभवी वृद्ध पुरुष—जिसकी उसके साथ किसी प्रकारकी शत्रुता नहीं है—उससे कहे कि नदी आसानीसे पार हो सकती है, तो उसके शब्द सत्य माने जाते हैं। यही लौकिक शब्द है। आगम भी प्रमाण है। क्योंकि वह उन बातोंकी आज्ञा देता है जो प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंसे परे हैं। जैसे, आगम बतलाता है कि कंजूसी बुराईका नतीजा है। ऐसा ज्ञान शास्त्रज शब्द कहलाता है। शास्त्रका लक्षण इस तरह किया गया है कि—'जो आप्तका कहा हुआ हो, दूसरोंद्वारा उल्लंघन न किया जा सकता हो, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे वाधित न हो, तत्त्वोपदेशका देनेवाला हो, सबको हितकारी हो और मिथ्या मार्गका खण्डन करनेवाला हो'[1]। (अपूर्ण)

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.।

अन्योक्ति–पुष्पावली

कुटज।

अहो कुटज[2], यह भ्रमर पास तेरे जो आया।
है तेरा दुर्भाग्य न तूने इसे रिझाया॥
रस समूहसे भरी नवल कुसमित–कमलिनिको।
है यह शिरसा वंद्य सदा जैसे मणि फणिको॥

---

१ आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥ ९
(न्यायावतार)

२ इन्द्र जौका फूल।

भ्रमर ।

क्यों करता मन दूर भ्रमर, तू नव–कमलिनिसे ।
मलिन देह तू है तथापि वह चाहत मनसे ।
तू बकवादी वृथा, प्रफुल्लित वह रहती है ।
तू चंचलतायुक्त, सदा वह रसवंती है ॥

चंदन ।

हे चन्दन, गुणगान कौन तेरा कर सकता ।
जगमें है आदर्शरूप तेरी सज्जनता ॥
करते हैं विषवमन सर्प जो तेरे तनपर ।
पोषित करता उन्हें, धन्य ! सौरभ निज देकर ॥

हरिण ।

अरे हरिण, मदअन्ध नहीं तुझको भय मनमें ।
मृगीवृन्दको लिये, करते क्रीड़ा काननमें ॥
गज-मस्तकसे गिरे मोतियोंसे मंडित यह—
नहीं ज्ञात क्या तुझे ? सिंह-क्रीडा-स्थल है यह ॥

हंस ।

जिस तड़ागमें कर निवास, निर्मल जल पीकर—
मृदु मृणालका मनमाना कर भोजन रुचिकर ॥
शशि-विकाशि-कमलोंमें रह सुख भोगे जैसे ।
उसका प्रत्युपकार हंस, भेंटेगा कैसे ? ॥

गजेन्द्र ।

हे गजेन्द्र, उन्मत्त, गहन इस बनमें तेरा ।
उचित न रहना पलभर भी कहना सुन मेरा ॥

कृष्ण-शिलाओंको विदीर्ण कर गजके भ्रमसे।
गिरि-गह्वरमें सिंहराज सोता है रिससे॥

सुरतरु।

दानशीलता सुरतरु, तेरी सब गाते हैं।
तव सुगन्धिसे मुग्ध अमरगण भी होते हैं।
नन्दन वनमें वास, जनक जलनिधि ये सब गुण।
हो 'मणिकाञ्चन योग' करे यदि दान समझ सुन॥

माली।

सूर्य-ताप-संतप्त-ग्रीष्ममें अल्पोदकसे।
मालीने नित सींच कुसुम-काननको जैसे।
किया पल्लवित पुष्ट,-कहो कैसे वर्षामें—
कर सकता यह मेघ? वृष्टि जो करत धरामें॥

शिवसहाय चतुर्वेदी—
देवरी (सागर)।

यान्त्रिक चारित्र।

जैनसमाजको इस बातका अभिमान है कि हमारा चारित्र बहुत ऊंचे दर्जेका है—औरोंसे हमारा आचरण बहुत अच्छा है। इस बातको साधारण लोग ही नहीं; किन्तु बड़े बड़े विद्वान् अपने व्याख्यानोंमें और अच्छे अच्छे लेखक अपने लेखोंमें भी प्रकाशित किया करते हैं। यदि यह बात उस चारित्रके विषयमें कही जाती जो कि जैनधर्मके आचार शास्त्रोंमें लिखा है, तो मैं चुपचाप मान लेता; परन्तु जैनियोंके वर्तमान चारित्रके विषयमें ऐसी बात

सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और इस विषयकी जांच पड़ताल करनेकी इच्छाको मैं न रोक सका। आश्चर्य इसलिए हुआ कि जो समाज अज्ञानके गहरे कीचड़में फँसा हुआ है—जिसमें इधर उधर हिलनेकी भी शक्ति नही, उसमें आचरण कैसा ? और सो भी उत्कृष्ट! जहां तक मैं जानता हूं, जैनधर्ममें ज्ञानपूर्वक चारित्रको चारित्र कहा है। अर्थात् जब तक मनुष्यको यह मालूम नहीं है कि मैं यह आचरण क्यों करता हूं—इसके करनेसे क्या लाभ है, और वह लाभ क्यों होता है, तब तक उसके आचरणको सम्यक्चारित्र नहीं कह सकते। तब मेरे हृदयमें प्रश्न उठा कि क्या इस प्रकारका सम्यक्चारित्र जैनियोंमें है ?

मैं इस विषयकी छानबीन करने लगा। कई वर्षोंके अनुभवके बाद अब मैंने यह स्थिर किया है कि जैनियोंका चारित्र एक प्रकारका यन्त्रसंचालित चारित्र है। चारित्रके लिए मेरे इस नये विशेषणके प्रयोगको देखकर पाठक चौंकें नहीं, मैं उन्हें इसकी सार्थकता भी बतलाये देता हूं।

यन्त्रोंकी या कलोंकी क्रियाको हम रोज ही देखा करते हैं। किसी यंत्रमें चाबी भर दीजिए, जब तक चाबीकी शक्ति भरी रहेगी, वह बराबर अपना काम करता रहेगा। उसे यदि बीचमें कहें कि तू काम करना बन्द कर दे, या यह छोड़कर दूसरा काम करने लग, या इसे इतनी तेजी मन्दीसे कर, तो वह कभी न सुनेगा। क्योंकि उसमें न सुननेकी शक्ति है और न विचारनेकी। फोनोग्राफ यंत्र इसलिए है कि वह अपने मालिकको अच्छे अच्छे गानें सुनाकर उसके चित्तको प्रसन्न करे; परन्तु यदि कभी कोई आदमी उसके एक रेकार्डमें बुरी बुरी गालियां भरकर उसमें

लगा दे, तो वह उन्हींको बकने लगेगा—उसे इस बातका ज्ञान नहीं कि इसे सुनकर मेरा मालिक दुखी होगा या सुखी। ठीक यही दशा हमारे जैनियोंकी है। उसके जितने आचरण हैं, प्रायः वे सब ही एक प्रकारकी यंत्रशक्तिसे परिचालित हो रहे हैं। अभ्यास, देखादेखी, पुण्यपापका परम्परागत लोभ और भय आदि शक्तियां उन्हें चला रही हैं। उनकी कोई स्वा[illegible] शक्ति नहीं—विचार और विवेकसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी कारण वे अपने अभ्यासके वश चले जा रहे हैं। किसीके कहने सुननेसे वे रुक नहीं सकते, अपनी गतिमें किसी प्रकारकी तीव्रता मन्दता नहीं ला सकते, उसमें कुछ परिवर्तन नहीं कर सकते, और उनकी इस चालका क्या फल होगा, इसको वे सोच नहीं सकते।

यह उक्त यन्त्रशक्तिका ही काम है, जो हम छोटेसे छोटे पापोंको और बड़े बड़ेसे पापोंको एक ही आसनपर विराजमान करने लगे हैं और इसका फल यह हुआ है कि हममें वास्तविक पापोंकी घृणा स्वभावसे ही कम हो गई है और उसके अनुसार हमारे लोकाचारने तथा जातीय नियमोंने भी एक अद्भुतरूप धारण कर लिया है। बुन्देलखंडके यदि एक परवारका भूलसे एक चिड़ियाके अण्डेपर पैर पड़ जाय, तो उसे जातिसे च्युत होना पड़ेगा; परन्तु यदि वही पुरुष एक मनुष्यका खून कर डाले और किसी तरह राजदण्डसे बच जावे, तो उसका कुछ न होगा! एक सेतवाल यदि किसी हूमड़के यहां भोजनकर आता है, तो उसे जाति दण्ड देती है; परन्तु यदि दूसरा सेतवाल सैकड़ों बड़े बड़े दुराचार करता है, तो भी जाति कानोंमें तेल डाले बैठी रहती है। एक शहरके खण्डेलवालोंमें ऐसे बीसों कुँवारे

पुरुष हैं, जिनके विषयमें जातिको अच्छी तरहसे मालूम है कि अमुक अमुक विधवायें इनके यहां रहती हैं, इनकी रसोई बनांती हैं और ईनकी स्त्रीसम्बन्धी जरूरतोंको मिटाती हैं, तो भी कोई चूं नहीं करता; परन्तु यदि वहांका कोई खण्डेलवाल मन्दिरमें एक छपी हुई पुस्तक लेकर पहुंच जावे,तो उसकी शामत आजाती है। गोलालारे भाइयोंको यह बरदाश्त नहीं कि उनकी खरौआ शाखाका पुरुष किसी मिठौआ शाखाकी लड़कीसे शादी कर ले। वे तत्काल ही उसे जातिसे बाहर करनेको तैयार हैं; परन्तु और सब बड़े बड़े पापोंके विषयमें उनके कानोंपर जूं भी नहीं रेंगती। मैंने एक परवार जैनीको देखा है कि उसने आटेमें विष मिलाकर और उसे जगह जगह रखकर अपने घरके सैकड़ों चूहे पटापट मार डाले और बरोंके छत्तेमें आग लगाकर लाखों जीवोंकी हत्या कर डाली; परन्तु उसे जातिने जरा भी दण्ड नहीं दिया। इसके कुछ ही दिन पीछे एक दिन उसीका लड़का एक बिल्लीके साथ खेल रहा था। बिल्ली भागी और उसका लड़का पीछे हो लिया। दैवयोगसे वह बिल्ली भागते समय एक कुएमें गिरकर मर गई। बस, इससे उसको हत्या लगाई गई और जातिने उसकी खूब ही खबर ली। एक अग्रवाल, मन्दिरके अथवा दूसरी किसी संस्थाके लाखों रुपये हजम करके भी जातिका मुखिया कहलाता है; परन्तु दूसरा अग्रवाल किसी धार्मिक संस्था या मन्दिरकी नौकरी कर लेनेसे निर्माल्यभक्षी कहलाता है। दक्षिणके बहुतसे जैनी मालगुजार दशहरेपर पशुवध करानेमें भी अपनेको पापी नहीं समझते; परन्तु दूसरी जातिका पानी पीनेमें भी उनका धर्म चला जाता है। जैनियोंकी प्रत्येक जातिमें ऐसे एक नहीं, सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। इसका क्या कारण है? यही कि न तो लोगोंमें वास्तविक पुण्य

पापोंके समझनेकी शक्ति है और छोटे और बड़े पापोंको एक ही तराजूपर एक ही बाँटसे तौलनेके कारण न उनके हृदयमें उनके प्रति घृणा ही रह गई है। जो कुछ करते हैं, सब पूर्वके अभ्यासवश किये जा रहे हैं।

मैं यह नहीं कहता कि छोटे पापोंका कुछ विचार न होना चाहिए। नहीं, मैं तो चाहता हूं और मैं ही क्यों प्रत्येक जैनधर्मके उपासककी यह भावना रहती हैं कि सम्पूर्ण जीव सर्व पापोंसे विनिर्मुक्त होकर मोक्षमें जा विराजें; परन्तु इस बातको कोई भी पसन्द न करेगा कि हिसाब करते समय कौड़ी और पाईके लिए तो माथापच्चीकी जावे और रुपयोंकी रकमें पूरीकी पूरी हड़प कर ली जायँ! वास्तवमें देखा जाय, तो इस कौड़ी पाईकी माथापच्चीके कारण ही बड़ी बड़ी रकमोंकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं जाती है। अँगरेजीमें एक कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि कौड़ीकी ओर अधिक दृष्टि रखनेसे रुपयोंकी ओरसे लापरवा होना पड़ता है। हमारे उपर्युक्त आचरणोंके विषयमें यह कहावत अच्छी तरहसे चरितार्थ होती है।

जैनियोंमें त्याग मर्यादाका भी बड़ा जोरोशोर है। जिससे पूछिए वही कहता है कि पृथिवीकी दश लाख वनस्पतियों (हरियों) मेंसे मैं केवल १०–२०–२५ या पचास खाता हूं, आलू बैंगनका मैं स्पर्श भी नहीं करता, बारहों महीना या चौमासेमें रातको जल नहीं पीता, रातको पान सुपारी तकका भी मुझे त्याग है, कन्दोंमेंसे और तो क्या मैं सूखी हल्दी और सोंठ भी नहीं खाता हूं, अष्टमी चतुर्दशीको भोजन नहीं करता, जैनीके सिवा किसी दूसरेके हाथका पानी भी नहीं पीता, घरका दूध घी खाता हूं, इत्यादि

इत्यादि। यह सुनकर यदि कोई विदेशी पुरुष हो, तो आश्चर्य नहीं कि जैनजातिको एक तपस्वीसम्प्रदाय समझ बैठे; परन्तु उपर्युक्त बातोंके त्यागियोंके असली चारित्रकी यदि जांच की जाय, तो सारी ढोलकी पोल खुल जाय। ये लोग मन्दिरोंमें और शास्त्रसभाओंमें बैठकर तो पण्डित आशाधरके बतलाये हुए अतिक्रम व्यतिक्रमादि छोटेसे भी छोटे पापोंके विषयमें बालकी खाल निकालेंगे और किसीने यदि कह दिया कि हरी वनस्पतिको पकाकर खानेमें सातवीं प्रतिमा तकके धारण करनेवाले श्रावकको दोष नहीं है, तो उसका मगज चाट जायँगे और उसे निगोदमें भेजे विना न रहेंगे; परन्तु यदि इनका व्यवहार देखा जाय, तो उसमें आपको ऐसे छोटे छोटे पाप तो नजर ही नहीं आयँगे। उस समय ये कहेंगे—भाई साहब, क्या किया जाय? लेन देन, व्यापार, मुकद्दमें मामले, गवाही साखी, आदि कामोंमें झूठ बोले विना इस पंचमकालमें गुजर कहां? रेलवे कम्पनियोंके साथ, चुंगीवालोंके साथ, और मापतोल आदिमें कुछ न कुछ चोरी करनी ही पड़ती है। इत्यादि कहने योग्य बातें तो त्यागी भाई स्वयं कह देंगे, शेष बातें आप उनके पास दश दिन रहकर और अड़ोसी पड़ोसियोंसे दरयाफ्त करके जान लेंगे। हिंसाके विषयमें आपको यह मालूम होगा कि मनुष्य जातिपर इनके हृदयमें दयाका लेश नहीं—सैकड़ोंको दाने दानेके लिए कर दिये हैं, रुपयोंके लोभसे अपनी सुकुमार लड़कियोंको यमके यजमानोंके गले बाँधकर उनके जीवनके सुखको सदाके लिए छीन लिया है और उन्हें पापमय ज़ीवन बितानेके लिए लाचार किया है। गर्भपात और भ्रूणहत्यायें तक कर डाली हैं, मूक घोड़ा, बैल आदि जान-

वरोंको मरते मरते तक जोता है, उनकी लगी हुई पीठों और कन्धोंपर जरा भी रहम नहीं किया है, अपने घरकी स्त्रियोंको-जूं और खटमलोंके संहारका ठेका दे रक्खा है, व्यभिचारका तो कुछ ठिकाना ही नहीं। जिसके घरमें जितना अधिक धन है, उसके यहां उतना ही अधिक व्यभिचार है। बच्चोंसे लेकर बूढ़ों तकके सिरोंपर इसका सेहरा बँधा हुआ मिलेगा। बाप यह तो चाहता है कि मेरी १४ वर्षकी विधवा बेटी ब्रह्मचर्यसे रहे, परन्तु आप स्वयं पचासके पार हो जानेपर भी पापपंकसे पार नहीं होना चाहता और जवान बेटों और बहुओंके होनेपर भी दुलहा बननेके लिए तैयार रहता है। तृष्णाके विषयमें तो कुछ पूछिए ही नहीं। कौड़ीकौड़ीके लिए मरने मारनेके लिए तैयार रहते हैं और सारी दुनियांकी दौलत हमारे ही घरमें आ जाय, इसी भावनामें दत्त-चित्त रहते हैं। इसी तरह माया, छल,कपट, ईर्षा, द्वेष, चापलूसी, स्वार्थपरता आदि दोषोंके आप इन्हें भंडार पायँगे। इन्होंने जो छोटे छोटे पापोंका त्याग कर रक्खा है, सो इसलिए नहीं कि इन्हें पापोंसे घृणा है। नहीं, उक्त चीजोंके छोड़नेका इनके यहां रवाज चला आ रहा है। अर्थात् पहलेकी भरी हुई चाबी अपना काम कर रही है, इसके सिवा इसका और कोई कारण नहीं।

हमारे जैनीभाई चुल्लिका—धर्मके भी बड़े उपासक हैं और इसे भी वे अपने उच्चाचरणका सर्टिफिकट समझते हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस धर्मसे उनकी आत्मायें कितनी उन्नत हुई हैं; परन्तु यह अवश्य कहूंगा कि यह उनकी गिरी हुई आत्माओंको ढँके रहनेके लिए—उनका अन्तःस्वरूप बाहर प्रगट न हो जाय, इसकी सावधानी रखनेके लिए बड़ा काम देता है और इससे वक-

चर्याकी बहुत ही वृद्धि हुई है। यह चुल्लिका धर्म जुदा जुदा देशों और जुदा जुदा जातियोंमें जुदा जुदा प्रकारका है और उसी पुरानी मशीनसे चल रहा है। चौका इसका मुख्य निवासस्थान है। इसकी रक्षा करनेके लिए चौकेके चारों ओर एक कोट फिरा रहता है। कोट भले ही चाकमिट्टी या कोयलेकी लकीर मात्र ही हो, तो भी उसके भीतर पैर रखनेका हर एकको साहस नहीं हो सकता। पक्की रसोईमें यद्यपि इसका द्वार अबाधित रहता है; परन्तु कच्ची रसाईमें तो यह बहुत ही दुर्गम हो जाता है। सर्वांग पवित्र हुए विना उसके भीतर जानेकी आज्ञा नहीं मिल सकती। घीमें कुछ ऐसी विलक्षण शक्ति है कि उसमें अवगाहन हो जानेसे प्रत्येक भोज्यवस्तुको दूर दूर तक सफर करनेकी स्वाधीनता मिल जाती है। लाला लोग तो उसे जूते पहने हुए भी खा सकते हैं। पक्की रसोईको दूसरी जातियोंके साथ बैठकर और बाजारसे ख़रीदकर खानेका भी कहीं कहीं रवाज है; परन्तु कच्ची रसोईका इस तरह दुर्व्यवहार करनेसे धर्म एक घड़ीभर भी नहीं टिक सकता। इस धर्मके तत्त्व बहुत ही गूढ़ हैं। उनका समझना बहुत ही कठिन है। इस विषयमें मैं एक जुदा लेख लिखना चाहता हूं। यहां इतना ही कह देना काफी है कि इस धर्ममें जो जितनी बारीकी रखता है—जो जितना मग्न रहता है, वह उतना ही बड़ा धर्मात्मा समझा जाता है। उसके धर्मको देखकर ही उसके उच्च नीचाचरणकी जांच कर ली जाती है—दूसरे चरित्रोंको देखनेकी जरूरत नहीं। दिनमें दो चार बार नहाना, हाथ पैर धोनेमें दोचार सेर मिट्टी खर्च करना, अपने हाथसे पानी भरना, वर्तन मलना, रसोई बनाना, गीली धोती पहिनना, बांयें हाथको चौकेसे

बाहर रखना, कुँवारी कन्याके हाथका भोजन नहीं करना, किसीके स्पर्शसे बचे रहना, आदि सब बातें इसी धर्मके अन्तर्गत हैं। श्रावकोंके सिवा त्यागियोंमें भी इसके बड़े बड़े उपासक हैं। एक दो त्यागियोंने तो इसमें बड़ा नाम कमाया था। एक त्यागी अपने हाथसे चक्की पीसते थे। एक बाबाजी जिस भैंसका दूध दही खाते थे, उसे प्रासुक जलसे नहलाते थे, सूखा घास खिलाते थे, छना पानी पिलाते थे, दुहनेवालेके नाखूनोंको पत्थरपर रगड़-वाकर लाल लाल करा डालते थे, और न जाने क्या क्या अलौकिक शुद्धतायें कराते थे। उनकी भक्ति भी निःसीम होती थी; पर सुनते हैं, वे पढ़े लिखे कुछ भी न थे!

जैनसमाजके पुण्य कार्योंमें भी इसी प्रकारकी विषमता देखी जाती है। सम्मेदशिखर गिरनारजी आदि तीर्थोंकी बन्दना कर-नेमें पुण्य बतलाया है। प्रतिवर्ष हजारों लाखों जैनी करोड़ों रुपया खर्च करके तीर्थयात्रा करते हैं; परन्तु इनमें ऐसे लोग सौ पचास भी कठिनाईसे मिलेंगे जो यह जानते हों कि तीर्थोंके दर्शन कर-नेमें पुण्य क्यों होता है और निवासस्थानके जिनमंदिरोंमें दर्शन करनेकी अपेक्षा इसमें क्या विशेषता है। अधिकांश लोग उन्हीं भेड़ोंका अनुकरण करनेवाले मिलेंगे, जो एक भेड़को पड़ती देखकर सबकी सब कुएमें गिर पड़ती हैं। बम्बईमें गिरनारजीके यात्री अकसर आया करते हैं। उनमें यदि कोई परिचित पुरुष होते हैं, तो कभी कभी मुझे उन्हें रेल आदिमें बिठानेके लिए जाना पड़ता है। मैं बराबर देखता हूं कि रेलवेकम्पनीकी चोरी करनेमें तो उन्हें कुछ पाप ही नहीं मालूम होता। आधे टिकटके बच्चोंको छुपाकर मुफ्तमें ले जाना, नियमसे अधिक वजनको वैसे

ही या रिशवत देकर साथ ले जाना, थोड़ी दूरका टिकट लेकर लम्बा सफर करना और उतरनेके स्टेशनसे पहले फिर टिकट ले लेना, इत्यादि कामोंमें तो वे खूब अभ्यस्त होते हैं। यात्रियोंके दूसरे दुराचारोंके विषयमें तो कुछ न कहना ही अच्छा है। उनके वर्षोंके मनोरथ और वायदे इसी शुभ प्रसङ्गपर पूर्ण होते हैं—बिछुड़े हुए मिलते हैं और वि .ायें अपने पुराने पापोंसे मुक्त होती हैं। कुछ वर्ष पहले एक श्रीमती सेठानीने जो कि विधवा थीं—यहांके एक कुएको अपना तत्कालका पैदा हुआ बच्चा समर्पण करके असीम पुण्य सम्पादन किया था! उनके हृदयमें जो यह चाबी भरी हुई है कि एकबार तीर्थके दर्शन करनेसे नरक और पशुगति नहीं होती है, वह उन्हें बराबर तीर्थयात्रा करा रही है; परन्तु उस जड़ चाबीमें यह शक्ति नहीं कि उन्हें उक्त बड़े बड़े पापोंके करनेसे रोके, अथवा यह समझा देवे कि यदि तुम अपने भावोंको और चरित्रको उज्ज्वल नहीं रख सकते हो, तो घर ही बैठे रहो- इतना खर्च और मिहनत उठानेकी क्या आवश्यकता है?

हमारे बहुतसे पाठकोंने वे मिशीनें देखी होंगी, जो कितनी ही ब.ी ब.ी स्टेशनोंपर रक्खी गई हैं और जिनमें दो पैसा डालते ही प्लेटफार्म टिकट बाहर निकल आता है। पैसा डालनेवाला कोई हो—कैसा ही हो और उसका कुछ भी मतलब हो—इन बातोंकी मिशीनको परवा नहीं। यहां पैसा डाला कि वहां टिकट तैयार है। जैनियोंमें जो दान होता है और जिसके कारण लोग उन्हें सबसे अधिक दानशील कहते हैं, इसी ढँगसे होता है। दृष्टान्तको ठीक ठीक घटानेके लिए आप टिकट देनेको दान करना समझ लीजिए और दो पैसेको वह मान समझ लीजिए, जो उस दानके बदलेमें

लोग उन्हें देते हैं। मिशीनोंमें इतनी विशेषता है कि पैसा पाये विना वे टिकट नहीं निकालतीं, पर हमारे दानी भाई आगेकी उम्मेदपर भी दान करते हैं और इसमें कभी कभी बेचारोंको पछताना भी पड़ता है। हमारी समझमें उन्हें इस गलतीको सुधार लेनी चाहिए और पहले मानकी पुष्टि करके पीछे दान करनेकी आदत डालनी चाहिए।

हमको विश्वास है कि थोड़ेसे अपवादोंको छोड़कर जैनियोंमें जितना दान होता है, वह सब मानके लिए ही होता है। यदि इनमें इतनी विवेकबुद्धि होती–यदि ये इतना विचार सकते कि वास्तविक मान किसे कहते हैं और वह कौन कौन कामोंके करनेसे मिलता है, तो उनके इस मानपूर्वक दानसे समाजकी कोई हानि न थी। वे वास्तविक पुण्यबन्धसे अवश्य ही वंचित रहते; पर समाजका तो उनके दानसे उपकार ही होता। परन्तु दुर्भाग्यसे वे मानकी परिभाषासे भी अपरिचित हैं और इस लिए गतानुगतिकतासे, अभ्याससे और देखादेखीसे वे जिसे मान समझते हैं, उसीकी आशासे बराबर चाहे जिस काममें रुपया खर्च किया करते हैं। इसका फल यह होता है कि प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च होनेपर भी जैनसमाज या जैनधर्मको कुछ भी लाभ नहीं पहुंचता है। इन मशीनोंको इससे कुछ मतलब नहीं कि हमारे दिये हुए टिकटका क्या उपयोग होगा और जिन्हें हम देते हैं, वे वास्तवमें उसके लेनेके पात्र हैं या नहीं।

एक परवार या गोलापूरव धनिक इस बातके विचारनेकी जरूरत नहीं समझता कि जहां मैं रहता हूं, वहां नये मन्दिरकी आवश्यकता है या नहीं; पुराने मन्दिरोंकी पूजा और मरम्मतका इन्त-

जाम है या नहीं; वस्तीमें दश बीस लड़के ऐसे भी हैं या नहीं, जो मन्दिरमें पूजा कर सकें, या शास्त्र बांच सकें; बस्तीके गरीब भाइयोंकी क्या दशा है और कमसे कम मेरे कुटुम्बी सुखी हैं या नहीं। वह यह सोचता है कि मेरी प्रतिष्ठा कैसे बढ़े—मुझे लोग बड़ा कैसे समझें और एकाध पण्डितजीकी सम्मति लेकर मन्दिर बनवाने और रथ चलाकर सिंगई, सवाई सिंगई, सेठ या श्रीमंत सेठ बननेके लिये तैयार हो जाता है। दूसरी जातिके जैनियोंकी भी यही दशा है। कोई मन्दिर बनवाता है, कोई प्रतिष्ठा करवाता है, कोई रथ बनवाता है, कोई तीर्थोंपर पहली दश धर्मशालाओंके रहनेपर भी एंक और नई धर्मशाला बनवाता है, कोई संडों मुसंडोंको लड्डू खिलाता है, कोई बड़ी बड़ी ज्योनारें करता है, कोई पिताके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको रुपया या मुंहरोंका दान करता है, और कोई रायबहादुर आदिकी उपाधि पानेके लिए सर्कारी अफसरोंके हाथोंमें भी दान की रकम दे देनेमें कुंठित नहीं होता।

इस समय जो जैनधर्म और जैनसमाजकी उन्नति करनेके लिये संस्थायें खुल रही हैं और जिन सैकड़ों संस्थाओंके खोलनेकी जरूरत है, यद्यपि उनमें द्रव्य देनेसे रथप्रतिष्ठादि कार्योंसे भी अधिक मान मिलता है—भारतके एक छोरसे लेकर दूसरे छोरतक उसका नाम हो जाता है; पर ये पुरानी मिशीनें तो अपने ग्राम-नगर या उसके आसपासके लोगोंके अथवा अपने चापलूसोंके दिये हुए मानको ही मान समझती हैं। वह देशव्यापी मान जिन कानोंसे सुन पड़ता है, वे कान तो इन्हें विधाताने दिये ही नहीं। इन मशीनोंके यदि कान होते, तो आज जैनसमाजका आश्चर्यजनक कायापलट हो जाता।

जैनधर्म और जैनसमाजकी वर्तमान अवस्था बड़ी ही शोचनीय है। उसे देखकर सहृदय पुरुषोंके हृदयपर बड़ी चोट लगती

है। भगवान् महावीर जैसे ज्ञानसूर्योंके उपासक और महात्मा समन्तभद्र जैसे विद्वानोंके अनुयायी आज घोर अन्धकारमें डूबे हुए हैं। धर्म कर्मका ज्ञान तो बहुत बड़ी बात है, सौमें ९० तो अक्षरशत्रु बने हुए हैं; जो पढ़ते लिखते हैं, उनकी अच्छी शिक्षाका प्रबन्ध नहीं; जो उच्चशिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें कोई सहायता देनेवाला नहीं; विदेशी विद्याओंके पढ़नेमें पाप समझा जाता है; स्त्रियोंकी दुर्दशाका तो कुछ ठिकाना ही नहीं; मूर्खतापूर्ण लोकरूढ़ियोंने और सैकड़ों कुरीतियोंने उन्हें जर्जर कर दिया है; उनका नैतिक चरित्र अधोदशाको पहुंच चुका है; बल, साहस, अध्यवसायका उनमें नाम नहीं; उनके धर्मग्रन्थ भंडारोंमें पड़े पड़े सड़ रहे हैं, पुरानी कीर्तियां लुप्त हो रही हैं, दया उनमें रही नहीं, स्वार्थत्याग करना वे जानते नहीं और एकता उनसे कोसों दूर है। जैनसमाजके उक्त दानी या प्रभावनांगके प्रेमी महाशय यदि इन बातोंको सोच सकते--उनके हृदय होता, वे सचमुच ही दान करना चाहते, तो अवश्य ही उनका धन विद्यालयों, पाठशालाओं, ब्रह्मचर्याश्रमों, कन्याशालाओं, श्राविकाश्रमों, हाईस्कूलों, कालेजों, पुस्तकालयों, विज्ञानविद्यालयों, पुस्तकप्रचारकसंस्थाओं, छात्रवृत्तियों, उपदेशकभंडारों, अनाथालयों, औषधालयों और औद्योगिक शालाओं, जैसी उपयोगी संस्थाओंके खोलनेमें लगता। परन्तु जड़ मशीनोंमें हृदय हो तब न?

मैंने कई रथप्रतिष्ठा करानेवाले ऐसे देखे हैं जिन्होंने अपने जीवनमें अपने किसी जैनी भाईको अथवा दूसरे किसी अनाथको एक पैसेकी सहायता नहीं दी, अपने दुखी कुटुम्बियोंको भी जिन्होंने रोजगारसे लगा देने तककी उदारता न दिखलाई, और अधिक

तो क्या जिन्होंने कभी अपने खाने पहिरने और आराममें भी खर्च न किया; परन्तु सिंगई बननेके लिए थैलियोंके मुंह खोलनेमें जरा भी देर न लगाई ! मैं पूछता हूं कि क्या यही उच्चश्रेणीका आचरण है और इसीको धर्मबुद्धि कहते हैं ?

विगतवर्ष एक बूढ़े धनिकने इधर तो एक दशवर्षकी लड़कीके साथ विवाह किया और उधर लगे हाथों इस पापसे मुक्त होनेके लिए रथप्रतिष्ठा करा डाली ! परन्तु उधर ज्यों ही लोगोंने आपको सिंगईजी बनाया, त्यों ही इधर यमका परवाना आ पहुँचा। बेचारी बालिका विधवा हो गई। सिंगईजीके कुटुम्बी इतने दयालु हैं कि अब उसकी परवरिश भी नहीं करना चाहते। सुनते हैं, इससे विधवाके पिताने उनपर नालिश की है। रथप्रतिष्ठाका कहीं कोई पुण्य शेष न रह जाय, शायद इसी ख्यालसे उन्होंने अभी हाल ही कुछ मुसलमानोंको शराब पिलाकर उनसे अपने शत्रुओंको पिटवा पिटवाकर अधमरा करा डाला है। मुकद्दमा चल रहा है। छह सात हजार रुपया खर्च हो चुके हैं। तीन तीन चार चार हजार रुपयेकी जमानतपर सिंगई लोग छूटे हैं। देखिए, रथप्रतिष्ठा करनेवालोंके चरित्र !

प्यारे भाइयो, इस तरह मैंने निश्चय किया है कि जैनियोंका वर्तमान आचरण केवल एक यान्त्रिक चारित्र है और वास्तविक चारित्रसे वह कोसों दूर है। यह ठीक है कि बहुतसे सज्जन इसके अपवादस्वरूप भी होंगे—उनमें वास्तविक चारित्र पालनेवाले भी होंगे; परन्तु मैंने यहां जो कुछ कहा है, वह सब बहुत्वकी अपेक्षासे कहा है। मैं समझता हूं कि आपमेंसे बहुतोंको मेरे विचार कड़ुए मालूम होंगे; परन्तु इसके लिए मैं आपसे क्षमा मांगता हूं और प्रार्थना करता हूं कि इस

शोचनीय अधःपतनसे अपने भाइयोंको ऊपर उठाइए और उनके वास्तविक चारित्रको उन्नत कीजिए। पहले उन्हें चारित्रका अभिप्राय समझाइए और फिर उन्हें उनकी शक्ति और परिस्थितियोंके अनुकूल क्रमागत चारित्रपालन करनेमें अग्रसर कीजिए। जबतक उनका हृदय विशाल न होगा, उसमें ज्ञान और विश्वव्यापी प्रेमका दीपक प्रकाशित न होगा, स्वाधीनतापूर्वक भला बुरा समझनेकी शक्ति न होगी, क्षमा दया मैत्री आदि कोमल भावोंका उत्थान न होगा, तब तक कहनेके धर्मात्मा, भाईजी, त्यागी. संयमी आदि भले ही बन जावें; परन्तु मनुष्य न बन सकेंगे।

उचित वक्ता।

स्थितिकरण अङ्गके पालनेवाले ?

जिस समय जैनसमाजमें जीवनीशक्ति मौजूद थी और स्वाधीनभावोंके प्रवेश होनेकी उसमें जगह थी, उस समय उसके कर्मवीर नेता धर्मसे डिगते हुए लोंगोंको दृढ करते थे और दूसरे हजारों लाखों मनुष्योंको अपने धर्मकी पवित्र छायाका आश्रय देनेके लिए तैयार रहते थे; परन्तु आज ऐसा समय है कि जो डिगते हैं वे धक्के देकर गिरा दिये जाते हैं और जो आश्रयमें आना चाहते हैं, उनके लिए धर्मस्थानोंके द्वारा बन्द कर दिये जाते हैं। जहां पहले स्वाधीन विचारों और सदसद्विवेक बुद्धिकी प्रतिष्ठा थी, वहां आज मूर्ख लोकाचार और गतानुगतिकता विराजमान् है। जहां पहले जैनधर्मका यह उदार उपदेश था कि "भाइयो, पापोंसे घृणा करो, पापियोंसे नहीं!" वहां अब कहा जाता है कि "पापियोंसे घृणा करो–उन्हें पास भी मत फटकने दो; पापोंसे घृणा तो तुम करते ही हो।" इस पापियोंसे घृणा करनेके समयमें यह पूछना कि "हैं कोई स्थितिकरण अंगके पालनेवाले?" अवश्य

ही बेमौके है; परन्तु क्या किया जाय ? जी नहीं मानता है, इस लिए चिल्लाना पड़ता है। हृदयके एक कौनेमें छुपी हुई क्षीण आशा अब भी कहती है कि कहनेमें मत चूको। इस गिरी पड़ी अवस्थामें भी शायद दश पांच सज्जन तुम्हारी बात सुननेवाले निकल आवें।

अच्छा, कहता हूं ध्यान देकर सुनिए। मैसूर राज्यमें, विशेषकर टुमकुर और बेंगलोर जिला तथा हिन्दूपुर तहसीलमें सादुर नामकी एक जाति रहती है। इसकी मनुष्यसंख्या लगभग वीस हजार है। लगभग पांचसौ वर्ष पहले वि० सं० १३६९ के लगभग इस जातिका एक राजा देवगिरि या चिलकापुरीमें राज्य करता था और उसके आश्रयसे इस जातिके लोग उसके राज्यमें रहते थे। राजाके एक सुन्दर कन्या थी। उसकी प्रशंसा सुनकर दिल्लीके तत्कालीन बादशाहने उससे शादी करनी चाही। राजा बड़ी कठिनाईमें पड़ा। आखिर वह राज्य छोड़कर अपनी जातिके समस्त लोगोंके सहित विजयनगरके बल्लाल नरेश हरिहररायके आश्रयमें चला गया। बल्लालोंकी राजधानी उस समय द्वारसमुद्रमें थी। बादशाहका प्रभाव उस समय वहां तक नहीं पहुंचा था, इस लिए उसे अपना विचार छोड़ देना पडा। कुछ समय पीछे हरिहररायने इन लोगोंसे कहा कि अब तुम्हें कोई भय न रहा, तुम अब पिनगोंडचाके राजा सोमदेवरायके आश्रयमें जाकर रहो। बल्लाल राजा लिंगायत धर्मका अनुयायी था और सोमदेवराय उसका माण्डलिक था। इस लिए उसने इन सादुर लोगोंसे कहा कि यदि तुम लोग शैव (लिंगायत) धर्मके उपासक बन जाओ, तो हम तुम्हें अपने राज्यमें रहने देंगे, अन्यथा नहीं। उस समय उनकी

ऐसी दशा हो रही थी कि बेचारोंने लाचार होकर शैवमत स्वीकार कर लिया और जैनधर्मका परित्याग कर दिया। इसके कुछ समय बाद वहां वैष्णव मतका जोर बढ़ा। हयशाल वंशके राजा बट्ट-वर्धन या विष्णुवर्धनका वहां राज्य हुआ और उसके बलात्कारसे उन्हें शैवमत छोड़कर वैष्णवधर्म स्वीकार करना पड़ा। बहुतसे लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने इन दोनों आपत्तियोंमें भी अपना धर्म नहीं छोड़ा और यद्यपि अपने शैव वैष्णव भाइयोंसे सम्बन्ध रख-नेके कारण उनकी श्रद्धामें बहुत कुछ अन्तर पड़ गया, तो भी वे अबतक श्रावकोंके समान रातको भोजन नहीं करते, पानी छानकर पीते हैं और भगवानके दर्शन भी करते हैं।

सादुर लोगोंके लगभग ९०० वर्षके इतिहासका यही सारांश है। अब इनकी वर्तमान अवस्थाकी ओर भी एक दृष्टि डालिए। सादुर लोगोंका मुख्य व्यापार काश्तकारी या खेती है। इनमें बहुतसे जमींदार, मालगुजार, किसान, व्यापारी और कुछ नौकरी तथा मजदूरी पेशा करनेवाले भी हैं। मद्य, मांसका सेवन इनमें बिलकुल नहीं है। थोड़ेसे व्रती लोगोंको छोड़कर शेष सब रात्रिभोजन करते हैं, पुनर्विवाहकी प्रथा इनमें बिलकुल नहीं है। कुछ लोगोंका ब्राह्मण और लिंगायत लोगोंके साथ खानपान है। विष्णु, महादेव और जिनदेवकी उपासना करते हैं। इस समय सादुरलोगोंमें जैन-धर्मके अनुसार आचारण करनेवाले लोग यद्यपि बहुत थोड़े हैं, तो भी उन्हें यह मालूम है कि हम पहले जैनी थे और बीचमें जबर्दस्ती शैव या वैष्णव बना लिये गये हैं और शिक्षा आदिके कारण अब उन लोगोंमें बहुत कुछ जागृति भी हो गई है। इस कारण वे चाहते हैं कि हम अपने छोड़े हुए धर्मको फिरसे ग्रहण

कर लेवें। बड़े भारी सन्तोषका विषय यह है कि इस जातिके अगुए जैनी बननेके लिए बहुत ही उत्सुक हैं और वे आशा दिलाते हैं कि हम अपने प्रभावसे सारी सादुर जातिको जैनी बना सकेंगे। 'प्रगति आणि जिन विजयमें' श्रीयुक्त तात्या नेमिनाथ पांगलने इस विषयका जो एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया है, उसमें उन्होंने कोई बीस अगुओंके नाम प्रगट किये हैं जो प्रायः जमींदार या मालगुजार हैं। उनमें एक महाशय मि० माकलप्पा नामके बी. ए. भी हैं जो बेंगलोरमें रहते हैं। इससे पाठक समझ सकते हैं कि थोड़े ही प्रयत्नसे ये हमारे बिछुड़े हुए बीस हजार भाई हमसे फिर आ मिलेंगे और हमारी संघशक्तिको बढ़ानेमें बहुत बड़े सहायक होंगे।

लगभग बीस वर्ष पहले चामराजनगरके पंडित ज्ञानेश्वर महाशयने सादुरलोगोंको जैनी बनानेका प्रयत्न किया था और उस समय इन्होंने अपनी स्वीकारता भी दे दी थी—इतना ही नहीं उनके प्रस्तावपर बहुतसे लोगोंने पक्की लिखा पढ़ी भी कर दी थी; परन्तु पीछे पंडितजीके शिथिल होजानेसे सफलता न हुई। उसके बाद गोमटेश स्वामीके पिछले मस्तकाभिषेकके समय भी एक सभामें इस विषयका प्रस्ताव किया गया; परन्तु उसका भी कुछ फल न हुआ। अब तीसरी बार यह चर्चा समाचारपत्रोंमें होती है। देखना है, इसका भी कुछ फल होता है या नहीं।

सादुरलोगोंको जैनधर्मसे कितना प्रेम है, इस विषयका अनुमान पाठक इस बातसे अच्छी तरह कर सकेंगे कि पिछली मर्दुमशुमारीमें कोई ७–८ हजार सादुरलोगोंने अपनेको जैनी बतलाया है। मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट इसकी साक्षी है।

यहां पाठक पूछ सकते हैं कि जब सादुरलोग जैनी होना चाहते हैं–उन्हें जैनधर्मसे प्रेम है, तब फिर अड़चन ही क्या है ? जैनी बननेसे उन्हें कौन रोकता है ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जिस प्रान्तमें ये लोग रहते हैं, वहांके धर्माधिकारी उपाध्याय लोग बने हुए हैं। वे आपको ब्राह्मण बतलाकर श्रावकोंको अपनेसे नीचा समझते हैं और उन्हें खास खास मौकोंके सिवा भगवानकी मूर्तिके पास खड़े भी नहीं होने देते हैं। अभिषेकादि सम्पूर्ण कार्य वे ही करते हैं–श्रावकलोग दूरसे बैठकर पूजन मात्र कर सकते हैं। श्रावकोंपर इनका बड़ा प्रभाव है। जो वे कहते हैं, श्रावकोंको वही करना पड़ता है। श्रावक चाहते हैं कि सादुरलोग हममें आ मिलें; परन्तु उपाध्यायोंको यह पसन्द नहीं। वे उन्हें बाहरीमंडपके सिवा भीतर मन्दिरमें प्रवेश भी नहीं करने देते हैं। दूरसे दर्शन कर जाओ और चले जाओ–पूजा करनेकी भी आज्ञा वे नहीं देते। बस, सबसे बड़ी भारी अड़चन यही है। इसी अन्यायसे आज २० हजार सादुर भाई जैनधर्मसे वंचित हो रहे हैं। उनका तिरस्कार किया जाता है और जैनधर्मकी जड़में कुठार मारा जाता है।

सादुरलोग चाहते हैं कि हमको मन्दिरोंके अन्तर्भागमें जानेमें रुकावट न हो और हम निराकुलतासे भगवानका पूजन अभिषेक कर सकें, जैनगुरुओंसे हमें उपदेश मिला करे, श्रावकके षट्कर्मानुसार हमको नित्यपूजनका अधिकार मिले, उपाध्याय लोग जैनधर्मानुसार हमारे यज्ञोपवीत, विवाह, जातक, सूतक आदि संस्कार करावें, उपदेशक गुरु हमारे यहां भोजन करें, हमारा यह आग्रह नहीं कि इतर श्रावकलोग भी हमसे भोजनव्यवहार रक्खें; परन्तु धर्मकार्योंमें वे हमसे भ्रातृभावसे मिलें जुलें अवश्य।

विचारदृष्टिसे देखा जाय, तो सादुर लोगोंकी उक्त इच्छाओंमें कोई भी ऐसी नहीं जिसके स्वीकार करनेमें उपाध्यायोंको तथा दूसरे लोगोंको कुछ इतस्ततः करना पड़े अथवा जिससे उनकी कुछ हानि हो; परन्तु धर्म जब आत्मकल्याण और संसारके कल्याणकी वस्तु न रहकर अभिमानकी वस्तु हो जाती है और जातिद्वेष बढ़ जाता है, तब ऐसा ही होता है। जब वेदानुयायी ब्राह्मणोंने इतर जातियोंसे धर्मके अधिकार छीन लिये, तब जैनी ब्राह्मण इस विषयमें क्यों पीछे रहें ?

अब अन्तमें मैं अपने जैनी भाइयोंसे पूछता हूं कि क्या आपमें हैं कोई ऐसे उदारचरित, जो भगवान समन्तभद्रके मतानुसार इन बीस हजार भाइयोंको पक्के जैनी बनाकर स्थितिकरण अंगकी पालना करें ? दश ही पांच उद्योगी खड़े हो जाँय और वर्ष ही दो वर्ष परिश्रम करें, तो यह कार्य सफल हो सकता है। उक्त प्रान्तमें दो चार उपदेशकोंको लेकर जगह जगह दौरा करना, उपाध्यायोंको समझाना, सादुर भाइयोंको धर्मोपदेश देना, उपाध्याय लोग नहीं मानें तो प्रयत्न करके सादुर लोगोंके लिए स्वतंत्र जैनमंदिर बनवाना, उनके संस्कारादि कार्योंके लिए दूसरे प्रान्तोंके उपाध्यायोंको कुछ वेतन देकर नियत कर देना, खास खास स्थानोंमें दश पांच सभायें स्थापित करना, सादुर जातिका एक खास मासिकपत्र निकलवाना, इत्यादि उपायोंसे हम अपनी संख्यामें सहज ही २० हजार भाइयोंकी वृद्धि करके उनके कल्याणका मार्ग खोल सकते हैं। जैनजातिको शिक्षितो, तुम्हारे लिए इससे बढ़कर काम करनेका मौका कब आवेगा ? उन आर्यसमाजी भाइयोंको तो देखो जो नीच और जंगली जातियोंको भी समाजी बनाकर अपनी आश्चर्यजनक

वृद्धि कर रहे हैं। क्या तुम्हारा स्थितिकरण अंग धर्मग्रन्थोंमें ही लिखा रहेगा ?

श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर।

जैनसमाजमें शिक्षाविस्तारका उत्साह उत्पन्न हुए लगभग पच्चीस वर्ष हो चुके। इस उत्साहकी पहली लहरने जैनधर्मकी शिक्षा देनेवाली बहुतसी संस्कृत और बालबोधपाठशालाओंकी सृष्टि की। यह सृष्टि अब भी हो रही है और आगे भी कुछ समयतक होती रहेगी; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब उक्त लहरकी गति मन्द पड़ गई है। बहुतसे विचारवानोंने सोचा कि इस सृष्टिसे हमारी वर्तमान आवश्यकताओंकी पूर्ति न होगी—हमें धार्मिकज्ञानके सिवा सामयिक ज्ञानकी भी आवश्यकता है। इस चिन्ताके प्रतिघातसे एक दूसरी लहर उत्पन्न हुई और आगे उसके दो रूप हो गये। एकका परिणाम यह हुआ कि उक्त पाठशालाओंमें अँगरेज़ी और लौकिक शिक्षाको स्थान देनेका प्रयत्न होने लगा और दूसरेका परिणाम यह हुआ कि हाईस्कूल या कालेज खोलनेकी चिन्ता और जगह जगह बोर्डिंग स्कूलोंकी सृष्टि होने लगी। यह लहर अपना काम कर ही रही थी कि एक तीसरी लहर उत्पन्न हो गई। कुछ उत्साहियोंने देखा कि संस्कृत या धार्मिकपाठशालाओंसे तो केवल पण्डित ही तैयार होते हैं, उनमें नये भावों, नये विचारों और काम करनेकी नई पद्धतियोंका बीज ही नहीं पड़ता और इधर बोर्डिंगोंमें थोड़ा बहुत धर्मशिक्षाका प्रबन्ध होनेपर भी उनके छात्रोंमें धर्मका संस्कार नहीं होने पाता। इसी समय देशमें स्वदेशी आन्दोलनका जन्म हुआ। उसने इस प्रकारके

विचारोंको फैलाया कि सरकारी स्कूलों या कालेजोंकी शिक्षासे भारतका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। उसमें अनेक बड़े बडे दोष हैं। एक तो यह कि वह हमारे धार्मिक भावोंको स्थानच्युत कर देती है, दूसरा यह कि उसमें समय बहुत लगता है और फल कम होता है। देशभाषाके द्वारा जो ज्ञान छह वर्षमें हो सकता है. उसके लिये विदेशी भाषाके द्वारा बारह वर्ष चाहिए, और तीसरा यह कि उससे देशमें दास्यवृत्तिकी ही सबसे अधिक वृद्धि होती है, इत्यादि। इससे हमें अपनी शिक्षाका प्रबन्ध आप ही करना चाहिए। इस प्रकारके विचारोंसे ही उक्त तीसरी लहर उत्पन्न हुई और उसने सबसे पहले जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचारक समिति और उसके वर्द्धमान विद्यालयकी नीव डाली। इसके बाद वह आगे बढ़ी और आर्यसमाजी भाइयोंके गुरुकुलोंके ढँगपर उसने हस्तिनापुरमें इस ऋषभब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापना की। इस तरह जैनसमाजमें जो शिक्षाविस्तारका उत्साह उत्पन्न हुआ है, इस ब्रह्मचर्याश्रमको उसका पिछला कार्य कह सकते हैं। इसमें प्राचीन पद्धतिके अनुसार आठ वर्षकी अवस्थातकके विद्यार्थी रक्खे जाते हैं और उन्हें २१ वर्षकी अवस्थातक ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। संस्कृत अंगरेज़ी और हिन्दी तीनों भाषाओंका इसमें ज्ञान कराया जाता है; परन्तु शिक्षा सब हिन्दीमें ही दी जाती है। अभी आश्रमका प्रारंभ ही है, इस लिए उच्च कक्षाओंके ब्रह्मचारियोंका अभी अभाव है, तो भी इसमें सब प्रकारकी उच्च शिक्षाओंका प्रबन्ध किया जायगा। धार्मिक भावोंकी वृद्धिकी ओर भी कार्यकर्त्ताओंका विशेष लक्ष्य जान पड़ता है। मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारकी शिक्षायें ब्रह्मचारियोंको दी जायँगी। आश्रमका प्रथम वार्षिक विवरण हमारे

पास आया है। उससे मालूम होता है कि उसने पहले ही वर्षमें आशासे अधिक सफलता प्राप्त की है। उसे एक वर्षमें बारह हजार रुपयेके लगभग सहायता मिली है, और वर्षके अन्तमें उसमें ३७ विद्यार्थी भरती हो चुके हैं। आश्रममें कई विद्यार्थी छह छह वर्षके हैं और दश वर्षसे अधिकका तो एक भी नहीं है। इससे इस बातका अनुमान होता है कि जैनियोंमें इस बातकी जागृति खूब हो गई है कि हम अपने बच्चोंको विद्वान् बनावें। इसके विना अपने छह छह वर्षके बच्चोंको कोई सैकड़ों कोसकी दूरीपर भेजनेके लिए राज़ी न होता। बच्चोंकी स्वास्थ्यरक्षा और भोजनादिका प्रबन्ध आश्रमने सन्तोषप्रद किया है। एक वर्षमें सब कामोंमें उसने कोई छह हज़ार रुपये ख़र्च किये हैं। उसे पहले ही वर्षमें कई स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता भी मिल गये हैं, इससे आशा होती है कि आगे भी उसे ऐसे लोगोंकी कमी न रहेगी। समाजके शिक्षितोंके लिए एक अच्छा कार्यस्थल तैयार हो गया है। उन्हें चाहिए कि अब उसमें जाकर कुछ करके दिखलावें। आश्रममें एक पुस्तकालय भी खोला गया है और हर्षकी बात है कि उसमें लगभग दो हजार रुपयोंकी संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी और उर्दूकी पुस्तकें संग्रह हो गई हैं। आश्रमका यह एक वर्षका काम देखकर उसके संचालक लाला गेंदनलालजी और भगवानदीनजीकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करनी पड़ती है और समाजकी उस सहानुभूतिका—जिससे कि आश्रमने इतनी अधिक सफलता प्राप्त की है—हम हृदयसे अभिनदन करते हैं। हम चाहते हैं कि यह आश्रम दिनपर दिन उन्नति करके जैनसमाजके घनीभूत अन्धकारको दूर करनेमें सहायता दे और उत्साही भाइयोंके हाथसे ऐसे ऐसे सैकड़ों आश्रम स्थापित हों।

अन्तमें यह कहे विना हमसे नहीं रहा जाता कि आश्रमने जो अपना विवरण प्रकाशित किया है, उससे हमें सन्तोष नहीं हुआ। एक नई संस्थाका विवरण जैसा होना चाहिए—वैसा यह नहीं है। हम इसके प्रारंभमें एक ऐसी प्रस्तावना पढ़ना चाहते थे, जो हमें विस्तारपूर्वक यह बतलाती कि शिक्षा कैसी होनी चाहिए, जातीय शिक्षा किसे कहते हैं, दूसरी संस्थाओंकी शिक्षासे हमारा काम क्यों नहीं चल सकता, और आश्रमके खोलनेकी क्या आवश्यकता थी। हम यह भी जानना चाहते थे कि विद्यार्थी अभी क्या पढ़ रहे हैं, उनके लिए शिक्षाक्रम कैसा बनाया गया है, कौन कौन अध्यापक क्या क्या विषय पढ़ाते हैं, इत्यादि। हिसाब भी बहुत संक्षिप्त रीतिसे प्रकाशित किया गया है। सौ रुपयासे अधिक रकम देनेवालोंकी सूची दी है, परन्तु हमारी समझमें उत्साह बढ़ानेका खयाल रखके एक रुपया और एक आना देनेवालों तकके नाम प्रकाशित होने चाहिए थे। खर्चका हिसाब भी कुछ विस्तृत होना चाहिए था।

पुस्तक-समालोचन।

विवेकानन्द प्रथम खण्ड—अमेरिका और यूरोपमें हिन्दूधर्मका डंका बजानेवाले स्वामी विवेकानन्दका नाम पाठकोंने सुना ही होगा। दूसरे देशवासियोंके हृदयमें भारतीय धर्मविद्याकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेमें और हिन्दूधर्मको एक नया संस्कृत तथा सर्व मान्यरूप देनेमें स्वामीजीने जो परिश्रम, जो अध्यवसाय, जो पाण्डित्य और जो अनन्य साधारण स्वार्थत्याग दिखलाया था, वह हिन्दूधर्मके वर्तमान इतिहासकी एक आश्चर्यजनक घटना है। **बड़े बड़े विद्वानोंका कथन है कि विवेकानन्दस्वामीने पश्चिमी**

सभ्यता, विज्ञान और नास्तिकताकी आँधीसे डगमगाते हुए हिन्दू धर्मको बचा लिया और नये शिक्षितोंको यह विश्वास करा दिया कि हिन्दूधर्मकी भी कुछ फिलासोफी है। इन्हीं प्रतिभाशाली स्वामीजीके समस्त साहित्यको मराठी भाषामें प्रकाशित करनेके लिए कर्नाटक प्रेसके स्वामी प्रयत्न कर रहे हैं। कार्य प्रारंभ हो गया है और उसका यह प्रथम खण्ड प्रकाशित भी हो गया है। इसमें भगिनी निवेदिताकी प्रस्तावना, अमेरिकाकी सर्वधर्मपरिषद्का व्याख्यान, आत्मा परमेश्वर और धर्म, हिंदूधर्म, कर्मयोग, धर्मका स्वरूप, अनुभवका मार्ग, विवेचक बुद्धि और धर्म, आर्यज्ञानमन्दिरकी सोपानपंक्ति, वेदान्तमतका प्रभाव, और निजी पत्रव्यवहार ये ग्यारह विषय हैं। अनुवाद बहुत ही सरल, सुन्दर— और भावपूर्ण हुआ है। ऐसे तात्त्विक विषयोंको ऐसी सुखबोध्य भाषामें समझाना हरएकका काम नहीं। अनुवादक महाशयकी इस सफलताका हम अभिनन्दन करते हैं और अपने उन पाठकोंसे जो मराठी जानते हैं—सिफारिश करते हैं कि वे इस ग्रन्थको अवश्य पढ़ें। यद्यपि यह जैनधर्मका ग्रन्थ नहीं है, तो भी इससे वे अपने ज्ञानकी बहुत कुछ वृद्धि कर जान सकेंगे कि वर्तमान समयके लिए कैसे धर्मकी आवश्यकता है, मूल सिद्धान्तोंकी रक्षा करके धर्मका संस्कार कहांतक हो सकता है, दूसरे देशोंमें धर्मप्रचार किस प्रकार हो सकता है और धर्मप्रचारके लिए कितना स्वार्थत्याग करना पड़ता है। लगभग ३०० पृष्ठके इस सुन्दर ग्रन्थका मूल्य सवा रुपया है। मिलनेका पता—"कर्नाटक प्रेस, गिरगांव—बम्बई"।

खूनी मामला—लेखक, बाबू विठ्ठलदास कोठारी और, प्रकाशक, हरिदास एण्ड कम्पनी २०१ हरीसनरोड कलकत्ता। **मूल्य**

चार आना। छोटे साइजके कोई ९२ पृष्ठका एक जासूसी-उपन्यास है। एक विचित्र चोरी और खूनका एक होशयार जासूसने बड़ी खूबीसे पता लगाया है। एक घंटे भरके मनोरंजनकी चीज है। भाषा बुरी नहीं है। कहीं कहीं बंगलाके शब्द ज्योंके त्यों रख दिये गये हैं।

सप्तवर्षीय रिपोर्ट—दिगम्बरजैनप्रान्तिक सभा मालवाने अपने पिछले सात वर्षोंकी संक्षिप्त रिपोर्ट छपाकर प्रकाशित की है। इस सभाकी ओरसे वर्तमानमें केवल एक उपदेशकका दौरा होता है। उपदेशक महाशय सुयोग्य हैं, इस लिए उनके दौरेसे बहुत लाभ होता है। परन्तु रिपोर्टसे मालूम होता है कि अब सभाके पास केवल चारसौ रुपया और बाकी हैं, जो कि छह महीनामें खर्च हो जायगे। इसके बाद यह खाता भी बन्द हो जायगा और प्रान्तिक सभाकी इति श्री हो जायगी। मालवाप्रान्तमें धनकी और धनवालोंकी कमी नहीं। यदि मालवा प्रान्तिकसभा आर्थिक सहायताके अभावसे बन्द हो गई, तो बड़ी लज्जाकी बात होगी।

मनोरंजन—इस नामका एक मासिकपत्र पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा द्वारा सम्पादित होकर आरासे प्रकाशित होने लगा है। इसके दो अंक हमारे सामने हैं। डेमी आठ पेजी साइजके कोई ४० पृष्ठोंपर यह प्रकाशित होता है। कव्हर पेज तीन रंगोंमें बहुत ही खूबसूरतीके साथ छपा हुआ है। भीतरकी छपाई भी अच्छी है। दोनों अंकोंमें एक एक चित्र है। आगेके अंकोंमें शायद एकसे अधिक चित्र निकलेंगे। वार्षिक मूल्य सवा दो रुपया है। यह पत्र मराठीके मासिक मनोरंजनके ढंगसे निकलेगा; परन्तु

यह जानकर बहुत खुशी हुई कि सम्पादक महाशय इसे मराठी-मनोरंजनके गुणोंको लेकर सम्पादित करेंगे—दोषोंको नहीं। मराठी मनोरंजन पाश्चात्य भावोंसे भरा रहता है; पर आप इसे प्राच्यभावोंसे भूषित करेंगे। मराठी मनोरंजनमें एक बड़ा भारी दोष यह भी है कि वह दूसरी भाषाओंके लेखोंका अनुवाद प्रकाशित करके उनके मूल लेखकोंका प्रायः कभी नाम ही नहीं लेता। हम आशा करते हैं कि हिन्दी मनोरंजन इस कृतघ्नताके दोषसे भी बचा रहेगा। पहले अंकमें तीन कवितायें और ८ गद्यलेख हैं। मेवार-महिमा और भारतभूमि नामकी कवितायें बहुत सुन्दर हैं। राजा टोडरमलका इतिहास पढ़ने योग्य है। फूलकुमारी सुन्दर और करुणरसपूर्ण कहानी है। इसमें साध, दीदी, आदि बंगला भाषाके ज्योंके त्यों शब्दोंको देखकर अनुमान होता है कि शायद यह किसी बंगला—गल्पका अनुवाद हो। 'कुछ भी बोलो' नामक प्रबधमें कोई शोकसंतप्त पति अपनी स्त्रीके मृतकशरीरसे यह आशा करके-कि यह कुछ बोलेगी—नाना प्रकारके करुणवचन कह रहा है। इसकी भाषा भावपूर्ण और सुन्दर होनेपर भी 'हेमन्तनिशान्तकी वृन्तच्युत श्री-भ्रष्टशेफालिकाकी सी शोकशुष्क संज्ञाहीन, मलिनमुखच्छवि, कुहु-कुनि आशे, आश्वासमय प्रलोभन, अनत्युच्चभावहीन,' आदि लम्बे लम्बे समासों और कठिन शब्दोंसे बंगभाषाका अनुकरण कर रही है। दूसरे अंकमें तीन पद्य और पांच गद्यलेख हैं। मातृममत्व नामक कविता अच्छी है। 'मौलवीसाहब' की कहानी बहुत ही हास्य-प्रद है; परन्तु शायद उससे अच्छी शिक्षा नहीं मिल सकती। विलास-कुमारी क्रमशः प्रकाश्य ऐतिहासिक उपन्यास है। बुद्धवार्ता पढ़ने योग्य है। मनोरंजनकी हिन्दीमें जरूरत थी और हम देखते हैं

कि उसका सम्पादन प्रारंभमें ही अच्छी सफलतासे हुआ है। हिन्दीके पाठकोंको इसके ग्राहक बनकर हिन्दीसाहित्यके मनोरंजक भागकी पूर्ति करनेमें सहायता देना चाहिए।

इन्दु—बनारससे इस नामका सचित्र मासिकपत्र लगभग तीन वर्षसे निकलता है। इसके सम्पादक और प्रकाशक बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त हैं। बहुत बड़ा और उच्चश्रेणीका मासिकपत्र है। मूल्य साढ़े तीन रुपया। तीसरे वर्षका आठवाँ और नववाँ युग्म-अंक हमारे पास समालोचनाके लिए आया है। इसके १४० पृष्ठोंमें गद्यपद्यके कोई ३२ लेख हैं। इनमें सात आठ तो खण्ड-उपन्यास हैं—जिनके पढ़नेमें बहुत जी लगता है। छह सात पद्यलेख हैं और उनमें प्रेम, सीताविलाप, और बालक सुन्दर तथा हृदयग्राही हैं। इनके सिवा कई ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, और साहित्यसम्बन्धी लेख भी हैं। प्रायः लेख दूसरी भाषाओंसे अनुवादित हैं। कोई कोई लेखक जिनके लेखोंसे उन्होंने अनुवाद करके लेख लिखे हैं, उनका नाम देना भी भूल गये हैं। यदि लेखक यह भूल न करें, तो उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। अवकाशाभावसे हम इसके सब लेख न पढ़ सके, पर इसमें सन्देह नहीं कि पत्र पढ़ने और संग्रह करने योग्य निकलता है। हिन्दीके लिए यह सौभाग्यकी बात है कि अब उसमें कई अच्छे अच्छे पत्र निकलने लगे हैं। हिन्दी प्रेमियोंको उन्हें अपनाना चाहिए।

जयन्त (बलभद्र देशका राजकुमार)—काशीमें एक 'ग्रन्थ-प्रकाशकसमिति' कुछ समयसे स्थापित हुई है। उसने हिन्दीमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करना प्रारंभ किये हैं। समितिका यह दूसरा ग्रन्थ है। इग्लेंडमें शेक्सपियर नामका विख्यात नाट-

ककार हो गया है। भारतके कवियोंमें जो स्थान कालिदासका है, वही यूरोपमें शेक्सपियरका है। शेक्सपियरके ग्रन्थोंका विलायतमें कितना आदर है, इसका अनुमान पाठक इसी बातसे कर सकेंगे कि उसके ग्रन्थोंकी समालोचना और प्रशंसामें अब तक कोई १३००० लेख लिखे जा चुके हैं! उसके बनाये नाटकोंमें 'हेम्लेट' सबसे अच्छा समझा जाता है। जयन्त उसीका हिन्दी अनुवाद है। जहां तक हम जानते हैं, हिन्दीमें इसके पहले इस ग्रन्थका अनुवाद कहीं भी नहीं हुआ है। ग्रन्थप्रकाशकसमितिको धन्यवाद देना चाहिए कि उसने इस अपूर्व ग्रन्थको प्रकाशित करके हिन्दी साहित्यकी एक बड़ी कमीको पूरी की। अनुवाद अच्छा हुआ है और खुशीकी बात यह है कि उसे इस देशके अनुकूल बना दिया है। भाषा सरल है, तो भी कहीं कहीं अस्पष्ट रह गई है। प्रूफ संशोधनमें तो बहुत ही अधिक प्रमाद हुआ है। ऐसे सुन्दर ग्रन्थकी यह कमी बहुत खटकती है। क्राउन सोलहपेजी साइजके लगभग १८० पृष्ठके ग्रन्थका मूल्य सवा रुपया अधिक मालूम होता है। मिलनेका पता उक्त मण्डलीका आफिस, बीबीहटिया—काशी।

विविध–विषय।

अमेरिकापर मूर्तिपूजकोंकी चढ़ाई—पूनाके 'हिन्दी चित्रमयजगत्'में इस नामका एक लेख प्रकाशित हुआ है। स्वामी विवेकानन्द जब सन् १९०१ में अमेरिका गये, तबसे अमेरिकामें हिन्दू धर्मका फैलना शुरू हो गया ह। और अब तो वहां हिन्दू धर्म तथा दूसरे और कई मूर्तिपूजक धर्मोंने इतना जोर पकड़ना

शुरू किया है कि वहांके कट्टर ईसाई घबड़ा गये हैं। इस विषयमें वहांके एक मासिकपत्रमें किसी स्त्रीका लेख प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि सियेटल नामक नगरमें बुद्धदेवका और सानफ्रान्सिसकोमें हिन्दुओंका विशालमन्दिर बन गया है। सूर्योपासकोंकी भी खूब वृद्धि हो रही है। यूनैटेडस्टेटसके कोई ३० नगरोंमें उनके मठ हैं और लगभग १४००० अमेरिकन उनके अनुयायी हो गये हैं। हिन्दुस्थानसे दलके दल सन्यासी अमेरिकामें पहुंच रहे हैं। उनके कारण योगशिक्षा देनेकी क्लासें तो प्रायः प्रत्येक शहरमें दिखलाई देने लगी हैं। वेस्टकार्नवालमें एक आश्रम खुला है। उसके लिए ३०० एकड़ जमीन लगा दी गई है। ग्रीनएकरमें एक योगपाठशाला है, उसके लिए एक स्त्री अपनी सारी सम्पत्ति दे गई है। बाबा भारती नामक एक हिन्दू सन्यासीके कोई ५००० शिष्य हैं। लेखक स्त्री कहती है कि इन पूर्वीय धर्मोंको पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां इन ही अधिक पसन्द करती हैं। वे इन सन्यासियोंके मंत्रसे ऐसी मुग्ध हो जाती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। अच्छे अच्छे धनवानोंकी स्त्रियां इन स्वामियोंके लिए अपने हाथसे रसोई बनाती हैं, गायें दुहती हैं, कपड़े धोती हैं, और अपने हाथसे कुओंसे पानी खींचती हैं! इनकी कृपासे अब जगह जगह बुद्धदेव और कृष्णकी मूर्तियां तथा भगवद्गीता जैसी पुस्तकें दिखने लगी हैं। वेदान्तधर्मके अनुयायियोंका कथन है कि अखिल मानवोंका यही धर्म है! ओम्—स्वरूपी देवताका पूजन बुद्ध, अल्ला, विष्णु, शिव, कृष्ण, राम, इतना ही नहीं, किन्तु ईसामसीहके द्वारा भी किया जा सकता है। आप चाहे जिस देवताका चुनाव करिए, वही देवता इन नवीन मतवालोंमें चल जायगा और

इस कारण इनका मत अत्यन्त व्यापक और सुभीतेका हो गया है। इत्यादि। पाठक इससे देख सकते हैं कि अमेरिकामें धर्मप्रचारके लिए कितना सुगम कार्यक्षेत्र पड़ा है। क्या आपको इस बातका दुःख नहीं होता कि सारे धर्मोंका अमेरिकामें प्रचार हो और जैनधर्म मुँह ताकता रहे! स्वर्गीय वीरचन्द गान्धीके बाद आज तक किसी भी जैनीने इस ओर ध्यान न दिया। उनकी स्थापित की हुई 'गांधी जैन सुसाइटी' भी उन्हींके साथ अस्त हो गई! अफसोस।

नये पत्र—जैनसमाजकी ओरसे कई नये नये पत्र निकलना चाहते हैं। 'जैनतत्त्वप्रकाशक' इटावाकी सभासे शीघ्र ही निकलनेवाला है। साप्ताहिक 'जैनभानु' के निकलनेका भी उद्योग हो रहा है। इनके सिवा फीरोजपुरकी 'जीवदयाप्रचारक सभा' की ओरसे भी एक हिन्दी, अंगरेजी, उर्दूका मासिक पत्र निकालनेका प्रयत्न हो रहा है। जयपुरसे भी एक पत्रके निकलनेकी खबर है। हम अपने सहयोगियोंके दर्शनके लिये उत्कठित हैं और साथ ही यह भी चाहते हैं कि वे बड़ी लम्बी आयु लेकर निकलें।

खैर तो है?—श्रीमती रत्नमालाके दर्शनोंके लिये लोग बहुत ही उत्कण्ठित हैं। पर अब ज्यों ज्यों दिन निकलते जाते हैं, त्यों त्यों उनकी उत्कण्ठा चिन्ताका रूप धारण करती जाती है। धीरे धीरे चार महीने बीत गये। इधर कुछ समयके लिए उसके सम्पादक पं० जवाहरलालजी शास्त्री महाविद्यालयके अध्यापक बना दिये गये हैं! इससे प्रश्न उठता है कि खैर तो है?

फलाहारसे दीर्घ जीवन—सान फ्रांसिसको (अमेरिका) के केप्टन गोडार्ड. ई. डायमण्ड नामके साहबकी उमर इस समय ११४ वर्षकी है, तो भी आप साइकल चलाते हैं, शिक्षा देते हैं,

विना थकावटके २० मीलतक पैदल चल सकते हैं और मुक्के-बाजी भी कर सकते हैं! आप कहते हैं कि मैं ६२ वर्षसे फलाहार करता हूं—मांस मछली आदि पदार्थोंको मैं स्पर्श भी नहीं करता हूं। यही कारण है, जो आपका स्वास्थ्य इतना अच्छा है। यह बात अच्छी तरहसे साबित होती जाती है कि मांसाहारसे फलाहार अधिक स्वास्थ्यकर और बलकारक है। **अमोलकचंद पी. जे.।**

भारतजैनमहामण्डलकी एक कमेटी बम्बई प्रान्तिक सभाके जलसेके वक्त बम्बईमें हुई थी। उसमें नियमावलीका कुछ संशोधन किया गया, नये कार्यकर्त्ता चुने गये और इन तीन बातोंपर विचार किया गया कि आगामी वर्षमें जैन सेन्ट्रल कालेज स्थापित करनेका प्रश्न उठाया जाय, सामाजिक और आम्नायसम्बन्धी पारस्परिक बिरोध मिटानेका यत्न किया जाय और जैन साहित्य—दर्शन—तथा न्यायके ग्रन्थ प्रकाशित किये जायं। अबकी बार मण्डलके महामंत्री बाबू अजितप्रसादजी एम. ए. एल. एल. बी. लखनौ बनाये गये हैं। बाबू चेतनदासजीने इस पदसे छुट्टी ले ली है।

नये जैन ग्रन्थ।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड !

मूल, संस्कृत छाया और पं० मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीका सहित छपकर तैयार है। मूल्य दो रुपया।

हनुमानचरित्र।

इसमें अंजना पवनंजयके पुत्र हनुमानजीका संक्षिप्त चरित्र सरस भाषामें दिया गया है। इसे खंडवाके श्रीयुत सुखचन्द पदमशाह पोरवालने बनाया है। मूल्य छह आने।

जैनेन्द्रपंचाध्यायी सूत्रपाठ।

जैनेन्द्रव्याकरणके मूलसूत्र मात्र जुदा छपाये गये हैं। मूल्य चार आना।

क्या ईश्वर जगत्कर्ता है?

बाबू दयाचन्दजी बी. ए. का लिखा हुआ यह छोटासा निबन्ध हाल ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य एक पैसा। बांटनेवालोंको सौ सौ पचास कापियां मंगा लेना चाहिए।

सूचना—अधूरी पुस्तकोंके लिए अब कोई भाई आर्डर न भेजें। क्योंकि पुस्तकें सब खतम होचुकीं हैं।

दो और नये ग्रन्थ।

जान स्टुअर्ट मिलका जीवनचरित।

स्वाधीनता आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके बनानेवाले और अपनी लेखनीकी शक्तिसे यूरोपमें एक नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले इस विद्वानका जीवनचरित प्रत्येक शिक्षित पुरुषको पढ़ना चाहिए। इसे जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मूल्य चार आने।

ठोक पीटकर वैद्यराज।

यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हंसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आजकल विना पढे लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सो भी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

नववाँ भाग] माघ, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [चौथा अंक।

अयोग्य भक्ति।

रीती पाँलागन कियें, मुँह भारी कर लेत।
भेंट नकद कछु धरत ही, द्विज हँसकर वर देत॥

उक्त दोहेको हमने एक जगहसे उद्धृत करके यहां लिख दिया है। इसमें कुछ कवित्व या रस है या नहीं, इसका विचार करनेकी जरूरत नही। हमें केवल यह देखना चाहिए कि इसमें जो सत्य बात कही गई है, वह हमारे देशमें सब जगह प्रचलित है और इसे प्रायः सब ही लोग जानते और मानते हैं।

इस दोहेमें नकद रुपयोंकी वह आश्चर्यकारिणी क्षमता दिखलाई गई है, जिसके प्रभावसे मनुष्य एक ही समयमें एक ही पुरुषमें एक साथ ममता और अश्रद्धा कर सकता है।

इस विषयको हम अच्छी तरहसे जानते हैं कि हमारे वर्तमान गुरु (भट्टारक), पुरोहित आदि लोग साधु नहीं हैं—सामान्य संसारी गृहस्थोंके समान उन्हें भी रुपये पैसेसे अतिशय प्रेम है; तो

भी हम उनके चरणोंकी रज मस्तकमें लगाकर आपको कृतार्थ समझते हैं। क्योंकि गुरु पूज्य है। इस प्रकारकी भक्तिके द्वारा हम अपना आप ही अपमान करते हैं और इस बातको बिलकुल भूल जाते हैं कि योग्य व्यक्तिका सम्मान करना ही आत्मसम्मान है।

जिस तरह अन्धा आदमी अभ्यास पड़ जानेसे एक रास्तेसे सहज ही चला जाता है, उसी प्रकारसे अन्ध भक्ति भी अभ्यासके मार्गसे बेरोक टोक चली जाती है। इस बातके उदाहरण सारे देशोंमें मिलते हैं। विलायतमें एक लार्डका लड़का, चाहे वह बिलकुल नालायक और मिट्टीका पुतला ही क्यों न हो–अच्छे अच्छे योग्य पुरुषोंकी श्रद्धाको सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

जिसकी बहुत समयसे बहुतसे लोग भक्ति और पूजा करते आ रहे हैं, उसकी भक्ति करनेके लिए लोगोंको इस बातका विचार करनेकी जरूरत नहीं मालूम होती कि इसमें कोई भक्तिके योग्य गुण या सामर्थ्य भी है या नहीं। बल्कि उसमें अभक्ति करनेका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता हो; तो भी लोगोंकी भेंटें उसकी ओर आप ही आप खिंचकर चली जाया करती हैं!

इस तरह हमारे मनमें स्वभावसे ही प्रायः जड़धर्मकी प्रतिष्ठा हो गई है। यही कारण है, जो हमारा मन अभ्यासके रास्तेसे मोहके खिंचावके मारे पत्थरकी तरह लुड़कता हुआ चला जाता है और यदि उसके बीचमें कोई युक्ति रुकावट करनेके लिए तैयार होती है, तो वह चूर चूर हो जाती है।

भक्तिके द्वारा जो नम्रता प्रगट की जाती है, वह हर जगह शोभा नहीं देती। हमको समझ लेना चाहिए कि यह नम्रता केवल इस-

लिए की जाती है कि इसके द्वारा हम जिसकी भक्ति करते हैं उससे कुछ ग्रहण करें, सीखें, उसको आदर्श बनाकर अपनी कुछ उन्नति करें और उसके माहात्म्यके प्रभावके आगे अपनी प्रकृतिको हर तरहसे अनुकूल करें। किन्तु जो नम्रता अयोग्य व्यक्तिके सामने प्रगट की जाती है—जिसकी कोई जड़ नहीं है, वह बड़ी ही हानिकारक है। क्योंकि वह नीचकी भक्ति करके नीचता लाती है और अयोग्यके सामने नत होकर हमें अयोग्यताके आनेके लिए अनुकूल बना रखती है।

भक्ति हमको भक्तिभाजनके आदर्शकी ओर स्वयं ही आकर्षित करती है—अर्थात् उसके गुणोंका अनुकरण करनेके लिए बाध्य करती है, इसलिए सभ्यसमाजमें कितने ही कठिन नियम प्रचलित किये गये हैं। जिस मनुष्यमें कोई ऐसी सामर्थ्य है जिससे कि साधारण लोगोंकी दृष्टि और श्रद्धा उसकी ओर आकर्षित होती है, उससे समाज यह आशा रखता है कि वह सब ही विषयोंमें निष्कलंक होगा और इसलिए जो पुरुष राजनीतिमें श्रद्धास्पद है, वह यदि धर्मनीतिमें गिरा हुआ हो, तो साधारण दुराचारी लोगोंकी अपेक्षा भी वह अधिक निन्दनीय समझा जाता है।

एक तरहसे देखा जाय, तो इसमें थोड़ासा अन्याय होता है। क्योंकि क्षमता या योग्यता सर्वव्यापिनी नहीं होती। ऐसा कोई प्राकृतिक नियम नहीं है कि राजनीतिका जो विद्वान् है उसकी क्षमता और चरित्रके दूसरे अंश साधारण लोगोंकी अपेक्षा उन्नत होते ही हैं। अत एव राजनीतिके ज्ञाता पुरुषको राजनीतिके सिवा अन्य बातोंमें उसी दृष्टिसे देखना चाहिए, जिस दृष्टिसे अन्य साधारण लोगोंको देखते हैं। किन्तु समाजको केवल अपनी रक्षा करनेके लिए इस विषयमें थोड़ीसी कड़ाई और अन्याय करना पडता है।

इसका कारण पहले ही बतलाया जा चुका है। भक्तिके द्वारा मन भक्तिभाजनके गुण ग्रहण करनेके लिए–उससे कुछ सीखनेके लिए अनुकूल हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उसकी ऐसी विचार-शक्ति नहीं रहती कि वह भक्तियोग्य व्यक्तिके एक अंशको तो ग्रहण कर ले और दूसरोंको छोड़ दे।

किन्तु जिस विषयमें एक मनुष्य असाधारण योग्यता रखता है, उसी विषयका अनुकरण करना साधारण लोगोंके लिए दुःसाध्य है–उसका वे अनुकरण नहीं कर सकते। इस लिए जिस अंशमें वह साधारण लोगोंकी अपेक्षा ऊंचा नहीं है–बल्कि उसमें वह बहुत ही गिरा हुआ है, उसी अंशका लोग देखते देखते अनुकरण करने लग जाते है। इसी लिए जो व्यक्ति एक विषयमें महान् है–बड़ा है, वह यदि दूसरे विषयोंमें हीन होता है, तो समाज पहले तो उसके उस एक विषयके महत्त्वको अस्वीकार करनेकी चेष्टा करता है और यदि उसमें सफलता नहीं होती है, तो फिर उसकी हीनतापर साधारण हीनताकी अपेक्षा बहुत ही गहरा कलंक लगाता है। सभ्यसमाज अपनी रक्षाके लिए ही इस प्रकारकी चेष्टा करता है। उसकी यह चेष्टा उनके सुधारनेके लिए नहीं होती जो कि किसी विषयमें असाधारण हैं; किन्तु जो लोग साधारण हैं, उन्हें भक्तिके कुफलसे या बुरे परि-णामसे बचानेके लिए होती है।

अहंकारका फल अच्छा नहीं होता, इस विषयमें हमको सारे ही नीतिशास्त्र उपदेश देते हैं; परन्तु यह भी तो सोचना चाहिए कि अहंकारसे मनुष्यका पतन क्यों होता है? पहला कारण तो यह है कि अपने बड़प्पनका अतिशय विश्वास होनेसे–मैं बहुत बड़ा हूं ऐसा अभिमान रहनेसे–वह दूसरोंको अच्छी तरहसे नहीं जान सकता

है और जिस संसारमें सैकड़ों लोगोंके साथ रहना और काम करना पड़ता है, उसमें तब ही सब विषयोंमें सफलता प्राप्त हो सकती है, जब कि मनुष्य अपनी तुलनामें दूसरोंको यथार्थरूपसे जानता हो। चीन देश अपने अभिमानकी प्रबलतासे जापानको न पहचान सका, इसी लिए उसको एकाएक नीचा देखना पड़ा और आपत्तिमें फँसना पड़ा। जर्मनीके साथ युद्ध करनेके पहले फ्रान्सकी भी यही दशा थी और यह लोकोक्ति तो प्रसिद्ध ही है कि 'अतिदर्पे हता लंका।' अँगरेजीमें एक कहावत है कि ज्ञान ही बल है। इसके अनुसार चाहे हमारा घर हो, चाहे हमारा कर्मक्षेत्र हो—सर्वत्र ही दूसरोंके सम्बन्धमें वास्तविक ज्ञान होना ही हमारा प्रधान बल है। अहंकार इसी बलको नहीं होने देता और हमें दूसरोंके सम्बन्धमें अज्ञ रखकर हमारी दुर्बलताका प्रधान कारण बन जाता है।

दूसरा कारण यह है कि अहंकार सारे संसारको हमारे विरुद्ध खड़ा कर देता है। कोई चाहे कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, उसे संसारका एक नहीं अनेक बातोंमें ऋणी होना पड़ता है; परन्तु जो लोग इस ऋणको विनयपूर्वक स्वीकार नहीं करना चाहते, उन्हें ऋण मिलना कठिन हो जाता है। अभिप्राय यह कि बड़ेसे भी बड़े आदमीको दूसरे लोगोंसे कुछ न कुछ किसी न किसी विषयमें सहायता लेनी ही पड़ती है। ऐसी हालतमें यदि वह अहंकारके कारण किसीको कुछ न समझे, तो उसकी कोई भी सहायता नहीं करता—उसकी दुर्गतिका ठिकाना नहीं रहता।

तीसरा सबसे बड़ा कारण यह है कि बड़ेको बड़ा समझनेमें एक प्रकारका आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होता है। क्योंकि उससे आत्माका विस्तार होता है। पर अहंकार हमको अपनी संकीर्ण-

ताके भीतर ही कैद कर रखता है। जिसके हृदयमें भक्ति नहीं है वह नहीं जान सकता कि अहंकारका अधिकार कितना संकीर्ण है; क्योंकि वह तो अपनेसे बड़ा किसीको समझता ही नहीं—संकीर्णता और विस्तारकी कल्पना वह कैसे करेगा? परन्तु जिसके हृदयमें भक्ति है, वह जानता है कि मेरे बाहर जो बृहत्त्व और महत्त्व है उसका अनुभव करनेसे ही आत्माकी मुक्ति होती है। इसीलिए सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों ही हिसाबसे अहंकारकी इतनी निन्दा की जाती है।

किन्तु इसके साथ ही नीतिशास्त्रमें इस बातका उल्लेख होना भी उचित है कि अयथाभक्ति या अयोग्यभक्ति भी अहंकारके ही समान सब प्रकारसे दूषित है। अन्धभक्तिसे भी हमको दूसरोंका यथार्थ ज्ञान नहीं होने पाता और अयोग्य भक्तिसे जब हमें अपने समान अथवा अपनेसे हीन व्यक्तिके सामने मस्तक झुकाना पड़ता है, तब उससे हमारे हृदयमें जो दीनता आती है वह अहंकारकी संकीर्णतासे कुछ कम नहीं होती। इसी लिए अंगरेज समाज अभिमानको अहंकारके समान निन्दनीय नहीं समझता। वह कहता है कि अभिमानके न होनेसे मनुष्यत्वकी हानि होती है।

जिसे मनुष्यत्वका अभिमान है, वह अपने मस्तकको अयोग्यके सामने कभी न झुकायगा। उसकी भक्तिकी वृत्ति यदि चरितार्थ होना चाहती है, तो वह जहां तहां गिरती पड़ती नहीं फिरती; किन्तु पूरी पूरी जांच पड़ताल करके और उचित प्रमाण पाकरके सच्चे भक्तिभाजनको खोज निकालती है।

किन्तु हमारी जाति भक्तिवती जाति है। भक्ति करनेको ही हम धर्माचरण समझते हैं;—यह विचार करनेकी हम जरूरत नहीं समझते कि भक्ति किसकी करनी चाहिए।

यदि हमारी सत्प्रवृत्तिका मार्ग भी रुकावटोंसे बिलकुल खाली हो, तो उससे अच्छे फलकी प्राप्ति नहीं होगी। उसकी (सदाचार या सत्प्रवृत्तिकी) शक्ति, सजीवता और आध्यात्मिक उज्ज्वलताकी रक्षा करनेके लिए और उसको अव्यर्थ बनानेके लिए आवश्यक है कि हम उसका बाधाओं या रुकावटोंसे संग्राम करते रहें। किसी वैज्ञानिक सत्यका निर्णय करनेके लिए उसमें पद पदपर संशयके द्वारा बाधायें देनी पड़ती हैं और साधारण लोगोंकी दृष्टिमें जो निस्सन्देह सत्य है, उसकी भी कठिन प्रमाणोंके द्वारा बार बार जांच करनी पड़ती है। जो लोग अतिशय आतुर होकर अपने प्रश्नका उतवालीसे उत्तर चाहते हैं, वे बहुधा भ्रमात्मक या झूठा उत्तर पाते हैं। इसलिए अपनी जिज्ञासावृत्तिकी किसी प्रकारसे निवृत्ति कर लेना ही हमारा मुख्य लक्ष्य न होना चाहिए। सत्यका निर्णय करना ही जिज्ञासाका वास्तविक फल है।

इसी तरह भक्तिकी सार्थकता यह नहीं है कि किसी न किसी तरहसे भक्तिवृत्तिको चरितार्थ कर डालना। यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी न किसी तरह आपको संतुष्ट या तृप्त करनेका अतिशय आग्रह हमें भ्रान्तमार्गमें पटके विना नहीं रहता। इस तरहसे वह झूठे देवोंकी, आत्मापमानकी और सहज साधनाकी सृष्टि करता रहता है। महत्त्वकी धारणा ही तो भक्तिका लक्ष्य है, फिर वह कितनी ही कठिन क्यों न हो, उससे च्युत न होना चाहिए। जिस धारणासे आत्माकी तृप्ति नहीं होती, वह कितनी ही सहज और सुखकर हो, किस कामकी ? जिज्ञासावृत्तिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा बुद्धिविचारकी है। उसके साथ अभिमान भी रहता है। वह कहता है—"तुम मुझे धोखा नहीं दे सकोगे। मैं इतना बुद्धि

नहीं हूं कि जैसे तैसेको सत्य मान बैठूं। जब पहले मेरे सारे संशयोंको दूर कर दोगे, तब ही मैं सत्यको सत्य समझकर ग्रहण करूंगा।"

भक्तिके मार्गमें उक्त बुद्धिविचार और अभिमानकी ही अत्यावश्यक रुकावटें हैं। जब ये रुकावटें होती हैं, तब ही भक्ति वास्तविक भक्तिभाजनको पाकर आपको चरितार्थ करती है। अभिमान सहज ही सिर नहीं झुकाने देता। जब वह आत्मसमर्पण कर देता है—हार मान लेता है, तब समझो भक्तिभाजनकी परीक्षा हो चुकी—श्रीरामचन्द्रजी धनुष तोड़कर अपने बलका प्रमाण दे चुके। इन दो रुकावटोंके विना भक्ति ऊघन लगती है, अन्धी हो जाती है और कठपुतलीके समान विना विचारे घड़ी घड़ीपर जहां तहां सिर झुकाकर आपको कृतार्थ समझने लगती है। इस प्रकारकी भक्ति अध्यात्मपथसे च्युत होकर मूर्खतामें आ गिरती है।

यदि कोई पुरुष वास्तवमें पूज्य या महत् नहीं है, किन्तु हम उसे महत् समझते हैं—तो जब तक हमारी कल्पनामें वह महत् है, तब तक उसकी भक्ति करनेमें विशेष हानि नहीं; परन्तु हानि बिलकुल ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि हम जिसको बड़ा समझकर पूजते हैं, जानकर और विना जाने भी हम उसका अनुकरण करने लगते हैं। इस लिए जो वास्तवमें महत् नहीं है—केवल हमारी कल्पना और विश्वासमें महत् है, उसके आचरणका अन्धभावसे अनुकरण करना हमारे लिए लाभकारी या उन्नतिकर नहीं हो सकता।

किन्तु हमारे देशमें आश्चर्यकी बात यह है कि हम अपनी भूलको समझकर भी भक्ति करते हैं। जिसको हम जानते हैं कि

यह नीच है, उसके चरणोंपर भी हम मस्तक रखनेके लिए व्याकुल रहते हैं।

हमारे देशमें महन्तको महत्, भट्टारकको ज्ञानी वैरागी, पुरोहितको पवित्र और देवताओंको उन्नत चरित्र होनेकी जरूरत नहीं। क्योंकि हम उनके लिए हर समय भक्ति लिये हुए तैयार रहते हैं। जो महन्त या भट्टारक जेलमें भेजे जानेके योग्य है, उसके चरणोंकी पूजा करनेमें हम आपको अपमानित नहीं समझते; जो पुरोहित पापाचारी है और पूजानुष्ठानादि मंत्रोंका अर्थ भी नहीं जानता, उसे गुरुमहाराज या पूज्य समझनेमें हम जरा भी कुंठित नहीं होते; जिन सब देवोंके पुराणोंमें वर्णन किये हुए आचरणोंको लक्ष्य करके हम बातचीतमें, प्रचलित काव्योंमें और गीतोंमें हँसी दिल्लगी किया करते हैं, उन देवोंकी भी हम पूरी पूरी भक्ति और पूजा करते हैं!

इस लिए यहां प्रश्न उठता है कि तो फिर हम क्यों इन सबकी पूजा करते हैं? इसका एक उत्तर यह है कि अभ्यासके वशसे अर्थात् मनकी जड़ताके वशसे और दूसरा उत्तर यह है कि भक्तिजनक गुणोंके न होनेपर भी भक्तिपात्रमें एक शक्तिकी कल्पना करके और उस शक्तिसे फल पानेकी इच्छासे।

गुरु और पुरोहितोंमें हम एक गूढ़ शक्तिकी कल्पना करते रहते हैं। उनका ज्ञान, चरित्र और आचरण चाहे जैसा हो, पर वे हमारी सांसारिक भलाइयोंके मुख्य कारण हैं और उनकी भक्तिसे लाभ तथा अभक्तिसे हानि है, इस प्रकारका विश्वास हमारे मस्तकोंको उनके पैरोंपर सदा ही झुकाये रखता है। किसी किसी सम्प्रदायके लोगोंमें तो यह विश्वास यहांतक बढ़ गया है कि वे

गृहधर्मनीतिपर प्रत्यक्ष कुठार चलाकर स्पष्ट व्यभिचारके द्वारा भी गुरुभक्तिको चरितार्थ करते हैं।

ब्राह्मणोंके विषयमें भी यही दशा है। ब्राह्मण चाहे जितना दुश्चरित्र और अधम हो, पर ब्राह्मणत्वके कारण पूज्य समझा जाता है। हम समझते हैं कि ब्राह्मणोंमें बहुतसी छुपी हुई शक्तियां होती हैं, इस लिए उनके प्रसन्न और अप्रसन्न होनेसे हमारी भलाई बुराई हो सकती है। पर इस तरहकी भक्तिसे भक्त और भक्तिपात्रके बीचमें आध्यात्मिक सम्बन्ध नहीं रहता, लेन देनका सम्बन्ध हो जाता है और इस सम्बन्धसे भक्तिपात्र भी ऊंचा नहीं होने पाता और भक्त भी नीचे गिर जाता है।

हमारे देशकी उक्त देवभक्तिके विषयमें बहुतसे नवशिक्षित लोग एक बहुत ही सूक्ष्म तर्क करना सीख गये हैं। वे कहते हैं कि जब ईश्वर सर्वव्यापी है, तब हम ईश्वर समझ कर चाहे जिसकी पूजा करें, उस पूजाको वही ईश्वर ग्रहण करेगा। अतएव इस प्रकारकी भक्ति निष्फल नहीं जाती।

अर्थात् पूजा क्या है एक प्रकारका खजाना भरना या टैक्स अदा करना है। उसे चाहे खास राजाके हाथमें दे दो, चाहे तहसीलदारके हाथमें दे दो, एक ही राजकोशमें जाकर जमा हो जायगा!

हमारे मनमें यह देवताओंके साथका लेनदेनका सम्बन्ध खूब ही जड़ पकड़ गया है। हम समझते हैं कि पूजाके द्वारा मानो हमने ईश्वरका एक विशेष उपकार किया और यह भी नहीं भूलते कि उसके बदलेमें उससे हमारा एक प्रत्युपकार पाना रहा। इस तरहकी दूकानदारी आजकल जहां देखो वहीं चल रही है। जब

पूजाको देवताके हाथमें पहुंचाना ही हमारा अभीष्ट है और जब उसे ठीक तौरसे ठिकानेपर पहुंचनेमें ही हमें लाभ है, तब जितने थोड़े खर्चमें और थोड़े परिश्रममें उसका चालान किया जा सके, धर्मके व्यापारमें हमें उतना ही अधिक लाभ है। तब जरूरत क्या है कि हम ईश्वरके स्वरूपका चिंतवन या ध्यान करें और जरूरत क्या है कि हम कठोर परीक्षा करनेमें प्रवृत्त होवें ? सामने धातु, पत्थर, या काठ जो मिला, उसीके आगे ईश्वर कहकर भेंट अर्पण कर दी ! बस, जिनकी वह भेंट है, वे आप ही व्यग्र होकर आयँगे और हाथ बढ़ाकर ले जायँगे !

हमारे पुराणोंमें और प्रचलित काव्योंमें जो कथायें लिखी हैं, उनसे मालूम होता है कि मानो हमारे देवता अपनी अपनी भेंट-पूजा ग्रहण करनेके लिए इस तरह टूटते हैं और ऊधम मचाते हैं, जिस तरह कि एक मुर्देपर बहुतसे गिद्ध टूटते हैं और छीन झपट करते हैं। हमारे नवशिक्षित पुरुषोंके हृदयोंमें भी यह बात एक तरहसे जम रही है कि भक्ति या भेंट ग्रहण करनेमें स्वयं ईश्वर ही लोलुप है।

किन्तु, चाहे मनुष्यपूजा हो चाहे देवपूजा हो, भक्ति भक्तके ही लाभकी वस्तु है। जिसकी हम भक्ति करते हैं, वह यदि न भी जाने, तो हानि नहीं; पर हमें चाहिए कि उसे हम अवश्य जानें—इस जाननेमें ही हमारी भक्तिकी सार्थकता है। भक्तिको छोड़कर ऐसा और कोई उपाय नहीं है, जिससे पूज्य व्यक्तिके आदर्शको हम अपनी प्रकृतिके साथ बिलकुल मिलानेकी इच्छाको पूर्ण कर सकें। हम जिसकी पूजा करते हैं, यदि उसे हम सचमुच ही चाहते हैं, तो उसकी प्रकृतिके आदर्शको और उसके सत्यस्वरूपको हमें

अटल भक्तिसे अपने हृदयमें स्थापित करना चाहिए। ऐसी अवस्थामें धोखा देनेकी प्रवृत्ति स्वयं ही नहीं होती है। हम उसके और अपने बीचके अन्तरको और दूरीको जितनी ही दीनताके साथ अनुभव करेंगे, उतनी ही भक्ति बढ़ेगी और वह हमें उसमें लीन करनेकी चेष्टा करेगी।

यही भक्तिका महत्त्व और गौरव है। भक्ति वह आध्यात्मिक रसायनशक्ति है, जो क्षुद्रताको गलाकर महत्तामें मिश्रित कर देती है।

अतएव जब हम ईश्वरकी भक्ति करते हैं, तब उससे कुछ उसका ऐश्वर्य नहीं बढ़ जाता; किन्तु हम ही उस रसस्वरूपके रासायनिक मिलनको प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। हमारे ईश्वरका आदर्श जितना ही महत् होगा, उसमें लीन होनेका आनन्द भी उतना ही गहरा होगा और उसके द्वारा आत्मा भी उतना ही विशाल होगा।

जिसकी हम भक्ति करते हैं, उसे छोड़कर हम और किसीको नहीं पा सकते। यदि हम गुरुको ब्रह्म समझकर भक्ति करते हैं, तो उस गुरुका आदर्श ही हमारे मनपर अंकित होगा। यद्यपि भक्तिकी प्रबलताके द्वारा उस गुरुका मानस आदर्श उसके स्वाभाविक आदर्शकी अपेक्षा थोड़ा बहुत स्वयं ही बढ़ जाता है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु उससे स्वतंत्र या विलक्षण नहीं हो सकता।

अयोग्यकी भक्ति करनेमें एक बड़ा भारी पाप यह है कि जो वास्तविक पूज्य हैं, उन्हें हम अयोग्यपात्रोंकी बराबरीपर बिठा देते हैं। ईश्वरमें, देवताओंमें और उपदेवताओंमें फिर कुछ भी अन्तर नहीं रहता।

हमारे देशमें इस प्रकारका अनुचित मिश्रण सब ही विषयोंमें हो रहा है। हम अनाचार, आचारोंकी त्रुटियां अर्थात् अतिचार और

धार्मिक नियमोंका लंघन, इन सबको एकत्र मिलाकर—एक ही बराबर समझकर घोरतर जडवाद और छुपी हुई नास्तिकताकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

भक्तिराज्यमें भी इसी प्रकारका मिश्रण करके हमने भक्तिकी आध्यात्मिकता नष्ट कर दी है। इसी लिए हम साधु शूद्रकी भक्ति नहीं करते; परन्तु असाधु ब्राह्मणकी भक्ति करनेमें आपको कृतार्थ मानते हैं। हम सूर्यके प्रकाशसे अपूर्व शोभा धारण करनेवाले हिमालयके शिखरपर दृष्टि डाले विना तो चले जा सकते हैं; परन्तु रास्तेके सिन्दूरसे रंगे हुए पत्थरोंकी उपेक्षा करके नहीं जा सकते।

सत्य और शास्त्रके विषयमें भी हमने इसी प्रकारकी जड़ता धारण कर ली है। समुद्रयात्रा करना उचित है कि अनुचित, इसका विचार करनेमें यही देखना उचित है कि नये देशोंके आचारविचार देखकर हमारे ज्ञानका विस्तार होता है कि नहीं, हमारी संकीर्णता दूर होती है कि नहीं और पृथिवीकी एक छोटीसी सीमाके भीतर किसी उन्नतिके इच्छुक और ज्ञानपिपासु व्यक्तिको जबर्दस्ती कैद कर रखनेका न्याय्य अधिकार किसीको है या नहीं; किन्तु यह न देखकर हम देखते हैं कि पराशरने समुद्रपार होनेकी आज्ञा दी है या नहीं और अत्रिने किस युक्तिसे उसका समर्थन किया है।

हमारे यहां यह विपरीतता क्यों चल पड़ी? इसका मुख्य कारण यह है कि हमने उस स्वाधीनताको ही बड़े बड़े बन्धनोंसे जकड़ दी है, जो हमारी सारी प्रवृत्तियोंका सबसे प्रधान गौरव है।

सच्ची और सार्थक भक्ति वही है, जो अभ्याससे या दूसरेके कहनेसे नहीं किन्तु स्वाधीन बोधशक्तिके योगसे हमें महत्त्वके

सामने झुका देती है– पूज्यके आगे आत्मसमर्पण करनेके लिए लाचार कर देती है।

यहां लोग यह आशंका करते हैं कि सब ही लोगोंमें बोध-शक्ति या ज्ञान नहीं होता। इससे अच्छा हो, यदि एक नियम ऐसा बना दिया जाय जिससे सब लोगोंको इस प्रणालीसे भक्ति करना ही पड़े और समझा दिया जाय कि यदि वे न करेंगे, तो उनकी सांसारिक क्षति होगी और उनके पुरुषाओंको नरकवास करना पड़ेगा।

परन्तु यह तो वैसा ही हुआ कि यदि झाड़ खुली जमीनमें लगाया जायगा, तो उसे ढोर खा जायँगे या रास्तागीर रोंध ज़ायँगे, इसलिए उसे लोहेके सन्दूकमें बन्द करके रखना चाहिए। यह ठीक है कि सन्दूकमें वह निरापद रहेगा; परन्तु उसमें फल नहीं लग सकेंगे–सजीव झाड़ सूखकर लकड़ी बन जायगा।

जब तक मनुष्यकी बुद्धिको स्वाधीनता न दी जायगी, तब तक उसे व्यर्थ ही समझना चाहिए। वह भूल करती है, इसलिए उसे बन्धनमें रखना वैसा ही बुद्धिमानीका काम है जैसा कि एक ठीक रास्तेसे न चलनेवाले बैलको आंखोंमें पट्टी बांधकर निरन्तर एक कोल्हूके आसपास नियमसे प्रदक्षिणा कराते रहना।

हिन्दुओंके शास्त्रोंमें लिखा है कि अमुक अमुक तिथियोंको मूली खानेसे नरक और चने खानेसे अक्षय स्वर्ग मिलता है। धर्मात्मा लोग कहते हैं कि इस विधिके अनुसार चलनेसे लोगोंको स्वास्थ-रक्षाकी चिन्ता न करना पड़ेगी–उनके सिरमें भी कभी दर्द न होगा परन्तु हम कहते हैं कि इस तरह स्वर्गनरकके भयसे मूली छोड़कर चने खानेसे लोगोंका क्या उपकार हुआ, इसका तो कोई प्रमाण

नहीं; किन्तु उनकी बुद्धिको जड़ बना देनेसे जो अपकार हुआ है, इसके प्रमाणोंसे इतिहास भरा पड़ा है। *

विनोद-विवेकलहरी।

(७)

मनुष्य फल।

जब कभी अफीमकी मात्रा जियादा हो जाती है, तब मुझे ऐसा मालूम होता है कि पृथ्वीमें जितने मनुष्य हैं, वे सब तरह तरहके फल हैं और संसारवृक्षके मायारूप डंठलोंमें लटके हुए हैं; ज्यों ही पककर तैयार हुए कि नीचे आ पड़ते हैं। इनमेंसे कोई कोई विना पके अकालहीमें झड़ जाते हैं, कोई कोई कीड़े लग जानेसे खराब हो जाते हैं, कोई कोई पक्षियोंकी चोंचोंसे कुतरे जाते हैं और कोई कोई अच्छी तरहसे पक जानेपर तोड़ लिए जाते हैं तथा गङ्गा-जलसे धौत होकर देवसेवा या ब्राह्मणभोजनके काम आते हैं। वास्तवमें देखा जाय, तो इन्हीं पिछले फलोंका फलजन्म या मनुष्यजन्म सार्थक है। पर जो पककर आप ही आप वृक्षसे जुदा होकर मिट्टीमें पड़ जाते हैं और गीदड़ोंके काम आते हैं, उनके फलजन्म या मनुष्यजन्मको व्यर्थ समझना चाहिए। कोई कोई फल चरपरे कड़ुए या कसैले होते हैं; परन्तु उनसे अच्छी अच्छी दवाइयां तयार होती हैं। कोई कोई विषमय होते हैं—उन्हें जो खाता है, वही मरता है और कोई कोई इन्द्रायणके समान केवल देखनेमें ही सुन्दर होते हैं।

* श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरकी समाज नामक बंगला पुस्तकके एक निबंधका हिन्दी अनुवाद।

मैं कभी कभी नशेमें झूमते झूमते देखता हूं कि जुदा जुदा जातिके मनुष्य जुदा जुदा जातिके फल हैं। भारतवर्षके इस समंयके बड़े आदमी कठहर (पनस) सरीखे मालूम होते हैं। उनमें कोई कोई अच्छे दानेदार होते हैं, कोई कोई लुआबदार होते हैं और कोई कोई केवल तुंदिल, ढोरोंके खाने-योग्य होते हैं। कोई कोई डालमें पकते हैं, कोई कोई डालमें ही लगे रहते हैं—कभी पकते नहीं और कोई कोई पक तो सकते हैं; परन्तु पकने नहीं पाते हैं—पृथिवीके राक्षस उन्हें डालसे ही तोड़ लेते हैं और तरकारी बनाकरके खा जाते हैं। यदि कभी किसी तरहसे पक भी गये, तो फिर गीदड़ोंके मारे उनकी खैर नहीं। यदि इर्द गिर्द बाड़ी लगी हो, या वे ऊंची डालियोंपर फले हों तब तो ठीक है, नहीं तो गीदड़ किसी न किसी तरह उन्हें अपने पेटके भीतर किये विना नहीं रहते। ये गीदड़ एक तरहके नहीं होते। इनमें कोई दीवान, कोई मुसाहिब, कोई कारिंदा, कोई मुनीम, कोई गुमास्ता, कोई सलाहकार और कोई केवल आशीर्वाद देनेवाले होते हैं। यदि इन सबके हाथसे बचकर पका कठहर किसी तरह घर पहुंच गया, तो वहां मक्खियोंकी भिनभिनाहट शुरू हो जाती है। मक्खियां कठहर तो नहीं खाना चाहतीं परन्तु उसके रसकी आशा लगाये रहती हैं। यह मक्खी कन्याभारग्रसित है—इसे कन्याका विवाह करना है, इसको एक बूंद रस चाहिए। इसे अपनी माताका श्राद्ध करना है, इसको थोड़ासा रस चाहिए। यह मक्खी बहुत चतुर है—इसने एक कविताकी पुस्तक लिखी है, इसे थोड़ासा रस चाहिए। इसने अपना पेट पालनेके लिए एक संवादपत्रका सम्पादन करना प्रारंभ किया है, इसे भी कुछ मिलना चाहिए। यह कठहरकी

जेठके पुत्रके सालेके सालेका पुत्र है—भूखसे मरता है, इसे कुछ रस दो। इस मक्खीकी पाठशालामें १०–१२ लड़के व्याकरण और न्यायके सूत्रोंको लेकर गुनगुन किया करते हैं, इसे भी एक दो बूंद रस दो। इधर देखते हैं, तो कठहरको घरमें रख छोड़ना भी ठीक नहीं–सड़कर बदबू फैलाने लगता है, इस लिए मेरी समझमें तो यह आता है कि उसे तराशकर और उत्तम निर्जल दूधमें औंटाकर कमलाकान्त जैसे सुब्राह्मणको भोजन करा देना ही श्रेयस्कर है।

इस देशके सिविल सर्विसके साहब लोगोंको मैं आम्रफल समझता हूं। सुना है, इस देशमें आम नहीं होता था–इसे कोई महात्मा किसी दूर देशसे यहां लाये थे। आम देखनेमें लाल लाल और खूबसूरत मालूम होते हैं। कच्चे बहुत ही खट्टे होते हैं–पकनेपर अवश्य ही मीठे लगते हैं; तो भी भीतर थोड़े बहुत खट्टे ही रहते हैं। कोई कोई आम तो ऐसे बहियात होते हैं कि पकनेपर भी उनकी असह्य खटाई नहीं जाती; परन्तु देखनेमें ऐसे रंगीले और बड़े बड़े होते हैं कि उन्हें बेचनेवाले धोखा देकर पच्चीस रुपया सैकड़ासे कमपर नहीं देते। कोई कोई आम कच्चेपनमें तो मीठे होते हैं; पर पकनेपर फीके हो जाते है। बहुतसे अधपके ही रहते हैं। अच्छा हो, यदि वे कुचलकर और नमक मिलाकर काममें लाये जायँ।

आमोंका खाना सब लोग नहीं जानते। ये फल झाड़से टूटते ही नहीं खाये जाते। इन्हें कुछ समय सलाम या अभिवादनरूप जलमें रखकर ठंडा करना चाहिए और यदि मिल सके, तो उस जलमें थोड़ासा खुशामदरूप बर्फ डाल देना चाहिए–बस, ऐसा करनेसे ये खूब ठंडे हो जायँगे। इसके बाद इन्हें चाकूसे तराशकर खूब मजेसे खाइए।

स्त्रियोंकी तुलना केलेके वृक्षसे की जाती है; परन्तु मेरी समझमें यह ठीक नहीं। कदली फलमें और भुवनमोहिनी स्त्रियोंमें मुझे कुछ भी समानता नहीं दिखती। स्त्रियां क्या केलेकी गहरके समान सौ सौ पचास पचास एक साथ फलती हैं? यदि किसीके भाग्यमें फलती हों, तो फलें—कमलाकान्तके भाग्यमें तो सौ पचास छोड़-कर एक भी नहीं फली। केले और कामिनियोंमें केवल इतनी ही समानता है कि दोनों ही वानरोंकी प्यारी चीजें हैं। परन्तु इस एक गुणके मिलनेसे कामिनियोंकी तुलना केलेसे नहीं की जा सकती। इसके विरुद्ध, जो लोग कटुभाषी हैं, वे युवतियोंकी तुलना इन्द्रा-यण फलसे किया करते हैं; परन्तु ऐसे लोगोंको मैं हृदयहीन अरसिक समझता हूं। उनकी हांमें हां मिलाना मुझे पसन्द नहीं और मिला भी नहीं सकता; क्योंकि मैं रमणियोंका बड़ा भारी भक्त हूं।

मेरी समझमें रमणियोंकी तुलना नारियलोंसे अच्छी तरह की जा सकती है। यद्यपि नारियल भी गुच्छके गुच्छ फलते हैं; परन्तु (व्यापारियोंको छोड़कर) बहुत कम लोग ऐसे हैं जो उन्हें गुच्छके गुच्छ गिराते हों। बाकी लोग तो द्वादशीके पारणेके लिए, अथवा वैशाखमासमें ब्राह्मणसेवाके लिए कभी एक आध गिरालेते हैं। एक साथ गहरकी गहर गिरानेके अपराधमें यदि कोई अपराधी हैं, तो वे एक कुलीन ब्राह्मण हैं। कमलाकान्त इस अपराधमें कभी अपराधी नहीं हुआ।

---

१ बंगालमें कुलीन ब्राह्मणोंकी एक जाति है। इस जातिके पुरुष दश दश बीस बीस विवाह करते हैं और कन्याओंके पिताओंसे खूब रुपया वसूल किया करते हैं।

वृक्षके नारियलोंकी तरह संसारके नारियलोंकी भी वयोभेदसे अनेक अवस्थायें होती हैं। प्रारंभकी (बिलकुल कच्ची) अवस्थामें दोनों ही अतिशय स्निग्धकर होते हैं। नारियलके पानीसे उदर स्निग्ध होता है और किशोरीके स्वाभाविक विलासलक्षणशून्य प्रणयसे हृदय स्निग्ध होता है। किन्तु फलजातीय और मनुष्य-जातीय-दोनों ही नारियल दूसरी (कच्ची) अवस्थामें ही अच्छे होते हैं। उस समय ये उजले साँवले फल देखनेमें बड़े ही भले मालूम होते हैं। इनकी नवीन साँवली छबिसे जगतकी धूप और तपन दूर होती है। मुझे वृक्षोंपर गुच्छके गुच्छ नारियल और झरोखोंमें झुंडकी झुंड युवतियां एकहीसी दिखलाई देती हैं। क्यों-कि दोनोंहीसे चारों ओर छबिकी छटा छिटका करती है। किन्तु सावधान ! इन्हें देखकर भूल मत जाना—अपने चित्तको छोड़ मत देना—इस चैत महीनेकी धूपमें कहीं झाड़से इस दूसरी अवस्थाके कच्चे नारियलको तोड़कर मत खा जाना—यह बहुत ही संतप्त होता है। किसी संसार—शिक्षा—शून्य कामिनीको सहसा हृदयसे मत लगा लेना, नहीं तो तुम्हारा कलेजा जलने लगेगा। आमके समान कच्चे नारियलको भी बर्फके पानीमें रखकर शीतल कर लेना; और यदि बर्फ न मिले, तो तालाबकी कीचड़में ही कुछ समयके लिए ठंडा कर लेना। यदि मीठी और खुशामदकी बातें नहीं कर सकते हो, तो कमसे कम इतना तो ध्यानमें रखना कि कड़ी कडुवी बातें भूलकर भी न कहना। यह कमलाकान्त चक्रवर्तीकी सम्मति नहीं, आज्ञा है।

नारियलमें चार चीजें होती हैं—पानी, गरी, नरेटी और जटा। नारियलका पानी और स्त्रियोंका स्नेह एक ही प्रकारका है।

क्योंकि ये दोनों ही बहुत स्निग्ध होते हैं। जब तुम संसारके घाम और तापसे व्याकुल होकर घरकी छायामें बैठकर विश्राम करना चाहो, तब इस शीतल जलका पान करना—मुझे विश्वास है कि तुम्हारी सारी तकलीफ़ें रफ़ा हो जायँगीं। ऐसी और कौनसी चीज है जिससे तुम्हारे दारिद्र्य-चैत्रमें, बन्धुवियोग—वैशाखमें, यौवनकी कड़ी दुपहरीमें और बीमारीके ढले दिनमें तुम्हारा हृदय ठंडा होगा? जीवनके संतापमें माताके स्नेह, स्त्रीके प्रेम और कन्याकी भक्तिको छोड़कर और कौनसी चीज़ सुख देनेवाली हो सकती है? गर्मीके दिनोंमें कच्चे नारियलके पानीको छोड़कर और कौनसी चीजसे शान्ति मिल सकती है?

परन्तु पकावपर आनेके वक्त नारियलका पानी कुछ तीक्ष्ण हो जाता है। आपने सुना ही होगा कि सोहनकी माकी उमरके पकने पर, सोहनका बाप इसी तीक्ष्णताके मारे घर छोड़कर चला गया था। इसी लिये नारियलोंमें कच्चे नारियलोंको लोग सबसे अधिक चाहते हैं।

नारियलोंकी गरी और स्त्रियोंकी बुद्धि एकसी है। यह पहले तो नाममात्रको रहती है; परन्तु दूसरी कच्ची अवस्थामें बड़ी ही मीठी और बड़ी ही कोमल होती है। आगे पकावकी अवस्थामें यह बहुत ही कठिन हो जाती है; किसकी मजाल है जो इसपर दाँत चला सके? उस समय इसको गृहिणीपन कहते हैं। यद्यपि गृहिणीपन मीठा होता है; परन्तु उसपर दाँत नहीं लगाये जा सकते। एक ओर कन्या बैठी है। वह चाहती है कि माके गहनोंके सन्दूकमेंसे कुछ गहने ले लूं; परन्तु पकी गिरी ऐसी कठिन निकली कि कन्याके दाँतोंको कामयाबी न हुई। गरीने दया करके,

बड़े सोच विचारके बाद एक छल्ला निकालकर दे दिया। एक दिन पुत्रने भी माकी पूंजीपर दाँत लगाये। बड़ी ही आरजू मिन्नत की; परन्तु मिला क्या ? केवल दो तीन रुपये ! स्वामीने पिछली उमरमें एक रोजगारमें हाथ डाला था; परन्तु उसमें सारी ही जमा पूंजी चली गई। जीवननिर्वाहके लिए फिर भी कुछ करना चाहिये; परन्तु रुपयोंके विना क्या हो सकता है ? आखिर स्वामीने पके नारियलकी पूंजीपर दृष्टि डाली और उसपर अपने दो चार प्रवृत्तिरूप दांत बैठाये; परन्तु बुढ़ापेके दाँत कहांतक काम दे सकते थे ? बैठाते ही टूट गये। यदि ज्यों त्यों करके किसी स्वामीने अपने दाँत बैठा दिये और वे कुछ काम भी कर गये—तो यह किसकी सामर्थ्य है जो नारियलकी गरीको हजम कर जाय ? जब तक रुपया वापिस न कर दिये जायँ; तब तक अजीर्ण रोगसे रातको नींद भी नहीं आने पाती।

इसके बाद नरेटीको लीजिए। इसे स्त्रियोंकी विद्या समझना चाहिए। इसे मैंने अधूरीके सिवा कभी पूरी नहीं देखी। जिस तरह नारियलकी नरेटी कुछ अधिक उपयोगमें नहीं आती, उसी प्रकार स्त्रियोंकी विद्या भी है। इस देशकी कुछ स्त्रियोंने दो चार उपन्यासादि ग्रन्थ रचे हैं—वे बुरे नहीं बनें; तो भी नरेटीसे अधिक उपयोगिता उनमें नहीं आई।

परन्तु अब जमाना बदला है। चतुर कारीगर नरेटीसे भी सुन्दर प्याले, कीमती बटन और मनोहर खिलौने आदि बढ़ियां बढ़ियां चीजें बनाने लगे हैं। इसके साथ ही स्त्रियोंकी विद्याकी भी उपयोगिता बढ़ने लगी है। यूरोप, अमेरिका आदि देशोंकी स्त्रियां अपनी विद्याको प्रत्येक विषयमें लगाने लगी हैं। यह तो आपने

सुना ही होगा कि इंग्लैंडकी मताभिलाषिणी स्त्रियां पार्लीमेंट-भवन पर चढ़ाई करती हैं, ईंट पत्थर फेंकती हैं और मेम्बरोंपर आक्रमण करती हैं। यहांके शैतान लड़के भी जब आपसमें बिगड़ते हैं, तब नेरेटियोंसे एक दूसरेकी खोपड़ियोंको लोहू-लुहान कर देते हैं!

नारियलके जटाको स्त्रियोंका रूप समझना चाहिए। जिस तरह जटा नारियलका बाहरी अंश है, स्त्रियोंका रूप भी उनका बाहरी अंश है। ये दोनों ही बिलकुल असार हैं; इस लिए इनका परित्याग करना ही अच्छा है। हां, जटा एक काम देता है। उससे मजबूत रस्से बनते हैं और उनसे बड़े बड़े जहाज बाँधे जाते हैं। स्त्रियोंके रूपसे भी बहुतसे बड़े बड़े जहाज बांधे जा चुके हैं। तुम जिस तरह नारियलकी रस्सीसे जगन्नाथका रथ खींचते हो, स्त्रियोंकी रूपरस्सियोंसे भी उसी तरह न जाने कितने बड़े बड़े मनोरथ खींचे जाते हैं। जिस समय रथ खींचना रोकनेका कानून बने, उस समय यदि उसमें मनोरथोंके न खींचनेके विषयमें भी एक धारा (दफा) रख दी जाय, तो मेरी समझमें सैकड़ों मनुष्योंकी हत्या होनी बन्द हो जाय। यह तो मैं नहीं जानता कि नारियलकी रस्सीमें गला फँसाकर किसीने कभी प्राण दिये हैं या नहीं; परन्तु रमणियोंकी रूपरज्जुमें गला फँसाकर तो आज तक इतने लोगोंने प्राण दिये हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती।

वृक्षके नारियलों और संसारके नारियलोंकी यह बात मुझे सदा ही खटका करती है कि मैं अभागा, दोमेंसे एकका भी आहरण नहीं कर सका। दूसरे फल तो नीचे खड़े रहकर आंकर्षीसे खींच-

---

१. आम बगैरह तोड़नेके लिए बांसके सिरेपर एक लोहेकी टेढ़ी आंकड़ी लगाकर आकर्षी बनाई जाती है।

कर गिराये जा सकते हैं; परन्तु यह विना झाड़पर चढ़े नहीं गिराया जा सकता। यदि किसी तरह झाड़पर चढ़नेका भी साहस किया जाय, तो या तो पैरोंमें रस्सी बाँधनी पड़ती है या डोमेकी खुशामद करनी पड़ती है।

डोमकी खुशामद करनेके लिए भी मैं राजी हूं; परन्तु किया क्या जाय, मेरे भाग्यमें नारियलकी प्राप्ति लिखी ही नहीं। मैं रूपवान् और गुणवान् मनुष्य हूं, इस लिए मैं झाड़पर चढ़कर इस रूपगुणकी आकर्षीसे नारियलको गिरा सकता हूं; परन्तु मुझे भय है कि कहीं पीछे वह मेरे सिरपर न आ पड़े। ऐसी बहुतसी गंगा, यमुना, गौरी, पार्वती हैं, जो कमलाकान्तको अपना पति बनानेके लिए तैयार हैं; परन्तु दूसरेकी लड़कीको सिरपर रखके संसार यात्रा करनेके लिए मैं तैयार नहीं—मुझमें इतनी शक्ति भी नहीं। अतएव इस यात्रामें कमलाकान्तने इसीमें भलाई सोची कि यह नारियलका फल भक्तिभावसे विश्वेश्वर महाराजके चरणोंमें चढ़ा दिया जाय। परन्तु जब वे एक तो स्मशानवासी हैं और दूसरे उन्होंने विषपान कर लिया है; तब इस कच्चे नारियलका क्या करेंगे?

इस देशमें कुछ समयसे एक नई तरहके लोग दिखलाई देने लगे हैं जो देशहितैषी कहलाते हैं। इन्हें मैं सेमर (शाल्मली) के फूल समझता हूं। जब सेमरमें फूल फूलते हैं, तब वे देखनेमें बड़े ही सुन्दर मालूम होते हैं। उनकी ललाईके मारे सारा वृक्ष लाल लाल दिखने लगता है; परन्तु मेरी आंखोंमें सेमरके गंजे

---

२. मालूम होता है कमलाकान्त विवाह करानेवाले पुरोहितको डोम (एक नीच जाति) कहता है। इतनी बड़ी गुश्ताखी! पंडितोंकी इतनी अवहेलना!
—सम्पादक।

सिरपर इतनी ललाई अच्छी नहीं लगती। उसपर थोड़े बहुत पत्ते रहते, तो अच्छा होता। हरे हरे पत्तोंके बीचमें थोड़ी थोड़ी ललाई ही सुन्दर दिखती है। फूलोंमें गन्धका नाम नहीं और कोमलता भी नहीं; यदि कुछ है तो गहरी ललाई और बड़ी बड़ी पँखुरियां। जब फूल गिरकर फल लगने लगे, तब सोचा कि अबकी बार कुछ लाभ होगा। धीरे धीरे चैतका महीना आ गया। तेज धूप पड़ते ही फल फट पड़े और उनके भीतरसे जरा जरा सा घुआ निकलकर सारे देशमें बिखरने लगा।

संस्कृतके शास्त्री और पण्डित धतूरेके फल हैं। बड़े बड़े लम्बे समासों और बड़े बड़े दुरूह वचनोंके रूपमें उनके लम्बे लम्बे फूल फूलते हैं; परन्तु जब फलोंकी ओर देखते हैं, तो कांटेदार धँतूरे! मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि सभ्यशिरोमणि अँगरेज जातिके साथ भोजन करके अपने ब्राह्मणजन्मको सफल करूं; परन्तु इन धतूरोंके कांटोंके मारे जीकी जीमें ही रह गई। यदि गुणकी बात पूछी जाय, तो यह है कि धतूरा नशैली चीजोंके नशेको बढ़ा देता है। यदि किसी गांजा पीनेवालेके गांजेमें या भंगपीनेवाले-की भंगमें नशा नहीं आता है, तो वह उसमें दो चार धतूरेके बीज मिला देता है। मालूम होता है कि इसी खयालसे हिन्दीके लेखक भी अपने अपने लेखोंमें इन पण्डित महाशयोंसे दो दो चार चार वचन या श्लोकखण्ड लेकर मिला देते हैं। लेखरूपी भंगमें उक्त वचनधतूरोंके बीज मिल जानेसे पाठकोंका नशा खूब जम जाता है। इस समय सारा देश इसी नशेमें मतवाला हो रहा है।

अपने देशके लेखकोंको मैं तेंतुलके फल समझता हूं। इनकी खासकी सम्पत्ति पूछो तो कुछ नहीं; परन्तु दूधको भी यदि ये

स्पर्श करते हैं, तो खट्टा दही बना देते हैं। इनमें खटाईके सिवा और कोई गुण नहीं और वह भी बहुत ही खराब खटाई। हां एक गुण और भी है। वह यह कि ये साक्षात् काष्ठावतार हैं। तेंतुलके फलका काष्ठ नीरस अवश्य होता है; परन्तु समालोचनाकी आगमें जलता खूब है। मैं सच कहता हूं कि तेंतुलके समान बुरी चीज मैंने संसार भरमें कोई नहीं देखी। जिसने इसे थोड़ासा भी खाया कि उसे अजीर्ण हो जाता है और वह अम्ल उद्गार करने लगता है। अधिक खानेवाला तो अम्लपित्त रोगसे सदाके लिए रोगी हो जाता है। जो लोग साहब बन गये हैं और टेबल कुर्सी लगाकर ग्यास या बिजलीकी रोशनीमें करीमबख्श खानसामाके हाथका भोजन छुरी कांटेसे खाना सीख गये हैं, वे एक विपत्तिसे बच गये हैं—तेंतुलकी खटाईपर उनके भोजनका दारोमदार नहीं रहता—उन्हें शुरूसे ही तेंतुलकी खटाईके साथ भात नहीं खाना पड़ता। किन्तु जिन्हें फूसके घरमें बैठकर रामदेईके हाथका रांधा हुआ भोजन करना पड़ता है, उनके कष्टका कुछ ठिकाना नहीं। रामदेई उच्च कुलकी स्त्री है, प्रतिदिन स्नानकरती है, बहुत शुद्धतासे रहती है और हाथमें माला लिए भगवानका नाम भी लिया करती है; परन्तु रसोईके वक्त उड़द, अरहर या मूंगकी दाल भात और तेंतुलकी खटाईके सिवा और कुछ भी बनाना जानती। करीमवख्श जातिका तो छोटा है; परन्तु भोजन बनाता है अमृतमय।[२]

---

१ यह एक जातिका खट्टा फल होता है। बंगालमें इसकी खटाई इमलीके समान कसरतसे काममें लाई जाती है।

२ बंकिमबाबूका अभिप्राय यह है कि यद्यपि अंगरेजीका साहित्य अंगरेजोंका बनाया हुआ है—जिन्हें हम जातिकी दृष्टिसे नीचा समझते हैं; परन्तु

एक प्रकारके मनुष्यफलकी बात और कहकर अब मैं विश्राम करूंगा। अच्छा बतलाओ, देशी हाकिम किस जातिके फल हैं? कोई नाराज भले ही हो जाय; परन्तु मैं तो सच कहनेसे न चूकूं-गा—ये लोग पृथिवीके कुष्माण्ड या कद्दू (कुमड़ा) हैं। यदि इन्हें ऊपर चढ़ा दो, तो ऊपर फलेंगे—नहीं तो मिट्टीमें ही पड़े रहेंगे। आप इन्हें जहां इच्छा हो, वहीं चढ़ा दीजिए—ये चढ़ जायँगे; परन्तु एक आँधी या तेज हवाका आक्रमण होते ही इनकी लता नीचे पड़कर जमीनपर पैर फैला देगी। बहुतसे हाकिम रूपमें भी कद्दू होते हैं और गुणमें भी। एक बात और है। कद्दू दो तरहके होते हैं एक देशी और दूसरा विलायती। विलायती कह-नेसे यह न समझना चाहिए कि ये कद्दू विलायतसे आये हैं। जिस तरह देशी मोचियोंके बनाये हुए जूतोंको अंगरेजी जूता कहते हैं, ये भी उसी तरहसे विलायती हैं। यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं कि विलायती कद्दूकी इज्जत देशीसे जियादा होती है।

कमलाकान्त चक्रवर्ती।

वह है अमृतके समान सरस और उपादेय और हमारे वर्तमान देशीसाहित्य-की रचना यद्यपि उच्च जातीय लोगोंके हाथसे होती है; परन्तु वह किसी कामका नहीं होता—तेंतुलके समान खट्टा, नीरस, हानिकारक और यहां वहांसे चुराया हुआ होता है। देशी लेखकोंमें गांठकी पूंजी कुछ नहीं और दूसरोंसे जो लेते हैं, उसे भी अपने दुर्गुणोंसे खराब कर डालते हैं। इससे जो लोग अंगरेजी नहीं जानते, उन्हें इसीसे अपनी जिज्ञासा निवारण करनी पड़ती है; र अंगरेजी जाननेवाले अमृतमय साहित्यसे अपनी जिज्ञासा मिटाते हैं।

कर्नाटक-जैन-कवि।

(गत दूसरे अंकसे आगे।)

४८ मुनिचन्द्र—समय ई० स० १२२९। द्वितीय गुणवर्म (ई० स० १२३९) ने—जो कि इनके शिष्य थे-इन्हें अपने पुष्पदन्तपुराणमें 'उभयकविकमलगर्भ' कह कर स्मरण किया है और महाबलकवि (१२५४) ने अपने नेमिनाथपुराणमें इनकी 'अखिलतर्कतंत्रमंत्रव्याकरणभरतकाव्यनाटकप्रवीणं' लिखकर प्रशंसा की है। इनके 'उभयकवि' विशेषणसे मालूम होता है कि ये संस्कृत और कनड़ी दोनों ही भाषाओंके कवि और ग्रन्थकर्त्ता होंगे; परन्तु अभीतक इनका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। सौंदत्तिके शिलालेखोंसे-जो कि शक संवत् ११५१ और १२२९ के लिखे हुए हैं और जो रायल एशियाटिक सुसाइटी बाम्बे ब्रांचके जर्नलमें मुद्रित हो चुके हैं—मालूम होता है कि ये रट्टराज कार्तवीर्यके गुरु थे और उसके पुत्र लक्ष्मदिवको इन्होंने शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या दोनोंकी शिक्षा दी थी। लक्ष्मीदेवके समयमें ये उसके सचिव या मंत्री भी रहे हैं। ये बड़े ही वीर और पराक्रमी थे, इसलिये इन्होंने शत्रुओंको दबाकर रट्टराज्यकी रक्षा की थी। इस कारण इन्हें 'रट्टराज-प्रतिष्ठाचार्य'की उपाधि मिली थी। इनके समयमें रट्टराजके शान्तिनाथ, नागस और मल्लिकार्जुन भी अमात्य रहे हैं।

४९ शिशुमायण—इस कविने त्रिपुरदहनसांगत्य और अंजनाचरित नामके दो ग्रन्थोंकी रचना की है। इन ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि होयशल देशके अन्तर्गत नयनापुर नामका एक ग्राम है जिसके समीप ही कावेरी नदीकी नहर बहती है और जहां देव-

राजके इष्टानुसार राजराजने नेमिनाथ भगवानका विशाल मन्दिर बनवाया है। इस ही ग्राममें उक्त कविके पितामह मायण शेट्टि रहते थे। वे बड़े भारी धनिक और व्यापारी थे। उनकी स्त्री तामरसिके गर्भसे बोम्मशेट्टि नामका पुत्र हुआ। अपनी योग्यतासे यह राजसभाका रत्नदीपक कहलाता था। बोम्मशेट्टिकी स्त्री नेमांबिकाके गर्भसे कवि शिशुमायणका जन्म हुआ। काणूर गणके भानुमुनि इसके गुरु थे। बेलुकेरेपुरके राजा गुम्मटदेवकी रुचि और प्रेरणासे कविने अंजनाचरितकी रचना की थी।

५० **गुणवर्म** (द्वितीय)—समय ई०स० १२३९?। कूंडि नामके स्थानमें इस कविका निवास था। इसके गुरु वे ही मुनिचन्द्र हैं, जो कि कार्तवीर्य नरेशके गुरु थे। कार्तवीर्यका 'अहितक्ष्माभृद्वज्र' सेनापति शान्तिवर्म इस कविका पोषक था। इसके बनाये हुए पुष्पदन्तपुराण और चन्द्रनाथाष्टक ये दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इसने अपने ग्रन्थमें पूर्व कवियोंका स्मरण करते समय जन्न कवि (१२३०) की स्तुति की है, इसलिए यह उनसे पीछे हुआ है और मल्लिकार्जुन (१२४९)ने अपने सूक्तिसुधार्णवमें इसके पुष्पदन्त पुराणके पद्योंको उद्धृत किया है इसलिए उनसे पहले हुआ है। अर्थात् ईस्वी सन् १२३९ के लगभग इसका समय समझना चाहिए। इसकी रचना उच्चश्रेणीकी और प्रासबद्ध है। गुणाब्जवनकलहंस, कवितिलक, काव्यसत्कलार्णवमृगलक्ष्म आदि इसके विरुद थे।

५१ **कमलभव**—समय ई०सन् १२३९। इस कविके गुरु माघनन्दि पण्डित यति थे जो कि देशीय गण, पुस्तक गच्छ और कुन्दकुन्दान्वयमें हो गये हैं। इसका बनाया हुआ शान्तीश्वरपुराण नामका ग्रन्थ मिलता है। उसकी रचना बहुत ही ललित,

विस्तृत और निरर्गल है। इसने भी पूर्वके कवियोंकी स्तुति करते समय जन्न (१२३०) का स्मरण किया है और मल्लिकार्जुन (१२४९) ने अपने सूक्तिसुधार्णवमें इसके शान्तीश्वरचारितके पद्य भी दिये हैं, इसलिए इसका समय भी गुणवर्मके लगभग समझना चाहिए। इसके कविकंजगर्भ और सूक्तिसन्दर्भगर्भ ये दो उपनाम या विरुद थे।

५२ अण्डय्य—समय ई० स० १२३९। इसके पितामहका नाम भी अण्डय्य था। अण्डय्यके तीन पुत्र थे—शान्त, गुम्मट और वैजण। ज्येष्ठ शान्तकी पत्नी बल्लब्बेके गर्भसे कवि अण्डय्यका जन्म हुआ। इसके निवासस्थानका तो इनके ग्रन्थोंसे कोई पता नहीं लगता; परंतु देश इनका कन्नड़ था। इसने 'कब्बिगर' नामका काव्यग्रन्थ लिखा है। इसमें यह विशेषता है कि इसकी भाषा शुद्ध कनड़ी है—उसमें संस्कृतका मिश्रण नहीं है। संस्कृतबहुल कनड़ीसे इस कविकी अरुचि थी। इसने भी जन्न कविकी स्तुति की है और सूक्तिसुधार्णवमें भी इसके पद्य संग्रह किये गये हैं, इसलिए इसका समय भी ई० स० १२३९ के लगभग माना जा सकता है।

(क्रमशः।)

शिक्षासे उपेक्षा।

जैनसमाजमें शिक्षाका प्रचार करनेके लिए बहुत कुछ आन्दोलन हो रहा है और साथ ही अनेक पाठशालायें, स्कूल और बोर्डिंग आदि खोले जा रहे हैं। यह प्रसन्नताकी बात है; परन्तु अभी हमारी ये शिक्षासंस्थायें इतनी थोड़ी और इतनी छोटी छोटी हैं कि यदि हम इनहीके भरोसे बैठे रहेंगे तो हमारी बढ़ी हुई जरूर-

तोंका एक अंश भी पूरा न हो सकेगा और उन्नतिके मार्गमें शीघ्रतासे गमन करनेवाले दूसरे समाजोंकी बराबरीपर हम सैकड़ों वर्षोंमें भी न पहुंच सकेंगे। इस बातको प्रत्येक बुद्धिमान् समझ सकता है कि जिस समाजकी संख्या तेरह लाख है, उसका निर्वाह सौ पचास बालबोध पाठशालाओंसे, चार छह प्रवेशिकापाठशालाओंसे, दोन तीन संस्कृत विद्यालयोंसे और दश बीस बोर्डिंगोंसे नहीं हो सकता है। ये संस्थायें वहींके लोगोंको जहां कि वे स्थापित हैं अथवा इने गिने बाहरके विद्यार्थियोंको जो कि वहां जाकर रह सकते हैं थोड़ा बहुत लाभ पहुंचा सकती हैं—शेष लोग उनके लाभोंसे सर्वथा वंचित रहते हैं और ऐसा होनेकी फिलहाल बहुत कम संभावना है कि उस प्रत्येक स्थानमें—जहां कि जैनियोंके दो चार घर भी हैं—खास जैनियोंकी ऐसी संस्थायें खुल जावें। जैनियोंकी इतनी शक्ति नहीं और उनका समूह भी इतना बड़ा नहीं कि वे इस विषयमें कृतकार्य हो जावें। ऐसी अवस्थामें जो लोग जैनसमाजमें शिक्षाका विस्तार करना चाहते हैं, उन्हें चाहिएं कि जैनियोंको सरकारी अथवा दूसरे लोगोंकी शिक्षा संस्थाओंसे भी लाभ उठानेके लिए तयार करें। ऐसा किये बिना जैनसमाजकी बढ़ी हुई अज्ञानता दूर न हो सकेगी और हमारे प्रयत्न करने पर भी उसका बहुत बड़ा भाग अशिक्षित ही बना रहेगा।

हमने कई प्रान्त ऐसे देखे हैं जहांके जैनी भाई अपने ग्रामों या नगरोंमें सरकारी या गैरसरकारी स्कूल या पाठशालाओंके होते हुए भी अपने लड़कोंको उनमें नहीं भेजते और या तो उन्हें अपने घरहीमें पट्टी पहाड़े आदि सिखलाकर काम चला लेते हैं या किसी पुराने जमानेके गरूजीके पास भेजकर पंडित बना लेते हैं। यदि

वहां जैनियोंके घर कुछ अधिक हुए, तो एक बालबोध पाठशाला खोल ली और उसमें पट्टी पहाड़ों और हिसाबकिताबके सिवा पंचमंगल, पूजापाठ और सूत्र भक्तामर आदि भी रटाकर आपको कृतकृत्य समझ लिया। फल इसका यह होता है कि दूसरे लोग तो बराबर शिक्षामें आगे बढ़ते जाते हैं और हमारे जैनी भाई आजसे सौ वर्ष पहले जहां थे, वहीं पड़े हुए हैं। उच्चश्रेणीकी विद्या तो दूर रही, साधारण हिन्दी लिखने पढ़ने और समझनेकी भी उनमें योग्यता नहीं होने पाती है। कारण इसका क्या है? यही कि जैनी भाई आपको परमसम्यक्ती और धर्मात्मा समझते हैं और दूसरोंको परम मिथ्याती! उन्हें भय रहता है कि कहीं हमारे लड़के मिथ्यातियोंके साथमें पढ़कर या मिथ्यातियोंके स्कूलोंमें पढ़कर मिथ्याती न हो जायँ। पाठक, यदि ये लोग मिथ्यातियोंका संसर्ग बचाकर अपने बच्चोंको सम्यक्ती बनानेका सच्चा प्रयत्न करते तो हम इससे बहुत प्रसन्न होते; परन्तु क्या सचमुच ही इनके लड़के सम्यक्ती बन जाते हैं? अक्षर-शत्रु बनाये रखना, मनुष्यता लानेकी साधारण भाषा शिक्षासे भी वंचित रखना और ज्यों त्यों करके निन्द्यपद्धतिसे रुपया कमानेवाला बना देना क्या इसीको सम्यक्त कहते हैं?

आज बीसों स्थानोंमें ऐसी जैनपाठशालायें हैं, जो केवल इसलिए खोली गई हैं—कि जैनियोंके लड़के सरकारी या दूसरे गैरसरकारी स्कूलोंमें न जाकर उनमें पढ़ें। उनसे सिवा इसके और कोई लाभ नहीं होता कि लड़के थोड़ी बहुत धर्मकी बातें रट लेते हैं—और पूजापाठ करना सीख जाते हैं। हानि अवश्य ही यह होती है कि उनमें पढ़नेवाले लड़कोंको उस अच्छे तरीकेसे शिक्षा

नहीं मिलती जिससे कि सरकारी स्कूलोंमें मिल सकती थी, न उनका भाषाज्ञान यथेष्ट हो पाता है—और न उनकी विचारशक्ति खिलने पाती है। जैनपाठशालाओंके पंडितजी सिवा रटानेके और पंडिताई बातें करनेके और कुछ जानते नहीं—हिन्दी भाषा उन्हें आती नहीं शिक्षापद्धतिकी पुस्तकें वे पढ़ते नहीं, विचार और विवेचनासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं और लड़कोंका शील और चरित्र बनानेको वे अपने हाथकी बात मानते नहीं। हम यह नहीं कहते कि सरकारी पाठशालाओंकी शिक्षाका तरीका निर्दोष होता है अथवा उसमें त्रुटियां नहीं होती हैं, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि जैनियोंकी पाठशालाओंसे उनका तरीका कई गुणा अच्छा होता है। उनमें शिक्षाके साधन बहुत रहते हैं और इतिहास, पदार्थविज्ञान, गणित, भूगोल, चित्रकारी आदि उपयोगी विषयोंकी शिक्षासे भी विद्यार्थियोंको वंचित नहीं रहना पड़ता है। इससे तो अच्छा यह हो कि दिनको लड़के सरकारी स्कूलोंमें पढ़ें और रातको उन्हें घंटे दो घंटे केवल धर्मशिक्षा देनेके लिए एक पंडित रख दिया जाय। ऐसा करनेसे बहुतसा खर्च भी बचेगा और लड़के भी मनुष्य बन जायँगे।

सौभाग्यसे जैनियोंकी अधिकांश वस्ती ऐसे स्थानोंमें हैं जहां कि शिक्षाके बहुत बड़े बड़े साधन हैं और यदि वे उन साधनोंसे लाभ उठानेकी इच्छा करें तो बहुत थोड़े ही समयमें जैनसमाज शिक्षाके विषयमें दूसरे समाजोंसे बहुत ही आगे बढ़ जाय। परन्तु हम देखते हैं कि शिक्षासे जितनी अरुचि और अश्रद्धा जैनियोंमें है उतनी शायद ही किसी सभ्य और धनिक कहलानेवाली जातिमें होगी। शहरके लोगोंमें तो यह इतनी अधिक है कि विचार कर बहुत ही

दुःख होता है। जयपुर, आगरा, देहली, अजमेर, इन्दौर, ग्वालियर, अलीगढ़, कलकत्ता, कानपुर, लखनौ, बनारस, आरा, सागर, सिवनी, अमरावती, आदि ऐसे शहर हैं, जहां कालेज, हाईस्कूल और दूसरे स्कूलोंकी कमी नहीं और जैनियोंकी संख्या भी खासी है—किसी किसी शहरमें तो चार चार छह छह हजार जैनी रहते हैं; परन्तु आप जाकर इन शहरोंमें तलाश कीजिए, तो आपको वहांके कालेजों और हाईस्कूलोंमें मुश्किलसे शहरके दो दो चार चार लड़के नजर आयँगे। यदि थोड़े बहुत होंगे, तो वे देहातके होंगे। इससे क्या यह साफ साफ नहीं मालूम होता है कि जैनी शिक्षासे उपेक्षा करते हैं—उसे वे कोई महत्त्वकी चीज़ नहीं समझते। शहरोंके लड़के पढ़ते अवश्य हैं; परन्तु उतना ही जितनेसे उनका व्यापारका काम चल जाता है। और वह भी इसलिए नहीं पढ़ते कि पढ़नेसे मनुष्यका कुछ कल्याण होता है—नहीं, इसलिए पढ़ते हैं कि उसके विना उनका काम नहीं चल सकता है। यदि उनके व्यापारका कामकाज विना लिखना पढ़ना सीखे ही चल सकता, तो हमको विश्वास है कि वे उतना भी नहीं पढ़ते।

पाठक, यह कैसे दुःखकी बात है कि अपने आंगनमें कल्पवृक्ष रहनेपर भी हम उससे लाभ नहीं उठाते और सामने विस्तृत सरोवरके भरे रहनेपर भी प्यासे मरते हैं। अफसोस कि आज हम जगतके गुरुओंकी सन्तान होकर भी शिक्षाके महत्त्वको भूल गये। हम यह नहीं कहते कि सरकारी स्कूलों या कालेजोंकी शिक्षा सब प्रकारसे हितकारी ही है—उससे कुछ हानि होनेकी संभावना नहीं है। परन्तु क्या दो चार छोटे मोटे दोषोंके होनेसे ही वह इतनी उपेक्षणीय हो गई कि हम उसकी ओर देखें तक नहीं और क्या उस

तारनपन्थ ।

(४)

[गत पहले अंकसे आगे]

इस लेखके पहले अंकमें—जो कि गतवर्षकी वैशाख की संख्यामें प्रकाशित हुआ था—तारनस्वामीके विषयकी वह किंवदन्ती प्रगट की जा चुकी है जो कि तारनपन्थी भाइयोंके पड़ोसी कहा करते हैं। आज हम तारनपन्थियोंकी मानी हुई तारनजीवनी प्रकाशित करते हैं। इसे हमने एक तारनपंथी भाईकी पुरानी पुस्तकपरसे नकल की है। भाषाको ठीक करनेके सिवा हमने इसमें कुछ भी फेरफार नहीं किया है:—

भरतक्षेत्रके किसी नगरमें पोहकरजी नामका एक भील राज्य करता था। एकवार उसे एक मुनिके दर्शन हुए। मुनिमहाराजने धर्मोपदेश देकर उसे यह व्रत दिया कि जब तुम शिकार खेलनेको जाया करो, तब निशाना संधानकर तीन कदम पीछे हट जाया करो और इसके बाद तीर चलाया करो। कुछ दिनोंके बाद पोहकरजीकी स्त्री गर्भवती हुई। उसने अपने सामनेसे जाती हुई मृगीको देखकर पतिसे कहा—मैं इसका मांस खाऊंगी। पोहकरजी धनुर्बाण लेकर मृगीके पीछे दौड़े। जब मृगी नालेके समीप पहुंची तब भीलराजने उसकी ओर निशाना लगाया और प्रतिज्ञाके अनुसार तीन कदम पीछे हटकर बाण चलाया। उधर मृगी छलांग मारकर नालेके दूसरे पार हो गई—बाण खाली गया। मृगी गर्भवती थी—नालेके उस पार पहुंचते ही उसके दो बच्चे पैदा हो गये। पोहकरजीने यह देखकर सोचा कि यदि मुनिराजने व्रत न दिया होता, तो आज मुझे तीन जीवोंकी हत्या

लगती। उसने लौटकर अपनी स्त्रीसे सब हाल कह दिया और उसे समझादिया कि मुनिमहाराजके व्रतके कारणमें शिकार नहीं कर सका। स्त्रीने कुछ समय बाद एक पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम पूराक्षेत्री रक्खा गया। वह कुछ सयाना हुआ ही था कि पोहकरजी चल बसे और पहले नरकके पहले पाथड़ेके बिलमें १७९० वर्षकी आयुके धारण करनेवाले नारकी हुए। पुत्रको गद्दी मिली। एकवार इसे भी मुनिराजके दर्शन हुए, और इसने भी एक व्रत लिया। व्रत यह था कि मैं कभी कौएका मांस न खाऊंगा। व्रतके लेते ही पूराक्षेत्रीको सम्यक्त्व भी हो गया। कुछ समय पीछे अशुभ कर्मके उदयसे उसे कोई रोग हुआ और उससे मुक्त होनेके लिए वैद्यने कौएका मांस बतलाया; परन्तु उसने यह किसी तरह भी स्वीकार न किया। पूराक्षेत्री मर गया और राजा श्रेणिक हुआ। इसके आगेकी कथा श्रेणिक चरित्रसे मिलति जुलती है। श्रेणिक मरकर पहले नरकके पहले पाथड़ेके पहले बिलमें नारकी हुए। वहां उनकी आयु १७९० वर्षकी हुई। उसे पूरी करके वे भद्रबाहु आचार्य हुए। भद्रबाहुकी आयु ९९ वर्षकी हुई। उसे पूरी करके वे कुन्दकुन्दाचार्य हुए। उनकी आयु ८४ वर्षकी हुई। उसके समाप्त होनेपर वही श्रेणिकका जीव तारनस्वामी अपनी ६७ वर्ष ९ महीनाकी आयु समाप्त करके सर्वार्थसिद्धिमें ८२००० हजार वर्ष भोग भोगनेवाले देव हुए। उसे समाप्त करके अब वे आगामी कालके प्रथम तीर्थंकर होंगे।

इस तरह तारनस्वामीके अवान्तर बतलाये गये, अब उनका जीवनचरित लिखा जाता हैः—

देहलीके अन्तर्गत पोहपावती नामकी एक नगरी थी। उसमें गढ़ासाहु नामके (गाहू मूरी) एक परवार सेठ रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम वीरसिरी या वीरश्री था। सेठजी बादशाही दरबार में रहते थे। वि० संवत् १५०५ की अगहन सुदी सप्तमीको वीरश्रीदेवीके उदरसे तारनस्वामीका जन्म हुआ। जन्म होते ही मालुम हुआ कि वे मति श्रुत दोनों ज्ञानके धारी हैं। जिस समय स्वामीजीकी अवस्था पांच वर्षकी थी, उस समय गढ़ासाहु एक आपत्तिमें फँस गये। उनके पास जो सरकारी कागजात थे, वे अचानक आग लग जानेसे जल गये। सेठजी उदास मुंह किये हुए बैठे थे। लड़केने उदासीका कारण पूछा। उत्तर मिला कि तुम्हें इन बातोंसे क्या मतलब है? तुम तो आनन्दसे खेलो कूदो। तुम पढ़े लिखे नहीं, तब मेरी उदासीको कैसे समझोगे? बेटेने कहा तो हमको पढ़ादो। पढ़नेके लिए जब वह बहुत जिद करने लगा तब वीरश्रीके कहनेसे सेठजीने पट्टी लेकर पढ़ानेका प्रारंभ किया। सबसे पहले 'ओं नमः सिद्धं, लिखना और पढ़ना सिखलाया। इसके दो चार दिन ही पीछे, तारनने कहा—पिताजी कागजात तैयार कर लो और यदि तुमसे न बने, तो मुझे कागज कलम दो, मैं तैयार कर दूं। कागज कलम मिल जानेपर बालकने एकान्तमें बैठकर थोड़े ही दिनोंमें तमाम कागजात ज्योंके त्यों लिखकर तैयार कर दिये। पिताको आश्चर्यके साथ यह चिन्ता हुई कि यदि बादशाह मेरे इस पांच वर्षके बालकका यह माहात्म्य सुन पायगा, तो इसे मरवा डालेगा। अन्तमें सेठानीसे सलाह करके वे अपना सारा माल असबाब गाड़ियोंपर लादकर रातोंरात वहांसे चल दिये और कुछ दिनोंमें मालवादेशमें पहुंचे। एक दिन रातको

वे गड़ोला[1] नामके जंगलमें डेरा डाले पड़े थे। वहीं एक श्रुतमुनि नामके यती किसी मंत्रको सिद्ध कर रहे थे। सेठ सेठानी तो सो रहे थे, तारनस्वामी जागते थे। उन्होंने सुना कि यती मंत्रको अशुद्ध पढ़ रहा है, इसी लिए उसे मंत्र सिद्ध नहीं होता। आखिर उन्होंने शुद्ध पाठ बतलाया और उसके अनुसार जाप करनेसे उसे तत्काल ही मंत्र सिद्ध हो गया। इससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सबेरे उसने सेठ और सेठानीके पास आकर नमस्कार किया और कहा कि आप इन्हें (पुत्रको) सामान्य जीव न समझना। मैं जो सुना करता था कि पंचमकालमें तारकल उत्पन्न होंगे। सो मालूम होता है वे यही हैं। इसके बाद यतीजी चले गये और यह कुटुम्ब सिरोंज़के इलाकेमें सेमरखेड़ी नामक ग्राममें पहुंचा। वहां एक धनाढ्यसेठकी सहायता पाकर सेठजी ठहर गये और व्यापार करने लगे। तारनको उन्होंने चटशालामें पढ़नेके लिए बैठा दिया। अपने साथके विद्यार्थियोंपर उनका बहुत प्रभाव पड़ गया। जिस सेठके सहारे तारनके पिता वहां रहे थे—उसकी स्त्री तारनपर बहुत प्रेम करती थी। उसके कोई पुत्र नहीं था, इन्हींको वह पुत्रवत् मानती थी।

एक समयकी बात है कि तारनके पिता किसी कामके लिए बाहर चले गये और पूजनका काम तारनको सोंप गये। उस समय यह रवाज था कि अन्य अष्ट द्रव्योंके समान घरकी बनी हुई रसोई भी श्रीजीको चढ़ाई जाती थी। तारनस्वामी स्नान करके पूजन और भोजनकी सामग्री लेकर मन्दिरमें गये और पूजा करके भगवानके आगे भोजनका थाल रखकर बोले—महाराज, भोजन

---

१ यह जंगल सागर जिलेकी खुरई तहसीलमें खिमलासेके पास है।

कीजिए। इसके बाद बहुत कुछ अनुनय विनय करके वे घर चले आये। भोजन करके जब आपने फिर लौटकर देखा तो मालूम हुआ कि भोजन जैसाका तैसा रक्खा है—महाराजने एक ग्रास भी नहीं उठाया है। समझा कि शायद श्रीजीने स्नान नहीं किया है, इस कारण भोजन नहीं किया। जब महाराजको दो तीन लंघनें हो गईं, तब आप एक दिन उन्हें (प्रतिमाको) लेकर तालाबमें गये और गोता लगाकर उन्हें पानीकी तलीहीमें छोड़ दिये। बाहर आकर आप बारबार कहने लगे—चलिए, महाराज, देर हो रही हैं। जब इसका कुछ फल न हुआ, तब यह कहकर चले आये कि—अच्छा, मैं भोजन लेकर मन्दिरमें आता हूं, तब तक आप वहां आ जाइएगा। इसके बाद आप भोजनकी सामग्री लेकर मन्दिर पहुंचे; परन्तु वहां देखा तो महाराज नहीं आये। लाचार आप थालको वहीं रखकर घर लौट आये। उसी दिन शामको पिताजी आ गये। जब उन्होंने दूसरे दिन सबेरे पूजाके समय जाकर देखा, तो मन्दिरमें श्रीजी नदारत। बेटासे पूछा। उसने सारा हाल जैसाका तैसा कह सुनाया। पिताजी इससे बहुत बिगड़े। वे उस समय मिथ्यात्वके उदयसे बेटेका वह सब महत्त्व भूल गये, जो कि उन्होंने गड़ोलाके जंगलमें देखा था। सेठजीने सेमरखेड़ीके सेठजीसे—जो कि उनके आश्रय देनेवाले थे—अपने बेटेकी सारी बातें कह दीं। उसी समय तारनका पूर्व भवका वैरी कुणकका[1] जीव भी वहां आ पहुंचा। वह मरकर क्षुल्लक हुआ था। क्षुल्लकजीने दोनों सेठोंको यह सम्मति दी कि ऐसे मिथ्याती अविनयी जीवको तो पृथ्वीपर रहने ही न देना चाहिए। तीनोंकी सलाहसे तारनस्वामी नदीमें डुबानेके लिए एक मल्लाहके सुपुर्द किये गये।

---

१ श्रेणिकका पुत्र कुणक जिसे कि बिम्बिसार भी कहते हैं।

मल्लाह तारनस्वामीको लेकर वेतवा नदीमें पैठा; परन्तु वह ज्यों ज्यों गहरेमें जाता था, त्यों त्यों पानी उथला होता जाता था। तारनने कहा कि तुम मुझे खूब गहरे पानीमें क्यों नहीं ले चलते? मल्लाह जब अथाह जलमें ले गया, तब देखा तो वहांकी जमीन ऊंची उठकर सूखी हो गई है। यह उठी हुई जमीन अब भी बेतवामें मौजूद है। मल्लाह इस आश्चर्यसे डर गया। उसने वापिस आकर तारनको जहांका तहां पहुंचा दिया और सेठजीको सब हाल सुनाकर कह दिया कि यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा। सेठजीको बड़ी चिन्ता हुई। आखिर सेमरखेड़ीके सेठजीने इस हत्याका काम अपने हाथमें लिया। उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—दोपहरको जब तारन जलपानके लिए आवे, तब उसे शरबतमें विष मिलाकर पिला देना। सेठानीने कहा, एक तो अशुभके उदयसे अपने यहां सन्तान नहीं है और दूसरे तारनको मैं अपने पुत्रके समान समझती हूं, इसलिए यह पापकाम करके मैं अपना और बुरा नहीं करना चाहती। मुझसे यह काम न होगा। और यदि अचेतन प्रतिमाको उसने बालबुद्धिसे पानीमें डाल दी, तो क्या हुआ? उसके बदले क्या एक चेतन जीवका घात कर डालना चाहिए? पर सेठजी न माने। उनका आग्रह देखकर सेठानी ऊपरी मनसे राजी होगई। सेठजी अपने हाथसे एक घड़ाभर शरबत बनाकर और उसमें विष मिलाकर रख गये तथा उसे पिला देनेके लिए कह गये। समयपर तारनस्वामी आये। सेठानीने उन्हें पीनेके लिए शीतल जल लाकर दिया। पर उन्होंने उसे न पीकर विषका शरबत मांगा। सेठानी बहुत ही चकराई। जब वह किसी तरह भी शरबत देनेके लिए राजी न हुई, तब तारनने अपने हाथसे शरबतका घड़ा उठा

लिया और उसे आप पिया और अपने सारे मित्रोंको भी पिला दिया। इसके बाद वे अपने साथियों सहित सीधे मल्हारगढ़को चल दिये। वहां वेतवाके किनारे महाराजखेरीकी पहाड़ीपर बैठकर उन्होंने ९७२ शून्य दहाये और सामायिक की। जिस स्थानपर उन्होंने सामायिक की थी, उस स्थानपर इस समय कई चबूतरे बने हैं—जो सामायिकके चबूतरे कहलाते हैं।

जिस दिन तारनस्वामीने विषपान किया था, उस दिन शामको जब वे घर न आये, तब उनकी माताको बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपने पतिसे कहा,—मामूम होता है, इसमें तुम्हारी ही कुछ शरारत है। मैं देखती हूं कि जबसे तारनने प्रतिमा पानीमें डुबाई है, तबसे तुम, सेठ और क्षुल्लक तीनों उसकी घातमें लगे हो। पर यदि कहीं यह बात राजा सुन पावेगा, तो तुम तीनोंका शिरच्छेद किया जायगा। इसलिए मेरा लड़का जहां हो, वहांसे ढूंढ़कर ला दो। इतना कहकर माता मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अब गुढ़ासाहु पुत्रके ढूंढ़नेके लिए चले। यहां वहां भटककर कुछ समयमें आप पुत्रके पास जा पहुंचे। उस समय तारनस्वामी ९७२ शून्य दहा चुके थे। इसके बाद ९७१ वें शून्यमें आपने अपना और ९७२ वें में पिताका नाम लिख दिया। इसका मतलब यह था कि अभी हम तारकल हुए हैं और आगामी विरहियाकालमें (विरहकालमें ?) आप तारकल होंगे। शून्य दहानेके बाद तारनस्वामीको पंच मत जगे—आचारमत, विचारमत, सारमत, ममलमत, और आगममत। दशसूत्र सुधरे—मन, वचन, काय, उत्पन्न, हित, शाह, नो, द्रव्य, भाव और आतमा। इसके बाद पिताजी पुत्रको अपने घर ले आये। तारनस्वामी उसी दिनसे उपदेश देने लगे और शास्त्रोंकी

रचना करने लगे। आपने १४ शास्त्र निर्माण किये। सबसे पहले आचारंमतमें श्रावकोंको शुद्ध आचार बतलानेके लिए श्रावकाचार-की रचना की। फिर विचारमतमें नित्यनिरंजन कोड़िया और मैनाश्री कन्याकी भाँवर (सप्तपदी) देखकर यह उपदेश दिया कि जीव जब एक ही भाँवर पड़नेसे ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करता है, तब सात भाँवरोंके पड़नेमें तो योनिभ्रमणका क्या ठिकाना है। और भाँवरोंके विरुद्ध आपने मालापरोहण ग्रन्थकी रचना की। फिर अपने मातापिताके प्रतिबोधके लिए श्री पण्डित-पूजाकी रचना की। इसमें प्रतिमापूजाका निषेध और शास्त्रपूजाका उपदेश किया। इसके बाद पचौसिर सेठ और कमलश्री सेठानीके लिए कमलबतीसी बनाई। तदनन्तर सारमतके न्याय-समुच्चयसार, उपदेशशुद्धसार और त्रिभंगीसार इन तीन ग्रन्थोंकी रचना की। फिर ममलमतमें ममल पाहुड़की रचना की जिसमें कि गीतोंमें सत्यधर्मका उपदेश दिया है। आगे चौवीसठाणा बनाया और केवलमतमें सुन्यसुभाव, सिद्ध सुभाव, खातका विशेष, छद-मस्थवाणी और नाममालाकी रचना की।

तारनस्वामीने ३९३९ आत्माओंको प्रतिबुद्ध किया और छह संघोंकी स्थापना की। उनके मुख्य मुख्य शिष्य ये थे—रूईरमन, बेहना (पिंजारा), सुलपसाह तेली, लखमनपांडे, चिदानंद चौधरी, परमानन्द विलासी (नदीमें डुबानेको ले जानेवाला मल्लाह), सेमरखेड़ीवाले सेठ सेठानी, मातापिता, एक नट और लुकमानशाह (मुसलमान)। ये सब शिष्य आगामी कालके प्रथम तीर्थंकरके गणधर होंगे। इनके सिवा जो और और शिष्य हुए हैं—जिनके कि नाम छद्मस्थवाणी और नाममालामें लिखे हैं—वे उक्त तीर्थं-करके समयमें मुनि अर्यिका श्रावक श्राविका होंगे।

तारनस्वामीने ९ वर्षकी अवस्थासे ९८ वर्षकी अवस्था तक माता पिताका सम्बोधन किया—अर्थात् प्रतिमापूजन छुड़ाकर उन्हें सम्यक्ती बनाये। जेठ बदी ६ शुक्रवार सं० १५७२ में—६७ वर्ष ७ महीना १ दिन ७ घड़ीकी अवस्थामें स्वामीजी शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमें देव हुए। आगामी कालमें वे पहले तीर्थंकर पद्मनाभ होंगे।

तारनस्वामीके शरीर संस्कारके समय ५००० मनुष्य एकत्र हुए थे, जिनमें ५०० सम्यग्दृष्टि और ४५०० लुकमानशाहके मातहत सिपाही थे। (इति तारनजीवनी।)

आगामी अंकमें हम इस जीवनीकी और पूर्वप्रकाशित किंवदन्तीपर विचार करेंगे। [अपूर्ण]

नय ढंगके पाँच पातक।

(हिन्दी प्रदीपकी पुरानी फाइलसे)

बीसवीं सदीकी सभ्यताके जमानेमें सभी अपना अपना दल बढ़ा रहे हैं और तरक्की कर रहे हैं। इस सूत्रके अनुसार पातकोंने भी अपनी तरक्कीपर कमर कस ली है। सुरापान, स्तेय आदि पांच महापातकोंके होते हुए भी अभी बहुतसे नरक खाली पड़े हैं, उनको भरनेके लिए पातकोंमें ये पांच पातक और भी बढ़ते हुए दिखलाई देते हैं:—१ कर्मचारियोंकी हांमें हां, २ पातकके पुंज अमीरों या धनवानोंकी खुशामद, ३ जोरूकी गुलामी, ४ घुने खयालवाले बूढ़ोंकी पैरवी और ५ दुधमुँहें स्तनन्धय छोटे छोटे बच्चोंको ब्याहके आंखका सुख। आशा है कि इन नये पातकोंकी सृष्टि होनेसे वे सब नरक अब ठसाठस भर जायँगे।

पूरनचंद बजाज, सागर।

अन्योक्ति-पुष्पावली।

हे नव प्रफुल्लित पद्म, तेरे[1] ले मधुर मकरन्दको।
गुंजार करते हैं भ्रमरगण, मान परमानन्दको॥
पर पवनके अतिरिक्त, कोई दूसरा ऐसा नहीं।
फैला सके जो सर्वदा, सौरभ तुम्हारा सब कहीं॥ १
श्री विष्णुके करमें सदा, रहता त्वदीय[1] निवास है।
तू श्रीविलासस्थान तेरी, सुरमनोहर बास है॥
रे कमल, तेरा जनक जीवन[2], विदित जगजीवन परम।
यदि प्रीति करता हंससे, तो और भी होता महिम[3]॥ २
जिस तरह अलिगणत्राससे, मुखमूंद करके रातको।
नहिं सुरभि देता, कमल, त्यों न निराश करना बातको[4]॥
क्योंकि जगदातापहर उपकारव्रत इसने लिया।
हां, दूसरोंके लिए निजसर्वस्वतनु भी दे दिया॥ ३

भ्रमर।

जिस नव्य कुसुमित मंजरीके, पुंजमें सानन्द हो।
बहु देव दुर्लभ भोग भोगे हैं, भ्रमर, तुमने अहो॥
अब दैववश उस आम्रतरुकी, देखकरके हीनता।
धिक् 'दूर होते हो' तुम्हारी, बड़ी ही यह नीचता॥ ४

तालाब।

अपनी सलिल-सम्पत्तिसे, तालाब, तू इस कालमें।
प्यासे जनोंकी प्यासको, न बुझायगा यदि हालमें॥
तो ग्रीष्ममें रवि-तापसे जब, सूख सब जल जायगा।
तब सोच भाई, रिक्त कर हो, काम किसके आगया॥ ५

१ तेरा। २ पानी। ३ महिमावान्। ४ वायु या हवाको।

बकुल ।

हे बकुल, तुमको कुशलमालीने कुसुम-उद्यानमें ।
यों ही लगाया था सहज समझे बिना अस्थानमें ॥
बतलाओ तो तब जानता था कौन इस दिनकी कथा ।
तब पुष्प सौरभसे महकती है दशों दिश सर्वथा ॥ ६

चन्दन ।

चन्दन, सकल जन मनोहारिणि, यह तुम्हारी गन्ध है ।
और तब सौजन्यका, लहरा रहा यशसिन्धु है ॥
यों सब तरह तुम धन्य हो, पर यह बड़ा उत्पात है ।
ये कर रहे हैं सर्प तेरे, सब गुणोंका घात है ॥ ७

कश्तूरी ।

सब ही सुगंधित वस्तुओंसे श्रेष्ठ तेरी गन्ध है ।
कश्तूरि, पर तू इसीसे क्यों हो रही गर्वान्ध है ॥
इस सुरभिकी ही कृपासे, वनभूमि यह सब सुखमयी ।
तेरे जनकके निरपराधी रक्तसे है रंग गई ॥ ८

शिवसहाय चतुर्वेदी ।

पत्रोंका सार ।

क्षुल्लकजीकी लीला ।

यहां ता० ३० जनवरीको क्षुल्लक मन्नालालजी महाराज पधारे । बड़े भारी ठाटबाटसे उनका स्वागत किया गया । आप यहां दो दिन ठहरे । जैनहितैषीमें 'जैन धर्मको कलंकित करनेवाले त्यागी' नामका जो नोट निकला था, उसकी बहुत सी बातें आपमें

प्रत्यक्ष देखी गईं । आपके सन्दूकमें सुरमेकी शीशियां, अच्छे अच्छे रेशमी और मखमली बन्धन, मिशरूकी गद्दियां, सुन्दर चटाइयां आदि वस्तुयें देखी गईं । जब आप आहारको निकलते थे, तब पेटीकी चाबी कोपीनमें रखकर चलते थे । श्रावकोंके लड़कोंसे आप अपने शरीरमें तैलकी मालिश कराते थे । बम्बईमें आप रातको बोलते थे, पर यहां मौन धारण कर रक्खा था । यहांके श्रावकोंकी अटूट श्रद्धा देखकर दूसरे दिन आप बोले, आज हमने आहारकी कठिन प्रतिज्ञा की है, तुम सब लोग होशयार रहो । उसदिन आपका सेठ प्रेमचन्द धनजीके यहां स्वाध्याय हुआ । आहारके बाद आपने सेठजीसे पीतलके दो धूपदान, दो टुवाल, एक रूमाल एक चटाई, एक हस्तलिखित चरचाशतक और दूसरे ७–८ ग्रन्थ स्वाध्यायके लिए कह कर लिए । दूसरे श्रावकोंसे भी कुछ रेशमके वेष्टन आदि लिये । और भी बहुतसे आचरण आपके अच्छे नहीं थे । आपके चले जानेपर हमने जैनहितैषीका नोट पढ़ा, तब सचेत होकर हमने एक आदमी शास्त्र लेनेके लिए भेजा । आपकी भेंट उसे हरदामें हुई । शास्त्र मांगनेपर आप बहुत बिगड़े और तुम दिया हुआ दान वापिस मांगते हो, हम आठ उपवास करेंगे । तुम्हारा भला न होगा, इत्यादि बातें कहने लगे । हमारा आदमी डर गया और दश रुपया किरायेका और खोकर वापिस आ गया । हरदामें भी आप श्रावकोंसे शास्त्रादि मांगते थे । हमारी समझमें ऐसे लोगोंसे सर्वसाधारणको सचेत कर देना चाहिये और इनके सुधारनेका भी यत्न करना चाहिए ।

गुलाबचन्द मोतीचन्द

मोहोल ।

———

परवार जातिमें चार सांकें।

परवार जाति जो कि जैनियोंकी एक बहुत बड़ी जाति थी, आज बाल्यविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय फिजूलखर्ची आदि कुरीतियोंसे विशेष करके आठ सांकोंकी अड़चनसे दिनपर दिन कम होती जा रही है। इन आठ साकोंकी संकलमें फंसाकर बेचारी रूपवती और सुकुमार कन्यायें मूर्ख, कुरूप और दुर्बल पुरुषोंके गले बाँध दी जाती हैं जिससे वे वेचारी जन्म भर दुःख भोगती हैं और दूसरे उनके अनमेल जोड़ोंसे निःसत्व और मूर्ख सन्तान उत्पन्न होती हैं जो कि समाजके अधःपातका प्रधान कारण है। इसलिए इस प्रथाको बदल देना चाहिए और दूसरी जातियोंके समान आठके स्थानमें जार ही सांकें मिलाना चाहिए। इस विषयमें जैनहितैषीमें पहले कई लेख निकल चुके हैं, उनपर परवार भाइयोंको ध्यान देना चाहिए। मध्यप्रान्त और बुंदेलखंडकी प्रान्तिकसभाने पिछले अधिवेशनमें ८-१० हजार भाइयोंके समक्ष इस प्रस्तावको पासकर दिया है। इसके सिवा श्रीमान् पं० चुन्नीलालजी ललितपुर, सेठ मूलचन्दजी बरवासागर, मोदी धर्मचन्दजी सागर, सिंगई जवाहरलाल मूलचन्दजी दलपतपुर, मास्टर हजारीलाल कन्छेदीलालजी खुरई, बजाज कन्छेदीलालजी बिलहरा, मोदी रज्जीलालजी मसुर आई, बजाज पन्नालालजी जैसीनगर, भाई रतनचन्दजी सेवास, मोदी कन्छेदीलालजी बरोदा, गजाधरजी तामिया सागर आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुषोंकी भी इस प्रस्तावमें सम्मति है। इनके सिवा और भी सैकड़ों परवार भाइयोंकी मंजूरी इस विषयमें हमारे पास आई है। आशा है कि प्रत्येक स्थानके पढ़े लिखे परवार भाई इस प्रस्ताववपर विचार करेंगे और

इसको सर्वसम्मत बनानेके लिए कोशिश करेंगे। इस प्रथाके चलानेसे परवार जातिको बहुत लाभ होगा।

पूरनचन्द बजाज, सागर।

विविधविषय।

नवीन सहयोगी—जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाके मुखपत्र जैनतत्त्वप्रकाशका पहला अंक निकल गया। उसके सम्पादक जैनसमाजके सुपरिचित कुँवर दिग्विजयसिंहजी हुए हैं। इस अंकका सम्पादन बहुत अच्छा हुआ है। हम अपने नवीन सहयोगीका हृदयसे स्वागत करते हैं।

हिन्दू विश्वविद्यालयका डेप्युटेशन—बनारसके हिन्दू विश्वविद्यालयका डेप्यूटेशन बड़ी सफलताके साथ अपना दौराकर रहा है। अब तक ८० लाखसे ऊपर चन्दा लिखा जा चुका है। अभी वह बम्बई आया था। यहां कोई ढाई लाखके लगभग चन्दा लिखा गया। एक जैनी सज्जनने भी दश हजार रुपया देनेकी उदारता दिखलाई। इसके पहले इन्दौरके प्रसिद्ध जैनी धनिक शेठ हुकमचन्दजी कल्याणमलजी और कस्तूरचन्दजीने भी विश्वविद्यालयके लिए पन्द्रह हजार रुपया प्रदान किये हैं। यह भी सुना है कि इन रुपयोंसे विश्वविद्यालयके कम्पाउण्डमें एक जैन मन्दिर बनवाया जायगा।

दक्षिणमहाराष्ट्र जैन सभाका वार्षिक अधिवेशन सफलताके साथ हो गया। उसमें कई अच्छे अच्छे प्रस्ताव पास हुए और जैनसमाजकी उन्नतिके प्रयत्न सोचे और बतलाये गये। सादुर जातिको पूजनादिके अधिकार देकर जैनी बनानेका प्रस्ताव भी पास किया गया। हमको यह लिखते बहुत ही हर्ष होता है कि उक्त सभा बहुत ही नियमित पद्धतिसे और शान्तितासे अपना काम कर रही

है । इस सभाके अधीन चार पांच संस्थायें बहुत ही अच्छी तरहसे चल रही हैं । कोल्हापुरके बोर्डिगमें इस समय ९८ विद्यार्थी रहते हैं । इस वर्ष उक्त बोर्डिगका एक विद्यार्थी बी. ए. की परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें पास हुआ और उसे यूनीवर्सिटीकी ओरसे तीन पारितोषक मिले । व्याख्यानभवन, जैन मन्दिर, कसरतशाळा, पुस्तकालय, यत्याश्रम और धर्मशाळा आदि आवश्यक सुभीतोंसे यह बोर्डिंग बहुत ही उपयोगी और उच्च श्रेणीका हो गया है । बेलगांव बोर्डिंगमें ३० सांगलीके बोर्डिगमें ९ और हुबलीके बोर्डिगमें १९ विद्यार्थी रहते हैं । सभाकी ओरसे तीन विद्यार्थी जैनसिद्धान्त पाठशाळा मोरेनामें धर्मशास्त्रोंका भी अध्ययनकर रहे हैं । इस तरह लगभग ११९ विद्यार्थियोंको इस सभाकी ओरसे सहायता मिल रही है । इस समय सबसे अधिक आवश्यकता विद्याप्रचारकी है और वह उक्त सभाकी ओरसे बहुत अच्छी तरहसे हो रहा है । सभाकी सहानुभूतिसे भिलवडीमें एक कीर्तनालय भी चल रहा है, जिसके द्वारा बालकोंको उच्चश्रेणीके कीर्तन करनेकी शिक्षा दी जाती है । सभाका साप्ताहिक मुखपत्र 'प्रगति आणि जिन-विजय' तो बहुत ही अच्छे ढँगसे निकल रहा है । इस पत्रका एक निजका प्रेस भी है ।

इन्दौरकी प्रतिष्ठा—इन्दौरकी प्रतिष्ठा खूब धूमधामसे हो गई । पन्द्रह हजारसे अधिक जनसमूह एकत्र हुआ था । सुनते हैं कि रुपया तो लगभग २५ हजारके खर्च हो गये; परन्तु जैन धर्म और जैनसमाजकी उन्नतिके लिए कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया । इन्दौरके बड़े बड़े सेठोंमें जो वर्षोंसे पारस्परिक कलह मच रही है, वह भी शान्त नहीं हो सकी । अफसोस कि

हम रुपया खर्च करके भी अपना कुछ भी कल्याण नहीं कर सकते हैं।

पारस्परिक कलह—सम्मेदशिखर पर्वतके विषयमें श्वेताम्बरी भाइयोंने दिगम्बरियोंपर एक मुकद्दमा दायर किया है। श्वे० भाई कहते हैं, कि पर्वत हमारा है–इसपर दिगम्बरियोंका कोई हक नहीं। इस मुकद्दमेमें भी पहलेके कई मुकद्दमोंके समान लाखों रुपये पूरे हो जाँयगे। हमारे जैनी भाइयोंको अपने द्रव्यका सदुपयोग करनेके लिए इससे अच्छे और कोई जरिये ही नहीं सूझते। विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

जैनियोंकी भयानक मृत्यु—सुनते हैं इस वर्षके प्लेगमें अकेले जयपुरशहरके ही कोई चार हज़ार जैनी मृत्युके मुँहमें चले गये हैं।

स्त्रियोंकी भयानक घटी—पिछली मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि युक्तप्रान्तमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी संख्या लगभग २१॥ लाख कम हो गई है। अर्थात् वहां प्रति सौ पुरुषोंके पीछे ९१ स्त्रियां हैं। स्त्रियां पर्देमें रहती हैं इस लिए उन्हें स्वच्छवायु नहीं मिलती और इसी कारण उनपर प्लेगादि बीमारियोंका अधिक असर पड़ता है, बालविवाहकी प्रथा, सन् १९०७–०८ का दुर्भिक्ष, प्रसवकालकी वेदना, उसके पूर्वका कष्ट और दवादारूमें लापरवाही, और सामाजिक दुर्दशा आदि इसके कारण बतलाये गये हैं। देशके लिए यह बड़ी ही शोचनीय बात है।

विद्यादान—बम्बईके प्रसिद्ध धनिक सर कावसजी जहांगीरने ३॥ लाख रुपया बम्बईके सायन्स इन्स्टिटयूटको दिये हैं।

जैन रत्नमाला—यद्यपि जैन गजटके प्रत्येक अंकमें यह नोटिस छपा रहता है कि रत्नमालाके लटके शीघ्र ही निकलनेवाले हैं; परन्तु मालुम होता है कि अब ये खाली लटके हैं—श्रीमतीके दर्शनोंका सौभाग्य अब शायद ही प्राप्त हो। रत्नमालाके यद्यपि कुल १९ ही लटके प्रकाशित हुए; परन्तु जितने निकले प्रायः वे सब ही गजबके निकले, उनसे श्रीमतीका नाम जुगजुगके लिए अमर हो गया।

ध्यान दिजिए—इस अंकके साथ श्री जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनाकी वार्षिक रिपोर्ट बांटी जाती है। पाठकोंको उसे एकबार आद्योपान्त पढ़नेकी कृपा करनी चाहिए।

सस्ते और सुन्दर भावोंके चित्र।

जयपुरकी चित्रकारी की प्रशंसा करना व्यर्थ है। उसकी देश देशान्तरोंमें प्रसिद्धि ही इस बातका प्रमाण है कि वह कितनी मनोमोहिनी होती है। हमारे भाई मंदिरोंके लिए हजारों रुपयोंके चित्र मंगवाते हैं पर उन्हें बहुत कुछ हानि उठानी पड़ती है। इस लिए हमने **वर्द्धमानजैन विद्यालयमें** इसका प्रबन्ध किया है।

यहांसे बहुत सुन्दर और सस्ते चित्र भेजे जा सकेंगे। इसमें एक विशेष बात यह होगी कि ये चित्र विद्यालयके चित्रकारी-क्लासके अध्यापक तथा छात्रोंके तैयार किए हुए होगें। हमें पूर्ण आशा है कि हमारे भाई सब तरहके चित्र यहींसे मंगवानेकी कृपा करते रहेंगे।

मैनेजर,
श्री वर्द्धमानजैन विद्यालय, जयपुर

जैनधर्मके अध्यापक ।

जैन पाठशालाओंमें जैनधर्मके जानकार अध्यापकोंकी बहुत आवश्यकता रहती है। न्याय व्याकरणादिके जानकार होने पर भी वे धार्मिक सिद्धान्तसे अनभिज्ञ रहते हैं। इस लिए जैनधर्मकी उन्नतिमें बड़ी बाधा पड़ती है। हमने ऐसे पंडितोंके लिए तथा गुजराती, मराठी, हिन्दी, ट्रेनिंगकॉलेज या हाईस्कूलोंमें पढ़े हुए मास्टरों और विद्यार्थियोंके लिए जैनधर्मके सिखानेका प्रबन्ध किया है। उन्हें सब विषयका पत्र व्यवहार नीचे पतेसे करना चाहिए।

बुद्धूलाल श्रावक, हागगंज दमोह.

नये जैन ग्रन्थ ।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड ।

मूल, संस्कृत छाया और पं० मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीका सहित छपकर तैयार है। मूल्य दो रुपया।

हनुमानचरित्र ।

इसमें अंजना पवनंजयके पुत्र हनुमानजीका संक्षिप्त चरित्र सरस भाषामें दिया गया है। इसे खंडवाके श्रीयुत सुखचन्द परमशाह पोरवालने बनाया है। मूल्य छह आने।

जैनेन्द्रपंचाध्यायी सूत्रपाठ ।

जैनेन्द्रव्याकरणके मूलसूत्र मात्र जुदा छपाये गये हैं। मूल्य चार आना।

क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है ।

बाबू दयाचन्दजी बी. ए. का लिखा हुआ यह छोटासा निबन्ध हाल ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य एक पैसा। बांटनेवालोंको सौ सौ पचास कापियां मंगा लेना चाहिए।

न्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं। बहुत ही करुणरसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ।||)

स्वर्णलता—बहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। बंगाली भाषामें यह चौदह बार छपके बिक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

माधवीकङ्कण—बड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेश-चन्द्रदत्त सी. आई. ई. के बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ।||)

षोडशी—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर एटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड-उपन्यास हैं।। मूल्य १)

मैनेजर—**जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**
गिरगांव बम्बई।

जरूरी सूचना।

प्राचीन पूज्यपाद मुनियोंकी कृतिका शोध करके, आर्षपद्धतिसे शुद्ध तथा तत्काल ही गुण देनेवाली दवाइयां इस औषधालयमें तैयार होती हैं। सर्वोत्तम दवाओंका सर्वत्र प्रचार हो, इस लिये कीमत बिलकुल ही कम रक्खी है—

रौप्य भस्म	तो० १	४)	सुरमा तो० १	||)
तीव्रकान्तसार	,,	२||)	ज्वरांकुश शीशी	||)
वंग	,,	१||)	प्रदरान्त चूर्ण	|||)
त्रिवंग	,,	१||)	जुलाबकी गोली	।)
अभ्रक	,,	२)	गर्भ गुटिका	१||)
शीशा भस्म	,,	१||)	प्रभाचंद्रोदय	२)

मालिक—**सुलभ औषधालय,**
ईडर (महीकांठा।)

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्

नववाँ भाग] फाल्गुन, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [पांचवां अंक ।

अत्यन्त आवश्यकता किस बातकी ?*

इस समय जैनियोंको किस बातकी अत्यन्त आवश्यकता है ? इस प्रश्नको सुनते ही अनेक प्रकारके साधारण उत्तरोंकी उत्पत्ति होना संभव है; परन्तु मैं इस बातपर विचार करता हूं कि वास्तवमें हम जैनियोंमें कमी किस बातकी है ? कारण बहुतसे मनुष्योंकी संकीर्ण दृष्टि यहीं तक पहुंचती है कि हमें वही काम करना आवश्यक है जिसकी जरूरत है । क्योंकि हम जैनी हैं दूसरी किसी बातकी हमें जरूरत ही क्या है ?

यद्यपि राजनैतिक और अर्थशास्त्रसंबंधी विषय उस कक्षाका है जिसका हमें विचार करना परम आवश्यक है। कारण हम भारतमें रहते हैं; परन्तु भारतवासी होनेके सिवा हमारी एक ऐसी जाति है कि जिसे एक खास जिम्मेदारी (Trust) सुपुर्द की गई है । संक्षेपमें कहना

* मिस्टर ए. बी. लट्ठे एम्. ए. के (दिगंबर जैनके दीपमालिकाके अंकमें प्रकाशित) What is wanted Most शीर्षक अंगरेजी लेखका आशय ।

चाहिये कि वह जिम्मेदारी जैनधर्मानुकूल जीवनका उपयोग करना है जैसा कि केवली भगवान् कह गये हैं। इस वास्ते खास आवश्यकता इस बातकी है कि हम अपनी जातिको उन्नतिके शिखरपर आरूढ़ कर देनेकी इस प्रकार चेष्टा करें कि जिससे हम अपने परम हितोपदेशी आप्तके आदर्श जीवनका अनुकरण कर आत्मकल्याण कर सकें।

क्या हम उसी मार्गपर चल रहे हैं कि जिससे उस जीवन-धरातलपर पहुंच सकें? मेरी समझमें कदापि नहीं। कारण प्रथम तो प्रतिवर्ष हमारी संख्या ही घटती जा रही है। दूसरे हमारी छोटीसी जाति उस छोटेसे घरके सदृश है जिसमें फूट फैल रही है और तीसरे जैनसमाज अगणित जातिभेदोंके कारण खण्ड खण्ड हो रहा है जिससे हमारी समुदाय शक्ति भी अत्यंत क्षीण हो रही है। यह हुई एक बात।

दूसरी बात यह है कि जैनधर्मानुकूल जीवन सार्थक करनेके वास्तविक तत्त्वको हम बिलकुल ही भूले हुए हैं। इसका मतलब यह है कि उत्साहपूर्ण हृदयसे सत्यकी तलाश करना हम जानते ही नहीं है जिसे कि आचार्योंने सम्यग्ज्ञान कहा है और इसके अभावमें हम नाममात्रको जैनी कहाते हैं। कल्पना करो कि हम सुधारणाकी उच्च कोटिको प्राप्त होगये जैसा कि दूसरोंने समझ रक्खा है, तो क्या हम इतनी ही उन्नतिसे संतुष्ट हो बैठेंगे? अथवा हम ठीक अंगरेजों तथा अमेरिकावालोंके सदृश होगये तो क्या कह सकेंगे कि हम अपना कर्तव्य कर चुके? मैं समझता हूं कि इतने-पर भी जैनी होनेसे हम अपने कर्तव्यसे बहुत पीछे हटे रहेंगे। इस कारण यदि हम अंगरेजी विद्या, कलाकौशल्य, व्यापारोन्नति,

सरकारी कार्योंमें भाग लेनेका अधिकार इत्यादिसे अपनी उन्नति समझें, तो इनमें भी हमारी जातिकी आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिये बहुत कम सहायता मिलना संभव है और वह भी तिर्यक् मार्गसे। परन्तु जब हम प्राचीन पद्धतिकी पण्डिताईको जागृत करनेके विषयमें विचार करते हैं तो मालूम होता है कि हम इस साध्यके केन्द्रके समीप पहुंच रहे हैं; परन्तु वास्तवमें क्या हम इस साध्यकी सिद्धिमें भी सन्नद्ध हो रहे हैं ? प्रगटमें हमारे कट्टर जैनीभाइयोंको (orthodox) अपने धर्मकी बड़ी चिन्ता रहती है; परन्तु इसीसे यदि वे उस स्थलको प्राप्त कर सकें तो जैनोन्नतिके उद्देश्यकी सिद्धि सन्तोषदायक समझनी चाहिये। कट्टर जैनियोंकी सफलता न होनेका कारण एक है—वे इस बीसवीं शताब्दीको श्रीमहावीर स्वामीके दिनोंमें परिवर्तन करनेका प्रयत्न करते हैं जिससे सिवा निराशाके उनके हाथ कुछ नहीं आता। वे छब्बीस शताब्दियोंके इतिहासको बिलकुल ही भूले हुए हैं। प्राचीन पद्धतिकी पाठशालायें स्थापित करके मानो वे अकलंक निकलंक पैदा करना चाहते हैं परन्तु परिणाम क्या होता है ? वे मुश्किलसे बहुत कम बुद्धिके विद्यार्थियोंको इन प्राचीन प्रणालीकी शालाओंमें आकर्षित कर सकते हैं और ऐसी दशामें वर्षोंके अत्यन्त परिश्रमके पश्चात् उन्हें दीख पड़ता है कि हम अपनी साध्य सिद्धिसे पूर्ववत् दूरीपर पड़े हुए हैं। इस अनुभवसे कट्टर जैनी ही नहीं, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति जो जैन मन्तव्योंकी जागृति करनेकी उत्कट इच्छा रखता है हिम्मत हार बैठता है।

अच्छा तो फिर इसका इलाज क्या है ? मेरी समझमें इन संस्थाओंका, जिनमें कि हमें जैनधर्मानुसार तत्त्वज्ञानकी शिक्षा चिर-

कालपर्यंत देनी है, वर्तमान समयकी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाय। उसका यही मार्ग नहीं है कि पाठशालाओंके अभ्यासक्रममें कुछ अंगरेजी रीडर्स तथा बुककीपिंग–(अंगरेजी पद्धतिसे हिसाब रखनेकी पुस्तकें) शामिल कर दी जावें। इन जैन संस्थाओंका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि पश्चिमीय अनुसंधानमें पूर्ण रूपसे सम्मिलित होना और प्राचीन विद्यामें परिपक्वता प्राप्त करना। ऐसे अनेक महाविद्यालय–(colleges) होने चाहिये जिनमें जैन विद्यार्थी सर्वोत्तम प्रणालीसे जैनतत्त्वोंकी शिक्षा प्राप्त कर सकें और पश्चिमीय विद्या तथा विज्ञानवेत्ताओंका सामना करनेकी सामर्थ्य भी प्राप्त कर सकें। इसी स्थलसे जैनविद्यार्थी पूर्ण विद्वान् बनेंगे जो अपनी लौकिक जीवन यात्रामें हानि न उठावेंगे और उसीके साथमें जैनचर्याको अमलमें लानेमें कटिबद्ध बने रहेंगे। यही जैनियोंका अलीगढ़ होगा।

वर्तमान समयमें जैनियोंके सामने दो जोखिमें उपस्थित हैं प्रथम यह कि उनकी सन्तान अपने ध्येयको भूल जावेगी और दूसरी वर्तमानकी भौतिक सुधारणामें निमग्न होजावेगी। यदि जैन जाति इस परिणामसे डरके भागती हो तो वह किसी कामकी नहीं है और दुनियामें–वह अस्तव्यस्त होजायगी। जैनधर्मकी संरक्षा उसी साधनको अमलमें लानेसे होगी जिससे कि जैनी उन दो जोखिमोंके भयसे पार होसकें। साधन यह है कि हमें एक या अनेक ऐसी संस्थाएँ स्थापित करनी चाहिये जिनमेंसे ऐसे विद्वान् तयार होवें जो वर्तमान समयमें सबसे योग्य गिने जावें, अपने स्थायी रहनेका पूर्ण आन्दोलन मचावें और जैनसिद्धान्तोंकी छत्रछायाके नीचे वृद्धिको प्राप्त होवें। क्या जैनजातिमें ऐसे वीर नररत्न हैं जो ऐसी संस्था

स्थापित करनेको कटिबद्ध हों अथवा ऐसे दानवीर हैं जो ऐसी महोपयोगी संस्थामें द्रव्यसे सहायता दे यशस्वी बनें ?

बुद्धमल पाटणी, इन्दौर ।

जैन–लाजिक (न्याय) ।

३५–अनुमान—साधनसे जो साध्यका ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं । साध्यका साधनके साथ अविनाभावी सम्बन्ध होता है । यह अनुमान दो प्रकारका होता है:–१ स्वार्थानुमान, २ परार्थानुमान ।

३६–पुनः पुनः दर्शनके पश्चात् जो मनमें ज्ञान होता है वह स्वार्थानुमान है । जैसे कोई पुरुष रसोई घर तथा अन्य स्थानोंमें कई बारके देखनेसे अपने मनमें यह निश्चय करता है कि धूम अग्निसे होता है । उसको यह ज्ञात नहीं कि पर्वतमें अग्नि है या नहीं परंतु जब वह उसमेंसे धूम निकलता देखता है तब तुरंत ही अग्नि और धूमके अविनाभावी सम्बन्धका उसको बोध हो जाता है और वह निश्चय कर लेता है कि पर्वतपर अग्नि है । यही स्वार्थानुमान है ।

३७–शब्दों द्वारा दूसरेको बोध कराना परार्थानुमान है । इसका दृष्टांत इस प्रकार है:—

१. पर्वत (पक्ष) अग्नि (साध्य) सहित है ।

२. क्योंकि इसमें धूम (हेतु या साधन) है ।

३. जो जो धूमसहित होता है वह अग्निविशिष्ट होता है जैसे रसोईघर (दृष्टांत) ।

४. ऐसे ही यह पर्वत धूमविशिष्ट है (उपनय) ।

५. इसलिए यह पर्वत अग्निसहित है (निगमन)।

३८–प्रतिज्ञामें पहला अवयव पक्ष होता है और दूसरा-साध्य होता है। पक्ष उसे कहते हैं जिसके साथ साध्यका अनिश्चित सम्बन्ध दिखलाया जाय। " पर्वत अग्निसहित है " इस प्रतिज्ञामें पर्वत पक्ष है और अग्नि साध्य है। हेतु उसे कहते हैं जो कभी साध्यके विना न रहे। "पर्वत अग्निसहित है क्यों कि यह धूमविशिष्ट है।" इस प्रतिज्ञामें धूम हेतु है जो आग्नि (साध्य) के बिना और किसी चीज़से उत्पन्न नहीं हो सकता। दृष्टान्त उसे कहते हैं जो साध्य और पक्षके सम्बन्धका निश्चय करा दे। यह दो प्रकारका होता है:—१ साधर्म्य जैसे " पर्वत अग्निसहित है क्योंकि यह धूमविशिष्ट है जैसे रसोईघर"। २ वैधर्म्य जो साध्यके अभावसे साधनके अभावका निश्चय करावे जैसे "जहां अग्नि नहीं है, वहां धूम नहीं है जैसे तालाब"।

३९–अनुमानमें पक्ष प्रसिद्ध होना चाहिये ज़िससे वादी प्रतिवादीमें विवादस्थलकी सम्भावना न हो और वादीको साध्यके आधारमें संदेह न हो। जैसे " यह पर्वत अग्निविशिष्ट है क्योंकि इसमें धूम है" यदि उक्त प्रातिज्ञामेंसे पक्ष अर्थात् पर्वत निकाल दिया जाय तो यह वाक्य इस प्रकार होगा:—अग्नि सहित है। क्योंकि धूमविशिष्ट है। यहां यह सम्भव है कि वादीको किसी ऐसे स्थलका तुरंत स्मरण हो जहां अग्नि और धूम दोनों एक साथ हों और तालाब आदि किसी विपरीत स्थलको साध्य और हेतुका आधार समझ बैठे। ऐसी दशामें सम्पूर्ण विवाद निरर्थक हो जायगा।

४०–जो पक्ष साक्षी, सर्वसाधारण सम्मति अथवा स्ववचन आदिसे बाधित हो उसे पक्षाभास कहते हैं। यह पक्षाभास कई

प्रकारका है। पक्षाभास वहां होता है जहां उसको मान लिया जाय जो अभीसिद्ध नहीं हुआ, या जो सिद्ध नहीं होसकता, या जो प्रत्यक्ष या अनुमानसे बाधित हो, या सर्व साधारण सम्मतिसे विरुद्ध हो, या स्ववचनसे विपरीत हो। यथा:—

१. " यह घट पौद्गलिक है" यह एक ऐसी बात है, जो वादीके लिए अभी सिद्ध करनी है।

२. " प्रत्येक वस्तु क्षणिक है" यह बौद्धका मत है जो जैनमतानुसार कभी सिद्ध नहीं हो सकता है।

३. "सामान्य और विशेष पदार्थ अंशरहित हैं, एक दूसरेसे भिन्न हैं और पृथक् २ हैं।" यह प्रत्यक्षबाधित है।

४." कोई सर्वज्ञ नहीं है।" यह जैनमतानुसार अनुमान-बाधित है।

५." भगिनीको भार्या समझना।" यह सर्वसाधारण-सम्मतिके विरुद्ध है।

६." समस्त पदार्थ नास्तिस्वरूप हैं।" यह स्ववचनविरुद्ध है

४१—व्याप्ति—हेतुके साध्यके साथ अविनाभावी सम्बन्धको व्याप्ति कहते हैं। यह पर्वत अग्निसहित है क्योंकि यह धूम-विशिष्ट है। इस अनुमानमें अग्नि और धूमका सम्बन्ध अर्थात् धूमके साथ अग्निका सदैव रहना व्याप्ति है। यह दो प्रकारकी होती है:—१ अन्तर्व्याप्ति, २ बहिर्व्याप्ति।

४२—अन्तर्व्याप्ति उस स्थलपर होती है, जहां पक्ष (जिसमें हेतु और साध्य दोनों रहते हैं) उनके अविनाभावी सम्बन्धको प्रगट करता है जैसे:—

१. यह पर्वत (पक्ष) अग्नि (साध्य) सहित है।

२. क्योंकि यह धूम (हेतु) विशिष्ट है।

यहां धूम और अग्निका अविनाभावी सम्बन्ध पक्ष द्वारा प्रगट होता है जिसमें दोनों रहते हैं।

४३.—बहिर्व्याप्ति उस स्थलपर होती है, जहां कोई दृष्टांत जिसमें साध्य और हेतु दोनों हों बाहरसे ऐसा दिया जाय जो उनके अविनाभावी सम्बन्धको निश्चय करावे। जैसे:—

१. यह पर्वत अग्नि (साध्य) सहित है;
२. क्योंकि यह धूम (हेतु) विशिष्ट है;
३. जैसे रसोईघर (दृष्टांत)।

यहां रसोईघरका दृष्टान्त अनुमानका आवश्यक अंग नहीं है किंतु बाहरसे ऐसे स्थलका साधारण उदाहरण है जिसमें अग्नि और धूम दोनों साथ रहते हैं, अतएव यह उनके अविनाभावी सम्बन्धको पुनः निश्चय करता है।

४४—कुछ नैयायिकोंका मत है कि जिसको सिद्ध करना है वह साध्य केवल अंतर्व्याप्तिसे सिद्ध हो सकता है, बहिर्व्याप्ति अनावश्यक है।

४५—हेत्वाभास हेतुमें शंका, विपरीत विचार अथवा अविचार-से होती है। यह तीन प्रकारका है:-

१. असिद्ध—यह सुगंधित है। क्योंकि यह आकाशपुष्प है। यहां हेतु अर्थात् आकाश पुष्प कोई वास्तविक पदार्थ नहीं है।

२. विरुद्ध—यह अग्निमान् है क्योंकि यह जलमय है। यहां हेतु साध्यके विरुद्ध है।

३. अनैकान्तिक—शब्द नित्य है क्योंकि यह सदैव सुना जाता है। यहां हेतु अनिश्चित है। क्योंकि सुनाई देना नित्यत्वका साधक हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता।

४६—दृष्टान्ताभास–साधर्म्य या वैधर्म्यरूप दृष्टांतके हेतु या साध्य या दोनोंमें कोई दूषण होनेसे या उनके विषयमें कोई संदेह होनेसे, दृष्टान्ताभास होता है।

४७—साधर्म्य दृष्टान्ताभास इस प्रकार है:—

१. अनुमान असत्य (साध्य) है, क्योंकि यह ज्ञानका साधन (हेतु) है जैसे प्रत्यक्ष (साधर्म्य दृष्टान्त दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टान्त साध्यमें दूषण पैदा करता है क्योंकि प्रत्यक्ष कभी असत्य होता नहीं।

२. प्रत्यक्ष असत्य (साध्य) है, क्योंकि वह इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा जाता (हेतु) जैसे स्वप्न (साधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टान्त हेतुमें दूषण पैदा करता है क्योंकि स्वप्न ज्ञानका साधन नहीं है।

३. सर्वज्ञका अस्तित्व (साध्य) नहीं है, क्योंकि वह इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा जाता (हेतु) जैसे घट (साधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टान्त साध्य और हेतु दोनोंमें दूषण पैदा करता है। क्योंकि घटका अस्तित्व भी है और इन्द्रियों द्वारा देखा भी जाता है।

४. यह पुरुष वांछारहित (साध्य) है, क्योंकि यह विनाशी (हेतु) है जैसे पथिक पुरुष (साधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टांत साध्यकी सत्यतामें संदेह उत्पन्न करता

है। क्योंकि यह अनिश्चित है कि पथिक पुरुषमें वांछा है या नहीं?

५. यह पुरुष विनश्वर (साध्य) है, क्योंकि वह वांछा-सहित (हेतु) है जैसे पथिक पुरुष (साधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टांत हेतुकी सत्यतामें संदेह उत्पन्न करता है। क्योंकि यह अनिश्चित है कि पथिक पुरुष वांछासहित है या नहीं।

६. यह पुरुष असर्वज्ञ (साध्य) है, क्योंकि यह वांछा-सहित (हेतु) है, जैसे पथिक पुरुष (साधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टान्त साध्य और हेतु दोनोंमें सन्देह उत्पन्न कराता है। क्योंकि यह अनिश्चित है कि उक्त पुरुष वांछासहित और सर्वज्ञ है या नहीं।

नोट—न्यायावतार वृत्तिमें कहा है कि कोई कोई विद्वान् तीन प्रकारके साधर्म्य दृष्टान्ताभास और बताते हैं अर्थात्:—

१. अनन्वय, जैसे यह पुरुष वांछासहित (साध्य) है, क्योंकि वह व्याख्याता (हेतु) है जैसे एक मगधदेशी (दृष्टान्त)। यहां यद्यपि एक मगधदेशी व्याख्याता भी है और वांछासहित भी है तथापि व्याख्याता और इच्छासहित होनेका कोई अभिन्न परस्पर सम्बन्ध नहीं है।

२. अप्रदर्शित अन्वय, जैसे शब्द अनित्य (साध्य) है क्योंकि यह उत्पन्न किया जाता (हेतु) है, जैसे घट। यहां यद्यपि उत्पन्न और अनित्यका अभिन्न

सम्बन्ध है किंतु यह ठीक तौरसे दर्शाया नहीं गया है अर्थात् इस तरह नहीं कहा गया कि:—"जो उत्पन्न होता है वह अनित्य है, जैसे घट"।

३. विपरीतान्वय, जैसे:—शब्द अनित्य (साध्य) है। क्योंकि यह उत्पन्न (हेतु) होता है। यहां यदि व्याप्ति इस तरह दिखलाई जाय कि:—"जो अनित्य है वह उत्पन्न होता है जैसे घट" जो कि इस व्याप्तिसे विपरीत है कि:—"जो उत्पन्न होता है वह अनित्य है जैसे घट" तो दृष्टान्त विपरीतान्वय दृष्टान्ताभास हो जायगा।

४८—वैधर्म्य दृष्टान्ताभास छह प्रकारके हैं जैसे:—

१. अनुमान असत्य (साध्य) है क्योंकि यह ज्ञानका साधन (हेतु) है; जो असत्य नहीं होता है वह ज्ञानका साधन नहीं होता है जैसे स्वप्न (वैधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टान्त वैधर्म्यरूप दृष्टान्तमें साध्यमें दूषण पैदा करता है। क्योंकि स्वप्न वास्तवमें असत्य है अगरचे यह कहा गया कि असत्य नहीं है।

२. प्रत्यक्ष निर्विकल्प है क्योंकि यह ज्ञानका साधन है। जो सविकल्पक होता है वह ज्ञानका साधन नहीं होता जैसे अनुमान (वैधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यहां दृष्टान्त वैधर्म्यरूप दृष्टान्तमें हेतुमें दूषण पैदा करता है क्योंकि अनुमान वास्तवमें ज्ञानका साधन है। यद्यपि यह कहा गया है कि ऐसा नहीं है।

३. शब्द नित्यानित्य (साध्य) है, क्योंकि इसका अ-
स्तित्व (हेतु) है। जो नित्यानित्य नहीं होता,
उसका अस्तित्व नहीं होता जैसे घट (वैधर्म्य
दृष्टान्ताभास)। यहां दृष्टान्त वैधर्म्यरूप दृष्टान्तमें
साध्य और हेतु दोनोंमें दूषण पैदा करता है क्योंकि
घट दोनों हैं। नित्यानित्य भी है और अस्तिरूप
भी है।

४. कपिल सर्वज्ञ (साध्य) नहीं है क्योंकि वह चार सत्यार्थ
तत्त्वोंका (हेतु) प्रचारक नहीं है। सर्वज्ञ होता
है, वह चार सत्यार्थ तत्त्वोंका प्रचारक होता है जैसे
बुद्ध (वैधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यहां दृष्टान्त वैधर्म्य-
रूप दृष्टान्तमें साध्यकी सत्यतामें संदेह उत्पन्न
करता है क्योंकि यह अनिश्चित है कि बुद्ध सर्वज्ञ
था या नहीं।

५. यह पुरुष अश्रद्धेय (साध्य) है क्योंकि वह इच्छ-
सहित (हेतु) है। जो श्रद्धेय होता है, वह इच्छा-
रहित होता है जैसे बुद्ध (वैधर्म्य दृष्टान्तभास)।
यह दृष्टान्त हेतुकी सत्यतामें सन्देह उत्पन्न करता
है क्योंकि यह अनिश्चित है कि बुद्ध इच्छारहित
है या नहीं।

६. कपिल इच्छारहित (साध्य) नहीं है, क्योंकि उसने
अपना मांस भूखोंको नहीं दिया (हेतु)। जो
कोई इच्छारहित है उसने अपना मांस भूखोंको दिया
जैसे बुद्ध (वैधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यह दृष्टान्त

साध्य साधन दोनोंकी सत्यतामें संदेह उत्पन्न करता है। क्योंकि यह अनिश्चित है कि बुद्ध इच्छारहित था या नहीं और उसने अपना मांस भूखोंको दिया या नहीं।

नोट—न्यायावतारवृत्तिमें ऐसा कहा है कि कुछ नैयायिक तीन प्रकारके वैधर्म्य दृष्टान्ताभास और बताते हैं अर्थात्:—

१. अव्यतिरेकी—यह पुरुष इच्छारहित (साध्य) है क्योंकि वह व्याख्याता (हेतु) है। जो कोई इच्छारहित होता है वह व्याख्याता नहीं होता, जैसे पत्थरका टुकड़ा (वैधर्म्य दृष्टान्ताभास)। यहां यद्यपि पत्थरका टुकड़ा दोनों है अर्थात् इच्छारहित है और व्याख्याता नहीं है, तथापि 'इच्छारहित होने" और 'व्याख्याता'में कोई व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है।

२. अप्रदर्शित व्यतिरेक—शब्द अनित्य (साध्य) है क्योंकि यह उत्पन्न होता (हेतु) है जैसे आकाश (दृष्टान्त)। यहां उत्पन्न होने और 'नित्यत्व'में अविनाभावी सम्बन्ध है, तथापि यह ठीक तौरसे दर्शाया नहीं गया है जैसे:— जो अनित्य नहीं है वह उत्पन्न नहीं होता है जैसे आकाश।

३. विपरीत व्यतिरेक—शब्द अनित्य (साध्य) है क्योंकि यह उत्पन्न होता (हेतु) है। जो उत्पन्न नहीं होता है वह अनित्य नहीं है जैसे आकाश (दृष्टान्त)। यहां दृष्टांत विपरीत रीतिसे कहा गया है क्योंकि

ठीक तौरसे यह होना चाहिए था कि "जो अनित्य नहीं है, वह उत्पन्न नहीं होता है।"

४९.—वादीके कथनमें उपर्युक्त दोषोंमेंसे किसी प्रकारका दोष निकालना, दूषण, कहलाता है। जहां कोई दूषण न हो वहां दोष लगाना दूषणाभास कहलाता है।

५०—प्रमाणका फल अज्ञाननिवृत्ति है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष प्रमाणका फल आनंदमय मोक्ष है और अन्य प्रकारके प्रमाणोंका फल यह है कि हम आसानीसे इच्छित पदार्थोंको गृहण करें और अनिच्छितको त्याग दें।

५१—नय पदार्थमें रहनेवाले अनेक धर्मोंमेंसे किसी एकका कथन करता है। इस तरह हम गुलाबको या तो एक फूल जानें जिसमें वे गुण हों जो तमाम फूलोंमें समानतया पाये जाते हैं या उन गुणों करके विशिष्ट मानें जो केवल गुलाबके फूलमें ही होते हैं और किसीमें नहीं। नयके ७ भेद हैं:—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत।

५२—जो ज्ञान एक धर्मको मुख्य लेकर नयोंके द्वारा किसी पदार्थके पूर्ण अर्थको शास्त्ररूपमें निश्चय करे वह स्याद्वाद श्रुत कहलाता है। पदार्थमें रहनेवाले प्रत्येक धर्मकी अपक्षासे यह पदार्थका पूर्ण ज्ञान है। आत्मा स्वपरज्ञाता, दृष्टा, कर्ता, भोक्ता है, परिणमनशील है, पुद्गलसे भिन्न है इत्यादि।

ये प्रमाण और नयके सिद्धान्त जिनसे हम परिचित हैं और जिनसे हमारे सब कार्य निकलते हैं आदिरहित हैं। (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.।

जैनसेवा ।

मैं एक जैन हूं; हां जैन हूं । जैनधर्मके अनुयायी कुटुम्बमें मेरा जन्म हुआ है और जिस पवित्र पृथ्वीपर जैनधर्मका पवित्र प्रवाह हजारों वर्षसे बह रहा है उसीके परमाणुओंसे मेरे शरीरकी रचना हुई है। माता, पिता, जन्मभूमि और धर्म इन चारका मनुष्यपर कितना बड़ा उपकार है, इसका वर्णन नहीं हो सकता । जिनके प्रसादसे यह शरीर मिला है, उन्हींको यह अर्पित होना चाहिए, उन्हींकी भक्तिमें इसे न्योछावर कर देना चाहिए और उन्हें सुख शान्ति देनेके लिए अपने प्रत्येक अंगका—नहीं समस्त शरीरका भी उत्सर्ग करना पड़े, तो कर देना चाहिए । और जब यह शरीर ही उनका दिया हुआ है, तब धनसम्पत्ति आदि पदार्थोंके उत्सर्ग कर देनेके विषयमें तो कहना ही क्या है ? क्योंकि ये सब तो शरीरकी मालिकीकी ही चीज़ें हैं ।

मैं एक जैन हूं । तेरह लाख जैनोंमें जब तक एक भी मनुष्य अज्ञानी है, तब तक मुझे वास्तविक ज्ञान कभी नहीं मिल सकता, जब तक उनमें एक भी मनुष्य ऐसा है कि जिसको भरपेट अन्न नहीं मिलता, तब तक मेरा पेट कभी भरा हुआ नहीं कहला सकता; "पूरेमें उसके अंश भी समाये हुए हैं" इस वचनके अनुसार सम्पूर्ण जैन समाजकी उन्नतिमें ही मेरी उन्नति है; मैं केवल अपनी—केवल तुच्छ अपनेपनकी उन्नति कदापि नहीं कर सकता ।

मैं एक जैन हूं । समस्त जैनोंमें मैं आपको देखनेका प्रयत्न करता हूं—मनन करता हूं । दूसरे जैनोंमें मुझे जो नीचताके दाग दिखलाई देते हैं, उनके लिए मैं आपको ही अभागा समझता हूं और "हाय, मेरी यह दशा !" ऐसा कहकर एकान्तमें रोता हूं ।

किसी साधुकी, भट्टारककी, त्यागीकी या पण्डितकी यदि मैं कोई अज्ञानता, कषायाधीनता या मायाचारिता देखता हूं, तो भी यही कहकर विलाप करता हूं, कि "हाय ! मेरी यह दशा !" मुझे इनकी विकृतियां–इनकी त्रुटियां अपनी ही सी भासती हैं और इसीलिए मैंने एकदिन विचार किया कि मैं अपने भगवानकी आज्ञानुसार प्रतिक्रमण अर्थात् आत्मनिरीक्षण करूं और मैंने निश्चय किया कि वर्तमानमें जैननिरीक्षण ही आत्मनिरीक्षण है। जब मैं जैनोंमेंसे ही एक हूं, तब यदि मैं जैनसमाजके समस्त स्वरूपका चिन्तापूर्वक निरीक्षण करूं–इसके प्रत्येक अंगकी और हृदयकी अच्छी तरहसे जांच पड़ताल करूं, तो वह निजनिरीक्षण करनेके ही तुल्य है और मेरे लिए आपको पहचाननेके लिए सबसे पहले इसी निरीक्षणकी जरूरत है !

—"जै० का० हेरल्ड।"

सम्पादकीय विचार।

१. जैन जातियोंमें परस्पर रोटीबेटी व्यवहार।

जैनधर्मके उदार सिद्धान्तोंके विचारसे यद्यपि जैनियोंके लिए अपनी सम्पूर्ण जातियोंमें परस्पर रोटीबेटी–व्यवहार जारी करनेका प्रस्ताव उतना कठिन नहीं है जितना कि अन्य हिन्दू भाइयोंके लिए है। तो भी अपने पड़ोसियोंका जो उनके सामाजिक व्यवहारोंपर गहरा असर पड़ गया है और लोकमूढ़ता जो उनकी नस-नसमें भर गई है, उसको देखते हुए यह अनुमान भी नहीं होता कि यह सहज ही कार्यमें परिणत हो जायगा। इसके लिए बहुत समयकी दरकार होगी और प्रयत्न भी सामान्य नहीं करना

पड़ेगा। तो भी हम देखते हैं कि जैनसमाजमें इसकी चर्चा शुरू हो गई है और जैनियोंकी संख्यामें जो भयानक घटी हुई है उसका चौंका देनेवाला धक्का इस चर्चामें और भी तेजी ला रहा है। उस दिन दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभाके सभापति बाबू अजितप्रसादजीने इस विषयमें अपने अनुकूल विचार प्रगट किये ही थे। उसके बाद दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाके सभापति श्रेष्ठिवर्य्य रामचन्द्रनाथाजी गांधीने भी अपने व्याख्यानमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि—"जैनियोंके एकत्र बैठकर भोजन करने, खाने पीने और परस्पर बेटी व्यवहार करनेके विषयमें मेरे विचार विरुद्ध नहीं, अनुकूल हैं। आपको अथवा आपके जाति भाइयोंको जातिभेद न रखके जैनियोंमें परस्पर विवाह सबन्ध करना कठिन और बुरा मालूम होता है इसका कारण यह है कि बहुत समयसे यह रवाज बन्द हो गया है; परन्तु श्रेणिक आदि राजाओंके समयमें यह जारी था। पारस्परिक व्यवहारकी रीतियां और रवाज़ जुदा जुदा होनेसे और उनके अनुसार वर्ताव करनेका अभ्यास न होनेसे हमें इस रवाज़का जारी करना यद्यपि कुछ कठिन और अटपटा मालूम होता है तो भी मैं इसे बुरा नहीं समझता—मैं इस कार्यके विरुद्ध नहीं हूं।........" प्रान्तिकसभाके अधिवेशनमें तो इस विषयको सुनकर कुछ गड़बड मच गई थी; परन्तु महाराष्ट्र सभामें किसीने भी इसका विरोध नहीं किया; बल्कि कुछ अगुओंने इस विषयमें सर्वसाधारण जैनीभाइयोंसे इस प्रकारके प्रतिज्ञापत्र लिखवानेका प्रयत्न शुरू कर दिया है कि "जैनसमाजकी जिन जिन जातियोंमें रोटीव्यवहार है उनमें परस्पर बेटीव्यवहार भी होना चाहिए। इस रवाज़के चलानेमें हम अपनी शक्तिभर प्रयत्न करेंगे और कमसे

कम जो लोग ऐसे विवाह करेंगे उनके विरुद्ध आन्दोलनमें हम कभी शामिल न होंगे।" इस समय प्रगतिके प्रायः प्रत्येक अंकमें इस प्रकारके प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित हो रहे हैं। इधर जैनमित्रके सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंके प्रमाणसे इस प्रकारके लेख भी प्रकाशित कर रहे हैं जो इस प्रस्तावके बहुत ही अनुकूल हैं। परस्पर भोजनव्यवहारके विषयमें भी थोड़ा बहुत प्रयत्न हो रहा है। अभी उस दिन बम्बईके दिगम्बर, श्वेताम्बर और ढूंढिया तीनों सम्प्रदायके जैन बोर्डिंगोंके विद्यार्थियोंका एक सम्मेलन हुआ था और उसमें अनेक जातिके जैनी भाइयोंने एक साथ प्रीतिभोजन किया था। इसी प्रकारका एक सम्मेलन कोल्हापुर जैनबोर्डिंगके विद्यार्थियोंने भी किया है। ये सब लक्षण अच्छे मालूम होते हैं और इनसे आशा होती है कि जैनसमाज कुछ समयमें जातिभेदकी भयंकर चुंगलसे छूटकर अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकेगा। इस विषयके विरोधी भी कम नहीं हैं और इसके विरुद्ध प्रयत्न करनेमें वे कोई बात उठा भी नहीं रक्खेंगे; परन्तु हमें हिम्मत न हारनी चाहिए। हमारा प्रयत्न जारी रहा, तो हमको विश्वास है कि हमें इसमें पूरी पूरी सफलता होगी—समय हमें साथ देनेके लिए तैयार है।

२. जयपुरकी बिरादरीमें हलचल।

जयपुरके एक सज्जनने हमारे पास एक बहुत बड़ा लेख भेजनेकी कृपा की है। स्थानकी कमीसे हम उसका केवल सारांश ही अपने पाठकोंके सामने उपस्थित करते हैं। जयपुरके समीप गलता नामक स्थानमें हरसाल सावनके महिनेमें अन्यमतावलम्बियोंके मेले भरा करते हैं। वहींपर जैनियोंकी मोहनबाड़ी नामकी नसियां है। उसमें थोड़ेसे

जैनी भाइयोंने भी मिलकर एक सम्मेलन किया और साथ मिलकर भोजन किया। इस भोजमें घीसीलालजी गोलेछा (ओसवाल) और सूर्यनारायणजी वकील भी शामिल हुए। कारणवश सूर्यनारायणजी उस समय पहुंचे जब लोग भोजनके लिए बैठे थे। उतावलीसे आकर वे घीसीलालजीके साथ ही भोजन करनेके लिए बैठ गये। उन्होंने यह सोचा भी न था कि मेरी इस एक छोटीसी हरकतका आगे क्या परिणाम होगा। दूसरे दिन वकील साहब जब मंदिरमें भगवानका प्रक्षालन करने गये, तब उन्होंने कहा कि कल मैंने भूलसे घीसीलालजीके साथ खा लिया है, इसका मुझे पश्चात्ताप है। यदि आप लोग कहें तो मैं प्रक्षाल कर लूं। उपस्थित पुरुषोंमेंसे एकने कहा कि काम तो आपने बेजा किया है; परन्तु जब आपको इसका पश्चात्ताप है तब खैर आप प्रक्षाल कर लें—आपको योग्य प्रायश्चित्त दिलवा दिया जायगा। आगामी दिन वकील साहब उक्त महाशयके साथ एक पंडितजीके यहां प्रायश्चित्त लेनेके लिए गये। पंडितजीने कहा, यद्यपि यह कार्य शास्त्राज्ञासे तथा लौकिक व्यवहारसे विरुद्ध है; तथापि जब आपको पश्चात्ताप है तब प्रायश्चित्त दे दिया जायगा। जैनशिक्षाप्रचारक समिति नये ढंगकी और नये विचारवालोंकी संस्था है, इसलिए पुराने विचारोंके लोग विशेष करके अपढ़ लोग उसके बहुत विरोधी हैं। उनके हृदयमें विरोधकी आग बहुत समयसे सुलग रही थी, परन्तु समितिकी ख्याति और कार्यकुशलताके कारण वह कुछ कर न सकती थी। पर अब मौका मिल गया। वकील साहब समितिके महामंत्री हैं और गोलेछाजी एक प्रधान कार्यकर्ता हैं। बस, कुछ लोग पंडितजीके पास दौड़ गये और उनपर वजन डालकर उनसे यह कहला दिया कि आपको आम पंचायतके

सामने प्रायश्चित्त दिया जायगा। वकीलसाहबने कहा, इसके लिए मुझे आप क्षमा करें—आम पंचायतमें मेरी हतक करानेमें आपको कुछ लाभ न होगा। मैं प्रार्थना करता हूं कि आप जो प्रायश्चित्त उचित समझें, यहीं दे दें। पंडितजी न माने। वकील साहब निराश होकर लौट आये। इधर जैन प्रान्तिक सभा बम्बईके अधिवेशनके प्रस्ताव निकलने लगे। उनसे मालूम हुआ कि जैनियोंकी संख्या घटनेका मुख्य कारण समान जातियोंमें परस्पर रोटीबेटीव्यवहारका न होना है। भगवाज्जिनसेनाचार्यके वचनानुसार यह बिलकुल विरुद्ध है। इसमें लोकरूढीरूप जीर्ण खड्गके सिवा और कोई बाधक कारण नहीं है। इत्यादि। इससे वकील साहब आदिने सोचा कि जब हमने शास्त्राज्ञासे विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया और जो काम हमने किया उसके करनेके लिए जमाना आप ही प्रेरणा कर रहा है, तब हम क्यों डरें? हमारे प्रतिपक्षी जातिसे बाहर कर देनेके सिवा हमारा और क्या कर सकते हैं? इसी समय वकील साहबकी स्त्रीका प्लेगसे देहांत हो चुका था इसलिए वे दूसरी शादी करना चाहते थे। विरोधी लोग इसमें बाधा डालनेके लिए तैयार हुए। सगाई पक्की हो चुकनेपर विरोधियोंने पंचायत एकट्ठी की। उसमें बाबू अर्जुनलालजी सेठीने कहा, "आप लोग जातिके नेता हैं। ज़ातिका जीवन मरण आपके हाथमें है। पंचायतका धर्म है कि वह न्यायपूर्वक ज़ातिसुधारके कार्य करे। एकपर रियायत करना और दूसरेके गलेपर छुरी फेरना न्यायी पुरुषोंका काम नहीं। आप विवेकपूर्वक विचार करके अन्य कुत्सित कार्योंके करनेवालोंका फैसला करें और उसके साथ ही सूर्यनारायणजीको भी प्रायश्चित्त देवें। यदि

आप ऐसा न करके मनमानी कार्रवाई करेंगे, तो उसका कुछ भी फल न होगा हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते।" इसके बाद और भी इसी तरहकी बहुतसी बातचीत हुई। इसी समय सूर्य-नारायणजीको यह मालूम हुआ कि चार भाइयोंकी सहीसे जो अर्जी पहले पेश हुई थीं वह कहीं गायब कर दी गई है और उसके बदले एक गुमनाम आदमीकी सहीकी अर्जी मिसलमें लगा दी गई है। यह देखकर अर्जुनलालजीने कहा, "देखो भाइयो, पंचायतियोंमें कैसी कैसी बेईमानियां और जालसाजियां होती हैं। इतनेपर भी लोग कहते हैं कि हम पंच हैं!" इसके बाद ही हुल्लड़ मच गया, लाचार तीसरे दिन फिर पंचायत एकत्रित करनेकी आज्ञा दे कर लोग अपने अपने घर चले गये। इसके बाद जब विरोधि-योंने देखा कि इस पद्धतिसे कुछ सफलता न होगी, तब उसी दिन रातको कुछ लोगोंने एकत्र हो करके सलाह की और सर्वत्र यह आज्ञा जारी कर दी कि सूर्यनारायणजी जातिसे खारिज किये गये। इसके सिवा इस झगड़ेकी जड़ समितिको समझकर यह भी कहलवा दिया कि कोई भाई अपने लड़के लड़कियोंको समितिके विद्यालयमें पढ़नेके लिए न भेजें और एक पैसेका चन्दा न देवें। जो इसके विपरीत आचरण करेगा उसे पंचायतसे दंड दिया जायगा। तार चिट्ठियोंके द्वारा बाहर भी इस बातकी मुनादी कर दी गई। सेठीजी इन्दौरकी प्रतिष्ठामें गये थे। वहां भी तारचिट्ठियां भेजी गईं; परन्तु उनका कुछ फल न हुआ। सेठीजीको इन्दौरमें खासी सफलता हुई। उधर सूर्यनारायणजी वकीलकी जिसकी लड़कीके साथ सगाई हुई थी, उसने भी जातिसे अलग कर देने आदि धमकियोंकी कुछ परवा न की। बारातमें जयपुरके लगभग ३३ जैनी भाई गये और आनन्दके साथ

सामने प्रायश्चित्त दिया जायगा। वकीलसाहबने कहा, इसके लिए मुझे आप क्षमा करें—आम पंचायतमें मेरी हतक करानेमें आपको कुछ लाभ न होगा। मैं प्रार्थना करता हूं कि आप जो प्रायश्चित्त उचित समझें, यहीं दे दें। पंडितजी न माने। वकील साहब निराश होकर लौट आये। इधर जैन प्रान्तिक सभा बम्बईके अधिवेशनके प्रस्ताव निकलने लगे। उनसे मालूम हुआ कि जैनियोंकी संख्या घटनेका मुख्य कारण समान जातियोंमें परस्पर रोटीबेटीव्यवहारका न होना है। भगवाज्जिनसेनाचार्यके वचनानुसार यह बिलकुल विरुद्ध है। इसमें लोकरूढीरूप जीर्ण खड्गके सिवा और कोई बाधक कारण नहीं है। इत्यादि। इससे वकील साहब आदिने सोचा कि जब हमने शास्त्राज्ञासे विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया और जो काम हमने किया उसके करनेके लिए जमाना आप ही प्रेरणा कर रहा है, तब हम क्यों डरें? हमारे प्रतिपक्षी जातिसे बाहर कर देनेके सिवा हमारा और क्या कर सकते हैं? इसी समय वकील साहबकी स्त्रीका प्लेगसे देहांत हो चुका था इसलिए वे दूसरी शादी करना चाहते थे। विरोधी लोग इसमें बाधा डालनेके लिए तैयार हुए। सगाई पक्की हो चुकनेपर विरोधियोंने पंचायत एकट्ठी की। उसमें बाबू अर्जुनलालजी सेठीने कहा, "आप लोग जातिके नेता हैं। जातिका जीवन मरण आपके हाथमें है। पंचायतका धर्म है कि वह न्यायपूर्वक जातिसुधारके कार्य करे। एकपर रियायत करना और दूसरेके गलेपर छुरी फेरना न्यायी पुरुषोंका काम नहीं। आप विवेकपूर्वक विचार करके अन्य कुत्सित कार्योंके करनेवालोंका फैसला करें और उसके साथ ही सूर्यनारायणजीको भी प्रायश्चित्त देवें। यदि

आप ऐसा न करके मनमानी कार्रवाई करेंगे, तो उसका कुछ भी फल न होगा हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते।" इसके बाद और भी इसी तरहकी बहुतसी बातचीत हुई । इसी समय सूर्य-नारायणजीको यह मालूम हुआ कि चार भाइयोंकी सहीसे जो अर्जी पहले पेश हुई थी वह कहीं गायब कर दी गई है और उसके बदले एक गुमनाम आदमीकी सहीकी अर्जी मिसलमें लगा दी गई है। यह देखकर अर्जुनलालजीने कहा, "देखो भाइयो, पंचायतियोंमें कैसी कैसी बेईमानियां और जालसाजियां होती हैं। इतनेपर भी लोग कहते हैं कि हम पंच हैं!" इसके बाद ही हुल्लड़ मच गया, लाचार तीसरे दिन फिर पंचायत एकत्रित करनेकी आज्ञा दे कर लोग अपने अपने घर चले गये। इसके बाद जब विरोधियोंने देखा कि इस पद्धतिसे कुछ सफलता न होगी, तब उसी दिन रातको कुछ लोगोंने एकत्र हो करके सलाह की और सर्वत्र यह आज्ञा जारी कर दी कि सूर्यनारायणजी जातिसे ख़ारिज किये गये । इसके सिवा इस झगड़ेकी जड़ समितिको समझकर यह भी कहलवा दिया कि कोई भाई अपने लड़के लड़कियोंको समितिके विद्यालयमें पढ़नेके लिए न भेजें और एक पैसेका चन्दा न देवें। जो इसके विपरीत आचरण करेगा उसे पंचायतसे दंड दिया जायगा। तार चिट्ठियोंके द्वारा बाहर भी इस बातकी मुनादी कर दी गई। सेठीजी इन्दौरकी प्रतिष्ठामें गये थे। वहां भी तारचिट्ठियां भेजी गईं; परन्तु उनका कुछ फल न हुआ। सेठीजीको इन्दौरमें खासी सफलता हुई। उधर सूर्यनारायणजी वकीलकी जिसकी लड़कीके साथ सगाई हुई थी, उसने भी जातिसे अलग कर देने आदि धमकियोंकी कुछ परवा न की। बारातमें जयपुरके लगभग ३२ जैनी भाई गये और आनन्दके साथ

वकीलसाहबका विवाह होगया। अब पंचमहाशयोंकी नजर बारा-तमें जानेवालोंपर भी पड़ी। इसी समय रत्नमालाके सम्पादक श्रीमान् शास्त्रीजीका भी शुभागमन हुआ। उन्होंने भी अपने कर्तव्यका पालन किया। बड़ी भारी कोशिशसे २६ फरवरीको फिर पंचायत एकट्टी की गई और कहीं हमारे इच्छित कार्यमें कुछ बाधा न पड़ जाय, इस खयालसे सरकारी पुलिसका इन्तजाम कर लिया गया। बारातमें जानेवाले कुछ लोगोंको बुलावा भेजा गया, परन्तु उन्होंने यह कहला दिया कि जब हमारी बेइज्जती करनेके लिए पुलिसका बन्दोवस्त किया गया है तब हमें आपकी पंचायतसे कोई मतलब नहीं। आखिर पंचायत हुई। तीन आदमी जातिसे सर्वथा बाहर कर दिये गये और १८ का बेटीव्यवहार और कच्ची रसोई बन्द की गई। जो लोग दंडित हुए, उनमें कई ऐसे भी थे जो बारातमें गये ही नहीं थे-केवल समितिसे सम्बन्ध रखते थे। इसके सिवा बहुतसे लोग बारातमें गये थे तो भी दंडित नहीं किये गये। बस, जयपुरकी हलचलका यही सारांश है। इससे केवल यही नतीजा निकाला जा सकता है कि अब नये विचार-वालोंकी और पुराने विचारवालोंकी परस्पर बनती नहीं है। हमारी पंचायतियोंमें यह शक्ति नहीं रही है कि वह न्यायपूर्वक निष्पक्ष दृष्टिसे जातिका शासन कर सके और यह निश्चय है कि जबतक शासक अपने अधिकारोंके भीतर शासित लोगोंकी भलाईपर दृष्टि रखकर अपनी शक्तिका उपयोग करता है, तबहीतक उसकी प्रतिष्ठा और प्रभाव कायम रह सकता है—इसके विपरीत चल-नेसे उसे कोई नहीं पूछता। क्योंकि उसमें जो शक्ति होती है, वह शासितोंकी ही दी हुई होती है और वे उसे तब ही तक उपयोगमें लाने दे सकते हैं जबतक कि वह उसका दुरुपयोग नहीं करता। जय-

पुरकी पंचायत अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रही है। एक जरासी बातको अपनी जिदके कारण और व्यक्तिगत द्वेषोंके कारण उसने सीमासे बाहर बढ़ा दी है। एक तो उस जातिके पुरुषके साथ जिसके साथ भोजनव्यवहारकी मनाही नहीं है—एक साथ बैठकर भोजन करना कोई पाप नहीं और यदि थोड़ी देरके लिये यह मान भी लिया जाय कि उसमें पाप था अथवा उसमें किसी जातीय रवाजका उल्लंघन हुआ, तो क्या पंचायतको दूसरे लोगोंके बड़े बड़े अनाचारों और अन्यायोंकी ओरसे कान बहरे करके केवल एक छोटीसी गलतीके लिए यों जमीन आसमान एक कर देना चाहिए था? इस लेखके लेखक लिखते हैं कि "जयपुरमें इस समय ऐसे अनर्थ हो रहे हैं कि जिनके लिखनेमें भी लज्जा मालूम होती है और उन सबसे सारी पंचायत परिचित है, तो भी वह उनके रोकनेके लिए—या किसीको दंड देनेके लिए कुछ भी नहीं करती है।" ऐसी हालतमें यह कैसे संभव हो सकता है कि उसकी शक्तिके आगे लोग सिर झुकायें और फिर वे लोग जिन्हें कि कुछ अपना भला बुरा समझनेकी शक्ति हो गई है। आशा है कि इस घटनासे अन्यत्रकी पंचायतियां कुछ सबक सीखेंगी और अपने हृदयसे इस भ्रमको निकाल कर—कि हम जैसा औंधा सीधा चलायँगे लोग वैसा ही चलेंगे-अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करनेमें प्रवृत होंगीं।

३. परवारोंकी चार सांकोंका प्रस्ताव।

पिछले वर्ष बुन्देलखण्ड दिगम्बर जैन प्रांतिक सभाने यह प्रस्ताव पास किया था कि परवारोंमें जो आठ सांकें या शाखायें मिलाकर विवाह किया जाता है, उसके स्थानमें चार ही सांकें लाई जावें; परन्तु अबकी बार उक्त सभाने अपने उस प्रस्तावका

प्रत्याख्यान कर दिया है। सभा कहती है कि यह एक जाति-सम्बन्धी बात है—सभासे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। परवार जाति यदि चाहे तो वह स्वयं इसके लिए उद्योग करे। हम सभाकी इस कृपाके लिए कृतज्ञ हैं कि वह उक्त प्रस्तावका स्पष्ट शब्दोंमें विरोध करनेका यत्न न करके केवल उसमे उदासीन हो गई और परवार भाइयोंसे निवेदन करते हैं कि वे जातिसुधार आदि कार्योंके लिए अपनी एक स्वतन्त्र जातीय सभा स्थापित कर लें और उसके द्वारा चार सांकोंके जारी करनेका आन्दोलन करें। प्रान्तिक सभाकी इच्छा भी यही मालूम होती है। उसकी सम्मति सर्वथा माननीय है। जातीय सुधारोंके लिये प्रत्येक जातिकी एक एक जुदा सभा अवश्य होनी चाहिए। चार सांकोंके विषयमें जिन भाइयोंकी अनुकूल सम्मति हो, वे हमें लिखें हम उनके नाम जैनहितैषीमें प्रकाशित कर दिया करेंगे।

४. रत्नमाला बंद क्यों हुई ?

सुना है रत्नमाला बन्द हो गई और शायद सदाके लिए बन्द हो गई! जिन सेठोंके गले वह पड़ी थी उनके पास धनकी कमी नहीं है, खर्चकी परवा नहीं है, शास्त्री जैसे विद्वानोंकी उनपर कृपा है, शास्त्रीजी स्वयं उसके सम्पादन कार्यको अपना अहोभाग्य समझते थे, ग्राहक भी शास्त्रीजीके कथनानुसार छह सातसौके लगभग थे; इन सब बातोंके होते हुए भी रत्नमाला बन्द हो गई, इसका क्या कारण? कई महाशयोंका कथन है कि जिस उद्देश्यसे पत्रिका निकाली गई थी वह एक तरहसे सिद्ध हो चुका। दस्सों बीसोंका मामला तय हो चुका, महासभा सेठोंके हाथमें आ गई, सेठोंके प्रतिपक्षियोंको खूब जी खोलकर गालियां दी जा चुकीं, और

सपक्षियोंके स्तुति स्तोत्र भी खूब हो लिये। फिर अब बाकी ही क्या रहा जिसके लिए रत्नमालाकी ज़रूरत समझी जाय? कई महाशय कहते हैं कि जैनसमाजके दूसरे पत्रोंने रत्नमालाके लेखोंका जो चारों ओरसे व्याजसहित बदला चुकाया और सेठ लोगोंको बेतरह आड़े हाथों लिया उससे सेठ लोग घबड़ा गये और शास्त्रीजीकी कलममें अपनी रक्षाकी शक्ति न देखकर वे मैदान छोड़ गये! कई लोग यह भी कहते हैं कि जब रत्नमालाकी ज़रूरतोंको जैनगज़ट ही पूरा कर रहा है—वह भी जब सब तरहसे सेठोंका अनन्य दास बन रहा है, तब फिर रत्नमालाको जुदा निकालनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। इस तरह उक्त प्रश्नके तरह तरहके उत्तर दिये जाते हैं; परन्तु हमारी समझमें ये उत्तर सर्वांश सत्य नहीं है—इनके बाहरी अंश ही सत्य हैं। वास्तवमें रत्नमालाकी असफलता ही उसके बन्द होनेका कारण है। जमाना उसके विचारोंसे सर्वथा प्रतिकूल था। वह वर्तमानको भूतमें बदल देनेकी बाल-चेष्टा करती थी। देशकालकी ओर उसका जरा भी लक्ष्य न था। उसके विचारोंमें संकीर्णता, क्षुद्रता, स्वार्थता, अभिमान और युक्तिशून्यता थी। अविवेकतासे वह सारे समाजको अपने विरुद्ध तैयार कर रही थी। उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि विपक्षके किसी अच्छे कामकी प्रशंसा कर सके और अपने पक्षके किसी गन्दे कामको भी गन्दा कह दे। उसका गला ऐसा बेसुरा था कि उसे सुनकर उसके अनुयायियोंको भी प्रसन्नता न होती थी। इन कारणोंसे उसे अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें जरा भी सफलता न हुई और उसकी इस घोर असफलताके कारण ही उसके अभिभावकोंने उसे बन्द कर दी। कुछ वर्ष पहले ऐसी तो नहीं; परन्तु कुछ कुछ इसीसे मिलती हुई जैनपताका निकली थी और आखिर लगभग दो वर्ष

चलकर उसने भी बिदाई ले ली थी। आशा है कि इन दो उदाहरणोंसे इस प्रकारके पत्र निकालनेवाले कुछ शिक्षा ज़रूर ग्रहण करेंगे।

रत्नमालाके केवल १९ अंक निकले हैं। उसके ग्राहकोंके पांच अंक और भी उसके संचालकोंसे पाने हैं। आशा है कि रत्नमालाके स्वामी या तो ये पांच अंक और निकाल देंगे या पांच अंकोंका मूल्य प्रत्येक ग्राहकके पास भेजनेकी कृपा कर देंगे जिससे नवीन पत्रोंके ग्राहक बननेवालोंमें अविश्वास न बढ़ने पावे।

९. शिक्षाप्रचारक फण्डकी जरूरत।

इस समय सबसे बड़ी ज़रूरत शिक्षाका प्रचार करनेकी है। इसके लिए चाहे जितनी संस्थायें, चाहे जितने स्कूल और चाहे जितनी पाठशालायें खोली जायँ, कम हैं। सौभाग्यसे अब लोग शिक्षाके महत्त्वको थोड़ा बहुत समझने लगे हैं और इस प्रकारके लोग प्रायः प्रत्येक ग्राम और नगरमें मिलने लगे हैं जो अपने लड़के और लड़कियोंको पढ़ाना लिखाना चाहते हैं। अब हमारा काम यह है कि हम ऐसा उद्योग करें, ऐसे साधन खड़े कर देवें और ऐसी संस्थायें खोल देवें जिससे हमें ऐसी शिकायत सुननेका कभी मौका ही न मिले कि अमुक भाई अपनी सन्तानको पढ़ाना चाहते थे; परन्तु क्या करें कोई साधन न होनेसे या शक्ति न होनेसे उनकी इच्छा पूर्ण न हुई। हमारी महत्वाकांक्षा तो यह होना चाहिए कि हमारे समाजका एक भी मनुष्य ऐसा न रह जाय जो कि मूर्ख या अपढ़ हो; परन्तु जब तक हम इतना नहीं कर सके हैं—अपने समाजमें हम शिक्षाका महत्त्व इतना अधिक स्थापित नहीं कर सके हैं

तब तक यह तो अवश्य ही करना चाहिए कि जो लोग पढ़ना चाहते हैं या पढ़ाना चाहते हैं, कमसे कम उन्हें तो निराश न होना पड़े। इसके लिए हमें एक शिक्षाप्रचारक फंडके खोलनेकी जरूरत है। हमारी पाठशालाओंसे, बोर्डिंगस्कूलोंसे, सरकारी स्कूलों कालेजों-से तथा अन्य शिक्षासंस्थाओंसे जो विद्यार्थी अपनी निर्धनताके कारण या अपने निवासस्थानके पास किसी संस्थाके न होनेसे लाभ नहीं उठा सकते हैं, उन विद्यार्थियोंको इस फण्डसे सहायता देनी चाहिए और उन्हें जहां तक उनका उत्साह हो वहां तक पढाना चाहिए। फंडके दो विभाग होना चाहिए। एक विभागसे तो विद्या-र्थियोंको छात्रवृत्तियां, इकमुश्त सहायतायें और पारितोषिक आदि देना चाहिए तथा उन उपयोगी शिक्षा संस्थाओंको जो अच्छा काम कर रही हैं और जिनके पास द्रव्यकी कमी है, समय समय-पर मदद देनी चाहिए और दूसरेसे उन विद्यार्थियोंको जो यहीं रहकर उच्चश्रेणीकी विद्यायें पढ़ना चाहें, या जापान, इंग्लेंड, अमेरिका आदि देशोंमें विज्ञान कलाकौशल्यादि सीखनेके लिए जाना चाहें उन्हें इस शर्तपर रुपया कर्ज दिया जाय कि जब वे समर्थ हो जायँ तब थोड़ा थोड़ा करके उस कर्जको विना व्याजके अदा कर देवें। जिस समय फंडमें रुपया सन्तोषयोग्य हो जाय, उस समय इस विभा-गसे स्कालर्शिपें भी उच्चश्रेणीके विद्यार्थियोंको दी जायं। इस प्रका-रके फंड हमारे देशकी अनेक जातियोंमें खुल चुके हैं और बराबर खुल रहे हैं। इस बम्बई नगरमें ही इस प्रकारकी कई संस्थायें हैं जिनके उल्लेख जैनहितैषीमें समय समयपर किये जा चुके हैं। हमारे श्वेताम्बरी और स्थानकवासियोंने भी इस प्रकारके फंड खोल लिये हैं; परन्तु अभी तक दिगम्बर सम्प्रदायका इस प्रकारका

एक भी फंड नहीं है । चाहिए तो यह था कि तीनों ही सम्प्रदाय मिलकर इस प्रकारका एक बड़ा फंड स्थापित करते; परन्तु जब तक यह नहीं हो सकता है—एक दूसरेको अपना भाई नहीं समझते हैं, तब तक तीनोंका जुदा जुदा फंड खोलना ही अच्छा है। दिगम्बर सम्प्रदायके शिक्षितोंसे हम आशा करते हैं कि वे इस विषयमें अवश्य उद्योग करेंगे और अपने समाजमें शिक्षाप्रचारके इस आवश्यक प्रस्तावको कार्यमें परिणत करके दिखला देवेंगे।

६. रुपया संग्रह करनेके उपाय।

शिक्षाप्रचारक फंड तो खोल लिया जाय; परन्तु उसमें रुपया कैसे एकत्र किया जायगा? सबसे पहले इसके लिए जी जानसे परिश्रम करनेवाले चार छह उत्साही कार्यकर्ता चाहिए। वे प्रयत्न करके एक कमेटी बनावें और जगह जगह उत्साही नवयुवकोंको उसका मेम्बर बनानेका प्रयत्न करें। मेम्बरोंका कर्तव्य होगा कि वे अपने अपने नगर या ग्राममें महीनेमें कमसे कम दो बार प्रत्येक चतुर्दशीको अथवा और किसी अवकाशके दिन इस फंडके लिए कुछ चन्दा एकत्र करनेका प्रयत्न करें। बम्बईकी एक संस्थाका हाल पाठक पढ़ ही चुके हैं जिसके मेम्बर प्रत्येक रविवारको अपनी जातिके प्रत्येक गृहस्थके यहां जाते हैं और उसके भोजनघरके द्वारपर एक झोली टांगकर प्रार्थना कर आते हैं कि प्रतिदिन अपने भोजनके चाँवलोंमेंसे एक मुट्ठी चावल भी इसमें डाल दिया कीजिए और फिर दूसरे रविवारको उस झोलीके चावल दूसरी झोलीमें ले आते हैं। इस प्रयत्नसे जो अन्न एकट्ठा होता है उससे उक्त संस्था पचासों विद्यार्थियोंको विद्या पढ़ाती हैं। तलेगांव (पूना) में जो कांचका कारखाना खोला गया है और जो बहुत अच्छी

तरहसे चल रहा है, उसका द्रव्य एक एक पैसा करके एकट्ठा किया गया है। इस फंडका नाम ही 'पैसा फंड' है। उसके मेम्बर जहां जाते हैं वहीं लोगोंसे एक एक पैसा मांगकर फंडमें भेज देते हैं। जनरल बूथकी मुक्तिफौजके प्रचारकोंको हमारे पाठकोंने देखा ही होगा कि वे किस तरहसे शहरके चौराहोंपर, स्टेशनोंपर तथा मेलोंमें खड़े होकर चन्दा एकत्र करते हैं। कई संस्थायें ऐसी हैं जिनके मेम्बर इस प्रकारकी प्रतिज्ञामें बद्ध होते हैं कि मैं हर महीने अपनी कमाईमेंसे रुपया पीछे एक पैसा या आधा पैसा अपनी संस्थाको दूंगा। विलायतोंमें तो सिखलाये हुए चतुर कुत्ते और बन्दर भी लाखों रुपया चन्दा एकत्र करते हैं! गरज़ यह कि यदि समाजके शिक्षित युवक इस कामके लिए तैयार हो जावेंगे तो वे ये तथा इसी प्रकारकी और भी बीसों युक्तियां निकालकर इस फंडको मालामाल बना देंगे। ऐसे युवक तैयार करनेके लिए कमेटी यदि एक डेप्यूटेशन निकालेगी और प्रत्येक शहरमें उसका दौरा कराके व्याख्यान दिलायगी तो अच्छी सफलता होगी। जिस समय समाजके युवक इस कामको करना विचार लेंगे, उस समय जैनियोंका कोई भी मेला, कोई भी उत्सव, कोई भी जमाव ऐसा न होगा जिसमेंसे इस फंडको सौ पचास रुपयेकी प्राप्ति सहज ही न हो जाय। युवको, अब काम करनेके दिन आ गये हैं महावीर भगवान्के इस पवित्र उपदेशको अपने हृदयमें धारण करो कि अज्ञानके कीचड़में फँसे हुए प्राणियोंपर दया करो, उनके हृदयमें ज्ञानका दीपक जलाओ और संसारमें अपने लिए नहीं किन्तु दूसरोंको लिए जीओ। जो दूसरोंके लिए जीता है, वही जीता है।

तीर्थपर्यटन।

पिछले वर्ष जब मैं मोरेना गया और वहांसे मुझे इटावा, करहल, देहली, सोनागिर, लश्कर आदि कई स्थानोंमें जानेका तथा धर्म और समाजसम्बन्धी बहुतसी महत्त्वकी बातें जाननेका अवसर मिला, तब मैंने समझा कि प्रत्येक शिक्षित पुरुषको और विशेष करके उसको जो कि किसी समाजकी सेवा करना चाहता है पर्यटन या भ्रमण करना बहुत आवश्यक है। इसके विना मनुष्यका ज्ञान बहुत ही अधूरा, धुँधला और वास्तविकतासे दूर रहता है। केवल पुस्तकोंसे, समाचारपत्रोंसे अथवा दूसरोंके द्वारा सुननेसे कोई किसी समाजका भीतरी हाल नहीं जान सकता। इसके लिए उसे यथाशक्य प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिए। इस प्रत्यक्ष परिचयका मूल्य बहुत बड़ा है। केवल इसीके प्रसादसे संसारके सैकड़ों पुरुष महान् विद्वानों और महात्माओंकी श्रेणीमें गिने गये हैं। पर्यटन और तीर्थयात्राका महत्त्व मैंने पहले भी बहुत सुना था; परन्तु उसकी सत्यताका वास्तविक परिचय मुझे पिछले वर्ष ही हुआ और तबसे मैं पर्यटनके लिए निरन्तर उत्कण्ठित रहने लगा।

मुझे बम्बई आये लगभग १० वर्ष बीत गये। गिरनार यहांसे बहुत दूर नहीं है, इसलिए मैं शुरूसे ही विचार करता आ रहा हूं के एक बार गिरनारकी पवित्र भूमिके दर्शन करूं; परन्तु प्रयत्न करनेपर भी ता० ८ मार्चके पहले तक मैं अपनी उक्त इच्छाको पूरी न कर सका। इन दश वर्षोंमें कष्टसाध्य बीमारीकी अवस्थाको छोड़कर मुझे स्मरण नहीं कि कभी एक सप्ताहके लिए भी मुझे अवकाश मिला हो। इस बीचमें बड़ी बड़ी आवश्यकताओंके

समयमें दश बीस बार बाहर भी गया हूं; परन्तु वहां भी मैं मेरे पीछे लिखने पढ़नेका बस्ता रहा है। जैनमित्र, जैनहितैषी और जैनग्रन्थ-रत्नाकरके पाक्षिक, मासिक और दैनिक सिपाहियोंने वहां भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ा है। ऐसी अवस्थामें पाठक सोच सकते हैं कि मेरी गिरनारयात्राकी इच्छा कैसे पूर्ण होती?

पिछले वर्षसे पहले मेरी उक्त इच्छा केवल धार्मिक भावसे थी। तीर्थभूमिके दर्शनसे पुण्योपार्ज़न होता है, तीर्थोंकी भूमिका एक एक रजःकण भी पूज्य है, दूसरे लोग तो हजारों कोससे तीर्थ-दर्शनके लिए आते हैं, तब मैं इतने समीप रहकर क्यों इस लाभसे वंचित रहूं; आदिके सिवा अन्य ज्ञानादि प्राप्त करनेकी भावनायें मेरे हृदयमें उस समय बहुत ही कम थीं; परन्तु अब उक्त भावोंके सिवा अपने अनुभवको बढ़ानेकी भावना भी प्रबल हो गई। मैं पर्यटनका अवसर ढूंढ़ने लगा। जैनहितैषीसे पूछा तो उत्तर मिला, अभी ठहरो। मेरे दो अंक पिछड़े हुए हैं, उन्हें बराबर कर दो तब जाना। जैनग्रन्थरत्नाकर और हिन्दीग्रन्थरत्नाकरने कहा, अभी तो आप किसी तरह नहीं ज़ा सकते। अमुक अमुक पुस्तकें प्रेसमें दी हुई हैं उनका संशोधन करना है, अमुक अमुक पुस्तकें अधूरी हैं उन्हें लिखकर पूरी करना हैं, हिसाबका काम भी पड़ा है, रुपयोंका इन्तजाम करना है इत्यादि इत्यादि। मैंने कहा, भाई, ये सब काम तो कभी पूरे होनेवाले ही नहीं है। जबतक जीऊंगा तबतक करूंगा। इस समय तो मुझे एक महीनेकी छुट्टी दे दो। मैं तुम्हारे लिए इस यात्रासे इतना साहित्य इकट्ठा करके लादूंगा कि तुम्हें मेरी यह छुट्टी कुछ भारी न मालूम पड़ेगी। इसके सिवा मैं आपने स्वास्थ्यको भी थोड़ा बहुत सुधार लूंगा तथा अपने

ज्ञानको भी बढ़ा लूंगा; जिससे तुम्हारी ही सेवा कुछ अधिकतासे कर-नेमें समर्थ हो सकूंगा। मेरी प्रार्थना मंजूर हुई और मैं यात्राके लिए तैयार हो गया।

करनाकबन्दरसे बाम्बे स्टीम नेवीगेशनकम्पनीके साबरमती नामक स्टमिरमें बैठकर हम लोग ता० ८ मार्चके ग्यारह बजे रवाना हो गये। बम्बईसे विरावल तकका थर्डक्लासका टिकट तीन रुपया और सेकिन्डक्लासका चार रुपया है। थर्डक्लासमें भीड़ बहुत रहती है. स्टमिरके अन्दोलनसे चक्कर भी अकसर लोगोंको आने लगते हैं—घबड़ाहट मालूम होती है, इसलिए हम लोगोंने सेकिन्डक्लासमें ही बैठना उचित समझा। इस दर्जेमें यद्यपि रेल गाड़ीके डिब्बों-सरीखी बैठकें नहीं होती हैं केवल खुली छत ही रहती है, तो भी स्थान खूब साफ, और हवादार रहता है। सवारियां भी इसमें बहुत ही कम रहती हैं। यहांसे स्टीमरका आन्दोलन एक तरहसे मालूम ही नहीं होता। यदि समुद्रकी ओर न देखा जाय तो ऐसा मालूम होता है कि स्टीमर बिलकुल स्थिर है। सामुद्रिक वायुका प्रवाह बड़ा ही सुखप्रद जान पड़ता है।

जहाज छूट गया। कुछ दूरतक तो बम्बईके गगनस्पर्शी मकान, कल कारखाने, मनुष्योंकी अपरिमित भीड़, बड़े बड़े जहाज, समु-द्रकी छातीपर इधर उधर दौडती हुई सैकड़ों नौकायें डोंगियां आदि दीखती रहीं; परन्तु पीछे नीचेकी ओर दृष्टि डालनेसे अगाध और विस्तीर्ण समुद्रके स्वच्छ नीलिमामय जल के और ऊपरको सिर उठा-नेसे अनन्त आकाशके सिवा और कुछ न दिखता था। स्टीमर एक ही ओरको, एक ही भावसे, एक ही गतिसे और एक ही सी शान्तिसे चला जाता था। जलकी विपुलता, लहरोंकी चपलता,

दूरीकी अधिकता और अनेक सामुद्रिक उपद्रवोंकी भयंकरता उसकी दृढ़प्रतिज्ञा, साहस, और धैर्यको ज़रा भी न डिगा सकती थी। वह एक सच्चे कर्मवीरके समान अपना कर्तव्यके सिवा दूसरी ओरको देखता भी न था।

स्टीमरके रचनाकौशलको, उसके चलानेवाले हजारों कल पुरजोंको, उसपर लदे हुए हजारों मन मालको और हजारों मनुष्योंको देखकर मनुष्यके बुद्धिवैभवपर बड़ा ही विस्मय और कुतूहल होता था। उस समय यह विचार भी उठता था कि एक दिन वह था जब भारतवासी जहाज़ बनानेकी विद्यामें सर्वश्रेष्ठ गिने जाते थे—हिन्दमहासागरमें और दूसरे समुद्रोंमें प्रायः उन्हींके बनाये हुए जहाज दिखलाई देते थे; परन्तु आज वह दिन है कि भारत इसके लिए केवल दूसरोंके मुंहकी ओर ताकता है। हमने अपने पूर्वजोंके साथ यही सुलूक किया कि जिन विद्याओंको और जिन कलाओंको उन्होंने हजारों वर्ष पहले अश्रान्त परिश्रम करके सिद्ध की थीं उन्हें भी हमने भुला दीं या पहलेसे एक इंच भी आगे न बढ़ाईं और यूरोपादि देशके निवासियोंने अपने निरन्तरके उद्योग और परिश्रमसे आपको सभ्यताके शिखरपर आरूढ़ कर दिया। कहां तो उनका एक दिन वह था कि वे निरे जंगली लोगोंके समान थे और कहां आजका दिन है कि उन्होंने अपनी आश्चर्यकारिणी विद्यासे संसारको विस्मित कर दिया है। वह दिन बहुत ही समीप आ गया है कि जब इन जलयानोंके समान आकाशयानों या विमानोंमें भी हम लोग जहां तहां यात्रा करते फिरेंगे। दूसरे देशोंमें तो इस प्रकारकी यात्रायें होने भी लगी हैं।

आजका सारा दिन समुद्रका मनोरम दृश्य देखते देखते ही बीत गया। रेलकी मुसाफिरीमें जितना कष्ट मिलता है उतना ही

इस सवारीमें आनन्द मिला। जीवनमें ऐसे सुन्दर दिन बहुत ही कम आते हैं।

सूर्य अस्त होनेका समय आया। उसकी अन्त समयकी आभा समुद्रकी तरंगोंपर पड़कर एक विलक्षण ही शोभाकी सृष्टि कर रही थी। कुछ देरमें चारों ओरसे अन्धकार सिमट सिमट कर आने लगा। आकाशमें अगणित तारागण दिखलाई देने लगे। वायु कुछ अधिक शीतल होने लगी। उसकी गति भी कुछ तेज हो चली। यात्री शीतसे बचनेके लिए कपड़ोंका इन्तज़ाम करने लगे। कुछ समय पीछे निद्रादेवीकी कृपासे उनका कोलाहल बन्द हो गया। उस समय एकमात्र एंजिनकी कर्कश ध्वनि ही स्पष्टतासे सुनाई पड़ने लगी। लगभग ग्यारह बजे रातको उस स्तब्ध निशामें छतके छोरपर पड़ी हुई एक कुरसीपर बैठकर मैं समुद्रकी ओर देखने लगा। मेरे मनमें तरह तरहके विचार उठने लगे। मैं सोचने लगा जैनसमाजकी उन्नतिका मार्ग क्या इस सामुद्रिक मार्गसे भी अधिक दुर्गम या दुस्तर है? यदि नहीं तो फिर इसके इष्ट स्थानपर पहुंचनेमें क्यों शंकायें की जाती हैं? शिक्षितोंमें निराशा क्यों छाई हुई है? वे निश्चल और निश्चेष्ट क्यों हो रहे हैं? जो लोग कुछ कर रहे हैं वे जरासी आंधीके झोकेको भी बड़ा भारी तूफान समझकर क्यों घबड़ा जाते हैं? इस इतने बड़े जहाज़को तो देखो, केवल एक ही नेता अपने कमरेमें बैठा हुआ दिशासूचक आदि दो चार यंत्रोंकी सहायतासे कैसी सावधानी, निश्चिन्तता और धीरज़से चला रहा है। उक्त सब प्रश्नोंका उत्तर मुझे उस समय मिला जब मेरा ध्यान जहाज़की ओर गया। वह उत्तर यह था कि जहाजके सारे कर्मचारी, सारे कल पुरजे, अपनी

सारी शक्तियोंको सम्मिलित करके, एक ही उद्देश्यकी सिद्धिमें, सबका एक ही स्वार्थ समझके, विना विश्राम लिए, अदम्य उत्साह, साहस और विश्वाससे काम कर रहे हैं। उनके पास किनारे तक पहुंचनेका सारा सामान है, आंधी तूफानसे बचनेके उपाय हैं और अपने कर्तव्यको पालन करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा है। जैनसमाजमें इन सब बातोंकी कमी है। इसीलिए उसे अपना मार्ग दुर्गम मालूम होता है। इसी तरह और भी अनेक प्रकारके विचार करते करते मुझे निद्रा आगई और मैं बिछौनेपर आकर सो गया।

दूसरे दिन सबेरे ८॥ बजेके लगभग बिरावलके पास जहाज खड़ा हो गया। यहांसे किनारा १॥ मीलके करीब था। पानी उथला होनेसे स्टीमर आगे नहीं जा सकता। किनारेसे बहुतसी डोंगियां माल और मुसाफिरोंके उतारनेके लिए आ गई। वे बहुत ही हलके किस्मकी और गंदी थीं। उतरते समय भीड़ अधिक होनेसे और अशिक्षित लोगोंकी व्यर्थकी उतावलीसे बहुत तकलीफ हुई। खैर, किसी तरह सामानसहित हम लोग डोंगियोंपर सवार हो गये। कोई २२ घंटे स्टीमरमें बैठकर हमने उससे अन्तिम बिदाई ली। डोंगियां खूब ही हिलती डुलती तथा ऊपर नीचे होती हैं। बड़ी घबड़ाहट मालूम होती है। दुर्बल मनुष्योंको तो चक्कर आने लगते और कै तक होने लगती है। डोंगियोंसे उतरकर और उसका फी आदमी एक आना महसूल देकर हम लोग किनारे आये। वहां कस्टम डयूटीके कर्मचारी आ गये। उन्होंने पहले सामान देखा फिर प्रत्येक आदमीका नाम, आनेका कारण, कहांसे आये, कहां जाओगे आदि लिखकर और फी आदमी चार आना टैक्स लेकर जानेकी आज्ञा दे दी। विरावल शहर छोटासा परन्तु सुन्दर

और समृद्ध है। यह जूनागढ़के नव्वाबके अधिकारमें है। इच्छा तो थी कि शहर देखें; परन्तु रेलका वक्त बिलकुल करीब था इस लिए इच्छाको रोकनी पड़ी। तांगेमें बैठकर हम लोग धर्मशालामें पहुंचे और जल्दी जल्दी शौच स्नानादिसे छुट्टी पाकर और जो कुछ साथमें था उसे खाकर रेलवे स्टेशनपर जा पहुंचे। धर्मशालामें एक ब्राह्मणकी भोजनशाला है। उन लोगोंके लिए जो ब्राह्मणके हाथका भोजन कर सकते हैं, उसमें सब प्रकारके भोजनका प्रबन्ध रहता है। धर्मशालासे रेलवे स्टेशन बिलकुल समीप है। जूनागढ़का टिकट लेकर हम लोग गाड़ीमें सवार हो गये। विरावलसे जूनागढ़का थर्डक्लासका किराया तेरह आने है। ११। बजे गाड़ी छूट गई।

मार्गमें मेरा 'प्रणामी' मतके ४—५ उपदेशकोंसे परिचय हुआ। इस मतका दूसरा नाम निजानन्दीय सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायके प्रवर्तक देवचन्दजी अभी कुछ ही समय पहले हो गये हैं। पन्ना (बुंदेलखंड), जामनगर (काठियावाड़) और कमाल्या (पंजाब) आदि पांच सात नगर इस मतके मुख्य स्थान हैं। यह सम्प्रदाय कबीर पंथके ढँगका है। इसमें जातिभेद नहीं माना जाता, तो भी यह कबीर पंथ जैसा उदार नहीं है। ईश्वरका अवतार लेना और मूर्तिपूजन करना भी यह स्वीकार नहीं करता। इसके विचारमें वेद स्वतः प्रमाण हैं और दूसरे ग्रन्थ वेदानुकूल होनेसे परतः प्रमाण। ईश्वर या ब्रह्म इसके खयालमें सच्चिदानन्द, शुद्ध, साकार, किशोर, दिव्यस्वरूप, अनन्तसलीलाद्वैत, लीलामय है। उपदेशक महाशयोंमें जो दो पुरुष प्रधान थे, उनमें एक तो युक्तप्रदेशके ब्राह्मण पंडित थे और दूसरे पंजाबी। वार्तालापसे मालूम हुआ कि ये

अपने मतका प्रचार करनेके लिए निकले हैं। इनका विश्वास था कि बहुत ही जल्दी हमारा धर्म राष्ट्रधर्म बन सकता है। गुजरात प्रान्त धर्मभोला बहुत है। यहां सब प्रकारके धर्मोंको सहज ही स्थान मिल जाता है। यही कारण है कि यहां अब भी नये नये सम्प्रदाय और धर्म बनते रहते हैं। मैंने कहा, आपको इस प्रान्तकी दशाका अच्छा परिज्ञान है, इसी लिए आपने यहां पधारनेकी कृपा की है। आपका उद्योग यहां जरूर सफल होगा। कुछ भक्त-जन इन्हें गाड़ीमें ही मिल गये थे। ये उन्हें वेद, गीता, भागवत आदिके प्रमाण दे देकर अपने मतकी सत्यता स्थापित कर रहे थे। मैंने भी थोड़े बहुत प्रश्न किये; परन्तु उनका कोई संतोषजनक उत्तर न मिला।

कोई २॥ बजे गाड़ी जूनागढ़ स्टेशनपर, जा खड़ी हुई। यहांसे हम एक रुपयामें एक तांगा करके गिरनारजीकी तलहटीमें ४ बजेके लगभग पहुंच गये।

गिरनारकी तलहटी।

तलहटीमें एक श्वेताम्बरी और एक दिगम्बरी इस तरह जैनियोंकी दो धर्मशालायें हैं। दिगम्बरी धर्मशालामें लगभग १००० आदमी ठहर सकते हैं। श्वेताम्बरी धर्मशाला उससे कुछ छोटी है। दिगम्बरी धर्मशालाके कम्पाउण्डके भीतर दो और श्वेताम्बरी धर्मशालामें एक जिनमन्दिर है। दिगम्बरी धर्मशालामें इन्तजामके लिए एक पुजारी और एक चपरासी है। मुनीम रूपचन्दजी हैं, वे जूनागढ़की धर्मशालामें रहते हैं। जब यात्री जियादा आते हैं, तब अकसर तलहटीमें आजाया करते हैं। इस तीर्थका प्रबन्ध करनेवाली एक कमेटी है जिसका प्रधान कार्यालय प्रतावगढ़ (मालवा)में है। इसको स्थापित हुए

अभी थोड़े ही दिन हुए हैं—पहले सेठ बंडीलालजीके कुटुम्बी यहांका इन्तजाम करते थे। कमेटीमें सबसे अधिक मेम्बर प्रतापगढ़के हैं और उनको प्रधानता भी विशेष दी गई है। कोठीका नाम भी सेठ बंडीलालजी दि० जैन कोठी है।* दिगम्बरियोंकी यह कोठी, धर्मशाला आदि सब उक्त बंडीजीके ही प्रयत्नके फल हैं, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु उनके कुटुम्बी उनके इन धर्मबुद्धिसे किये हुए कार्योंको क्या यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उन्होंने अपने नामके लिए किये थे? या उन्होंने इस कोठीको अपनी निजकी चीज बनानेके लिए स्थापित की थी? उन्होंने तो अपने जीते जी कारखानेके साथ अपना नाम भी न जुड़वाया था। वे समझते थे कि यह कोठी मेरी नहीं सारे दिगम्बरियोंकी है। अफसोस कि प्रतापगढ़वाले कमेटी बनाकर भी इस ममत्वको नहीं भुला सकते हैं कि यह कोठी हमारी है। कोठीकी अन्तर्व्यवस्था कैसी है, इसपर मुझे कुछ लिखनेका अधिकार नहीं। क्योंकि यह बात केवल जमाखर्चकी बहियोंको देखकर नहीं बतलाई जा सकती। प्रबन्ध साधारणतया अच्छा है; परन्तु धर्मशालाकी सफाईपर बिलकुल ही लक्ष्य नहीं दिया जाता। इतनी गन्दगी मैंने कहीं भी नहीं देखी। धर्मशालाके चारों तरफ इतना मैला पड़ा हुआ था कि पैर रखनेको भी जगह न थी।

कोठीमें लगभग छह हजार रुपया सालकी आमदनी और ढाई तीन हजार रुपया सालका खर्च बतलाया गया। यदि प्रबन्धकर्ता महाशय चाहें तो इस बचतसे जैनधर्मका बहुत कुछ उपकार हो सकता है। श्वेताम्बरी कोठीके बही खाते देखनेसे मालूम हुआ कि उसके प्रबन्धकर्त्ताओंने एक 'पाठशाला फंड' खोल रक्खा

है और उसमें इतनी आमदनी हो जाती है कि उससे जूनागढ़में एक पाठशालाका खर्च चल रहा है। दिगम्बरी कोठीके मुनीमजीसे मैंने इस विषयमें प्रेरणा की, परंतु उनकी समझमें यह बात अच्छी तरहसे न आई। तीर्थोंपर अकसर ऐसे ही मुनीम रक्खे जाते हैं जो अपना कर्तव्य सिवा इसके और कुछ नहीं समझते कि यात्रियोंके गले पड़कर उनसे भंडारमें अधिक रुपया लेवें और उपकरणोंकी, नई धर्मशालाओंकी, कुआ खुदवानेकी तथा इसी तरहकी और भी जरूरतें बतलावें। संसारमें क्या हो रहा है और अब समय कौनसा आ गया, इससे वे बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं। यदि ये लोग सुशिक्षित होवें, तो इनके द्वारा जैन समाजका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है।

ता० ९ को हम गिरनारजी पहुंचे। एक दिन विश्राम करके ता० ११ के सबेरे चार बजनेके पहले ही हम बन्दना करनेके लिए चल दिये। धर्मशालासे कोई सौ कदमके फासलेपर पर्वतपर चढ़नेका द्वार है। यहां अँगरेजी और गुजरातीके दो शिलालेख लगे हुए हैं। उनसे मालूम होता है कि जूनागढ़के भूतपूर्व दीवान बेहचरदास बिहारीलाल, उनके भाई, और डाक्टर त्रिभुवनदास मोतीचंद शाहके उद्योगसे 'जूनागढ़ लाटरी' खोली गई और उसमें जो रुपया एकत्र हुआ, उसमेंसे १॥ लाख रुपयोंकी लागतसे काले पत्थरकी मजबूत सीढ़ियां गिरनारजी पर्वतकी चारों टोकों तक बनवाई गईं। यह लेख पढ़कर मैंने उक्त महाशयोंको धन्यवाद दिया और साथ ही जैनियोंकी अकर्मण्यतापर खेद किया। वास्तवमें यह काम श्वेताम्बरी और दिगम्बरी कोठियोंका था जो यात्रियोंसे लाखों रुपया वसूल किया करती हैं; परन्तु उनसे कुछ न हुआ

और दूसरे लोगोंने यात्रियोंके आरामका खयाल करके यह पुण्य-कर्म सम्पादन कर दिया। संतोषकी बात है कि उक्त महापुरुषोंमें एक डाक्टर त्रिभुवनदासजी श्वेताम्बर जैनी थे।

गिरनार-पर्वत।

इस द्वारसे ही पर्वतपर चढ़नेकी सीढ़ियां शुरू होती हैं। गिरनारका एक नाम **उर्जयन्तिगिरि** भी है। कई ग्रन्थकारोंने **रैवतक** नामसे भी इसका उल्लेख किया है। नेमिदूत काव्यके कर्त्ताने इसे **रामगिरि** बतलाया है। बहुत प्राचीनकालसे यह पर्वत अपनी पवित्रताके लिए प्रसिद्ध है। अशोकके शिलालेखोंसे कम सेकम २२०० वर्ष पहलेका तो ऐतिहासिक सुबूत ही मिलता है। यद्यपि हम इसे केवल जैनियोंका ही तीर्थ समझते हैं; परन्तु दिगम्बरी श्वेताम्बरी जैनियोंके सिवा यह शैव, वैष्णव, शाक्त आदि हिन्दुओंका और मुसलमानोंका भी पूज्य स्थान है। प्रत्येक सम्प्रदायमें इस तीर्थके बड़े बड़े माहात्म्य प्रसिद्ध हैं। जैनी मानते हैं कि यहांसे बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान् और दूसरे करोड़ों मुनि मोक्षको प्राप्त हुए हैं और अनेक तीर्थंकरोंकी यहां समवसरणसभायें हुई हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें 'गिरनारमाहात्म्य' नामका अच्छा एक संस्कृत ग्रन्थ है। हिन्दुओंके स्कन्दपुराणके प्रभासखंडमें भी गिरनारका बहुत ही बड़ा माहात्म्य वर्णन किया है। यहांके एक एक कुंडमें स्नान करनेसे अथवा मन्दिरोंके दर्शन करनेसे ही बड़े बड़े पाप क्षय हो जाते हैं और स्वर्गादि सुखोंकी प्राप्ति होती है।

गिरनार पर्वतकी ऊंचाई ३,६६६ फीट है। अपनी ऊंचाईके कारण यह बहुत दूर दूरके स्थानोंसे दिखलाई देता है। जिस समय आकाश स्वच्छ होता है, उस समय शत्रुंजय या सिद्धाचल

पर्वतपरसे भी इसके दर्शन होते हैं। इसके दाहिनी ओर जो पर्वत है उसकी ऊंचाई २७७९ फीट है। वह मदारपीरका पर्वत कहलाता है। मुसलमान भाइयोंका वह बहुत ही पवित्र पर्वत है। बायीं ओरको भी एक ऊंचा पर्वत है। इन दोके सिवा दो पर्वत और भी हैं। इस तरह यह चार पर्वतों और चार नदियोंसे घिरकर विलक्षण शोभा धारण कर रहा है।

पर्वतपर चढ़नेका प्रत्येक परदेशी यात्रीको एक आनेका और देशीको आधा आनेका टिकट लेना पड़ता है। जूनागढ़ राज्यकी ओरसे यह कर बिठाया गया है। यहां डोलियां भी मिलती हैं। एक डोलीका किराया साढ़ेपांच रुपया देना पड़ता है। डोलीवालोंपर भी राज्यका टैक्स है। और भी यहांपर कई प्रकारके टैक्स लगाये गये हैं जिससे इस पर्वतसे जूनागढ़ राज्यको खासी आमदनी होती है।

लगभग तीन हजारसे अधिक सीढ़ियां चढ़नेपर इस पर्वतकी पहली टोंक मिलती है। यहांपर एक धर्मशाला दिगम्बरियोंकी और एक श्वेताम्बरियोंकी है। दिगम्बरियोंमें शायद ही कोई यात्री ऐसा होता हो, जो यहां ठहरता हो। इस खयालसे कि यहां रहनेसे—मलमूत्रादि क्षेपण करनेसे पवित्र पर्वतका अविनय होगा—वे तलहटीकी धर्मशालामें ही ठहरते हैं; परन्तु श्वेताम्बरी यात्री बहुत करके यहीं आकर ठहरते हैं। इससे उन्हें बन्दना करनेमें बहुत सुभीता पड़ता है—एकदम थकावट नहीं होती। तलहटीसे एकदम बन्दना करनेको आनेवाले तो लौटकर पहुंचते पहुंचते इतने थक जाते हैं कि फिर उनसे उठते भी नहीं बनता।

इस पहली टोंकपर ही जैनियोंके मुख्य मुख्य मन्दिर हैं। अन्य टोकोंपर या तो चरण हैं या छोटी छोटी देवलियां। अधिक मन्दिर श्वेताम्बर सम्प्रदायके हैं। उनकी संख्या २२ है। इनमेंसे कोई १८ मन्दिर एक बड़े भारी कोटके भीतर घिरे हुए हैं। ये मन्दिर कई समूहोंमें विभक्त हैं और उनके एक एक समूहको टोंक कहते हैं। मानसींग भोजराजकी टोंक पहले आती है। इसकी मरम्मत उक्त नामके सेठजीने संवत् १९३२ में कराई थी। दूसरी टोंक नेमिनाथस्वामीकी है। इसमें कई मन्दिर हैं। एक शिलालेखसे जो चैत्रसुदी ७ सं० ११५९ का लिखा हुआ है मालूम होता है कि यदुवंशके मंडलीक नामके राजाने नेमिनाथका मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर बहुत विशाल है। सब मिलाकर २१८ प्रतिमायें इसमें स्थापित हैं। इसमें कई शिलालेख हैं। एक शिलालेखमें लिखा है कि संवत् ६०९ में रत्नशाह श्रावकने नेमिनाथके देवालयका उद्धार कराया। इससे मालूम होता है कि उक्त मंदिरके स्थानमें पहले और भी कोई प्राचीन मंदिर था। इसके सिवा ११५३, ११३९, १२७८, १३३३, १३३९ और १३२९ के पांच छह लेख और भी हैं। तीसरी टोंक मेरकवंशीकी कहलाती है। इसकी कारीगरी दर्शनीय है। इसमें भी कई मंदिर शामिल हैं। एक मंदिर संवत् १८५९ का बना हुआ है। मंदिरोंका चौथा समूह सगराम सोनीकी टोंक कहलाता है। सगराम सोनी बादशाह अकबरके समयमें पाटणमें हो गये हैं। संवत् १८४३ के लगभग सेठ प्रेमाभाई हेमाभाईने इन मन्दिरोंकी मरम्मत कराई थी। इसके आगे कुमारपालकी टोंक है। कुमारपाल गुजरातके एक प्रसिद्ध राजा हो

गये हैं। जैनधर्मपर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। उनके प्रयत्नसे उस समय जैनधर्मकी बड़ी भारी प्रभावना हुई थी। प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र इन्हींके गुरु थे। उनके समयमें जैनसाहित्यने भी बहुत उन्नत की थी। कहते हैं कि उक्त महाराजने जैन-ग्रन्थोंकी नकल करानेके लिए सात सौ लेखक नौकर रख छोड़े थे। केवल हेमचन्द्रसूरिके ही बनाये हुए ग्रन्थोंकी उन्होंने इक्कीस इक्कीस नकलें कराके जुदा जुदा भंडारोंमें स्थापित कराई थीं। महाराज कुमारपालने वि० संवत् १२०० से १२३१ तक राज्य किया है। यह 'अभिनन्दन जिन'का मंदिर उन्हींका बनवाया हुआ है। लगभग १०० वर्ष पहले इसका जीर्णोद्धार सेठ धरमसी हेमचन्दने करवाया था। इस मंदिरके बाहर भीमकुंडके पूर्वमें बहुतसी प्राचीन खंडित प्रतिमायें पड़ी हैं। इसके बाद वस्तुपाल तेजपालजीकी टोंक है। इसमें तीन मन्दिर हैं। इनका जीर्णोद्धार संवत् १९३२ में नरसी केशवजी नामके सेठका करवाया हुआ है। वस्तुपाल और तेजपाल भाई भाई थे। ये धोलकाके सुप्रसिद्ध राजा वीरधवलके मंत्री थे। ये बड़े ही बुद्धिमान् और शूरवीर थे। इनकी सहायतासे वीरधवलके राज्यका बहुत विस्तार हुआ था। सारा सौराष्ट्र और गुजरात उसके अधिकारमें आ गया था। महाराष्ट्र देश तकके राजा उसके करद हो गये थे। वस्तुपाल और तेजपाल पोरबाड़ जैनी थे। उन्होंने धर्मके कार्योंमें जो द्रव्य व्यय किया था उसे इतिहासोंमें पढ़कर आश्चर्य होता है। १३०० नवीन जैनमंदिर, लगभग एक लाख जिन प्रतिमायें, ८४ तालाब, ४६४ वापिकायें, ९०० कुए, ४०० प्रपायें, (प्याऊ) ७०० धर्मशालायें, और ९८४ औषधशालायें उनकी

बनवाई हुई कही जाती हैं। ज्ञानभंडारमें उन्होंने ३६ लाख रुपये खर्च किये थे और ३,२०२ मंन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया था। राजनीतिके खयालसे दूसरे धर्मोंपर भी उनकी कृपा-दृष्टि रहती थी। पाठक सुनकर आश्चर्य करेंगे कि उन्होंने हजारों शिवमन्दिरों और सैकड़ों मसजिदोंके बनवानेमें भी अगणित रुपये खर्च किये थे। वस्तुपालकी मृत्यु संवत् १२९८ में और तेजपालकी १३०८ में हुई थी। इन मन्दिरोंमें पीले रंगका और सलीका बढ़ियां पत्थर काममें लाया गया है। कहते हैं यह पत्थर वस्तुपालने भारतवर्षके बाहरसे मँगाया था। इन तीनों मन्दिरोंके मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। एक मन्दिरकी प्रतिमा वि० संवत् १३०६ की प्रतिष्ठित है। वह श्रीमाल वैश्य बाहड़ (वाग्भट) की बनवाई हुई है। दाहिनी ओरके मंदिरमें तीन प्रतिमायें पार्श्वनाथकी संवत् १५५६ कीं और एक चन्द्र-प्रभकी १४८९ की है। बाईं ओरके मंदिरके पीछे वस्तुपाल तेज-पालकी माताका मन्दिर है। उसमें जो पार्श्वनाथकी प्रतिमा है वह श्रीमालज्ञातीय **बाहड़** और महामात्य **सलखणसिंह**की बन-वाई हुई और देवसूरिके शिष्य **श्रीजयानन्द**की प्रतिष्ठा करवाई हुई है। प्रतिष्ठाका समय वैशाखसुदी ३ संवत् १३०५ है। इसके बाद संप्रति राजाकी टोंक है। इसमें एक प्रतिमा संवत् १५०९ की और एक १५२३ की है। इसके पहलेका कोई लेख इसमें नहीं मिलता। जेम्स बर्जिस साहबने जिस समय इस मंदिरका निरीक्षण किया था, उस समय उन्होंने इसमें नेमिनाथकी एक काले रंगकी प्रतिमा १४६१ संवत्की प्रतिष्ठा कराई हुई देखी थी और संवत् १२१५ का एक लेख भी पढ़ा

था । श्रीहेमचन्द्रसूरिके परिशिष्टपर्वसे मालूम होता है कि संप्रातिराजा सुप्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा अशोकका पुत्र था। श्रेणिक–कुणिक–उदयन–नवनन्द–मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त–बिन्दुसार–अशोक–संप्रति, इस तरह महावीर भगवानके पीछेकी राजपरम्परा है। सम्प्रति महावीर भगवान्‌के निर्वाणके ३००वर्ष पीछे सिंहासनपर बैठा था। इसने आर्य सुहस्तिगिरिके उपदेशसे जैनधर्म ग्रहण किया था। इसके द्वारा जैनधर्मकी बहुत उन्नति हुई थी। कहते हैं कि इसने सवा लाख जैन मन्दिर बनवाये थे! उक्त मन्दिर इसी सम्प्रति राजाका कहलाता है; परन्तु वर्तमानमें इस बातका कोई चिन्ह नहीं मिलता है। इन सब मंदिरोंके सिवा और भी कई साधारण मंदिर हैं।

एक जगह कुछ गहराईमें राजुलकी गुफा है। उसके भीतर राजीमतीकी एक खड़ी मूर्ति सफेद पत्थरकी है। जब मैं इसे देखनेके लिये गया, तब कई श्राविकाओंके मुंहसे यह सुना कि राजीमती यहां तपस्या करते करते पाषाणकी हो गई थीं। मैंने अपने साथियोंसे कहा–जैनधर्मकी तपस्याका रहस्य आजकलकी श्राविकायें बहुत अच्छी तरहसे जानती हैं!

दिगम्बरी मन्दिरोंमेंसे एक तो प्रतापगढ़के बंडीजीका संवत् १९१५ का बनवाया हुआ है और दूसरा लगभग इसी समयका शोलापुरवालोंका बनवाया हुआ है। पहले मन्दिरमें शान्तिनाथकी एक मूर्ति संवत् १६६५ की प्रतिष्ठा की हुई है और एक सुप्रसिद्ध बिम्बप्रतिष्ठापक जीवराज पापड़ीवालकी संवत् १७४५ की है। जीवराज पापडीवालकी प्रतिमायें भारतवर्षके प्रायः सब ही भागोंके जैनमन्दिरोंमें देखी जाती हैं। दूसरे मन्दिरमें भी एक नेमिनाथकी प्रतिमा जीवराज पापड़ीवालकी है। [अपूर्ण।]

चटपटे समाचार ।

(१)

खबर है कि रायबहादुर सेठ मेवारामजी जैनियोंकी ओरसे लेजिस्लेटिव कौंसिलके मेम्बर चुने गये हैं और वे बहुत जल्दी इस प्रकारका बिल पेश करनेवाले हैं कि जैनसमाज़ भारतवर्षका, एक बहुत पुराना और कौतुकावह समाज है—वर्तमान समयके लिए वह एक प्रदर्शनीय और शिक्षणीय वस्तु है । इसलिए जिस तरह गवर्नमेंट भारतवर्षकी दूसरी प्राचीन वस्तुओंको यथापूर्व अवस्थामें रखनेका प्रबन्ध करती है, उसी तरह इसका भी करे । इसमें किसी प्रकारका परिवर्तन, संशोधन, सुधार, संस्कार या रूपान्तर होना उचित नहीं । सरकारको एक कानून इस प्रकारका बना देना चाहिए जिससे इस समाजमें बाहरसे या भीतरसे न तो किसी प्रकारका परिवर्तन घुसने पावे और न दूसरे प्रगतिशील समाजोंकी इसपर छाया ही पड़ने पावे । इसके सिवा संसारके खास खास म्यूजियमोंमें इस समाजके चुने हुए पंडित, सेठ और उनके अनुयायियोंके रक्खे जानेकी व्यवस्था भी की ज़ाय । एवमस्तु ।

(२)

जैनियोंकी मनुष्यसंख्या कम हो रही है। इसकी सबसे अधिक चिन्ता पत्रसम्पादकोंको है । इसलिए उन्होंने इसे बढ़ानेकी एक बिलकुल नई युक्ति निकाली है। जैनतत्त्वप्रकाशके सम्पादक महाशयने एक स्थानमें लिखा है कि दिगम्बरियोंकी संख्या ८ लाख है, जैनहितेच्छुके सम्पादक महाशय लिखते हैं स्थानकवासियोंकी संख्या ९ लाख है और श्वेताम्बरी पत्र-सम्पादक तो अपनी संख्या सात लाखसे कम कभी बतलाते ही नहीं । इस

तरह सबका जोड़ २० लाख हो जाता है और सहज ही सात लाखकी वृद्धि हो जाती है।

(३)

खंडेलवाल जातिके अविवाहित पुरुषोंने मिलकर एक सभा स्थापित की है जिसके सेक्रेटरी सत्यवादीके सम्पादक पं० उदयलालजी चुने गये हैं। इस सभाके मेम्बरोंने अभी उस दिन एकत्र होकर कार्यके प्रारंभमें भगवानके सामने खड़े होकर यह प्रार्थना की थी कि "हे भगवन्, आपकी भक्तिके प्रसादसे हम ऐसे शुभकर्मोंका बन्ध करें जिससे कि आगामी जन्ममें हम इस जातिमें अथवा ऐसी ही और किसी जातिमें उत्पन्न न हों जिसमें कि बूढ़े विधुरों (रँडुओं) से भी कुँवारे युवकोंकी संख्या अधिक हो और जिसमें सारे जीवन भर कमाई करनेपर भी विवाहके योग्य रुपया एकत्र नहीं हो सकते। जैनियोंकी और भी तो कई जातियां हैं जिनमें सौ सौ पचास पचास रुपयोंमें ही विवाह हो जाते हैं। क्या हमें इन जातियोंमें जन्म नहीं मिल सकता? दयासिन्धो, इस मालदार जातिकी अपेक्षा हमें कंगाल जातियां ही अच्छी जान पड़ती हैं—हमें उन्हींमें जन्म दीजिए।" मेरी समझमें यदि ये युवक बंगालके कुलीन ब्राह्मणोंके या युक्तप्रान्तके कान्यकुब्जोंके घरोंमें जन्म लेनेकी प्रार्थना करते तो अधिक मुनाफेमें रहते। वहां 'कंचन' और 'कामिनी' दोनोंकी प्राप्ति एक साथ होती। और यदि इन्हें जैनकुलसे ही प्रेम है तो फिर खंडेलवाल सेठ ही क्यों नहीं बनना चाहते जिनके विवाह साठ सत्तर और अस्सी तक भी हो जाते हैं? दूसरी कंगाल जातियोंमें क्यों जन्म लेना चाहते हैं?

(४)

जैनसमाजको 'महा' शब्दसे बेहद प्रेम है। ज्यों ही वे अपनी कोई संस्था खोलना चाहते हैं त्यों ही उन्हें इस विशेषणकी याद आ जाती है। बस, यह यादगीरी उन्हें बेचैन कर डालती है और जब तक वे उसे अपनी संस्थाके साथ जोड़ नहीं देते, तब तक अपने जोशको किसी तरह दबा ही नहीं सकते। पर यह शब्द इतना भारी है कि इसके नीचे उनका सारा जोश और सारा उत्साह दब जाता है। एक ज्योतिषीजीने मुझसे कहा कि जैनियोंके लिए इस शब्दपर शनिग्रह पड़ा हुआ है, इसलिये उन्हें इससे बचना चाहिए। मैं बड़ा चकराया। क्या शब्दोंपर भी ग्रह रहते हैं? एकान्तमें बैठकर सोचा तो मालूम हुआ ज्योतिषीजीका कहना बिलकुल बे सिरपैरका नहीं है। दिगम्बर **जैनमहासभाके** 'महा' शब्दने आजतक उसे कभी उठने ही न दिया—बेचारीकी सारी जिन्दगी फजीहतहीमें बीती। बम्बईका **संस्कृत महाविद्यालय** इस महान् पत्थरसे बिलकुल ही पिचल गया। **मथुराका महाविद्यालय** बड़े आदमियोंके खेलनेकी फुटबाल बन रहा है। इधरसे लात लगी कि उधर पहुंचा और उधरसे लगी कि इधर आया! जयपुरकी **महापाठशालाके** बहुत दिनोंसे समाचार नहीं मिले, पर हालत उसकी भी अच्छी नहीं! **भारतजैनमहामंडलके** कमंडलकी टोंटीमेंसे कभी कभी वर्ष छह महीनेमें प्रस्तावोंकी या एक दो ट्रेक्टोंकी धारायें अलबत्तह दिख जाती हैं—नहीं तो बस, बम् बम्! **खंडेलवाल महासभाके** फुट भरके नामके दर्शन महीने दो महीनेमें सत्यवादीकी कृपासे हो जाते हैं पर काम क्या होता है यह भगवान् ही जानें। इन पांच उदाहरणोंसे

यदि पाठकोंको सन्तोष न हो, तो लीजिए मैं एक बिलकुल ताजा गरमागरम उदाहरण भी दे सकता हूं। अभी कुछ महीने पहले बम्बईमें बड़े भारी गर्जन तर्जन आस्फालन और वाक्यवर्षणके साथ दिगम्बर जैन महामण्डलकी स्थापना हुई थी और उसके द्वारा जैनभानुके प्रकाशित करनेकी उछलकूद मचाई गई थी। मैं तो पहले ही जानता था कि ये अकालके मेघ बरसनेवाले नहीं हैं; परन्तु जैनहितैषी, सत्यवादी और जैनमित्रकी बड़ी बड़ी आशाओंका घात करना निर्दयताका काम है, ऐसा समझकर मैं चुप हो गया। अब देखता हूं कि 'महाग्रह' अपना काम कर चुका है। मंडलके मंत्री लाला अजितप्रसादजी सूचित करते हैं कि अब बहुत जल्दी उसके कागजोंका बंडल बड़े अफसोसके साथ गोमतीमें प्रवाह कर दिया जायगा। आशा है कि इस महन्माहात्म्यको पढ़कर हमारे जैनी भाई आगे इसके मोहमें न पड़ेंगे और झूठे नामके पीछे न पड़कर काम कर दिखानेकी ओर अधिक लक्ष्य रक्खेंगे।

(५)

अमेरिकामें शीघ्र ही एक सम्पादक महासभा होनेवाली है। उसमें और देशोंके समान भारतके कई पत्रसम्पादकोंको भी निमन्त्रण दिया गया है और सुनते हैं कि 'सर्वगुणसम्पन्न' जैनगजटके सम्पादक महाशयसे अपने सहकारी सम्पादक सहित आनेके लिए विशेष आग्रह किया गया है। श्रीमान् पं० प्यारेलालजी और श्रीलालजीने सम्पादकमहाशयको सम्मति दी है कि अमेरिकामें आपका व्याख्यान 'स्वाध्याय करनेकी प्रतिज्ञा कराने' के विषयमें होना चाहिए।

(६)

जैनसमाजके सुपरिचित पं० दुर्गादत्तजी आजकल बम्बईको पवित्र कर रहे हैं। संभवतः इस समय आप श्वेताम्बराचार्य श्रीविजय-

धर्मसूरिजीके शिष्य हैं। परन्तु सुनते हैं कि बहुत ही जल्दी आप किसी दूसरे धर्मकी दीक्षा लेनेवाले हैं। आप बहुत दयालु हैं। इस समय प्रत्येक धर्मके लोग इसलिए तरस रहे हैं कि कोई दूसरे धर्मका हममें आकर मिले और आप उनकी इस तरसको मिटाना अपना कर्तव्य समझ रहे हैं। अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ है कि आप किस सम्प्रदाय या मतपर कृपा करनेवाले हैं। मेरी समझमें प्रत्येक धर्मसभाको आपकी सेवामें एक एक प्रार्थना पत्र भेजनेका प्रबन्ध करना चाहिए।

(७)

तीर्थक्षेत्रोंके प्रबन्धकर्त्ताओंने और कर्मचारियोंने कर्मबन्धका स्वरूप अच्छी तरहसे समझकर निश्चय किया है कि श्वेताम्बरियोंके साथ मुकद्दमा लड़नेमें दिगम्बरियोंका और दिगम्बरियोंके साथ लड़नेमें श्वेताम्बरियोंका जो रुपया खर्च किया जाता है, वह सातिशय पुण्यबन्धका कारण है।

(८)

रत्नमालाके सुयोग्य सम्पादक पं० जवाहरलालजी शास्त्री मथुरा महाविद्यालयके अध्यापक नियत हुए हैं। वहां आप अपने विद्यार्थियोंको प्रतिदिन कमसे कम एक घंटा सम्पादनकला और स्वामीसेवाकी शिक्षा भी दिया करेंगे।

(९)

अलीगढ़के पं० श्रीलालजीकी न्या० दि० पं० पन्नालालजी और सेठ मेवारामजीपर निःसीम भक्ति है। पं० रामामिश्रशास्त्री-जीने अपने 'सुजनसम्मेलन' नामक व्याख्यानमें उक्त पंडितजी और सेठजीकी थोड़ीसी प्रशंसा की थी, इस कारण आपको उक्त

व्याख्यान इतना रुचिकर हुआ कि आपने उसे दवाफरोशोंके नोटिसोंके साथ छपनेवाला सर्टिफिकट ही बना डाला। वह एक बार पुस्तकाकार, एकबार जैनमित्रमें, एकबार 'जैनधर्मके महत्त्व' में, एक बार आपकी टीका टिप्पणीसहित रत्नमालामें और हाल ही एकबार जैनगजटमें भी छप चुका; परन्तु आपको इतनेसे सन्तोष नहीं। सुनते हैं कि अब आप उसकी विविध भाषाओंमें लाखों प्रतियां छपवाकर वितरण करनेका प्रबन्धकर रहे हैं। नामके व्यवसायको बढ़ानेका यह खासा तरीका है।

(१०)

ईडर और रायदेशके पंचोंने प्रतिज्ञा की है कि कोई कितनी ही बकबक करे हम मोतीलालजीको ही भट्टारक बनाकर छोड़ेंगे। अपने यहांकी परिस्थितिको हम ही समझ सकते हैं, दूसरे नहीं। हम लोगोंको समझाने सुझानेके लिए हम ही जैसा भट्टारक चाहिए; जियादा पढ़ा लिखा पंडित हमें नहीं चाहिए।

(११)

बुन्देलखंडके सारे सिंगई, सवाई सिंगई सेठ और श्रीमन्तसेठ मिलकर लाठ साहबकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र भेजनेवाले हैं कि आजकल जिसके जीमें आता है वही सेठ बन बैठता है। बम्बईमें तो लोग कुंजड़ों और मोचियों तकसे सेठ कहते हैं। यह बड़ा अन्याय है। आपको इस विषयमें एक हुक्म जारी कर देना चाहिए कि जब तक कोई पुरुष तीन गजरथ न चला चुके—प्रतिष्ठायें न कर चुके, तब तक न उससे कोई सेठ कहे और न वह स्वयं आपको सेठ लिख सके।

अप्रैल-फूल।

याद रखनेकी बातें।

१. कृपा करके याद रक्खो कि हम सब स्त्री पुरुष एक ही नौकामें हैं। हर एक दयाका काम जो हम करते हैं और हरएक दयाका वचन जो हम बोलते हैं उससे न केवल दूसरोंको ही आनंद होता है, किन्तु हमको भी आनन्द होता है।

२. हमको सब प्राणधारियोंके लिए बे-जबान जानवरों और प्यारे भाइयोंके लिए दया करना सीखना चाहिए।

३. जानवर मनुष्योंके हर काममें सहायक हैं, हम उनके साथ बुरा व्यवहार न होने दें। उनके खानेके लिए भोजन, पीनेके लिए पानी और रहनेके लिये साफ सुथरा आरामका मकान दें। वे मीठी बातें और प्रेम पसंद करते हैं। उनको तकलीफ वैसी ही होती है जैसी हमको। न कभी उनपर जियादह बोझ लादो और न कभी उनसे जियादह काम लो।

४. हर एक प्राणीको आदरकी दृष्टिसे देखो और उनको बे-जान चीज़ खयाल न करो जैसा कि उनका हमपर कोई अधिकार ही नहीं है; किन्तु जानदार समझकर उनके साथ भलाईसे बर्ताव करो।

५. जो पुरुष दयावान् नहीं है वह निर्दयी है, निर्दयी हृदय पापकी खानि है।

६. कभी किसी प्राणधारीको व्यर्थ तकलीफ देनेकी कोशिश मत करो।

७. जब तुम किसीके साथ बुरा बर्ताव देखो तो सच्चे दिलसे बुरे वर्तावको दूर करनेकी कोशिश करो।

८. हरएक प्राणीके साथ ऐसा बर्ताव करो जैसा तुम अपने लिये पसन्द करते हो अगर तुम वही प्राणधारी हो।

९. जहां तक हो सके दूसरोंको खुश करनेकी कोशिश करो।

१०. कभी बुरी गाली जबानपर मत लाओ और सादेपन व परहेजसे जीवन बिताओ।

सर्वप्रिय और आनन्दित रहनेके ये ही उपाय हैं।

दयाचन्द्र जैन बी. ए.,

ललितपुर.

त्यागियोंका चारित्र।

सम्पादक महाशय, त्यागी मुन्नालालजीके विषयमें आपके पत्रमें दो लेख निकल ही चुके थे कि अब एक तीसरा लेख सत्यवादीके सम्पादक महाशयने भी लिखनेकी कृपा की है। इस तरह देखता हूं कि आप सबके मारे अब क्षुल्लकजीकी कुशल नहीं हैं। सत्यवादीजी लिखते हैं कि मुन्नालालजी क्षुल्लक हैं और क्षुल्लकोंको केशलोच करनेकी आज्ञा शास्त्रमें नहीं है—यह क्रिया शास्त्रसे विपरीत है। परन्तु मुझे यह मालूम नहीं हुआ कि ऐलक पन्नालालजीके जो केशलोचमहोत्सव हुआ करते हैं, वे किस शास्त्रकी आज्ञाके अनुकूल हैं। यह ठीक है कि ऐलकोंको केशलोच करनेकी आज्ञा है; परन्तु उसके लिए बड़े बड़े समारंभ करके और पन्द्रह पन्द्रह हज़ार आदमियोंकी भीड़ इकट्ठी करके कौनसे शास्त्रोंकी आज्ञाका पालन किया जाता है? मेरी समझमें तो यह क्रिया एकान्तमें होनी चाहिए। जो ऐलक उद्दिष्टभोजनके भी त्यागी हैं—जो भोजन उनके उद्देश्यसे बनाया जाता है, उसे भी जो नहीं ग्रहण करते हैं वे अपने लिए इतना बड़ा आरंभ—जिसके लिए महीनों पहलेसे तैया-

रियां की जाती हैं और जिसके लिए शायद उनकी अनुमति भी ले ली जाती है—क्यों पसन्द कर लेते हैं, यह समझमें नहीं आता। इसके सिवा त्यागीजी रेलमें भी सफ़र करते हैं। मुझे इतना ज्ञान नहीं कि रेलकी सवारीमें उन्हें दोष लगता है या नहीं; इसका निर्णय-कर सकूं परन्तु सेकिन्ड क्लासकी गाड़ीमें, यूरोपियन तथा दूसरे मुसाफिरोंके द्वारा उनका जो अपमान, तिरस्कार और परिहास होता है और जिसे मैंने अपनी आँखों देखा है उसे मैं जैनधर्मकी शानके खिलाफ समझता हूं। एक सिंहवृत्ति धारण करनेवाले साधुको रेलकी मुसाफिरी करना बिलकुल छोड़ देना चाहिए। मैं जैनसमाचारपत्रोंको बराबर पढ़ता हूं; परन्तु मैंने अब तक त्यागी पन्नालालजीके उक्त चारित्रकी आलोचनामें एक भी लेख नहीं पढ़ा, इसलिए आपकी सेवामें यह सूचना भेजनेका साहस किया है। सम्पादक महाशयोंको सबकी ओर एक दृष्टिसे देखना चाहिए। केवल एक ही व्यक्तिके पीछे पड़ जाना अच्छा नहीं।

विनीत—एक जैनी।

पुस्तकसमालोचन।

हिन्दी चित्रमय जगत—पूनेके चित्रशाला प्रेससे इस नामका मासिक पत्र दो वर्षसे निकलने लगा है। देशी भाषाओंमें इस ढंगका यह सबसे पहला पत्र है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता चित्रोंकी रहती है। चित्र भी बहुत अच्छे अच्छे रहते हैं—चित्रशाला प्रेस इस विषयमें प्रसिद्ध है ही। इसके सम्पादक पं० लक्ष्मी-धरजी वाजपेयी हैं। इसका तीसरे वर्षका पहला अंक हमारे पास समालोचनाके लिए आया है। यह अंक बहुत ही सजधजसे निकला है। इसमें सब मिला-कर ४४ चित्र हैं जिनमें दो अनेक रंगोमें छपे हुए रंगीन चित्र हैं। लेख भी बहुत अच्छे अच्छे हैं। अमेरिकाके प्रेसीडेंट मि० थियोडोर रुजबेल्ट और डा० वुडरो विलसनके चरित्र बहुत ही शिक्षाप्रद हैं। चित्तशुद्धि नामका लेख मनन

करनेके योग्य है। नलदमयन्तीविलाप नामकी कविता बड़ी ही करुणाजनक है। सारांश यह कि यह अंक सब प्रकारसे दर्शनीय और वाचनीय हुआ है। हिन्दीके अनुरागियोंको यह पत्र अवश्य मंगाना चाहिए। मूल्य साधे कागजका ३॥) और मोटे चिकने कागजका ५॥) वार्षिक।

चित्रमय जापान—प्रकाशक, चित्रशाला. प्रेस, पूना सिटी। मूल्य एक रुपया। जो लोग घर बैठे जापानके दर्शन करना चाहें वे इस पुस्तकको मंगाकर अवश्य देखें। इसमें जापानके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषोंके, राजवंशके, देवमन्दिरोंके देवमूर्तियोंके, नगरोंके, पुलोंके, मकानोंके, उद्यानोंके, विद्यालयोंके, कामकाज करते हुए, आनन्दक्रीड़ा करते हुए, भोजन करते हुए, चा तम्बाकू पीते हुए, खेती करते हुए, खेलते हुए स्त्रीपुरुषोंके और दूसरे अनेक अवस्थाओंके सब मिलाकर ८४ चित्र हैं। जगह जगह उक्त चित्रोंका संक्षिप्त परिचय भी हिन्दी भाषामें करा दिया गया है। मोटे और सुन्दर आर्टपेपरपर छपी हुई पुस्तक है। चित्र भी दर्शनीय हैं। हिन्दीमें यह पुस्तक अपने ढंगकी एक ही है।

सुकन्या—शर्याति नामके एक राजा थे। उनकी लड़कीका नाम सुकन्या था। वे एक बार च्यवनऋषिके आश्रमके पास जाकर ठहरे। सुकन्याने एक जगह भस्मके ढेरमें दो चमकदार चीजें देखीं। उन्हें वह कांटेसे खोदने लगी; परन्तु उसने देखा कि खोदनेसे वहां रक्तकी धारा बहने लगी। इससे वह घबड़ा गई। राजाने भस्मका ढेर खुदवाया तो उसमेंसे वृद्ध च्यवनऋषि निकल पड़े। वे वहां वर्षोंसे तपस्या कर रहे थे। वे दो चमकदार पदार्थ और कुछ नहीं उक्त ऋषिकी आँखें ही थीं। उनमेंसे अब तक रक्त बह रहा था। राजाने गिड़-गिड़ाकर क्षमा मांगी। ऋषिने कहा, मेरी आँखें चली गई हैं–अब मैं धर्म कर्मका साधन कैसे कर सकूंगा? इस लिए तुम अपनी कन्या मुझे दे दो। राजा बड़ी चिन्तामें पड़ा; परन्तु सुकन्याने अपने पापका प्रायश्चित्त करनेके लिए च्यवनकी पत्नी होना स्वीकार कर लिया। विवाह हो चुकनेपर सुकन्या अपने पतिकी तनमन धनसे सेवा करने लगी। इसके बाद वहां धन्वन्तरि आये। उनके बतलाये हुए उपायसे च्यवनकी आँखें अच्छी हो गई और वे नव युवा हो गये। एक बार जब राजा शर्याति वहां आये और उन्होंने इस युवाके साथ अपनी लड़कीको बैठे, देखा, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया; परन्तु पीछे वास्तविक बात जानकर वे आनन्दमें फूले न समाये। इसी कथाको लेकर झालरापाटनके सुप्रसिद्ध कवि पं० गिरधर शर्माने यह छोटीसी परन्तु मार्मिक

कविता लिखी है। इसे इन्दौरके रामचन्द्र मूलचन्द्र मारवाड़ी स्टोर्सने छपवाकर प्रकाशित की है। छपाई और कागज अच्छा नहीं, मूल्य एक आना अधिक है।

शेष पुस्तकोंकी समालोचना आगामी अंकोंमें यथावकाश की जायगी।

नीचे लिखी पुस्तकों, रिपोर्टों और नियमावलियोंको हम धन्यवादसहित स्वीकार करते हैं:—

१. नागरीवर्णशिक्षा, पं० बाबूलालजी अध्यापक, जैन पाठशाला, मुड़वारा

२. नाभिनन्दन दि०जैन पाठशाला, बीना (सागर) की नियमावली।

३. मनुष्येर स्वाभाविक खाद्य कि ? (मनुष्याहारका बंगला अनुवाद) बाबू दयाचन्द्रजी, बी. ए., ललितपुर।

४–६. जैनधर्म बालबोध प्रथम और द्वितीय भाग तथा जैनधर्मप्रवेशिका। लेखक पं०दरयावसिंहजी सोधिया, प्रकाशक मुनीम धर्मचन्दजी पालीताणा।

५. बम्बईके श्राविकाश्रमकी संवत् २४३८ की रिपोर्ट।

८–१२ बालोपदेश, हिन्दीव्याकरण प्रवेशिका, बाजारू हिसाब प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग। लेखक, पं० कन्हैयालाल उपाध्याय इन्दौर और प्रकाशक द्विवेदी ब्रदर्स, खेतवाड़ी बम्बई।

१३. सामायिक पाठ (अमितगतिसूरिकी भावनाद्वात्रिंशतिकाका बंगला अनुवाद)–प्रकाशक, बंगीय सार्वधर्मपरिषत्, काशी।

१४. प्रार्थनास्तोत्र बाबू अर्जुनलालजी सेठी, बी. ए. कृत। प्रकाशक बालविद्या प्रचारिणी जैन सभा, देहली।

१५. रिपोर्ट गांधी नाथारंगजी जैन बोर्डिग स्कूल और जैनोन्नति फंड, शोलापुर (संवत् १८६८)।

१६. रिपोर्ट मेघराज जैन पाठशाला, बड़वानी।

१७. रिपोर्ट माणिकबाई जैन पाठशाला, ईडर।

१८. रिपोर्ट (ग्यारहवें वर्षकी) हस्तिनापुरतीर्थ।

१९. नियमावली धर्मप्रबोधिनी सभा, कलकत्ता।

स्थानाभावसे इनकी समालोचना न की जा सकी।

विविध समाचार।

विलायत यात्रा--अंगरेजी जैनगजटके सम्पादक बाबू जुगमंदरलालजी बैरिस्टर एक मुकद्दमेकी पैरवीके लिए विलायतको गये हैं।

गुरुकुलका चन्दा--अबकी बार गुरुकुल कांगड़ीके वार्षिकोत्सवपर ७० हजार रुपयेके लगभग नकद चन्दा हो गया।

बड़वानीका मेला--बड़वानीका मेला पौष सुदी ८ से १५ तक खूब धूमधाम और सफलताके साथ हुआ। कई विद्वानोंके व्याख्यान हुए। बड़वानीमें एक हाईस्कूल है। उसमें पढ़नेवाले जैनविद्यार्थियोंके लिए एक बोर्डिंग हाउस खोलनेकी तजबीज हुई और उसके लिए लगभग छह हजार रुपयेका चन्दा हो गया। फिजूल खर्ची आदिके विषयमें कई प्रस्ताव पास किये गये।

मृत्यु और दान—शोककी बात है कि दानवीर सेठ माणिकचन्दजी जे. पी. की भतीजी श्रीमती रतनबाईका क्षयरोगसे देहान्त हो गया। लड़की बड़ी ही होनहार, सरल और सुशीला थी। चन्दाराम गर्ल्स हाईस्कूलमें अंगरेजी पढ़ती थी। मरते समय यह लडकी १५ हजार रुपयाका दान कर गई है। यह रकम किसी अच्छे और उपयोगी काममें लगेगी।

देहलीमें जैनपाठशाला—देहलीके सेठ सोहनलालजीने २० हजार रुपयेका दान करके 'हीरालाल जैनपाठशाला' नामकी एक नवीन पाठशाला स्थापित की है।

तीस हजारका फंड—स्थानकवासी जैनकान्फरेंसका अधिवेशन हैद्राबादमें खूब सफलताके साथ हुआ। शिक्षाप्रचारके लिए तीस हजार रुपयेका फंड हो गया।

बेटीव्यवहार—मारवाड़ी और उत्तर भारतके अग्रवालोंमें बेटीव्यवहार नहीं होता है। इसके लिए कुछ लोग यत्न कर रहे हैं। जैनगजटमें इस विषयमें खुर्जाके एक महाशयका लेख छपा है। वे इस व्यवहारके चलानेके लिए तैयार हैं।

इन्दौरमें प्रतिष्ठा—वैशाख सुदी १ से इन्दौरमें एक नवीन मन्दिरकी वेदीप्रतिष्ठा होनवाली है। यह मन्दिर मल्हारगंजके रामासाके मन्दिरके भीतर बना है।

हिन्दीजैन बन्द—बम्बईसे श्वेताम्बरजैनसम्प्रदायका हिन्दी जैन नामका एक साप्ताहिक पत्र निकलता था। लगभग दो वर्ष चलकर और कोई दो तीन हजारका घाटा उठाकर वह बन्द हो गया।

जरूरत—वर्धा (सी. पी.) के दि० जैनबोर्डिंगके लिए एक अंगरेजी टीचरकी जरूरत है। टीचर कमसे कम मैट्रिक पास होना चाहिए जो चौथी अंगरेजी तक पढ़ा सकता हो। प्रार्थनापत्र सेक्रेटरीके नाम भेजना चाहिए।

आवश्यकता—त्यागी पन्नालालजी जैनपाठशाला नयानगर (अजमेर) के लिए एक संस्कृतज्ञ जैन विद्वानकी आवश्यकता है। पत्रव्यवहार पाठशालाके मंत्री लाला राजमलजी बाकलीवालसे करना चाहिए।

अर्धकेशलोच—त्यागी मुन्नालालजी भी अब महोत्सवपूर्वक केशलोच करने लगे हैं। अभी आपका आधा केशलोच कोटामें हुआ। उत्सवमें थोड़ा जमाव देखकर आपने इधर उधर सैकड़ों तार दिलवाये, तो भी भव्यजनोंकी संख्या थोड़ी ही रही। अब सुनते हैं कि आपने वहांपर पूरा केशलोच नहीं किया। आधा केशलोच हरदामें होनेवाला है। तैयारियां हो रही हैं। इन सब लीलाओंको देखकर यही कहना पड़ता है कि जैनसमाज सरीखा मूर्ख समाज शायद ही कोई दूसरा हो। यह आप तो गिरा हुआ है ही और अपने साथ बेचारे त्यागियोंको भी गिरा रहा है। इन्हींकी भक्तिके प्रबल प्रवाहमें पड़कर त्यागियोंका प्रतिष्ठालोलुपी मन अपनी वास्तविक वृत्तिको भूलकर विलक्षण मार्गसे जा रहा है।

ईडरकी गद्दी— ईडरवाले ब्रह्मचारी मोतीलालजीको बहुत जल्दी भट्टारककी गद्दीपर बिठा देनेवाले है। सुनते हैं कि अभी उन्होंने मोतीलालजीके विषयमें पूछताछ करनेके लिए इधर उधर कुछ आदमी भेजे थे। मालूम नहीं कि वे ब्रह्मचारीजीके पाण्डित्यके, धर्मज्ञानके, संयम सदाचारके और जातिपांतिके कितने प्रशंसापत्र लाये। कुछ भी हो एक गद्दीके जीर्णोद्धार करनेका पुण्य तो ईडरवालोंको मिले विना रहेगा ही नहीं।

उपहारका तीसरा ग्रन्थ।

जिनपूजाधिकार-मीमांसा इस अंकके लाथ रवाना की ज़ाता है। यह ६० पष्ठकी पुस्तक है। इस सहित उपहारके तीनों ग्रन्थ ४००पृष्ठके हो गये। अब भी जो लोग ग्राहक बनेंगे, उन्हें ये तीनों ग्रथ मिल सकतें हैं।

देरीका कारण।

मैं तीर्थयात्राको चला गया था, इस कारण यह अंक बहुत देरीसे निकला। आगामी अंक संभवतः जल्दी निकल ज़ायगा।

—सम्पादक.

नये जैन ग्रन्थ।

प्रवचनसार।

मूल्य, संस्कृत छाया अमृतचन्द्रसूरि और जयसेनसूरि की दो संस्कृत टीकायें और पं० हेमराजकृत भाषा टीका सहित। मूल्य तीन रुपया।

गोमट्टसार कर्मकाण्ड।

मूल, संस्कृत छाया और पं० मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीका सहित छपकर तैयार है। मूल्य दो रुपया।

हनुमानचरित्र।

इसमें अंजना पवनंजयके पुत्र हनुमानजीका संक्षिप्त चरित्र सरस भाषामें दिया गया है। इसे खंडवाके श्रीयुत सुखचन्द पदमशाह पोरवालने बनाया है। मूल्य छह आने।

क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है?

बाबू दयाचन्द्रजी बी. ए. का लिखा हुआ यह छोटासा निबन्ध हाल ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य एक पैसा।

सर्वसाधारणोपयोगी ग्रन्थ।

जान स्टुअर्ट मिलका जीवनचरित।

स्वाधीनता आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके बनानेवाले और अपनी लेखनीकी शक्तिसे यूरोपमें एक नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले इस विद्वान्‌का जीवनचरित प्रत्येक शिक्षित पुरुषको पढ़ना चाहिए। इसे जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मूल्य चार आने।

शेख चिल्लीकी कहानियां।

पुरानें ढँगकी मनोरंजक कहानियां हाल ही छपी हैं। मूल्य आठ आना।

ठोक पीटकर वैद्यराज।

यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हंसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आजकल विना पढ़े लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सो भी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

प्रतिभा उपन्यास।

यह अपूर्व उपन्यास कपड़ेकी मनोहर जिल्द और मौटे कागज-पर विक्रीके लिए भी तैयार कराया गया है। मूल्य १।)

स्वामी और स्त्री।

इस पुस्तकमें स्वामी और स्त्रीका कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषयको बड़ी सरलतासे लिखा है। अपढ़ स्त्रीके साथ शिक्षित स्वामी कैसा व्यवहार करके उसे मनोनुकूल कर सकता है और शिक्षित स्त्री अपढ़ पति पाकर उसे कैसे मनोनुकूल कर लेती है

इस विषयकी अच्छी शिक्षा दी गई है। और भी गृहस्थी संबन्धी उपदेशोंसे यह पुस्तक भरी है। मूल्य, दश आना।

नये उपन्यास।

विचित्रवधूरहस्य—बंगसाहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगाली उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। रवीन्द्रबाबूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं। बहुत ही करुणरसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ॥।)

स्वर्णलता—बहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। बंगाली भाषामें यह चौदह बार छपके बिक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

माधवीकङ्कण—बडोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेशचन्द्र दत्त सी. आई. ई. के बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ॥।)

षोडशी—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर एटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड–उपन्यास हैं। मूल्य १)

महाराष्ट्रजीवनप्रभात–सर रमेशचन्द्र दत्तके बंगला ग्रन्थका नया हिन्दी अनुवाद, इंडियन प्रेसका। वीर रसपूर्ण बड़ा ही उत्तम उपन्यास है। मूल्य चौदह आने।

राजपूतजीवनसन्ध्या–यह भी उक्त ग्रन्थकारका ही बनाया हुआ है। इसमें राजपूतोंकी वीरता कूट कूट कर भरी है। मूल्य बारह आने।

सुशीलाचरित–स्त्रियोपयागी सुन्दर ग्रन्थ। मूल्य एक रुपया।

मैनेजर–जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

गिरगांव बम्बई।

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्–पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी द्वारा सम्पादित। यह अपने ढंग का अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयक रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। जनवरी १९१३ से इसमें विशेष उन्नति की गई है। रङ्गीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डा० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्या का ।)॥ है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र–राजा साहबके चित्र संसार भरमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपर-पर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरण-के हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रङ्गीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

चित्रमय जापान–घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायन वादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपरपर छपी है। मूल्य, एक रुपया।

सचित्र अक्षर बोध–छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको जतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छै आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश–ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि–यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंग की है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटेशब्द भी दिये हैं। वस्तु चित्र

इसके रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य भी सिर्फ दो आने हैं।

सस्ते रंगीन चित्र–श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति रामपंचायतन, भरतभेट, हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामबनबास, गजेन्द्रमोक्ष, हरिहर भेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७×५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड बडोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८×१० मूल्य प्रति संख्या एक आना।

लिथोके बढ़ियाँ रंगीन चित्र–गायत्री, प्रातःसन्ध्या मध्यान्ह सन्ध्या सायंसन्ध्या (प्रत्येक चित्र ।) और चारों मिलकर ।॥), नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६×२० मूल्य प्रति चित्र ।) आने।

अन्य सामान–इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा बादशाह सरदार, अंग्रेजी राजकर्त्ता गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडर गार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र, सब प्रकारके रंगीन नकशे ड्राइंगका सामान भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

नववाँ भाग] चैत्र, वैशाख श्रीवीर नि० सं० २४३९ [६–७ वां।

जैनधर्मका प्रसार कैसे होगा ?

अन्यान्य धर्मोंकी उन्नति और विस्तृति होते देखकर कुछ समयसे जैनसम्प्रदायमें भी इस विषयका आन्दोलन होने लगा है कि जैनधर्मकी उन्नति की जाय और उसका विस्तार देशविदेशोंमें सर्वत्र किया जाय। यद्यपि जैनधर्मके दुर्भाग्यसे अभी उसके बहुतसे अनुयायी ऐसे भी हैं जो अपने पवित्र धर्मको अपवित्र माने हुए देशोंमें ले जाना या हीन जातियोंमें फैलाना अनुचित और पातकका काम समझते हैं, तो भी यदि थोड़ी देरके लिए कल्पना कर ली जाय कि इस विषयका कोई भी विरोधी नहीं रहा और प्रगतिके क्रमके अनुसार थोड़े समयमें ऐसा होगा ही; तो क्या हमें यह आशा कर लेनी चाहिए कि हमारी उक्त इच्छा सफल हो जायगी ? हमारे धर्मका सर्वत्र प्रचार होने लगेगा ? हम अकसर शिकायत किया करते हैं कि इस समय ऐसे कामोंमें हमारे रथप्रतिष्ठाप्रेमी धनिक धन नहीं देना चाहते हैं और धनके विना

ऐसे महत्त्वके काम हो नहीं सकते हैं; परन्तु कल्पना कर लीजिए कि हमारे सारे लक्ष्मीपुत्रोंको भी सुबुद्धि प्राप्त हो गई है और वे इसके लिए अपनी थैलियोंके मुँह खोले हुए बैठे हैं, तो क्या आप कह सकते हैं कि हम जैनधर्मको राष्ट्रधर्म बना डालेंगे ? इसी तरह और भी—इस मार्गमें जो जो रुकावटें है समझ लीजिए कि वे सब दूर हो गई हैं और कार्य भी प्रारंभ कर दिया गया है, तो क्या हम अपने उक्त अभीष्टको पालेंगे ? मेरे खयालसे यह काम कहनेमें जितना सहज मालूम होता है और व्याख्यान देते समय अथवा लेख लिखते समय इसके लिए जितनी सुलभतासे युक्तियां मिल सकती हैं, उतना सहज और सुलभ नहीं है। अभी तक जैनसमाजमें वह योग्यता ही नही आई है और न उसके लानेका अभीतक कोई उपाय ही किया गया है कि जिससे इस महत्कार्यके सम्पादन होनेकी आशा की जा सके।

किसी भी धर्मके प्रसारके लिए यह आवश्यक है कि सर्व साधारणको उसकी विशेषता बतलाई जाय—यह समझाया जाय कि उसमें वे कौन कौनसी बातें हैं जो दूसरे धर्मोंमें नहीं है। इसके सिवा उसमें वे कौन कौनसे तत्त्व हैं जो वर्तमान देशकालके अनुसार मनुष्योंकी सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक उन्नति करनेमें सब प्रकारसे सहायक हैं तथा आधुनिक वैज्ञानिक सत्योंके सामने भी जो असत्य या भ्रमात्मक सिद्ध नहीं हो सके हैं। यह सिद्ध करके दिखलाय जाय कि उसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग सबसे अधिक प्रशस्त है और उसके उदार छत्रके नीचे प्राणीमात्रको आश्रय मिल सकता है। जब तक इस तरह सब ओरोंसे किसी धर्मकी खूबियां न दिखलाई जायँगी

तब तक कोई भी धर्म चाहे उसे उसके अनुयायी सीधा स्वर्ग या मोक्षमें भेजनेका विमान ही क्यों न समझते हों और उनके आस-पासकी सारी दुनियां बिलकुल ही पक्षपातरहित क्यों न हो गई हो यहां तक कि अपने अपने कौलिक धर्मोंको छोड़नेके लिए तैयार ही बैठी हो—दूसरोंको अपना अनुयायी न बना सकेगा।

हम देखते हैं कि वर्तमान जैनसमाजमें इतनी योग्यता नहीं कि वह अपने धर्मकी विशेषता या उसकी सार्वभौमताको उक्त प्रकारसे सिद्ध करके दिखला सके। उसमें अभी ऐसे विद्वान् उत्पन्न ही नहीं हुए और उसकी सन्तानको जिस ढँगसे या जिस पद्धतिसे शिक्षा दी जाती है उसका विचार करनेसे यह आशा भी नहीं है कि जल्दी ऐसे सुयोग्य विद्वान् तैयार हो जाँयगे, जो जैनधर्मका प्रतिपादन इस ढँगसे कर सकें कि उसपर दूसरे लोग मोहित हो जावें और उसका आश्रय लेनेके लिए व्याकुल हो जावें।

पुराने खयालके लोग तो यह समझते हैं कि संस्कृत भाषाके द्वारा जैनधर्मके उच्च श्रेणीके दर्शन, न्याय, व्याकरणादि ग्रन्थोंमें योग्यता प्राप्त करनेवाले विद्वान् ही जैनधर्मके प्रचारका काम सफलतापूर्वक कर सकेंगे और नये खयालवाले समझते हैं कि उच्च श्रेणीकी अँगरेजी शिक्षा पाये हुए लोगोंहीसे इस प्रकारकी आशा की जा सकती है। रहे इन दोनोंके बीचके मध्यम खयालवाले, सो उनकी यह समझ है कि संस्कृतके पंडितोंको अँगरेजी पढ़ा देनेसे या अँगरेजीके ग्रेज्युएटोंको संस्कृत और जैनग्रन्थ पढ़ा देनेसे काम चल जायगा; परन्तु वास्तवमें विचार किया जाय तो जैसे विद्वान् इस कार्यके लिए चाहिए वैसे इन तीनों ही मार्गोंसे नहीं बन सकते हैं। क्योंकि एक तो किसी भाषाका ज्ञान लेना

या किसी ग्रन्थका पढ़ लेना विद्वान् बन जाना नहीं है। यदि संस्कृतके ज्ञान लेनेसे ही कोई पंडित कहलाता हो तो जिस जमानेमें संस्कृत बोलचालकी भाषा रही होगा उस जमानेके पढ़े लिखे और अपढ़ सब ही लोगोंको पंडित मानना पड़ेगा। इसी प्रकारसे यदि अँगरेजीमें बातचीत करने लगना पंडिताईका लक्षण मान लिया जाय तो फिर साहब लोगोंके खानसामा और सहीस भी विद्वान् समझे जायँगे। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। विद्वत्ता किसी भाषाका बोलना या समझना आ जानेसे नहीं; किन्तु उसके द्वारा उस भाषाके विद्वानोंके विचारोंको हृदयस्थ कर लेनेसे आती है। भाषा ज्ञान नहीं किन्तु ज्ञानका एक साधन है। दूसरे पुस्तकें पढ़ लेनेसे या उन्हें रटकर परीक्षामें पास हो जानेसे ही कोई विद्वान् नहीं हो जाता। क्योंकि भाषाके समान ग्रन्थ भी ज्ञानके साधन ही हैं स्वयं ज्ञान नहीं; ज्ञान कुछ और ही वस्तु है। वह केवल अध्ययनसे नहीं किन्तु मनन, अनुभव और पर्यवेक्षणसे प्राप्त होता है। यही कारण है जो संसारके प्रसिद्ध प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता और महात्मा पुस्तकें पढ़कर नहीं किन्तु पदार्थोंके स्वरूपका निरीक्षण, मनन और अनुभवन करके हुए हैं और यही कारण है जो संस्कृत और अँगरेजीकी सैकड़ों पुस्तकें घोंटकर पीजाने पर भी आज सैकड़ों पंडित और ग्रेज्युएट ऐसे दिखलाई पड़ते हैं जिनका बुद्धिमान्द्य देखकर दया आती है। तीसरे अब वह जमाना नहीं रहा जिसमें किसी एक धर्म या सम्प्रदायके आचार्यको या नेताको शास्त्रार्थमें चुप कर देनेसे वह अपने अनुयायियोंके सहित अपने धर्मको छोड़कर विजेताका धर्म स्वीकार कर लेता था या किसी प्रतापी राजाको अपना पाण्डित्य दिखला देनेसे वह मुग्ध हो जाता था

और स्वयं अनुयायी बनकर अपनी प्रजाको भी उसका उपासक बना लेता था। आजकलका समय दूसरा है। यह तो शान्तता-पूर्वक तुम्हारी बात सुनना चाहता है। यह शास्त्रार्थ या खंडनसे राजी नहीं। इसे केवल प्रतिपादनकी शैली पसन्द है। जिस गहन और कठिन न्यायकी शैलीसे तुम अपने तत्त्वोंका मंडन और दूसरोंका खंडन करते हो उसे सर्वसाधारण लोग जानते नहीं और सीधी सादी युक्तियोंसे जिन्हें सब कोई समझते हैं तुम समझा नहीं सकते, तब तुम्हारा न्यायशास्त्री या न्यायाचार्य होना किस कामका? माना कि तुमने संस्कृतके साथ कुछ अँगरेजी भी पढ़ ली है अथवा अँगरेजीके साथ संस्कृतके जैनग्रन्थ भी तुमने टटोल लिये हैं; परन्तु क्या धर्मप्रसारका काम इतना सहज है कि तुम दूसरे धर्मोंको अच्छी तरहसे जाने विना उनपर विजय प्राप्त कर सको? यदि ऐसा होता तो महात्मा अकलंकदेव जैसे विद्वान् बौद्धोंके विद्यालयमें जाकर पढ़नेका कष्ट क्यों उठाते? तुम्हें तो अपनी विद्याका इतना अभिमान है कि जिन धर्मोंका तुमने कभी नाम भी न सुना होगा, उनका भी यदि काम पड़े तो तुम बातकी बातमें खंडन कर डालो। पर याद रक्खो, इस प्रकारके खंडनसे धर्मप्रसारका काम नहीं होता और न इसका कोई अच्छा फल ही निकलता है। **चौथे** जिस चरित्रबलसे या जिस आदर्शजीवनसे यह पवित्र कार्य सम्पादन हो सकता है उसका इन पण्डितों या बाबुओंमें प्रायः अभाव ही देखा जाता है। इतिहास इस विषयका साक्षी है कि आज तक जितने धर्मप्रवर्तक हुए हैं उन्होंने पाण्डित्यकी अपेक्षा अपने चरित्रबलसे ही जनसमाजपर अधिक विजय प्राप्त की है। मनुष्यका चरित्र उसके वचनों या उपदेशोंसे

बहुत अधिक शक्ति रखता है। इस तरह इन चार बातोंपर तथा इसी तरहकी और भी कई बातोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि ऊपर बतलाये हुए तीनों मार्गोंसे ऐसे विद्वान् बननेकी आशा नहीं जो कि जैनधर्मको राष्ट्रधर्म बनानेमें सफलता प्राप्त कर सकें।

तब इस कार्यके लिए कैसे विद्वान् चाहिए? सबसे पहली और जरूरी बात यह है कि जो धर्मप्रचारका काम करना चाहें वे जैन-धर्मके अच्छे जानकार हों—जैनधर्मके केवल बाहरी शरीरका ही नहीं उसके मर्मस्थानका—उसके हृदयका भी उन्हें वास्तविक ज्ञान हो। जैनधर्मके चारों अनुयोगोंका, उनकी कथनशैलीका उनके वास्तविक उद्देश्यका, उनके पारस्परिक सम्बन्धका, और उ-नके तारतम्यका उन्होंने किसी अच्छे अनुभवी विद्वानके द्वारा अच्छी तरहसे रहस्य समझा हो—केवल पुस्तकें पाठ करके या टीकाओंके भरोसे पंडिताई प्राप्त न की हो। दूसरी बात यह है कि वे जैनधर्मके सारे सम्प्रदायोंमें जिन जिन बातोंका भेद है, उनका स्वरूप और उनका कारण अच्छी तरहसे समझे हुए हों और अपनी स्वाधीन बुद्धिसे यह समझनेकी शक्ति रखते हों कि देश, काल और परि-स्थितियोंका प्रभाव इन भेदोंपर कहां तक पड़ा है। तीसरी बात यह है कि अपने धर्मके समान संसारके मुख्य मुख्य और विशाल धर्मोंका उन्हें अच्छी तरहसे ज्ञान हो और वह निष्पक्ष और उदार बुद्धिसे सम्पादन किया गया हो। चौथी बात यह है कि वे प्रत्येक धर्मके उत्थान, विकाश, ह्रास और पतनका इतिहास जानते हों तथा यह भी समझते हों कि देशकालकी परिस्थितियोंका प्रत्येक धर्मपर कितना और कहां तक प्रभाव पड़ सकता है। पांचवें आधु-निक विज्ञानकी प्रत्येक शाखाका अर्थात् पदार्थविज्ञानशास्त्र, रसा-

यनशास्त्र, विद्युच्छास्त्र, भूगर्भशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र, शारीरिकशास्त्र, मनोविज्ञानशास्त्र, भूगोल, खगोल, आदि शास्त्रों-का उन्हें अच्छा ज्ञान हो और वह इतना स्पष्ट हो जिससे वे अपने धर्मके तत्त्वोंको उक्त शास्त्रोंसे अबाधित सिद्ध कर सकें। इन शास्त्रोंमें पारदर्शिता प्राप्त किये विना केवल इस तरह कह देनेसे—कि उनमें प्रतिपादन किया हुआ स्वरूप झूठा है क्योंकि उनके रचयिता असर्वज्ञ या छद्मस्थ थे और हमारे ग्रन्थोंमें लिखा हुआ ही सत्य है क्योंकि उनके उपदेशक सर्वज्ञ थे—अब काम नहीं चल सकता। आजकलका विज्ञान बड़ी निर्दयतासे सारे धर्मोंकी जड़ोंको हिला रहा है, इसलिए हमें सावधान हो जाना चाहिए और इसके पहले कि हमारी सन्तानोंपर उसका बुरा असर पड़ने लगे हम उसीके द्वारा अपनी रक्षाका सामर्थ्य प्राप्त कर लें। इस समय वही धर्म संसारमें टिक सकेगा जो विज्ञानकी विकट मारसे अपनेको बचा सकेगा और लोगोंको बतला सकेगा कि विज्ञान हमारे धर्मके अगाध ज्ञान समुद्रका एक बिन्दुमात्र है। छट्ठे उनमें स्वदेश और विदेशकी दो चार मुख्य मुख्य भाषाओंका ज्ञान हो और वह इतना अच्छा हो कि उसके द्वारा वे अपने विचारोंको लिखकर और बोलकर दूसरोंको अच्छी तरहसे समझा सकें—अर्थात् उनमें लेखन और व्याख्यानकी शक्ति बहुत अच्छी हो। सातवें उनका आचरण पवित्र, हृदय निष्कपट और विशाल, विचार दृढ और परिश्रम अश्रान्त तथा अनवरत हो। जीवमात्रके कल्याणकी वाञ्छा, मानव जातिको सच्चा सुखी बनानेकी उत्कट इच्छा, परोपकार और स्वार्थत्यागकी वासना, सत्यप्रियता और स्वाधीनता उनकी नस-नसमें भरी हो, देश और कालकी स्थितियोंसे उत्पन्न हुए नियमों

और रूढियोंको जो तुच्छ समझते हों और इनकी संकलोंसे बंधे हुए लोगोंका जिन्हें जरा भी भय न हो। इस प्रकारके आदर्श जीवनके बिना सब गुण होते हुए भी कोई धर्मप्रसारका कार्य नहीं कर सकता।

मेरी समझमें इन ऊपर लिखे गुणोंसे युक्त विद्वान् ही इस समय जैनधर्मके प्रसारका कार्य सफलतापूर्वक कर सकते हैं और जबतक जैनसमाज ऐसे विद्वान् उत्पन्न न कर सकेगा, तब तक उसके धर्मका प्रसार दूसरे लोगों और दूसरे देशोंमें कदापि नहीं हो सकेगा। स्वामी विवेकानन्द और परमहंस स्वामी रामतीर्थ एम्. ए. ने उक्त गुणोंके कारण ही अमेरिका और यूरोप जैसे ज्ञानविज्ञानसम्पन्न देशोंमें वेदान्त धर्मकी विजयपताका फहराई थी। जिन लोगोंने उक्त महात्माओंका जीवनचरित पढ़ा है और उनके प्रातिभाशाली व्याख्यानों और लेखोंका पाठ किया है वे जान सकते हैं कि उनकी विद्वत्ता स्वाधीनचित्तता और सच्चरितता किस श्रेणीकी थी। उन्होंने जो कुछ कहा है वह सब यद्यपि पुराना है; परन्तु वर्तमान समयके सांचेमें ढालकर उन्होंने उसे इतना सुन्दर और उपयोगी रूप दे दिया है कि लाखों अमेरिकन पुरुष और स्त्रियां उसपर न्योछावर हो गई हैं। स्वामी रामतीर्थजी जब अमेरिकामें व्याख्यान देते थे तब उसे सुनकर लोग यह नहीं समझ सकते थे कि वे किस धर्मका प्रतिपादन कर रहे हैं क्योंकि सारे देशोंके तत्त्ववेत्ताओं और धर्माचार्योंके वचनोंको लेकर ही वे अपना व्याख्यान बनाते थे; परन्तु जब उसकी समाप्ति हो जाती थी, तब कहीं लोग समझते थे कि यह वेदान्तप्रतिपादक व्याख्यान था। अपने और दूसरे धर्मोंका अच्छा ज्ञान प्राप्त किये विना ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अपनी स्वाधीन और

समयानुकूल बुद्धिसे उक्त महात्माओंने हिन्दूधर्ममें जो कुछ संस्कार और संशोधन किया है वह बहुत अंशोंमें सनातनधर्मियों और आर्यसमाजियोंके विचारोंसे भी नहीं मिलता–कहीं कहीं बिलकुल विरुद्ध भी है; परन्तु उनकी पवित्रता आत्मनिष्ठा और देशभक्ति इतनी प्रबल थी कि आज सारे हिन्दू उन्हें वर्तमान युगके धर्माचार्य मानकर स्मरण करते हैं। जो नई शिक्षा दीक्षा पाये हुए लोग धर्मसे विमुख होते जाते थे उनपर तो इन महात्माओंका इतना प्रभाव पड़ा है कि वे पक्के हिन्दू बन गये हैं। जैनधर्मकी रक्षा और विस्तारके लिए भी ऐसे ही विद्वानोंकी जरूरत है।

अब प्रश्न यह है कि इस प्रकारके विद्वान् कैसे तैयार हो सकते हैं ? हमारी पुरानी पद्धतिकी पाठशालायें तो ऐसे विद्वानोंके उत्पन्न कर सकनेमें एक तरहसे असमर्थ हैं। क्योंकि उनमें जो शिक्षा मिलती है, वह एकदेशीय होती है और एकदेशीय ज्ञानसे इस समय काम नहीं चल सकता। इस समय हमें अपना भी जानना चाहिए, और अपना अच्छा है यह बतलानेके लिए दूसरोंका भी जानना चाहिए। और अपना ज्ञान भी तो इनके द्वारा अच्छी तरहसे नहीं हो सकता। क्योंकि किसी एक विषयको अच्छी तरहसे समझनेके लिए उस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे विषयोंका भी तो सामान्य ज्ञान होना चाहिए। केवल न्याय, व्याकरण, और साहित्य पढ़ लेनेसे ही क्या हम धर्मशास्त्रोंके मर्मज्ञ हो जायँगे ? यहां तो मामूली गणित, इतिहास, भूगोल, पदार्थविज्ञानादि विषयोंकी भी शिक्षा नहीं दी जाती जिनके बिना उनका धर्मशास्त्रका ज्ञान ही अधूरा, धुँधला और निरुपयोगी रहता है। दूसरी ओर सरकारी स्कूलों और कालेजोंको देखिए तो उनसे भी हम सुयोग्य

विद्वानोंकी आशा नहीं कर सकते। क्योंकि एक तो उनमें जो शिक्षा दी जाती है वह एक बिलकुल अपरिचित और विदेशी भाषामें दी जाती है जिससे विद्यार्थियोंके शरीर और समयका नाश तो होता ही है, साथ ही उनका ज्ञान अपरिपक्व और धुँधला रहता है। दूसरे विदेशी जड़वाद और नास्तिकताका प्रभाव उस शिक्षामें इतना अधिक पड़ा हुआ है कि उससे विद्यार्थियोंमें धर्मभावके बने रहनेकी आशा बहुत कम रहती है। ऐसी अवस्थामें सुयोग्य विद्वान् उत्पन्न करनेके लिए–जैसा कि प्रोफेसर लट्टेने अपने लेखमें कहा है–हमें चाहिए कि अपने निजके एक दो कालेज या महाविद्यालय स्थापित करें जिनमें हम अपने विद्यार्थियोंको प्राचीन तत्त्वशास्त्रोंकी शिक्षा सर्वोत्तम आधुनिक पद्धतिसे दे सकें और साथ ही उन्हें पदार्थविज्ञान आदि सब प्रकारके आधुनिक शास्त्रोंमें भी पारंगत कर सकें। विना इस प्रकारके प्रयत्नसे जैनधर्मका प्रसार ही नहीं किन्तु उसकी रक्षा करना भी असंभव है।

मैं यह नहीं कहता कि हमारी पाठशालाओंसे या सरकारी स्कूलों व कालेजोंसे कुछ लाभ ही नहीं है अथवा इन संस्थाओंसे विद्वान् निकलेंगे ही नहीं—नहीं, इनसे हमें बहुत लाभ हो रहा है; परन्तु धर्मप्रसारके कार्यके लिए जैसे विद्वान् चाहिए उनके उत्पन्न होनेकी इनसे बहुत ही कम आशा है।

—समय।

हमारा भ्रमण।

१—चँदेरी।

यह एक प्राचीन इतिहासिक स्थान है जो ललितपुर से २४ मीलकी दूरी पर पश्चिमकी ओर स्थित है। लगभग १६ मीलके अंतर पर विशाल बेतवा नदी बहती है जो अँगरेजी राज्य और महाराजा ग्वालियरके राज्यको पृथक् करती है। नदीका साधारण पुल बंधा हुआ है जो वर्षाऋतुमें बिलकुल पानीमें डूब जाता है। नदी परसे ग्वालियर राज्य प्रारम्भ होता है। यहांसे चंदेरी तक पक्की सड़क बनी हुई है जिसपर इक्का, गाड़ी घोड़ा वगैरह बहुत आसानीसे चल सकते हैं। ६ मीलके अन्तर पर २ मीलके अनुमान ऊंची घाटी है जिसपर भी महाराजकी ओरसे पक्की सड़क बनी हुई है। पक्की सड़क बननेके पहले रास्ता बहुत खराब था और यात्रियोंको बड़ा कष्ट होता था। महाराज ग्वालियरने सड़क बनाकर अपनी प्रजा और विशेष कर जैनसमाजपर बड़ी कृपा की है।

घाटी चढ़ते ही प्राचीन वस्तुएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं। जगह जगह पर मुसलमानोंकी पत्थरकी कबरें उखड़ी पड़ी हैं जिनपर ऐसा अच्छा काम खुदा है कि प्राचीन कारीगरोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। घाटी उतर कर एक तालाब है और उससे परे चँदेरी बसा हुआ है। यह अति प्राचीन शहर है। किसी समय यहां ४ लाख मनुष्योंकी बस्ती थी, और व्यापार व शिल्पकलाका यह केन्द्र था। यहांसे ६ मीलके अंतर पर महाराज शिशुपालकी प्राचीन चँदेरीके खण्डहर बताए जाते हैं।

पीछे यह वर्तमान चँदेरी आबाद हुई। यह भी राजधानी रही और भारतके इतिहासमें बहुत काल तक प्रसिद्ध रही।

यहां पर कई कई मंजिलोंकी पक्की इमारतें बहुलतासे पाई जाती हैं जिनमें बहुतसी खंडित हो गई हैं। फौजदार रणधीरसिंहकी जो क्षत्रिय जैनी हैं और राजमान्य जमींदार और दर्बारी हैं– सात चौककी हवेली देखनेके काबिल है। यह मीलभरमें फैली हुई है। इसमें एक नाप और एक फेशिनके सात चैाक और हर एकमें एक ही तरहके ऊपर नीचेके बडे बड़े दालान बने हुए हैं।

प्राचीनकालसे चँदेरीका कपड़ा प्रसिद्ध है। जहां किसी राजा महाराजाके वस्त्रोंका वर्णन आता है वहां चँदेरीका नाम जरूर आता है। कहते हैं कि यहांकी स्त्रियां ऐसा बारीक सूत कातती थीं कि वह एक रुपयाका एक तोला बिकता था। इन गुणवती स्त्रियोंकी कमा-से ही यहांके जुलाहे हजार–पती और लखपती बन रहे थे। इन स्त्रियोंने कभी घरसे बाहर पैर भी न रक्खा था। कहते हैं कि इनको यह भी ज्ञान न था कि गेंहूँकी बाल कैसी होती है। यद्यपि विलायती और चीनी सूत चलनेसे अब यहां सूतका कातना बन्द हो गया है, तथापि विलायती सूतसे, रेशमी और जरीके कपड़े अब भी ऐसे बुने जाते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। हजारों रुपये तकके दुपट्टे और साड़ियां यहांपर बनती हैं। महाराज ग्वालियर तथा अन्य राजा महाराजाओंके सदैव आर्डर आते रहते हैं। प्रयाग प्रदर्शनीमें यहांके कार्य्यकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। वास्तवमें चँदेरी जैसे स्थानोंने ही भारत माताके प्राचीन गौरव और चातुर्यको अब तक थोड़ा बहुत बना रक्खा है। यहांकी

शिल्पविद्या और शिल्पकारोंपर जितना भी अभिमान किया जाय थोड़ा है।

महाराज ग्वालियरकी ओरसे यहां इस विषयका एक बड़ा स्कूल और कारखाना है जिसका प्रबन्ध अति उत्तम है। ये बातें तो सर्वसाधारणके लिए हैं; परंतु जैनियोंका इस स्थानसे कुछ विशेष संबंध है और वह यह है कि यहां एक बड़े विशाल मंदिरके भीतर २४ शिखरबन्द देवालयोंमें २४ तीर्थंकरोंकी एक आकारकी अति मनोज्ञ सर्वाङ्गसुन्दर शान्तिमुद्राधारी २४ विशाल प्रतिमाएँ पद्मासन स्थापित हैं जिनका वर्ण वैसा वैसा ही है जैसा उक्त तीर्थंकरोंका था। कहते हैं कि वर्तमानमें ऐसी कृत्रिम चौवीसी भारत वर्षमें कहीं भी नहीं है। निस्सन्देह यह सत्य है और हम इसका पूर्ण रूपसे समर्थन करते हैं। ऐसी चित्तको आकर्षित करनेवाली एकसी प्रतिमाएँ शायद ही कहीं हों। संवत् १८९३ में धर्मधुरंधर लाला सवासिंहजी खंडेलवालने—जो उस समय चँदेरी राज्यके मुख्य कार्य्यकर्त्ता थे—इन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराई थी। उन्होंने लाखों रुपये इनके बनानेमें खर्च किए। वर्षों तक उनके मुनीम गुमास्ते जयपुरमें रहे और उन्होंने शिल्पकारोंको उनकी इच्छानुसार मन माना रुपया देकर ब्रह्मचारी रक्खा। कहते हैं कि जब ये बनकर तैयार हो गई तो लाला साहिबने ८००००) की हुँडी जयपुरसे लिवा लानेके लिए भेजी थी। ये प्रतिमायें जयपुरसे पुष्यनक्षत्रमें ही आई, अन्य नक्षत्रोंमें २८ दिन रास्तेमें ही रहीं। रेल उस समय थी नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि सवासिंहजीने इस चौवीसीको बनवाकर अपनी कीर्तिका स्तम्भ सदैवके लिए स्थापित कर दिया और सच्ची प्रभावना करके अपने यशस्वी नामको ड्योढ़ा दूना कर दिया।

आज आपकी कीर्तिसे जैनधर्मका महत्त्व समस्त भारतमें फैला है।

एक बड़े मन्दिरमें चारों ओर २४ छोटे छोटे मंदिर बने हुए हैं। आंगनमें एक ही पाषाणका एक स्तम्भ गड़ा है जिसमें पांच मढ़ियां बनी हुई हैं। मंदिरके नीचे एक भौंहरा है जिसमें कुछ मूर्तियां विराजमान हैं। इस भौंहरेके नीचे एक और भौंहरा बना हुआ है जिसमें अंधेरे और नमीके कारण जाना बड़ा कठिन है, उसमें भी बहुतसी प्रतिमाएं और सरस्वती माताकी शास्त्रमूर्तियां विराजमान होंगीं। एक बार एक युवक कड़ा दिलकरके इसमें घुस गया था और एक शास्त्रजी निकाल लाया था। ये भौंहरे धर्मविध्वंसकोंके कारण बनाए गये थे और अविनय और पापके भयसे आपत्ति समयमें धर्मरक्षार्थ प्रतिमाएं और शास्त्रजी इनमें विराजमान कर दिये गये थे।

यद्यपि सवासिंहजीने धर्मके सच्चे जोशसे इन मंदिरोंको बनवाया था और अपनी चपला लक्ष्मीको इस महान् कार्यसे अचपला करनेमें कोई भी त्रुटि न रक्खी थी; किन्तु क्या ही अच्छा होता यदि ये मंदिरजी बस्तीमें न बनाए जाकर बाहर किसी रमणीक स्थानमें बनाये जाते जिससे प्रकृति महारानी भी अपनी अनुपम छटा दिखलाकर दर्शकोंपर प्रभाव डाल सकती। अस्तु किसी कारण वशात् सवासिंहजीने बस्तीमें ही उनका बनाना उचित समझा होगा।

हमको यह देखकर बड़ा खेद हुआ और निश्चयसे सवासिंहजीकी पवित्र आत्माको भी स्वर्गमें अपने अवधिबलसे यह जानकर बड़ा दुख होता होगा कि उनके प्रेमसे बनवाए हुए मंदिरोंमें चमगीदड़ अपने दुर्गन्धयुक्त मूत्र और बीटसे भगवानकी कितनी अविनय करते हैं। हा! वर्तमान कालमें विनयका दम भरनेवाले लोगोंका इतना तीव्र प्रमाद होगया है और धर्मस्थानों व आयत-

नोंसे इतनी अरुचि हो गई है कि चाहे मंदिरोंमें चूहे व चमगीदड़ अपने मैलसे प्रतिमा तकको आच्छादित कर दें, चाहे गर्द मिट्टी लगते लगते उनके आकारका बिलकुल परिवर्तन हो जाय परन्तु उनको कुछ चिन्ता नहीं। अपने हाथसे साफ करना तो दूर रहा लोग मंदिरोंमें हजारों रुपये जमा रहते हुए भी एकसे अधिक पुजारी नहीं रखते और मूर्तियोंकी संख्याको नित्य प्रति मान कषायके वश बढ़ाते ही चले जाते हैं।

कई मंदिरोंमें तो बिलकुल अंधेरा हो गया है। कईमें चँदोया नहीं रहा जिससे वीट प्रतिमाजीपर ही पड़ती है। कईमें चदोया बींटके बोझसे नीचे झुक गया है और उसमें धड़ियों वीट एकट्ठी हो गई है। हमको संदेह है कि यहां नित्य प्रक्षालन भी होता है या नहीं।

इस मान्दिरके अतिरिक्त एक मंदिर और एक चैत्यालय और है। आधा चैत्यालय श्वेताम्बरियोंका है। कई प्रतिमाएं प्राचीन हैं, परंतु उनपर कुछ लिखा न होनेसे ठीक पता नहीं चलता। एक प्रतिमा सं० १२९२की है। यहांसे २ मीलके अंतरपर पहाड़पर खंदार है जहां भी बहुतसी प्रतिमाएं विद्यमान हैं और कुछ गुफाएं भी बनी हुई हैं–प्रायः सब खंडित अवस्थामें हैं।

यहां एक धर्मशाला भी है परंतु उसका प्रबंध ठीक नहीं है। मैली कुचैली रहती है–जीना बहुत दूरी पर है। धर्मशालामें जो माली रहता है वह बड़ा घमंडी और मुंहफट है। यहां अनुमान६० घर जैनियोंके हैं परंतु फूटका साम्राज्य यहांपर भी प्रबल है। दो मंदिरोंके दो दल हैं। चाहे धर्म रहे या जाय परंतु दोनों अपनी अपनी मान कषायके वश डेढ़ चावलकी पृथक् पृथक् खिचड़ी पकाते रहते हैं।

यहांसे १२ मीलपर 'थूबोनजी' एक प्राचीन अतिशय क्षेत्र है उसका विवरण आगामी अंकमें दिया जायगा।

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.,
ललितपुर।

महाजनोंके मरणसमयके वचन।

"मरणः प्रकृतिः शरीरिणाम्।" ऐसा कौन शरीरधारी है जिसे मरना नहीं है? एक न दिन सबहीको मरना है। तो भी मूर्ख मनुष्य सांसारिक झगड़ोंमें रात दिन उलझे रहा करते हैं और इन्द्रियजन्य सुखों, स्वार्थमय वासनाओं और बे-मतलबके हवाई खयालोंमें अपनी जिन्दगीको उस तरह खोया करते हैं जिस तरह कि कोई उड़ाऊ आदमी अपने सारे धनको जुआ खेलकर या मौज शौकमें मस्त होकर उड़ा दिया करता है-खो दिया करता है। शायद ये लोग समझते हैं कि हमें कभी मरना ही नहीं है-हम सदा ही जीते रहेंगे। वास्तवमें ऐसे लोगोंकी अवस्था बड़ी ही करुणाजनक है।

अरे भाइयो, क्या तुम यह नहीं जानते कि मरण यह प्रकृतिका एक अव्यर्थ नियम है। इसे उसने बड़ी ही चतुराई और दूरदर्शितासे बनाया है। मरणसरीखा भय तुम्हारी आँखोंके सामने रहते भी यदि तुम सचेत नहीं होते, तो इससे बड़ा आश्चर्य और क्या होगा? तुम्हारी वे प्यारी वस्तुयें और तुम्हारे वे प्यारे मनुष्य कि जिनके लिए तुम हजारों कुकर्म करते हो, सब ही तुमसे जुदा हो जानेवाले हैं इनके साथ ही तुम्हारा यह बड़े लाड़ चावसे पाला हुआ शरीर भी मेरे पंजेके नीचे आनेवाला है, इस प्रकारकी चेता-

वनी देता हुआ यमराज तुम्हारे सामने निरन्तर ही बिगुल बजाया करता है। इतनेपर भी यदि तुम्हारे मनमें कभी मरणकी तैयारी करनेका विचार न उठता हो, तो इससे अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है?

अच्छा अब सुनो! जो महापुरुष मरणके शंखनादको निरन्तर कान लगाकर सुना करते थे और उससे डरकर चलते थे, उनके अन्तसमयके वचन सुन लो। मरणके समय उनके मुँहसे कैसे कैसे वचन निकले थे, उन्हें मन लगाकर सुन लो। मुझे विश्वास है कि यदि तुम्हारा हृदय बिलकुल पाषाण नहीं बन गया है, तो तुम्हारे जीवनको सुधारनेमें वे बड़ा काम देंगे।

(१)

शुद्धचित्त और सत्यवादी विद्वान् सर हेनरी बेन पूर्वकर्मके योगसे फाँसीपर लटकाया गया। वह बिलकुल निर्दोष और निर-पराधी था तो भी उसपर अपराध साबित हुआ। क्योंकि आज-कलके न्यायाधीशों और कानून जाननेवालोंमें यह शक्ति नहीं कि वे मनुष्यके अन्तरंगको या हृदयको देख सकें। वे केवल बाहरी साधनोंसे—चाहे वे सच्चे हों चाहे झूठे, इन्साफ करना जानते हैं। यदि सर हेनरी बेन चाहते तो झूठी गवाहियां या सुबूत तैयार करके बच सकते; परन्तु इस तुच्छ जीवनके लिए उन्होंने ऐसा करना अनुचित समझा और इसी कारण अपराधी बन कर उन्हें फाँसीकी टिकटीपर चढ़ना पड़ा। उस हृदयविदारक अवस्थामें—फांसीपर चढ़ते समय उस महापुरुषके मुँहसे निम्नलिखित वचन निकले—

"मैं परमात्माका उपकार मानता हूं कि जिस सचाईके लिए मैं इतना दुःख सहन करता हूं उस सचाईको छोड़नेके लिए मैं किसी प्रकारसे ललचाया नहीं।"

धन्य हेनरी बेन, तुम धन्य हो। जीवनकी अपेक्षा भी सत्यका मूल्य अधिक बतलाकर तुम संसारमें अपना नाम चिरस्थायी कर गये। तुम बतला गये कि सत्यकी सच्ची प्रीति किसे कहते हैं?

(२)

सेंट फ्रांसिस नामका साधु मरते समय बोला था कि—

" हे भगवन्, तू मेरे आत्माको उसके कैदखानेमेंसे बाहर निकाल कि जिससे मैं तेरा उपकार माननेके लिए और तेरा गुणगान करनेके लिए समर्थ हो सकूं। "

कैदखाने कई तरहके हैं। एक प्रकारका कैदखाना वह है जो देशके सदाचारी मनुष्योंको दुराचारियोंकी छूतसे बचानेके लिए पत्थरोंकी दीवालसे घेरकर बनाया जाता है। किसी खास तरहके विचारोंसे बिना झूठ सचका निर्णय किये जकड़ जाना यह मानसिक कैदखाना है। अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियोंकी ममता भी एक कैदखाना है। रीतिरवाजों, रूढ़ियों और सांसारिक व्यवहारोंकी गुलामगीरी भी कोई साधारण कैदखाना नहीं है। दूसरे राज्यकी ताबेदारीको राजकीय कैदखाना कहना चाहिए। आध्यात्मिक मार्गमें प्रवेश करनेमें जो रुकावट डालता है, वह शरीर आत्माका कैदखाना है। इसीलिए तो महावीर आदि महापुरुषोंने जिस दिन इस कैदखानेसे हमेशाके लिए छुट्टी पाई, उस दिन शोक या दुःख नहीं; किन्तु महोत्सव करके खुशी मनाई जाती है। तब हम इस देहको आत्माका ढँकनेवाला—इसकी शक्तिको मर्यादित कर रखनेवाला कैदखाना क्यों न कहें? उक्त साधुने इसी कैदखानेमेंसे सदाके लिए छुट्टी पानेकी इच्छा प्रगट की थी। मरते समय उसने इसे सुखका स्थान नहीं

समझा और इससे उसके लिए विलाप नहीं किया जैसा कि दूसरे लोग करते हैं।

(३)

प्रसिद्ध युद्धकुशल सर जॉन मूर जब कोरोंमें घायल होकर पड़ा तब डाक्टरोंने उसका इलाज करना चाहा। उस समय उस उदारहृदय वीरने कहा—"**नहीं, अब तुम मेरी नहीं किन्तु उन लोगोंकी चिन्ता करो–उनकी परिचर्या करो जिन्हें तुम्हारे द्वारा लाभ पहुँच सकता है।**"

अपने जीवनकी अपेक्षा दूसरोंके जीवनको जो बहुमूल्य समझते हैं, उन पुरुषोंको मरते समय और मरनेके बाद अन्तःशान्ति अवश्य मिलती है।

(४)

ट्रफाल्गरकी लड़ाईमें जब वृटिश वीर नेलसन फ्रेंचोंकी तोपके गोलेका भक्ष्य बन गया, तब उसने मरते समय शान्तिताके साथ कहा–"**मुझपर परमात्माका बड़ा भारी उपकार है कि मैं अपना फर्ज अदा करके मरता हूं।**"

अपना फर्ज अदा करनेवालेको या अपने कर्तव्यका पालन करनेवालेको जो सबसे बड़ी इनाम या पारितोषिक मिलता है वह गुप्तसंतोषके रूपमें या अन्तःशान्तिके रूपमें मिलता है। खेद है कि मूर्ख दुनिया अभी तक इस अमूल्य पारितोषकका मूल्य नहीं समझी है और इसी लिये वह केवल नाम या कीर्तिके लिए ही कर्तव्य करती है। यह जीवन कर्तव्यपालनका युद्धक्षेत्र है जिसमें निरन्तर ही घमसान मचा रहता है। इस युद्धमें बराबर मार खानी पड़ती है, हाथका ग्रास छोड़कर भूखे मरना पड़ता है, विघ्नबाधाओंके

पर्वत लांघना पड़ते हैं और निन्दा तथा अपकीर्तिके बिगुल कानोंके परदे फाड़ा करते हैं: परन्तु इस युद्धकी समाप्तिमें जो महान् पारितोषक मिलता है, उसका वर्णन ज्ञानी जनोंसे भी नहीं हो सकता।

प्यारे पाठको, तुम चाहे ग्रामीण हो—चाहे नागरिक हो, चाहे त्यागी हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे श्रीमान् हो, चाहे गरीब हो, चाहे प्रजा हो, चाहे शासक हो, यह बात निरन्तर ध्यानमें रक्खो कि चाहे जैसा समय आ पड़े अपने आत्माका स्वरूप विचारनेमें और कर्तव्य कर्मपालन करनेमें कभी प्रमाद न होने पावे। यदि मनुष्य केवल एक कर्तव्य पालनका ही छोटासा मंत्र सिद्ध कर ले तो उसकी, आधि, व्याधि और उपाधियोंकी सारी तकलीफें बिलकुल हलकी हो जायँ।

(९)

ईस्वी सन् १६०० के लगभग इटलीमें गोरडेनो ब्रनो नामका विद्वान् हो गया है। वह बड़ा भारी ज्योतिषी और वैज्ञानिक था। उसने कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ बनाये थे। ईसाईयोंकी धर्म-पुस्तकसे जो सिद्धान्त विरुद्ध पड़ते थे उनका वह निडर होकर प्रचार करता था। वह कहता था कि हमारे धर्मशास्त्र (बाइबिल) का उद्देश्य विज्ञान सिखाना नहीं, केवल सदाचार सिखलाना है—वह ज्योतिषविद्या और पदार्थविज्ञानका प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। पादरियोंके छल कपटों और असद्विचारोंसे उसे बड़ी घृणा थी। वह मनुष्योंके विश्वासके विरुद्ध नहीं किन्तु बनावटी विश्वासके विरुद्ध लड़ता था। इन सब बातोंसे वह धर्मगुरुओंका कोपभाजन हुआ। पहले वह छह वर्षके लिए कैद

कर दिया गया और अन्तमें नास्तिकताका दोष लगाकर जीता जलवा दिया गया ! मृत्युकी आज्ञा पाते समय उसने न्यायाधीशोंसे कहा था—

" तुम्हारा दण्ड स्वीकार करनेमें जितना मैं डरता हूं, शायद तुम उससे कहीं बहुत अधिक डरते हो ! मैं सत्यके लिए मरता हूं इसलिए मुझे डर नहीं; परन्तु तुम सत्यका घात करते हो इसलिए तुम्हें बहुत बड़ा डर है—क्योंकि इस घातसे सत्य और भी अधिक प्रबल होगा।"

सत्यके लिए इस तरह निर्भय होकर जीवन दे देनेवाले पुरुष हमारे देशमें न जाने कब उत्पन्न होंगे। असत्य राक्षसकी वेदीपर जब तक ऐसे बलिदान नहीं चढ़ाये जाते, तब तक सत्यकी महिमासे लोग अज्ञ रहते हैं।

'जैनहितेच्छु ।'

जैनलाजिक (न्याय)।

सिद्धसेनगणि (ईस्वी सन् ६००)

९३—सिद्धसेनगणि जो श्वेताम्बर आम्नायके थे उमास्वाती कृत तत्वार्थाधिगमसूत्रकी तत्वार्थटीका नामक टीकाके रचयिता थे। इसमें प्रमाण और नयका विशदरूपसे विवेचन किया गया है। सिद्धसेनगणि भास्वामीके शिष्य थे जो सिंहसूरिके पट्टाधि-

---

१ खंभातके शान्तिनाथके मन्दिरमें तत्वार्थटीकाके एक ताड़पत्रका पिटर्सन साहबने अपनी तीसरी रिपोर्टके पृष्ठ ८६—८९ पर उल्लेख किया है।

२ **तत्पादरजोऽवयवःस्वल्पागमशेमुषीकबहुजाड्यः।
तत्त्वार्थशास्त्रटीकामिमां व्यधात् सिद्धसेनगणिः ॥ ७ ॥**

(तत्वार्थटीका–पिटर्सनसाहबकी तीसरी रिपोर्ट, पृष्ठ ८५)

कारी थे और दिनगणिके शिष्य थे । सिद्धसेनगणि प्रायः देवर्धिगणि क्षमाश्रमणके समकालीन बतलाये जाते हैं जो महावीरस्वामीके ९८० वर्ष पश्चात् अर्थात् ईस्वी सन् ४५३ में हुए हैं। परन्तु उन्होंने स्वयं अपनी तत्वार्थ टीकामें सिद्धसेन दिवाकरका जिक्र किया है जो विक्रमादित्यके समकालीन सिंहगिरि अथवा सिंहसूरिके पीछे हुए हैं, अतएव मैं अनुमान करता हूं कि वे ईस्वी सन् ५३३ के पश्चात् अर्थात् ईस्वी सन् ६०० के लगभग हुए हैं।

समन्तभद्र (ईस्वीसन् ६००)

५४—समंतभद्रस्वामी जो दक्षिणके दिगम्बराम्नायमें हुए हैं, उमास्वातीके तत्वार्थाधिगमसूत्रकी प्रसिद्ध टीका गन्धहस्तिमहाभाष्यके रचयिता हैं। इस टीकाकी भूमिका देवागमस्तोत्र या आप्तमीमांसा हैं जिसमें अद्वैतवादादि समकालीन दर्शनोंकी समालो-

---

१ सिंहसूरिको पिटर्सनसाहब सिंहगिरि बतलाते हैं जो विक्रमादित्यके समकालीन थे। (पिटर्सनसाहिबकी चौथी रिपोर्ट)

मुनिधर्मविजय और उनके शिष्य इन्द्रविजय कहते हैं कि सिद्धसेनगणि देवर्धिगणि क्षमाश्रमणके–जो महावीर स्वामीके निर्वाणके ९८० वर्ष पश्चात् हुए, समकालीन थे। (देखो हर्नलसाहब द्वारा सम्पादित उवासगदसांग)

२ पाण्डवपुराणमें इनको देवागमस्तोत्रके कर्ता लिखा है:—

समन्तभद्रो भद्रार्थो भाति भारतभूषणः॥
देवागमेन येनात्र व्यक्तो देवागमःकृतः ॥

(पाण्डवपुराण–पिटर्सनसाहबकी चौथी रिपोर्ट पृष्ठ १५७)

३ अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुद्ध्यते ॥
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात् प्रजायते ॥ २४ ॥

(आप्तमीमांसा, श्लोक २४)

चनाके अतिरिक्त न्यायसिद्धान्तोंका पूर्णरूपसे विवेचन किया है¹। हिन्दू दार्शनिक वाचस्पति मिश्रने शंकराचार्यके वेदान्तसूत्रकी टीकामें स्याद्वादका खण्डन करते हुए आप्तमीमांसाका उल्लेख किया है।

९९ समंतभद्र जो कविकी पदवीसे भूषित थे और जिनके ग्रन्थोंकी विद्यानन्द² और प्रभाचन्द्रस्वामीने टीकायें लिखीं हैं,

---

१ वाचस्पतिमिश्र अपनी शंकराचार्यके वेदान्तसूत्रकी टीका 'भामती' में निम्नलिखित श्लोक लिखते हैं:—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किं व्रत चिद्विधेः॥
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकृत्॥

(भामती, बिब्ल्योथिकाइंडिका, पृष्ठ ४५८) यही श्लोक आप्तमीमांसामें इस प्रकार आता है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंव्रतविद्विधः॥
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः॥

(जयपुर निवासी मिष्टर जैन वैद्यद्वारा प्राप्त आप्तमीमांसाकी हस्तलिखित प्रति श्लोक १०४)

२. विद्यानन्द अपनी आप्तमीमांसाकी टीका आप्तमीमांसालंकृति या अष्टसहस्रीके अन्तिम भागमें समन्तभद्रस्वामीका इस तरह उल्लेख करते हैं—

येनाशेषकुनीतिवृत्तिसरितः प्रेक्षावतां शोषिताः
सद्वाच्येऽप्यकलंकनीतिरुचिरास्तत्वार्थसार्थद्युतः।
स श्रीस्वामिसमन्तभद्रयतिभृत् भूयात्विभुर्भानुमान्
विद्यानन्दफलप्रदोऽनघधियां स्याद्वादमार्गाग्रणीः॥ २१८

(आप्तमीमांसालंकृति टीका, गवर्नमेन्ट संग्रह, एशियाटिक सोसायटी बंगाल, नम्बर १५२५)

प्रभाचन्द्रस्वामी अपनी रत्नकरण्डकी (या उपासकाध्ययनकी) टीकामें कहते हैं कि:—

युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्ड (जो उपासकाध्ययन भी कहलाता है) स्वयम्भूस्तोत्र और चतुर्विंशतिजिनस्तुतिके भी कर्त्ता हैं। जिनसेन-स्वामीने आदिपुराणमें–जो ईस्वी सन् ८३८ के लगभग लिखा गया है समन्तभद्र स्वामीको स्मरण किया है और हिन्दूसिद्धान्तकार कुमारिलने भी उनका जिक्र किया है। कहा जाता है कि कुमारिल जो बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्तिके समकालीन थे सातवीं शताब्दीमें हुए हैं। इसलिए समन्तभद्र ६०० ईस्वीके लगभगके खयाल किये जाते हैं।

९६—आप्तमीमांसामें ११९ संस्कृत श्लोक हैं और १० परिच्छेद हैं जिनमें स्याद्वाद अथवा सप्तभंगी नयका विशद रूपसे वर्णन किया है। प्रथम दो भंग अर्थात् स्यादस्ति और स्यान्नास्ति —अस्ति अर्थात् भाव और नास्ति अर्थात् अभाव इनके सम्बन्धमें अति रुचिकर विवेचन किया गया है।

९७—अभावके ४ भेद हैं:—१ प्रागभाव, अर्थात् मिट्टीका घट होने पर अभाव हो जाता है अतएव मिट्टीकी अपेक्षा घटका प्रागभाव है। २–प्रध्वंसाभाव अर्थात् घटकी अपेक्षा मिट्टीका

येनाज्ञानतमो विनाश्य निखिलं भव्यात्मचेतोगतं
सम्यग्ज्ञानमहांशुभिः प्रकटितः सागारमार्गोऽखिलः।
स श्रीरत्नकरण्डकामलरविः संसृत्सरिच्छोषको
जीयादेवसमन्तभद्रमुनिपः श्रीमत्प्रभेन्दुर्जिनः॥

(उपासकाध्यन प्रभाचन्द्रकृत टीकासहित पिटर्सन साहबकी चौथी रिपोर्टमें पृष्ठ १३७–३८.)

१. देखो डॉक्टर आर. जी. भाण्डारकरकी सन् १८८३–८४ की हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथोंकी रिपोर्ट और जे. बी. बी. आर. ए. एस. सन् १९८२ पृष्ठ २२७।

प्रध्वंसाभाव है। ३—अन्योन्याभाव अर्थात् घटकी अपेक्षा भूतलका अभाव और भूतलकी अपेक्षा घटका अभाव। ४—अत्यन्ताभाव अर्थात् अजीव पदार्थ जीवस्वरूप नहीं है।

देखा जाता है कि यदि केवल अस्तित्वको ही मानें और नास्तित्वका अभाव मान लें तो पदार्थ सर्वात्मक, अनादि, अनंत, अस्वरूप और अभाव हो जायँगे जैसेः—यदि प्रागभावको न मानें तो कार्य और द्रव्य आदिरहित हो जायँगे। यदि प्रध्वंसाभावका अभाव मानें तो पदार्थ अंतरहित हो जायँगे। यदि अन्योन्यभावका अभाव मानें तो सब पदार्थ एकात्मक और सर्वात्मक हो जायँगे और यदि अत्यन्ताभावका अभाव मानें तो पदार्थ सदा और सर्वत्र पाए जायँगे।

९८—इसी प्रकार यदि केवल नास्तिको ही मानें और अस्तित्वका अभाव मान लें तो किसी वस्तुका मानना अथवा न मानना

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमभावकम् ॥ ९ ॥
कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥ १० ॥
सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवायेन व्यपदेश्येत सर्वथा ॥ ११ ॥
अभावैकान्तपक्षेपि भावापह्नववादिनाम्।
बोधवाक्यप्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥ १२ ॥
विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ १३ ॥
कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च उपयोगान्न सर्वथा ॥ १४ ॥

(जयपुरनिवासी मिष्टर जैनवैद्यके द्वारा प्राप्त हस्तलिखित आप्तमीमांसा, श्लोक, ९–१४.)

असंभव है। क्योंकि जब कोई पदार्थ ही नहीं, तब किसके द्वारा माना जाय और किसके द्वारा निषेध किया जाय। यदि इसके विपरीत अस्तित्व और नास्तित्व जो एक दूसरेसे सम्बन्ध नहीं रखते हैं एक ही पदार्थमें माने जायँ तो पदार्थ अवक्तव्य हो जाता है। अतएव सत्य इस प्रकार है:—

१—एक पदार्थ अस्तिरूप है, किसी अपेक्षासे।

२—वही पदार्थ नास्तिरूप है, किसी दूसरी अपेक्षासे

३—वही पदार्थ अस्तिरूप भी है और नास्तिरूप भी है किसी तीसरी अपेक्षासे।

४—वही पदार्थ अव्यक्तव्य है किसी चौथी अपेक्षासे।

५—वही पदार्थ अस्ति अवक्तव्य है किसी पाँचवीं अपेक्षासे।

६—वही पदार्थ नास्ति अवक्तव्य है किसी छट्ठी अपेक्षासे।

७—वही पदार्थ अस्तिरूप भी है और नास्ति अवक्तव्य भी है किसी सातवीं अपेक्षासे।

अकलङ्कदेव (ईस्वीसन् ७५० के लगभग)

५८—अकलंकदेव या अकलंकचन्द्र दिगम्बराम्नायके प्रसिद्ध नैयायिक हुए हैं। वे कवि[1]की पदवीसे भी विभूषित थे (एक आदरणीय पदवी जो प्रसिद्ध और उत्तम लेखकोंकी दी जाती है।) अकलंकदेवने समन्तभद्रस्वामीकी आप्तमीमांसापर अष्टशती[2] टीका लिखी है जो जैनसिद्धान्तका अमूल्य रत्न है। इसमें मुख्यतया न्यायका ही वर्णन किया गया है। माणिक्यनन्दिका परी-

---

१ कविशब्दकी परिभाषाके लिये देखो आर. जी. भाण्डारकरकी १८८३–८४ की हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथोंकी रिपोर्ट, पृष्ठ १२२।

२ अष्टशतीकी हस्तलिखित प्रति जयपुर निवासी मिष्टर जैन वैद्यद्वारा प्राप्त।

क्षामुख सूत्र एक दूसरे न्यायग्रन्थ "न्यायविनिश्चय" के आधार पर है। न्याय विनिश्चय भी अकलंकदेवकृत है और निम्नलिखित ग्रन्थोंके कर्त्ता भी वे ही हैं। लघ्यस्त्रय, अकलंकस्तोत्र, स्वरूप-सम्बोधन, प्रायश्चित्त। लघु[1] समन्तभद्रने अपनी अष्टसहस्रीविषमपदतात्पर्यटीकामें अकलंकदेवको "सकलतार्किकचक्रचूडामणि" कहा है।

९०—पाण्डव[2] पुराणमें एक कथाका जिक्र किया गया है जिसके अनुसार अकलंक एक बौद्ध शत्रुसे वाद विवादमें फँस गये थे। यह जानकर कि शत्रुको घटके अन्दर छिपी हुई मायादेवी उभार रही है कहते हैं उन्होंने घड़ेमें पैरसे ठोकर मारकर उक्त देवीके उभारने या सहायता देनेका अन्त कर दिया।

९१—यद्यपि अकलंक[3] धर्मकीर्तिके समसामयिक कहे जाते हैं किन्तु वे उनसे बहुत पीछे हुए हैं। वे राष्ट्रकूट (राठौरराजा) शुंभतुङ्ग या कृष्णराज प्रथमके समकालीन माने जाते हैं। चूंकि कृष्णराजका पुत्र

---

१ देखो, लघुसमन्तभद्रकृत अष्टसहस्रीविषमपदतात्पर्यटीका जिसका पिटर्सन साहबने अपनी पांचवीं रिपोर्टके पृष्ठ २१७ पर उल्लेख किया है।

२ अकलंकोऽकलंकः स कलौ कलयतु श्रुतम्।
पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता॥
(पाण्डवपुराण—पिटर्सनकी चौथी रिपोर्ट पृष्ठ १५७)

३ वाचकमुख्यविरचितानि सकलशास्त्रचूडामणिभूतानि तत्वार्थ-सूत्राणीति यद्येवमकलंकधर्मकीर्त्यादिवत् प्रकरणमेव किं नारभ्यते किमनया सूत्रकारत्वाहोपुरुषिकया।
(हेमचन्द्रकृत प्रमाणमीमांसा—पिटर्सनकी ५ वीं रिपोर्ट पृष्ठ १४८)

४ देखो, रायल एशियाटिक सोसायटी–बम्बई शाखाके जर्नलकी जिल्द १८, सन् १८९२ में के. बी. पाठकका "भर्तृहरि और कुमारिल" शीर्षक लेख।

गाविन्द द्वितीय शक संवत् ७०५ या ईस्वीसन् ७८३ में हुआ है अत एव कृष्णराज प्रथम और उसके समकालीन अकलंक ईस्वीसन् ७५० के लगभग हुए होंगे।

विद्यानन्द (ईस्वीसन् ८०० के लगभग)

६२ विद्यानन्द जिसका हिन्दू सिद्धान्तकर माधवाचार्यने[2] जिक्र किया है पाटलीपुत्रके एक दिगम्बर आम्नायके नैयायिक थे। वे आप्तमीमांसालंकृतिके—जो अष्टसहस्रीके नामसे प्रसिद्ध है—कर्त्ता हैं। अष्टसहस्री[3] आप्तमीमांसाकी वृहत् उपटीका है और इसमें भिन्न न्याय सिद्धान्तोंका विशद रूपसे विवेचन किया गया है। विद्यानन्दने अपनी अष्टसहस्रीके आदिमें समन्तभद्रस्वामी और अन्तमें अकलंकदेवका परोक्षरूपसे जिक्र किया है; किन्तु १० वें

---

१ देखो, आर. जी. भाण्डारकरका दक्षिणका प्रारम्भिक इतिहास, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ७४।

२ देखो, कबिल और गफ़ साहब द्वारा अनुवादित सर्वदर्शनसंग्रहमें जैनधर्मके सम्बन्धका परिच्छेद, ५६ पृष्ठ।

३ अष्टसहस्रीके प्रारम्भका श्लोक:—

श्रीवर्धमानमभिवन्द्य समन्तभद्रमुद्भूतबोधमहिमानमनिन्द्यवाचम्। शास्त्रावताररचितास्तुतिगोचराप्तमीमांसितं कृतिरलंक्रियते मयास्य॥

अष्टसहस्रीका अन्तिम श्लोक:—

श्रीमदकलङ्कशशधरकुलविद्यानन्दसम्भवा भूयात्।
गुरुमीमांसालंकृतिरष्टसहस्री सतामृद्ध्यै॥

दशवें अध्यायका श्लोक:—

श्रीमदकलङ्कविवृतां समन्तभद्रोक्तिमत्र संक्षेपात्।
परमागमार्थविषयामष्टसहस्रीं प्रकाशयति॥

(हस्तलिखित अष्टसहस्री, बंगाल एशियाटिक सोसायटी)

अध्यायमें उन्होंने साफ लिखा है कि हमने आप्तमीमांसाकी टीका बनानेमें अकलंकदेवकी अष्टशतीकी सहायता ली है । प्रमाण-परीक्षा भी उन्हींकी बनाई हुई है और वे ही श्लोकवार्त्तिक और आप्तपरीक्षाके कर्त्ता

६२—उन्होंने अपनी अष्टसहस्रीमें सांख्य, योग्य, वैशेषिक, अद्वैत, मीमांसक, सौगत ताथागत या बौद्धके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है और दिग्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति,[१] प्रज्ञाकर[२], भर्तृहरि, शबरस्वामी, प्रभाकर और कुमारिलका भी जिक्र किया है । विद्यानन्द पात्रकेसरी या पात्रकेशरीस्वामीके नामसे प्रसिद्ध थे जिनकी

१ यदुक्तं धर्मकीर्तिना—

अतद्रूपपरावृत्तवस्तुमात्रप्रवेदनात् ।
सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गं भेदाप्रतिष्ठितेः ॥

(अष्टसहस्री अध्याय १)

अर्थोपयोगेऽपि पुनः स्मार्तं शब्दानुयोजनम् ।
अक्षधीर्यद्यपेक्षेत सोऽर्थो व्यवहितो भवेत् ॥

(अष्टसहस्री अध्याय १)

२ प्रज्ञाकरस्येदं वचः—

क्रमप्रतीतेरेवं स्यात् प्रथमं भावनागतिः ।
तत्सामर्थ्यात्पुनः पश्चात् यतः कर्ता प्रतीयते ॥

(अष्टसहस्री अध्याय १)

३ न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिवाभाति सर्वं शब्दे प्रतिष्ठितम् ॥

(यह भर्तृहरिका वाक्यपदीयका श्लोक अष्टसहस्रीमें उद्धृत किया गया है । देखो जे. बी. बी. आर. ए. एस. सन् १८९२ पृष्ठ २२०)

जिनसेन स्वामीने-आदिपुराणमें[1]-जो शक सम्वत्[2] ७६० अर्थात् ईस्वी सन् ८३८ में लिखा गया है-प्रशंसा की है। ऐसा जाना जाता है कि वे नवीं शताब्दीके प्रारम्भमें पाटलिपुत्रमें[4] हुए हैं।

(क्रमशः)

—दयाचंद्र गोयलीय बी. ए.

१ भट्टाकलङ्कश्रीपालपात्रकेसरिणां गुणाः।
विदुषां हृदयारूढा हारायन्तेऽतिनिर्मलाः ॥ ५३ ॥

(आदिपुराण के. बी. पाठक द्वारा उद्धृत, जे. बी. बी. आर. ए. एस. सन् १८९२ पृष्ठ २२२)

मिष्टर पाठकने यह दिखलानेके लिए कि विद्यानंद और पात्रकेसरी एक ही थे सम्यक्त्व-प्रकाशका हवाला दिया है:—

तथा श्लोकवार्तिके विद्यानंद्यपरनाम पात्रकेसरिस्वामिना यदुक्तं तच्च लिख्यते तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। (J. B. B. R. A. S. for 1892 पृष्ठ. २२२—२२३)

२-३—देखो सन् १८९२ के. J. B. B. R. A. S. पृष्ठ. २२२-२२९ में मिष्टर के. बी. पाठकका "भर्तृहरि और कुमारिल" शीर्षक लेख।

४-देखो ब्रह्मनेमिदत्तका कथाकोश, पात्रकेसरी उपनाम विद्यानंदका जीवनचरित।

ऋण-शोध ।

(१)

भाग्यके फेरसे कमलाप्रसादको नौकरी करना पड़ी। वह बिलकुल गरीबका लड़का न था—उसका पिता एक ऐसी जायदाद छोड़ गया था कि यदि वह नौकरी न करता, तो भी आनन्दसे अपने दिन बिता सकता। परन्तु पिताकी मृत्यु होते ही समस्त जायदाद उसके बड़े भाई बिहारीलालके हाथ लगी। उस समय कमलाप्रसादकी उमर बहुत छोटी थी। बिहारीलालने जायदाद पाते ही उसे थोड़े ही दिनोंमें फूंक दी—उसकी बुरी चालचलनका और कुसंगका यह परिणाम हुआ कि घरकी सारी जायदाद बिक गई और अन्तमें रहनेका घरद्वार भी उसने गिरवी रख दिया। तो भी उसकी आँख न खुली। अपनी मुराद और शौक पूरा करनेके लिए वह चोरी तक करने लगा और एक बार गिरफ्तार होकर उसे जहलकी हवा भी खानी पड़ी। जहलसे छूटते ही वह न मालूम कहां चला गया। किसीको उसका पता न लगा। गाँवके सब आदमी उससे निश्चिन्त हो गये—उनके सिरसे मानो एक आपत्ति टल गई। परन्तु उसकी माताको उसके जानेसे जो विषम पीड़ा हुई उसे वह ही जानती थी—वह बिहारीके लिए रातदिन रोने लगी।

इस समय गृहस्थीका सारा भार कमलाप्रसादके ऊपर पड़ा। कमलाप्रसाद अभी लड़का है, वह गृहस्थीके कामकाजोंसे बिलकुल अनजान है। दोनों वक्त दो ग्रास खानेकी बात तो दूर रही उसे अपना मस्तक रखने तकको भी कहीं जगह नहीं है, इसलिए उसे नौकरी करनेकी चेष्टा करना पड़ी। बड़ी कठिनाईसे उसे एक दूर ग्राममें नौकरी मिल गई। वह अपनी मा और बहिनको छोड़कर अपनी

नौकरीकी जगह चला गया। जाते समय माने उसका हाथ पकड़के कहा–"बेटा, बड़े भाईकी खबर न भूल जाना–हाय! मेरा प्यारा बेटा कहां गया?" ऐसा कहते कहते उसके नेत्रोंसे टप टप आँसू गिरने लगे। कमलाप्रसादने माको ढाढस बँधाकर कहा–"मा, चिन्ता न करो–भैयाका पता जरूर लगाऊंगा और उसे बहुत जल्दी तुम्हारे सामने ला कर खड़ा कर दूंगा।"

कमलाप्रसाद अपनी मातासे यह बात कह तो आया; परन्तु भैयाका पता लगाना उसके लिए बिलकुल असंभव था। वह सारे दिन कामकाजमें फँसा रहता था, फिर खोज करे तो कब? रहरह कर–बीचबीचमें उसका मन अपनी माताके शोकसे कातर हो उठता था; परन्तु वह क्या करे–निरुपाय था। वह सोचता था कि यदि कोई दिन ऐसा आवे कि दूसरेकी दासवृत्ति न करना पड़े तो अवश्य भैयाकी खोज करके अपनी माका दुःखमोचन कर सकूंगा–नहीं तो इस जन्ममें तो कुछ आशा नहीं।

कमलाप्रसादका मालिक कमलाप्रसादपर अंतःकरणसे स्नेह करता था। एक बड़े घरका लड़का आपत्तिमें पड़कर नौकरी करने आया है ऐसा सोच करके उसके मनमें सहानुभूति भर आती थी और वह सब तरहसे कमलाप्रसादकी भलाईकी चेष्टा किया करता था। मौके मौकेपर कमलाप्रसाद जो दूसरा काम करता था उसके बदलेमें वह उसे अलहिदा मिहनताना देता था। इसके सिवा मालिकके घरपर जो उत्सवादि होते थे उनमें भी दूसरे नौकरोंकी अपेक्षा कमलाप्रसादको अधिक पारितोषिक मिल जाता था। इस तरह कुछ ऊपरी आमदनी हो जानेके कारण वह अपनी मा, बहिनके खाने पीनाका खर्च निकाल करके भी थोड़ा थोड़ा रुपया एकट्ठा करने लगा।

कमलाप्रसादने हिसाब लगाकर देखा कि—एक हजार रुपयामें उसकी रहनकी हुई जमीन और मकानका उद्धार हो सकता है। ऐसा होनेपर फिर उसे नौकरी करनेकी आवश्यकता न रहेगी—अपनी जमीनकी फसलकी आमदनीसे ही उसकी गुजर भली भाँति होने लगेगी और उस समय निश्चिन्त होकर वह अपने भाईका पता भी लगा सकेगा। बस, यदि वह अपनी जमीन, घर और भाईका उद्धार कर सका, तो फिर और क्या चाहिए? उस की सारी अभिलाषायें पूरी हो जायँगी।

ये हजार रुपये कैसे और कितने दिनोंमें एकट्ठे होंगे—रात दिन वह यही सोचता रहता था। आमदनी अधिक नहीं है इस लिए थोड़ा थोड़ा करके ही बहुत दिनों तक संचय करना पड़ेगा। यदि कोई दूसरा आदमी होता तो इसे असम्भव कहके छोड़ देता—वह कहता कि कहीं बिन्दु बिन्दु जलसे समुद्र भर सकता है? परन्तु कमलाप्रसाद धैर्यसे इस असाध्यकी भी साधनाका प्रण करके बैठा था। इसके बिना उसका निस्तार न था।

बहुत दिनों तक राह देखते देखते अंतमें वही शुभ दिन आगया; इस मासका वेतन मिलते ही उसके हजार रुपये पूरे हो जावेंगे। धीरे धीरे देखते देखते वह मास भी पूरा हो गया; कमलाप्रसादके आनन्दकी आज सीमा नहीं है—अब उसके जीवनकी सारी इच्छायें सफल होना चाहती हैं।

कमलाप्रसादके जमा किये हुए रुपये उसके मालिकके पास रहते थे। जिस दिन एक हजार रुपये पूरे हुए उसी दिन वह अपने मालिकके पास विदा लेनेके लिए पहुंचा। वह इसकी सब

बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ; कमलाप्रसादके दासत्वके दिन पूर्ण हो गये यह जानकर उसके मनका बोझा हलका होगया।

कमलाप्रसाद अब अधिक विलम्ब नहीं कर सकता—इतने दिनों तक धैर्य रखकरके भी अब उसका मन रंचभर भी धीरज़ नहीं रख सकता। इसी समय वह रुपये लेकरके अपने गांवको लौटना चाहता है। उसके मालिकने कहा—"अच्छा तुम जाना चाहते हो तो चले जाओ; परन्तु इतने रुपये अकेले साथमें मत ले जाओ क्योंकि रास्ता अच्छा नहीं है—चोर डांकुओंका भय है। इस समय कुछ रुपये साथमें लेते जाओ—और फिर इसी तरह थोड़े थोड़े करके सब रुपये ले जांना।"

कमलाप्रसाद अब ठहर नहीं सकता। इस समय तक क्या वह थोड़ा ठहरा रहा है? और अब फिर भी ठहरना—अब भी विलम्ब? अब ऐसा नहीं हो सकता। उसने कहा "क्षमा कीजिए—कुछ डर नहीं, मैं बहुत सावधानीके साथ रुपया ले जाऊंगा।" मालिनके एक वार फिर भी समझानेकी चेष्टा की। कमलाप्रसादने अपनी मालिककी बात पहले कभी नहीं टाली थी, वह यह भी जानता था कि वे जो कुछ कहते हैं वह मेरी ही भलाईके लिए कहते हैं; किन्तु तो भी वह आज अपने मनकी अधीरताको दमन न कर सका।

मालिकने उसके सब रुपये लाकर उसके सुपुर्द कर दिये। रुपयोंको हाथमें लेते ही ऐसा मालूम होने लगा कि मानों वे उसके चिरपरिचित बन्धु हैं! वे सबके सब उसके मनमें बसे हुए हैं—देखते ही वह उन्हें पहचान सकता है! किस रुपयामें किस जगह दाग है, कौन किस ज़गह घिसा है, कौन चमचमाता है तथा

कौन मैला है—सब हीं वह जानता है ! यहां तक कि वह यह भी कह सकता है कि कौन रुपया उसे अपने मालिककी कन्याके विवाहके समय इनाममें मिला था और कौन पुत्रके उत्पन्न होनेके समय। बहुत दिनोंके पीछे प्यारे बन्धुके मिलनेसे जैसा आनन्द होता है रुपयोंको देखकर कमलाप्रसादको आज वैसा हीं आनन्द होने लगा !

इन रुपयोंको खूब सावधानीसे बाँधकर वह उसी रातको अपने घरकी ओर चल दिया। सबेरेतक ठहरना उसके लिए असह्य हो उठा। जाते समय उसके मालिकने कहा—"तुम अपने साथ एक हथियार लिये जाओ, न मालूम कब कौनसी आपत्ति आ जावे" ऐसा कहके उसने एक अच्छी तलवार निकालकर उसकी कमरसे बाँध दी।

कमलाप्रसाद घरसे बाहर हुआ। गांवके बीचमेंसे जाते जाते उसके परिचित घर, घाट, रस्ता आदि उससे एक एक करके विदा लेते जाते थे और मानो वह सबहींसे मन हीं मन कहता जाता था—अच्छा भाई, अब मैं जाता हूं ! मैं जाता हूं !

(२)

कमलाप्रसाद जा रहा है। इस समय वह प्रसन्न नहीं है उसे बार बार रुलाई आती है। रह रह कर एक वेदना उसके मनको दुखित कर रही है कि—मैं घर जाकर अपनी मासे क्या कहूंगा ? वह कुछ रुपयोंकी आशा किये तो बैठी हीं नहीं होगी। मैं आते समय भैयाको खोजकर घर लौटा लानेका ढाढस दे आया था—मा उसी भरोसे राह देखती बैठी होगी ! कुछ दूर चल कर उसने अपने मनमें

सोचा—खैर, इतने दिन राह देखी है, दो दिन और सही—देशमें पहुंचते ही मैं भैयाको खोज लानेका अवश्य ही प्रबन्ध करूंगा।

ग्राम पीछे रह गया। आगे एक बड़ा भयानक जंगल है। उसी जंगलके बीचों बीच एक रास्ता है, उसी रास्तासे वह जा रहा है। देखते देखते रात अधिक होगई—अंधकार क्रमशः बढ़ने लगा; कहीं भी प्रकाशका चिन्ह नहीं दिखाई देता। वृक्ष मानों नीचेसे ऊपरतक अंधकारकी राशिमें डूब गये हैं। अपना शरीर भी आपको दिखलाई नहीं देता। परन्तु कमलाप्रसादके मनमें इतनी उतावली है कि कोई भी बाधा उसको निरुत्साहित नहीं कर सकती; वह उस अन्धकारको ठेलता हुआ बराबर चला जा रहा है।

उस घोर अंधकारमें चलते चलते वह कब रास्ता भूल गया इसकी उसे कुछ भी खबर नहीं। अंतमें जब वृक्षकी डालियोंने उसके शरीरमें लगकर उसकी गतिको रोक दिया, तब वह अचानक भोंचकसा होकर खड़ा हो गया और रास्ता ढूँढ़नेके लिए चारों ओर भटकने लगा; परन्तु रास्ता नहीं मिला। खोजते खोजते वह थक गया और इधर उधर फिरते रहनेसे धीरे धीरे वह यह भी भूल गया कि मैं किस ओरसे आया था और किस ओर जाऊंगा! कभी कोई एक रास्ता सा दिखाई पड़ता है और उस ओर चलता है कि फिर जंगलमें जा फँसता है। इस तरह भटकते भटकते उसे अचानक किसी मनुष्यके आनेकी आहट सुनाई पड़ी—मानों उस अंधकारको चीरता हुआ कोई उसीकी तरफ बढ़ा आ रहा है। पास आते ही कमलाप्रसादने देखा कि एक जंगली शिकारी है।

उसे देखकर कमलाप्रसादके प्राणोंमें प्राण आ गये! उसने उतावलीसे पूछा—भाई, क्या तुम मुझे रास्ता बतला सकते हो?

शिकारीने उसे नीचेसे ऊपर तक तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर पूछा–तुम्हें कहां जाना है?

कमलाप्रसादने अपने गांवका नाम बतला दिया।

शिकारी उसको थोड़ी दूर साथ लिये हुए एक रास्तेपर आ पहुंचा–और फिर बोला "इसी सामनेके रास्तेसे बराबर उत्तरकी तरफ चले जाओ।"

कमलाप्रसाद उसी रास्तेसे चलने लगा। धीरे धीरे थकावटसे उसका शरीर शिथिल होने लगा–पैरोंने जबाब दे दिया। इतनेमें उसे थोड़ी दूरपर एक फूसका घर दिखाई दिया। उसमेंसे एक मंद प्रकाशकी रेखा बाहरके घोर अंधकारके ऊपर पड़ रही है। कमलाप्रसाद धीरे धीरे उसी झोपड़ीकी ओर चलने लगा। देखा उसमें एक स्त्री बैठी बैठी कपड़े सीं रही है। इतनी रात होनेपर भी शयन करनेकी ओर उसका कुछ भी लक्ष्य नहीं जान पड़ता। वह तन्मय होकर काम कर रही है। कमलाप्रसादने उससे कहा—"मैं थका हुआ पथिक हूं। आज रातके लिए क्या मुझे यहां स्थान मिल सकता है?"

स्त्री कुछ समय इसकी ओर देखकर रह गई। फिर बड़े विस्मयसे बोली "इतनी रातको इस रास्तेसे तुम कैसे आये?"

कमलाप्रसाद—"मैं जगलमें रास्ता भूल गया था–भाग्यसे एक शिकारीने मुझे यह रास्ता बतला दिया है।" इतना कहके वह बैठ गया—और खड़ा नहीं रह सका।

कुछ समय तक रमणी चुपचाप न मालूम क्या सोचती रही। कुछ इधर उधर करने लगी और अन्तमें वह यहां वहां चारों ओर देखकर दबी जबानसे बोली—"जानते हो, तुम यहां कहां आ पहुँचे हो?"

कमलाप्रसाद—(स्त्रीके मुखकी ओर देखकर) नहीं तो? यह कौनसी जगह है?

रमणी—यह डांकूका घर है। जिस शिकारीने तुम्हें रास्ता बतलाया है वह डांकू है। यह उसीका घर है।

कमलाप्रसाद—(घबड़ाकर) तो अब मैं क्या उपाय करूं?

रमणी—उपाय तो कुछ भी नहीं दिखता—वह तुम्हारे पीछे पीछे आता होगा और आना ही चाहता है।

उसने इतना कहा ही था कि बाहरसे किसीके आनेकी आहट सुन पड़ी। स्त्रीने घबड़ाहटके साथ पथिकसे कहा—"उठो, उठो, देरी न करो"—और उसे जल्दीसे किसी अँधेरी जगहमें छिपा दिया।

शिकारीने घरमें पैर रखते ही स्त्रीसे पूछा—"शिकार कहाँ है?"

स्त्रीने कोई उत्तर न दिया—वह केवल विस्मयजनक दृष्टिसे उसके मुखकी ओर देखने लगी। शिकारीने गर्ज कर कहा—"शिकार कहां गई?"

रमणी जैसे कुछ भी न जानती हो ऐसा भाव बताकर बोली—"शिकार!"

—"हां, हां शिकार।"

रमणी—(विस्मयसे) कौनसी शिकार?

शिकारी—(अधीर होकर) मैंने बराबर उसे इसी रास्ते आते देखा है—रास्तेमें भी नहीं, घर भी नहीं, तो क्या वह उड़ गया?

रमणी—क्या जानें?

शिकारी क्रोधसे पागल होकर बोला "मालूम होता है कि यह तेरी ही करामात है! अभी तक तेरा यह रोग गया नहीं! बोल कहां छिपा दिया है?" ऐसा कहके उसने जोरसे एक लात मारी। स्त्री जमीनपर गिर पड़ी—तो भी उसने कुछ न कहा।

स्त्रीको चुप देखकर उसका क्रोध बढ़ने लगा। पीटते पीटते उसने उसे अधमरी कर डाली। तो भी उसने मुंहसे कुछ भी न कहा, पड़ी पड़ी सिर्फ मार खाती रही।

अब कमलाप्रसादसे न रहा गया। उसने सोचा कि अब छिपे रहनेसे काम नहीं चलता—मेरे पीछे यह बेचारी नाहक सताई जा रही है! वह झटसे बाहर आकर बोला—"इस बेचारीको तुम क्यों नाहक मारते हो? लो, मैं यह खड़ा हूं।"

अब स्त्रीको छोड़कर वह शेरकी तरह कमलाप्रसादपर टूट पड़ा। कमलाप्रसाद उस समय भी इतना थका हुआ था कि वह अच्छी तरह खड़ा भी न हो सकता था। इस कारण वह कुछ भी न कर सका। डांकूने उसका सब रुपया सहज ही छीन लिया और उसे एक फटा कपड़ा पहनाकर बाहर कर दिया। कमला-प्रसादने जरा भी 'चींचपड़' नहीं की, इसलिए डांकूको उसे जानसे मार डालनेकी कोई आवश्यकता न जान पड़ी।

कमलाप्रसाद निःसहाय और सर्वस्वहीन होकर रास्तेमें खड़ा है; डांकूने उसकी तलवार तक छीन ली है। रास्तेमें जंगली पशु-ओंका भय था, इसलिए कमलाप्रसादने कातरस्वरसे कहा—"मेरा

तुम सब कुछ ले चुके, ले लो, परन्तु मेरी तलवार तो मत ले लो, नहीं तो इस विकट जंगलमें जंगली पशु मेरे प्राण ले लेंगे ! "

डांकूको कुछ दया आगई–तलवारको लेकर वह कमलाप्रसादको देने लगा। अंधकारमें तलवार चमकने लगी, यह देखकर उसने कहा–" ओह ! यह तो बिलकुल नई दिखती है। अच्छा ठहरो। मैं तुम्हें एक दूसरी तलवार ला देता हूं।" ऐसा कहके उसने घर-मेंसे एक पुरानी तलवार लाकर कमलाप्रसादको दे दी।

(३)

दूसरे दिन सबेरे कमलाप्रसाद उदास चित्त और मलिन मुंह किए हुए अपने मालिकके द्वारपर जा खड़ा हुआ। लज्जा उसे मकानके भीतर नहीं जाने देती थी। बहुत दिनोंके कठिन परिश्रमसे प्राप्त किए हुए रुपयोंके जानेसे यद्यपि उसे दुःख हो रहा था किन्तु मालिककी बात न माननेसे मेरी यह दुर्दशा हुई है यह बात उसके हृदयमें उस दुःखसे भी अधिक पीड़ा दे रही थी– अपना मुख दिखानेमें उसे बहुत ही लज्जा मालूम होती थी। कुछ समय बाद मालिक मकानके बाहर आया। उसने देखा कि मलिन मुख और नीचा सिर किये हुए कमलाप्रसाद खड़ा है। उसे बड़ा विस्मय हुआ ! उसे ऐसा भास होना लगा कि मैं किसी जादूगरका खेल देख रहा हूं। यह क्या वही कमलाप्रसाद है जो कल रातको बिदा ले कर घरको गया था ? कमलाप्रसादकी अवस्था देखकर उसे बहुत दुःख हुआ। वह जल्दीसे हाथ पकड़के उसे घरके भीतर ले गया। कमलाप्रसादने रातकी सारी घटना कह सुनाई–मालिकने उसे चुपचाप सुन ली–उसका ज़रा भी तिरस्कार न किया। कमलाप्रसाद जिस तरह गतरात्रिको काम करते करते

चला गया था आज सबेरे वही काम फिरसे करने लगा। बीचकी रातका व्यापार मानो उसके लिए एक स्वप्नके समान हो गया।

डांकूने जो पुरानी तलवार दी थी, उसे कमलाप्रसादने अपने सोनेके कमरेकी एक दीवालपर लटका दी थी। उसे देखते ही उस रातकी सारी घटना उसके नेत्रोंके सामने प्रत्यक्ष रूप धारण करके नृत्य करने लगती थी। दिनभर काम करनेके बाद रातको जब वह घर आता था, तब रुपयोंका शोक उसे फिर नया होकर पीड़ित करने लगता था और निरुत्साह उसके दिलको बिलकुल तोड़ देता था। वह सोचता था कि—"क्या अब गिरबी रक्खी हुई जमीन-का उद्धार हो सकता है? और क्या अब भाईको खोज करके मैं माताके शोकको दूर कर सकूंगा?" उसकी सारी आशायें सारे भरोसे मिट्टीमें मिल गये! उस रातकी घटनाको भूलनेकी यद्यपि वह बहुत चेष्टा करता था, परन्तु वह तलवार उस दुर्घटनाके स्मर-णको दररोज ताजी कर देती थी। जिस समय उस डांकूके घरकी स्त्रीकी बात उसे याद आती थी उस समय उसका मन कृतज्ञतासे भर जाता था! मेरी रक्षा करनेके लिए उसने कितना कष्ट सहन किया! वह मन ही मन सोचता था कि उसके ऋणको अब मैं इस जन्ममें तो नहीं चुका सकूंगा!

अंतमें उसे उस तलवारका अपने नेत्रोंके सामने रखना असह्य हो गया। पहले वह नहीं सोच सका कि मैं इसका क्या उपयोग करूं; परन्तु पीछे उसने उसे पुरानी चीज़ोंकी दूकानपर बेच आनेका निश्चय किया। गांवमें थोड़ी दूरपर पुरानी चीज़ोंकी एक दूकान थी। एक दिन वह उस तलवारको लेकर वहां गया। दूकानदार वृद्ध था—उसकी आँखोंकी ज्योति कम हो गई थी—वह उस तल-

वारको आँखोंके बिलकुल समीप ले जाकर गौरसे देखने लगा। देखते देखते जब उसकी दृष्टि एक स्थानपर पड़ी, तब वह चौंक पड़ा और बोला—"यह चीज़ तो बहुत कीमती है!"

कमलाप्रसाद चुप हो रहा! दूकानदारने फिरसे कहा—"इसपर बादशाहकी छाप है—यह कीमती तलवार है!"

कमलाप्रसादने पूछा—कितने मूल्यकी है?

"डेढ़ हजारकी!"

डेढ़ हजार! कमलाप्रसाद चौंक पड़ा। यदि ऐसा है तो इससे तो उसके सारे दुःख दूर हो सकते हैं।

डेढ़ हजार रुपया पाकर कमलाप्रसादके मनमें अनेक तरहकी बातें आने लगीं। वह मन ही मन सोचा करता था कि समय आनेपर डांकूकी स्त्रीका ऋण चुकाऊँगा। इस समय वह कहने लगा कि यही तो समय है। मुझे तो एक हजार रुपयोंसे मतलब है। शेष पांच सौ रुपयोंसे तो सहजहीमें इस ऋणसे ऊऋण हो सकता हूं। और इन पांच सौ रुपयोंको पाकर वह भी उस डांकूके हाथसे हमेशाको छूट सकती है। वह अवश्य ही उसकी ख़रीदी हुई दासी है। इन बातोंको वह जितना ही सोचने लगा उतनी ही उसकी ऋण चुकानेकी इच्छा प्रबल होती गई—यह बात उसके मनमें बारबार आने लगी कि यदि मैं ऐसा न करूंगा—इस ऋणको न चुकाऊंगा, तो मेरे पापकी सीमा न रहेगी।

मालिकके पास एक हजार रुपये रख करके वह फिर चल दिया। अपने साथमें उसने केवल ५००) रक्खे! उसने निश्चय किया था कि ये रुपये उस स्त्रीको देकर घरकी ओर जाऊंगा—और रास्तेमें ज़ो गाँव मिलेंगे उनमें भाईकी खोज भी करता

जाऊंगा। उसे विश्वास था—कि भैया यहीं किसी गाँवमें गुप्त-रीतिसे रहते हैं और लज्जाके मारे अपने ग्रामको नहीं लौट सकते। कमलाप्रसाद देखता है कि मेरे दुर्दिनके मेघ फट चुके हैं और सौभाग्य सूर्य्य उदित हो रहा है—केवल एक दुःख है कि यदि भाईको न ले जाकर मैं माताके पास पहुँचा तो उनसे क्या कहूंगा ;

(४)

अबकी बार वह ऐसे समय रवाना हुआ था कि जिससे सूर्य अस्त होनेके पहले ही उस जंगलसे पार हो जाय। परन्तु जिस समय वह डांकूके घर पहुँचा, उस समय सूर्य अस्तोन्मुख हो रहा था—सघन वृक्षोंकी संधियोंमेंसे उसका सुनहरी प्रकाश छिटक रहा था। पक्षी अपने घोंसलोंको लौट रहे थे। समस्त वन स्निग्ध प्रकाश और कोमल कलरवसे भर रहा था।

कमलाप्रसाद उस डांकूके घर पहुँचा। वह उस स्त्रीको गुप्त-रीतिसे रुपये देना चाहता है—क्योंकि अगर डांकूको विदित हो जायगा तो वह अवश्य उससे रुपये छीन लेगा। ऐसा सोच करके वह बिना कुछ कहे सुने एक ओर खड़ा होकर अपेक्षा करने लगा। दिनका प्रकाश धीरे धीरे मंद पड़ने लगा तथा छायाके समान अंधकार क्रमशः उस घरको ग्रसित करने लगा। पक्षियोंका कलरब शान्त हो गया—चारों ओर सन्नाटा छा गया। इतनेमें उस घरमें एक दीपशिखा दिखाई दी। अधिक विलम्ब करनेकी आवश्यकता न जानकर वह जल्दीसे उस घरके अंदर चला गया! देखा कि—एक मलिन शय्यापर डांकू स्थिर हो कर पड़ा है औरस्त्री उसके सिराने दीपक जलाकर बैठी है। उसे देखते ही वह विस्मित होकर उठ खड़ी हुई। कमलाप्रसादने जल्दीसे उसके हाथके पास

रुपयोंकी थैली रख कर कहा—" यह लो, उस रातको तुमने मेरे लिए जो कुछ किया था उसका बदला मैं और किसी तरह नहीं चुका सकता।"

रुपयोंको देखते ही स्त्रीके मुखपर जो विषादकी छाया थी, वह मानो एकाएक दूर हो गई; वह गद्गदकंठसे बोली—"आज तुमने हम लोगोंको प्राणदान दिया! हम लोग भूखसे मर रहे थे।"

रुपयोंकी बात सुनकर डांकू भी उठकर बैठ गया। कमलाप्रसाद जाता था; डांकूने उसे इशारा करके बुलाया। वह धीरे धीरे उसकी शय्याके निकट जाकर खड़ा हो गया।

डांकूका हृदय कृतज्ञतासे भर आया। वह एक तो रोगोंसे घिर रहा था और इसपर भी भूखके कारण मर रहा था। इसके पहले वह अपने सन्मुख मृत्युकी छाया देख रहा था—इस निर्जनवनमें उसे कहीं भी कोई आशाका चिन्ह नहीं दिखलाई देता था। पर यह क्या? एक दिन वह जिसका जीवन अपहरण करने गया था वही आज उसे जीवन—दान करने आया है। कमलाप्रसादके दोनों हाथोंको अपने हाथमें ले कर वह रह गया—उसके नेत्रोंमें आँसुओंकी बूंदें दिखाई देनें लगीं। वह चाहता था कि कमलाप्रसादको हृदयसे लगाकर अपना हृदय शीतल करूं, परन्तु ऐसा न हो सका—वह शिथिल होकर शय्यापर गिर पड़ा।

कमलाप्रसाद चुपचाप उसके हृदयोच्छ्वासको देख रहा था। उसका हृदय भी द्रवित हो रहा था। वह उसकी शय्यापर बैठ गया। डाकूने फिरसे उसका हाथ अपने हाथमें ले लिया—उसके मनमें अनेक बातें उठने लगीं; परन्तु उससे बोला न गया।

वह सोचने लगा–जिन लोगोंके लिए मैंने आपत्तिको आपत्ति नहीं समझी। जिन लोगोंकी प्राण रक्षाके लिए अपने प्राणों तकको मृत्युमु-खमें डालनेसे मैंने कभी आगा पीछा नहीं सोचा—वे ही मेरे अनुचर आज मेरी इस बीमारीमें मेरा सर्वस्व छीन करके मुझे मृत्युके गहरे गड्ढेमें ढकेल गये हैं; और जिसको मैं जानसे मारनेके लिए तैयार था–उसीने आकर आज मेरे प्राणोंकी रक्षा की। यह सोचते सोचते उसका हृदय 'हाय हाय' करने लगा–उसने काँपती हुई अवाजसे कहा–"हाय! मैं बड़ा पापी हूं।"

इसके बाद डांकू कुछ समय तक चुप चाप पड़ा रहा–मानों वह भीतरसे बोलनेके लिए कुछ बल संग्रह करनेकी चेष्टा कर रहा था। फिर कमलाप्रसादके मुखकी ओर देखकर वह धीरे धीरे बोला—"मेरे समान पापी इस संसारमें दूसरा नहीं–मैं नराधम हूं!" इसके बाद उसने अपनी आत्मकहानी कहना प्रारंभ की, कमलाप्रसाद सुनने लगा। ज्यों ज्यों रात बीतने लगी त्यों त्यों घरमें अंधकार अधिकाधिक बढ़ने लगा; बाहरकी हवा वृक्षोंके प्रत्येक पत्तेसे टकरा टकरा कर 'हाय हाय' कर रही है; डांकू अपनी आत्मकहानी रुँधे हुए कण्ठसे बराबर कह रहा है और उसे कमलाप्रसाद एकाग्रचित्तसे सुन रहा है।

उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था। जिस समय डांकू अपने छोटे भाई और माताकी बात कहते कहते रो उठा, उस समय कमलाप्रसाद एकदम चौंक पड़ा! और डांकूकी छातीसे लिपटकर वह रोते रोते चिल्ला उठा—"भैया! भैया!!"

डांकू पहले तो विस्मित होकर कमलाप्रसादके मुखकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखने लगा परन्तु तत्काल ही व्याकुल होकर उसने

अपने दोनों हाथ उसकी ओर फैला दिये और उसे हृदयसे लगा लिया।—घरकी मंद दीप-शिखा मानो एकाएक उज्ज्वलप्रकाश-मय हो गई!*

शिवसहाय चौबे।

—०—

धर्म।

सारा संसार धर्मके विषयमें बहुत कुछ कहता है। प्रत्येक धर्म-शिक्षक धर्म–ग्रहणके लिए आग्रह करता है। प्रत्येक धर्मोपदेशक उपदेश करता है कि उसके श्रोतागणोंको धर्म–पथपर चलना चाहिए। इस प्रकार धर्म एक बहुत ही जरूरी वस्तु है, और यह अत्यन्त आवश्यक है कि धर्म क्या है यह हम जानें और समझें।

द्रव्यका स्वभाव धर्म कहाता है। द्रव्यका जो कुछ स्वभाव है वही उसका धर्म है। यदि द्रव्य अपने स्वभावकी हद्दके भीतर वर्ताव करता है, तो यह कहा जायगा कि वह अपने निजधर्मानु-सार आचरण करता है। इसके विपरीत यदि द्रव्य अपने स्वभा-वके अनुसार आचरण नहीं करता अथवा यदि द्रव्यका स्वभाव बिगड़ी हुई तथा दूषित अवस्थामें होता है तो कहा जायगा कि वह धर्मविरुद्ध आचरण करता है।

हमको अब यहां यह देखना चाहिए कि आत्माका स्वभाव क्या है? जैनशास्त्रोंमें आत्माका स्वभाव ज्ञान वर्णन किया गया है। सर्व कालकी तथा सर्व जगहकी सर्व वस्तुओंका जानना अर्थात् सर्वज्ञता आत्माका यथार्थ स्वभाव है; परन्तु संसारी आत्माका

*प्रवासीमें प्रकाशित श्रीमणिलाल गंगोपाध्यायकी लिखी हुई एक कहानीका अनुवाद।

ज्ञान बहुत ही मर्यादित है और वह भी इन्द्रियोंपर निर्भर है अर्थात् इन्द्रियोंके आधीन है। इस प्रकार आत्माका वास्तविक धर्म परमात्म–स्वरूप है; परन्तु संसारी आत्मा अपने धर्ममें नीचे गिरी हुई है, इसलिए उसका उद्देश्य अपने असली धर्मको प्राप्त करनेका होना चाहिए। कुछ नियम और उसूल हैं जिनके अनुसार आचरण करनेसे वे आत्माको निजधर्म प्राप्त करानेमें सहायता देते हैं। जैसे कि कारण भी प्रायः तज्जनित फल अर्थात् कार्यके नामसे कहा जाता है, वैसे ही वे नियम और उसूल भी जिनके अनुसार चलनेसे आत्मा निजधर्म प्राप्त करता है, धर्म कहे जाते हैं। इस प्रकार आत्माका असली धर्म स्वभाव है; परन्तु कारण, जिनके द्वारा वह स्वभाव प्राप्त होता है व्यवहारसे धर्म कहे जाते हैं। इसलिए व्यवहारसे धर्मकी इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है कि ऐसे विचार, वचन और कार्य जो आत्माको स्वभावकी तरफ आकर्षित करते हैं, धर्म हैं। अथवा धर्म वह है जो आत्माको निज-स्वभावके समीप ले जावे। इसके विपरीत विचार, वचन और कार्य जो आत्माको निजस्वभावसे हटावें, अधर्म हैं। दूसरे शब्दोंमें अधर्म वह है जो आत्माको निजस्वभावसे दूर ले जावे।

आत्मा स्वतः एक ऐसा ज्योतिर्मय पदार्थ है कि उसमें जगत्के सर्व पदार्थ अपनी सर्व पर्यायों और गुणों सहित देखे जा सकते ह; परन्तु चूंकि यह आत्मा संसारम, सदाहीसे कर्ममलसे मलिन हो रहा है और भाव कर्मके आक्रमणसे डममगा रहा है इसलिए उसमें कुछ भी स्पष्ट नहीं देखा जा सकता। जब पानी गँदला होता है तब तुम उसमें अपना चेहरा तथा अन्य कोई चीज नहीं देख सकेत। जब समुद्रमें चंचल लहरें

उठती हैं, तब उसमें कुछ नहीं दिखता। यही हाल आत्माका है। द्रव्यकर्म और भावकर्मके असरसे आत्मा, हमेशासे धुँधला हो रहा है। असलमें संसारी आत्मा राग, द्वेष और मोहका शिकार बन रहा है और अपना तथा अन्य पदार्थोंका असली स्वभाव नहीं जानता है। राग और द्वेष उसे दुखी और व्याकुल बना रहे हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ उसे। सुख और शान्ति लाभ नहीं करने देते। जब राग और द्वेष कम होते हैं, तब आत्मामें सुख और शान्तिका विकास होता है और उसका ज्ञान बढ़ने लगता है। जिस किसी आत्मामेंसे जब राग और द्वेषका क्रम क्रमसे क्षय हो जाता है तथा सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं तब वह सर्वज्ञ हो जाता है और परमात्मावस्था प्राप्त कर लेता है, जो कि उसका अन्तिम उद्देश है। कोई भी संसारी आत्मा इस अन्तिम उद्देशको तब तक नहीं पहुँच सकता, जब तक कि राग द्वेष और मोह उखाड़कर न फेंक दिये जायँ और सुख तथा शान्ति प्रगट न हो। इस प्रकार एक व्यक्तिको विचार, वचन और कार्योंके द्वारा अपने तईं इस प्रकारका आचरण करना चाहिए कि जो उसमें सुख और शान्ति पैदा कर सके और जो उसे आत्माका असली स्वभाव अर्थात् परमात्मस्वरूपकी तरफ खींच सके-ऐसा आचरण पुण्य कहलाता है तथा इसके विपरीत पाप। इस, कारण पुण्य और पापकी इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है:—जो आत्मामें राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया और लोभको कम करे और उसमें सुख तथा शान्तिकी वृद्धि करे, वह पुण्य है। इससे विपरीत जो राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, और लोभकी वृद्धि करे और सुख तथा शान्तिको घटावे वह पाप है।

इस संसारमें आत्माको सदा एक ऐसी यात्रा करना है जिसका कि अन्तिम उद्देश्य परमात्मस्वरूप होना है। जितना जितना आत्मामें राग, द्वेष और मोह घटता है उतना उतना ज्ञान बढ़ता जाता है और उतना उतना वह आत्मा परमात्मपदके नजदीक आता जाता है। इसके विपरीत जितना जितना अधिक वह आत्मा राग, द्वेष और मोहमें डूबता है, उतना उतना अधिक उसका ज्ञान न्यून होता जाता है और फिर वह आत्मा ईश्वरतासे पीछे हटता जाता है। इस प्रकार विचार, वचन और कार्य जो कि आत्माको इस यात्राके तय करनेमें तथा परमात्मपदके समीपवर्ती करनेमें सहायता देते हैं, धर्म अथवा पुण्यके नामसे कहे जाते हैं। इसके विपरीत विचार, वचन और कार्य, जो आत्माको इस यात्रामें तरक्की करनेसे रोकें तथा परमात्मस्वरूपसे अलग खींचें, अधर्म अथवा पाप कहलाते हैं। धर्म और अधर्मको जाँचनेकी यह साधारण रीति है। परन्तु इस यात्राको पार करना अत्यन्त कठिन है और आत्मा इसे एकदम तय नहीं कर सकता।

आत्मा राग और द्वेषको जिनमें कि वह इतने अधिक समयसे मन लगाये हुए है, एकदम पूर्णतः नहीं छोड़ सकता। यह वह धीरे धीरे ही कर सकता है। इस संसारमें भिन्न भिन्न आत्माओंने भिन्न भिन्न सीमाओंतक उन्नति की है, इस कारण वे अपनी उन्नतिकी हद्दके अनुसार ही धर्मपथका ग्रहण कर सकते हैं। यदि तुम उनको—जिन्होंने कि नीची हद्द तक ही उन्नति की है और अपनी आत्माको इतनी उन्नत नहीं की है कि वे उसे समझ सकें—उच्च धर्माचरणका उपदेश दोगे तो परिणाम यह होगा कि वे

उसे ग्रहण नहीं कर सकेंगे और क्लेश तथा असुविधायें उठा कर सबसे बुरी दशामें हो जावेंगे। इसलिए ऐसे मनुष्योंके लिए निम्नश्रेणी-के धर्मकी शिक्षा दी गई है, जो कि धीरे धीरे उनकी शक्तिको बढ़ाता है और उन्हें अधिक उच्च धर्मके लिए तैयार करता है। इस प्रकार धर्म यद्यपि अपनी साधारण रीतिसे एक है, परन्तु जो उसे धारण करनेकी इच्छा करते हैं उनकी विशेष शक्तियों तथा अवस्थाओंके कारण वह अनेक प्रकारका कहा गया है और प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये अपने परिणामोंकी वृद्धि और तरक्की-के अनुसार धर्म चुन लेता है। धर्म परमात्मस्वरूप तक पहुँचने के लिए एक प्रकारकी निसेनी या सीढ़ी है। संसारी आत्मा एक दम सबसे ऊंची सीढ़ी या डंडेपर नहीं पहुँच सकता। उसको ऊपर पहुँचनेके लिए एक एक सीढी चढ़ना पड़ता है। क्योंकि जो आत्मा सबसे ऊपरकी सीढ़ीपर पहुँच गया है उसके लिए पांच सीढ़ी नीचे जाना अवनति है, परन्तु सबसे नीची सीढ़ीवाले आत्माके लिए उसी सीढ़ीपर पहुँचना उन्नति और बहतरी है। इस प्रकार सब आत्माओंके लिए वही (एकही) धर्म नहीं हो सकता, किन्तु उनकी शक्ति और अवस्थाके अनुसार कई तरहके जुदा जुदा (भिन्न भिन्न) धर्म होने चाहिए। चूंकि संसारी आत्मा भिन्न भिन्न आधारपर उन्नति कर रहे हैं इसलिए सबका वही (एक ही) धर्म नहीं हो सकता। धर्मकी साधारण कसौटी जो आत्माको निज स्वभाव प्राप्त कराने अथवा परमात्माकी तरफ ले जानेमें सहायक है, अलवत्तह सब जगह वही है, परन्तु धर्मके खास (विशेष) कार्य, पद और आधारके अनुसार जिनपर कि भिन्न भिन्न आत्मायें चल रही हैं, कई तरहके (रंगबरंग) होने

चाहिए। इसी सच्चे सिद्धांतपरसे प्राचीन जैन ऋषियोंने प्रथम धर्मको दो भागोंमें विभाजित किया है—मुनिधर्म और गृहस्थधर्म। इन दोनों धर्मोंके भी कई दर्जे किये गये हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति और अवस्थाके अनुसार धर्म पालन कर सके। *

बिहारीलाल कठनेरा।

तीर्थ–पर्यटन।

(२)

दिगम्बरी मन्दिरोंको छोड़कर आगे चलनेसे दाहिनी ओर चौमुखी जैनमन्दिर है। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १९११ में जिनहर्षसूरिके द्वारा हुई है। बहुत करके ये वे ही जिनहर्षसूरि हैं जिनके बनाये हुए विचारामृतसंग्रह और रत्नशेखरनरपतिकथा नामके ग्रन्थ हैं। आगे कुछ ऊपर चढ़कर दाहिनी ओर रथनेमिका मन्दिर है। रथनेमि अरिष्टनेमिके चार भाइयोंमेंसे एक थे। श्वेताम्बरसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें लिखा है कि जिस समय राजीमती संसारभोगोंसे विरक्त होकर दीक्षा लेनेके लिए गिरनारपर्वतपर चढ़ी उस समय मार्गमें अतिवृष्टि होनेसे वह अपनी सखियोंसहित एक गुफामें ठहर गई और अपने भीगे हुए वस्त्र सुखाने लगी। उसी गुफामें रथनेमि तपस्या कर रहे थे। राजीमतीका शरीरसौन्दर्य देख कर वे कामान्ध हो गये। यह देखकर दृढ़शीला राजीमतीने उनकी बहुत भर्त्सना की और उन्हें संसारकी निःसारता दिखलाई।

---

* लाला ऋषभदासजी बी. ए. वकील मेरठके एक अँगरेज़ी लेखका अनुवाद।

रथनेमि बहुत लज्जित हुए, प्रायश्चित्त लेकर फिर तप करने लगे और अन्तमें कर्म काटकर मोक्षसुन्दरीके स्वामी हुए।

यहां मुझे श्रीमती राजीमती और भगवान् नेमिनाथके पवित्र चरितका स्मरण हो आया। अहा! वह चरित कितना प्रभावशाली है कि आज भी यदि जैनसमाज उसका विचार और मनन करे तो संसारका एक आदर्शसमाज बन जावे। बारात जूनागढ़में पहुँच गई है, यादवोंके अपार वैभवका प्रदर्शन हो रहा है, हजारों राजा, महाराजा, सामन्त आदि एकत्र हुए हैं, दोनों ओरके लोगोंके हर्षका पारावार नहीं है। भुवनमोहिनी राजीमतीके रूप और यौवनकी प्रशंसा नेमिनाथ सुन चुके हैं। वे भी यौवनके तरंगलोल विशाल समुद्रमें लहरा रहे हैं। हजारों प्रकारकी सुखकी कल्पनायें उनके नेत्रोंके सामने नृत्य कर रही हैं। वे वरके सारे शृंगारोंसे सजे हुए रत्नखचित रथपर चढ़े हुए हैं। ज्यों हीं उन्होंने एक जगह कुछ पशुओंको बँधे हुए देखा और मालूम किया कि उन सबकी उन्हींके विवाहके लिए हत्या की जायगी, त्यों ही उनके हृदयमें दयाका समुद्र उमड़ आया और साथ ही प्रबल वैराग्यकी वायुने उनकी पिछली सारीं सुखकल्पनाओंको न जाने कहां उड़ा दिया! उन्होंने कहा—ओह! मनुष्य इतना स्वार्थी है कि अपने सुखके लिए दूसरे हजारों निरपराधियोंके प्राणोंको भी कुछ नहीं गिनता! थोड़ेसे सुखके लिए इतना घोर पाप! नहीं, मुझे यह सुख नहीं चाहिए। बस, मैं अब ब्याह न करूंगा और उस सुखका उपाय करूंगा जो सदा शास्वत रहनेवाला है तथा दूसरे लोगोंको भी वह उपाय बतलाऊंगा जिससे इस संसारसे यह स्वार्थवासना, परपीडन और अत्याचार उठ जाय। इतना कहकर उन्होंने पशुओंको छुड़वा दिया और इसी पवित्र पर्वतपर चढ़कर दीक्षा लेली।

इस समय पाठक सोच सकते हैं कि उस राजकुमारीको जो कि यौवनके प्रभातकालमें खड़ी हुई आसन्नसुखोंका नयनाभिराम दृश्य देख रही थी—क्या दशा हुई होगी? उसके कष्टका कुछ पार नहीं रहा। वह विह्वल सरीखी हो गई। मातापिताने, सखियोंने सबने समझाया—यहांतक कहा कि अभी क्या बिगड़ा है तेरा किसी दूसरे प्रतापी राजकुमारसे विवाह कर दिया जायगा; परन्तु सब व्यर्थ हुआ। उसका प्रेम अटल, अचल और अनन्य था। जिसको एकबार हृदयमें स्थान दिया, वह क्या कभी दूर हो सकता है? राजकुमारीने गिरनारपर जाकर भगवान् नेमिनाथको घर लौट चलनेके लिए बहुत समझा बुझाया; परन्तु सब व्यर्थ हुआ। "किं मन्दिराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्?" राजीमती गई तो थी, स्वामीको अपने रंगमें रँगनेके लिए; परन्तु वहां वही स्वयं रँग गई। उसने भी जगज्जीवोंको दुःखसे छुटानेवाली जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

यदि इस चरितका हमारा जैनसमाज आदर करता होता-इसका सच्चे हृदयसे पाठ करता होता तो क्या उसमें दश वीस मनुष्य भी ऐसे न निकलते जो संसारकी स्वार्थ वासनाओंसे विरक्त होकर अपना और जगत्का सच्चा कल्याण करनेके लिए तैयार हो जाते? यहां तो हमारे लाखों भाई अज्ञानके कीचड़में फँस रहे हैं, हजारों भोजनवस्त्रके लिए तरस रहे हैं, और हज़ारों ही सामाजिक रूढियोंकी चुंगलमें फँसकर जीवनको भाररूप समझ रहे हैं। और बड़े भारी दुःखकी बात तो यह है कि इस पवित्र चरितसे उक्त प्रकारकी शिक्षा लेना तो दूर रहा, हम अपनी विषयवासनाओंकी पुष्टि करनेमें भी नहीं चूकते। नेमि और राजीमतीका चरित हमारे कुछ आधुनिक कवियोंकी कृपासे राधाकृष्णकी

विरहलीलाका रूप धारण करता जाता है! किसी किसी महात्माने तो नेमि राजुलके बारहमासे और तेरहमासे तक बना डाले हैं। उन्होंने यह सोचनेका भी कष्ट नहीं उठाया कि राजीमती बारह और तेरह महीने तक विरहिणी रही ही कहां है? उसने तो थोड़े ही समय पीछे दीक्षा ले ली थी। जो चरित हमें स्वार्थ और और विषयवासनासे विरक्त करनेके लिए था उसीको हमने विषयवृद्धिका कारण बना लिया, हमारा इससे अधिक अधःपतन और क्या होगा?

रथनेमिके मन्दिरसे अंबाजीकी टोंक पर जानेका रास्ता है। थोड़ी दूर चलकर चढ़ाव कुछ कठिन हैं, परन्तु सीढ़ियोंके कारण विशेष कष्ट नहीं होता। अम्बादेवी या अम्बिकाका मन्दिर कहते हैं कि संप्रति राजाका बनवाया हुआ है। इसकी बनावट भी सम्प्रतिके मन्दिरके ढँगकी है। इस समय इसे जैन (श्वेताम्बर) और हिन्दू दोनों ही पूजते हैं। जैन इसे अपने शासनकी अधिष्ठात्री देवी मानते हैं और हिन्दू शक्ति दुर्गा या गिरिजा समझते हैं। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि इसपर हिन्दुओंका अधिकार पीछे हुआ है पहले यह मन्दिर या तो बौद्धोंका होगा या जैनियोंका। कुछ लोगोंका खयाल है कि यह नेमिनाथ स्वामीका मन्दिर था। गिरनार माहात्म्यमें अम्बिकाका चरित इस प्रकार लिखा है—“ सोमभट नामके ब्राह्मणराजाकी अम्बिका नामकी सुन्दर सुशीला और विनयवती स्त्री थी। एक दिन उसने दो जैन मुनियोंको भक्तिपूर्वक आहार दिया। इससे उसकी सास बहुत क्रुद्ध हुई और पति भी अप्रसन्न हुआ। दुखी होकर अम्बिका अपने दो पुत्रोंको लेकर पर्वतपर चल दी। उसका विचार था कि

मैं उन्हीं मुनियोंकी शरणमें जा कर रहूँगी। पीछे जिन पात्रोंमें मुनियोंको भोजन कराया था वे पुण्यके प्रभावसे सुवर्णमय हो गये। यह देख उसकी सासको और पतिको बड़ा आश्चर्य हुआ। दोनोंको बहूपर श्रद्धा हो गई। पति अपनी पत्नीको लौटानेके लिए चला। उसे आता देख अम्बिकाने समझा कि मुझे मारनेके लिए आता है। आखिर वह पंचपरमेष्ठीका स्मरण करके अपने पुत्रोंसहित कुएमें गिर पड़ी। पीछे पत्नीविरहसे सोमभट्ट भी कुएमें गिर पडा। स्त्री अम्बिका देवी हुई और पति उसका बाहन सिंह। ये दोनों पीछेसे नेमिनाथ भगवानके समवसरणमें आये और धर्मोपदेश सुनकर शासनके रक्षक बन गये।" गिरनार माहात्म्य संभवतः पन्द्रहवीं शताब्दिका बना हुआ है। इससे मालूम होता है कि कमसे कम चार सौ पांचसौ वर्षसे तो यह अम्बिकाका ही मन्दिर कहलाता है इसके पहले नेमिनाथका रहा होगा। स्कन्दपुराणके गिरनारमाहात्म्यमें लिखा है कि "विष्णुने जब वामनका अवतार धारण किया था उस समय उन्होंने गिरनारपर्वतपर आकर जगदंबाके आगे बलिदान करके उसकी कुमारजननी, पार्वती अम्बिका आदि नामोंसे स्तुति की थी।" इसी तरहकी एकाध कथा बौद्धोंके यहां भी जरूर होगी। दिगम्बरी जैनी इस देवीको नहीं पूजते, पर देखने जाते हैं और उस समय अकसर अनेक भोले लोगोंका विशेष करके स्त्रियोंका हृदय पिघल ही जाता है और वे कुछ न कुछ चढ़ा ही आती हैं!

अम्बाजीकी टोंकसे आगे चलनेपर तीसरी टोंक आती है। वहां पहले नेमिनाथभगवानके चरण आते हैं। बाबू धनपतसिंह प्रतापसिंह मुर्शिदाबादवालोंने संवत् १९२७ में उन्हें स्थापित कराये

थे। आगे ठीक टोंकके ऊपर मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदरनाथ) के शिष्य बाबा गोरखनाथके चरण हैं। ये गोपीचन्द नामक राजाके समयमें हो गये हैं और शायद बौद्धधर्मानुयायी थे।

इस टोंकसे लगभग ४०० फुट नीचे उतरकर चौथी टोंकपर जाना पड़ता है। इस टोंकपर चढ़नेके लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं। चढ़नेमें बड़ी ही कठिनाई पड़ती है। जरा ही पैर चूका कि काम तमाम समझिए। मेरे साथियोंमेंसे कई लोग ऊपर गये; परन्तु मेरा साहस न हुआ। टोंकके ऊपर एक काले पाषाणपर नेमिनाथकी प्रतिमा तथा दूसरी शिलापर चरण हैं। वहां संवत् १२४४ का एक लेख है। कई लोगोंका खयाल है कि नेमिनाथस्वामीका मोक्ष इसी टोंकपरसे हुआ था और कई पाँचवीं टोंकपरसे बतलाते हैं। इस टोंकसे नीचे उतर कर वापिस आना पड़ता है और फिर पाँचवीं टोंकपर सीढ़ियोंके मार्गसे चढ़ता पड़ता है। इस टोंकका चढ़ाव बहुत बड़ा है। यह शिखर सबसे ऊंची है। ऊपर पहुँचनेपर शीतल वायुके स्पर्शसे और चारों ओरका दृश्य देखनेसे जितना ही आनन्द आता है उतना ही नीचेकी और दृष्टि डालनेसे भय मालूम होता है। जिस दिन हम इस टोंकपर गये उस दिन थोड़े थोड़े बादल थे। ये बादल इस टोंकसे बहुत नीचे थे। ऊपरसे सूर्यका प्रकाश पड़नेसे बहुत ही मनोरम दिखते थे। ऐसा जान पड़ता था कि स्वच्छ दूधके तालाब भरे हैं और उनमें कुछ उफान सरीखा उठ रहा है। टोंकपर एक मढ़ियाके नीचे नेमिनाथभगवानके चरण स्थापित हैं और उनमें संवत् १८९९ का एक लेख है। एक ओर एक बड़ा भारी घंटा बँधा हुआ है। नेमिनाथके चरणोंको वैष्णव लोग गुरुदत्तात्रयके चरण कहके पूजते हैं और मुसलमान मदारशा पीरकी तकिया कहते हैं। इस स्थानसे

नेमिनाथके प्रथम गणधर वरदत्त मुनिका निर्वाण हुआ था। शायद इसी नामको वैष्णवोंने गुरुदत्त बना लिया है। यह एक स्थानमें अनेक धर्मोंकी पूज्यता बड़ी ही कुतूहलजनक है। और भी कई तीर्थोंपर यह बात देखी जाती है और इससे यह बात तो अच्छी तरहसे अनुमानित होती है कि जो स्थान बहुत महिमान्वित या प्रसिद्ध होता है उसपर समयकी अनुकूलता पाकर प्रायः सब ही धर्म अपना अपना आसन जमा लेते हैं और कुछ समयमें उसके बड़े बड़े माहात्म्य भी गढ़ लेते हैं।

पाँचवीं टोंकसे पांच सात सीढ़ियाँ नीचे उतरनेपर संवत् ११०८ का एक लेख मिलता है। मालूम न होनेसे मैं इस लेखको देख न सका। इस टोंकसे आगे रेणुका शिखर नामकी छट्ठी टोंक और कालिका नामकी सातवीं टोंक है। इन टोंकोंपर कोई जैनी यात्री नहीं जाता—जाना भी बहुत ही भयंकर है। कालिका टोंकपर कालिकाकी मूर्ति और त्रिशूल है।

पाँचवीं टोंकसे उतरकर, आनेके रास्तेसे ही लौटना पड़ता है और दूसरी टोंकमें जो गोमुखी है वहां आना पड़ता है। यहांसे दाहिनी ओरको एक सपाट रास्ता गया है। इस रास्तेसे सहसावन जाना पड़ता है। सहसावन या सेसावन सहस्राम्रवनका अपभ्रंश है। कहते हैं यहांपर नेमिनाथ स्वामीने कुछ समयतक तपस्या की थी। बहुत लोग यहां नहीं आकर सीधे लौट जाते हैं। यहांपर कई गुफायें, और कई कुंड हैं। यहां भिक्षुक साधु बहुत रहते हैं। रास्तेमें भैरव-झंपा नामका एक स्थान है। पुराने जमानेमें इस स्थानपर चढ़कर लोग परभवमें सुख पानेकी अभिलाषासे झंपापात करके जीव दिया करते थे! वाह! क्या ही अच्छी धर्मश्रद्धा

थी। धर्मके नामसे संसारमें कितने कितने अनर्थ हुआ करते थे, इस स्थानको देखकर उनका स्मरण हो आया। यहां एक मढ़ियामें नेमिनाथ स्वामीके चरण हैं और एक श्वेताम्बर धर्मशाला है। यहांसे नीचे तलहटी जानेका जुदा रास्ता है। यह अभी सुधारा जा रहा है।

दो पहरके कोई एक बजे हम लोग तलहटीमें आ गये। इस समय थकावट इतनी हो गई थी कि कुछ पूछिए नहीं! किसी तरह कुछ खापीकर बिछौनोंकी शरण लेनी पड़ी।

इस तरह मैं गिरनार पर्वतके दर्शन कर चुका। जहां तक मैं तलाश कर सका इस पर्वतपर दिगम्बर सम्प्रदायका कोई भी प्राचीन लेख या चिन्ह नहीं मिला। जितने प्राचीन लेख और मन्दिर आदि हैं वे सब श्वेताम्बरसम्प्रदायके हैं। जहांतक मैं खयाल करता हूं इसका एक कारण तो यह है कि यह प्रान्त लगभग हजार वर्षसे और शायद इससे भी पहलेसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रभावसे व्याप्त रहा है। दिगम्बर सम्प्रदायका कोई भी प्रभावशाली आचार्य या पुरस्कर्ता इस ओर नहीं हुआ है जो अपने सम्प्रदायका कोई स्मारक स्थापित करता। दूसरे यदि पहले कभी कोई लेखादि रहा भी हो तो बहुत संभव है कि साम्प्रदायिक विरोधके कारण वह नष्ट कर दिया गया हो। विरोधके समय तो फिर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' होती ही है। तीसरे इस ओर श्वेताम्बरसप्रदाय ही राजाश्रित रहा है और पुराने समयमें जिसे राजाश्रय प्राप्त होता था वही तीर्थोंपर मन्दिरादि बना सकता था। कुछ भी हो; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि दिगम्बर सम्प्रदायके यात्री यहां हमेशासे आते रहे हैं—उन्हें आने और

दर्शन करनेके लिए कोई रुकावट नहीं रही है और शायद इन दोनों सम्प्रदायोंमें इस समय जैसा विरोध देखा जाता है वैसा उस समय नहीं था। क्या ही अच्छा हो यदि अब भी दोनों सम्प्रदायवाले पारस्परिक द्वेषको छोड़कर मित्रताके साथ हिलें मिलें और अपने अपने विश्वासके अनुसार एक दूसरेको विना कष्ट पहुँचाए धर्मका साधन करें।

इस पर्वतके विषयमें एक बार दिगम्बरी और श्वेताम्बरी सम्प्रदायके आचार्योंमें वाद विवाद उपस्थित हुआ था; परन्तु उसका फैसला क्या हुआ था यह जानना बहुत कठिन है। क्योंकि दिगम्बरी अपनी जीत बतलाते हैं और श्वेताम्बरी अपनी। दिगम्बरियोंके यहां तो लिखा है कि एक बार कुन्दकुन्द स्वामी गिरनारजीको अपने संघसहित गये थे। वहां श्वे० स० से विवाद होनेपर इन्होंने पत्थरकी मूर्तिसे कहलवा दिया कि सच्चा पन्थ दिगम्बर है। पट्टावलीमें लिखा है—

> पद्मनन्दिगुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी।
> पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती॥
> उर्ज्जयन्तिगिरौ तेन गच्छः सारस्वतो भवेत्।
> अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने॥

इसी प्रकारकी कथा श्वेताम्बर सम्पदायके आवश्यक सूत्रकी वृन्दारवृत्ति नामकी टीकामें भीं लिखी है। उसके अनुसार जूनागढ़के राजाके सामने यह वादविवाद हुआ था और उस समय शासनदेवीने दूर देशसे एक पाँचवर्षकी कन्या लाकर उसके मुंहसे कहलवाया था कि श्वेताम्बर पन्थ सच्चा है।

इस तरह दोनों ही अपनी अपनी जीत बतलाते हैं तब बतलाइए सच्ची जीत किसकी समझी जाय? मेरी समझमें तो चाहे दिगम्बरी

जीत गये हों और चाहे श्वेताम्बरी, पर इस जीतका कोई महत्त्व नहीं। क्योंकि इससे यह सिद्ध नहीं हुआ कि दोनोंमेंसे किस पक्षके सिद्धान्त ठीक हैं। केवल यही सिद्ध हुआ कि अमुक पक्षके विद्वानकी दैवीशक्ति या मन्त्रशक्ति प्रबल थी। और किसी एक विद्वानकी मंत्र शक्ति या वादशक्ति किसी मत या सम्प्रदायके यथार्थ अयथार्थ होनेकी कसौटी नहीं हो सकती।

ता० १२–१३ और १४ के दोपहर तक हम लोग तलहटीमें ही रहे। हमारे साथियोंने १३ ता० को पर्वतकी एक बन्दना और भी की; परन्तु मेरा साहस न हुआ। जितने यात्री ठहरे हुए थे उनमें एक मैं ही ऐसा था जो एक ही बन्दनामें सन्तुष्ट हो गया हो– नहीं तो सबहीने दो दो तीन तीन और चार चार तक बंदनायें की थीं। मेरे ये तीन दिन आसपासके स्थान देखने, यात्रियोंके आचार विचार देखने सुनने, शास्त्र बाँचने और धर्मशालाका प्रबन्ध निरीक्षण करनेमें व्यतीत हुए।

बन्दनाके समयको छोड़कर, यात्रियोंका और सारा समय एक तरहसे व्यर्थ ही जाता है। सबेरे और शामको थोड़ी देरके लिए पूजा और शास्त्रसभामें जानेके सिवा उन्हें और कोई काम ही नहीं! क्या ही अच्छा हो यदि इन श्रद्धालुओंके ऊपर दयाकरके तीर्थके प्रबन्धकर्ता कोई ऐसा प्रबन्ध कर देवें जिससे इनका समय धर्मचर्चामें व्यतीत हुआ करे और इनके कानोंमें अपने धर्मकी, अपने समाजकी और अपने देशकी दुर्गतिकी आवाज भी पहुँच जाया करे। प्रत्येक तीर्थपर एक एक विचारशील उपदेशक रख देनेसे यह कार्य हो सकता है। जैनसमाजके उपदेशक वहां तो उपदेश देने जाते हैं, जहां लोगोंको दुनियाके

झगड़ोंके मारे सुननेका अवकाश ही नहीं; पर जहां उन्हें अवकाश रहता है, उनके भावोंमें एक तरहकी उज्वलता, धर्मलालसा और शान्ति रहती है, वहां कोई उन्हें कुछ सुनाना ही नहीं चाहता। एक दिन अवकाश मिलनेपर मैंने विचार किया कि कोई समाचार-पत्र मिले तो पढ़ूं; परन्तु दरयाफ्त करनेसे मालूम हुआ कि यहां कोई भी पत्र नहीं आता, एकाध आता है, तो प्रतावगढ़ भेज दिया जाता है। ग्रन्थोंका संग्रह भी ऐसा नहीं जिससे किसी स्वाध्यायप्रेमीका यहां चित्त लग जावे।

ता० १२ को हम लोग अशोकके शिलालेख देखनेके लिए गये। तलहटीसे जो सड़क जूनागढ़ गई है, उसपर तलहटीसे लगभग दो मील चलकर ठीक सड़कपर बाईं ओर एक विशाल अर्धवर्तुलाकार शिलापर ये लेख हैं। शिला कई स्थानोंसे दरक गई है और इससे लेखके कोई कोई अंश उड़ गये हैं। हजारों वर्ष तक खुले मैदानमें पड़े रहनेके बाद अब इन लेखोंकी कदर हुई है और इन्हें प्राचीनकालके बहुमूल्य स्मारक समझकर जूनागढ़ सरकारने इनकी रक्षाके लिए एक पक्का मकान बनवा दिया है। सब मिलाकर १९ लेख हैं जिनमें १३ प्रसिद्ध बौद्ध सम्राट् अशोक-के हैं और दो समुद्रगुप्त तथा रुद्रदामा नामक राजाओंके। ये सब लेख पालीभाषा और पाली लिपिमें हैं। इन लेखोंके पढ़नेके लिए पश्चिमी विद्वानोंने बड़े बड़े परिश्रम किये हैं। जिस कठिनाई और जिस अटूट प्रयत्नसे ये लेख पढ़े गये हैं उसका इतिहास बड़ा ही कुतूहलजनक है। यदि ये लेख न पढ़े जाते तो अशोक जैसे चक्रवर्ती राजाका नाम ही भारतके इतिहाससे उड़ जाता। कुछ समय पहले ये लेख गुप्त धन बतलानेके कोई गूढ चिन्ह या

विधाताके आज्ञापत्र समझे जाते थे। बहुत लोग तो अब भी ऐसा ही समझते हैं। जिस समय मैं उक्त लेखोंको देखनेके लिए गया उस समय मुझे भी एक ऐसे ही महात्मासे भेंट हो गई। आपने इनके विषयमें ऐसी ऐसी बेसिरपैरकी हाँकीं कि मैं आपकी कल्पनाशक्तिकी मन ही मन प्रशंसा करने लगा। मैंने यह समझानेकी बहुत कोशिश की कि ये लेख पाली लिपिके हैं और ये अच्छी तरहसे पढ़ लिये गये है; परन्तु वह सब व्यर्थ हुई।

अशोक चन्द्रगुप्तका पोता था। बौद्ध धर्मको सारी पृथ्वीमें फैलानेवाला यही प्रतापी राजा था। भारतको छोड़कर दूर दूरके यवन हूण आदि राजा भी इसका शासन मानते थे। इसके समयमें हजारों उपदेशक देशदेशान्तरोंमें जाकर बौद्ध धर्मका उपदेश किया करते थे। यह बड़ा दयालु और धर्मात्मा था। प्रजाके आरामके लिए और प्राणीमात्रको सुख पहुँचानेके लिए इसने बड़े बड़े कार्य किये थे। पक्की सड़कें, उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष, कुए बावड़ी, दानशाला, ओषधशाला आदि बनवाकर इसने अपने अशोक नामको सार्थक कर दिया था। इसके समयमें पशुओं तकके लिए देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक ओषधशालायें खोली गई थीं। ईस्वी सन्से २६३ वर्ष पहले यह राजसिंहासन पर बैठा था। गिरनारके सिवा दिल्ली, इलाहाबाद, पेशावरके समीप कर्पर्दिगिरि और उड़ीसाके अन्तर्गत धावली ग्राममें भी अशोकके शिलालेख पाये गये हैं। जैनहितैषीके पाँचवें भागके पहले अँकमें हम अशोकके कई शिलालेखोंका अनुवाद प्रकाशित कर चुके हैं–उनमें गिरनारके भी तीन शिलालेख हैं। इन शिलालेखोंसे उक्त राजाके प्रजाप्रेम, धर्मप्रेम, शान्तिप्रेम और कर्तव्यप्रेमका पद पद पर परिचय मिलता

है। रुद्रदामा महाक्षत्रप (शक) वंशका राजा था। यह ईस्वी सन् १३७ के लगभग हुआ है। शिलालेखमें इसके पराक्रमादि गुणोंका भूरि भूरि वर्णन किया है। सौराष्ट्र इसके राज्यका एक सूबा था। यहांके सूबेदार सुविसाक पल्हवने रुद्रदामाकी आज्ञासे ई० स० १३७ में सुदर्शन सरोवरको—जो कि एक बड़ी भारी अतिवृष्टिसे फूट गया था—फिरसे बँधवाया था।

स्कन्दगुप्त गुप्तवंशीय महाराज कुमारगुप्तका पुत्र था। यह ईस्वीसन् ४४९ के लगभग हुआ है। इसने सौराष्ट्रको क्षत्रप राजाओंके हाथसे छीन लिया और परणदत्तके पुत्र चक्रपालितको वहांका अधिकारी नियत किया। सुदर्शन तालाब अतिवृष्टिसे फिर फूट गया था इसलिए उक्त अधिकारीने ई० स० ४४९ में उसे फिर बँधवाया। स्कन्दगुप्त भी बड़ा पराक्रमी राजा होगया है।

शिलालेख देखकर मार्गमें शैव वैष्णवोंके अनेक मन्दिर, कुंड, धर्मशालायें आदि देखते हुए हम लोग फिर तलहटीमें आ गये।

ता० १४ के दो पहरको हम लोग तलहटीसे चल दिये और जूनागढ़ शहरकी दिगम्बरी धर्मशालामें जाकर ठहरे। पुरानी धर्मशाला नये तौरसे बन रही है। जगह खूब लम्बी चौड़ी है। कोई हजार आदमी ठहर सकते हैं। विचार था कि आज शहरके मुख्य मुख्य दर्शनीय स्थान देख लेंगे और सबेरे पालीतानाको चल देंगे; परन्तु स्थान दूर थे इसलिए दूसरे दिनके लिए ठहर जाना पड़ा। आज बाजार वगैरह देखकर ही सन्तोष करना पड़ा।

(क्रमशः।)

——०——

सद्धर्म-सन्देश ।

(१)

मन्दाकिनी दयाकी, जिसने यहां बहाई ।
हिंसा कठोरताकी, कीचड़को धो बहाई ॥
समता सुमित्रताका, ऐसा अमृत पिलाया ।
द्वेषादि रोग भागे, मदका पता न पाया ॥

(२)

उस ही महान् प्रभुके, तुम हो सभी उपासक ।
उस वीर वीर जिनके, सद्धर्मके सुधारक ॥
अतएव तुम भी वैसे, बननेका ध्यान रक्खो ।
आदर्श भी उसीका, आँखोंके आगे रक्खो ॥

(३)

संकीर्णता हटाओ, दिलको बड़ा बनाओ ।
निज कार्यक्षेत्रकी अब, सीमाको कुछ बढ़ाओ ॥
सबहीको अपना समझो, सबको सुखी बना दो ।
औरोंके हेतु अपने, प्रिय प्राण भी लगा दो ॥

(४)

ऊंचा उदार पावन, सुखशान्तिपूर्ण प्यारा ।
यह धर्मवृक्ष सबका, निजका नहीं तुम्हारा ॥
रोको न तुम किसीको, छायामें बैठने दो ।
कुल जाति कोई भी हो, संताप मैटने दो ॥

(५)

जो चाहता हो अपना, कल्याण मित्र! करना।
जगदेकबन्धु जिनका, पूजन पवित्र करना॥
दिल खोल करके करने दो, चाहे कोई भी हो।
फलते हैं भाव सबके, कुल जाति कोई भी हो॥

(६)

सन्तुष्टि शान्ति सच्ची, होती है ऐसी जिससे।
ऐहिक क्षुधा पिपासा, रहती है फिर न जिससे॥
वह है प्रसाद प्रभुका, पुस्तक-स्वरूप इसको।
सुख चाहते सभी हैं, चखने दो चाहे जिसको॥

(७)

यूरुप अमेरिकादिक, सारे ही देशवाले।
अधिकारि इसके सब हैं, मानव सफ़ेद काले॥
अतएव कर सकें वे, उपभोग जिस तरहसे।
यह बाँट दीजिए उन, सबको ही उस तरहसे॥

(८)

यह धर्मरत्न धनिको!, भगवानकी अमानत।
हो सावधान सुन लो, करना नहीं ख़यानत॥
दे दो प्रसन्न मनसे, यह वक्त आ गया है।
इस ओर सब जगतका, अब ध्यान लग रहा है॥

(९)

कर्तव्यका समय है, निश्चिन्त हो न बैठो।
थोथी बड़ाइयोंमें, उन्मत्त हो न

सद्धर्मका सँदेशा, प्रत्येक नारि नरमें।
सर्वस्व भी लगाकर, फैला दो विश्व भरमें ॥
—समय।

-०—

महाराष्ट्र और कर्नाटकके जैन राजवंश।

महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्तमें अनेक जैनी राजा हो गये हैं। प्राचीन साहित्य और शिलालेखादिकके अवलोकनसे अब उक्त राजाओंका थोड़ा बहुत परिचय प्राप्त होने लगा है। गत ६ मईके मराठी केसरीमें 'ना. श्री. राजपुरोहित' नामक महाशयने इस विषयका एक छोटासा लेख प्रकाशित किया है। उसका सारांश यह है:—

१ चालुक्य।

चालुक्य या सोलंकी राजवंशमें कीर्तिवर्मा नामका एक कानड़ी कवि हो गया है। उसने 'गोवैद्य' नामका एक पशुचिकित्साविषयका ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थके एक पद्यसे मालूम होता है कि त्रैलोक्यमल्लाधिप उसका पिता, विक्रमांकनरेंद्र उसका बड़ा भाई, देवचन्द्रमुनि उसके गुरु और जिनेन्द्रदेव उसके इष्ट देव थे। इस कविके समयमें 'ब्रह्मशिव' नामका एक और जैन कवि था। वह ब्राह्मण था। उसने समयपरीक्षा नामक ग्रन्थ रचकर जैनधर्मका श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया है। इस ग्रन्थमें उसने कीर्तिवर्माका उल्लेख खूब स्पष्ट शब्दोंमें किया है और उसे चालुक्याभरण सार्वभौम राजा तथा श्रेष्ठकवि बतलाया है। कीर्तिवर्माके पिता त्रैलोक्यमल्लने ई० सन् १०४४ से १०६८ तक राज्य किया है।

चालुक्यवंशमें एक दूसरा जैन राजा भुवनैकमल्ल हो गया है। उसने ई०स० १०६९ से १०७६ तक राज्य किया है। गुणचन्द्र नामक जैन मुनिका वह मुख्य शिष्य था।

इसी वंशके पेर्म जगदेकमल्ल नामक राजाने ११३९ से ११४९ ईस्वीसन् तक राज्य किया है। नागवर्म (द्वितीय) नामक जैन ब्राह्मण उसका कुलोपाध्याय था।

२ राष्ट्रकूट।

राष्ट्रकूट या राठौर वंशमें नृपतुंग या अमोघवर्ष नामका सुप्रसिद्ध राजा हो गया है। इसने कानड़ीमें 'कविराजमार्ग' नामका ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थके पहले परिच्छेदके ९० वें श्लोकमें और तीसरे परिच्छेदके १८ वें श्लोकमें उसने जिनेन्द्रदेवका स्तवन किया है। गुणभद्रस्वामीके उत्तरपुराणसे मालूम होता है कि वह जिनसेन भट्टारकका शिष्य था। प्रश्नोत्तररत्नमालाका कर्त्ता भी यही था।

पंडित भगवानलाल इन्द्रजीके प्रकाशित किये हुए लेखोंसे मालूम होता है कि द्वितीय मिल्लम नामक राजाका विवाह शिलाहारवंशके झंझराजाकी कन्या लक्ष्मीयव्वाके साथ हुआ था और उसकी (लक्ष्मीयव्वाकी) माता राष्ट्रकूटवंशकी थी। अर्थात् ये तीनों ही राजवंश बहुत करके जैनधर्मानुयायी थे।

३ देवगिरि यादव।

ईस्वीसन् १२३९ के लगभग कमलभव नामका एक जैन कवि हो गया है। उसने अपने शान्तीश्वरपुराणमें विनयेन्दुव्रति (विनयचन्द्र मुनि) नामक जैनगुरुकी स्तुति की है और उसे 'सिंहणो-

वींश्वरविनमन्मस्तकनादं' विशेषण दिया है। यह सिंहण नामका राजा जो विनयचन्द्रमुनिको मस्तक नवाता था—देवगिर यादव-वंशका था। इसने ईस्वीसन् १२१० से १२४८ तक राज्य किया है।

४ कलचूरि।

कलचूरिवंशका सुप्रसिद्ध राजा बिज्जल जैनधर्मका उपासक था। कनड़ी भाषाके 'बसवपुराण' और 'चैन्न बसवपुराण' नामके ग्रन्थ इस विषयकी स्पष्ट साक्षी देते हैं। ये दोनों ग्रन्थ अजैन विद्वानोंके बनाये हुए हैं।

५ सौंदत्ती रट्टराज।

इस वंशका मूल पुरुष मेरद और उसका पुत्र पृथ्वीराम ये दोनों ही जैन धर्मोदेशक थे।

इस वंशके चौथे कार्तवीर्य नामक राजाका आश्रित एक पार्श्व-पण्डित नामका जैनकवि था। इस कविने ई० स० १३०९ में कार्त-वीर्यका एक शिलाशासन लिखा है उससे मालूम होता है कि कार्तवीर्य राजा शुभचन्द्र भट्टारकका शिष्य था। कार्तवीर्यने १२०२ से १२२० तक राज्य किया है।

६. शिलाहार।

इस वंशके लक्ष्मणराज नामक राजाके दरबारमें 'कर्णपार्य' नामक एक जैन कवि था। राजाकी प्रेरणासे इस कविने नेमिनाथपुराण नामक ग्रन्थ बनाया है। इसमें लिखा है कि लक्ष्मणराज नेमिचन्द्र मुनिका शिष्य था।

-०——-

जैनियोंका अत्याचार ।

जो जैनी वनस्पतिकायके जीवोंकी भी रक्षा करते हैं, उनके ऊपर अत्याचारके दोषका आरोपण होते देख बहुतसे पाठक चोंकेंगे-परन्तु नहीं, चौंकनेकी जरूरत नहीं है । वास्तवमें जैनियोंने घोर अत्याचार किया है और वे अब भी कर रहे हैं । हमारे भाइयोंने अभी तक इस ओर लक्ष्य ही नहीं दिया और न कभी एकान्तमें बैठकर इसपर विचार ही किया । यदि जैनियोंके अत्याचारकी मात्रा बढ़ी हुई न होती तो आज जैनियोंका इतना पतन कदापि न होता—जैनियोंकी यह दुर्दशा कभी न होती। जैनियोंका समस्त अभ्युदय नष्ट हो जाना, इनके ज्ञानविज्ञानका नामशेष रह जाना, अपने बलपराक्रमसे जैनियोंका हाथ धो बैठना, अपना राज्य गँवा देना, धर्मसे च्युत और आचारभ्रष्ट हो जाना तथा जैनियोंकी संख्याका दिनपरदिन कम होते जाना और जैनियोंका सर्व प्रकारसे नगण्य और निस्तेज हो रहना, यह सब अवश्य ही कुछ अर्थ रखता है—इन सबका कोई प्रधान कारण जरूर है और वह जैनियोंका अत्याचार है।

जिस समय हम जैन सिद्धान्तको देखते हैं, जैनियोंकी कर्म फिलासोफीका अध्ययन करते हैं और साथ ही, जैनियोंकी यह पतितावस्था क्यों ? लौकिक और परमार्थिक दोनों प्रकारकी उन्नतिसे जैनी इतने पीछे क्यों ? इस विषयपर अनुसंधानपूर्वक गंभीर भावसे विचार करते हैं तो उस समय हमको मालूम होता है और कहना पड़ता है कि यह सब जैनियोंके अपने ही कर्मोंका फल है। जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है । अवश्य ही जैनियोंने कुछ ऐसे काम किये हैं जिनका कटुक

फल वे अबतक भुगत रहे हैं। यह कभी हो नहीं सकता कि **अत्याचार तो करें दूसरे लोग और फल उसका भोगना पड़े जैनियोंको**। जैन फिलासोफी इसको माननेके लिए तैयार नहीं। यदि थोड़ी देरके लिए उस मनुष्यको भी जिसपर अत्याचार किया गया हो, कोई बुरा फल सहन करना हो अथवा किसी आपत्तिका निशाना बनना पड़े तो कहना होगा कि उसने भी जरूर अपनी चेष्टा या अपने मनवचनादिक्के द्वारा दूसरोंके प्रति कोई अत्याचार विशेष किया है और वह बुरा फल उसके ही किसी कर्मविशेषका नतीजा है। यही हालत जैनसमाजकी है। यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले समयमें जैनियोंपर थोड़े बहुत अत्याचार जरूर हुए है; परन्तु वे अत्याचार जैनियोंकी वर्तमानदशाके कारण नहीं हो सकते। जैनियोंकी वर्तमान अवस्था कदापिं उनका फल नहीं है। यदि जैनियोंने उन अत्याचारोंको मनुष्य बनकर सह लिया होता और स्वयं उनसे अधिक अत्याचार न किया होता तो जरूर था कि यह जैनबाग (जैनसमाज) दूसरोंके अत्याचाररूपी खाद (manure) से और भी हराभरा और सरसब्ज होता—खूब फलता और फूलता; परन्तु जैनियोंको ऐसी सद्बुद्धि ही उत्पन्न नहीं हुई। उनके विचार इतने संकीर्ण और स्वार्थमय रहे हैं कि सदसद्विवेकवती बुद्धिको उनके पास फटकनेमें भी लज्जा आती थी। अत्याचार और भी अनेक धर्मानुयायियोंको सहन करने पड़े हैं; परन्तु उनमेंसे जिन्होंने अपने कर्तव्यपथको नहीं छोड़ा, अपने सामाजिक सुधारको समझा, उन्नतिके मार्गको पहचाना, अपनी त्रुटियोंको दूर किया, सबको प्रेमकी दृष्टिसे देखा और अपने स्वार्थको गौणकर दूसरोंका हित-

साधन किया, वे दुखके दिन व्यतीत करके आज अपने सत्कर्मोंका सुमधुर फल भोग रहे हैं। इससे साफ प्रगट है कि जैनियोंकी वर्तमानदशा उन अत्याचारोंका फल नहीं है जो जैनियोंपर हुए, बल्कि उन अत्याचारोंका फल है जो जैनियोंने दूसरोंपर किये और जो परस्पर जैनियोंने एक दूसरे पर किये। सच है, **मनुष्योंका अपने ही कर्मोंसे पतन और अपने ही कर्मोंसे उत्थान होता है।** जिन जैनियोंके ज्ञान और आचरणकी किसी समय, चारों ओर धाक थी, जिनके सर्व प्राणिप्रेमने अनेक बार जगतको हिला दिया और जिनका राज्य समुद्रपर्यंत फैला हुआ था; आज वे ही जैनी बिलकुल ही रंक बने हुए हैं! यह सब जैनियोंके अपने ही कर्मोंका फल है! इसके लिए किसीको दोष देना—किसीपर इत्तजाम लगाना भूल है। जैनियोंकी वर्तमान स्थिति इस बातको बतला रही है कि उन्होंने जरूर कोई भारी अत्याचार किये हैं तभी उनकी ऐसी शोचनीय दशा हुई है।

जैनियोंने एक बड़ा भारी अपराध यह किया है कि इन्होंने दूसरे लोगोंको धर्मसे वंचित रक्खा है। ये खुद ही धमरत्नके भंडारी और खुद ही उसके सोल प्रोप्रायटर (अकेले ही मालिक) बन बैठे। दूसरे लोगोंको—दूसरे देशनिवासियोंको—धर्म बतलाना, धर्मके मार्गपर लगाना तो दूर रहा, इन्होंने उलटा उन लोगोंसे धर्मको छिपाया है। इनकी अनुदार दृष्टिमें दूसरे लोग बड़ी ही घृणाके पात्र रहे हैं, वे मनुष्य होते हुए भी मनुष्यधर्मके अधिकारी नहीं समझे गये। यद्यपि जैनी अपने मंदिरोंमें यह तो बराबर घोषण करते रहे कि मिथ्यात्वके समान इस जीवका कोई शत्रु नहीं है, मिथ्यात्व ही संसारमें परिभ्रमण करानेवाला और समस्त दुःखोंका मूलकारण है। परन्तु

मिथ्यात्वमें फँसे हुए प्राणियोंपर इन्हें जरा भी दया नहीं आई- उनकी हालतपर इन्होंने जरा भी तरस नहीं खाया और न मिथ्यात्व छुड़ानेका कोई यत्न ही किया। इनका चित्त इतना कठोर हो गया कि दूसरोंके दुःखसुखसे इन्होंने कुछ सम्बन्ध ही नहीं रक्खा। जिस प्रकार कोई दुरात्मा पुत्र अपने स्वार्थमें अंधा होकर यह चाहता है कि मैं अकेला ही पैतृकसम्पत्तिका मालिक बन बैठूँ और अपनी इस कामनाको पूरी करनेके लिए वह अपने पिताके समस्त धनपर अधिकार कर लेता है—यदि पिताके कोई वसीयत भी की हो तो उसको छिपानेकी चेष्टा करता है—और अपने उन भाइयोंको जो दूरदेशान्तरोंमें रहनेवाले हैं, जो नाबालिग (अव्युत्पन्न) हैं, जो भोले या मूर्ख हैं, जिनको अन्य प्रकारसे पिताके धनकी कुछ खबर नहीं है अथवा जो निर्बल है उन सबको अनेक उपायों द्वारा पैतृक सम्पत्तिसे वंचित कर देता है। उसे इस बातका जरा भी दुख दर्द नहीं होता कि मेरे भाइयोंकी क्या हालत होगी? उनके दिन कैसे कटेंगे? और न कभी इस बातका खयाल ही आता है कि मैं अपने भाइयोंपर कितना अन्याय और अत्याचार कर रहा हूं, मेरा व्यवहार कितना अनुचित हैं; मैं अपने पिताकी आत्माके सन्मुख क्या मुँह दिखाऊंगा। उसके विवेकनेत्र बिलकुल स्वार्थसे बन्द हो जाते हैं और उसका हृदययंत्र संकुचित होकर अपना कार्य करना छोड़ देता है। ठीक उसी प्रकारकी घटना जैनियोंकी हुई। ये अकेले ही परमपिता श्री वीरजिनेन्द्रकी सम्पत्तिके अधिकारी बन बैठे। **"समस्त जीव परस्पर समान हैं; जैनधर्म आत्माका निजधर्म है; प्राणीमात्र इस धर्मका अधिकारी है; सबको जैनधर्म बतलाना चाहिए**

और सबको प्रेमकी दृष्टिसे देखते हुए उनके उत्थानका यत्न करना चाहिए।" वीर जिनेंद्रकी इस वसीयतको–उनके इस पवित्र आदेशको-इन स्वार्थी पुत्रोंने छिपानेकी पूर्णरूपसे चेष्टा की है। इन्होंने अनेक उपाय करके अपने दूसरे भाइयोंको धर्मसे कोरा रक्खा, उनकी हालतपर ज़रा भी रहम नहीं खाया और न कभी अपने इस अन्याय, अत्याचार और अनुचित व्यवहार पर विचार या पश्चात्ताप ही किया। बल्कि जैनियोंका यह अत्याचार बहुत कुछ अंशोंमें उस स्वार्थान्ध पुत्रके अत्याचारसे भी बढ़ा रहा। क्योंकि किसी अधिकारीको धनादिकसे वंचित रखना, यद्यपि, अत्याचार ज़रूर है परन्तु जान बूझकर किसीको आत्मलाभसे वंचित रखना, यह उससे कहीं बढ़कर अत्याचार है। मेरा तो, इस विषयमें यहांतक खयाल है कि यह अत्याचार किसीको जानसे मार डालनेकी अपेक्षा भी अधिक है। धनादिक परपदार्थोंका वियोग इतना दुःखजनक नहीं हो सकता जितना कि आत्मलाभसे वंचित रहना। जो लोग अपनी आत्माको जानते हैं, अपने स्वरूपको पहचानते हैं, धर्म क्या और अधर्म क्या, इसका जिन्हें बोध है, उनको धनादिकका वियोग भी इतना कष्टकर नहीं होता जितना कि न जानने और न पहचाननेवालोंको होता है। इसलिए दूसरोंको धर्मसे वंचित रखना उनके लिए घोर दुःखोंकी सामग्री तैयार करना है। क्या इस अत्याचारका भी कहीं ठिकाना है? शोक! ऐसा महान् अत्याचार करनेवाले जैनियोंका पाषाणहृदय, दूसरोंके दुःखोंका स्मरण ही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी जरा नहीं पसीजा–आत्मलाभसे वंचित पापी और मिथ्यादृष्टि मनुष्य जैनियोंके सन्मुख ही अनेक प्रकारके अनर्थ और पापाचरण

करके अपनी आत्माओंका पतन करते रहे; परन्तु जैनियोंको उन-पर कुछ भी दया नहीं आई और न दूसरे जीवोंकी रक्षाका ही कुछ खयाल उत्पन्न हुआ।

संसारमें ऐसा व्यवहार है कि यदि कोई अंधा मनुष्य कहीं चला जा रहा हो और उसके आगे कुआ आजाय तो देखनेवाले उस अंधेको तुरन्त ही सावधान कर देंगे और अपनी समस्त शक्तिको, उसे कुएमें गिरनेसे बचाने अथवा गिरजानेपर उसके शीघ्र निका-लनेमें लगा देंगे। यदि कोई मनुष्य अंधेके आगे कुआ देखकर भी चुपचाप बैठा रहे और उसकी रक्षाका कुछ भी उपाय न करे तो वह बहुत पापी और निंद्य समझा जाता है। किसी कविने कहा भी है कि:—

"जब तू देखै आँखसे, अंधे आगै कूप।
तब तेरा चुप बैठना, है निश्चय अघरूप॥"

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य किसीको दिनदहाड़े लूटता हो और दूसरा आदमी उसके इस कृत्यको देखता हुआ भी आनंदसे हुक्का गुड़गुड़ाता रहे और उसके बचानेकी कुछ भी कोशिश न करे तो कहना होगा कि वह महा अपराधी है। जैनी लोग इस बातको बराबर स्वीकार करते आए हैं कि मिथ्यादृष्टि लोग अंधे होते हैं—उन्हें हित अहित कुछ भी सूझ नहीं पड़ता, परन्तु जैनियोंके सन्मुख ही लाखों और करोड़ों मिथ्यादृष्टि अन्याय, अभक्ष्य और अतत्त्व श्रद्धारूपी कुएमें बराबर गिरते रहे तो भी इन सुदृष्टियोंको उनपर जरा भी दया नहीं आई। इन्होंने अपने मौनव्रतको भंगकर उनके बचाने या निकालनेकी कुछ भी चेष्टा नहीं की। और तो क्या, इनके सामने ही बहुतसे इनके भाइयों (जैनियों) का

धनधर्म लूटलिया गया और वे मिथ्यादृष्टि बना दिये गये; परन्तु फिर भी इनके कठोर चित्तपर कुछ आघात नहीं पहुंचा। ये बराबर अपने आनन्दमें मस्त रहे। कोई जीयो या मरो, इन्होंने उसकी कुछ परवा नहीं की। बल्कि ये लोग उलटा खुश हुए और इन्होंने जान बूझकर अपने बहुतसे भाइयोंको लुटेरोंके सपुर्द किया। यदि किसी भाईसे कोई अपराध या खोटा आचरण बन गया तो इन्होंने उसको अपनेमेंसे ऐसे निकाल कर फेंक दिया जैसा कि दूधमेंसे मक्खीको निकालकर फेंक देते हैं। इन्होंने उसको कुछ भी धीर दिलासा नहीं दिया; न इन्होंने उसके खोटे आचरणको छुड़ाकर धर्ममें स्थिर करनेकी कोशिश की और न प्रायश्चित्त आदिसे शुद्ध करनेका कोई यत्न किया। बल्कि उसके साथ बिलकुल शत्रुओं सरीखा व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया। नतीजा इसका यह हुआ कि उसको अपनी संसारयात्राका निर्वाह करनेके लिए दूसरोंका शरण लेना पड़ा और वह हमेशाके लिए जैनियोंसे बिछड़ गया। इससे समझ लीजिए कि जैनियोंने कितना बड़ा अपराध और अत्याचार किया है—कहांतक इन्होंने अपने धर्मका उल्लंघन और कहांतक उसके विरुद्ध आचरण किया है।

मनुष्यका यह धर्म नहीं है कि यदि कोई मनुष्य किसी नदी आदिमें गिरता हो या बहता जाता हो तो उसको उलटा धक्का दे दिया जावे। और यदि वह किनारेके पास भी हो और निकलना भी चाहता हो तो उसको ठोकर मारकर और दूर फेंक दिया जावे, जिससे वह निकलनेके काबिल भी न रहे। बल्कि इसके विपरीत उसको न गिरने देना या हस्तावलम्बन देकर निकालना ही मनुष्यधर्म कहलाता है। इसी लिए जैनियोंके यहां-

'**स्थितिकरण**' धर्मका अंग रक्खा गया है । स्वामी **समन्तभद्राचार्य**ने 'रत्नकरंडश्रावकाचार' में इसका स्वरूप इस प्रकार वर्णन किया है:—

"दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थानं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥"

अर्थात्—जो लोग किसी कारणवश अपने यथार्थ श्रद्धान या यथार्थ आचरणसे डिगते हों–धर्मसे प्रेम रखनेवाले पुरुषोंको चाहिए कि उनको फिरसे अपने श्रद्धान और आचरणमें दृढ कर दें । यही 'स्थितिकरण' अंग कहलाता है ।

परन्तु शोक ! जैनियोंने यह सब कुछ भुला दिया । गिरतेको सहारा या हस्तावलम्बन देना तो दूर रहा इन्होंने उलटा उसको और जोरका धक्का दिया । श्रद्धान और आचरणसे डिगना तो दूसरी बात, यदि किसीने रूढियों (जैनियोंके सम्यक्चारित्र ?) के विरुद्ध जरा भी आचरण किया अथवा उनके विरुद्ध अपना खयाल भी जाहिर किया तो बस उस बेचारेकी शामत आगई, और वह झट जैनसमाजसे अपना अलग जीवन व्यतीत करनेके लिए मजबूर किया गया । जैनियोंके इस अत्याचारसे हजारों जैनी गाटे, दस्से या विनैकया बन गये; लाखों अन्यमती हो गये; जैनियोंके देखते देखते मुसलमानी जमानेमें लाखों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जबरन मुसलमान बना लिये गये; परन्तु जैनियोंके संगदिलपर इससे कुछ भी चोट नहीं लगी । इन्होंने आजतक भी उन सबोंके शुद्ध करनेका–अपने बिछडे हुए भाइयोंको फिरसे गले लगानेका कोई उपाय न किया । ऐसा कोई अपराध नहीं जिसका प्रायश्चित्त न हो सके । भगवज्जिनसेनाचार्यके निम्नलिखित

वाक्यसे भी प्रगट है कि–यदि किसी मनुष्यके कुलमें किसी भी कारणसे कभी कोई दूषण लगा हो तो वह राजा या पंच आदिकी सम्मतिसे अपनी कुलशुद्धि कर सकता है; और यदि उसके पूर्वज–जिन्होंने दोष लगाया हो दीक्षायोग्य कुलमें उत्पन्न हुए हों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यवर्णके रहे हों तो उस कुलशुद्धि करनेवालेका और उसके पुत्रपौत्रादिक संतानका यज्ञोपवीत संस्कार भी हो सकता है। वह वाक्य इस प्रकार है:—

कुतश्चित्कारणाद्यस्य कुलं सम्प्राप्तदूषणम्।
सोपि राजादिसम्मत्या शोधयेत्स्वं यदा कुलम्॥
तदस्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसंततौ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः॥

आदिपुराण पर्व ४०।

इससे दस्सों और हिन्दूसे मुसलमान बने हुए मनुष्योंकी शुद्धिका खासा अधिकार पाया जाता है। बल्कि शास्त्रोंमें उन म्लेच्छोंकी भी शुद्धिका विधान पाया जाता है जो मूलसे ही अशुद्ध हैं। आदिपुराणमें यह उपदेश स्पष्ट शब्दोंमें दिया गया है कि, 'प्रजाको बाधा पहुंचानेवाले अनक्षर (अनपढ़) म्लेच्छोंको कुलशुद्धि आदिके द्वारा अपने बना लेने चाहिए। * परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी जैनियोंके संकीर्ण हृदयने महात्माओंके इन उदार और दयामय उपदेशोंको ग्रहण नहीं किया। सच भी है, सेरभरके पात्रमें मनभर कैसे समा सकता है? अपात्र जैनियोंके हाथमें जैनधर्म पड़ जानेसे ही उन्होंने जैनधर्मका गौरव नहीं समझा और इसलिए दूसरोंपर मनमाना अत्याचार किया है।

---

* "**स्वदेशेऽनक्षरम्लेच्छान्प्रजाबाधाविधायिनः।**
कुलशुद्धिप्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः॥ १७॥"

–आदिपुराण पर्व ४२।

हम कहते हैं कि दूसरोंको धर्म बतलाने या सिखलानेमें धार्मिकभाव और परोपकार बुद्धिको जाने दीजिए, जैनियोंने यह भी नहीं समझा कि **परस्थिति** कितने महत्त्वकी चीज है। क्या परस्थिति कभी उपेक्षणीय हो सकती है? कदापि नहीं। जहां चारों ओरका जलवायु दूषित हो वहां कदापि आरोग्यता नहीं रह सकती। जहां चारों ओर मिथ्यादृष्टियों और पापाचारियोंका प्राबल्य हो वहां जैनी भी अपना सम्यक्त्व और धर्म कायम नहीं रख सकते। यदि जैनियोंने इस परस्थितिके महत्त्वको ही समझ लिया होता तब भी वे आत्मरक्षाके लिए ही दूसरोंकी स्थितिका सुधार करना अपना कर्तव्य समझते, अवश्य ही दूसरोंको धर्मकी शिक्षा देनेका प्रयत्न करते और कदापि धर्मप्रचारके कार्यसे उपेक्षित न होते; परन्तु महर्षियों द्वारा संरक्षित **वीरजिनेन्द्रकी** सम्पत्तिको पाकर जैनी ऐसे कृपण बने—इनमें चित्तको कठोर करनेवाली ऐसी धार्मिक कृपणता आई कि दूसरोंको उस सम्पत्तिसे लाभ पहुंचाना तो दूर रहा, ये खुद भी उससे कुछ लाभ न उठा सके। यदि इस परमोत्कृष्ट जैनधर्मको पाकर जैनी अपना ही कुछ भला करते तो भी एक बात थी, परन्तु कृपणका धन जिस प्रकार दान और भोगमें न लगकर तृतीया गति (नाश) को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार जैनियोंने जैनधर्म भी तृतीयागतिको पहुंचा दिया—न आप इससे कुछ लाभ उठाया और न दूसरोंको उठाने दिया, वैसे ही इसको नष्ट भ्रष्ट और लुप्तप्राय कर दिया—और जिस प्रकार बादल सूर्यके प्रकाशको रोक लेते हैं उसी प्रकार इन धार्मिक-कृपणोंने जैनधर्मके प्रकाशको आच्छादित कर दिया।

जैनियोंने **जिनवाणी माताके** साथ जैसा सलूक किया है उसको याद करके हृदय काँपता है और शरीरके रोंगटे खड़े होते हैं। इन्होंने माताको उन अँधेरी कोठरियोंमें बंद करके रक्खा, जहां रोशनी और हवाका गुजर नहीं; उसका अंग चूहोंसे कुतरवाया और दीमकोंको खिलाया; माता गलती है या सड़ती, जीती है या मरती, इसकी इन्होंने कुछ भी परवा नहीं की। हजारों जैन-ग्रंथोंकी मिट्टी हो गई, हजारों शास्त्र चूहों और दीमकोंके पेटमें चले गये, लाखों और करोड़ों मनुष्य मातृवियोग दुःखसे पीड़ित रहे; परन्तु इन समस्त दृश्योंसे जैनियोंके वज्रहृदयपर कुछ भी चोट नहीं लगी। मातापर इस प्रकारके अत्याचार करते हुए जैनियोंका हृदय जरा भी कम्पायमान नहीं हुआ और इन्हें कुछ भी लज्जा या शर्म नहीं आई। इन्होंने उलटी यहांतक निर्लज्जता धारण की कि अपने इन अत्याचारोंका नाम '**विनय**' रखछोड़ा। वास्तवमें इनका नाम विनय नहीं है, ये घोर अत्याचार हैं। और न ढाई हाथ दूरसे जोड़ने या चावलके दाने चढ़ा देनेका नाम ही विनय है। जिनवाणीका विनय है–**जैनशास्त्रोंका पढना, पढाना उनके मुताबिक चलना और उनका सर्वत्र प्रचार करना**। इस वास्तविक विनयसे जैनी कोसों दूर रहे और इसलिए इन्होंने माताका घोर अविनय ही नहीं किया, बल्कि जैनशास्त्रोंका लोप भी किया है।

इसी प्रकार जैनियोंने **स्त्रीसमाजपर** जो अत्याचार किया है वह भी कुछ कम नहीं है। इन्होंने लड़कियोंको बेचा, धनके लालचसे अपनी सुकुमार बालिकाओंको यमके यजमानोंके गले बाँध उन्हें हमेशाके लिए पापमय जविन व्यतीत करनेको मजबूर किया, अनमेल सम्बन्ध करके स्त्रियोंका जीवन दुःखमय बनाया

और उन्हें अनेक प्रकारका दुःख और कष्ट पहुँचाया; पर इन सब अत्याचारोंको रहने दीजिए। जैनियोंने इन सब अत्याचारोंसे बढ़कर स्त्रीसमाजपर जो भारी अत्याचार किया है उसका नाम है **स्त्रीसमाजको अशिक्षित रखना**। स्त्रियों और बालिकाओंको विद्या न पढ़ाकर जैनियोंने उनके साथ बड़ी ही शत्रुताका व्यवहारा किया है। जिस विद्या और ज्ञानके विना मनुष्य निद्रित, अचेत, पशु और मृतकके तुल्य वर्णन किये गये हैं और जिसके विना सुख शांतिकी प्राप्ति नहीं हो सकती; उसी विद्या और ज्ञानसे जैनियोंने स्त्रियोंको वंचित रक्खा, यह इनका कितना बड़ा अन्याय है? जैनियोंने स्त्रियोंकी योग्यता और उनकी विद्यासम्पादन शक्तिको न समझा हो, ऐसा नहीं; किन्तु '**लड़कियाँ पराए घरका धन और पराए घरकी चाँदनी हैं, वे हमारे कुछ काम नहीं आ सकतीं।**' इस स्वार्थमय वासनासे जैनियोंने उन्हें विद्यासे विमुख रक्खा है। इस नीच विचारने ही जैनियोंको अपनी संतानके प्रति ऐसा निर्दय बनाया और इतना विवेकहीन बनाया कि उन्होंने स्त्रीसमाजके साथ पशुओं सदृश व्यवहार किया, उन्हें जडवत् रक्खा, काष्ठपाषाणकी मूर्तियें समझा और उन्हें अपनी आत्मोन्नति करने देना तो दूर रहा, यह भी खबर न होने दी कि संसारमें क्या हो रहा है। क्या यह थोड़ा अत्याचार है? नहीं इस अत्याचारके करनेमें जैनी मनुष्यताका भी उल्लंघन कर गये। इनसे पशुपक्षी ही अच्छे रहे जो अपनी नर और मादी दोनों प्रकारकी संतानको समान दृष्टिसे अवलोकन करते हैं और उससे किसी भी प्रकारके प्रत्युपकारकी वांछा न रखते हुए अपना कर्त्तव्य समझ कर सहर्ष उसका पालन पोषण करते हैं।

हमें यहांपर यह लिखते हुए दुःख होता है कि जैनियोंका यह अत्याचार केवल स्त्रीसमाजको ही नहीं भोगना पड़ा, बल्कि पुरुषोंको भी इसका हिस्सेदार बनना पड़ा है—बालकों पर भी इसका नजला टपका है। माताओंके अशिक्षित रहनेसे—परस्थितिके बिगड़ जानेसे—वे भी शिक्षासे प्रायः विहीन ही रहे हैं। हजारमें दश पाँचने यदि मामूली विद्या पढ़ी भी—कुछ अक्षरोंका अभ्यास किया भी—तो इसका नाम शिक्षा नहीं है। जैन बालकोंको जैसी चाहिए वैसी विद्यायें नहीं पढ़ाई गईं। यदि उन्हें बराबर विद्यायें पढ़ाई जातीं तो आज उन हजारों विद्याओंका लोप न होता, जिनका उल्लेख जैन शास्त्रोंमें मिलता है। दिव्य विमानोंकी रचनाको जाने दीजिए, आज कोई जैनी उस **मयूरयंत्रके** बनानेकी विधि भी नहीं जानता, जिसको **जीवंधरके** पिता **सत्यधरने** बनाया था और उसमें अपनी गर्भवती स्त्रीको बिठलाकर, गर्भस्थ पुत्रकी रक्षाके लिए, उसे दूर देशान्तरमें पहुँचाया था! इसी प्रकार सैकड़ों विद्याओंका नामोल्लेख किया जा सकता है। जैनियोंने शिक्षा और खासकर स्त्रीशिक्षासे द्वेष रखकर इन समस्त विद्याओंके लोप करनेका पाप अपने सिर लिया है और इसलिए जैनी समस्त जगतके अपराधी हैं।

जैनियोंका एक भारी अत्याचार और भी है और वह अपनी संतानकी छोटी उम्रमें शादी करना है। इसके विषयमें मुझे कुछ विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है। हाँ इतना जरूर कहूंगा कि इस राक्षसी कृत्यके द्वारा आजतक लाखों ही नहीं किन्तु करोड़ों दूधमुँही बालिकाएं विधवा हो चुकी हैं—वैधव्यकी भयंकर आँचमें भुन चुकी हैं। हजारोंने अपने शील शृंगारको उतार

दिया, व्यभिचारका आश्रय लिया, दोनों कुलोंको कलंकित किया और भ्रूणहत्यायें तक कर डालीं। इसके सिवा बाल्यावस्थामें स्त्रीपुरुषका संसर्ग हो जानेसे जो शारीरिक और मानसिक निर्बलतायें इनकी संतानमें उत्तरोत्तर प्राप्त हुंई उनका कुछ भी पारावार और हिसाब नहीं है। निर्बल मनुष्यका जीवन बड़ा ही बबाले-जान और संकटमय होता है। रोगोंका उस पर आक्रमण हो जाना तो एक मामूलीसी बात है। जैनियोंके इस अत्याचारसे उनकी संतान बड़ी ही पीड़ित रही। उससे हिम्मत, साहस, धैर्य, पुरुषार्थ और वीरता आदि सद्गुणोंकी सृष्टि ही एकदम उठ खड़ी हुई। जैनी निर्बल होकर तन्दुल मच्छकी तरह, घोर मानसिक पापोंका संचय करते रहे और इन पापोंने उदय आकर जन्म जन्मान्तरोंमें इन्हें खूब ही नीचा दिखाया। जैनियोंका यह गुड्डा गुड्डीका खेल (बाल्य-विवाह) बड़ा ही हृदयद्रावक है। इसने जैनसमाजकी जड़में बड़ा ही कुठाराघात किया है। इस प्रकार जैनियोंने बहुत बड़े बड़े अत्याचार किये हैं। इनके सिवा और जो छोटे मोटे अत्याचार किये हैं उनकी कुछ गिनती ही नहीं है। जैनियोंके इन अत्याचारोंसे जैनधर्म कितना कलंकित हुआ और जगतमें कैसे कैसे अनर्थ फैले, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। जैनियोंके इन अत्याचारोंहीका फल उनकी वर्त्तमान दशा है। बल्कि नहीं, जैनियोंमें इस समय जो कुछ थोड़ी बहुत अच्छी बातें बची खुची हैं, उनका श्रेय स्वामी समन्तभद्र, अकलंकदेव और विद्यानन्द आदि परमोपकारी आचार्यों तथा अन्य परोपकारी महानुभावोंको प्राप्त है। ऐसे जगद्बन्धुओंके आश्रित रहनेसे ही जैनधर्मके अभीतक कुछ चिह्न अवशेष पाये जाते हैं; अन्यथा

जैनियोंके अत्याचार उनकी सत्ताको बिलकुल लोप करनेके लिए काफी थे। जबतक जैनियोंने अत्याचार करना प्रारंभ नहीं किया था, तबतक इनका बराबर डंका बजाता रहा, ये खूब फलते और फूलते रहे परन्तु जबसे ये लोग अत्याचारोंपर उतर आए तभीसे इनका पतन शुरू होगया। और आज वह दिन आगया कि ये लोग पूरी अधोदशाको पहुँच गये हैं। जैनियोंके अत्याचार जैनियोंको खूब ही फले—इन्होंने अपने कियेकी खूब सज़ा पाई—ये लोग दूसरोंको धर्म बतलाना नहीं चाहते थे, अब खुद ही उस धर्मसे वंचित होगये; दूसरोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, अब खुद ही घृाणके पात्र बनगये; जिस बल, विद्या और ऐश्वर्यपर इन्हें घमंड था वह सब नष्ट होगया; ये लोग अपने आपको भले ही जीवित समझते हों परन्तु जीवित समाजोंमें अब इनकी गणना नहीं है; इनकी गणना है मरणोन्मुख समाजोंमें। जैनी लोग अन्धकारमें पड़े हुए सिसक रहे हैं—वास्तवमें इनकी हालत बड़ी ही करुणाजनक है। जबतक जैनी लोग इन अत्याचारोंको बंद करके अपने पूर्व पापोंका प्रायश्चित्त नहीं करेंगे तबतक वे कदापि इस देवकोपसे बिमुक्त नहीं हो सकते, उनका अभ्युत्थान नहीं हो सकता और न उनमें जीवनीशक्तिका फिरसे संचार हो सकता है। आशा है कि हमारे जैनीभाई इस लेखको पढ़कर अपने अत्याचारोंकी परिभाषा समझेंगे और उनके भयंकर परिणामको विचार कर शीघ्र ही उनका प्रायश्चित्त करनेमें दत्त-चित्त होगें। प्रायश्चित्तविधि बतलानेके लिए मैं सहर्ष तैयार हूँ।

जुगलकिशोर मुखतार,

देवबन्द, जि० सहारनपुर।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

१. जैनसमाजमें जातिभेदकी चर्चा।

कुछ समय पहले जैनसमाजका जातिभेद वर्णभेद आदि प्रश्नोंकी ओर ध्यान ही नहीं था—वह इस विषयमें बिलकुल चुप था; परन्तु अब वह चुप नहीं रह सकता। शिक्षा प्रचारके साथ ही उसमें इन प्रश्नोंकी चर्चा होने लगी है और वह धीरे धीरे जोर भी पकड़ने लगी है। एक तो जैनसमाजको भयानक क्षय हो गया है और दूसरे वर्तमान समयकी परिस्थिति अब उसे चुप नहीं रहने देती। इस समय सारे भारतमें वर्णभेद और जातिभेदके सम्बन्धमें विचार हो रहे हैं। शिक्षित लोग उद्योग कर रहे हैं कि भारतके नीच और अस्पृश्य माने हुए छह करोड़ मनुष्य ऊंचे उठाये जावें और अपने राष्ट्रके इस लकवासे मारे हुए अंगको कार्यक्षम बनावें। उनके उद्योगसे अनेक सभा सुसाइटियां, संस्थायें और सम्प्रदाय भी इस कार्यके लिए स्थापित हो गये हैं। जैनी इसी भारतवर्षके भीतर रहते हैं, ये सब उद्योग उनके चारों ओर हो रहे हैं। वे कुछ पढ़ने लिखने भी लगे हैं। तब उनमें जातिभेदादिकी चर्चा उठना ही चाहिए—देश-कालका असर उनपर पड़ना ही चाहिए। इस स्वाभाविक बातपर जो आश्चर्य प्रगट करते हैं अथवा घोर पंचम कालके आ जानेकी शंका करते हैं; वे मानों इस बातको बिलकुल ही नहीं जानते कि मनुष्यपर उसकी आसपासकी स्थितिका कितना प्रभाव पड़ सकता है। जड़ पदार्थोंपर भी जब उनके आसपासकी स्थितियोंका असर पडता है, तब फिर ये तो मनुष्य हैं!

२. जैनसमाजका कर्तव्य।

जब यह प्रश्न खड़ा हुआ है और इसका किसी कृत्रिम युक्तिसे दबा देना संभव नहीं, तब हमारी समझमें तो यह आता है कि

इसका शान्तिता और धीरताके साथ विचार किया जाय। पुराने खयालके सज्जनोंको चाहिए कि वे इस चर्चासे न तो घबड़ावें न क्रोधित होवें और न अपने विरुद्ध विचारवालोंपर चिढ़कर आक्रमण करें; किन्तु यह सोचें कि जो लोग जातिभेदको नहीं चाहते हैं या वर्णभेदको जन्म सिद्ध नहीं मानते हैं उनके कथनमें भी कुछ तथ्य है या नहीं और हमारी वर्तमानकी परिस्थिति हमें इस विषयमें कहां तक लाचार कर रही है, जातिभेदादिका सचमुच ही धर्मसे कुछ सम्बन्ध है या नहीं, यह लौकिक धर्म है या पारलौकिक ? और नये खयालवालोंको चाहिए कि वे केवल दूसरोंके विचारों या वचनोंको पढ़ सुनकर या दूसरे समाजोंके ऊपरी सुखदुःखोंको देख सुनकर ही अपने विचार न बना लेवें। ऐसे महत्त्वके प्रश्नोंका उत्तर केवल दूसरोंसे उधार लिए हुए विचारोंसे नहीं हो सकता है। इसके लिए अपनी खासकी बुद्धिकी जरूरत है। एक समाजका अनुकरण दूसरे समाजको हितकर हो सकता है; परन्तु अनुकरण मात्र हितकारी है यह नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक समाजको दूसरे समाजोंका अनुकरण करनेके पहले अपनी भीतरी अवस्थाका विचार कर लेना चाहिए। उस भीतरी ज्ञानपर विश्वास रखकर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक समाजकी अमुक बात तो हमारे समाजके अनुकरण करने योग्य है और अमुक नहीं। इस तरह पुराने और नये दोनों प्रकारके विचारवान् पुरुष जातिभेदादि सम्बन्धी प्रश्नकी चर्चा करेंगे तो अवश्य ही इससे लाभ होगा।

३. जैनियोंका जातिभेद परिस्थितिजन्य तो नहीं है ?

प्रत्येक आचार विचार और विश्वासपर देश और कालका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। मनुष्य जैसे लोगोंमें, जैसे

देशमें और जैसे समयमें रहता है अर्थात् उसकी परिस्थिति जैसी होती है उसीके अनुसार उसे अपने आचारविचारमें कुछ न कुछ परिवर्तन या संशोधन अवश्य करना पड़ता है। इस बातको हमारे पूर्वाचार्योंने भी माना है और यदि उनके ग्रन्थोंका अच्छी तरहसे मनन किया जाय तो मालूम होगा कि प्रत्येक आचार्यने अपने अपने समयके अनुकूल अपने विचारों और अपने विधिविधानोंमें थोड़ा बहुत परिवर्तन और संशोधन किया है। विक्रम संवत् १०१६ के लगभग जब श्रीसोमदेवसूरिने यशस्तिलक चम्पूकी रचना की थी उस समय दिगम्बर मुनियोंकी संख्या और अवस्था अच्छी नहीं थी। वे कहते हैं "एको मुनिर्भवेल्लभ्यो न लभ्यो वा यथागमम्" अर्थात् मुनियोंका जैसा चारित्र शास्त्रोंमें लिखा है उसको धारण करनेवाला यदि एक भी मुनि ढूँढा जाय तो न मिलेगा। वे एक जगह और भी कहते हैं "काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके, एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः।" अर्थात् इस कलिकालमें जब कि लोगोंके चित्त चंचल हो गये हैं और शरीर अन्नके कीड़े बन गये हैं तब यही बड़ा भारी आश्चर्य है जो दिगम्बररूपके धारण करनेवाले मुनि मिलते तो हैं। अतएव "यथापूज्यं जिनेन्द्राणां रूपं लेपादिनिर्मितं, तथा पूर्वमुनिच्छाया पूज्याः सम्प्रति संयताः।" अर्थात् जिस तरह जिनेन्द्रभगवानकी लेप पाषाणादिकी बनी हुई प्रतिमा पूज्य है उसी प्रकार इस समय वर्तमान मुनियोंको पूर्वमुनियोंकी छाया या प्रतिकृति मानकर पूजना चाहिए। इससे साफ मालूम होता है कि सोमदेवसूरिने अपने समयमें अच्छे मुनियोंका अभाव देखकर और जैनधर्मकी रक्षाके लिए मुनियोंकी आवश्यकता समझकर देशकालके अनुसार उनको पूजनेकी

आज्ञा दी थी। इसी प्रकारसे तदाकार मूर्तियोंकी पूजा करनेकी भी जैनशास्त्रोंकी आज्ञा है; परन्तु पीछेके विद्वानोंने अन्य धर्मियोंकी मूर्ति-पूजासे जैनधर्मकी मूर्तिपूजाकी विशेषताकी रक्षाके लिए अतदाकार मूर्तिपूजनका निषेध कर दिया है। पहले जैन सम्प्रदायमें संघभेद नहीं था; परन्तु श्रुतावतार कथाके अनुसार पीछेसे आचार्योंने समयको देखकर और मुनियोंमें अपने अपने समूहकी महत्व-बुद्धि देखकर नन्दि, सेन, आदि संघभेद कर दिये। इसी तरहके और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे मालूम होता है कि देशकालकी परिस्थितियोंके अनुसार आचार्यगण मूलत-त्त्वोंकी रक्षाका सामाजिक धार्मिक विधियोंमें परिवर्तन कर सकते थे। इसी प्रकार हमें देखना चाहिए कि हमारा जातिभेद या जन्म-सिद्ध वर्णभेद भी तो इसी प्रकारका परिस्थितिजन्य नहीं है? जिस समय जैनधर्मकी प्रभा क्षीण हो चली थी, वर्णाश्रम धर्मका प्राबल्य अधिक हो गया था, जैनधर्मको कोई प्रबल राजाश्रय नहीं रहा था और उसे बत्तीस दाँतोंके भीतर जीभकी तरह आपको रखना पड़ता था, उस समय बहुत संभव है कि जैनियोंको अपनी रक्षाके लिए दूसरे धर्मोंसे यह जन्मसिद्ध वर्णभेद और जातिभेद उधार लेना पड़ा हो और उस समयके आचार्योंको अपने ग्रंथोंमें इसको स्थान देना पडा हो। इस प्रकारकी परिस्थितियोंमें प्रायः प्रत्येक ही धर्मने अपने विधिविचारोंमें परिवर्तन किये हैं। जिस समय भारतमें बौद्ध-धर्मका प्राबल्य था उस समय वैदिकमतानुयायियोंको यज्ञमें जीववध बन्द करना पड़ा था, बुद्धको ईश्वरावतार मानना पड़ा था और इसी तरहके और भी अनेक परिवर्तन करना पड़े थे। पाठकोंकोयह सुन-कर आश्चर्य होगा कि जिसमें जातिपाँति वर्णभेदकी गन्ध भी नहीं

है—बल्कि जो जातिभेदका कट्टर विरोधी और साम्यवादी है, उस ईसाई धर्मको भी तामिड़ देशमें जातिभेदके आगे सिर झुकाना पड़ा है। ज्येष्ठके प्रवासीमें तामिड़ जाति और तामिड़ समाजके विषयमें एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि वहांके ईसाइयोंमें ब्राह्मण आदि नाना जातियोंके ईसाई हैं और उन सबको अपनी अपनी जातिका उसी प्रकार अभिमान है जिस प्रकार दूसरे हिन्दूओंको है। तिनवेल्लीमें एक मुकद्दमा इस बातपर चल रहा है कि गिरजामें नीच जातिके ईसाई नहीं बैठ सकते। सानार जाति वहाँकी एक नीच जाति है। इस जातिके ईसाइयोंमें और उच्च जातिके ईसाइयोंमें यह मुकद्दमा चल रहा है। ब्राह्मण ईसाई इस बातको सहन नहीं कर सकते कि उनके साथ एक आसनपर सानार ईसाई बैठें। प्रवासीके लेखकने देखा कि एक ब्राह्मणजातिके ईसाईका ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र, उसीकी शूद्राणी स्त्रीके गर्भके उत्पन्न हुए पुत्रके अर्थात् अपने भाईके साथ भोजनव्यवहार नहीं करता। वहांके पादरी साहब कहते हैं कि यहां जातिभेदके विचारोंकी इतनी प्रबलता है कि यदि हम जातिभेदको न मानें तो ईसाई धर्म यहां टिक ही नहीं सकता। लाचार हमको भी इसके अनुयायी बनना पड़ा है। अर्थात् तामिड़ देशमें ईसाई धर्मकी परिस्थिति ऐसी है कि उसे झख-मारके जातिभेदको मानना पड़ता है। इसी प्रकार आश्चर्य नहीं कि जैनधर्ममें भी किसी समय जन्मानुसार जातिभेद और वर्णभेदका प्रवेश हो गया हो। इस विषयमें हमें गहरी आलोचना करनी चाहिए। इस बातका निर्णय हम उस समयके बने हुए ग्रन्थोंसे नहीं कर सकेंगे जब जैनधर्म जन्मसिद्ध वर्णभेद और जातिभेदको मान चुका था किन्तु उन

प्राचीन ग्रन्थोंमें हमें इसका बीज मिलेगा जो जैनधर्मके अभ्युदयकालमें बने हैं और जब वर्णाश्रम धर्मका प्राबल्य नहीं था। भारतके प्राचीन इतिहासकी छानबीन करनेसे जैनधर्मका अभ्युदयकाल और अवनतिकाल मालूम हो सकता है। हम आशा करते हैं कि पंडितजनोंका ध्यान इस ओर जावेगा और वे जैनग्रन्थोंकी पर्यालोचना करके जातिभेद तथा वर्णभेदका मूल ढूंढ़ निकालेंगे।

४ तामिड़ देशकी पंचम जाति।

पाठकोंको मालूम होगा कि दक्षिण और विशेष करके कर्नाटकके जैनियोंमें एक पंचम नाम धारिणी जाति है। जान पड़ता है कि यह 'पंचम' नाम वर्णाश्रमी हिन्दुओंका दिया हुआ है। जैनधर्मसे वर्णाश्रमको जो प्रबल घृणा हुई थी, यह नाम उसीका निदर्शक जान पड़ता है। वर्णाश्रमियोंने जैनियोंको अपने चारों वर्णोंमें और तो क्या शूद्रोंमें भी स्थान देना उचित न समझा और उनकी पंचमा संज्ञा रक्खी। इस जातिके लोग दक्षिण और कर्नाटकको छोड़कर मद्रासके तामिड़ आदि प्रान्तोंमें भी बहुत थे और थोड़े बहुत अब भी हैं। मुझे स्मरण है कि एक बार थियोसोफिस्ट सम्प्रदायके नेता कर्नल आलकाटने लिखा था कि मद्रास प्रान्तमें कोई एक लाखके लगभग पंचमजातिके लोग ईसाई बना लिये गये हैं। क्योंकि हिन्दू तो इन्हें अपनेसे बाह्य पंचम वर्ण समझकर घृणा करते हैं और जैनधर्मके उपदेशक इस ओर हैं नहीं, लाचार इन्हें ईसाई ही होना पड़ता है। अर्थात् ये पंचम लोग जैनधर्मके पालनेवाले थे। प्रवासीके उपरिलिखित लेखसे मालूम होता है कि तामिड़ प्रान्तमें अब भी बहुतसे पंचम जातिके लोग हैं। इन लोगोंको देवमन्दिरोंमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। वे यदि

कुछ धर्म कर्म करना चाहें तो बाहरसे कर सकते हैं। मन्दिरके बाहर आंगनमें एक बाक्स रक्खा रहता है, उसमें वे लोग जो कुछ द्रव्य चढ़ाना चाहें चढ़ा सकते हैं। लेखक महाशय कहते हैं कि "पंचमा जातिके लोगोंकी अवस्थाका स्मरण करनेसे पाषाण हृदय भी पिघल जाता है। हाय हाय! ये सब हतभागी जीव मनुष्यदेहमें जन्म न लेकर यदि कुत्ते बिल्लीकी पर्याय पाते तो इससे कहीं अधिक आदर सम्मान प्राप्त कर सकते।" क्या हम जैनी भाइयोंसे यह आशा कर सकते हैं कि वे मद्रास प्रान्तमें कुछ शिक्षितोंको भेजकर अपने इन अनाथ भाइयोंके विषयमें कुछ परिचय प्राप्त करें—दर असलमें ये पहले जैनी थे या नहीं, किस कारण इन्होंने जैनधर्म छोड़ दिया है और अब इनकी क्या अवस्था है, इन सब बातोंको जानें और फिर उद्योग करके इन्हें अपने हृदयसे लगानेका शुभ दिन दिखलावें!

५. सादुर लोगोंके विषयमें क्या प्रयत्न हुआ?

जैनहितैषीके तीसरे अंकमें बेंगलोरकी ओरके सादुर लोगोंके विषयमें एक लेख प्रकाशित किया गया था। लगभग दश हजार सादुर जातिके लोग ऐसे हैं जो जैनी बनना चाहते हैं—अपना खोया हुआ धर्म फिरसे ग्रहण करना चाहते हैं; परन्तु वहांके उपाध्याय लोग उन्हें गर्भमन्दिरोंमें नहीं आने देते और पूजादि नहीं करने देते। जैनसमाजके धर्मात्माओंसे प्रार्थना की गई थी कि वे इस विषयमें प्रयत्न करें और इन दश हजार आत्माओंका उद्धार करें। आशा थी कि इस विषयमें जैनसमाजकी ओरसे अवश्य ही कुछ उद्योग किया जायगा; परन्तु देखते हैं कि किसीके कानपर जूँ भी नहीं रेंगी है। हमसे कई सज्जन पूछते हैं कि सादुर लोगोंके

विषयमें क्या हुआ? उत्तरमें हम लिख देते हैं कि जिसमें इधर उधर हिलने चलनेकी जरा भी शक्ति नहीं है, जिसके आँखें नहीं है, कान नहीं हैं और ज्ञान नहीं है—ऐसे एक मृतसमाजमें जो होना चाहिए था वही हुआ! बतलाइए और हम क्या उत्तर देवें?

६. निग्रो जातिका जागरण।

अमेरिकामें निग्रो नामकी एक प्राचीन जाति है। अमेरिकाके मूलनिवासी इसी जातिके लोग हैं। ये पहले बिलकुल असभ्य और बर्बर थे। यूरोपके लोगोंने जब अमेरिकाको अपना निवासस्थान बनाया, तब इस जातिके साथ उन्होंने निःसीम अत्याचार किये। पशुओंपर जो अत्याचार किये जाते हैं ये अत्याचार उनसे भी बढ़कर थे। सभ्य यूरोपवासियोंके उत्पीडन, छल और अन्यायोंसे इस जातिका इतना भयंकर क्षय हुआ कि जिसपर विश्वास करनेको भी जी नहीं चाहता। जिनकी गणना पहले कई करोड़ थी, वे अब केवल आधे करोड़के लगभग रह गये हैं। जबसे अमेरिकामें गुलामोंका व्यवसाय कुछ उदार लोगोंकी कृपासे कानूनके द्वारा बन्द हो गया है तबसे इस जातिकी दशा सुधरने लगी है। यद्यपि अब भी वे गुलाम कहे जाते हैं और अब भी उनपर अन्याय होते हैं, तो भी अब पहलेकी अपेक्षा ये लोग सुखी हैं और अपनी उन्नति करनेमें जी जानसे लगे हुए हैं। डाक्टर टी. बूकर वाशिंगटन नामके एक निग्रोजातीय पुरुष इन लोगोंके प्रधान नेता हैं। वे जैसे ही विद्वान्, सच्चरित्र और कर्मवीर हैं वैसे ही स्वार्थत्यागी और देशभक्त हैं। उनके उद्योगसे निग्रो लोगोंने गत ४० वर्षोंमें आश्चर्यजनक उन्नति की है। उन्होंने केवल अपने ही चन्देसे अब तक लगभग १७ करोड रुपया एकत्र करके ३९ हजार धर्ममान्दिर स्थापित किये हैं और

इस साधनसे ४० लाख निग्रो लोगोंको एकताके सूत्रमें बाँध लिया है! इन मन्दिरोंका खर्च चलानेके लिए लगभग सवा दो करोड़ रुपया वार्षिक चन्दा वसूल किया जाता है। शिक्षाप्रचारकी ओर इनका सबसे अधिक ध्यान है। इस समय अमेरिकामें खास इन्हींके कोई २०० स्कूल और कालेज हैं। यहांके गोरे लोग जी जानसे इस बातकी कोशिश करते हैं कि ये लोग जमींदारी न कर सकें—यहां तक कि इस विषयके कानून भी बनवाते हैं, तो भी वर्तमान वर्षमें हिसाब लगाकर देखा गया है कि उनके पास १६१ करोड़ रुपयोंकी जमींदारी है! इन सब बातोंके सिवा इस जातिने बौद्धिक उन्नति भी खूब की है। इनमें कई नामी नामी कवि, चित्रकार, लेखक, पत्रसम्पादक, और संगीत आदि विद्याओंके जाननेवाले भी हैं। लोगोंका खयाल है कि यह जाति कुछ समयमें संसारकी एक सभ्य और स्वाधीन जाति बन जायगी। निग्रो लोगोंके इस उन्नतिके इतिहाससे हम यह शिक्षा ले सकते हैं कि क्षुद्रसे क्षुद्र और असभ्यसे असभ्य जाति भी यदि चेष्टा करे तो चाहे जैसी पराधीनता और दुःखकी अवस्थामें भी अपनी उन्नति कर सकती है। जो जातियां सब प्रकारके बाह्य साधन और सुभीते पाकर भी अवनतिके गड्ढेसे बाहर नहीं निकल सकतीं और केवल अपने प्राचीन गौरवकी गाथा गानेमें सन्तुष्ट रहती है उसके समान अभागिनी जाति कोई नहीं।

७. जैनसमाज और हिन्दी।

जैनसमाजका लगभग आधा भाग हिन्दीभाषाभाषी है अर्थात् कोई छह सात लाख जैनी ऐसे होंगे जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और इस हिन्दीके द्वारा ही उनकी उन्नति हो सकती

है। मातृभाषा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा पढ़े लिखे और मूर्ख, बालक, युवा और वृद्ध, स्त्री और पुरुष सब उन्नतिकी सीढ़ियोंपर चढ़ाये जा सकते हैं। इतिहासमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा जिससे यह मालूम हो कि किसी जाति या समाजने अपनी मातृभाषाका अनादर करके अपनी उन्नति की हो। दूसरी भाषाओंसे हमें लाभ हो सकता है—नये नये ज्ञानोंकी प्राप्ति हो सकती है और थोड़े बहुत लोग उनके द्वारा ज्ञानी बन सकते हैं परन्तु यह असंभव है कि सारा ही समाज उनसे उन्नत हो जाय। इसी लिए प्रत्येक सभ्य देशमें और उन्नत जातियोंमें अपनी अपनी मातृभाषाओंका सत्कार होता है। जापानने अँगरेजी आदि भाषाओंसे लाभ उठाया है परन्तु उनके मोहमें पड़कर अपनी जापानी भाषाका तिरस्कार नहीं किया। वहांके लोगोंने दूसरी भाषायें सीखकर उनके द्वारा जापानी साहित्यको समृद्ध किया—उसमें प्रत्येक विषयके ग्रन्थ लिखे और फिर उनके द्वारा अपने देशवासियोंके ज्ञानको विस्तृत किया। यह सब जानते हुए भी हमारे देशमें मातृभाषाओंका आदर नहीं है। अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओंके मोहने इस देशके शिक्षितों पर ऐसा जादू डाला है कि वे अपनी मातृभाषाओंकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते—उनका तिरस्कार करते हैं। इसीसे यहांकी देश भाषाओंका साहित्य बहुत ही दरिद्र है। और उन सबमें हिन्दीकी दशा तो बहुत ही शोचनीय है। बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंका साहित्य तो अब बहुत कुछ समृद्ध होने लगा है—उक्त भाषाओंकी ओर उनके बोलनेवाले शिक्षितोंका ध्यान बहुत कुछ जाने लगा है, परन्तु हिन्दीको अभी तक यह सौभाग्य प्राप्त नहीं

हुआ। जो हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा बननेका दावा करती है और जिसे भारतके प्रायः एक चतुर्थांशसे अधिक नरनारी बोलते हैं उसीके विषयमें शिक्षितोंकी इतनी उपेक्षा होना बड़े ही शोकका विषय है। इस विषयमें जैनसमाजके शिक्षितोंकी उपेक्षाका तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। दूसरे धर्मों या सम्प्रदायोंके लोग फिर भी हिन्दीके लिए बहुत कुछ कर रहे हैं—उनके द्वारा हिन्दी साहित्यके अनेक अंशोंकी पूर्तिका उद्योग हो रहा है; परन्तु जैनसमाज इस विषयमें एक तरहसे बिलकुल ही निश्चेष्ट है। उसे मानों हिन्दीसे कुछ सरोकार ही नहीं। उसमें न कोई लेखक है न कवि है और न कोई प्रकाशक है न सहायक है। न उसके द्वारा ग्रन्थसाहित्यकी पुष्टि हो रही है न साप्ताहिक मासिक साहित्यकी। और तो क्या तीन तीन परीक्षालय होते हुए भी उसकी पाठशालाओंके योग्य पाठ्यपुस्तकोंका भी अभीतक अभाव है। उसके जो साप्ताहिक मासिकादि पत्र निकलते हैं, उन्हें देखकर दुःख होता है। उनमें उच्चभावपूर्ण लेख तो दूर रहे अच्छी हिन्दी भी कोई नहीं लिख सकता। धार्मिक ग्रन्थोंका यह हाल है कि उनकी दो सौ चार सौ वर्षकी पुरानी भाषाकी ही लोगोंमें प्रतिष्ठा है चाहे उन्हें कोई समझे या न समझे। नई भाषामें न कोई अच्छे लिखनेवाले ही हैं और न नई भाषाको कोई पसन्द ही करता है। जैनियोंको नई बातोंसे सख्त नफरत है। उनकी समझमें जहाँ नयापन है वहीं बुरापन है। यह नहीं कि जैनियोंकी निज़ी साहित्यकी ओर ही इतनी उपेक्षा है, नहीं हिन्दीके सार्वजनिक साहित्यके प्रति भी उनका इसी प्रकारका व्यवहार है। उनमें ऐसा भी कोई नहीं जो हिन्दीके सार्वजनिक ग्रन्थ लिखकर

अथवा साप्ताहिक मासिक पत्रोंमें लेखादि लिखकर हिन्दीकी कुछ सेवा कर रहा हो। और तो क्या जैनी दूसरे लोगोंके लिखे हुए अच्छे उपयोगी ग्रन्थोंको पढ़ना भी पसन्द नहीं करते। वे मानो हिन्दुस्थानसे, हिन्दनिवासियोंसे और हिन्दीसे बिलकुल जुदा रहना चाहते हैं। उनकी समझमें वे अपनी उन्नति सबसे जुदा रहकर केवल धार्मिक ही नहीं—सबही बातोंमें जुदा रहकर कर लेगें।

८ जैनसमाजके शिक्षित और हिन्दी।

जैनसमाजमें दो तरहके विद्वान् हैं एक अँगरेजी जाननेवाले और दूसरे संस्कृतज्ञ। हिन्दीपर इन दोनोंकी एक सी कृपा है। अंगरेजी जाननेवाले इसे अशिक्षितोंकी भाषा समझकर घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और संस्कृतके पण्डित इसका 'भाषारण्डायाः किं प्रयोजनम्' कहकर सत्कार करते हैं। मालूम नहीं, इनके मग्जमें क्या यह समाया हुआ है कि हम अपने सारे पढ़े और अपढ़ भाइयोकी उन्नति अँगरेजी या संस्कृतके द्वारा कर डालेंगे या इन दोनों भाषाओंमें ही कोई ऐसा महत्त्व है—कोई ऐसी शक्ति है कि उनके शब्द मात्र सुननेसे भारतका अज्ञान राक्षस बिदा हो जायगा। इस बातको इनमेंसे कोई भी विचारनेका कष्ट नहीं उठाता कि अँगरेजीके या संस्कृतके विस्तारका चाहे जितना प्रयत्न किया जावे—इनको चाहे जैसा आश्रय दिया जावे और ये चाहे जैसी अच्छी भाषायें हों; पर ये यहांके सर्व साधारण लागोंकी भाषायें नहीं हो सकती हैं और न केवल इनके द्वारा हमारे देशका अज्ञान अन्धकार कभी दूर हो सकता है। हमें अपने भाइयोंको ऊँचे उठानेके लिए अपनी मातृभाषाका ही आश्रय लेना पड़ेगा जिसके कि द्वारा हमें हमारी माताओंने मनुष्य बनाया है और जिसके

द्वारा हमारे नित्यके सारे कामकाज चलते हैं। बहुतसे बाबू और पंडित हिन्दीको आदरकी दृष्टिसे भी देखते हैं, परन्तु उनमेंसे कई तो ऐसे हैं जिन्हें अपने कामोंके मारे इस ओर लक्ष्य देनेका अवकाश ही नहीं और कुछ ऐसे हैं जो हिन्दी जानते ही नहीं। उनसे कभी किसी विषयपर लिखनेकी प्रार्थना की जाती है तो उत्तर मिलता है—" क्या किया जाय महाशय, हिन्दी लिखनेका हमें अभ्यास नहीं !" लीजिए, सात समुन्दर पार की और कई हजार वर्ष पहलेकी भाषाओंका अभ्यास करना तो इन्हें सहज हुआ पर जिसमें रोज बोलते चालते हैं उसका अभ्यास करना इन्हें कठिन हो गया ! इसके लिए अवकाश नहीं। अब बतलाइए—शिक्षितोंका जब यह हाल है तब बेचारी हिन्दीकी उन्नति कैसे हो? कुछ तो हमारे शिक्षितोंको ही हिन्दीके हितका ख़याल नहीं है और कुछ हमारे देशकी शिक्षाप्रणाली ही ऐसी है कि उससे हिन्दीके कल्याणकी विशेष आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि न अँगरेज़ीके कालेजोंमेंही हिन्दीकी शिक्षा मिलती है और न संस्कृतकी पाठशालाओंमें। संस्कृतकी पाठशालाओंकी तो और भी विचित्र लीला है। जो शास्त्री विशारद और आचार्य तककी पदवियोंसे विभूषित हो चुके हैं वे भी शुद्ध हिन्दीकी एक लाइन नहीं लिख सकते। उनसे आप चाहें तो किसी ग्रन्थकी संस्कृत टीका लिखवा लीजिए पर हिन्दी टीकाका नाम मत लीजिए। यदि कभी हिन्दी टीका लिखेंगे भी, तो ऐसी 'किम्भूतकिमाकार' भाषामें लिखेंगे कि आपकी मज़ाल नहीं जो उसे समझ लें। जब तक हमारे शिक्षितोंकी यह दशा है—जब तक उनके हृदयमें हिन्दीसे प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है, जब तक वे इसे उन्नतिका साधन

नहीं समझते हैं, जब तक उनकी वृत्ति सर्वसाधारणके उपकारकी ओर प्रवृत्त नहीं हुई है और जब तक देशकी शिक्षाप्रणालीमें हिन्दीका उचित आदर नहीं हुआ है, तब तक हिन्दीकी उन्नतिकी आशा दुराशा मात्र है।

९ विचार-सहिष्णुता।

जैनहितैषीके गताङ्कके साथ 'जिनपूजाधिकारमीमांसा' नामक निबन्ध रवाना किया गया है। उसमें जिस विषयका प्रतिपादन किया है वह वर्तमान जैनसमाजके सामने बिलकुल नया है। जैन-हितैषीमें भी इसी प्रकारके कई लेख प्रकाशित हुए हैं और संभवतः आगे भी होंगे। इस विषयमें आज हम यह निवेदन कर देना उचित समझते हैं कि ऐसे लेखों और निबन्धोंमें यदि कोई विचार किसीके विचारोंसे विरुद्ध हो—और यह निश्चय है कि सब बातोंमें सबका मतैक्य हो नहीं सकता—तो उन्हें पढ़कर किसीको एकाएक उत्तेजित, क्रोधित या अधीर न हो जाना चाहिए। किन्तु उनपर अच्छी तरहसे विचार करना चाहिए। सोचना चाहिए कि दर असलमें इन विचारोंमें कुछ तथ्य है या नहीं। यदि वे विचार सचमुच ही ठीक नहीं हैं, तो धीरतासे उनका प्रतिवाद करना चाहिए। प्रतिवाद करते समय अपने विचारोंको संयत और युक्ति-युक्त शब्दोंमें प्रकाशित करना चाहिए। ऐसा करनेसे समाजका कल्याण होगा और वास्तविक बात क्या है यह जाननेके लिए लोगोंको अवसर मिलेगा। इसके विरुद्ध जो लोग व्यर्थ ही अधीर और उत्तेजित हो जाते हैं, वे न तो अपने ज्ञानकी वृद्धि कर सकते हैं और न दूसरोंका कुछ उपकार कर सकते हैं। क्यों कि अधीर और उत्तेजित अवस्थामें मनुष्य अपनी बुद्धिको सदसद्वि-

वेकवती नहीं रख सकता । जो लोग यह चाहते हैं कि जैन समाजमें किसी नई बातकी या नये विचारकी चर्चा ही न हो, वे विचार-विभिन्नताके महत्त्वको नहीं समझते । वे यह नहीं जानते कि जुदा जुदा तरहके विचारोंमें पड़कर ही सत्यका प्रकाश और सत्यका निश्चय होता है । इसी लिए उन्नतिशील देशोंमें विचारभिन्नता अच्छी दृष्टिसे देखी जाती है । हमारे देशकी पुरानी वादविवादकी परिपाटी भी इसी बातको पुष्ट करती है । 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' संस्कृतकी इस कहावतका भी यही मतलब है । और यह भी तो सोचना चाहिए कि किसीके लेख या किसीके विचार किसीपर यह जबर्दस्ती तो करते ही नहीं हैं कि तुम इनके अनुकूल हो ही जाओ या तुम अपने विचार बदल ही डालो, फिर उनसे लोग डरते क्यों हैं ? यदि तुम्हें कोई विचार पसन्द न हों तो तुम उन्हें मत मानो, या उनका प्रतिवाद करो । ऐसा न करके यह कौनसा न्याय है कि तुम उन्हें प्रकाशित ही न होने दो । क्या तुम अपने ही विचारोंको सर्वज्ञके विचार या निर्भ्रान्त विचार समझते हो ? और यदि ऐसा भी हो तो दूसरोंके विचार सुनने योग्य सहिष्णुता तो रक्खो । वे यदि असत्य होंगे तो क्या हानि है ? आखिर तो असत्य ही रहेंगे और सत्य होंगे तो सत्यके अनुयायी बननेमें तुम्हें भी कोई आनाकानी न होगी । आशा है कि हमारे पाठक इस ओर ध्यान देंगे और विचारसहिष्णुताका अभ्यास करके जैनसमाजके ज्ञानकी वृद्धिमें रोड़ा अटकानेवाले न बनेंगे ।

पुस्तकसमालोचन।

ऐतिहासिक स्त्रियाँ—सम्पादक और प्रकाशक कुमार देवेन्द्र-प्रसाद जैन, आरा। मूल्य पोष्टेज सहित आठ आना। पृष्ठसंख्या ९०। इसमें राजमती, सीता, चेलना, मैनासुन्दरी, द्रौपदी, अंजना-सुन्दरी, मनोरमा और रयनमंजूषा इन आठ आदर्श स्त्रियोंका संक्षिप्त चरित लिखागया है। जैनसमाजमें स्त्रीशिक्षाके प्रचारका बहुत कुछ प्रयत्न हो रहा है; परन्तु अभी तक स्त्रियोंके पढ़ने योग्य एक भी पुस्तक जैनियोंके द्वारा प्रकाशित नहीं हुई। हर्ष है कि बाबू देवेन्द्रप्रसादजीका ध्यान इस ओर गया है और उन्होंने स्त्रियोपयोगी पुस्तकोंकी एक माला प्रकाशित करनेका निश्चय किया है, यह पुस्तक उसी मालाका एक पुष्प है। इसकी भाषा भी यदि सरल होती तो बहुत लाभ होता; ऐसी पुस्तकोंकी भाषा बहुत ही सीधीसान्दी होनी चाहिए। जान बूझकर कठिन शब्दोंकी भरती करना ठीक नहीं। 'ऐति-हासिक स्त्रियाँ' के बदले यदि इस पुस्तकका नाम 'पौराणिक स्त्रियाँ' 'आर्यस्त्रियाँ' या आदर्शस्त्रियाँ' रक्खा जाता, तो अधिक सयुक्तिक होता। क्यों कि इसमें एक चेलनोका छोड़कर किसी भी महिलाका समयादि नहीं लिखा गया है और चेलनाका समय भी एक लाइनमें अनुमानमात्रसे लिख दिया गया है। यदि ग्रन्थकर्त्ता महाशयको यही नाम पसन्द था तो उन्हें कमसे कम प्रत्येक महि-लाके समयादिके विषयमें कुछ ऊहापोह करके निर्णय करना चाहिए था। प्रत्येक चरितसे जो शिक्षा मिल सकती है वह कुछ विस्तारसे लिखी गई होती तो पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती। यह प्रसन्न-ताकी बात है कि इस पुस्तककी विक्रीसे जो लाभ होगा, ग्रन्थ-कर्त्ता उसे स्त्रीशिक्षाप्रचारमें ही लगा देना चाहते हैं।

हमारे देशकी प्राचीन उन्नति—प्रकाशक, तेजूमल मुरलीधर कनल, पो० तलोद, जिला अहमदाबाद। मूल्य आठ आना। गुरुकुल कांगड़ी महाविद्यालयके प्रोफेसर रामदेवजीने 'भारतवर्षका इतिहास' नामक ग्रन्थ लिखा है, यह पुस्तक उसीका सारांश है। इसमें यह बतलानेका प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन उन्नतिके मूल कारण वेद हैं। वेदोंका ज्ञान सारे संसारकी सभ्यताका और विद्याका जनक है। वेदोंका ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है। वेदोंके प्रचारके समय भारतवर्ष सभ्यताके शिखरपर आरूढ़ था। वेदकी शिक्षा पवित्र, सार्वजनिक, स्वाभाविक, विज्ञानसम्मत, और हितकारिणी है। पाश्चात्य विद्वानोंने वेदोंके विषयमें जो सम्मतियां दी हैं, वे कपोल कल्पित हैं—उनमें कोई तथ्य नहीं—वे आर्योंका गौरव कम करनेके लिए लिखी गई हैं। इस तरह वेदकी महिमा गाकर ग्रन्थकर्त्ताने वैदिक समयकी सामाजिक, बौद्धिक और राजनैतिक स्थितिका दिग्द-र्शन कराया है। अन्तमें प्राचीन गौरव आदिके कई भजनोंका संग्रह है। पुस्तक अच्छी है और आर्यसमाजके एक विद्वान्‌के विचारोंको जाननेके लिए इसका अच्छा उपयोग हो सकता है; परन्तु हमारी समझमें इसकी रचना वेदोंकी अनर्गल श्रद्धाबुद्धिके द्वारा हुई है। इसके लेखकको वेदोंमें कहीं दोषोंका लेश भी नहीं दिखलाई पड़ता है। इस एकदृष्टिके कारण हमको विश्वास नहीं कि स्वाधीन बुद्धिके लोग इसके विचारोंसे सहमत हो सकेंगे।

सुलभ व्याकरण—लेखक पं० कन्हैयालाल उपाध्याय रत-लाम। मिलनेका पता द्विवेदी ब्रदर्स, खेतबाडी, बम्बई नं. ३। पृष्ठसं-ख्या ११०। मूल्य चार आना। यह पुस्तक हिन्दीकी चौथी और पांचवी कक्षाके विद्यार्थियोंके लिए लिखी गई है। धार, रतलाम

और इन्दौर राज्योंकी पाठशालाओंमें यह पाठ्य पुस्तक है। पुस्तक परिश्रमसे लिखी गई है और उपयोगी है। अन्य स्थानोंकी पाठशालाओंमें भी यदि यह पढ़ाई जाय तो अच्छा हो। इसके लेखक उच्च कक्षाओंके विद्यार्थियोंके लिए एक और विस्तृत व्याकरण लिखना चाहते हैं। इस पुस्तकको देखकर हम समझते हैं कि लेखकके इस प्रयत्नसे हिन्दीका उपकार होगा।

हिन्दी साहित्यसम्मेलन प्रयागका कार्यविवरण–(पहला और दूसरा भाग)—प्रकाशक, हिन्दीसाहित्यसम्मेलन कार्यालय, प्रयाग। मूल्य पहले भागका लिखा नहीं; दूसरेका एक रुपया। अनेक हिन्दी हितैषियोंके प्रयत्नसे हिन्दी साहित्यका एक वार्षिक सम्मेलन होने लगा है। इसको अभी तीन वर्ष हुए। यह प्रयागके द्वितीय साहित्यसम्मेलनका कार्यविवरण है। पर यह उन रिपोर्टोंके समान नहीं जो पन्ने लौट पलटकर फेंक दी जाती हैं। यह प्रत्येक हिन्दीहितैषीके ग्रन्थसंग्रहमें रहने योग्य है। हिन्दीके नामी नामी लेखकों और कवियोंके गद्यपद्य लेखोंका–ऐसे लेखोंका जो बहुत ही परिश्रम और विचारसे लिखे गये हैं–संग्रह है। ये वे लेख हैं जो साहित्यसम्मेलनके लिए खास तौरसे लिखवाये गये थे और सम्मेलनके समक्ष पढ़े गये थे। हम अपने पाठकोंसे सिफारिश करते हैं कि वे इस विवरणको मँगाकर अवश्य पढ़ें। पुस्तककी उपयोगिता और विशालताको देखते हुए मूल्य बहुत कम है।

जैनवर्तमान—सम्पादक और प्रकाशक फूलचन्द झवेरचन्द महता, जामनगर (काठियाबाड़)। वार्षिक मूल्य चार रुपया। यह गुजराती भाषाका एक साप्ताहिक पत्र है। हाल ही प्रकाशित होने लगा है; अभी तक ९ अंक प्रकाशित हुए है। दिगम्बरी, श्वेताम्बरी और

स्थानकवासी तीनों जैनसम्प्रदायोंकी कल्याणकामनासे यह निकाला गया है। लेख अच्छे रहते हैं। यदि जैनियोंने आश्रय दिया तो यह अच्छी उन्नति करेगा। हम इसकी उन्नति चाहते हैं। इसके अन्तिम पृष्ठकर लिखा हुआ है—"ब्रह्मदेश, लंका, अने हिन्दुस्थानना सर्व भागमां बहोलो फैलावो पामेलुं इंग्लेंड इत्यादिमां फैलावो पामेलुं।" अभी निकलते देर न हुई कि देशान्तरोंमे भी प्रचार हो गया—और सो भी खूब! मालूम नहीं यह लिखनेकी क्यों जरूरत समझी गई।

गृहस्थधर्म—लेखक, श्रीजैनमुनि श्रीस्वामी ज्ञानचन्द्रजी महाराज। प्रकाशक, लाला रतनचन्द, लाला लछमनदास लाला बाबूराम जैन लुधियाना (पंजाब)। आध आनेका टिकट भेजनेसे प्रकाशक द्वारा विना मूल्य प्राप्य। इस चालीस पृष्ठकी पुस्तकमें गृहस्थधर्मका सामान्य स्वरूप बतलाकर अन्तमें बारह भावनाओंका वर्णन किया है! प्रमाणमें संस्कृत और प्राकृतके श्लोक दिये हैं। भाषा बुरी नहीं है। लेखक स्थानकवासी सम्प्रदायके मालूम होते हैं।

सद्वक्ता—लेखक, पं० फतेहचन्द कपूरचन्द लालन। प्रकाशक मेसर्स मेघजी हीरजी एन्ड कंपनी, पायधूनी बम्बई। मूल्य आठ आना। इस गुजराती भाषाकी पुस्तकमें वक्तृत्व या व्याख्यान देनेकी कलाके सिद्धान्त बतलाये गये हैं। व्याख्याता बननेवालोंके लिए यह अमूल्य वस्तु है। इसके लेखक अमेरिका यूरोप आदि देशोंमें वर्षों रहे हैं और वहां उन्होंनें स्वयं अनेक व्याख्यान दिये हैं और नामी नामी वक्ताओंके सैकड़ों व्याख्यान सुने हैं। आप स्वयं सुप्रसिद्ध वक्ता हैं। इससे पाठक समझ सकते हैं कि

यह पुस्तक कितनी उपयोगी होगी। जो ज्ञान पुस्तकोंके द्वारा सम्पादन किया जाता है और जो स्वयं अनुभव करके ग्रहण किया जाता है–इन दोनोंमें बहुत अन्तर है। यह पुस्तक अनुभव ज्ञानसे लिखी गई है। गुजरातीके नामी नामी विद्वानोंने इस ग्रन्थकी प्रशंसा की है। गुजराती जाननेवाले भाइयोंको इसकी एक एक प्रति अवश्य खरीदना चाहिए।

विविध समाचार।

फिर लुढ़क गये—पं० दुर्गादत्तजी शर्मा फिर आर्यसमाजी हो गये हैं। आपने आर्यमित्रमें जैनधर्मके विरुद्ध एक दो लेख भी प्रकाशित करा दिये हैं। आप अभी बम्बईको ही सुशोभित कर रहे हैं। आपके वार्तालापसे तो ऐसा मालूम होता है कि आपके मगजमें कुछ खलल हो गया है। पढ़े लिखे लोगोंकी यह अवस्था बड़ी ही शोकजनक है।

युद्धसे हानि—ज्येष्ठके प्रवासीमें एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें बतलाया गया है कि युद्धोंसे समस्त संसारकी हानि होती है। क्योंकि जितने वीर, विद्वान् और उत्साही पुरुष संसारके गौरव स्वरूप होते हैं वे युद्धोंमें खप जाते हैं–युद्धके समय उन्हें घरमें बैठे चैन नहीं पड़ती। और जितने मूर्ख आलसी और पृथ्वीके भारस्वरूप होते हैं–वे जीते रहते हैं–आगे उन्हींसे वंशपरम्परा चलती है। अतएव आगे जो प्रजा होती है वह निकम्मी और निर्बल होती है। अनेक ऊंचे चढ़े हुए देश इन्हीं युद्धोंके कारण मिट्टीमें मिल गये।

स्वाधीनताकी हवा—सारे देशोंमें स्वाधीनता प्राप्त करनेकी हवा चलने लगी है—जहां तहां यही इच्छा बढ़ रही है। चीन स्वाधीन हो गया। फारस और टर्की स्वाधीन होना चाहते थे पर उनका पैर फिसल गया। पोर्तगाल राजाको मारके स्वतन्त्र हो गया। मैक्सिको फिलीपाइन स्वाधीन होनेकी चेष्टा कर रहे हैं। जावावालोंको अब डच लोगोंकी अधीनता असह्य है। एक राजनैतिक ही क्यों इस समय तो लोग सामाजिक दासत्व, रूढिदासत्व संस्कारदासत्व और बुद्धिविरुद्ध धर्मदासत्वकी बेड़ियोंको भी तोड़ देना चाहते हैं।

विवाहमें दान—वमराना जिला झांसीके सेठ चन्द्रभानजीकी कन्याका विवाह जैनपद्धतिके अनुसार खूब धूमधामसे हुआ। कन्या और वरपक्षवालोंने मिलकर २१२) मोरेना, सागर, ललितपुर, काशी, मथुरा, हस्तिनापुर आदि स्थानोंकी पाठशालाओंको तथा और भी कई संस्थाओंको दिया। यह दानपद्धति प्रत्येक जैनीके अनुकरण करने योग्य है। मंगल कार्य इसी प्रकारके दानोंसे मांगलिक होते हैं।

बालिका विद्यालय—कंजीवरममें कोई आठ वर्ष हुए एक कन्या महाविद्यालय स्थापित हुआ है। यह आजकल बड़ी तरक्की पर है। इसकी पढ़ाईका ढंग बहुत ही अच्छा है। कहते हैं कि भारतवर्षका यह आदर्श कन्याविद्यालय है।

जैनसिद्धान्तपाठशाला, मोरेना—इस पाठशालाकी रिपोर्ट जैनहितैषीके साथ वितरणकी जा चुकी है। पाठकोंने उसे पढ़ी होगी। मोरेनामें पाठशालाके योग्य कोई मकान नहीं है, इससे बड़ी दिक्कत है। ग्वालियर राज्यके तवरघर इलाकेके सूबासाहब गत महीनेमें पाठशालाका निरीक्षण करके बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने

पाठशालाके लिए राज्यकी ओरसे एक जमीन मुफ्तमें देनेका वचन दिया। इसपर पाठशालाके प्रबन्धकर्त्ता कोई अच्छी जगह देखने लगे; परन्तु मोरेनाके पंचोंको यह बात पसन्द न आई। उन्होंने जैनमन्दिरके अहातेमें पाठशाला बनवानेका आग्रह किया और मकान बनवानेके लिए सातसौ रुपयाका चन्दा भी लिख दिया। इससे ता० २९ मार्चको पाठशालाकी नीव रख दी गई। कोई तीन हजार रुपयेका इस्टीमेट बनाया गया है। उपर्युक्त सातसौ रुपयोंके सिवा बाबू धन्नूलालजी सोलीसिटर, कलकत्ता, लाला पदमचन्द भूरामलजी आगरा और लाला बेनीराम उत्तमचन्द आगरा इन तीन धर्मात्माओंने तीन कोठरियां अपनी ओरसे बनवा देना स्वीकार किया है। शेष रुपयोंके लिए जैनसमाजके धर्मात्माओंसे अपील है। यदि दश बारह सज्जन केवल एक एक कोठरी ही अपने नामसे बनवा देना स्वीकार कर लेंगे, तो यह पुण्यकार्य सहज ही सम्पादित हो जायगा।

श्रुतपंचमी पर्व—जेठ सुदी पंचमी बिलकुल ही नजदीक है। यह वह पुण्य दिन है जब जैनधर्मके सिद्धान्त पुस्तकस्थ किये गये थे। यदि इस स्मरणीय दिनको हमारे जैनी भाई प्रतिवर्ष दश पाँच पुस्तकालय स्थापित करके, दश बीस प्राचीन ग्रन्थोंका उद्धार करके और अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रदान करके जगदुपकारक जैनसिद्धान्तोंका प्रचार करें तो इस पर्वका होना सफल हो जाय।

सहायता—जैनहितैषीकी सहायताके लिये श्रीयुत लाला गेंदनलालजी हस्तिनापुरने ६) और लाला जगन्नाथजी जैन मंत्री जैनसभा देहलीने ४) भेजनेकी कृपा है। इसके लिए उक्त महानुभावोंको धन्यवाद। इन रुपयोंसे असमर्थ भाईयोंके नाम जैनहितैषी विना मूल्य जारी कर दिया जायगा।

लीजिए छपकर तैयार है !

न्यायदीपिका ।

सुगम हिन्दी भाषाटीका सहित ।

शायद ही कोई ऐसा जैनी होगा जिसने इस ग्रन्थका नाम न सुना हो । यह जैनन्यायका सबसे पहला सुगम और सुन्दर ग्रन्थ है । जो लोग जैन न्यायका स्वरूप जानना चाहते हैं, पर संस्कृत नहीं जानते उनके सुभीतेके लिए यह सुगमटीका बोलचालकी हिन्दीमें तैयार कराई गई है । विद्यार्थियोंके भी यह बड़े कामकी है । इसका मूलपाठ बहुत शुद्ध छपा है । सुबोध विद्यार्थी विना गुरुके भी इसे पढ़ सकते हैं । कागज बहुत बढ़ियां, छपाई निर्णयसागरकी, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य बारह आना । यह याद रखना चाहिए कि पहले केवल मूलमात्र ही बारह आनेमें मिलती थी ।

यशोधरचरित काव्य ।

यह सुन्दर काव्य उस प्रतिभाशाली कविका बनाया हुआ है जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि वादिराजसूरिसे बढ़कर कोई नैयायिक नहीं, कोई वैयाकरण नहीं, कोई कवि नहीं और कोई भव्यसहायक या परोपकारी नहीं । इसमें यशोधर महाराजका सुन्दर चरित संक्षेपमें वर्णित है। काव्य छोटासा होकर भी बड़ा ही अच्छा है । अभी तक यह ग्रन्थ अलभ्य था । तंजौरके प्रसिद्ध पं० कुप्पूस्वामी-शास्त्रीने इसको बहुत ही शुद्धतासे सम्पादन करके छपाया है । अँगरेजी भूमिका, वादिराजसूरिका और उनके पहलेके कवियोंका परिचय, पददीपिका टिप्पणी आदि अनेक विषयोंसे ग्रन्थको सर्वांगसुंदर बना दिया है । मूल्य आठ आना । (जो भाई संस्कृत नहीं जानते वे इसे न मँगावें)

नये जैन ग्रन्थ।

प्रवचनसार।

मूल्य, संस्कृत छाया अमृतचन्द्रसूरि और जयसेनसूरिकी दो संस्कृत टीकायें और पं० हेमराजकृत भाषा टीका सहित। मूल्य तीन रुपया।

गोमट्टसार कर्मकाण्ड।

मूल, संस्कृत छाया और पं० मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीकासहित छपकर तैयार है। मूल्य दो रुपया।

हनुमानचरित्र।

इसमें अंजना पवनंजयके पुत्र हनुमानजीका संक्षिप्त चरित्र सरस भाषामें दिया गया है। इसे खंडवाके श्रीयुत सुखचन्द पदमशाह पोरवालने बनाया है। मूल्य छह आने।

सर्वसाधारणोपयोगी ग्रन्थ।

जान स्टुअर्ट मिलका जीवनचरित।

स्वाधीनता आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके बनानेवाले और अपनी लेखनीकी शक्तिसे यूरोपमें एक नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले इस विद्वान्का जीवनचरित प्रत्येक शिक्षित पुरुषको पढ़ना चाहिए। इसे जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मूल्य चार आने।

शेख चिल्लीकी कहानियां।

पुराने ढंगकी मनोरंजक कहानियां हाल ही छपी हैं। बालक युवावृद्ध सबके पढ़ने योग्य। मूल्य ।।)

ठोक पीटकर वैद्यराज ।

यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हंसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आज़कल विना पढ़े लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते है, सो भी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

प्रतिभा उपन्यास।

यह अपूर्व उपन्यास कपड़ेकी मनोहर जिल्द और मोटे कागज पर विक्रीके लिए भी तैयार कराया गया है। मूल्य १।)

स्वामी और स्त्री।

इस पुस्तकमें स्वामी और स्त्रीका कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषयको बड़ी सरलतासे लिखा है। अपढ़ स्त्रीके साथ शिक्षित स्वामी कैसा व्यवहार करके उसे मनोनुकूल कर सकता है और शिक्षित स्त्री अपढ़ पति पाकर उसे कैसे मनोनुकूल कर लेती है इस विषयकी अच्छी शिक्षा दी गई है। और भी गृहस्थी संबन्धी उपदेशोंसे यह पुस्तक भरी है। मूल्य, दश आना।

नये उपन्यास।

विचित्रवधूरहस्य—बंगसाहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगाली उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। रवीन्द्रबाबूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं। बहुत ही करुणरसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ।।।)

स्वर्णलता—बहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। बंगाली भाषामें यह चौदह बार छपके बिक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

माधवीकङ्कण—बड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेशचन्द्रदत्तके बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ॥।)

षोडशी—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर एटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड-उपन्यास हैं।। मूल्य १)

महाराष्ट्रजीवनप्रभात—सर रमेशचन्द्र दत्तके बंगला ग्रन्थका नया हिन्दी अनुवाद, इंडियन प्रेसका। वीर रसपूर्ण बड़ा ही उत्तम उपन्यास है। मूल्य चौदह आने।

राजपूतजीवनसन्ध्या—यह भी उक्त ग्रन्थकारका ही बनाया हुआ है। इसमें राजपूतोंकी वीरता कूट कूट कर भरी है। मूल्य बारह आने।

सुशीलाचरित—स्त्रियोपयागी बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ। मूल्य एक रुपया।

मैनेजर-**जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
गिरगांव-बम्बई

अच्छी अच्छी पुस्तकें।

आर्यललना—सीता, सावित्री आदि २० आर्यस्त्रियोंका संक्षिप्तजीवन चरित। मू० ।)

बालबोधिनी—पाँच भाग। लड़कियोंको प्रारंभिक शिक्षा देनेकी उत्तम पुस्तकें। मूल्य क्रमसे =), ≡), ।) ।-), ।=)।

आरोग्यविधान—आरोग्य रहनेकी सरल रीतियां। मू० ।=)॥

अर्थशास्त्रप्रवेशिका—सम्पत्तिशास्त्रकी प्रारंभिक पुस्तक। मूल्य।)

सुखमार्ग—शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त करनेके सरल उपाय। मूल्य ।)

कालिदासकी निरंकुशता—महाकवि कालिदासके काव्यदोषोंकी समालोचना। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकृत मूल्य ।)

हिन्दीकोविदरत्नमाला—हिन्दीके ४० विद्वानों और सहायकोंके चरित। मू० १॥)

कर्तव्यशिक्षा—लार्ड चेस्टर फील्डका पुत्रोपदेश। मूल्य १)

रघुवंश—महाकवि कालिदासके संस्कृत रघुवंशका सरल, सरस और भावपूर्ण हिन्दी अनुवाद। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित। मूल्य २)

जैनग्रन्थ।

(जिनकी थोड़ी थोड़ी प्रतियां बची हैं।)

पद्मपुराण वचनिका	६)	यशोधरचरित वचनिका	२)
जम्बूस्वामीचरित्र	।≈)	सुशीलाउपन्यास	१)
पांडवपुराण	२॥)	चार चौवीसीपाठ	५)

शृंङ्गारवैराग्यतरंगिणी मूल और संस्कृतटीका मूल्य ≈)॥

जैनकथाद्वाविंशति मूल संस्कृत ≈)॥

आराधनासार कथाकोश छन्दोबद्ध ३॥)

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा भा० टीका १।)

शुद्ध काश्मीरी केशर।

काश्मीरसे अभी हाल ही हमने बहुत अच्छी केशर मँगवाई है। इसमें अशुद्धताका संसर्ग भी नहीं है। पूजनमें चढ़ानेके लिए इसीको काममें लाना चाहिये। जिन महाशयोंको जरूरत होवे हमसे मंगा लिया करें। बहुत अच्छा माल भेजा जाता है। थोक मंगानेवालोंको रियायतसे भेजी जाता है।

मैनेजर—**जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**

गिरगांव बम्बई।

ऐतिहासिक स्त्रियाँ।

इस नई पुस्तकमें राजीमती, चेलना, मैनासुन्दरी, सीता, द्रौपदी-रयनमंजूषा, मनोरमा और अंजनासुन्दरी इन आठ प्राचीन महिलाओंकी शिक्षाप्रद जीवनी लिखी गई है और बडी सुन्दरतासे छपाई गई है। जैनस्त्रियोंके लिए यह बिलकुल नई चीज है। मूल्य आठ आना।

असमर्थ स्त्रियों और बालिकाओंको प्रकाशकसे मुफ्त मिल सकती है। सम्पादक और प्रकाशक—देवेन्द्रप्रसादजैन, आरा।

पुस्तक मिलनेका पता—

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

गिरगांव—बम्बई।

मनोरञ्जन।

यह सचित्र मासिक पत्र हिन्दीमें अपने ढंगका पहिला है। इसके प्रत्येक अङ्कमें एक उपन्यास और एक कहानी रहती है। इसके अतिरिक्त हिन्दीके नामी नामी लेखकों और कवियोंके प्रबन्ध रहते हैं। छपाई लासानी है। कवरपेज पाँच रंगोंमें छपता है और भीतरी सामग्री चमकीली और चिकने कागजपर नीली और चमकती हुई रोशनाईमें छपती है। आधा आनेका टिकट भेज नमूना मँगा लें। वार्षिक मूल्य २।), हिन्दीके सभी पत्रों और विद्वानोंने इसकी प्रशंसा की है। यदि अपना मनोरंजन करना हो तो इसे अवश्य मंगावें।

मैनेजर, मनोरञ्जन, आरा (विहार प्रान्त)

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

नववाँ भाग] ज्येष्ठ, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [८ वाँ ।

हमारा भ्रमण ।

२. अतिशयक्षेत्र थूबोन ।

चँदेरीसे १२, १३ मीलके अंतर पर थूबोनजी एक प्राचीन अतिशय क्षेत्र है । रास्ता बहुत खराब है, सड़क कच्ची है, जिसके कारण बैलगाड़ियोंमें जाना पड़ता है जो ५, ६ घंटेकी कड़ी मेहनतके बाद कहीं पहुँच पाती हैं । रास्तेमें पत्थर इस बहुलतासे पड़े हुए हैं कि कभी गाड़ीका पहिया ऊपर और कभी धमसे नीचे । उस समय यही जीमें आता है कि इस सवारीसे तो पैदल ही चलना अच्छा है; पग पग पर धक्के खानेसे पेटमें दर्द तो न होगा और जी तो न घबरायगा । हमने ऐसा ही किया और जहाँतक बन सका, हजारों पत्थरोंको जो सड़कके बीचमें पड़े हुए थे तथा जिनके कारण बैलों व सवारियोंको बड़ा कष्ट होता था उठाकर फेंके । यदि प्रत्येक यात्री इसी प्रकार अपने मनसे यह भाव निकालकर कि अब मेरी तो यात्रा हो चुकी, अब मुझे क्या करना है, पांच पांच सात सात पत्थर उठाकर फेंक दे तो बहुत कुछ

रास्ता साफ हो सकता है और कष्ट न होनेके कारण परिणाम भी उज्ज्वल रह सकते हैं। उचित तो यह है कि कोई सेठ, साहु किसी स्थानपर १० मंदिरके होते हुए ग्यारहवाँ न बनवाकर चंदेरीसे थूबोनतक पक्की सड़क बनवा दे, चाहे प्रत्येक यात्रीपर कर लगा दिया जाय; परंतु यदि इस कदर भक्ति व शक्ति नहीं है और इस कार्य्यके सम्पादनमें किसी सेठ, श्रीमंत सेठ आदि पदवीकी प्राप्तिकी आशा नहीं है तो कमसे कम चँदेरीके भाइयोंको अथवा क्षेत्रके प्रबंधक लश्करनिवासी राजा फूलचन्द्रजीको इतना तो अवश्य करना चाहिए कि वर्षाऋतुके बाद जब यात्री लोग आने शुरू होजाते हैं तब पांच सात रोज कुछ मजदूर लगाकर सड़क साफ करा दी जाय, बीचमेंसे पत्थर हटा दिए जायँ और जहां मिट्टीकी जरूरत हो डलवा दी जाय। रास्ता खराब होनेके सिवा बेचारे अपरिचित यात्रीगण प्राय: रास्ता भूल जाते हैं और घंटोंतक इधर उधर मारे मारे फिरते हैं। इसके लिए उचित है कि जहां कहीं रास्ता कटता हो और रास्ता भूल जानेका डर हो, वहाँ कुछ निशान बना दिए जायँ, चाहे पत्थर या लकड़ीकी तख्तीपर (बोर्डपर) थूबोनजी खुदवाकर लगा दिया जाय, चाहे दागवेल लगा दी जाय। इसी रास्तेमें एक नदी और एक नाला पड़ते हैं जिनके किनारेके उतार चढ़ाव इतने ज्यादह हैं कि बैलोंके लिए तो मानों मौतका सामना करना है। बरसातमें रास्ता बिलकुल बन्द हो जाता है और तैर कर ही आना होसकता है। क्या कोई लखपति, करोड़पति अथवा ग्वालियर राज्य इस ओर ध्यान देगा और पुल व सड़क बनवाकर अपनी कीर्तिको चिरस्थायी करेगा? नदीसे गांव तो दो मील पर है पर मंदिर एक मील पर हैं और नदी पार करते ही दिखलाई देने लगते हैं। सबसे पहले धर्मशाला मिलती है। यह धर्मशाला थोड़े दिन हुए, बनी है। इसकी दशा कुछ अच्छी है, साफ सुथरी है; चंदेरीके

समान मैली कुचैली नहीं है। एक पुजारी और एक मालिन रहती है, दोनोंका स्वभाव अच्छा है।

थोड़ी देर विश्रामके पश्चात् हम लोग मालिनको साथ लेकर दर्शन करने गए। मंदिरके द्वारमें प्रवेश करते ही मार्गमें जो कुछ कष्ट हुआ था वह सब भूल गए और हमारे हर्ष और आनंदकी सीमा न रही। यहांकी मूर्तियां प्रायः खड्गासन हैं और अत्यंत मनोज्ञ व विशाल हैं। पहली ही प्रतिमाजीको देखकर हमको निश्चय हो गया कि दुःखके पश्चात् अवश्य सुख मिलता है और यात्रीगणका जाते समयका कष्ट तो तीर्थभक्तिसे और लोटते समयका देवदर्शनसे जाता रहता है।

यहां पर २३ पृथक् पृथक् मंदिर हैं। सबसे प्राचीन पाडासाहका मंदिर बताया जाता है। पाडासाहकी मूर्ति भी मंदिरके बाहर बनी है। मंदिरके पास उनका सभामंडप और महादेव, क्षेत्रपाल, पद्मावतीके मंदिर भी हैं। कहते हैं कि उनके पास पारस,पथरी थी जिससे वे मन-माना, सोना बना लेते थे। देवगढ़में भी उनके मंदिर बताए जाते हैं। सबसे बड़ा छत्राभौंडीका आदिनाथ भगवानका मंदिर हैं। आदि-नाथ भगवानकी अति विशाल सुन्दर ३० फीट अनुमानकी ऊंची मूर्ति खड्गासन विराजमान है। यह और अन्य जितनी मूर्तियां हैं वे सब एक ही पाषाणकी बनी हुई हैं। कहते हैं कि जब आदिनाथ भग-वानकी मूर्ति बनकर तैय्यार हो गई और उसको विराजमान करने लगे तो सबके जोर लगाने पर भी वह न हिली। इससे मंदिर बनवाने-वालेको बड़ा दुःख हुआ और उसने अन्न जलका त्याग कर दिया। दस पंद्रह दिनके उपवासके पश्चात् उसे स्वप्न आया कि " हमारे मस्तकके हाथ लगा देना, बस कोई कठिनाई न पड़ेगी!" अगले दिन उसने वैसा ही किया और क्षणमात्रमें प्रतिमाजीको विराजमान कर दिया।

अन्य कई मंदिर प्राचीन हैं; किंतु शेष थोड़े ही दिनके बने हुए हैं। मूर्तियां प्राय: मनोज्ञ हैं और मोह अंधकारमें फसे हुए संसारी जीवोंके डाँवाडोल चित्तको ज्ञान, ध्यान, वैराग्यकी ओर आकर्षित करनेमें अपूर्व हैं। दिग्दर्शनसे ही चिंतित और क्लेशित मन शांतता और शीतलताका अनुभव करने लगता है, विषय कषायको त्यागता हुआ आत्मरूपमें लीन हो जाता है, भूत जीवनको धिक्कारता हुआ संसारको अशरण, अशुभ, क्षणभंगुर विचारता हुआ एकत्व, अन्यत्व, बोधदुर्लभ भावनाका चिंतवन करने लगता है, देवाधिदेव अरहंतदेवकी शांति मुद्राका और उनके ध्यानका स्मरण करता हुआ, निजात्माके गुणोंका और मनुष्यकर्तव्यका विचार करने लगता है। इत्यादि भावनाएं इस क्षेत्रकी दिव्य मूर्तियोंके दर्शनसे यात्रियोंके मनमें होने लगती हैं। किंतु क्षमा कीजिए यह कहे विना नहीं रहा जाता कि कतिपय मंदिरोंमें मूर्तियोंके अंगोपाङ्ग शास्त्रानुकूल नहीं हैं। न जाने किन प्रतिष्ठाचार्य्योंने बिना देखे किस अभिप्रायसे इनकी प्रतिष्ठा कर दी। जहां तक देखा गया ये सब मूर्तियां पिछले सो दो सौ बरसकी ही बनी हुई हैं। सम्भव है कि उस समय भी अबके समान घूंस (रिशवत) का बाजार गर्म हो और प्रतिष्ठाचार्य महाशय उचित अनुचितका विचार न करके वकीलों, वैरिष्टरोंके समान जेब गर्म करने और फीस चुकानेकी ही चिंतामें रहते हों। कुछ हो, ऐसी प्रतिमाएं प्रतिष्ठा होनेके कारण पूजनीय तो अवश्य हैं किन्तु उनसे जिनधर्मके महत्त्वमें धब्बा अवश्य लगता है और जैनियोंकी अज्ञानताका पता लगता है।

स्वच्छताके विषयमें चँदेरीकी चौबीसीकी जो दशा है, वही यहांकी भी है। न जाने बुंदेलखंडके मंदिरोंसे चमगीदड़ोंकी कितनी प्रगाढ़

भक्ति है, कि जहां देखो वहीं ये भव्य जीव भगवानके ऊपर अपने परोंका छत्तर लगाए रहते हैं और अपने शरीरके पवित्र पदार्थोंद्वारा प्रक्षालन, लेपन व अर्चन करते रहते हैं। हा शोक ! विनयकी डींग मारनेवाले, छपे शास्त्रोंमें अविनय अविनय चिल्लानेवाले शुद्ध सम्यक्ती भाई इस घोर अविनयको देखकर क्यों आँखोंपर पट्टी बाँधे सो रहे हैं? अरे एकान्तपक्ष धारण करनेवाले जैनी भाइयो! क्या अब भी सोते ही रहोगे? अपनी हठधर्मीको न छोड़ोगे? अविनय अविनय ही कहते रहोगे, या कुछ करके भी दिखलाओगे? क्या नित्य तेरह बीसके झगड़े रगड़े ही करते रहोगे या कुछ समता भाव धारण कर सुधार भी करोगे ! जरा तो पलक उघाड़ो और विचारो क्या बीसपंथियोंका पंचामृताभिषेक इन चमगीदड़ोंके अभिषेक और गंध-लेपनसे भी घिनावना है? कषायको त्यागकर अपने तीर्थस्थानों और मंदिरोंको पवित्र करो, उनकी स्वच्छता और शुद्धताका निरंतर उद्योग करो। थूबोनजीके प्रत्येक मंदिरमें इस कदर दुर्गंधि आती है कि खड़ा भी नहीं हुआ जाता। दीवारें गर्दसे काली हो रहीं हैं, चंदोए बीटसे लदे हुए हैं और जमीन मूत्रसे गीली हो रही है।

इसके सिवा और तीर्थक्षेत्रोंके समान यहां भी मंदिरोंकी दीवारें यात्रियोंके नामोंसे काली हो रही हैं। हम नहीं जानते कि यात्रीगण दीवारोंपर अपने नाम लिखकर क्या पुण्योपार्जन करते हैं या क्या यश पैदा करते हैं? हमारी रायमें सिवा इसके कि दीवारें खराब करें और अपनी मूर्खता दिखलाएँ और कोई लाभ नहीं। मित्रो ! क्या तुम चक्रव-र्तीका अनुकरण करते हो जो दिग्विजय करके विजयार्ध पर्वतपर जाकर अपना नाम लिखता है?

यहांपर सिर्फ एक पुजारी है जो केवल चरणोंका प्रक्षालन करता है। वास्तवमें एक आदमी जिसको केवल दो, तीन रुपये जंगलमें दिए

जाते हैं, और ज्यादा कर ही क्या सकता है? मंदिरोंके बनवानेमें तो करोड़ों रु० खर्च किए गए और किए जाते हैं, पर उनकी रक्षा और सफाईमें क्या दस बीस रुपया महीना भी खर्च नहीं किया जा सकता? इस क्षेत्रपर कमसे कम दो पुजारी होने चाहिए जिससे वे नित्य प्रक्षालन किया करें और मूतियोंकी बींट आदिसे अविनय न होने दें। प्रत्येक मंदिरमें चंदोए होने चाहिए और दूसरे तीसरे वर्ष सफेदी होनी चाहिए।

यहांपर अभी तक कोई कुआ न था। प्रक्षालके लिए भी जल नदीसे आता था; परंतु गतवर्ष फीरोजपुरनिवासी लाला देवीसहायजीने यहां कुआ बनवाकर अपनी भक्ति, उदारता और धर्मवात्सल्यका परिचय दिया है। लालासाहबने यहां कुआ बनवाकर जितना पुण्योपार्जन किया है उतना पुण्य यदि वे यहां एक नई चौबीसी बनवा देते तब भी न संचय कर सकते। सच्ची धर्मप्रीति इसीका नाम है और इसीका अनुकरण करना हमारी जातिके धनिकोंका कर्त्तव्य है।

चँदेरीके भव्योंसे मालूम हुआ कि वे चँदेरीमें वार्षिक मेला करानेका उद्योग कर रहे हैं। ग्वालियर महाराजसे प्रार्थना की गई है और आशा है कि वह शीघ्र स्वीकार होगी। इस मेलेसे इस क्षेत्रकी बहुत कुछ शोभा बढ़ सकती है और इसका प्रबंध भी उत्तम हो सकता है।

हम राजा फूलचन्द्रजी, पंचान चँदेरी तथा प्रांतिक सभा बुन्देलखंडसे प्रार्थना करते हैं कि इस क्षेत्रकी वर्तमान दशा शोचनीय है, आवनयका यहां हृदयविदारक भरमार है और रास्तेका कष्ट अपार है अतएव आप इसका यथेष्ट प्रबंध करें और मेलेकी स्वीकारता आनेपर पहले सड़कको ठीक कराएँ, पक्की न हो कच्ची ही सही। ऐसी जगहोंकी फुटकर मरम्मत आदि कामोंमें यदि तीर्थक्षेत्रकमेटी स्वयं १००,५० रु० खर्च कर दिया

करे तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है और तीर्थ-क्षेत्र-कमेटीपर लोगोंकी श्रद्धा और उससे सहानुभूति भी हो सकती है।

दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए.,
क्षेत्रपाल—ललितपुर।

प्रभुसे प्रार्थना।

हे भगवन्! हे दयानिधे! हे दीनोंके अन्तिम आधार!
दुःखताप संतप्तोंके हित, शान्ति-सुधा बरसावनहार ॥ १ ॥
भारतभूमि आज आरत हो, करती है यों दीन पुकार।
जिसको सुनकर दुष्टोंके भी, गिर पड़ते हैं आँसू चार ॥ २ ॥
महा मेहनती ये किसान-कुल, खेती करते हैं अविराम।
खड़े खड़े सब सिरपर सहते, जाड़ा गर्मी वर्षा घाम ॥ ३ ॥
तब भी इनको एक समय भी, अन्न न मिलता है भर पेट।
ऋणने इनको चार तरफसे, रत्ती रत्ती लिया लपेट ॥ ४ ॥
घरमें बर्तन टूटे फूटे, किसी किसीके हैं दो चार।
कपड़ोंमें है केवल धोती, उसमें भी हैं छेद हजार ॥ ५ ॥
गहनेके नाते चाँदीका, छल्ला एक न इनके पास।
पोत-अदाईकी चिन्तासे, रहते हैं हर घड़ी उदास ॥ ६ ॥
पैदा करते हैं मर मर कर, ये बहु विधिके अन्न अपार।
अधिक अंश ढो जाता बाहर, ले जाते परदेशी मार ॥ ७ ॥
जो बचता है सो होता है, हम सब लोगोंका आधार।
इनकी रक्षा शिक्षाका हा!, तब भी करते नहीं विचार ॥ ८ ॥
मिट्टीमें मिल गया हमारा, शिल्प बनिज वैभव व्यापार।
केवल खेतीसे है चलता, भारतका सारा व्यवहार ॥ ९ ॥

हैं किसान भारतका जीवन, जो ये हो जावेंगे नष्ट।
तो फिर कहीं ठिकाना सबका, नहीं रहेगा हो अति कष्ट॥ १०॥
इनको जीवन भार हो रहा, सहते हैं ये सब चुपचाप।
नाथ, करो अनुकम्पा इन पर, करुणावरुणालय हैं आप॥ ११॥
किसी समय थे ग्राम हमारे, स्वर्ग-सदृश सब सुखके धाम।
श्री-सम्पन्न अन्नके आकर, रहता था सब ही आराम॥ १२॥
हरे भरे खेतोंको लखकर, होता था मन हरा सदैव।
रहनेवाले हृष्ट पुष्ट थे, था अनुकूल सभीका दैव॥ १३॥
गऊ बैल आदिक पशु शत शत, थे घर घरमें आनँदकन्द।
हरी हरी घासें चरते थे, और बिचरते थे स्वच्छन्द॥ १४॥
दूध दही घी सभी अमित था, किसी बातकी कमी न थी।
शिक्षित प्रजा सरल-मति सच्ची, देश-भक्तिमें प्रवीन थी॥ १४॥
हाय! समयने पलटा खाया, हुआ भाग्यका कैसा फेर।
रही न शोभा सम्पति वैसी, किया कुमतिने यह अन्धेर॥ १५॥
आपसमें कुछ रहा न एका, फैल गई घर घरमें फूट।
होने लगी अन्न धन जनकी, चार तरफ अनिवारित लूट॥ १६॥
हाय! अशिक्षित ग्रामनिवासी, कैसे गिरे कुमतिके कूप।
कसे लँगोटी खड़े कचहरी, साक्षात् दारिद्र्य-स्वरूप॥ १७॥
सूखे खेत दिखाई देते, होता है उनका नीलाम।
सपरिवार भूखों मरते हैं, ये किसान होकर बेकाम॥ १८॥
पशु निर्वंश हुएसे सारे, जो कुछ हैं वे दुर्बल देह।
भूखके मारे मारे मारे, फिरते मरते निस्सन्देह॥ १९॥
दूध दही घी चोखा अब तो, दुर्लभ सा है हे भगवान!।
जिससे दुर्बल होती जाती, दिन दिन सब भारतसन्तान॥ २०॥

स्त्री-शिक्षा भी यहाँ नहीं है, निज कर्तव्य न जानें नारि।
पशुसम नहीं हिताहित कुछ भी, अपने मनमें सकें विचारि ॥ २१ ॥
जादू टोने टटकेमें पड़, आप करें हैं अपनी हानि।
चलें कुराह कुसंगतिमें फँस, भूलि गई हैं नीकी वानि ॥ २२ ॥
नर नारी दोनों ही सम हैं, दोनोंसे है यह संसार।
दोनों मिल कर कर सकते हैं, अपना त्यों जगका उपकार ॥ २३ ॥
एक अशिक्षित एक सुशिक्षित, होगा जब तब सब है व्यर्थ।
दोनोंके शिक्षित होनेसे, हम सब होंगे प्रकृत समर्थ ॥ २४ ॥
सीता सती समान सती सब, लीलावती सदृश विद्वान।
गार्गी सम चतुरा रमणी अब, होंगी ह्याँपर कब भगवान ? ॥ २५ ॥
हे अनाथके नाथ! तुम्हारा, रूप सनातन है शुभ धर्म्म।
उसको हम सब भूल गये हैं, करते हैं मनमाने कर्म्म ॥ २६ ॥
ब्रह्मचर्य्य भी छोड़ दिया है, भक्ति भावकी रही न गन्ध।
भाई भाई लड़ लड़ मरते, स्वारथमें हैं ऐसे अन्ध ॥ २७ ॥
अपने हाथों अपनी दुर्गति, हम लोगोंने की हे नाथ!।
फिर भी चितमें चेत नहीं है, त्यागा नहीं मोहका साथ ॥ २८ ॥
बिना तुम्हारे और न कोई, करनेवाला है उद्धार।
दया-दृष्टि करिये अब हर बर, होवे हिये सुमति संचार ॥ २९ ॥
अपनेको पहचानें जानें, मानें शास्त्रोंका उपदेश।
चलें सुराह टलें सब संकट, सुख पावे यह भारत देश ॥ ३० ॥
अपने आप सुधारें सब कुछ, जन्मभूमिके बनकर भक्त।
श्रीपदपद्मोंपर मधुकरसे, रहें सदा सब ही अनुरक्त ॥ ३१ ॥
कर्मवीर बनकर सब भाई, सच्चा करें समाज-सुधार।
मिटें द्वेष, मद, शठता, आलस, झूठ, कपट, कुत्सा, कुविचार ॥३२॥

रूपनारायण पाण्डेय।

विवेक-विनोदलहरी।

(८)

भारतवासियोंका मनुष्यत्व।

सम्पादक महाशय, आपको पत्र लिखूँ कैसे ? मेरे लिखनेमें बाधा डालनेवाले क्या कुछ कम हैं ? इस समय मै जिस झोपड़ीमें रहता हूँ, दुर्भाग्यसे मैंने उसके समीप दो तीन फूलोंके झाड़ लगा दिये हैं। सोचा था कि मेरे कोई नहीं हैं—ये फूल मेरी सखा-सखीकी हवस मिटा देंगे। खुशामद करके इन्हें प्रफुल्लित न करना पड़ेगा, किसीको दक्षिणा और दलालीमें रुपये न देने पड़ेंगे, गहने गढ़वाकर न देने होंगे और मीठी मीठी बातें भी न बनानी होंगीं। अपनी खुशीसे ये आप ही फूलेंगे, इनके हँसी है पर रोना नहीं है; आमोद है पर अप्रसन्नता नहीं है। निश्चय किया कि—यदि प्रसन्न ग्वालिनीने छोड़ दिया है तो छोड़ देने दो अब इन फूलोंके ही साथ प्रणय करूँगा।

लीजिए झाड़ोंमें फूल आगये। वे हँसने लगे। विचार किया—अजी महाशय, कुछ विचार कर ही न पाया था कि फूले हुए फूलोंको देखकर जहाँ तहाँसे भौंरोंके, मधुमक्खियोंके और दूसरे रसापेक्ष रसिकोंके दलके दल भन् भन् करते हुए मेरे द्वारपर आ पहुँचे और गुन् गुन् भन् भन् झन् झन् घन् घन् करकरके मेरे हाड़ जलाने लगे। उन्हें बहुत कुछ समझा बुझाकर कहा कि महाशयगण, यह कोई सभा नहीं है, समाज नहीं है, एसोसियेशन, लीग, सुसाइटी, क्लब आदि कुछ भी नहीं है—केवल कमलाकान्तकी पर्णकुटी है। इसलिए यदि आपको गुन् गुन् करना हो तो कृपया किसी दूसरी जगह जाइए—मैं कोई रेज्यूलेशन (प्रस्ताव) पास करानेको भी तैयार नहीं हूँ; आप

अन्यत्र पधारिए ! परन्तु गुन् गुन् दल किसी तरह नहीं माना—उलटा फूलोंके झाड़ छोड़कर मेरी कुटीरके ही भीतर हल्ला मचाने लगा। मैंने आपको पत्र लिखनेका प्रारंभ किया ही था कि इतनेमें एक भौंरा—बिलकुल कज्जलसा काला—भन भनाता हुआ झोपड़ीके भीतर आया और मेरे कानोंके पास लगा 'भों भों' करने—अब बतलाइए, आपको पत्र लिखूँ तो कैसे ?

भ्रमरमहाराज अपनेको बहुत ही रसिक और सद्वक्ता समझते थे, और इसलिए वे अपनी भन्‌भन् धन्‌धन्‌से मुझे आनन्दसारमें मग्न कर डालना चाहते थे। परन्तु मेरे ही पुष्पवृक्षोंके फूलोंका पराग लेकर मेरे हीं कानोंके पास भन् भन्! मुझसे यह नहीं सहा गया। मेरे क्रोधका ठिकाना न रहा। ताड़का पंखा हाथमें लेकर मैं उस भौंरेके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया! इधर मैंने घूर्णन, विघूर्णन, संघूर्णन आदि अनेक तरहकी वक्रगतियोंसे उस तालवृन्तास्त्रको चलाना प्रारंभ किया और उधर भ्रमर भी डीन, उड्डीन, प्रडीन, समाडीन आदि बहुविध कौशल दिखलाने लगा। मैं श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती—विनोदविवेकलहरीका प्रणेता हूँ, किन्तु हाय रे मनुष्यवीर्य! तू बड़ा ही असार है। तूने चिरकाल तक मनुष्योंको प्रतारित करके अन्तमें अपनी असारता प्रमाणित कर दी! तूने जामाके मैदानमें हानवलको, पलटोवाके मैदानमें चार्ल्सको, वाटर्लूके मैदानमें नैपोलियनको और इस भ्रमर—समरमें कमलाकान्तको खूब ही प्रतारित किया! मैं जितना ही पंखा घुमाकर, वायु सृष्ट करके भ्रमरको उड़ाने लगा उतना ही वह दुरात्मा मेरे सिरके चारों ओर भन् भन् करता हुआ चक्कर लगाने लगा। कभी मेरे ही वस्त्रोंमें छुपकर, मेघकी ओटमेंसे इन्द्रजितके समान युद्ध करने लगा, कभी कुम्भकर्णनिपाती रामकी सेनाके समान बगलके

नीचेसे निकलकर बाहर हो जाने लगा, और कभी श्याम्पसनके समान यह समझकर कि सिरके बालोंमें मेरा वीर्य सन्यस्त है मेरे शरत्कालके बादलोंको भी तुच्छ करनेवाले धुँघराले सफेद काले बालोंके बीचमें प्रवेश करके भेरी बजाने लगा। तब काटनेके डरसे घबड़ाकर मुझे खेत छोड़ना पड़ा; परन्तु देखा तो फिर भी कुशल नहीं–भ्रमर पीछे पीछे उड़ता हुआ आ रहा है। उसी समय पैरोंमें चौखटका एक ऐसा उबटा लगा कि श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती—"पपात धरणीतले!!!" आज इस संसारसमरमें महारथी श्रीकमलाकान्तचक्रवर्ती—जो कि दरिद्रता, चिरकुमारता और अफीम आदिके द्वारा भी कभी पराजित नहीं हुए थे—हाय! एक क्षुद्र पतङ्गके द्वारा पराजित हो गये। हरे-रिच्छा बलीयसी।

उस समय मैं शरीरकी धूल झड़ाता हुआ भ्रमरराजके निकट क्षमा प्रार्थना करने लगा—"हे द्विरेफसत्तम! इस दुखी ब्राह्मणने तुम्हारा क्या अपराध किया है–जिससे तुम इसके लिखने पढ़नेमें विघ्न डाल-नेको उतारू हुए हो? देखो, मैं यह पत्र हितैषीके सम्पादकको लिख रहा था–इसके लिखनेस मेरे लिए अफीम आ जायगी, तब तुम भन् भन् करके इसमें क्यों विघ्न डालते हो!" मैंने प्रातःकाल एक नाटक पढ़ा था–इस समय अकस्मात् उसी नाटकीय लहरमें डूबकर मैं कहने लगा–"हे भृङ्ग! हे अनङ्गरङ्गतरङ्गविक्षेपकारिन्! हे दुर्दान्तपाषण्ड-भण्डचित्तभण्डकारिन्! हे उद्यानविहारिन्! तुम भन्भन् क्यों कर रहे हो? हे भृङ्ग! हे द्विरेफ! हे षट्पद! हे अले! हे भ्रमर! हे भौंरा! हे भन्भन्!—"

अपना सहस्रनामस्तोत्र सुनकर भ्रमर मेरे सामने आकर बैठ गया और गुन् गुन् करके लगा एक स्पीच सरीखी झाड़ने। यह तो सब

जानते ही हैं कि मैं अफीमके प्रसादसे सबकी भाषा समझ सकता हूँ; अतः उसका व्याख्यान चित्त लगाके सुनने लगा !

वह बोला—“ हे विप्र तुम्हारा केवल मेरे ही ऊपर इतना आक्षेप क्यों है? मैं क्या अकेला ही भन् भन् करता हूँ? तुम्हारी इस भारत-भूमिमें जन्म ग्रहण करके यदि मैं भन् भन् न करूँ तो और क्या करूँ? भारतवासी होकर ऐसा कौन है जो भन् भन् न करता हो? भारतवासियोंको इसे छोड़कर और है ही कौनसा व्यवसाय? तुम लोगोंमें जो राजा महाराजा या आनरेबल आदि हैं वे कौंसिलोंमें बैठकर भन् भन् करते हैं, जो राजा रायबहादुरादि होनेवाले हैं–उम्मेदवार हैं वे साहब लोगोंके पास जाकर भन् भन् करते हैं, और जो केवल नौकरीके उम्मेदवार हैं उनकी भन् भन्का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। जिन बाबू लोगोंने थोड़ी बहुत अँगरेजी सीख ली है, वे दरख्वास्त या टिकिट हाथमें लिए हुए द्वार द्वार पर जाकर भन् भन् करते हैं–उनकी भन् भन् डाँस मच्छड़ोंके समान खानेके समय, सोनेके समय, बैठनेके समय, खड़े होनेके समय, दिनको, रातको, सबेरे, दोपहरको, साँझको जब देखो तब ही जारी रहती है। जो उम्मेदवारी छोड़ स्वाधीन होकर वकील होगये हैं वे एक तरहके सनदी भन् भन् करनेवाले बन गये हैं। वे सत्य-मिथ्याके सागरसंगममें प्रातःस्नान करके, जहाँ देखते हैं कि कठघरेके भीतर बड़े मस्तकके सरकारी हौआ बैठे हैं—बड़े जज, छोटे जज, सबजज, डिपुटी, मुन्सिफ—वहीं जा पहुँचते हैं और उसी सनदी भन् भन्का फब्बारा छोड़ने लगते हैं। इनमेंसे कोई कोई समझते हैं कि–इस भन् भन्की मारसे ही देशका उद्धार होगा, इसलिए वे सभाओंमें थोड़े बहुत बूढ़ों बच्चोंको जमा करके भन् भन्की झड़ी लगाया करते हैं। यदि किसी देशमें वृष्टि न हुई हो तो ये कहते हैं

—आओ भाई, सब मिलकर भन् भन् करें; हमें बड़ी बड़ी नौकरियाँ नहीं मिलती हैं आओ भाई, भन् भन् करें; अमुक साहब मर गये हैं आओ, उनके स्मरणार्थ भन् भन् करें। जिनका इन बातोंमें मन नहीं लगता वे कागज कलम लेकर सप्ताह सप्ताह, मास मास, और दिन दिनके नियमसे भन् भन् करते हैं; और महाराज, आप भी तो बतलाइए—जो मेरी न कुछ भन् भन्से इतने अप्रसन्न होते हैं—यह क्या करनेके लिए बैठे हैं! वही भन् भन्! हितैषीके सम्पादक थोड़ी बहुत अफीम भेज देवें, इसी लिए तो तुम्हारी यह भन् भनाहट है! फिर यह मेरी ही 'चों भों' क्यों तुम्हें इतनी कड़वी लगती है?

"कमलाकान्त, मैं तुमसे सच कहता हूँ अब तुम्हारी जातिकी यह भन् भन् मुझे अच्छी नहीं लगती। देखो, हम छोटेसे पतङ्ग हैं तो भी हम केवल भन् भन् ही नहीं किया करते हैं—हम मधुसंग्रह करते हैं और अपनी समूहशक्ति भी बनाते हैं। परन्तु तुम न तो मधुसंग्रह करना जानते हो और न शक्तिसंग्रह करना; केवल भन् भन् करते रहते हो। किसी एक भी कामके करनेका सलीका नहीं, केवल रोनेवाली लड़कीके समान रातदिन भन् भन्। अरे भाई, यह बक बक और लिक्खाड़पन तो कुछ कम कर दो और काममें जी लगाओ—इससे तुम्हारी भलाई होगी। मधु संग्रह करना सीखो और सीखो संघशक्ति बनाना। तुम्हारी जीभकी अपेक्षा तो हमारे डंकके भयसे ही जीवलोक अधिक शङ्कित रहते हैं। स्वर्गमें इन्द्रका वज्र, मर्त्यलोकमें अँगरेजोंकी तोप और आकाश मार्गमें हमारा डंक। गरज यह कि मधुसंग्रह करो; काममें मन लगाओ। यदि किसी तरहसे जीभमें खुजली होनेके कारण काममें मन न लगता हो तो उसमें एक सुई चुभाकर घाव कर लो—ज़रूर ही काममें मन लग जायगा। पर अब यह तुम्हारी कोरी भन् भन् अच्छी नहीं लगती।"

यह कहकर भ्रमरराज 'भों' करके उड़ गये। मैं सोचने लगा, अवश्य ही यह भ्रमर बहुत ही बुद्धिमान् पतङ्ग है। सुनते हैं कि मनुष्यकी पद-वृद्धि होनेसे वह बुद्धिमान गिना जाने लगता है। अर्थात् जिन मनुष्यों-की जितनी ही पदवृद्धि होती है वे उतने ही अधिक विज्ञ समझे जाते हैं। इस षट्पदके तो एक नहीं, दो नहीं, छह पद हैं। जब इसकी इतनी असामान्य पदवृद्धि है तब अवश्य ही यह व्यक्ति विशेष बुद्धिमान है। फिर ऐसे विज्ञ पतङ्गकी सम्मतिकी अवहेलना कैसे करूँ? बात मान ली और तबसे भन् भन् करना बन्द कर दिया—पर मधुसंग्रहकी आशा लगी रही। अब हितैषी-पुष्पसे अफीम-मधुका संग्रह होगा, इसी विश्वाससे मैं प्राण धारण कर रहा हूँ।

आपका आज्ञाकारी,—

श्रीकमलाकान्त चक्रवर्ती।

तीर्थ-पर्यटन।

(३)

जूनागढ़।

जूनागढ़ छोटासा परन्तु खूबसूरत शहर है। जूनागढ़ राज्यकी यही राजधानी है। यह कई सौ वर्षसे मुसलमान नवाबोंके अधिकारमें है। वर्तमान नवाब नाबालिग हैं। जिस दिन मैं जूनागढ़में था उसके दो तीन दिन पहले वे शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विलायतको रवाना हुए थे। शिक्षा वगैरहके विषयमें और सर्वसाधारणोपयोगी कार्योंके विषयमें गुजरात और काठियावाड़की रियासतें अन्य प्रान्तोंकी रियासतोंकी अपेक्षा बहुत ध्यान देती हैं। इसी लिए जूनागढ़में कई अच्छी संस्थायें हैं। अंगरेजीका एक हाईस्कूल है। उर्दू अरबीके मदरसे हैं और एक

अच्छा अस्पताल है। जूनागढ़ रेलवे इसी रियासतकी है। यहां सरदारबाग और शकरबाग नामके दो अच्छे बाग हैं। इनमें चिड़ियाखाने भी हैं और उनमें विशेष करके काठियाबाड़ी सिंह (केसरी) देखने लायक हैं। दूसरे बागमें जो छोटासा अजायब घर है वह भी दर्शनीय है। इसमें चित्रोंका अच्छा संग्रह है।

शहरमें दिगम्बर सम्प्रदायका एक और श्वेताम्बर सम्प्रदायके कई मन्दिर हैं। दिगम्बर मन्दिरमें ही गिरनारकी प्रबन्धकारिणी कमेटीका दफ्तर है—मुनीमजी इसीमें रहते हैं। मन्दिर प्रतापगढ़वालोंका बनवाया हुआ है। उसमें अधिकांश प्रतिमायें सं० १९२६ की हैं—एक संवत् १७४७ की और एक १७४५ की भी है। श्वेताम्बर सम्प्रदायका केवल एक ही मन्दिर हमने देखा; बहुत बड़ा और लाखों रुपयोंकी लागतका है। अवकाश न मिलनेसे पाठशाला वगैरह देखनेके लिए हम न जा सके।

जूनागढ़में ऊपरकोट नामका किला भी दर्शनीय है। यह लगभग ७० फुट ऊँचा है और अनुमान हजार वर्षका बना हुआ है। कहते हैं कि खुरासानके शाह कालयवनके डरसे भागकर यादवराजा उग्रसेनने इसे सबसे पहले बनवाया था! इसमें विक्रम संवत् १५०७ का एक शिलालेख है जिससे माळूम होता है कि महीपाल नामक राजाके पुत्र मंडलीकने उक्त संवत्में इस किलेका जीर्णोद्धार कराया था। इसके बाद दो बार और भी इस किलेकी मरम्मत हुई है—एक बार संवत् १६९० में ऐसाखांके द्वारा और दूसरी बार संवत् १७०८ में मिरजा ऐसा तोरखांके द्वारा। ऐसाखांने इस किलेको ९ दरवाजों और ११४ मीनारोंसे सुशोभित किया था। किलेके आसपास एक बड़ी भारी खाई है, जिसमें कई गुफायें हैं। किलेके भीतर बड़े बड़े भोंहिरे, गहरे कुओंके जैसे बड़े बड़े अन्नके कोठार, और कई कुए तथा वापिकायें हैं। एक

कुआ १७१ फुट गहरा है जिसमें २३० सीढ़ियां लगी हुई हैं। यहांपर दो बड़ी बड़ी तोपें रक्खी हैं जिनमेंसे पहली नीलम नामकी तोप सन् १५३३ इजिप्त (मिश्र) देशमें बनी थी। इसकी लम्बाई १७ फुट है। दूसरी चूडानाल नामकी तोप १३ फुट लम्बी है। कहते हैं कि ऐसी ही एक मंयम नामकी तोप और थी जो किसी कारणसे समुद्रमें उड़ गई है ! किलेके बीचोंबीच एक बड़ी भारी मसजिद है। इतिहासज्ञोंका ख़याल है कि यह राखेंगार नामक राजाके महल या देवालयको नष्ट भ्रष्ट करके बनाई गई है।

जूनागढ़ राज्यका प्राचीन नाम सौराष्ट्र या सोरठ है। इस राज्यके चपरासियोंकी चपरासोंमें तथा दूसरे कई स्थानोंमें सौराष्ट्र लिखा हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और साथ ही एक प्रकारका विस्मय भी हुआ। एक मुसलमानी राज्यमें भारतके इस प्राचीन नामका गौरव होना क्या कुछ कम आनन्द और विस्मयका विषय है ? यहांके हिन्दू-मुसलमानोंके पारस्परिक वर्तावको देखनेसे भी यह माळूम हुआ कि यहाँ अन्यत्रके हिन्दूमुसलमानों जैसा द्वेष नहीं है। ईसाकी सातवीं सदीमें हुएनसंग नामका एक चीनीयात्री भारतमें प्रवास करनेके लिए आया था। उसने अपने प्रवासवर्णनमें सौराष्ट्रका उल्लेख किया है। उससे माळूम होता है कि उस समय सौराष्ट्र एक द्वीप था; वह चारों ओर समुद्रसे घिरा हुआ था। इस प्रदेशका स्थल-संस्थान देखनेसे भी इस बातका थोड़ा बहुत अनुमान हो सकता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें सौराष्ट्रका नाम कुशद्वीप मिलता है। यह नाम भी हमें यही बतलाता है कि पहले सौराष्ट्र एक द्वीप था; परन्तु किसी बड़ी भारी प्राकृतिक घटनासे यह काठियाबाड़ प्रायद्वीपमें मिल गया है। अब इसके केवल दो तरफ़ समुद्र है।

श्रीयुक्त भगवानलाल सम्पतराम नामके एक विद्वानने सौराष्ट्रका एक विस्तृत इतिहास लिखा है। उसमें सौराष्ट्र और गुजरातका बुद्धदेवके समकालीन अजातशत्रु नामक राजासे लेकर वर्तमान नवाबके समय तकका इतिहास दिया है। उससे मालूम होता है कि प्रसिद्ध राजा नन्दके समयमें सौराष्ट्र पाटलीपुत्रका सूबा था, और उसका शासन नन्दका साला रौद्राक्ष करता था। चन्द्रगुप्तके समयमें भी सौराष्ट्र पटनाका सूबा था। उसके साले पुष्पगुप्तने ईस्वीसन्‌से ३०० वर्ष पहले गिरनारकी तलेटीमें सुदर्शन नामका तालाब बनवाया था। चन्द्रगुप्तसे लेकर सम्प्रतिराजाके समय तक सौराष्ट्रका शासन पूर्वोक्त प्रकारसे ही होता रहा। इसके बाद सौराष्ट्र विदेशियोंके हाथमें चला गया। ई०स०के १४० वर्ष पहले वैक्ट्रियाका राजा मिनेण्डर सौराष्ट्रका शासन करता था। इसी समय शकोंका अभ्युदय हुआ। ये लोग वैक्ट्रिया राज्यका नाश करके पश्चिम भारतमें उतर आये। इनमें कनिष्क नामका राजा बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसने सौराष्ट्रको जीता और उसमें अपने नामसे कनकावती, कनकवती आदि नगरियां बसाईं। विक्रमादित्यका राज्य भी सौराष्ट्रमें रहा है ऐसा मालूम होता है। कनिष्कके बाद सौराष्ट्रमें क्षत्रप जातीय राजाओंका अधिकार हुआ। गुप्तवंशीय राजा स्कन्दगुप्तने क्षत्रपोंका पराभव करके सौराष्ट्रको अपने अधीन किया और ई० स० ४४९में चक्रपालित नामक वीरको यहांका शासक नियत किया। गुप्तवंशकी राज्यश्री क्षीण होनेपर पंजाबसे गुर्जर (जार्जियन) जातिके लोगोंने आकर वल्लभीपुरमें राज्य स्थापित किया और सौराष्ट्र उनके हाथ आ गया। गुर्जरोंके ही नामसे गुर्जरराष्ट्र या गुजरात नाम पड़ा। इसके बाद गुजरातमें चावड़ा, सोलंकी और बाघेला इन तीन वंशोंका राज्य ईस्वीसन् १३०४

तक रहा। इस बीचमें सौराष्ट्र कभी तो गुजरातका सूबा रहा, कभी स्वतंत्र रहा और कभी दूसरोंका करद राज्य रहा। सन १०९४में जिस समय अणहिल्लपाटणकी गद्दीपर सिद्धराज जयसिंह बैठा, उस समय जूनागढ़ या जीर्णदुर्ग सोरठकी राजधानी हुआ। ईस्वीसन् १४७२ तक सौराष्ट्र राजपूत राजाओंके हाथमें रहा। वहांका अन्तिम राजा मंडलीक गुजरातके मुसलमान बादशाह मुहम्मद बेगड़ाके द्वारा परास्त हुआ और बादशाहने जूनागढ़का नाम मुस्तफाबाद रखके तातारखां नामक मुसलमानको वहांका थानेदार मुकर्रर कर दिया। तबसे अब तक जूनागढ़ मुसलमानोंके ही हाथमें है। यद्यपि बीचमें वह कभी गुजरातके बादशाहोंका, कभी देहली आगरेके बादशाहोंका और कभी गायकवाड़का सूबा रहा, तथापि वहांके सूबेदार प्रायः मुसलमान ही रहे। ईस्विसन् १८१८ में जूनागढ़ अंगरेजोंका रक्षित राज्य हो गया। बस, सौराष्ट्रका यही संक्षिप्त इतिहास है।

तारीख १५की शामको हम लोग जूनागढ़से पालीताणाका टिकट लेकर चल दिये। बीचमें जेतलसर, धोला और सीहोर जंकशनोंपर हमें गाड़ी बदलनी पड़ी। दूसरे दिन सबेरे हम पालीताणा पहुँच गये। स्टेशनसे कोई चार फर्लांगपर नदीके इसी पार दिगम्बरी धर्मशाला है। धर्मशाला बहुत अच्छी और लगभग ५०० यात्रियोंके ठहरने योग्य है। प्रबन्ध अच्छा है। यात्रियोंको सब तरहसे आराम मिलता है। हम लोग इसी धर्मशालामें ठहरे।

शत्रुंजय।

पालीताणाको जैनी शत्रुंजयगिरि कहते हैं। सिद्धाचल और पुण्डरीकगिरि भी इसीका नाम है। यों तो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय इसको सिद्धक्षेत्र मानकर पूजते हैं; परन्तु दिगम्बरियोंकी

अपेक्षा श्वेताम्बरियोंके यहां इसका अधिक माहात्म्य है। वे इसे सम्मेद-शिखरसे भी अधिक पूज्य समझते हैं। दिगम्बर सम्प्रदायके निर्वाण-काण्डमें लिखा है:—

पांडव तीन द्रविड राजान। आठ कोड़ मुनि मुकति पयान॥
श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस। भावसहित बंदौं निसदीस॥ ७॥

अर्थात् तीन पाण्डव, द्रविडराजा और आठ करोड़ मुनियोंने इस तीर्थपरसे मुक्तिलक्ष्मी प्राप्त की है। और श्वेताम्बरसम्प्रदायके शत्रुंजय-माहात्म्यमें कहा है कि ऋषभदेवके पाँचवें गणधर पुण्डरीक पांचकरोड़ मुनियोंके साथ, द्राविड और बालखिल्य नामके दो भाई दश करोड़ मुनियोंके साथ, नमि विनमि नामके दो विद्याधर दो करोड़ मुनियोंके साथ, ऋषभदेवके पुत्र भरत तथा उनके उत्तराधिकारी असंख्य राजा, श्रीकृष्णके प्रद्युम्न, साम्ब आदि साढ़ेआठ करोड पुत्रपौत्र, पांडव वीस करोड़ मुनियोंके साथ, नारदमुनि ९१ लाख मुनियोंके साथ, राम भरतादि तीन करोड मुनियोंके साथ, थावच्चा तथा शुकमुनि हजार हजार मुनियोंके साथ और शेलगमुनि पांचसौ मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए। इसके सिवा यहांसे अनादि कालसे असंख्यात तीर्थंकर और मुनि मोक्षको गये हैं—और जाते रहेंगे। ऋषभदेव महावीरादि तीर्थंकरोंकी यहाँ समवसरणसभायें भी हुई हैं। इसलिए:—

नमस्कारसमो मन्त्रः शत्रुंजयसमो गिरिः।
वीतरागसमो देवो न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात् पंचनमोकार मंत्रके समान मंत्र, शत्रुंजयके समान पर्वत और वीतरागके समान देव न हुआ है और न होगा।

इस अपरिमित माहात्म्यके कारण ही श्वेताम्बरसम्प्रदायने इसे भारतवर्षका एक आश्चर्यजनक स्थान बना रक्खा है। मन्दिरोंका इतना

---

१ दिगम्बरी प्रद्युम्न और साम्बका मोक्षस्थान गिरनारमें मानते हैं।

बड़ा समूह शायद ही किसी तीर्थपर होगा और इस कार्यमें इतना द्रव्य भी शायद ही कहीं खर्च किया गया होगा।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस पर्वतके विषयमें एक विलक्षण विश्वास है। वह यह कि गिरनारपर्वत शत्रुंजयका ही एक शिखर है! शत्रुंजय या सिद्धाचलके १०८ शिखर हैं, जिनमेंसे यह पाँचवाँ शिखर है। आबू वगैरह भी शायद इसीके शिखर हैं! इसकी ऊँचाई भी घटती बढ़ती रहती है। अवसर्पिणीके पहले आरेमें यह ८० योजन, दूसरेमें ७० योजन, तीसरेमें ६० योजन, चौथेमें ५० योजन, पाँचवेंमें १२ योजन और छट्ठेमें सात हाथ ऊंचा रहता है! * इसमें सन्देह नहीं कि इस घटा बढ़ीके लिखनेवाले भूकम्प आदि घटनाओंसे पर्वतादिकोंके रूपमें जो अकल्पित परिवर्तन हो जाते हैं उनसे परिचित रहे होंगे; परन्तु उनकी इस पाँचवें आरेकी १२ योजनकी ऊँचाईकी बात बराबर नहीं उतरी! शत्रुंजयपर्वत इतना ऊंचा नहीं है; योजनका माप कुछ और हो तो बात दूसरी है।

पालीताणा।

पालीताणा काठियावाड़की लगभग चारलाख रुपयेकी एक छोटीसी रियासत है। यहांके राजा ठाकुरसाहब कहलाते हैं। ये गोहिल राजपूत हैं। शिक्षा वगैरहकी ओर इस रियासतकी भी अच्छी दृष्टि है। पाली-

---

* गिरनारमाहात्म्यके अनुसार गिरनारकी ऊँचाई भी प्रत्येक कालमें कम बढ़ होती है। इस पांचवें आरेमें उसे दो योजन ऊंचा होना चाहिए! गिरनारके तो प्रत्येक कालमें नाम भी जुदा जुदा होते हैं। पहलेमें इसका नाम कैलास दूसरेमें ऊर्जयन्ति, तीसरेमें रैवत, चौथेमें स्वर्ग, पांचवेंमें गिरनार और छट्ठेमें नन्दिभद्र रहता है।

ताणा छोटासा शहर है तो भी यहां एक अँगरेजी हाईस्कूल, गुजराती पाठशाला और कन्यापाठशालादि कई शिक्षासंस्थायें राज्यकी ओरसे हैं। एक अच्छी डिस्पेन्सरी और एक स्त्रियोंका चिकित्सालय है। सर्व साधारणके लिए एक पब्लिक पार्क या बगीचा भी है। यहाँका जलवायु अच्छा है।

यों तो शहर छोटा है; परंतु जैनियोंकी संस्थाओं, इमारतों और यात्रियोंके आवागमनके कारण यहां खूब चहल पहल रहती है और बहुत सुहावना माऌम होता है। यदि यह जानना हो कि जैनी लोग धर्मकार्योंमें कितना द्रव्य खर्च करते हैं और तीर्थभक्ति उनमें कितनी है तो इस स्थानको देखना चाहिए। यहांपर श्वेताम्बर सम्प्रदायकी लगभग ४० धर्मशालायें हैं और उनमें कोई कोई तो इतनी विशाल और सुन्दर हैं कि राजमहलोंसी दिखलाई देती हैं। किसी किसी धर्मशालामें तो लाख लाख रुपयेसे भी अधिक खर्च किया गया है। धर्मशालाओंके बननेका ताँता अब भी नहीं टूटा है। धर्मात्मा धनियोंको अब भी संतोष नहीं है। वर्ष दो वर्षमें एकाध धर्मशालाकी सृष्टि हो ही जाती है।

यह बड़े संतोषकी बात है कि श्वेताम्बरसम्प्रदायके शिक्षितोंका ध्यान अब इस ओर भी गया है कि इस तीर्थपर कुछ समयोपयोगी संस्थायें स्थापित की जायँ और उन्होंने प्रयत्न करके यहां ऐसी कई संस्थायें स्थापित भी कर ली हैं।

१. **श्रीयशोविजय जैनपाठशाला और बोर्डिंग**—यह पाठशाला लगभग दो वर्षसे स्थापित हुई है। इस समय इसमें ४७ विद्यार्थी और तीन अध्यापक हैं। विद्यार्थी सबके सब अनपेड हैं। भोजनवस्त्रादिका सारा खर्च पाठशाला देती है। खर्च लगभग ६०० रु० मासिकका है।

इसके संचालक इसे शीघ्र ही गुरुकुल या ब्रह्मचर्याश्रमका रूप देना चाहते हैं। इसकी नियमावलीसे मालूम हुआ कि श्वेताम्बर, दिगम्बर और स्थानकवासी तीनों ही सम्प्रदायके विद्यार्थियोंको इसमें शिक्षा दी जायगी। इस पाठशालाके संचालक मुनि चारित्रविजयजीसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जैनसमाजके विद्या-दारिद्र्यकी आपके हृदयपर गहरी चोट लगी है। आपके जीवनका एक मात्र उद्देश्य महावीर भगवानके पवित्र शासनका अभ्युदय करना है। आपके विचार उदार हैं। आशा है कि आपके द्वारा इस संस्थाकी अच्छी उन्नति होगी।

२. **जैनबालाश्रम**—यह एक अनाथालय है। इसके द्वारा अनाथ लड़कोंका भरण पोषण होता है और उन्हें शिक्षा भी दी जाती है। इस समय इसमें ६२ लड़के हैं। मासिक खर्च लगभग ५००) है। छोटे छोटे बच्चोंको छोड़कर शेष लड़के सरकारी स्कूलोंमें जाकर गुजराती और अँगरेजी पढ़ते हैं। अबतक इस आश्रमसे लगभग ४० लड़के निकल चुके हैं जो बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानोंमें व्यापारादिकी जीविका करने लगे हैं।

३. **जैनविधवाश्रम**—इसके द्वारा जैन विधवाओंका भरणपोषण होता है और उन्हें पढ़ना लिखना, सीना पिरोना आदि सिखलाया जाता है। धर्मशिक्षा भी दी जाती है। इसमें कोई १६ विधवायें हैं और उनके लिए १५०) मासिक खर्च किया जाता है।

४. **कच्छी दशा ओसवाल जैन बोर्डिंग हाउस**—यह रावबहादुर सेठ वसनजी त्रीकमजी जे. पी. और सेठ खेतसी खियसी इन दो धनिकोंकी ओरसे चल रहा है। इसमें लगभग ४० विद्यार्थी रहते हैं और राज्यके हाईस्कूलमें शिक्षा पाते हैं। धर्मशिक्षाका खास इन्तजाम है।

इनके सिवा वीरबाई पाठशाला, यतिपाठशाला, राय बाबू बुद्धसिंहजी जैन पाठशाला और कन्याशाला, राय धनपतिसिंह पाठशाला, मुनि मोहनलालजी लायब्रेरी, आदि और भी कई पाठशालायें हैं। पुस्तकालय भी कई हैं। यद्यपि इन पिछली संस्थाओंका प्रबन्ध समुचित नहीं है, तो भी उनसे कुछ न कुछ लाभ होता ही है।

इस तीर्थपर श्वेताम्बरसम्प्रदायके जितने यात्री आते हैं, उतने शायद किसी भी तीर्थपर नहीं आते होंगे। कभी कभी तो यहाँ दो दो चार चार हजार यात्रियोंतकका एक एक संघ ही आता है। यदि प्रयत्न किया जाय—दश बीस सच्चे काम करनेवाले अड्डा जमाकर बैठ जायँ तो यहाँ बीसों बड़ी बड़ी संस्थायें सहज ही चल सकती हैं और उन संस्थाओंके द्वारा जैनधर्म और जैनसमाजकी आशातीत उन्नति हो सकती है। यदि प्रत्येक यात्रीसे एक एक रुपया ही इन संस्थाओंके लिए वसूल किया जाय तो लाखों रुपये एकत्र हो सकते हैं; परन्तु अभी न तो हमारे यहाँ काम करनेवाले ही हैं और न हमारे भाइयोंका ध्यान ही विद्यादि विषयोंकी ओर है। यहां बीसों श्वेताम्बर साधु और यति रहा करते हैं उनका सर्वसाधारणपर प्रभाव भी अच्छा पड़ता है; परन्तु वे भी अपने उपासकोंका द्रव्य इन कामोंमें खर्च नहीं कराना चाहते—उनमें इतनी योग्यता भी नहीं है।

इस तीर्थका प्रबन्ध करनेवाली 'सेठ आनन्दजी कल्याणजी' नामकी कोठी है। इस कोठीमें लाखों रुपयोंकी आमदनी है। कुछ समय पहले यह आन्दोलन किया गया था कि इस कोठीका हिसाब प्रकाशित किया जाय और इसके अधिकारी दो चार सेठ ही न रहें किन्तु समस्त श्वेताम्बर समाजमेंसे इसके लिए मेम्बर चुने जावें; परन्तु इसका कुछ भी फल न हुआ। हो कैसे? अभीतक हम लोग अपने स्वत्वोंको ही कहाँ

समझते हैं। जबतक हममें योग्यता नहीं आई है, तबतक धनियों और प्रतिष्ठितोंके अधिकारका जूंआ हमारे कन्धोंसे नहीं उतर सकता। अस्तु। यहाँके ठाकुरसाहबमें और उक्त कोठीके बीचमें बहुत समयसे अनबन चली आ रही है। शत्रुंजय पर्वतके विषयमें इन दोनोंमें कई बड़े बड़े मुकद्दमे चल चुके हैं। सन् १८७७ के गवर्नमेंटके फैसलेके अनुसार दोनोंके बीचमें एक करार हो चुका है। उसके अनुसार कोठीको प्रतिवर्ष पन्द्रह हजार रुपया ठाकुरसाहबकी भेटमें देना पड़ते हैं।

शहरमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके लगभग ९ मन्दिर हैं। ये सब ही प्रायः सौ डेड़सौ वर्षके बीचके बने हुए हैं। दिगम्बरी मन्दिर एक है। इसकी प्रतिष्ठा शोलापुरके प्रसिद्ध सेठ हरीभाई देवकरणने करवाई थी। यह भी पुराना नहीं है। दिगम्बरी कोठीके मुनीम धर्मचन्दजी बड़े ही धर्मप्रेमी हैं। उन्होंने मन्दिरको खूब ही सजा रक्खा है। आपके द्वारा दिगम्बरी यात्रियोंको सब प्रकारका आराम मिलनेके सिवा उपदेश भी मिलता है। आपने पुस्तकोंका एक अच्छा संग्रह कर रक्खा है। आपकी इच्छा एक दिगम्बरी पुस्तकालय खोलनेकी है। एक छोटेसे औषधालयका भी आपने प्रबन्ध किया है।

ता० १६ और १७ को हमने शहरकी कई संस्थायें और मन्दिरादि देखे। इसके सिवा कई साधुमहात्माओं और विद्वानोंसे भी परिचय किया। मुनि जयविजयजी नामक एक साधुसज्जनसे वार्तालाप करके मुझे बड़ा ही संतोष हुआ। आपमें जैसा अच्छा जैन शास्त्रोंका ज्ञान देखा वैसा ही आपका स्वभाव भी कोमल शान्त और गर्वरहित पाया। प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी रायचन्द्रजीके विचारोंमें आपकी हार्दिक भक्ति है। आपके लिए एक धनिक महाशयने एक ब्राह्मण पंडित नियत कर दिये हैं। उन्हींके पास आप संस्कृतसाहित्यका अध्ययन करते हैं। आपका

अध्ययन रात दिन चलता है। आप जो कुछ पढ़ते हैं उसका सब ओरसे गहरा विचार करते हैं। रटन्त विद्यासे आपको बड़ी घृणा है। आपका ख़याल है कि सम्प्रदाय, गण, गच्छों और संघोंके झगड़ोंने जैनधर्मके असली स्वरूपको ढँक दिया है।

ता० १७ को एक व्याख्यानसभा थी। पण्डित दुर्गादत्तजी शर्मा जिनके नामसे हमारे पाठक अच्छी तरह परिचित हैं—यहाँ पधारे हुए थे। आपकी पूर्वलीलासे श्वेताम्बरी भाई अपरिचित थे। इस लिए उनपर आपने अच्छा सिक्का जमा रक्खा था। आपके एक दो व्याख्यान पहले हो चुके थे और कुछ आगे होनेवाले थे। आज भी आपहीका व्याख्यान था। व्याख्यानसभामें मैं ब्रह्मचारी पार्श्वसागरजीके साथ गया। धूमधाम तो बहुत की गई थी; परन्तु श्रोता बहुत ही कम एकट्ठे हुए। व्याख्यान हुआ। लगभग पौन घंटे तक सुनकर भी हम यह न समझ सके कि आप कह क्या रहे हैं। जैनधर्मके थोड़ेसे पारिभाषिक शब्द, ग्रन्थ और आचार्योंके नाम आपने रट रक्खे हैं, उन्हें बीच बीचमें मौके बेमौके कहदेनेसे भोले श्रोता यह समझ लेते हैं कि आप जैनधर्मके बड़े विद्वान् हैं। वे न भी समझें तो आप कह देते थे कि भाई, जैनधर्मके सिद्धान्त इतने गहन हैं कि यदि मैं उन्हें कहने लगूँ तो आप ऊंघने लग जायँ—कुछ भी न समझें! अधिक हमसे बैठा न गया—बीचमें ही उठ आये। दूसरे दिन फिर आमंत्रण हुआ—इच्छा तो न थी; परन्तु सभाके प्रबन्धकर्ताओंके अत्याग्रहसे फिर भी जाना पड़ा। आज हमारे साथ शोलापुरके प्रसिद्ध सेठ बालचन्द रामचन्दजी भी थे। शर्माजीके व्याख्यानके बाद मुझे भी कुछ कहनेका अवसर दिया गया और 'जैनधर्मकी उन्नति किस तरह हो' इस विषयमें मैंने अपने टूटे फूटे शब्दोंमें थोड़ासा निवेदन किया। काशी यशोविजय पाठशालाके

विद्यार्थी पं० बेहचरदासजीका भी आज व्याख्यान हुआ। आपने बहु-तसी विचारने योग्य बातें कहीं। सेठ बालचन्दजीने पालीताणेकी यशोविजय पाठशालाके लिए २५) प्रदान किये।

पालीताणेमें चौमासेको छोड़कर प्रायः सदा ही इतने यात्री आया करते हैं कि यदि उनके लिए प्रतिदिन ही व्याख्यानोंका प्रबन्ध किया जाय तो श्रोताओंकी कमी नहीं रह सकती। पर यह करे कौन? तीर्थोंके प्रबन्धकर्ता तो इसको कोई जरूरी काम नहीं समझते और ऐसे कामोंमें जीवन लगानेवाले जैनियोंमें हैं नहीं। यदि ऐसे थोड़े ही शिक्षित जैनसमाजमें उत्पन्न हो जायँ तो इन तीर्थोंमें वह काम हो सकता है जो अन्यत्रके सैकड़ों प्रयत्नोंसे भी नहीं हो सकता।

पर्वत–दर्शन।

ता० १८ के सबेरे पाँच बजे हम लोग पर्वतकी बन्दनाको चले। धर्मशालासे लगभग आध कोस चलनेपर पर्वतकी तलैटीमें पहुँचते हैं। यहाँ उन लोगोंके लिए जो पैदल नहीं चल सकते डोलियाँ मिलती हैं। पर्वतपर गिरनारजी जैसी पक्की सीढ़ियाँ नहीं हैं। कहीं कच्चा रास्ता पड़ा है, कहीं पत्थर बिठाये हुए हैं और कहीं कहीं थोड़ी बहुत सीढ़ियाँ भी हैं। ऐसे समृद्धिशाली पर्वतपर यह एक बड़ी भारी कमी है। मालूम नहीं इस ओर अबतक किसीका ध्यान क्यों नहीं पहुँचा।

शत्रुंजय पर्वतपर सब मिलाकर लगभग साढ़े तीन हजार मन्दिर हैं। दुनियामें शायद ही कोई ऐसा पर्वत होगा जिसपर इतने अधिक मन्दिर हों। सचमुच ही यह एक आश्चर्यजनक स्थान है। इन मन्दिरोंमें जैनी अबतक अरबों रुपया खर्च कर चुके हैं।

[असमाप्त]

पुस्तक-समालोचन ।

मोहनदास कमरचन्द गाँधीनो जन्मवृत्तान्त । लेखक-प्राणजीवन जगजीवन मेहता, बारिस्टर-एट-लॉ, एम. डी. (ब्रसेल्स), एल. आर. सी. पी. (एडिन), एल. आर. सी. एस. (एडिन), एल. एफ. पी. एस. (ग्लासगो), एल. एम एस. (बम्बई) इत्यादि । पृष्ठसंख्या २१० । मूल्य पुस्तकपर लिखा नहीं । दक्षिण आफ्रिका प्रवासी सुप्रसिद्ध देशभक्त और कर्मवीर श्रीयुत गांधीका नाम आज किसीसे छुपा नहीं है । गांधी भारतमाताके उन सुपुत्रोंमेंसे हैं जिन्होंने इस गिरी हुई हालतमें भी एक सुदूर देशमें जाकर आर्यजातिके गौरवकी, मनोबलकी, और परार्थपरताकी रक्षा की है । ट्रान्सवालके भारतवासियोंके कष्टों और अपमानोंको दूर करनेके लिए जिसने अपना जीवन अर्पण कर दिया है, दूसरोंके लिए जिसने अपरिमित कष्ट सहन किये हैं, सैकड़ों विघ्नबाधाओंके आनेपर भी जिसकी प्रतिज्ञा स्थिर है, जिसका जीवन बिलकुल सादा, पवित्र और धार्मिक है, और जिसके विचार आर्यसभ्यताके सर्वथा अनुकूल हैं; यह जीवनचरित उसी महात्माका है । मि० डोक नामके किसी अँगरेज सज्जनने अँगरेजीमें गांधीका जीवनचरित लिखा है, उसका यह गुजराती भाषान्तर है । इसके प्रारंभमें लगभग ८० पृष्ठकी प्रस्तावना है । प्रस्तावनाके लेखक, श्रीयुक्त मेहता मि० गाँधीके परिचित मित्र हैं । इसके सिवा वे स्वयं आफ्रिकाका प्रवासकर आये हैं और वहाँके भारतवासियोंकी अवस्थाको अपनी आँखोंसे देख आये हैं । इस लिए उनकी लिखी हुई प्रस्तावना बहुत ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हुई है । जीवनचरित भी बड़े अच्छे ढँगसे लिखा गया है । उसे पढ़कर चरितनायकके विषयमें पूज्यबुद्धि उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती । हमने इस ग्रन्थको अथसे इति पर्यन्त पढ़ा

और इससे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त की तथा अपने अनेक भ्रमोंका निराकरण किया। स्वदेशाभिमान, आत्मविश्वास, स्वार्थत्याग और उद्योगशीलताका यह बड़ा ही सुन्दर चित्र है। मुर्दासे मुर्दा दिल भी इसे पढ़कर जिन्दा हो सकते हैं। पाश्चात्य सभ्यताके मोहमें पागल हुए शिक्षितोंका इससे बड़ा ही कल्याण हो सकता है। वर्तमान समयमें प्रत्येक देशभाषामें ऐसे ग्रन्थकी जरूरत है। मेहता महाशयने इस ग्रन्थको लिखकर गुजराती साहित्यका और गुजराती भाषा-भाषियोंका बड़ा ही उपकार किया है। हमारे हिन्दीभाषा-भाषियोंको देखना चाहिए कि श्रीयुक्त मेहताजी अपने नामके साथ अँगरेजी पाण्डित्यके अनेक टाइटिल रखते हुए भी अपनी मातृभाषामें ग्रन्थ लिखना आवश्यक समझते हैं और हम अपनी मातृभाषामें एक लेख लिखना भी लज्जाका कार्य समझते हैं! हम आशा करते हैं कि गुजरातमें इस ग्रन्थका अच्छा आदर होगा और शीघ्र ही इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित होगा।

व्याकरणनिर्णयः—लेखक पण्डित श्री मुनि ज्ञानचन्द्रजी, प्रकाशक—लाला मिट्ठीमल्ल लाला बाबूराम जैन, लुधियाना। विना मूल्य। इस छोटीसी ६० पृष्ठकी पुस्तकमें यह सिद्ध किया है कि व्याकरणका पढ़ना बहुत जरूरी है और संस्कृतके व्याकरणोंमें सबसे प्राचीन और अच्छा शाकटायन व्याकरण है। पाणिनि आदि शाकटायनसे पीछे हुए हैं। पाणिनि, जैनेन्द्र, कातन्त्र, सारस्वत, हेम आदि सब व्याकरणोंने शाकटायनकी नकल की है। प्रारंभमें लिखा है कि सत्य बोलना परमधर्म है और सत्य भाषण शुद्ध भाषासे या वर्णोंके शुद्ध उच्चारण करनेसे होता है और यह व्याकरणके बिना नहीं हो सकता, इसलिए व्याकरण अवश्य पढ़ना चाहिए। यह बात हमारी

समझमें नहीं आई। जो व्याकरण नहीं पढ़ा है या शुद्ध भाषा नहीं बोल सकता है वह क्या सत्य भाषण नहीं कर सकता? व्याकरणका और सत्यभाषणका यह तो खासा वादरायण सम्बन्ध हुआ। आगे आपने अन्य वैयाकरणोंके समान व्याकरणसे मोक्षकी भी सिद्धि की है। आपकी यह युक्ति भी हमें अच्छी नहीं लगी कि पाणिनि आदि व्याकरणोंकी उत्पत्ति क्लेशसे हुई है इसलिए वे अच्छे नहीं। इसके लिए कोई दूसरी शास्त्रीय युक्तियां दी जातीं तो उनका पाठकोंपर अधिक प्रभाव पड़ता। जिन्हें यह पुस्तक पढ़ना हो वे "लाला फतूराम जैनी, लुधियाना" को एक कार्ड लिखकर मँगवा लें।

जिनवाणी माताकी पुकार। लेखक—बाबू परमेष्ठीदास लमेचू, प्रकाशक—बाबू उदयराज बद्रीदासजी, नं० ७७, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य—मातृसेवा। यह छोटीसी पुस्तिका श्रुतपंचमी पर्वके उपलक्षमें प्रकाशक महाशयने विना मूल्य वितरण की है। इसके प्रारंभमें ८ पृष्ठका एक निबन्ध है जिसमें जैनसाहित्यका महत्त्व और उसकी वर्तमान दुर्दशा बतलाकर उसके संरक्षण करनेकी ओर जैन-समाजका ध्यान आकर्षित किया गया है। यह खूब उत्तेजना पूर्ण है। इसके बाद माताकी पुकार शीर्षक १०५ पद्यकी एक कविता है। इसमें निबन्धकी ही बातें दूसरे ढँगसे कही गई हैं। कविता कुछ शिथिल है—भाषा भी ठीक नहीं; परन्तु सर्वसाधारण जैनसमाजमें इसका प्रचार होनेसे लाभ होगा। अच्छा होता यदि यह पुस्तक श्रुत-पंचमीके समय लोगोंके पास पहुँच जाती। इसमें यदि यह भी बतलाया जाता कि जिनवाणीकी रक्षा और उद्धार किन किन उपायोंसे हो सकता है तो बहुत लाभ होता। इस तरहकी पुस्तकोंके प्रचार होनेकी बहुत आवश्यकता है।

श्रुतावतार आणि श्रुतपञ्चमी क्रिया। प्रकाशक–दोसी रावजी सखाराम शोलापुर। मूल्य तीन आना। इसमें इन्द्रनन्दिसूरिकृत श्रुतावतार (संस्कृत) मराठी टीकासहित, और श्रुतस्कन्धविधान, संक्षिप्त गद्यश्रुतावतार (अज्ञातनामा विद्वान्कृत) श्रुतभक्ति, तथा श्रुतपूजा ये चार ग्रन्थ मूलमात्र हैं। कोल्हापुरमें जो मूल श्रुतावतार पहले छपा था वह बहुत ही अशुद्ध था; परन्तु यह प्रायः शुद्ध है। इसका एक कनड़ी प्रतिकी सहायतासे संशोधन किया गया है। मराठी टीका भी अच्छी हुई है। सेठ रावजी भाईने इस ग्रन्थको शुद्धतासे प्रकाशित करके जैनसमाजका बहुत उपकार किया है। जैनसाहित्यका यह एक छोटासा इतिहास है। प्रत्येक विद्वान्को इसका स्वाध्याय करना चाहिए।

जैनतत्त्वप्रकाशक। सम्पादक–कुँवर दिग्विजयसिंहजी, बीधूपुरा, इटावा और प्रकाशक–चन्द्रसेन जैन वैद्य, इटावा। पृष्ठ संख्या ४०। वार्षिक मूल्य १॥)। यह इटावेकी जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाका मासिक मुखपत्र है। अब तक इसके चार अंक प्रकाशित हो चुके हैं। सभाके कार्यकर्त्ता और सम्पादक महाशय अच्छे उत्साही और कार्य करनेवाले हैं, इससे आशा है कि यह पत्र चल निकलेगा। हमको आशा नहीं थी कि इस कार्यको कुँवरसाहब इतनी योग्यतासे कर सकेंगे। सम्पादन अच्छा होता है। भाषा कुछ कठिन तो होती है पर शुद्ध और मार्जित होती है। इसके सम्पादकीय नोट बहुत अच्छे होते हैं। चौथा अंक हमारे सामने है। इसका शिक्षाशीर्षक लेख हमें बहुत ही पसन्द आया। भिन्नधर्मी विद्वानोंकी की हुई शंकाओंके समाधानमें पत्रका अधिक अंश रुक जाता है। इससे लाभ हो सकता है; परन्तु समाधानका ढँग अच्छा नहीं। जैसे संक्षिप्त प्रश्न होते हैं वैसे ही संक्षिप्त सूत्ररूप उत्तर

होते हैं। भले ही थोड़े प्रश्नोंका समाधान हो, परन्तु हो विस्तारपूर्वक। जैनधर्मका अनादिनिधनत्व कई अंकोंसे लिखा जा रहा है। इस अंकमें बाबू रामदयालजीकी वे ९९ बातें प्रकाशित की गई हैं जो उन्होंने भगवान् महावीर और गौतमबुद्धको एक सिद्ध करनेके लिए संग्रह की हैं और फिर उनको बहुत ही संक्षेपमें भ्रमपूर्ण बतला दिया है। हमारी समझमें उक्त निन्यानवे बातोंकी विस्तृत आलोचना होनी चाहिए थी और प्रत्येक बातकी असलियत क्या है यह प्रगट कर देना चाहिए था। इससे न केवल बाबू रामदयालका ही समाधान हो जाता किन्तु जैनियोंको भी बहुत लाभ होता। ये दो सूचनायें हमने केवल मित्रभावसे की हैं, आशा है कि सम्पादक महाशय इनपर विचार करनेकी कृपा करेंगे। जैनसमाजको चाहिए कि इस पत्रका आदर करे और इसकी ग्राहक संख्या बढ़ानेका प्रयत्न करे।

विवेकानन्दग्रन्थावली, द्वितीयखण्ड। प्रकाशक—कर्नाटक प्रेस, गिरगाँव, बम्बई। पृष्ठसंख्या ३००। मूल्य १॥) रु०। इस ग्रन्थावलीके प्रथमखण्डकी समालोचना जैनहितैषीमें पहले की जा चुकी है। अब दूसरा खण्ड प्रकाशित हुआ है। इसमें राजयोग और स्वामीजीके छह पत्र प्रकाशित हुए हैं। राजयोगके दो भाग हैं,—पहले भागमें स्वामीजीका वह व्याख्यान है जो उन्होंने न्यूयार्कमें छात्रोंके सम्मुख राजयोग विषयपर दिया था। इसमें प्राण, प्राणशक्ति, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदिका स्वरूप खूब स्पष्टतासे समझाया है। दूसरे भागमें पतञ्जलिके योगसूत्रोंकी टीका है। इसमें यह विशेषता है कि योगशास्त्रके पारिभाषिक शब्द नहीं आने पाये हैं। सूत्रका सामान्य अर्थ लिखकर पीछे जो विवेचन किया गया है, वह बहुत ही पाडित्यपूर्ण है। ऐसी टीकाओंसे ही पढ़नेवालोंको ग्रन्थका वास्तविक बोध होता

है। यह खण्ड पहलेसे भी अच्छा छपा है। कागज, छपाई, जिल्द आदि सब ही दर्शनीय हैं। जो लोग मराठी जानते हैं और योगशास्त्रपर जिनकी रुचि हैं उन्हें यह ग्रन्थ अवश्य मँगाकर पढ़ना चाहिए।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

१. जैनसमाजके जीवन मरणका प्रश्न।

जैनसमाजकी जनसंख्या बराबर घट रही है। गत मनुष्यगणनाके अनुसार पिछले दश वर्षोंमें तो वह इतनी घटी है कि सुनकर सारे जैनसमाजमें खलबली मच गई है। जिस छोटेसे समाजको केवल दश ही वर्षोंमें लगभग ८० हजार मनुष्योंसे हाथ धोना पड़ता है, उसमें खलबली मच जाना स्वाभाविक है। जैनसमाजके आगे इस समय उसके जीवन मरणका प्रश्न उपस्थित है। समय उससे पूछ रहा है कि—"कहो, तुम्हें जीते रहना है या सदाके लिए मृत्युकी गोदमें सो जाना है? तुम समझते होगे कि यदि हमारी जनसंख्या कम है तो हर्ज नहीं, वह इतनी ही बनी रहे पर अच्छी दशामें रहे। हम धनाढ्य तो हैं ही—शिक्षित और कर्तव्यपरायण और हो जावें तो बस हमें और कुछ नहीं चाहिए—संख्यामें कम रह कर भी हम अपने पूर्वजोंके नामको बनाये रहेंगे। परन्तु मैं तुम्हारी इस इच्छाको सफल न होने दूँगा। तुम्हारी जनसंख्यापर मैंने हाथ साफ करना शुरू कर दिया है—प्रत्येक दश वर्षमें मैंने तुमसे पौन लाख आदमी छीननेकी प्रतिज्ञा की है! कहो, इससे बचनेका तुम्हारे पास क्या उपाय है?" जैनसमाज चिन्तातुर हो रहा है कि इसका क्या उत्तर दिया जाय। एक बार तो उसकी इच्छा होती है कि समयके अन्य प्रश्नोंके समान मैं इसको भी

चुपचाप पी जाऊँ—कुछ भी उत्तर न दूँ; परन्तु जब वह इस प्रश्नकी गुरुतापर विचार करता है—देखता है कि यह उसके जीवन मरणका प्रश्न है तब बड़ी ही करुणदृष्टिसे इधर उधर ताकता है। वह जानता है कि इस भयंकर क्षयका प्रधान कारण यह है कि जातिबन्धनने मेरे शरीरकी अंगुल अंगुल जगहको बड़ी निर्दयतासे जकड़ रक्खा है। इससे सारे शरीरमें स्वैर—विहार करनेवाले जीवनप्रद रक्तका संचार बन्द हो गया है और एक शरीरमें रहकर भी ये मेरे अंग एक दूसरेको कुछ भी सहायता नहीं दे सकते हैं। इसीसे मेरी जीवनी शक्ति कम होती जाती है। परन्तु जानकर भी वह इसे स्पष्ट शब्दोंमें कह डालनेमें कुशल नहीं देखता। उसकी शिक्षासम्बन्धी अवस्था अच्छी नहीं है—उसकी नैतिक अवस्था भी शोचनीय है, उसके आगे सैकड़ों आवश्यक कार्योंका ढेर पड़ा हुआ है—उन्नतिके मार्गमें पैर बढ़ानेकी अभी तो उसे केवल इच्छा ही हो रही है। ऐसे समयमें जातिभेद जैसे विवादग्रस्त विषयमें कुछ कह डालना वह अच्छा नहीं समझता। वह जानता है कि इस विषयमें जरा ही कुछ कहा कि एक बड़ी भारी अशान्ति खड़ी हो जायगी; परन्तु जब जीवन और मरणकी बात है तब वह चुप कैसे रह सकता है? प्रत्येक समाजके लिए जीवन और मरणका प्रश्न सबसे बड़ा है। यदि वह स्वयं ही जीता न रहा—उसका अस्तित्व ही न रहा, तो फिर सब ही व्यर्थ है। लाचार अपनी रक्षाके लिए—अपने जीवनके प्रबल मोहके कारण वह अशान्ति, निन्दा, गाली गलौज आदि सबकी उपेक्षा करके कहता है कि "मैं अपने इन निगड़ बन्धनोंको खोल दूँगा। बस, इनके खुलते ही सिरसे पैरोंतक सारे शरीरमें एक ही रक्त दौड़ने लगेगा और जहाँ कहीं थोड़ी भी दुर्बलता या शिथिलता देखेगा वहीं जाकर उस अंगको पुष्ट और कार्यक्षम

बनाने लगेगा। बस, इससे मेरी जीवनी शक्ति तीव्र हो जायगी और समय मित्र! यही मेरे जीते रहनेका उपाय है!"

२. वर्णभेद और जातिभेद।

गताङ्कमें हमने विद्वानोंका ध्यान वर्णभेद और जातिभेदके विषयमें विचार करनेकी ओर आकर्षित किया था। यद्यपि वर्णभेद और जातिभेदका प्रश्न प्रायः एक ही कोटिका है; परन्तु जैनियोंके लिए वर्णभेदके प्रश्नका हल करना जितना कठिन है, उतना जातिभेदका नहीं है। एक तो इस बातका निश्चय करना—पता लगाना ही बहुत कठिन है कि वर्णभेद वास्तवमें जैनधर्ममें था या देशकालकी परिस्थितियोंके अनुकूल जैनियोंने उसे दूसरोंसे उधार ले लिया हैं। दूसरे वह इतना पुराना है—उसकी जड़ें हमारे रक्तमांसमें इतनी गहरी पहुँच गई हैं कि उन्हें एकाएक उखाड़ डालना बहुत ही कष्टसाध्य है। इसके सिवा जैनियोंमें प्रायः वर्णभेद है ही नहीं। थोड़ेसे लोगोंको छोड़कर सब ही जैनी वैश्यवर्णके हैं। इस लिए वर्तमानमें उनके लिए यह विशेष महत्त्वका और आवश्यक प्रश्न भी नहीं, परन्तु जातिभेदके विषयमें यह बात नहीं है। यदि जैनसमाज चाहे तो वह जातिभेदके बन्धनोंको तोड़ सकता है। क्योंकि एक तो जैनधर्मके आर्ष ग्रंथोंमें इसका कहीं पता नहीं—जैनग्रंथ इसे एक लोकाश्रित आचारकी अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं दे सकते—यह आधुनिक भी है और दूसरे जैसा कि पहले नोटमें कहा गया है वर्तमानमें यह जैनियोंके जीवन मरणका प्रश्न है। अर्थात् यदि जैनी अपनेको इस जातिभेदके चुंगलसे न बचावेंगे तो धीरे धीरे उनका क्षय अवश्यंभावी है। इसलिए हमारी समझमें जैन-समाजको सबसे पहले जातिभेदके प्रश्नको ही अपने हाथमें लेना चाहिए। इस विषयको इस खयालसे दबा रखना कि इससे लोग

भड़क उठेंगे अथवा समाजमें अशान्ति खड़ी हो जायगी—वैसा ही है जैसा कि घरमें सब ओरसे आग लगी हुई देखकर भी इस डरसे उसे नहीं बुझाना कि कहीं बुझाते समय आगकी एकाध लपट न लग जाय !

३. जातिभेद और आपद्धर्म।

जैनियोंकी चौरासी जातियां बतलाई जाती हैं; परन्तु तलाश करनेसे मालूम हुआ है कि पीछे अनेक भेद उपभेद आदि होते जानेके कारण इनकी संख्या और भी अधिक हो गई है। ऐसी बहुतसी जातियोंका पता लगता है जिनका नाम उक्त ८४ जातियोंमें नहीं मिलता। इसके सिवा अब भी नई नई जातियां बनती जाती हैं। प्रायश्चित्तादि देकर शुद्ध करनेकी रीति उठ जानेसे ज्यों ही कोई आदमी अपराध करता है और अपनी जातिमें प्रवेश करनेका द्वार न पाकर अपने ही जैसे दश वीस आदमियोंको और पालेता है त्यों ही अपनी एक नई जाति बनाके बैठ जाता है। यदि यह क्रम बराबर जारी रहा तो जातिभेदके प्रेमी देखेंगे कि थोड़े ही समयमें उनका यह जैनसमाज हजारों जातियोंकी सम्पत्तिसे समृद्ध हुआ दिखलाई देगा। यदि हमारी ये सारी जातियां यथेष्ट जनसंख्याको लिये हुए होतीं अर्थात् हमारी प्रत्येक जातिकी जनसंख्या इतनी होती कि उसमें प्रत्येक विवाहयोग्य युवक या पुरुषको यथेष्ट कन्यायें मिल जातीं—कन्याओंके न मिलनेका दुःख किसी जातिके पुरुषको न उठाना पडता, तो इस समय हमें जातिभेदको तोड़नेकी ऐसी कुछ विशेष आवश्यकता न थी। जातिभेदके होनेसे हमें चाहे जितनी असुविधायें भोगनी पड़तीं उन्हें भोगनेके लिए हम तैयार थे; परन्तु हम देखते हैं कि खंडेलवाल, अग्रवाल, परवार, सेतवाल आदि दश पांच जातियोंको छोड़कर—जिनकी

जनसंख्या अच्छी है—शेष जातियाँ बहुत ही दुखी हैं। उनमें अविवाहितोंकी संख्या बढ़ती जाती है और क्षयके लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। वदनेरा, कठनेरा, पुराने बिनैकया, गंगेरवाल, सुनाबार, पँचबिसे, गोलालारे आदि बीसों जातियां तो ऐसी हैं जिनकी संख्या केवल सौ सौ दो सौ दो घरों तक आ पहुँची है! आजसे ५० वर्ष पहले उनकी जितनी संख्या थी, इस समय उससे तीन चौथाई या आधी आधी ही रह गई है। अर्थात् नाश उनके बिलकुल समीप आ पहुँचा है। ऐसी अवस्थामें हम अपने जातिभेदके प्रेमी महाशयोंसे पूछते हैं कि जिस तरह जातिभेदकी रक्षा करना आप अपना धर्म समझते हैं उसी तरहसे क्या इन जातियोंको नष्ट होनेसे बचाना भी आपका धर्म नहीं है? यदि आपका जातिभेद पुराना है—आपके पूर्व पुरुष उसको पहलेसे पालते चले आ रहे हैं तो यह जैनधर्म भी तो आपका नया नहीं है—यह भी तो पुराना है। इसकी रक्षा करनेको भी तो आपके पुरुपाओंने धर्म माना है। जब धर्मके धारण करनेवालोंका ही क्षय हो रहा है, तब आपका धर्म भी तो क्षयसे नहीं बच सकता। एक तो जातिभेदके लिए जैनग्रन्थोंमें कोई आधार ही नहीं मिलता; पर यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि जातिभेद बनाये रखना धर्मका एक अंग है, तब भी तो आपको इस अंगके और प्रधान धर्मके आधारभूत लाघव गौरवपर विचार करना चाहिए। मनुष्यको खास खास वक्तोंमें आपद्धर्मका भी तो सहारा लेना पड़ता है। समन्तभद्रस्वामीको जिस समय भस्मकव्याधि उत्पन्न हुई थी उस समय उन्होंने क्या किया था? उन्होंने सोचा था कि यदि धर्म करनेका साधन शरीर बना रहेगा, तो चारित्रको मैं फिर धारण कर लूँगा—इस समय तो मुझे शरीरकी और सम्यक्त्वकी रक्षा कर लेनी

चाहिए। इसीको आपद्धर्म कहते हैं। यदि जातिभेदको तोड़ना बुरा ही है, तो भी इस आपत्तिके समयमें—ऐसे समयमें जब कि धर्मकी आधारभूत जातियाँ ही रसातलको जा रही हैं—उन्हें बचाये रखनेके लिए इस आपद्धर्मका अवलम्बन करना जैनसमाजका अवश्य कर्तव्य है। यदि जैनी ऐसा करनेके लिए तैयार न हों तो कहना होगा कि वे अपने धर्मका अतिक्रम कर रहे हैं। स्वामी समन्तभद्रने इसी अभिप्रायको लेकर कहा है कि—

> " स्मयेन्योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
> सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना॥ "

अर्थात् "(पूर्व श्लोकमें कहे हुए) जाति आदिके मदसे गर्वित होकर—यह खयाल करके कि यह नीच जातिका है और मैं उच्च जातिका हूँ अथवा यह मूर्ख निर्धन आदि है और मैं ज्ञानी, धनी, बली आदि हूँ—जो किसी जैनधर्ममें स्थित पुरुषकी अवहेलना करता है वह अपने धर्मका उल्लंघन करता है। क्योंकि जब धार्मिक या धर्मके धारण करनेवाले ही न रहेंगे तब धर्म कहाँ रहेगा? इस लिए अपने धर्म भाइयोंकी अवहेलना न करनी चाहिए—सब प्रकारसे आश्रय देकर उनकी रक्षा करनी चाहिए।" जिस समय जैनी धर्मके इस रहस्यको समझते थे और जातिको केवल एक व्यवहारोपयोगी वस्तु समझते थे—गर्व करनेकी चीज न समझते थे तब वे इसका पालन भी करते थे। खंडेलवालोंने अपने पड़ौसकी बीजावर्गी जातिकी रक्षा इसी धर्मवात्सल्यके वशवर्ती होकर की थी और उसे सदाके लिए अपनेमें मिला ली थी। जब उन्होंने देखा कि यदि बीजावर्गियोंको हम सहारा नहीं देते हैं तो ये जातिव्यवहारकी परतंत्रतामें पड़कर अजैन हो जावेंगे, तब उदार होकर अपनी जातिमें शामिल कर लिया। जैनसमाजके जीवित समय-

के इतिहासमें ऐसे एक नहीं बीसों उदाहरण मिलेंगे। पर शोक है कि वर्तमान जैनसमाज उनसे कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। अपना नाश अपनी आँखोंके आगे देखता हुआ भी वह टससे मस नहीं होता।

४ प्रयत्न क्रम क्रमसे करना चाहिए।

सम्पूर्ण जैनजातियोंको मिलाकर एक बड़ी भारी जाति बनानेके विषयमें सबसे अधिक विरुद्धता उन जातियोंकी होगी जिनकी कि जनसंख्या यथेष्ट है और जिन्हें कन्यायें ढूंढनेमें विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ता। क्यों कि जब तक मनुष्यको आवश्यकताओंकी गहरी ताड़ना नहीं होती है तब तक वह किसी भी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होता है। यद्यपि कुछ समयमें उन्हें भी इसकी आवश्यकता प्रतीत होगी—मन्दगतिसे क्षय उनमें भी प्रवेश कर रहा है; तो भी अभी उन्हें एक तरहकी निश्चिन्तता है। पर अल्पजनसंख्यक जातियोंमें इसका अधिक विरोध न होगा। अपने पुराने विश्वासोंके कारण और भाग्यावलम्बनके कारण यद्यपि उनमें भी विरोधियोंकी कमी न होगी; परन्तु यदि प्रयत्न जारी रहेगा तो आवश्यकताकी ताड़नासे उनका सिर जल्दी नीचा हो जायगा। इस लिए सबसे पहले ऐसी ही जातियोंके शिक्षितोंको इस विषयमें प्रयत्न करना चाहिए। बड़ी जातियोंके मुँहकी ओर ताकते रहनेका अब समय नहीं है। बड़ी जातियां उनके कष्टको जान भी नहीं सकती हैं। "जाके पाँव न फटी बिंबाई, सो क्या जाने पीर पराई।" यह प्रयत्न जितनी ही धीरता और बुद्धिमत्तासे किया जायगा उतनी ही जल्दी इसमें सफलता होगी। पहले तो जातिके अन्तर्गत भेदोंको मिटाना होगा। अर्थात् देशभेदके कारण अथवा दूसरे किसी कारणसे एक एक जातिकी जो कई कई जातियां बन गई हैं उन्हें मिलाना चाहिए।

जिस तरहसे बरार प्रान्तके पद्मावती पुरवार और उत्तरहिंदुस्थानके पद्मावतीपुरवारोंमें अभी कुछ समय पहले कन्याव्यवहार शुरू किया गया है। दिगम्बरजैनके सम्पादक महाशयने दशा हूमड़ और बीसाहूमड़ोंके मिलानेका प्रयत्न शुरू किया है। पिछले अंकसे उन्होंने इस विषयमें दोनों शाखाओंके लोगोंकी सम्मतियां प्रकाशित करना शुरू कर दी हैं। इसके बाद प्रत्येक अल्पसंख्यक जातिको अपने पड़ौसकी जातियोंसे जिनके कि उसके ही समान अल्पसंख्यक घर हैं मिलनेका यत्न करना चाहिए। यदि पड़ौसमें ऐसी कोई जाति न हो तो दूर देशमें भी खोज करनी चाहिए। इस तरह क्रम क्रमसे इस कार्यमें अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

५ उद्योगियोंकी जरूरत है।

इस कामके लिए प्रत्येक जातिमें दो दो चार चार उद्योगियोंके खड़े होजानेकी जरूरत है। सबसे पहले उन्हें अपनी अपनी जातिकी दशाका समाचारपत्रोंके द्वारा सबको ज्ञान कराना चाहिए। यह बतलाना चाहिए कि हमारी जातिके इतने घर हैं, इतने मनुष्य हैं, अमुक अमुक जिला या प्रान्तमें हमारी जातिके लोग हैं, उनमें इतने अविवाहित हैं इतने विवाहित हैं, इत्यादि। सच पूछा जाय तो अभी तक हम अपनी जातियोंकी दशाओंसे एक प्रकारसे बिलकुल ही अज्ञान हैं और यही अज्ञानता ही हममें इस कार्यकी उत्तेजना उत्पन्न नहीं कर सकती। इसके बाद जिस जिस जातिके लोग मिलनेके लिए राजी हों उनमेंसे सौ सौ पचास पचास लोगोंकी सम्मतियाँ लेकर प्रकाशित करनी चाहिए। यद्यपि प्रत्यक्षमें इन सम्मतियोंका लाभ नहीं दिखता; परन्तु वास्तवमें इनका बहुत असर पड़ता है। इसके बाद जातीय मेलेंमें तथा और दूसरे सम्मेलनोंमें इस विषयकी चर्चा उठानी चाहिए-लोगोंको समझाना चाहिए और भले ही इसका तत्काल फल पानेकी

कोई आशा न हो; परन्तु जातिके प्रत्येक मनुष्यके कानपर यह बात डाल देनी चाहिए। इस तरह धीरे धीरे सतत प्रयत्न करते रहनेसे आज नहीं पर दश वीस वर्षोंमें इस उद्योगमें अवश्य सफलता प्राप्त होगी और जैनसमाज एक बड़े भारी अनिष्टको टालनेमें समर्थ हो जायगा।

६ एक जातिकी दुर्दशा।

मध्यप्रदेशके दमोह जिलेमें पँचविसा नामकी एक जाति है। डांकखाना पटेरा, जिला दमोहमें जानकीप्रसादजी बड़कुर नामके सज्जन इस जातिके मुखिया हैं। उनसे मालूम हुआ है कि पँचविसोंके इस समय सब मिलाकर ६०–७० घर हैं। अविवाहित बहुत हैं। विवाहसम्बध बहुत ही समीपका होने लगा है। लोग लाचार होकर एकाध पीढ़ीको बचाकर मामा फूफा तकके लड़के लड़कियोंका सम्बन्ध कर लेते हैं। जातिका न्हास बहुत तेजीसे हो रहा है। बड़कुरजी कहते हैं कि मेरे विवाहके समय ही पँचविसोंके कई सौ घर थे! दमोहके आसपास ही एक गोलालारा नामकी जाति है। उसके भी वहाँ बहुत थोड़े घर हैं। इसलिए इन दोनों जातियोंके लोग आपसमें मिलना चाहते हैं; परन्तु अड़चन इसमें यह है कि यदि ये दोनों जातियाँ मिल जायँगी तो शायद वहाँके गोलापूरव और परवार उनके साथ भोजनव्यवहार करना छोड़ देंगे। गत चैत वदी १४ को कुण्डलपुरके मेलेके समय बड़कुरजीने परवार और गोलपूरव भाइयोंसे प्रार्थना की थी कि यदि आप लोग हमसे पहले जैसा व्यवहार रखना स्वीकार करें तो हम गोलापूरवोंसे सम्बन्ध कर लें। परन्तु इन दुखी जातियोंपर किसी भी धर्मात्माको दया न आई! स्वीकार करना न करना तो दूर रहा किसीने बात भी नहीं सुनी!! पाठक, देखिए करुणा और निष्ठुरताका यह कैसा हृदयविदारक दृश्य है! इसपर भी

जैनियोंको अभिमान है कि हम दयाधर्मके पालनेवाले हैं—वात्सल्य हमहींमें है और स्थितिकरणका हमारे धर्ममें उपदेश दिया है! पँच-विसे और गोलालारे भाइयो! यदि तुम्हें संसारमें अपना अस्तित्व रखना है और तुममें निजकी भी कोई शक्ति है तो अब तुम इन धर्मात्माओंके मुँहकी ओर मत ताको। इनके पवित्र अन्नके मोहको छोड़ दो (इनके साथ भोजनपान न कर सकोगे तो तुम छोटे न हो जाओगे—यदि तुम अच्छे बननेका प्रयत्न करोगे तो इनके साथ न खानेपर भी इनसे ऊँचे हो जाओगे।) और दोनों परस्पर मिल जाओ। तुम्हारे इस मिलापसे न केवल तुम्हारा ही भला होगा, वरन् दूसरी दुखी जातियाँ भी तुम्हारा अनुकरण करनेका उत्साह पाकर अपना कल्याण करनेमें समर्थ होंगी।

७. परवारोंका चार सांकोंका प्रस्ताव।

कुण्डलपुरके उक्त मेलेमें ही चैत वदी १४ को एक सभा हुई थी। सभापतिका आसन दमोहके सेठ लालचंदजीको दिया गया था। उप-स्थित लोगोंकी संख्या लगभग एक हज़ार थी। इस सभामें जाति-सम्बन्धी कई प्रस्तावोंके साथ यह प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया था कि परवारोंमें आठ सांकोंके स्थानमें चार सांकें मिलाकर विवाहस-म्बन्ध किया जाय। कई लोगोंने इसका समर्थन और कईने प्रतिवाद किया। झगड़ा बढ़ते देखकर आख़िर यह बात करार पाई कि इस विषयमें अनुकूल और प्रतिकूल मतवालोंके वोट ले लिये जायँ। जब कहा गया कि जिन भाइयोंको आठ सांकें रखना ही पसन्द हों वे खड़े हो जावें तब केवल एक ही सज्जन खड़े हुए और जब चार सांकोंके अनुयायियोंसे खड़े होनेको कहा गया, तब चालीस आदमी खड़े हो गये! अब फैसला सुनानेका मौका आया। सभापतिसाहब बड़ी कठिनाईमें पड़े। अन्तमें उपाय न देखकर उन्होंने यह आज्ञा

लिखकर सुनाई कि इस विषयमें आज रात्रिकी सभामें फिर विचार किया जायगा। दर असलमें यह एक प्रकारकी टालटूल थी। क्योंकि उस दिन जलेब थी, इसलिए शामको जलेब होनेके बादही अधिकांश लोग चले गये और फिर सभा न हो सकी। इस घटनासे हम देखते हैं कि परवार जातिमें चार सांकोंका आन्दोलन बराबर बढ़ता जा रहा है और इसके अनुकूल विचार-वालोंकी संख्या भी बराबर बढ़ती जा रही है। इससे परवार जातिके शिक्षितोंको इस विषयमें और भी अधिक उत्साहके साथ चर्चा, व्याख्यान, लेखादिके द्वारा इस आन्दोलनको जारी रखना चाहिए। सच्चे उद्योगियोंके आगे सफलता हाथ जोड़े खड़ी रहती है।

८ पालीताणामें भयंकर जलप्रलय।

जैनियोंके सुप्रसिद्ध तीर्थ पालीताणेमें गत ता० ११ की रातको बड़ा ही भयंकर जलप्रलय हो गया। उसका करुणाजनक समाचार सुनकर पाषाणहृदय पुरुषोंकी आंखोंमें भी पानी आये बिना नहीं रह सकता। उस दिन सन्ध्यासे ही पानी बरस रहा था। लोग अपने अपने घरोंमें निश्चिन्ततासे सो रहे थे। आधीरातके समय इस जोरसे पानी बरसना शुरू हुआ कि सारे शहरमें पुरुषाओं पानी भर गया। नदीका पूर भयंकर रूप धारण करने लगा। धीरे धीरे मकानोंमें पानी भरने लगा। एकाएक लोगोंकी नींद टूटी। इधर मकान धड़ाधड़ गिर कर बहने लगे। जो मकान कई मंजिलोंके थे, उनमें लोग ऊपरके मंजिलोंपर जाने लगे। परन्तु थोड़ी ही देरमें वहां भी पानी बढ़ आया। तब जिनसे बन सका, उन्होंने ऊँचे वृक्षोंका आश्रय लिया। सब मिलाकर लगभग हजार मनुष्य इस प्रलयमें लय हो गये! पशुओं और दूसरे जीवोंका तो कुछ हिसाब ही नहीं। वहांकी दो जैनसंस्थाओंकी दशा तो बड़ी ही हृदयविदारक हुई है। जैनविधवाश्रममें जो २४ स्त्रियाँ थीं वे सबकी सब इस नश्वर

शरीरको छोड़ गई। बेचारी अबलाओंसे अपनी रक्षाका कोई भी उपाय नहीं बन सका। आश्रममें एक पीपलका झाड़ था; परन्तु उन्हें उसपर चढ़नेका साहस न हुआ। इसी तरह जैन बोर्डिंग हाउसकी भी दशा हुई। उसके १७ विद्यार्थी जिनसे जैनसमाजको बड़ी भारी आशा थी–जलमग्न हो गये। बोर्डिंगके सेक्रेटरी श्रीयुक्त कुँवरजी भाईने इस समय जो स्वार्थत्याग और समयसूचकताका कार्य किया है वह जैनियोंके लिए अभिमान एवं गौरवका विषय है। उन्हें ज्यों ही इस प्रलयकाण्डका संवाद मिला, त्यों ही उन्होंने अपने पास ही पड़े हुए स्त्रीपुत्रको देखकर यह चिन्ता की कि अब मुझे क्या करना चाहिए। पर अन्तमें मोह छोड़कर, उनको बचानेकी परवा न करके सबसे पहले विद्यार्थियोंकी रक्षा करनेका ही उद्योग किया! कुँवरजीभाईने अपूर्व साहस और प्रयत्नसे उस समय जब बोर्डिंगके कम्पौन्डमें छातीसे भी ऊँचा पानी भर गया था १९ विद्यार्थियोंको पीठपर लाद लाद कर और तैर तैर कर एक नीमके झाड़पर चढ़ाया और उन्हें मृत्युके मुखसे जबर्दस्ती निकाल लिया। इसके बाद उन्होंने देखा कि अब कुछ नहीं हो सकता–उनकी प्यारी स्त्री, पुत्र और शेष विद्यार्थी उनके देखते देखते जल-समाधि ले गये! कुँवरजी भाई, तुम धन्य हो! इस स्वार्थमय जगतमें निःस्वार्थ कर्तव्य करके तुमने दिखला दिया है कि जैनियोंकी परार्थपरता अब भी सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है। पाठको, पालीताणा इस समय बड़ी दुर्दशामें है। हजारों लोग घरद्वारविहीन होकर पेटकी ज्वालासे जल रहे हैं। यदि आपको कुछ दया आवे तो अपनी शक्तिके अनुसार इन लोगोंकी कुछ सहायता करो। वहांके जैनधर्मविद्याप्रसारक-वर्गने इसके लिए एक फण्ड खोला है। आप जो कुछ सहायता भेजना चाहें, उसके पास भेज सकते हैं। जैनमित्र आफिसमें भी एक फंड खोला गया है।

"अहिंसा परमो धर्मः।"

अहिंसा

अर्थात्

जीवमात्रके प्रति मैत्रीभाव।

जैनधर्ममें अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह ये पांच व्रत कहे गए हैं। इनके पालन करनेसे आत्माका निज-स्वभाव प्रकट होता है, आत्मा पवित्र होती है और संसारमें पाप कम होता है। निश्चयसे अहिंसा सर्व धर्मका मूल है। "अहिंसा परमो धर्मः" जैनधर्मका मुख्य मन्त्र है। "दयाधर्मका मूल है" यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

शेष चार धर्म अहिंसा धर्मके पोषक हैं। उनके पालन करनेसे अहिंसा धर्मका पालन होता है। अब यह विचारणीय है कि अहिंसा क्या है। अहिंसाका अर्थ है हिंसा न करना। प्रमाद या कषा-यके वश किसी जीवके मारने या प्राणघात करनेको हिंसा कहते हैं। हम देखते हैं कि इस जगतमें मनुष्य, क्रोध, मान, माया, लोभ, अथवा प्रमादके वशीभूत होकर दूसरे जविके प्राणोंका घात करता है। यह हिंसा है। और अपने आपको इस तरह वशमें करना कि दूसरे जीवोंके घात करनेके भाव अर्थात् प्रमाद अथवा कषाय उत्पन्न न हों, यही अहिंसा है।

अब यह प्रश्न है कि हिंसा क्यों वर्जनीय है और इससे क्या हानि है? यह जाननेके लिए पहले हमें यह समझना चाहिए कि आत्मा क्या है, उसका निजस्वभाव क्या है और उसका अन्तिम-

स्थान क्या और कहां है? संसारी आत्मा रागद्वेषके कारण कर्म्मों-के बन्धनमें है, इसी कारणसे उसमें पूर्णज्ञान नहीं है। वह केवल इन्द्रियों द्वारा कुछ पदार्थ जानती है; परन्तु आत्माका निजस्वभाव भूत, भविष्यत्, वर्तमानकालके समस्त पदार्थोंको उनकी समस्त पर्य्यायों सहित एक साथ, एक समयमें, देखने जाननेका है। विज्ञत्त्व आत्माका स्वभाव है। यही परमात्मस्वरूप है, इसीको प्राप्त कर-नेका संसारी जीवका उद्देश्य है। अतएव स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि वह क्या चीज है जो संसारी आत्माको इस परमा-त्मस्वरूपके प्राप्त करनेसे रोकती है? वे राग, द्वेष, तथा अन्य कषायें हैं जो परमात्मस्वरूपके प्राप्त करनेमें बाधक हैं और चूंकि जीवोंको कष्ट देने या उनके वध करनेमें मारनेवाले, और मरनेवाले दोनोंकी आत्मामें कषायें जरूर पैदा होती हैं जिनके कारण वे दोनों परमात्मस्वरूपसे पीछे हट जाते हैं। अतएव हिंसा वर्ज-नीय और घृणित है। यदि आप सत्यकी खोजके अभिप्रायसे दीर्घ दृष्टिसे देखें तो आपको ज्ञात होगा कि जो दूसरोंका घात करना चाहता है वह दूसरोंका घात करनेसे पहले अपना ही घात करता है। क्योंकि निश्चयसे आत्माको परमात्मस्वरूपसे डिगाना या हटाना महती हिंसा है। यह एक सर्वमान्य बात है कि जब क्रोध, मान, माया, लोभ आदि बुरे विचार किसीके मनमें प्रवेश करते हैं तब वह अन्धा हो जाता है और निज ज्ञानको खो देता है और निज ज्ञानको खोना महती हिंसा है। जब मनुष्य अपने उदरपोषण अथवा जिह्वाके स्वादके लिए दूसरे प्राणीका वध करता है और उसका मांस खाता है तब उसके वध करनेके पहले यदि शरी-रापेक्षा नहीं किन्तु आत्मापेक्षा तो अवश्य वह अपना वध करता

है। ज़ब कोई व्यक्ति मांसके लिए किसी जानवरको मारना चाहता है तब वह अपने मनमें इस तरह सोचता है कि मैं उच्च जातिका जीव हूं और यह नीच जातिका। यदि मेरे लाभार्थ यह जीववध किया जाय तो कोई हानि नहीं है। परन्तु यह उसकी भूल है। वह आत्मा, और पुद्गलको एक समझता है–उसका विचार है कि जो चीज पुद्गलको लाभकारी है, वह आत्माको भी लाभदायक है। जब वह किसी जानवरका वध करके उसका मांस खाता है और बड़े उत्साहसे उसके स्वादकी प्रशंसा करता है तब वह स्वादके वशीभूत होकर अन्धा हो जाता है और विचारने लगता है कि यह स्वाद मेरी आत्माको भी लाभ पहुँचायगा; परन्तु यह उसकी भूल है। जो पुद्गलका गुण है वह आत्माका गुण नहीं हो सकता। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पुद्गलके गुण हैं ये कदापि आत्माके गुण नहीं हो सकते–ये गुण कभी आत्माके निजस्वभावको प्रकट नहीं कर सकते। आत्माके गुण ही आत्मामें स्वभावको प्रकट कर सकते हैं। संसारमें आत्मा परमात्मपदकी ओर जा रहा है। परमात्माके गुणोंका ध्यान आत्माकी शक्तिको बढ़ाता है और आत्माको परमात्माके निकट ले जाता है किन्तु संसारिक पदार्थोंसे राग और इन्द्रियजनक सुख, क्रोध, मान, माया, लोभादि कषाय आत्माकी शक्तिको घटाते हैं और परमात्मपदसे दूर हटाते हैं। जब कोई पुरुष मांसके लिए किसी जीवका वध करता है तब वह वास्तवमें दो आत्माओंको आत्मिक उन्नतिसे हटाता है और परमात्मपदसे पूर्वकी अपेक्षा उनको बहुत दूर कर देता है। कषाय करनेसे पहले वह अपने स्वभावको हनता है फिर अपने शिकार (जिस जीवको मारता है) के दिलमें कषाय

और दुःख पैदा करके उसकी आत्मा तथा उसके शरीरको हनता है।

बहुतसे वधक और मांसभक्षक अपने कृत्यको इस युक्तिद्वारा सिद्ध किया करते हैं कि यदि ये जानवर अपनी मौत मरते तो रोग, शोक, भूख इत्यादिके असह्य दुःख सहते किन्तु जब हमने क्षण-मात्रमें उनको मार दिया तो हमने उनको भूखरोगसे बचा दिया। यह युक्ति बड़ी पोच और निर्बल है और वे अपने जीवनमें इसके अनुसार कदापि नहीं कर सकते। प्रथम यदि वे जानवरोंको मारकर उनको दुःखोंसे बचाते हैं तो क्यों अपने माता, पिता, कुटुम्बके रोगियोंको रोगादिके कष्टसे नहीं बचाते ? इस सिद्धान्तानुसार उन्हें अपने सम्बन्धियोंको रोगादिके दुःख कदापि न सहने देना चाहिए, वरंच उनको तुरन्त मार देना चाहिए और यदि वे स्वयं बीमार हो जाएँ तो उसी समय उन्हें अपना गला काट डालना चाहिए अथवा अपने किसी सम्बन्धीसे कटवा डालना चाहिए। क्या आप समझते हैं कि यदि कोई पुरुष जबरदस्ती मारा जाय तो उसको रोग, शोक, निर्धनता आदि दुःखोंसे ग्रस्त हुए अपनी मौत मारनेकी अपेक्षा कम दुःख होगा ? किसी दशामें भी यह बात मान्य नहीं हो सकती। सिर्फ इतना ही भेद है कि तुरन्त मारे-जानेमें उसको थोड़ी देरके लिए तकलीफ होगी। किन्तु यह तकलीफ उस तकलीफसे कहीं ज्यादा है जो उस समय होती जब वह अपनी मौत मरता—चाहे वह रोग और बुढ़ापेसे ग्रसित होकर ही मरता। स्वाभाविक मौतसे मरते समय एक प्रकारकी शांति होती है और वह भय, दुःख बिलकुल नहीं होता जो जबरदस्तीकी मौतके साथ होता है। मारे जानेका विचार मात्र ही मनमें भय, और अशान्ति

उत्पन्न करनेके लिए काफी है। क्या आपने कभी जानवरोंको वधगृहमें जाते नहीं देखा है? क्या उनको चिल्लाते हुए, पीछे भागते हुए जगह जगह खड़े होते हुए, फिर फिर कर देखते हुए नहीं देखा है? जिससे जाहिर है कि वे उस जगह जो उनके रक्तप्रवाहके (मारे जानेके) लिए नियुक्त है जाना ही नहीं चाहते हैं। इन तमाम बातोंसे प्रकट है कि मारे जानेके कारण वे भयभीत और अशांत चित्त हो रहे हैं। इस प्रकार वधकोंकी और मांसभक्षकोंकी यह युक्ति कि जानवरोंको मार डालनेमें उन्हें अपनी मौत मरनेकी अपेक्षा कम दुख होता है, कदापि सत्य नहीं है। परन्तु यदि मान भी लिया जाय कि यह सत्य है तब प्रश्न यह है कि ये लोग जानवरोंको उन्हें दुःखसे बचानेके अभिप्रायसे मारते हैं या मांस प्राप्त करने और अपने मनको प्रसन्न करनेके अभिप्रायसे? निसन्देह पिछले अभिप्रायसे मारते हैं। वधकों व मांसभक्षकोंका जानवरोंका मारना किसी दशामें भी दया या उदारताका कारण नहीं है, किन्तु यह उनके महास्वार्थका कारण है। स्वार्थके अभिप्रायसे वे बेचारे निर्बल प्राणधारियोंके प्राण हनते हैं और स्वार्थके दास होकर ऐसी ऐसी युक्तियाँ घड़ते हैं जिनपर कभी किसी विचारशील निस्स्वार्थी व्यक्तिको विश्वास नहीं हो सकता।

जैनसिद्धान्तमें हिंसा दो प्रकारकी मानी है—१ भावहिंसा और २ द्रव्यहिंसा। काम, क्रोध, लोभ, मान, मायाका आत्मामें उत्पन्न होना और इससे आत्माकी ज्ञानशक्तिका नाश होना भावहिंसा है और आत्माका वर्तमान शरीरसे पृथक् करना द्रव्यहिंसा है। जब कोई पुरुष द्रव्यहिंसा करता है तो वह भावहिंसाका तो अवश्य ही भागी होता है क्योंकि दूसरेके मारनेका विचार कर

नेसे पहिले उसके मनमें स्वार्थादिकके भाव उत्पन्न होते हैं। इस तरह पहले वह निज स्वभावका नाश करता है और निजात्मापेक्षा भावहिंसाका भागी होता है, पीछे जब दूसरेका घात करता है तो घात होनेवालेकी आत्मापेक्षा भावहिंसा, द्रव्यहिंसा दोनों करता है। क्योंकि पहले उसकी आत्मामें भय, दुख, अशांति पैदा करता है फिर उसको उसके वर्तमान शरीरसे पृथक् कर देता है। इस कारणसे जैनमतमें हिंसा महान् पाप समझा जाता है, क्योंकि हिंसा आत्मिक उन्नतिमें बाधक है और हिंसक आत्मा निजस्वभाव अर्थात् सर्वज्ञत्वसे बहुत पीछे हट जाती है। संसारी आत्मा अपने पूर्ण ज्ञान, सर्वज्ञत्व स्वभावकी ओर जा रही है, परंतु हिंसा उसे मार्गसे हटा देती है। इसका उदाहरण इस तरह हो सकता है कि मान लो किसी पुरुषको १००० मील जाना है, जब वह ९०० मील जा चुका है तब आप उसे ४०० मील पीछे हटा देते हैं या दूसरे मार्गपर लगा देते हैं जहांसे उसके पहुँचनेका स्थान बहुत दूर है; तो क्या ऐसा करना पाप नहीं है?

इसपर बहुतसे आदमी यह कहा करते हैं कि हिंसाके कारण जीव-वधको बुरा कहना तो ठीक है परन्तु हिंसासे बच कौन सकता है? क्या वनस्पतिमें जीव नहीं है? क्या वनस्पति चीड़ने फाड़नेमें हिंसा नहीं होती है? जैनी लोग भी जब सब्जीको तराशते, खाते हैं तब हिंसाके भागी होते हैं। इसका उत्तर यह है कि शाक सब्जीके खानेमें जो हिंसा होती है वह बहुत हलकी हिंसा है। यह हिंसा उस हिंसाके समान कभी नहीं हो सकती जो जानवरोंके मारनेमें होती है। वनस्पतिमें आत्मा बहुत छोटे दर्जेपर है, उसकी शक्तियां बहुत थोड़ी हैं—उसका ज्ञान बहुत

कम है। उसके घात करनेसे आत्मा उस स्थानसे जहां पहुँच चुकी है बहुत नीचे नहीं उतरती। जैसे किसी पथिकको जिसे १००० मील चलना है, परंतु अभीतक केवल १ मील ही चला है, आप ९०१ गज पीछे हटा देवें। इसके सिवा जानवरोंकी आत्मा वनस्पतिकी आत्मासे बहुत ऊंचे दर्जेपर है और जब कोई जानवरका वध करता है तो उसको बहुत ज्यादा कषाय होती है। जानवरोंके मारनेमें मारनेवाले और मरनेवाले दोनोंकी आत्मापेक्षा बहुत ज्यादा भावहिंसा होती है। मांसखानेवाले और शाकखानेवालेके स्वभावमें वैसा ही अन्तर है जैसा बिल्ली (जो चूहोंको खाती है) और हरिनके (जो हरी मीठी घास खाता है) स्वभावमें होता है। मांसखानेवालोंकी यह युक्ति मनुष्य खानेवालोंकी इस युक्तिके सदृश है कि चूंकि जानवरोंके मारनेमें हिंसाका पाप होता ही है, इस लिए आदमियोंके मारनेमें कोई दोष नहीं है। परन्तु यदि कोई दीर्घ दृष्टिसे देखे तो उसे मालूम होगा कि मनुष्यके मारनेमें जानवरोंके मारनेकी अपेक्षा ज्यादा हिंसा होती है। मनुष्यकी आत्मा जानवरकी आत्मासे बहुत ऊंचे दर्जेपर है। जब कोई मनुष्यको मारता है तो उसके मनमें जानवरोंके मारनेकी अपेक्षा तीव्रतर कषाय होती है और अधिकतर भावहिंसा होती है। अतएव जिस तरह आदमीके मारनेमें जानवरोंके मारनेसे बहुत ज्यादा पाप है, इसी तरह जानवरोंके मारनेमें शाक सब्जीके चीड़ने फाड़नेसे कहीं ज्यादा भावहिंसा होती है। इस तरह प्रथम तो वनस्पतिमें हिंसा ही बहुत कम होती है इसपर भी जैनी लोग इस हिंसासे भी जहां तक हो सकता है बचते हैं। वे हरे वृक्ष नहीं काटते, ऐसे शाक सब्जी नहीं खाते जिनमें अधिक सूक्ष्म जीव होते हैं और जिनके खानेसे विषय कषाय होती है

जैनसिद्धान्त यह है कि जहां तक हो सके हिंसासे बचना चाहिए। जैनसाधु दो हाथ आगे जमीन देखकर नीचे दृष्टि किए हुए धीरे धीरे सावधानीसे पैदल चलते हैं, और श्रावक लोग भी जहां तक बनता है दूसरे जीवोंकी रक्षा करते हैं। रात्रिको खाते नहीं, छानकर पानी पीते हैं और अनाज वगैरह खानेकी चीजोंको शोध बीन कर खाते हैं। अभिप्राय यह कि जैनी लोग जीवमात्रके प्रति मैत्रीभाव रखते हैं। यथाशक्ति अपने लाभके लिए दूसरे प्राणधारियोंका घात नहीं होने देते। इसके सिवा पापका होना मानसिक भावोंपर निर्भर है। जैनी लोग सर्व जीवोंसे दयाभाव रखते हैं और कभी जान बूझकर अपनी कृतिसे किसी जीवको मरने नहीं देते और जहां तक हो सकता है अन्य प्राणियोंकी रक्षाका उपाय करते हैं। इस दशामें यदि किसीके द्वारा कोई मर जाय तो उसको कोई दोष नहीं हो सकता, क्योंकि पापका होना करनेवालोंके भावपर निर्भर है। जब किसीका भाव जीव-रक्षाका हो किन्तु दैवयोगसे वह जीव मर जाय तो वह दोषसे विनिर्मुक्त है।

जैनधर्मका मुख्य सिद्धान्त अहिंसा है। यह सभ्यता और सदाचारकी जड़ है और इसके पालन करनेसे आदमी बहुतसे पापोंसे बच जाता है परंतु कुछ लोग इसका यथेष्ट आदर नहीं करते। वे कहते हैं कि अहिंसा इनकारी धर्म है अर्थात् निषेधरूप धर्म है। हमको किसी इकरारी धर्मका पालन करना चाहिए किन्तु यह उनकी भूल है कि हिंसा केवल इनकारी शब्द होनेसे हम इसके असली गुणको भूल जावें। हमको यह सोचना चाहिए कि हमारा क्या कर्तव्य है? यदि हम निश्चयसे देखें तो हमको मालूम होगा कि अहिंसा पालन करनेमें हमको अपने मन, इन्द्रियोंको

वशमें करना होगा। शिकारी जङ्गलमें जाकर किसी सुन्दर हरि-नको खेतमें चरते हुए देखता है और तुरंत विचारता है कि इसका मांस बड़ा अच्छा और मजेदार होगा। उसके दिलमें मांसके लिए जानवरको मारनेकी तीव्र इच्छा होती है और वह उसको गोली मारनेको तैयार हो जाता है, परंतु यदि उस समय जैनसिद्धान्त-का खयाल आजाय तो उसके मनमें जरूर यह विचार होगा कि यद्यपि इस जानवरका मांस बड़ा अच्छा और मजेदार लगेगा और मेरे बदनको भी मोटा करेगा, परन्तु इससे मेरी आत्माकी हानि होगी। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, वर्ण पुद्गलके गुण हैं, इनसे आत्मा-की उन्नति नहीं होती। आत्माका स्वभाव ज्ञान और शांति है। मैं मांसके लोभ और शिकारके शौकके कारण आत्माके असली स्वभावका नाश करता हूं और परमात्मासे इसे कोसों दूर हटाता हूं। अपनी जीभके स्वादके लिए इस बेचारे बेजबान जानवरकी गर्दन मारता हूं और इसकी आत्मामें भय और दुःख पैदा करके इसकी उन्नतिमें बाधा डालता हूं। ऐसे विचारोंसे शिकारी अपनी इच्छा-ओंको रोक लेता है और इच्छाओंका रोकना एक महान् शत्रुको जीतना है। इच्छाओंका रोकना और इन्द्रियोंको वश करना बड़ा कठिन काम है। क्या हम अहिंसाको इनकारी शब्द जानकर छोड़ देगें? कदापि नहीं। अहिंसा सर्वोत्तम धर्म है। अगर आप न्यायपूर्वक देखें तो आपको मालूम हो जायगा कि अहिंसासे बढ़कर कोई धर्म और कोई सिद्धान्त नहीं हैं—अहिंसा परम धर्म है।

शायद कुछ पाठकगण यह कहेंगे कि मैं शुरूसे ही इस लेखमें जी-ववधके विषयमें लिख रहा हूं और मेरी तमाम युक्तियां इसीके खण्ड-नमें हैं; परन्तु झूठ बोलना, झूठी गवाही देना, जालसाजी करना,

दूसरेका माल ठग लेना, धोका देना इत्यादि बेइमानीके कामोंमें कहीं ज्यादा अधर्म है, इसलिए इन अधर्मके कामोंमें जो हिंसा होती है उसे छोड़ना चाहिए। जीववध करना या मांस खाना धर्मसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। उनका खयाल है कि खानेपीनेसे ईमान नहीं बिगड़ता। इसके जवाबमें मुझे इसके कहनेमें जरा भी संकोच न होगा कि निस्सन्देह झूठ बोलने, चोरी करने, दूसरोंका माल ठगने, जाल वगैरह बनानेमें हिंसा होती है किन्तु सबसे ज्यादा हिंसा जीव-वधमें होती है। उसमें भी आदमीके मारनेमें जानवरके मारनेसे कहीं ज्यादा हिंसा है। प्राचीन महर्षियोंने पाप पांच प्रकारके कहे हैं:—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। दुनियाभरके पाप इन्हीं पापोंमें आ सकते हैं। यद्यपि हिंसाको छोड़कर बाकी चारमें भी हिंसा होती है किन्तु मुख्य हिंसा जीववधमें ही है। झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह, आदि दुष्कर्म वर्जनीय हैं क्योंकि उनमें हिंसा होती है किन्तु दूसरेके प्राण नाश करनेमें महान् द्रव्य हिंसा है। मैं यह क्षणमात्रके लिए भी न कहूंगा कि अन्य पापकर्मोंमें हिंसा नहीं होती किन्तु साधारण हिंसाके लिए मुख्य हिंसासे उपेक्षा करना अनुचित है। कोई आदमी इस बातको न कहेगा कि झूठ, चोरी आदि जिनसे जातिकी हानि होती है कर लेनी चाहिए, किन्तु ऋषियोंके कथनानुसार यद्यपि उनमें हिंसा होती है तथापि द्रव्य हिंसा नहीं होती। जब कोई पुरुष स्वार्थ या इच्छाके वश दूसरे जीवोंके प्राणघात करता है तो वह द्रव्य हिंसा करता है। यह खयाल कि खानेपीनेसे ईमान नहीं बिगड़ता ठीक नहीं है। केवल खानेपीनेसे ही धर्मका सम्बन्ध नहीं है—बरन उठने, बैठने, बोलने, चलने, आदि विचारों, शब्दों और कार्य्योंसे भी है। खानेपीनेसे

धर्मपालन भी होता है और नष्ट भी होता है। यदि मैं अपने खानेके लिए दूसरे जीवोंको मारूं तो किस मुँहसे यह कह सकता हूं कि धर्ममार्गपर चल रहा हूं। यदि मैं अपना सफर पूरा करनेके खयालसे ऐसी वेपरवाहीसे चलूं कि जिससे दूसरे जीवधारियोंका घात हो तो क्या मैं कह सकता हूं कि अहिंसा धर्मका पालन कर रहा हूं? अहिंसा क्या है? जीवमात्रके प्रति मैत्रीभाव ही अहिंसा है। जिस किसीमें यह मैत्री,-यह भ्रातृभाव है वह संसारके कार्य्य करता हुआ भी अहिंसा धर्मका पालन कर रहा है।

अहिंसा तमाम धर्म और सच्चरित्रका सर्वोत्तम आदर्श है। दुनिया भरके मतोंके नीति और सिद्धान्त अहिंसाधर्मरूपी समुद्रकी तरङ्गें हैं। अपने पड़ोसीसे प्यार कर! अपने देशनिवासियोंसे प्यार कर! अपनी जातिसे प्रेम कर! ये सर्वोत्तम धर्म अहिंसाके ही मंत्र है। इनसे आगे चलकर "मनुष्यमात्रसे प्रेम करो" यह अहिंसाकी विशाल परिधिकी अंतरंग परिधि है। अहिंसा धर्मका उपदेश है कि किसी आत्माको दुःख मत दो—जीवमात्रसे प्रेम करो। वास्तवमें अहिंसा जीवमात्रसे भ्रातृभाव है। अहिंसा दयालुताकी सबसे बड़ी परिधि है और संसारमें जितने प्रेम और मित्रताके कार्य्य हैं वे इसीकी अंतरंग परिधि हैं। एक अपने कुटुम्बको प्यार करता है, दूसरा अपने पड़ोसीसे प्यार करता है, तीसरा अपनी जातिसे प्रेम करता है, चौथा अपने देशनिवासियोंसे प्रेम करता है चाहे वे उसकी जातिके हों या न हों। आगे बढ़कर एक साधू मिलता है वह कहता है कि "मनुष्यमात्रसे प्रेम करो!" यह संसारके मनुष्यमात्रसे प्रेम करना सिखलाता है और सारे संसारके साथ भलाई करता है। इससे आगे बढ़कर सबसे

ऊंचे दर्जेपर दयासागर, करुणानिधान, रागद्वेषादि शत्रुआक जीतनेवाले जिनेन्द्रभगवान मिलते हैं जो उपदेश देते हैं कि जीवमात्रसे प्रेम करो चाहे वे इस देशके हों, चाहे उस देशके, चाहे मक्खी कीड़े मकोड़े हों, चाहे गाय बैल घोड़े, चाहे मां बाप भाई हों, चाहे हिन्दू मुसलमान, ईसाई। जिनेश्वर भगवानका उपदेश है कि स्वभावापेक्षा एक आत्मा और दूसरी आत्मामें भेद नहीं। छोटेसे छोटे कीड़ेमें परमात्मा होनेकी शक्ति है। प्रत्येक आत्मा परमात्माकी ओर जा रही है उसको इससे हटाना उसके मार्गम कांटे बोना और उसकी उन्नतिमें बाधा डालना है।

अहिंसा धर्म किसी जाति या मत विशेषका धर्म नहीं है, यह जीवमात्रका धर्म है। "खून मत करो!" प्राय: हरएक मतमें पाया जाता है। यद्यपि कुछ स्वार्थी लोग इसका अर्थ केवल मनुष्योंका खून मत करो ऐसा लगाते हैं। दूसरोंके साथ वैसा ही करो जैसा तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें। जब इसके पूर्ण अर्थ किए जायँ और जीव मात्रके प्रति लगाए जायँ तो यह अहिंसा ही है। यद्यपि ज्यादा आदमी आदर्श धर्मका पालन नहीं कर सकते तथापि दयारूपी सूर्य्यकी भूली बिछड़ी किरनें हर जगह दिखाई देती हैं। इसमें शक नहीं कि अहिंसा धर्मका पूर्णतया पालन करना आसान नहीं है, किंतु इस संसारमें हर एक व्यक्ति इसका कुछ पालन अवश्य ही करता है। कुछ ऐसे हैं जो मनुष्योंके प्रति अहिंसा मानते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो जानवरोंके प्रति अहिंसा मानते हैं और कभी कभी वनस्पतियोंके प्रति भी। डाँकू लुटेरे जो लूट मारके लिए लोगोंकी जान लेने तकसे नहीं हटते और मनुष्यभक्षक जो अपने लिए आदमी तकको मार डालते हैं इस अहिंसा धर्मसे विमुख

नहीं हैं क्योंकि वे भी अपनी जाति तथा कुटुम्बसे प्यार करते हैं। इस तरह संसारमें तमाम आदमी कम ज्यादह अहिंसाका पालन करते हैं। प्रत्येकमें यह प्रिय गुण विद्यमान है। केवल अन्तर इतना ही है कि किसीमें कम किसीमें ज्यादह। कारण यह है कि स्वार्थ और आत्माके निज स्वभावसे अनभिज्ञता अहिंसाके विस्तारको परिमित कर देते हैं। जो जितना ही ज्यादह आत्माके स्वभावसे अनभिज्ञ और स्वार्थी है उसके उतना ही अहिंसाका विस्तार कम है। इसके विपरीत निस्स्वार्थ और आत्माके स्वभावका ज्ञान अहिंसाकी परिधिको विस्तारित करते हैं। जो जितना ही अधिक निस्स्वार्थी है और आत्माके निज स्वभावसे परिचित है उसके दया और दयालुताके विचार उतने ही विस्तरित हैं। अंतमें जैसा मैंने ऊपर दिखलाया है अहिंसा तमाम धर्म और सच्चरित्रोंकी नीव है। संसारमें प्रत्येक भलाई अंतमें परमात्मा पदकी प्राप्तिका कारण है। इसमें तमाम दुनियाके मतोंके उत्तम गुण और नीति सिद्धान्त अंतर्गत हैं और जीवमात्रके प्रति मैत्रीभाव है। यदि हम इसको पूर्ण तौरसे नहीं पाल सकते हैं तो इसकी निन्दा तो न करें। निन्दा करना हमारी बड़ी भारी मूर्खता है। यद्यपि हम अहिंसाको पूरी तौरसे न पाल सकें, तथापि हमको इस सर्वोत्तम और शुद्धतम धर्मका यथेष्ट आदर करना चाहिए। और आदर्श धर्मपर दृष्टि रखते हुए ऊंचे ऊंचे चढ़ना चाहिए।

दयाचन्द्र जैन बी. ए.

विविध समाचार।

गंगेलवार जाति—संयुक्त प्रदेशके अलीगढ, बुलन्दशहर और एटा इन तीन जिलोंमें गंगेलवार नामकी एक जैनजाति है। इसके सब मिलाकर ८५ घर हैं और जनसंख्या लगभग ५०० के है। जमींदारी, साहूकारी और नौकरी आदिका यह व्यवसाय करती है। रोटीबेटीव्यवहार सब इस जातिका इन्हीं ८५ घरोंके अन्दर है। पाठक, इस जातिके व्यवहारकष्टका विचार करके देखें।

दान—रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी इन्दौर निवासीने-जैनसिद्धान्तने पाठशाला मोरेनाको ३६१) की सहायता की है। सेठजीको धन्यवाद है।

कम्पिलाक्षेत्रका मेला—फर्रुखाबाद जिलेमें कायमगंजकी स्टेशनसे लगभग तीन मीलकी दूरीपर यह क्षेत्र है। यहां प्रतिवर्ष चैत्र-सुदीमें मेला हुआ करता है। इस वर्षका मेला खूब धूमधामसे हुआ। लश्करनिवासी पण्डित लक्ष्मीचन्दजी बुलाये गये थे। आपके शास्त्र-व्याख्यानोंसे श्रोतागण बहुत ही प्रसन्न हुए। आपकी बहुतही प्रशंसा हुई। उपस्थित जनोंने आपको एक अभिनन्दनपत्र दिया। इस अभिनन्दनपत्रमें पंडितजीको कविता और इतिहासका महान् विद्वान् बतलाया है।

जैनधर्मपर व्याख्यान—इस साल पूनेकी वसन्तव्याख्यानमालामें एक व्याख्यान जैनधर्मके विषयमें भी हुआ। व्याख्याता श्रीयुक्त तात्यानेमिनाथ पांगल थे।

लेखकोंको पारितोषिक—बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. ललितपुर १०), ७) और ५) के तीन पारितोषिक उन तीन प्रथम लेखकोंको देंगे जो हिन्दी या उर्दू भाषामें अहिंसा अर्थात् मांसभक्षण निषेधपर बिना किसी मत विशेषका पक्ष लिये प्रभावशाली लेख लिखेंगे और १ अगस्त तक उनके पास भेज देंगे।

डेढ़लाख हिंसकोंको दयावान् बनाया—बागड़ प्रान्तमें एक परम दयालु महात्माका आगमन हुआ है। ये अपना नाम साधु बतलाते हैं और धर्म दया। राम, कृष्ण, ऋषभदेव और पार्श्वनाथके ये भक्त हैं। बागड़में लगभग डेढ़लाख मनुष्योंकी वस्ती है। इनमें अधिकांश भील हैं। इन सबहीको आपने दयाधर्मका पालक बनाकर आश्चर्यजनक कार्य किया है। गाँव गाँवमें जाकर आपने प्रत्येक मनुष्यको दयाधर्मी बना दिया है। केवल मांस मछली आदिका खाना ही नहीं आपने कीड़ी मकोड़ी जैसे जीवोंकी हिंसा करनेका भी त्याग करा दिया है। लोगोंपर आपका बडा प्रभाव पड़ा है। डूंगरपुर और कुशलगढ़के दरबारने इस कार्यसे आपका अच्छा सत्कार किया है। झाबुआ दरबारने भी इसी कार्यके लिए अपने राज्यमें भ्रमण करनेका आग्रह किया है। बड़ी खुशीकी बात है। जैनियोंके महात्मा क्या कर रहे हैं?

नई पुस्तकें।

१ **जिनेन्द्रगुणगायन**—इसमें नाटककी चालके हजूरी नई तर्जके पद, भजन, दादरा, ठुमरी, गजल, रेखता इत्यादि हैं। मूल्य ढाई आने।

२ **जैन उपदेशी गायन**—इसमें नई तर्जके नाटकादिके ९३ भजनोंका संग्रह है। मूल्य ढाई आने।

३ **हितोपदेश वैद्यक**—जैनाचार्य श्रीकण्ठसूरिरचित। भाषाटीकासहित। मुरादाबाद निवासी पं० शंकरलालजी जैन वैद्यने इसकी भाषा टीका की है। मूल्य एक रुपया।

४ **समरादित्यसंक्षिप्त**—श्वेताम्बराचार्यकृत प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ। इसका कथाभाग और कवित्व बहुत सुन्दर है। मूल्य ढाई रुपया।

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय**, गिरगांव—बम्बई।

सनातन जैनग्रंथमाला।

इस ग्रंथमालामें सब ग्रंथ संस्कृत, प्राकृत, व संस्कृत टीकासहित ही छपते हैं। यह ग्रंथमाला प्राचीन जैनग्रंथोंका जीर्णोद्धार करके सर्वसाधारण विद्वानोंमें जैनधर्मका प्रभाव प्रगट करनेकी इच्छासे प्रगट की जाती है। इसमें सब विषयोंके ग्रंथ छपैंगे। प्रथम अंकमें सटीक आप्तपरीक्षा और पत्रपरीक्षा छपी है। दूसरे अंकमें समयसारनाटक दो संस्कृत टीकाओंसहित छप रहा है। तीसरे अंकमें देवागमन्याय वसुनंदिटीका और अष्टशतीटीकासहित और पुरुषार्थसिद्ध्युपाय सटीक छपैगा। इसके प्रत्येक अंकमें सुपररायल ८ पेजी १० फारम ८० पृष्ट रहेंगे। समयसारजी ४ अंकोंमें पूरा होगा। इनके पश्चात् राजवार्त्तिकजी व पद्मपुराणजी वगैरह बड़े २ ग्रंथ छपैंगे। १२ अंककी न्योछावर ८) रु० है। डांक खर्च जुदा है। प्रत्येक अंक डांकखर्चके वी. पी. से भेजा जायगा।

यह ग्रंथमाला जिनधर्मका जीर्णोद्धार करनेका कारण है। इसका ग्राहक प्रत्येक जैनीभाई व मंदिरजीके सरस्वतीभंडारको बनकर सब ग्रंथ संग्रह करके संरक्षित करना चाहिये और धर्मात्मा दानवीरोंको इकट्ठे ग्रंथ मगाकर अन्यमती विद्वानोंको तथा पुस्तकालयोंको वितरण करना चाहिये।

चुन्नीलालजैनग्रंथमाला।

इसमें जैनधर्मका स्वरूप बतानेवाली छोटी छोटी पुस्तकें (ट्रक्टें) छपती हैं। और अन्य मतियोंको विना मूल्य बटती हैं। अनेक धर्मात्मा भाई सौ सौ दो दो सौ मगाकर अन्यमतियोंको बांटते हैं। सनातन जैनधर्म)॥, सैकड़ा २) रु०, षड्द्रव्यादिग्दर्शन)॥, सैकड़ा २) रु०। तिलकका व्याख्यान हिंदी)।, १) सैकड़ा। यह व्याख्यान बंगलामें भी छपा है।

मिलनेका पता—**पन्नालाल जैन,**

मंत्री—श्रीजैनधर्मप्रचारिणी सभा काशी, पो० बनारस सिटी।

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्—पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी द्वारा सम्पादित। यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। जनवरी १९१३ से इसमें विशेष उन्नति की गई है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डा० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।)॥ है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र—राजा साहबके चित्र संसारभरमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

चित्रमय जापान—घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टिसौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपरपर छपी है। मूल्य, एक रुपया।

सचित्र अक्षर बोध—छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश—ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटेशब्द भी दिये हैं। वस्तु चित्र इसके रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

नववाँ भाग] आषाढ़, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [९ वाँ।

स्याद्वादविद्यापति विद्यानंदि ।

जैनधर्मके दार्शनिक और नैयायिक विद्वानोंमें विद्यानन्दि या विद्यानन्दस्वामी बहुत प्रसिद्ध हुए है। इनका पाण्डित्य असाधारण है। इनके अनेक ग्रन्थ इनकी कीर्तिको दिग्दिगन्तव्यापी कर गये हैं और जबतक संसारमें दर्शन और न्याय शास्त्रोंका आदर रहेगा—बराबर करते रहेंगे।

विद्यानन्दि और पात्रकेसरी ।

विद्यानन्दका नाम पात्रकेसरी भी है। बहुतसे लोगोंका खयाल है कि पात्रकेसरी नामके कोई दूसरे विद्वान् हो गये हैं; परन्तु नीचे लिखे प्रमाणोंसे विद्यानन्दि और पात्रकेसरी एक ही मालूम होते हैं:—

१ 'सम्यक्त्वप्रकाश' नामक ग्रन्थमें एक जगह लिखा है कि—

" तथा श्लोकवार्तिके विद्यानन्द्यपरनामपात्रकेसरिस्वामिना यदुक्तं तच्च लिख्यते—'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। ननु सम्यग्दर्शनशब्दनिर्वचनसामर्थ्यादेव सम्यग्दर्शनस्वरूपनिर्णयादशेषतद्विप्रतिपत्तिनिवृत्तेः सिद्धत्वात्तदर्थं तल्लक्षणवचनं न युक्तिमदेवेति कस्यचिदारेका तामपाकरोति' "

इसमें श्लोकवार्तिकके कर्त्ता विद्यानन्दिको ही पात्रकेसरी बतलाया है।

२ श्रवणबेलगुलके पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्रीके ग्रन्थसंग्रहमें जो आदिपुराणकी ताड़पत्रोपरि लिखित प्रति है उसकी टिप्पणीमें पात्रकेसरीका नामान्तर विद्यानन्दि लिखा है।

३ ब्रह्मनेमिदत्तकृत कथाकोशमें जो पात्रकेसरीकी कथा लिखी है, उसके विषयमें परम्परागत यही खयाल चला आता है कि वह विद्यानन्दिकी ही कथा है।

४ वादिचन्द्रसूरिने अपने ज्ञानसूर्योदयनाटकके चौथे अङ्कमें 'अष्टशती' नामक स्त्रीपात्रसे 'पुरुष' के प्रति कहलवाया है कि—

"देव, ततोऽहमुत्तालितहृदया श्रीमत्पात्रकेसरिमुखकमलं गता तेन साक्षात्कृतसकलस्याद्वादाभिप्रायेण लालिता पालिताष्टसहस्रीतया पुष्टिं नीता। देव, स यदि नापालयिष्यत्तदा कथं त्वामद्राक्षम्?"

अर्थात् (जब मैंने एकान्तवादियोंसे स्याद्वादका स्वरूप कहा, तब वे क्रुद्ध होकर कहने लगे—'इसे पकड़ो! मारो! जाने न पावे!') "तब हे देव, मैंने भयभीत होकर श्रीमत्पात्रकेसरीके मुखकमलमें प्रवेश किया। वे सम्पूर्ण स्याद्वादके अभिप्रायोंको अच्छी तरहसे जाननेवाले थे, इसलिए उन्होंने मेरा अच्छी तरह लालन पालन किया और अष्टसहस्रीके द्वारा मुझे पुष्ट की। हे देव, वे (पात्रकेसरी) यदि मुझे न पालते तो आज मैं तुम्हें कैसे देखती?" इसका अभिप्राय यह है कि अकलंकदेवका बनाया हुआ जो अष्टशती नामक ग्रन्थ है, उसे पढ़कर जैनेतर विद्वान् क्रुद्ध हो गये और वे उसपर आक्रमण करनेको तैयार हुए। यह देखकर पात्रकेसरी स्वामीने 'अष्टसहस्री' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ रचकर उसके अभिप्रायोंकी पुष्टि की। इससे मालूम होता है कि अष्टसहस्रीके बनानेवाले विद्यानन्दि ही पात्रकेसरी हैं।

५ आगे जो हुमचाका शिलालेख उद्धृत किया गया है, उसके अन्तिम वाक्यसे भी स्पष्ट होता है कि विद्यानन्दि और पात्रकेसरी एक ही थे।

इन पाँच प्रमाणोंसे मेरी समझमें यह बात निस्सन्देह होजाती है कि पात्रकेसरी और विद्यानन्दि दोनों एक ही हैं।

ऐसा माळूम होता है कि 'पात्रकेसरी' नाम तो उस समयका है जब इन्होंने जैनधर्मकी दीक्षा नहीं ली थी और 'विद्यानंदि' नाम दीक्षा लेते समय धारण किया हुआ है। शायद इसी कारण ब्रह्मनेमिदत्तने इनकी जो जैनधर्मधारण करनेकी कथा लिखी है उसमें इनका पात्रकेसरी नामसे ही उल्लेख किया है और जैनदीक्षा ले चुकनेपर पात्रकेसरी महाराजने जो ग्रन्थ लिखे हैं उसमें उन्होंने अपना नाम विद्यानन्दि ही प्रगट किया है; नियमानुसार अपना पुराना नाम लिखनेकी उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी।

निश्चयपूर्वक तो नहीं कहा जा सकता; परन्तु नामसे अनुमान होता है कि विद्यानन्दिस्वामी नन्दिसंघके आचार्य थे। इन्होंने दीक्षा कौनसे आचार्यसे ली थी तथा इनके गुरु कौन थे, इसका कुछ भी पता नहीं चलता है। अपने ग्रन्थोंमें भी इन्होंने अपनी गुरुपरम्पराका कहीं उल्लेख नहीं किया है।

पात्रकेसरीकी कथा।

भट्टारक प्रभाचन्द्र और ब्रह्मनेमिदत्तने अपने कथाकोशोंमें जो पात्रकेसरीकी कथा लिखी है उससे जो थोड़ीसी बातें माळूम होती हैं उसके

१ नेमिदत्त ब्रह्मचारी भट्टारक मल्लिभूषणके शिष्य थे। ये सोलहवीं शताब्दिमें हुए हैं। प्रभाचन्द्र भट्टारकका जो गद्यकथाकोश है उसीका इन्होंने पद्यानुवाद किया है।

सिवा इस दिग्गज विद्वानकी जीवनसम्बन्धी घटनाओंके विषयमें हम कुछ भी नहीं बतला सकते हैं, यह एक बड़े खेदकी बात है। हमारे देशके इतिहासका यह अभाव बड़ा ही अखरता है।

पात्रकेसरीकी उक्त कथा इस प्रकार है— "मगधदेशके **अहिच्छत्र** नामक प्रसिद्ध नगरमें **अवनिपाल** नामक राजा राज्य करता था। इसके दरबारमें वेदवेदांगके पारदर्शी पांचसौ ब्राह्मण विद्वान् रहते थे। राजधानीमें पार्श्वनाथ भगवानका एक विशाल मन्दिर था। एक बार उक्त विद्वानोंको पार्श्वनाथका मन्दिर देखनेका कुतूहल उत्पन्न हुआ। वे जिस समय मन्दिर देखने गये उस समय **चारित्रभूषण** नामके एक मुनि जिनदेवके सम्मुख खड़े होकर 'देवागमस्तोत्र' का पाठ कर रहे थे। उसे सुनकर उक्त ब्राह्मणोंमें जो एक **पात्रकेसरी** नामका मुख्य विद्वान् था वह बोला, "साधो, यह स्तोत्र तो बहुत अच्छा मालूम होता है, जरा इसे एक बार फिर तो पढ़िए।" यह सुनकर मुनि फिरसे उक्त स्तोत्रको अच्छी तरह विश्राम ले लेकर पढ़ने लगे और पात्रकेसरी उसके अर्थको समझते जानेकी चेष्टा करने लगे। ज्यों ही स्तोत्र पूरा हुआ और उसका अभिप्राय पात्रकेसरीको हृदयस्थ हो गया, त्यों ही उन्हें दर्शनमोहका क्षयोपशम होनेसे विश्वास हो गया कि जीव अजीवादि तत्त्वोंका जो स्वरूप जैनदर्शनमें कहा है, वही सत्य है। बस, जैनदर्शनका विशेष परिज्ञान करनेकी ओर उनकी रुचि अनिवार्य हो गई। अपने साथियोंके साथ घर लौटकर वे इसी विषयका विचार करने लगे। रातको वे सोचने लगे कि जैनतत्त्वज्ञोंने ज्ञानको जो प्रमाण माना है सो तो ठीक है; परन्तु अनुमानका क्या लक्षण कहा है सो विदित नहीं हुआ। वे इस तरहकी चिन्तामें तन्मय हो रहे थे कि इतनेमें पद्मावती देवीने उपस्थित होकर कहा—हे धीमन्,

कल सबेरे पार्श्वनाथ भगवानका दर्शन करते ही तेरा सन्देह दूर हो जायगा और अनुमानका लक्षण माल्म हो जायगा। ऐसा कहकर देवी चली गई और मन्दिरमें जाकर उसने पार्श्वनाथकी मूर्तिके फणमण्डपपर यह श्लोक लिख दिया:—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही पात्रकेसरी पार्श्वनाथ भगवानका दर्शन करनेके लिए गये। फणपर दृष्टि पड़ते ही और उसपर लिखा हुआ श्लोक पढ़ते ही उनका सन्देह दूर हो गया। उन्होंने समझ लिया कि अन्यथानुपन्नत्व या व्याप्तिका ज्ञान ही सच्चा अनुमान है। इससे उन्हें दृढ विश्वास हो गया कि एक अरहंतदेव ही सच्चे देव हैं और उन्हींका उपदेश किया हुआ जैनधर्म ही दोनों लोकोंमें सुखका देनेवाला महान् धर्म है। इसके बाद उन्होंने अपने सहचर ब्राह्मणोंसे भी जैनदर्शनकी प्रशंसा की और उसको धारण करनेका उपदेश दिया। जब वे न माने तब शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित किया और तब सब विद्वान् मय अपने राजाके जैनी हो गये।"

इस कथासे विद्यानन्दि स्वामीके विषयमें केवल इतना ही मालूम होता है कि वे मगधराज्यान्तर्गत अहिच्छत्र नामक नगरके निवासी थे और ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे। जैनधर्मको धारण करनेके पहले वे नैयायिक मीमांसक आदि किसी वेदानुयायी दर्शनके माननेवाले थे। 'अहिच्छत्र' या 'अहिक्षिति पार्श्वनाथ नामक स्थान अब भी है। इसे रामनगर भी कहते हैं। यह यू. पी. के बरेली जिलेमें है। इसे जैनी अपना पूज्य क्षेत्र मानते हैं। पार्श्वनाथ भगवानको केवलज्ञानकी उत्पत्ति यहीं हुई थी। उनपर कमठने यहींपर उपसर्ग किया था और तब अहि

(धरणेन्द्र) ने छत्र बनाकर उनकी रक्षा की थी। वहां पार्श्वनाथका मन्दिर अब भी है और उसीसे उक्त तीर्थकी प्रसिद्धि है। अहिच्छत्र कभी राजधानी थी या नहीं और वहां अवनिपाल नामका कोई राजा हुआ है या नहीं, इसका पता हम नहीं लगा सके।

विद्यानंदिका निवासस्थान।

उक्त कथामें विद्यानन्दिस्वामीको उत्तर भारतके निवासी बतलाया है; परन्तु बहुतसी बातोंसे ऐसा मालूम होता है कि वे दक्षिण या कर्नाटकके निवासी थे। क्योंकि एक तो दक्षिण और कर्नाटकके ग्रन्थकर्ताओंने ही उनका अधिकतर उल्लेख किया है, दूसरे दक्षिण और कर्नाटकके शिलालेखोंमें ही उनका विशेष उल्लेख है, तीसरे जिस समय वे हुए हैं उस समय दक्षिण—कर्नाटक ही शंकराचार्य, भट्ट, मण्डनमिश्र आदि वैदिक विद्वानों और जैन नैय्यायिकोंका विवादास्थल बन रहा था; अकलंक, प्रभाचन्द जिनसेन माणिक्यनन्दि आदि जैनाचार्य भी उसी समय हुए हैं। वह समय और प्रदेश ही ऐसा था कि उसमें विद्यानन्दि जैसे दिग्गज विद्वान् होना चाहिए थे। इसके सिवा हुमचा जिला शिमोगा (कर्नाटक) में जो एक शिलालेख मिला है, उसमें जिन जिन राजाओंके दरबारोंमें जाकर विद्यानन्दिके विजय प्राप्त करनेका उल्लेख है, वे सब दक्षिण और कर्नाटकके ही हैं। उक्त शिलेलेखकी जो प्रतिलिपि प्राप्त हुई है उसका अभिप्राय यह है:—

"विद्यानन्दिस्वामीने नजराजपट्टणके राजा नंजकी सभामें जाकर नन्दनमल्लिभट्टसे विवाद करके उसका पराभव किया।....शतवेन्द्र राजाकी सभामें एक काव्यके प्रभावसे समस्त श्रोताओंको चकित कर

१ यह शिलालेख ई० सन् १५३० का लिखा हुआ है।

दिया।........शाल्वमल्लि राजाकी सभामें पराजित किये हुए वादियोंपर विद्यानन्दिने क्षमा की।....सल्लुवदेव राजाकी सभामें परवादियोंके मतोंको असत्य सिद्ध करके जैनमतकी प्रभावना की।.... बिळगीके राजा नरसिंहकी सभामें जैनमतका प्रभाव प्रगट किया। कारकल नगरीके भैरवाचार्यकी राजसभामें विद्यानन्दिने जैनमतका प्रभाव दिखलाकर उसका प्रसार किया।....बिदरीके भव्यजनोंको विद्यानन्दिने अपने धर्मज्ञानसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति करा दी।....जिस नरसिंहराजके पुत्र कृष्णराजके दरबारमें हजारों राजा नम्र होते थे उस राजदरबारमें जाकर हे विद्यानन्द, तुमने जैनमतका उद्योत किया और परवादियोंका पराभव किया। ....कोप्पन तथा अन्य तीर्थस्थलोंमें विपुल धन खर्च कराके तुमने धर्मप्रभावना की। बेलगुलके जैनसंघको सुवर्ण वस्त्रादि दिलाकर मण्डित किया।....गैरसप्पाके समीपके प्रदेशके मुनिसंघको अपना शिष्य बनाकर उसे विभूषित किया। जैनशासनका तथा महावीर, गौतम, भद्रबाहु, विशाखाचार्य, उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंकका विजय हो! अकलङ्कने समन्तभद्रके देवागमनपर भाष्य लिखा। आप्तमीमांसा ग्रन्थको समझाकर बतलानेवाले विद्यानन्दिको नमोस्तु। श्लोककवार्तिकालंकारके कर्त्ता, कविचूडामणि तार्किकसिंह, विद्वान् यति विद्यानन्द जयवन्त हों।....गिरी निकट निवारण करनेवाले मोक्षेच्छु ध्यानी मुनि पात्रकेसरी ही हो गये....

[शिलालेख नं० ४६]

इसके सिवा एक बात यह भी विचारणीय है कि (जैसा कि आगे समय निर्णय करते समय बतलाया जायगा) अकलंकस्वामी और विद्यानन्दिस्वामी बिलकुल समकालीन व्यक्ति हैं, और विद्यानन्दिने अकलंकस्वामीकी अष्टशतीपर अष्टसहस्री भाष्य बनाया है। इतने थोड़े

समयमें कर्नाटक देशके एक आचार्यके ग्रन्थपर मगध देशके आचार्य-द्वारा भाष्य बनना कुछ विलक्षण जान पड़ता है। यह बात तब ही हो सकती है जब विद्यानन्दि कर्नाटकके ही रहनेवाले हों। बल्कि वे अकलंकस्वामीके शिष्यतुल्य सहचर या साथी ही होंगे और इसीलिए उन्होंने इतने शीघ्र अष्टशतीका भाष्य लिख डाला होगा।

यद्यपि ये कोई ऐसे दृढ़ प्रमाण नहीं हैं कि इनके विरुद्ध कुछ भी न कहा जा सके। क्योंकि ऐसा होना भी असंभव नहीं है कि विद्यानन्दि पहले रहनेवाले मगधके ही हों और पीछे कर्नाटकमें पहुँच गये हों और वहीं दिग्विजय करते रहे हों। परन्तु कथाकोशके लेखके सिवा और कोई ऐसा दृढ प्रमाण इस बातका भी तो नहीं है कि वे मगधके ही थे और लगभग ७०० वर्ष पीछेका एक ग्रन्थकर्त्ता—जिसने कि पात्रकेसरीकी कथा केवल जैनधर्मकी प्रभावनाके मुख्य लक्ष्यको रखकर संभवतः किंवदन्तीके आधारसे लिखी है ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं (यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखी होती तो सम्वत् आदिका उल्लेख किया जाता)—स्थानके विषयमें सर्वथा प्रमाणभूत नहीं माना जा सकता। तब मगध और कर्नाटक दोनों ही देश विद्यानन्दिके निवासस्थानके विषयमें एकहीसे सन्देहयुक्त रहते हैं।

समयविचार।

विद्यानन्दि स्वामी कब हुए इसका स्पष्ट उल्लेख उनके ग्रन्थोंमें नहीं है। परन्तु कई प्रमाणोंसे उनका समय ईसाकी आठवीं शताब्दीका उत्तरार्ध और नवमी शताब्दीका प्रारंभ निश्चित होता है। थोड़ेसे प्राप्त हुए प्रमाण यहां लिखे जाते हैं:—

१ विद्यानन्दि स्वामीने अपने अष्टसहस्री ग्रन्थमें भर्तृहरिके 'वाक्यपदीय' ग्रन्थका निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिवाभाति सर्वं शब्दे प्रतिष्ठितम् ॥

और भर्तृहरिका समय प्रो० पाठक आदि विद्वानोंने ई० सन् ६५० के लगभग निश्चित किया है। चीनदेशका प्रवासी हुएनसंग ई० सन् ६२९ में भारत भ्रमण करनेके लिए आया था और सन् ६४५ तक इस देशमें रहा था। उसने अपने प्रवासवर्णनमें लिखा है कि इस समय व्याकरण शास्त्रके पाण्डित्यमें भर्तृहरि बहुत प्रख्यात है। इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दि ई० सन् ६९० के बाद हुए हैं।

२ अष्टसहस्रीमें प्रसिद्ध वेदान्ती विद्वान् कुमारिल भट्टका "भट्ट" नामसे कई जगह उल्लेख किया गया है और उसके सिद्धान्तोंका स्थान स्थानमें खण्डन किया गया है। कुमारिलभट्टका समय ईस्वी सन् ७०० से ७६० तक निश्चित है। अतएव विद्यानन्दि स्वामी उसीके समयमें अथवा उससे कुछ पीछे हुए होंगे।

३ चिद्विलासकृत शंकरविजयसे मालूम होता है कि मण्डनमिश्रका दूसरा नाम सुरेश्वर था और सुरेश्वर आद्य शंकराचार्यके शिष्य थे यह सुप्रसिद्ध ही है। 'आद्य शङ्कराचार्य'का समय इ० ७५० से ८३८ तक निश्चित किया गया है। इस लिए सुरेश्वर या मण्डनमिश्रका भी लगभग यही समय मानना चाहिए। मण्डनमिश्रका 'बृहदारण्यक

१—भावना यदि वाक्यार्थौ नियोगो नेति का प्रमा ।
तावुभौ यदि वाक्यार्थौ हतौ भट्ट-प्रभाकरौ ॥
कार्येर्थे चोदनाज्ञानं स्वरूपे किं न तत्प्रमा ।
द्वयोश्चेद्धन्त तौ नष्टौ भट्टवेदान्तवादिनौ ॥

—अष्टसहस्री ।

२ देखो, बाम्बे रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल वॉल्युम १८, पृष्ठ २३३।

वार्तिक' नामका एक ग्रन्थ है। विद्यानन्दिने इसके तीसरे अध्यायके निम्नलिखित श्लोकोंको अष्टसहस्रीमें उद्धृत करके खण्डन किया है।

"यदुक्तं बृहदारण्यकवार्तिके:—

आत्मापि सदिदं ब्रह्म मोहात्पारोक्ष्यदूषितम्।
ब्रह्मापि स तथैवात्मा सद्वितीयतयेक्ष्यते॥
आत्मा ब्रह्मेति पारोक्ष्यसद्वितीयत्वबाधनात्।
पुमर्थे निश्चितं शास्त्रमिति सिद्धं समीहितम्॥
त्वत्पक्ष्ये बहुकल्प्यं स्यात्सर्वं ज्ञानविरोधि च।
कल्प्या विद्यैव मत्पक्षे सा चानुभवसंश्रये॥

इति कश्चित्सोऽपि न प्रेक्षावान्।

ब्रह्म विद्यावदिष्टं चेन्ननु दोषो महानयम्।
निरवद्ये च विद्याया आनर्थक्यं प्रसज्यते॥"

इससे विद्यानन्दिका समय भी मण्डनमिश्रके लगभग अर्थात् ई० स० ८३८ तक माना जा सकता है।

४ विद्यानन्दिने अष्टसहस्रीमें और पत्रपरीक्षा नामक ग्रन्थमें बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्तिका भी उल्लेख किया है और धर्मकीर्ति सातवीं शताब्दीमें हुआ है। वह उल्लेख इस प्रकार है:—

"यदुक्तं धर्मकीर्तिना—

अतद्रूपं परावृत्तवस्तुमात्रप्रवेदनात्।
सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गभेदाप्रतिष्ठिते॥
अर्थोपयोगेऽपि पुनः स्मार्तं शब्दानुयोजनम्।
अक्षधीर्यद्यपेक्षेत सोऽर्थो व्यवहितो भवेत्॥

—अष्टसहस्री, अध्याय १[1]

इनके सिवा विद्यानन्दि स्वामीने दिङ्नाग, उद्योतकर, प्रभाकर, (प्रज्ञाकर) और शबरस्वामी आदि और भी कई जैनतर विद्वानोंका उल्लेख किया है।

---

१ पत्रपरीक्षामें धर्मकीर्तिका 'कीर्ति' इस संक्षिप्त नामसे उल्लेख है।

५ आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जिनसेनाचार्यने विद्यानन्दिका पात्रकेसरीके नामसे उल्लेख किया है—

भट्टाकलङ्कश्रीपाल-पात्रकेसरिणां गुणाः ।
विदुषां हृदयारूढा हारायन्तेऽतिनिर्मलाः ॥४९

—आदिपुराण पर्व १ ।

और जिनसेनस्वामीने आदिपुराणकी रचना शक संवत् ७६० से ७७० के बीचमें की है ऐसा एक तरहसे निश्चित[1] हो चुका है। इससे मालूम होता है कि शक ७६० अर्थात् ई० सन् ८३८ के लगभग पात्रकेसरी या विद्यानन्दिस्वामीकी अच्छी ख्याति हो चुकी थी।

६ "**श्रीमदकलङ्कविवृतां समन्तभद्रोक्तिमत्र संक्षेपात् ।**
परमागमार्थविषयामष्टसहस्रीं प्रकाशयति ॥"

अष्टसहस्रीके १० वें अध्यायके उक्त श्लोकमें विद्यानन्दिने अष्टशतीके कर्त्ता अकलङ्कदेवका उल्लेख किया है और परीक्षामुखके कर्त्ता माणिक्यनन्दिने निम्नलिखित श्लोकमें अकलङ्क और विद्यानन्दिका स्मरण किया है:—

सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सद्योऽकलङ्काश्रयं
विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम् ।
निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम्,
युक्तया चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥

—प्रथम अध्याय ।

तथा प्रभाचन्द्रने माणिक्यनन्दिके परीक्षामुखकी टीका (प्रमेयकमलमार्तंड) लिखते हुए विद्यानन्दिका कई जगह उल्लेख किया है। न्यायकुमुदचन्द्रोदयमें उन्होंने अकलङ्कदेवका भी इस प्रकार उल्लेख किया है:-

बोधः कोप्यसमः समस्तविषयं प्राप्याकलङ्कं पदं,
जातस्तेन समस्तवस्तुविषयं व्याख्यायते तत्पदम् ।

---

१ देखो 'जैनमित्रकार्यालय बम्बई' द्वारा प्रकाशित विद्वद्रत्नमालामें 'जिनसेन और गुणभद्राचार्य, शीर्षक निबन्ध। २ इस ग्रन्थकी एक ताड़पत्रपर लिखी हुई प्रति श्रवणबेलगुलके जैनमठमें है।

किं न श्रीगणभृज्जिनेन्द्रपदतः प्राप्तप्रभावः स्वयं
व्याख्यात्यप्रतिमं वचो जिनपतेः सर्वात्मभाषात्मकम् ॥

और जिनसेनाचार्यने आदिपुराणके प्रारंभमें अकलङ्क, प्रभाचंद्र[1], पात्रकेसरी (विद्यानन्दि) इन तीनोंहीका उल्लेख किया है। इन सब उल्लेखोंसे यह बात अच्छी तरह समझमें आती है कि ये सब विद्वान् लगभग एक ही समयमें हुए हैं और इनका क्रम १ अकलङ्क, २ विद्यानन्दि, ३ माणिक्यनन्दि, ४ प्रभाचंद्र, ५ जिनसेन इस प्रकार ठहरता है। आदिपुराणकी रचनाके समय अर्थात् ईस्वीसन् ८३८ के समय उक्त सब ही विद्वान् ख्यातिलाभ कर चुके थे। इनमें सबसे पहले अकलङ्कदेव हैं—क्योंकि इन्होंने अपने ग्रन्थोंमें विद्यानन्दि आदि किसीका भी उल्लेख नहीं किया है। वृद्धत्वका मान भी सबमें इन्हींको प्राप्त है। इनका समय आठवीं शताब्दी माना जाता है। क्योंकि राष्ट्रकूटवंशीय साहसतुंग या शुभतङ्गराजाकी सभामें जाकर इन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहा था। यह श्रवणवेलगुलकी मल्लिषेणप्रशास्तिमें लिखा हुआ है—

राजन् साहसतुंग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो
नानाशास्त्रविचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः॥

इस साहसतुङ्गका प्रसिद्ध नाम कृष्णराज था। डा० भाण्डारकरने अपने 'दक्षिणके इतिहास' में इसका समय ई० सन् ७५३–७७५ निश्चय किया है। इससे अकलङ्कदेवका अस्तित्व आठवीं शताब्दीमें—कमसे कम आठवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें निस्सन्देह है। और ऊपर

१—चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे।
कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाल्हादितं जगत्॥ ४७

जो न्यायकुमुदचन्द्रोदयका 'बोध: कोपि' आदि श्लोक उद्धृत किया गया है उससे माल्रम होता है कि प्रभाचन्द्रने अकलंकदेवके चरणोंके समीप रहकर विद्या प्राप्त की थी, अर्थात् प्रभाचन्द्र अकलङ्कदेवके शिष्य थे। साथ ही प्रभाचन्द्रने विद्यानन्दिका भी उल्लेख अपने ग्रन्थोंमें किया है। इससे अकलंकदेव और प्रभाचन्द्रके बीचमें विद्यानन्दिको मानना चाहिए। इस तरह ईस्वी सन् ७५३ से लेकर (कृष्णराजके राज्य

१ प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तंडके अन्तमें निम्न श्लोकोंसे पद्मनन्दि और रत्ननन्दिको भी अपना गुरु बतलाया है। इससे माल्रम होता है कि अकलंकके पास उन्होंने विद्याध्ययन किया होगा और पद्मनंदि तथा रत्ननन्दि उनके दीक्षा-गुरु होंगे या उनके पास भी उन्होंने विद्या सीखी होगी—

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः।
नन्दताद्दुरितैकान्तरजो जैनमतार्णवः॥ ३॥
श्रीपद्मनन्दिसैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः।
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्रत्ननन्दिपदे रतः॥ ४॥

२ प्रमेयकमलमार्तण्डकी प्रशस्तिमें लिखा है-" इति श्रीभोजदेवराष्ट्रे श्रीमद्धारानिवासिना परमपरमेष्ठिप्रणामार्जितामलपुण्यनिराकृतकर्ममलकलङ्केन श्री-मत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्योतपरीक्षामुखपदविवृतमिति।" इससे माल्रम होता है कि प्रमेयकमलमार्तण्डके कर्ता प्रभाचन्द्र धाराधीशभोजके समयमें हुए हैं और प्रसिद्ध विद्याप्रेमी भोजदेवने ई० सन् १०२२ से १०५६ तक राज्य किया है। अतएव न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्तासे ये प्रभाचन्द्र भिन्न होंगे। क्योंकि चन्द्रोदयके कर्ताकी आदिपुराणके-" चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे। कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाह्लादितं जगत्॥" इस श्लोकमें स्तुति की गई है और जिनसेनस्वामीने आदिपुराण ई० स० ८३८ के लगभग बनाया है। परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं है—प्रमेयकमलमार्तण्डके कर्ता और चन्द्रोदयके कर्ता दोनों एक ही हैं। यह बात चन्द्रोदयके प्रारंभके इस श्लोकसे बिलकुल स्पष्ट हो जाती है—

माणिक्यनन्दिपदमप्रतिमप्रबोधं व्याख्याय बोधनिधिरेष पुनः प्रबन्धः।
प्रारभ्यते सकलसिद्धिविधौ समर्थे मूले प्रकाशितजगत्त्रयवस्तुसार्थे॥ ३

प्रारंभसे) ईस्वी सन् ८३८ (आदिपुराणके निर्माणकाल) तक के भीतर अकलङ्क और विद्यानन्दि आदिका समय निश्चित होता है।

७ ऐसा मालूम होता है कि 'प्रथम जिनसेनने' जिस समय हरिवंश पुराणकी रचना की थी उस समय अकलङ्क, विद्यानन्दि आदिकी विशेष प्रसिद्धि न हुई थी अथवा इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी रचना तब तक न की थी। प्रथम जिनसेनने अपने पहलेके सिद्धसेन, समन्तभद्र देवनन्दि, आदि सब ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओंकी हरिवंशपुराणमें स्तुति की है यहां तक कि दूसरे जिनसेन तकका उन्होंने स्मरण किया है जिन्होंने कि उस समय ग्रन्थरचनाका प्रारंभ ही किया था। ऐसी अवस्थामें अनुमान किया जा सकता है कि यदि अकलङ्क और विद्यानन्दि

इसका अभिप्राय यह है कि मैं माणिक्यनन्दिके अप्रतिम पदकी अर्थात् परीक्षामुख ग्रन्थकी व्याख्या करके या प्रमेयकमलमार्तण्डकी रचना कर चुकने पर इस चन्द्रोदयका प्रारंभ करता हूं। इससे जान पड़ता है कि ईसाकी आठवीं नववीं शताब्दिमें भी धारामें भोज नामके एक राजा होगये हैं जिन्हें 'वृद्ध भोज' कहते हैं। प्रमेयकमलमार्तण्डकी भूमिकामें पं० वंशीधरजी शास्त्रीने द्वितीय भोजके समयमें प्रभाचंद्रके होनेका एक प्रमाण यह दिया है कि प्रमेय-कमलमार्तंडमें नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकी गाथायें उद्धृत की गई हैं और नेमिचन्द्र स्वामी चामुण्डरायके समयमें ईस्वी सन् १००० के लगभग हुए हैं। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि चामुण्डराय इसी समय हुए हैं। क्योंकि उन्होंने अपने 'चामुण्डरायपुराण' नामक कनडी ग्रन्थमें (ई० सन् ८९९ में उत्तरपुराणकी रचना करनेवाले) गुणभद्रस्वामीकी स्तुति की है तथा चामुण्डरायका जन्म ई० सन् ९७८ में हुआ था; परन्तु जो गाथायें प्रमेयकमल-मार्तण्डमें उद्धृत हैं वे नेमिचन्द्रस्वामीकी स्वयं निर्मित नहीं हैं-किन्तु परम्परासे चली आई हुई हैं और प्र० क० मा० के समान नेमिचन्द्रने भी उन्हें अपने ग्रन्थोंमें शामिल कर ली हैं। अतएव प्र० क० मा० और चन्द्रोदय दोनोंके कर्त्ता एक ही हैं और चन्द्रोदयकी रचनाके पहले ही प्रमेयकमलमार्तण्ड बन चुका था।

उस समय ग्रन्थकर्त्ता हो चुके होते तो अवश्य ही हरिवंशपुराणमें उनका स्मरण किया जाता। हरिवंशपुराण ईस्वी सन् ७८४ में बना है अतएव अकलंक और विद्यानन्दिकी विशेष प्रसिद्धिका तथा ग्रन्थकर्तृत्वका समय ईस्वीसन् ७८४के बादका मानना चाहिए।

८ प्रो. पाठकने अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामक निबन्धमें और संस्कृत कालेज कलकत्तेके प्रिन्सिपाल म०म०पं० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम. ए. ने अपने 'इंडियन मेडिवल लॉजिक' नामक ग्रन्थमें भी विद्यानन्दिका समय ईस्वी सन् ८००के लगभग ही निश्चित किया है।

इन सब प्रमाणोंसे विद्यानन्दि स्वामीका समय जैसा कि पहले कहा जा चुका है आठवीं शताब्दीका शेषार्द्ध और नवमीका प्रारंभ निश्चित होता है। दक्षिण और कर्नाटकके इतिहासमें यह समय बड़े ही महत्त्वका है। इस समय बड़ी भारी धर्मक्रान्ति हुई है। जैनधर्म, वैदिकधर्म और बौद्ध धर्मके इस समय बड़े बड़े नामी विद्वान् हुए हैं। न्यायशास्त्र तो इस समय बहुत ही उन्नतिपर था। इसके द्वारा अपने अपने धर्मकी सत्यता सिद्ध करनेके लिए उस समयके विद्वानोंने निःसीम परिश्रम किया है। वादविवाद और शास्त्रार्थ भी खूब हुए हैं। उस समयके उक्त धर्मविवादोंका परिणाम क्या हुआ और अन्तिम विजय किसको प्राप्त हुई —वह पाण्डित्यसे ही प्राप्त हुई या और किन्हीं कारणोंसे, इन बातोंका निश्चय करना इतिहासज्ञोंके लिए अभी बाकी है। पर इसमें तो सन्देह नहीं कि इसके बादके समयमें दिगम्बर जैनसम्प्रदायको अकलंक विद्यानन्दि जैसे दिग्विजयी विद्वद्रत्नोंके देखनेका सौभाग्य बहुत ही कम प्राप्त हुआ है।

ग्रन्थरचना।

पहले कहा चुका है कि विद्यानन्दिस्वामी दार्शनिक और नैय्यायिक वेद्वान् थे। इसलिए उन्होंने प्रायः इन्हीं दोनों विषयोंके ग्रन्थोंकी

रचना की है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टसहस्री है। आप्तमीमांसालङ्कार, और देवागमालंकृति भी इसीके नाम है। समन्तभद्रस्वामीने उमास्वामिकृत तत्त्वार्थसूत्रपर गन्धहस्तिमहाभाष्य नामका भाष्य लिखा है। उसके प्रारंभमें १४० श्लोकोंका एक मंगलाचरण है। इस मंगलाचरणको आप्तमीमांसा या देवागमस्तोत्र कहते हैं। इसपर अकलंकभट्टने अष्टशती नामकी टीका लिखी है। अष्टसहस्री या आप्तमीमांसालङ्कार इसीका विस्तृत भाष्य है। दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ श्लोकवार्तिकालंकार[1] या तत्त्वार्थालंकार है। यह जैनदर्शनग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्रका श्लोकबद्ध वार्तिक या भाष्य है। तीसरा ग्रन्थ समन्तभद्रस्वामीकृत युक्त्यनुशासनकी टीका है। विद्यानन्दिका आप्तपरीक्षा नामका ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है। इसकी कई टीकायें हैं। एक टीका स्वयं विद्यानन्दिकी है, जिसे 'आप्तपरीक्षालङ्कृति' कहते हैं। इन चार ग्रन्थोंके सिवा पत्रपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणमीमांसा, प्रमाणनिर्णय, विद्यानन्दमहोदय, बुद्धेशभवनव्याख्यान[2], आदि ग्रन्थ[3] भी विद्यानन्दिस्वामीके बनाये हुए हैं।

---

१ श्लोकवार्तिकको लक्ष्य करके श्रीवादिराजसूरिने पार्श्वनाथचरितमें लिखा है—

ऋजुसूत्रं स्फुरद्रत्नं विद्यानन्दस्य विस्मयः।
शृण्वतामप्यलङ्कारं दीप्तिरङ्गेषु रङ्गति॥

२ 'मैसूर और कुर्गके शिलालेख' नामक अंग्रेजी ग्रन्थमें मि० ल्युई राइस साहबने इस ग्रन्थका जिकर किया है।

३ यशोधरचरित काव्यकी प्रस्तावनामें मल्लिषेणप्रशस्तिके निम्नलिखित श्लोकको उद्धृत करके पात्रकेसरीके 'त्रिलक्षणकदर्थन' नामक ग्रन्थकी कल्पना की गई है। परन्तु वास्तवमें 'त्रिलक्षणकदर्थन' कोई ग्रन्थ नहीं है। पद्मावतीने 'अन्यथानुपपन्नत्वं' आदि श्लोक लिखकर पात्रकेसरीके जिस अनुमानादि त्रिलक्षणोंके भ्रमको निराकरण किया था, यहां उसीका उद्देश्य है:—

महिमा स पात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत्।
पद्मावती सहाया त्रिलक्षणकदर्थनं कर्तुम्॥

अन्तमें पत्रपरीक्षाका समाप्तिमङ्गल लिखकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—

जीयान्निरस्तनिःशेषसर्वथैकान्तशासनम् ।
सदा श्रीवर्द्धमानस्य विद्यानन्दस्य शासनम् ॥*

सम्बोधन ।

(१)

जैनियो! किस धुनमें हो तुम, क्या ख़बर कुछ भी नहीं?
हो रहा संसारमें क्या, ध्यान कुछ इसपर नहीं!
म्लेच्छ और अनार्य जिनको, तुम बताते थे कभी।
देख लो, किस रंगमें हैं, आज वे मानव सभी ॥

(२)

और अपनी भी अवस्थाका मिलान करो ज़रा।
पूर्व थी वह क्या? हुई अब क्या? विचार करो ज़रा ॥
है कहाँ वह ज्ञान-गौरव, राज्य-वैभव आपका?
परम दुर्धर तप कहाँ वह, नाशाकर्ता पापका?

(३)

वृष[1] अहिंसा आपका वह, उठ गया किस लोकमें?
प्रेम पावन आपका सब, जाबसा किस थोकमें?

---

* **नोट**—श्रीयुक्त तात्या नेमिनाथ पांगलके मराठी लेखका सारांश। इसमें मूल लेखककी बहुतसी बातें—जिनसे हम सहमत नहीं थे—परिवर्तित और संशोधित करके लिखी हैं और कई स्वयं अपनी ओरसे भी लिखी हैं।

—सम्पादक।

१ धर्म।

है कहां वह सत्यता, मृदुता, सरलता आपकी ?
वह दयामय-दृष्टि और परार्थपरता आपकी ?

(४)

पूर्वजोंके धैर्य-शौर्योदार्य-गुण, तुममें कहाँ ?
है कहाँ वह वीरता, निर्भीकता, साहस महा ?
बाहु-बलको क्या हुआ ? रण-रंग-कौशल है कहाँ ?
हो कहाँ स्वाधीनता, दौर्बल्य[1]शासन हो जहाँ ?

(५)

वे विमान कहाँ गये ? कुछ याद है उनकी कथा ?
बैठ जिनमें पूर्वजोंको, गगनपथ भी सुगम था ?
है कहाँ निर्वाह प्रणका, और वह दृढ़ता कहाँ ?
शीलता जाती रही, दुःशीलता फैली यहाँ ॥

(६)

उठ गई अब तत्त्वचर्चा, क्या प्रकृति बदली सभी ।
स्वप्न भी, निजअभ्युदयका, जो नहीं आता कभी ॥
खो गया गुण-ग्राम सारा, धर्म-धन सब लुट गया ।
आँख तो खोलो जरा, देखो सबेरा हो गया ॥

(७)

धर्म-विष्टैर[2] पर विराजीं, रूढियाँ आकर यहाँ ।
धर्मके ही वेषमें, जो कर रहीं शासन महा ॥
थीं बनाई तुम्हींने ये, निज सुभीतेके लिए ।
बन गये पर अब तुम्हीं, इनकी गुलामीके लिए ॥

(८)

देखिए, मैदाने उन्नतिमें कुलाँचें भर रहे ।
कौन हैं, निज तेजसे विस्मित सबोंको कर रहे ?

---

१ कमज़ोरीका राज्य और कमज़ोरीकी शिक्षा । २ आसन ।

नवनवाविष्कार प्रतिदिन, कौन कर दिखला रहे ?
देव-दुष्कर कार्य विद्युच्छक्तिसे करवा रहे ?

(९)

हो रहा गुण-गान किनके, यह कला-कौशल्यका ?
बज रहा है दुन्दुभी, विज्ञान, साहस, शौर्यका ?
कौन हैं ये बन रहे, विद्या-विशारद आजकल ?
नीति-विद्, सत्कर्म-शिक्षक, पथ-प्रदर्शक आजकल ?

(१०)

सोचिये, ये हैं वही, कहते जिन्हें तुम नीच थे।
धर्मशून्य असभ्य कह कर, आप बनते ऊंच थे।
सद्विचाराचारके जो, पात्र भी न गिने गये।
नहा डाला उसी दम यदि, कभी इनसे छू गये ॥

(११)

अनवरत उद्योगसे औ, आत्म-बल-विस्तारसे।
अभ्युदय इनका हुआ है, प्रबल ऐक्यविचारसे ॥
स्वावलम्बनसे इन्हें जो, सफलता अनुपम मिली।
शोक ! उसको देखकरके सीख तुमने कुछ न ली ॥

(१२)

आत्म-बल-गौरव गँवाया, भूल शिथिलाचारमें।
फँस गये हो बेतरह तुम, जाति-भेद-विचारमें ॥
साथ ही, अपरीतियोंके जालसे जकड़े गये।
कर्मबन्धोंसे अधिक, इनसे विवश तुम हो गये ॥

---

१ नई नई ईजादें। २ बिजलीकी ताकत। ३ कुरीतियोंके।

(१३)

तोड़ यह बन्धन सकल, स्वातंत्र्य-बल दिखलाइए।
लुप्त गौरव जो हुआ, उसको पुनः प्रकटाइए॥
पूर्वजोंकी कीर्तिको बट्टा लगाना क्या भला?
ऐसे जीनेसे तो मर जाना सरासर है भला॥

(१४)

जातियाँ, अपनी समुन्नति-हेतु, सब चंचल हुईं।
पर न आया जोश तुममें, क्या रगें ठिठरा गईं॥
पुरुष हो, पुरुषार्थ करना, क्या तुम्हें आता नहीं?
पुरुष-मन पुरुषार्थसे, हरगिज न घबड़ाता कहीं॥

(१५)

जो न आता हो तुम्हें सो, दूसरोंसे सीख लो।
अनुकरण कहते किसे, जापानियोंसे सीख लो॥
बाँचकर इतिहास औरोंके, चलो उस राहसे।
उठ न जावे व्यर्थ ही, तव नाम इस संसारसे॥

(१६)

छोड़ दो संकीर्णता, समुदारता धारण करो।
पूर्वजोंका स्मरण कर, कर्तव्यका पालन करो॥
आत्म-बल पर धीर वीरो! हो खड़े बढ़ते रहो।
हो न ले उद्धार जबतक, "युग-प्रताप" बने रहो॥

जुगलकिशोर, मुख्तार
देवबन्द

जैन लाजिक (न्याय)।

(६–७ वें अंकसे आगे)

माणिक्यनंदि (ई० सन् ८०० के लगभग।)

६४. माणिक्यनन्दि दिगम्बर आम्नायके आचार्य हुए हैं। इनका परीक्षामुखशास्त्र अथवा परीक्षामुखसूत्र जैन न्यायका एक मुख्य ग्रंथ है। चूंकि उनका यह ग्रंथ अकलंकदेवके ग्रंथके आधारपर है अतएव वे ई० सन् ७५० के पश्चात् हुए होंगे। परीक्षामुख शास्त्रकी सबसे प्राचीन टीका प्रभाचन्द्रस्वामीद्वारा रचित प्रमेयकमलमार्तंड है। विद्यानंद, माणिक्यनंदि और प्रभाचन्द्र समकालीन बतलाए गए हैं अतएव मालूम होता है कि माणिक्यनंदि ई० सन् ८०० के लगभग हुए हैं।

६५. परीक्षामुखसूत्र ६ अध्यायोंमें विभाजित है:—१ प्रमाण-स्वरूप, २ प्रत्यक्ष ३ परोक्ष, ४ विषय, ५ फल, ६ आभास।

६६. प्रमाणका लक्षण यह किया है कि प्रमाण वह ज्ञान है जो अपना और अनिश्चित पर पदार्थोंका अपनी आत्माको निश्चय कराए। यह प्रायः इस रूपमें होता है कि " मैं घटको अपनी आत्मा द्वारा जानता हूँ " इस प्रयोगमें कर्ता, कर्म, क्रिया और करण चारोंका बोध होता है। जैसे

---

१. पिटर्सनसाहब अपनी चौथी रिपोर्टके पृष्ठ १५५ पर 'परीक्षामुख सटीकका' का जिकर करते हैं। यह टीका अनंतवीर्यकृत प्रमेयरत्नमाला अथवा परीक्षामुखपंजिका है जिसका प्रारम्भ इस श्लोकसे होता है:—

अकलङ्कवचोऽम्भोधे रुद्दध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥ २ ॥

२. देखो के. बी. पाठकका 'भर्तृहरि और कुमारिल' शीर्षक लेख १८९२ के जे. बी. बी. आर. ए. एस. पृष्ठ २१९, २२०, २२१। मिस्टर पाठक कहते हैं कि माणिक्यनंदिने विद्यानंदका उल्लेख किया है परंतु परीक्षामुखशास्त्रके मूलमें मैंने यह कहीं नहीं देखा।

दीपक अपनेको भी प्रकाशित करता है तथा अपने चारों ओर तिष्ठने-वाले पदार्थोंको भी प्रकाशमान करता है, ऐसे ही प्रमाण अपना और दूसरे ज्ञेय पदार्थोंका बोध करता है।

६७—प्रमाण दो प्रकारका है:—१ प्रत्यक्ष जो इंद्रियादिककी सहायताके बिना होता है, २ परोक्ष जिसके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, और आगम ये पांच भेद हैं। स्मृति वह ज्ञान है जो स्मरण करनेसे हो, जैसे "वह देवदत्त।" दर्शन और स्मरणके जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, जैसे "यह वह है।" "यह उसके समान है" "यह उससे भिन्न है" "यह वह देवदत्त हैं," "गवय गऊके सदृश है," "भैंस गऊसे विलक्षण है," "यह उससे दूर है," "यह वृक्ष है," इत्यादि।

तर्क वह ज्ञान है जो हेतु और साध्यके अविनाभाव सम्बन्धका बोध कराए। जैसे "यदि यह है तो वह है, यदि यह नहीं है तो वह नहीं है," "जब अग्नि है तब ही धूम निकलता है किंतु यदि अग्नि नहीं है तो धूम नहीं निकल सकता"।

अनुमान[1]—साधनसे जो साध्यका ज्ञान होता है वह अनुमान है जैसे "यहां अग्नि है कारण कि धूम है"।

६८. सहभाव अथवा क्रमभावसे साध्यके साथ साधनके अविनाभावी सबन्धको व्याप्ति[2] कहते हैं। जैसे अग्नि और धूम साथ साथ रहें अथवा धूम अग्निके पश्चात् हो।

यदि साधन और साध्य साथ साथ रहें तो साधन व्याप्त कहलाता है और साध्य व्यापक; परंतु यदि साधन साध्यके पश्चात् आवे तो साधन कार्य है और साध्य कारण। इस तरह अग्नि धूमका कारण है।

---

१. साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥ ९ ॥

२. सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ ११ ॥

(परीक्षामुखसूत्र)

साधारणतया साध्य उसे कहते हैं जिसे सिद्ध करना है और साधन उसे कहते हैं जिससे सिद्ध किया जाए। कभी साध्यको (Major term) धर्म (Predicate) और साधनको (Middle term) लिंग भी कहते हैं। पक्ष (Minor term) उसे कहते हैं जिसमें साध्य रहे। इसको धर्मी (subject) भी कहते हैं। इन प्रतिज्ञाओंमें–कि "यह स्थान अग्निमय है।" "शब्द परिणामी है।" –"यह स्थान" तथा "शब्द" पक्ष अर्थात् धर्मी है। कुछ नैयायिक जो हेतु (Middle term) के तीन विभाग करते हैं अनुमानमें से धर्मीको निकाल देते हैं।

हेतु उसे कहते हैं जिसका साध्यके साथ अविनाभावी सम्बन्ध हो या दूसरे शब्दोंमें जो साध्यके विना न पाया जाए। जैसे " धूमका अस्तित्व ही नहीं हो सकता, यदि अग्नि न होती"।

६९. हेतुके दो भेद किए हैं:––१ उपलब्ध, २ अनुपलब्ध। इनमेंसे प्रत्येक विधि और प्रतिषेधरूप होता है।

७०. विधिरूपमें उपलब्ध हेतुके निम्नलिखित ६ भेद होते हैं:–

१. व्याप्य––शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृत्रिम है।
२. कार्य––इस मनुष्यमें बुद्धि है क्योंकि उसमें ऐसी शक्तियां हैं।
३. कारण––यहां छाया है क्योंकि छाता है।
४. पूर्व––रोहिणी तारोंका उदय होगा क्योंकि कृत्तिका तारोंका उदय हो चुका है।
५. उत्तर––भरणी तारोंका अवश्य उदय हुआ क्योंकि कृत्तिका तारोंका उदय हो चुका है।
६. सहचर––इस मनुष्यकी माता थी क्योंकि उसका पिता था, अथवा इस आममें वर्णविशेष है क्योंकि इसमें गन्धविशेष है।

७१. निषेध—रूपमें उपलब्ध हेतुके निम्नलिखित छह भेद होते हैं:—

१. व्याप्य—शीतस्पर्श नहीं है, उष्णत्व होनेसे।

४. कार्य—शीतस्पर्श नहीं है धूम होनेसे।

३. कारण—यह मनुष्य सुखी नहीं है इसके मनमें शल्य होनेसे।

४. पूर्व—रोहिणी तारोंका तुरंत उदय नहीं होगा क्योंकि केवल रेवतीका उदय हुआ है।

५. उत्तर—भरणी तारोंका उदय नहीं हुआ है क्योंकि पुष्यका अभी उदय हुआ है।

६. सहचर—इस दीवारके परभागके अस्तित्वमें संदेह नहीं है क्योंकि इसका यह भाग दिखलाई देता है।

७२. निषेधरूपमें अनुपलब्ध हेतुके निम्नलिखित सात भेद होते हैं:-

१. स्वभाव—यहां घट नहीं है; क्योंकि यह अनुपलब्ध है।

२. व्याप्य—यहां सीसम वृक्ष नहीं है क्योंकि यहां कोई वृक्ष ही नहीं है।

३. कार्य्य—यहां अप्रतिबद्धसामर्थ्य अग्नि नहीं है कारण कि धुआँ नहीं है।

४. कारण—यहां धूम नहीं हैं क्योंकि अग्नि नहीं है।

५. पूर्व—रोहिणी तारोंका एक समयमें उदय नहीं होगा क्योंकि कृत्तिका तारे नहीं दिखाई देते हैं।

६. उत्तर—भरणी तारोंका एक समय पहले उदय नहीं हुआ। क्योंकि कृत्तिका तारे दृष्टिगोचर नहीं होते।

७. सहचर—इस समान डांडीकी तुलामें डांडी एक ओर ऊँची नहीं है। क्योंकि दूसरी ओर नीची डांडीकी अनुपलब्धि है।

७३. विधिरूपमें अनुपलब्ध हेतुके तीन भेद होते हैं:—

१. कार्य्य—इस मनुष्यको कुछ रोग है क्योंकि इसमें कोई स्वास्थ्यसूचक क्रिया नहीं है।

२. कारण—इस मनुष्यको दुःख है क्योंकि इसके इष्ट-मित्रोंका अभाव है।

३. स्वभाव—यहां निश्चय नहीं है क्योंकि निश्चय अनुपलब्ध है।

७४. हेतु और साध्य अनुमानके अंग हैं; किन्तु उदाहरण नहीं हैं। तथापि अल्पबुद्धिवालोंको बोध करानेके लिए न केवल उदाहरण, किन्तु उपनय, और निगमन भी अनुमानके अंग माने जाते हैं। दृष्टान्त दो प्रकारका होता है:— १ अन्वयी अथवा साधर्म्य दृष्टांत जो साध्यमें साधनका सद्भाव प्रकट करता है। जैसे "जहां धूम है वहां अग्नि है, जैसे रसोईघर" २ व्यतिरेकी अथवा वैधर्म्य दृष्टान्त जिसमें साध्यके अभावसे साधनका अभाव प्रगट होता है, जैसे "जहां अग्नि नहीं है, वहां धूम नहीं है। जैसे झीलमें।"

७५. अनुमान दो प्रकारका होता है:—१. स्वार्थानुमान, २. परार्थानुमान। परार्थानुमानका दृष्टान्त इस प्रकार है:—

१. शब्द (पक्ष) परिणामी (साध्य) है। (प्रतिज्ञा)

२. क्योंकि यह कृत्रिम है। (हेतु)

३. जो कृत्रिम होता है, वह परिणामी होता है, जैसे घट। (साधर्म्य दृष्टान्त)

४. शब्द कृत्रिम है। (उपनय)

५. अतएव शब्द परिणामी है। (निगमन)

अथवा—

३. जो परिणामी नहीं होता वह कृत्रिम नहीं होता। जैसे बंध्या स्त्रीके स्तनका दूध। (वैधर्म्य दृष्टान्त)

४. किंतु शब्द कृत्रिम है। (उपनय)

५. अतएव शब्द परिणामी है। (निगमन)

७६—सत्यार्थ आप्तादि यथार्थ वक्ताओंके वाक्योंसे तथा सत्यार्थ शास्त्रोंसे जो पदार्थोंका ज्ञान होता है वह आगम ज्ञान कहलाता है।

७७—प्रमाणका विषय सामान्य विशेषरूप पदार्थ है। सामान्यके दो भेद हैं—१. तिर्यक् जो एककालगत बहुतसी व्यक्तियोंका समान धर्म हो, जैसे "गऊ।" यह एक सामान्य भाव है जो शाबली, खम्बी, मुम्बी इत्यादि अनेक गायोंको प्रगट करता है। २. उर्द्धता जो भिन्न भिन्न समयवर्ती एक चीजकी बहुतसी पर्यायोंका सदृश धर्म हो जैसे "स्वर्ण।" यह एक सामान्य भाव है जिसमें कड़ा, माला, बाला इत्यादि अनेक भिन्न भिन्न स्वर्णके पदार्थ शामिल हैं।

विशेषके भी दो भेद हैं—१ वस्तुसूचक अर्थात् व्यतिरेक जैसे गाय, भैंस, हाथी, कुत्ता चार विशेष चीजें हैं जो एक दूसरेसे भिन्न हैं। २. कार्यसूचक जैसे सुख, दुःख जिनका अनुभव आत्माद्वारा होता है।

७८. प्रमाणका फल अज्ञानताका नाश होना है जिससे जीव इष्टको गृहण कर सके और अनिष्टको त्याग सके।

७९. असली चीजसे भिन्नके ज्ञानको आभास कहते हैं। यह कई प्रकारका होता है जैसेः—

१. प्रत्यक्षाभास—जैसे स्तम्भको मनुष्य समझना।

२. स्मरणाभास—जिनदत्तको स्मरण करनेके स्थानमें कहना "ओ वह देवदत्त।"

३. प्रत्यभिज्ञानाभास--शिकारी कुत्तेको देखकर कहना "यह वह सिंह है"

४. तर्काभास—"जो कोई उसका पुत्र है, वह अवश्य काला है।"

५. पक्षाभास—'शब्द अनित्य है।' मींमासकोंके मतानुसार यह पक्षाभास है क्योंकि वे शब्दको अनित्य नहीं मानते। अथवा अग्नि उष्ण नहीं। क्योंकि यह जलके समान द्रव्य है।

६. हेत्वाभास—शब्द नित्य है क्योंकि यह कृत्रिम है।

७. दृष्टान्ताभास—शब्द नित्य है क्योंकि घटके समान साकार है।

८. आगमाभास—"बालको दौड़ो, नदीके किनारे मिठाईका ढेर है।" "उसकी अंगुलीपर १०० हाथी हैं।" "जैनियोंको रात्रिभोजनकी आज्ञा है"

८०. माणिक्यनन्दिने परीक्षामुखसूत्रके अध्याय ६ (५६-५७) में लौकायतिक, सौगत, सांख्य, योग, प्रभाकर, जैमिनीय आदिका उल्लेख किया है। तीसरे अध्यायमें उन्होंने एक ऐसे नैयायिकका जिकर किया है जो हेतुके तीन भेद मानता है; किन्तु पक्षको सर्वथा उड़ा देता है।

८१. माणिक्यनान्दि अपने ग्रंथको दर्पणवत् बतलाकर जिसमें मनुष्य हेये उपादेयको देख सकता है; समाप्त करते हैं।

प्रभाचन्द्र (ईस्वी सन् ८२५ के लगभग)।

---

१. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ १० ॥
को वा त्रिधाहेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥ ३१ ॥ (परीक्षामुखसूत्र)

२. परीक्षामुखमादर्श हेयोपादेयतत्त्वयोः ॥
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ॥ (प० मु०)

८२. प्रभाचन्द्र जो कविकी पदवीसे विभूषित थे, दिगम्बर आम्नायके आचार्य थे और ये ही, माणिक्यनंदिकृत परीक्षामुख-सूत्रकी सबसे प्राचीन टीका, प्रमेयकमलमार्तंडके—जो न्यायशास्त्रका एक मुख्य ग्रंथ है,—कर्त्ता हैं। ये अकलंकस्वामीके लघीयस्त्रयकी टीका न्यायकुमुदचन्द्रोदयके (अथवा संक्षेपमें चन्द्रोदयके) भी कर्त्ता हैं। इन्होंने अपने प्रमेयकमलमार्तंडमें भगवान् उपवर्ष, शबर-स्वामी, भर्तृहरि, बाण[1], कुमारिल[2], प्रभाकर, दिग्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, विद्यानंद तथा अन्यका जिकर किया है। जिनसेन स्वामीने भी अपने आदिपुराण[3]में—जो शाका सम्वत् ७६० अथवा ई० सन् ८३८ के लगभग बनाया है—इनका जिकर किया है। ऐसा माना जाता है कि प्रभाचन्द्र जो माणिक्यनंदि, और विद्यानंदके समकालीन थे, नवमी शताब्दीके प्रथम ५० वर्षोंमें हुए हैं।

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.।

---

१. प्रभाचन्द्रस्वामीने निम्न श्लोक बाणकृत कादम्बरीसे उद्धृत किया है:—

रजोजुषो जन्मनि सत्त्ववृत्तये
स्थितौ प्रजानां प्रलये नभःऽस्पृशे।
अजाय सर्गस्थिति-नाश-हेतवे
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः॥

—हस्तलिखित प्र० क० मा० पृष्ठ २१।

२. प्रभाचन्द्र कुमारिलका-जो 'भट्ट' के नामसे प्रसिद्ध हैं-इस प्रकार उल्लेख करते हैं—"तथा अर्थापत्तिरपि प्रमाणान्तरं तल्लक्षणं ह्यर्थापत्तिरपि दृष्टः श्रुतो वा अर्थोऽन्यथानोपपद्यते इत्यदृष्टार्थकल्पना, कुमारिलोऽपि एतदेव भाष्यकारवचो व्याचष्टे।" (प्रमेयकमलमार्तंड)

३. आदिपुराणमें प्रभाचन्द्रस्वामीका इस प्रकार उल्लेख किया गया है:—

चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रं कविं स्तुवे।
कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाह्लादितं जगत्॥ ४७॥

अग्निदेव-स्तवन।

हे अनन्तरूपधारी अग्निदेव, तुम्हें इस कलियुगी जीवके सहस्त्रों प्रणाम हैं। हे तेजःस्वरूप, तुम्हारी वन्दना मैं किस मुँहसे करूं? आपकी सेवा जिन जिन देशवासियोंने की है, उन्हीं उन्हींको आपने योग्य फल-प्रदानमें कभी आनाकानी नहीं की। आपके एक नहीं अनेक रूप हैं। कभी कभी आप माचिस-रूप धारणकर पेटियोंमें बन्द होकर; सात समुद्र पार करके, खटसे बम्बई स्टेशनपर आ धमकते हो और योग्य सेवा करनेवालोंकी पाकिटें रुपयोंसे लबालब भर देते हो। यदि कोई पुरुष-जब आप पेटियोंमें बन्द हों-हानि पहुँचानेकी चेष्टा करे तो उसे आप दण्ड दिये बिना नहीं रहते। आप छोटेसे दानेसे लेकर विशाल विटप तकमें वास करके उसके अवयवोंमें तीव्रता लाते हो। सम्पूर्ण प्रकाशित पदार्थ आपके ही प्रकाशसे प्रकाशित हैं। सूर्य आपमें और आप सूर्यमें निवास करते हैं। घर बाहर जल थल जहां देखता हूं आपका निवास पाता हूं। बड़े बड़े महासागरोंमें आप बड़वानलके नामसे रहते हैं। थलकी तो बात ही क्या मृत्तिकाके प्रत्येक परमाणुमें आप व्याप्त हैं। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं कि जिसके भीतर आप रहकर उसकी रक्षा न करते हों। यदि आप मिनिट भरके लिए ही कार्य त्याग दें तो घोर अनर्थ हो जाय। सम्पूर्ण जीव तेजहीन होकर मृत्यु-मुखमें जा पड़ें, उष्णताका नाम न रहे, वृक्षोंकी बाढ़ इकदम बन्द हो जाय, रल महारानीका 'भक भक' शब्द न जाने कहाँ छूमन्तर हो जाय। आपका प्रबल शत्रु पानी है। परन्तु जब आप अपना पूर्णरूप धारण करते हैं, तब हजार पानीकी धार पड़ने पर-भी आप भक्ष्य पदार्थोंको स्वाहा किये बिना नहीं रहते। सारांश यह कि आपकी गति रोकना बड़ा ही दुस्तर कार्य्य है। जिन पाश्चात्य

देशोंने आपकी सेवा सुश्रूषा योग्य रीतिसे की है उन्हें आप मालामाल कर रहे हो और जो देशवासी आपके असली रूपको न पहचान सके वे सुदामाकी प्रथमावस्थाको प्राप्त होते जा रहे हैं। जहाँ शाम हुई कि फिर आप घर घरकी दीपशिखाओं पर विराजमान होकर चाकचौंधी लगा देते हैं। बम्बई जैसी महानगरीके निशाकालमें आपहीकी दुहाई बोली जाती है। वहां आप लेम्पोंमें बैठकर सारी नगरीमें अंधकारका नाश करके रात्रिको दिनमें परिणत कर देते हो। बिजली-यंत्रका कार्य्य आपकी सहायतासे कुछेक पुरुष सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। जब कभी कोई व्यक्ति आपका उपयोग असावधानतापूर्वक करता है, तब आप उसे इतना दण्ड देते हो कि जन्मभर काले पानीकी सज़ा देनेवाले न्यायाधीश भी आपके आगे मस्तक नवाते हैं। और फिर उस व्यक्तिको असावधानीसे कार्य्य करनेका साहस ही नहीं होता। आप प्रत्येक हिन्दूके पूजनीय हो। क्योंकि प्रत्येक हिन्दूके जन्म कालसे लेकर मरण काल तक प्रत्येक समयमें आप सहायता देते हो। जब बालक जन्म ग्रहण करता है उस समय आपकी आवश्यकता पड़ती है। और बालक जो दूध पीता है, वह भी आपहीकी सहायतासे पीता है। जब बालक विद्याध्ययन करनेके योग्य हो जाता है तब उसके अविद्यारूपी घोर तिमिरपर विद्यारूपी प्रकाश डालनेके लिये दीप-शिखाकी आवश्यकता अवश्य ही पड़ती है। तदुपरान्त विवाहोत्सवमें भी अधिकतर कार्य्य आपहीकी सहायतासे सम्पन्न होते हैं। कहां तक कहें जब मनुष्य मृत्युशय्यापर सदैवके लिए निद्रित हो जाता है, तब भी अन्तिम संस्कार आपहींके द्वारा होता है। अर्थात् प्यारी जन्मभूमि की गोदमें जानेके समय तक आप प्रत्येक समय सहायक रहते हैं। अतएव आपके इस परोपकार व्रतको धन्य

है। वैसे तो आपके दृश्यमात्र खाद्य पदार्थ हैं—ऐसा काई भी पदार्थ नहीं जो आपका भक्ष्य न हो; परंतु फिर भी आपको स्निग्ध पदार्थ—घी तेल आदिकी आहुति मिलते ही आप अपना पूर्णरूप धारणकर लेते हो। पारसी लोग आपके इस रूपपर मोहित होकर श्रद्धापूर्वक वन्दना करते हैं। आपकी उत्पत्ति संघर्षण मात्रसे हैं। जहां दो पदार्थोंका घर्षण हुआ कि आपने अपना असली रूप धारण किया। आप इस धरतीके नीचे अन्यान्य पदार्थोंके साथ घर्षणरूपमें बालक्रीड़ा करते रहते हो और इस प्रकार लीला करते करते उत्थित होते समय धरणीकम्प द्वारा पृथ्वीको हिलाकर गंधक, लोहा, मिट्टी, हड्डी आदिके साथ निकल पड़ते हो। अतएव आपकी इस अनन्त शक्तिकी महिमा अपार है। और कभी कभी दीर्घाकार पर्वतोंके मुखपर बैठ जाते हो और वहांसे अपनी विचित्र लीला द्वारा दर्शकोंके लिये भयोत्पादक काण्ड उपास्थित कर देते हो। अर्थात् वहांसे धातुओंके टुकड़े, पत्थरोंके ढेर, ईंटें, रेत आदिका इसप्रकार वर्षण करते हो कि दूर दूरके देशवासी भी भयाकुल हो अपने अपने स्थानोंको त्यागकर जी छोड़ भागते हैं। आधुनिक महायुद्धोंमें जब आप बंदूकमें गोलीरूप होकर भीम वेगसे बाहर निकलते हैं तब मजाल क्या जो साम्हनेकी वस्तु सुराक्षित रह जाय। इसी प्रकार तोपमें वृहदाकार धारण कर बड़े बड़े किलोंके मस्तक तोड़नेंमें समर्थ होते हो। इस प्रकारके आपके महाशक्तिशाली रूपको धन्य है। बड़े बड़े युद्धोंमें जिस पक्षके योद्धागण आपकी सेवा यथार्थ रूपसे करते हैं विजयलक्ष्मी प्रसन्न चित्तसे उन्हींके गलेमें जयमाला डालती है। इस लिए हे विजयदाता अग्निदेव, आपको मेरे सहस्त्रों प्रणाम हैं।

दशरथ बलवन्त जाधव—देवरी (सागर)।

श्रीमहावीराचार्यका गणितसारसंग्रह ।

जैनसाहित्य कितना सम्पन्न और विस्तृत है यह अभीतक निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । जैसे जैसे खोज होती जाती है तैसे तैसे जुदा जुदा विषयोंके अनेकानेक ग्रन्थोंका पता लगता जाता है । इसके पहले धर्मद्वेषियोंके द्वारा जो हजारों ग्रन्थ नष्ट किये जा चुके हैं और हमारी असावधानीके कारण जो सैकड़ों बहुमूल्य ग्रन्थ दीमकोंके भक्ष्य बन चुके हैं उनकी तो कुछ गिनती ही नहीं है ।

जैनसमाजके सौभाग्यसे कुछ जैनग्रन्थ सरकारी लाइब्रेरियोंमें पहुँच गये हैं और विद्यानुरागिनी सरकारकी कृपासे उनमेंसे कभी कभी कोई कोई ग्रन्थ प्रकाशित हो जाता है तब हम जानते हैं कि जैनाचार्योंने कैसे महान् ग्रन्थ लिखे हैं । पाठकोंको माद्धम होगा कि कुछ वर्ष पहले जर्मनीके विद्वानोंने पञ्चतन्त्रको उस रूपमें प्रकाशित किया था जिसरूपमें कि किसी जैनाचार्यने उसे बनाया था । संस्कृत साहित्यमें पञ्चतन्त्र अद्वितीय और बहुत ही शिक्षाप्रद ग्रन्थ है;—पर अभीतक वह किसी अजैन विद्वान्का बनाया हुआ कहलाता है । इसी तरह शाकटायन, अकलङ्कशब्दानुशासन आदि और भी अनेक ग्रन्थ सरकारी लाइब्रेरियोंकी सहायतासे प्रकाशित हो चुके हैं । अभी थोड़े ही दिन हुए कि मद्रास शिक्षाविभागके डाइरेक्टर, जी. एच, स्टवार्ट साहबने—प्रेसीडेन्सी कालेज मद्रासके संस्कृत प्रोफेसर श्रीयुक्त रंगाचार्य एम. ए. को आज्ञा दी कि लाइब्रेरीमें तलाश करो कोई ऐसी हस्तलिखित पुस्तक तो नहीं है जो हिन्दू गणितके इतिहास पर नूतन प्रकाश डाले ? रंगाचार्यजीने खोज की तो उन्हें महावीराचार्यके गणित ग्रन्थकी तीन अधूरी प्रतियाँ मिलीं । इससे उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई । डाइरेक्टर साहबसे कहा तो उन्होंने किसी दूसरी लाइब्रेरीसे

पूर्ण प्रतिका पता लगाकर इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेकी आज्ञा दे दी। इसके बाद उद्योग करनेसे मैसूरकी लाइब्रेरीमें और मूडबिद्रीके जैनमठमें गणितसारसंग्रहकी दो पूर्ण प्रतियाँ मिल गईं।

मद्रास लाइब्रेरीकी प्रतियोंमेंसे एक प्रति तो कागजोंपर लिखी हुई संस्कृतटिप्पणीसहित है और उसमें पाँच अध्याय हैं। शेष दो ताड़-पत्रोंपर कानड़ी लिपिकी हैं। उनमें एकमें पाँच और दूसरीमें सात अध्याय हैं। मैसूर और मूडबिद्रीकी प्रतियाँ भी ताड़पत्रोंपर कानड़ी लिपिकी हैं; परन्तु हैं दोनों ही सम्पूर्ण। अन्तिम प्रतिमें प्रश्न और उनके उत्तर भी हैं। इन सब प्रतियोंकी सहायतासे बहुत बड़े परिश्र-मके साथ श्रीयुक्त रङ्गाचार्य महाशयने गणितसारसंग्रहको अँगरेजी अनुवादसहित छपाकर प्रकाशित कर दिया है। मूल्य इसका संभवतः पाँच रुपया है।

गणितसारसंग्रहके प्रारंभके श्लोकोंसे माद्धम होता है कि महावीरा-चार्यने इसे महाराज अमोघवर्षके समयमें बनाया था। राष्ट्रकूट वंशीय महाराज अमोघवर्षने ईस्वीसन् ८१४ से ८७७ तक राज्य किया है। अतः यह ग्रन्थ नवमी शताब्दिमें किसी समय लिखा गया होगा। यदि यह ठीक है तो महावीराचार्य ब्रह्मगुप्तसे पीछे और भास्कराचार्यसे पहले हुए हैं। क्योंकि ब्रह्मगुप्त सातवीं शताब्दिमें और भास्कराचार्य बारहवीं शताब्दिमें हो गये हैं। ये दोनों गणितके बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं। ब्रह्मगुप्तके गणित ग्रन्थसे इस ग्रन्थकी तुलना करनेसे माद्धम होता है कि यह उससे उत्तम है। क्योंकि इसमें गणितके नियम, विभाग आदि बहुत सरल और अच्छे हैं। इसके सिवा उदा-हरण और प्रश्न भी इसमें अधिक हैं। भास्कराचार्यने अपने सिद्धान्त-शिरोमणि, लीलावती या बीजगणितमें कहीं भी महावीराचार्यका उल्लेख

नहीं किया है। इसका कारण शायद यह हो कि महावीराचार्य जैन-धर्मावलम्बी थे या उस समय उनका ग्रन्थ उत्तर भारतमें प्रसिद्ध न हुआ हो। दक्षिणके तो वे प्रसिद्ध दैवज्ञ और गणितज्ञ थे। तैलगू भाषामें भी इस पुस्तकका अनुवाद मिलता है। इस पुस्तककी भूमिका कोलम्बिया विश्वविद्यालयके गणितके प्रोफेसर डेविड युजन स्मिथ साहबने लिखी है। उनकी राय है कि ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य और भास्कराचार्यकी गणित-पुस्तकोंका विषय यद्यपि एकसा है—विस्तारमें ही भेद है, तो भी महावीराचार्यके नियम ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्यसे बढ़े चढ़े हैं। वे कहते हैं कि यह ग्रन्थ भारतवर्षके सम्पूर्ण गणितसाहित्यमें सबसे अधिक पाण्डित्यपूर्ण है।

मैं इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद लिख रहा हूँ। यदि कोई विघ्न उपस्थित न हुआ तो वह शीघ्र ही पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया जायगा।

चेतनदास बी. ए.—लखनौ।

मेरी सोनागिर–यात्रा।

अलाहाबाद विश्वविद्यालयकी परीक्षा दे चुकनेपर एकाएक एक बहुत पुराना विचार सामने आया——इच्छा थी कि सोनागिरिक्षेत्रमें जाकर उन शान्त मूर्तियोंके दर्शन करूँ—जिन्होंने इस क्षणभंगुर संसारके सुखोंसे विरक्त होकर कठिन तप किया और निर्वाणपद प्राप्त किया।

बाबू महादेवप्रसाद, शिवलाल और मैं—तीनों ग्वालियर स्टेशनपर आये—टिकिटें कटाईं और सोनागिरके लिये रवाना हुए। गाड़ी सात बजे शामको सोनागिर स्टेशनपर पहुँची। हमारे एक मित्र मेवारामजी हैं—

उनके भाई साहिब सोनागिरजीमें स्टेशन मास्टर हैं—उन्हींके पास हम लोग जा ठहरे। उन्होंने हमारी खाने-पीने सोनेका प्रबंध कर दिया।

दूसरे दिन पांच बजे सबेरे हम लोग चल दिये। सूर्यनारायण अभी मन्दराचलमें ही लीन हैं—कुछ कुछ चाँदनी छिटक रही है। मार्गमें एक भी पथिक दिखाई नहीं देता है। जिधर देखो उधर शांति विराज रही है। सोनागिरके मन्दिर अपनी अद्भुत छटा दिखा रहे हैं। कालेजके विद्यार्थियोंको अब यह शौक पैदा होने लगा है कि किसी देहातमें भ्रमण करते हुए—लम्बी लम्बी सड़कोंको छोड़कर अपनी नई पगदंडी बनाते हुए जंगल, पहाड़ नाँघते चले जाना। हम सबने पक्की सड़क छोड़ी और झाड़ी आदिको लाँघते हुए पहाड़ीके नीचे पहुँचे। इधर पीछे फिरकर जो देखते हैं तो सूर्यनारायण मन्दराचलसे अपने सतरंगी घोड़ोंपर सवार हो धीरे धीरे बढ़े आ रहे हैं। उनकी लालिमा मनमें नये नये विचार और तरंगें उत्पन्न कर रही है। उधर दोनों ओर दहिने बायें पके हुए खेत मनमें न जाने कहाँसे शांतिके झकोरे बहा रहे हैं। सामने और ऊँचे स्थानपर शान्ति मूर्तियोंके मन्दिर वर्तमान हैं। यह वही स्थान है जहाँ संसारके सुखोंको तृणवत् जानकर त्यागके सर्वोच्च शिखरपर विराजमान बड़े बड़े महात्मा तप करते थे। यह वही स्थान है जहाँपर मुनीश्वरोंने तप किया, जीवनमरणके कठिन विषयोंको ज्ञानचक्षुओंसे देख भारतकी अध्यात्म-विद्याको पूर्णतः उन्नति पर पहुँचाया, जिससे भारतके सामने बड़े बड़े फिलासफरोंका सिर झुका हुआ है। परन्तु साथ ही यह विचार उठता ही रहा कि जिस धर्मके आचार्य त्यागःस्वरूप—त्यागकी मूर्ति हों उसके माननेवाले दुनियाके कीड़े हों और अपने चौवीस घंटे संसारमें इस तरहसे समाप्त करें जिस तरह पशुपक्षी भी पेटके पीछे नहीं करते! फिर यह विचार उठा

कि यह तो समयकी विकराल गति है इसको कोई नहीं रोक सकता और तुमको इससे क्या मतलब ? तुम किसी जैनी महाशयके दर्शन करने जाते नहीं हो; तुम तो उनके सिद्ध मुनीश्वरों और महाशान्तिवान् तीर्थंकरोंके दर्शन करने आये हो—इस विचारने सब विचारोंको दबा दिया।

हम लोग आगे बढ़े और दिगम्बरजैनधर्मशालामेंसे एक व्यासको ले कर ऊपर चल दिये।

आज बहुत वर्षोंकी इच्छा पूर्ण हुई। यदि हम Freethinker "स्वतंत्र विचारक" मार्गपर चलना चाहते हैं तो भिन्न भिन्न धर्मोंके क्षेत्रोंको अपना क्षेत्र मानना हमको नितान्त आवश्यक है। अस्तु।

पर्वतपर एकके बाद एक श्री ऋषभ, चन्द्रप्रभ, महावीरस्वामी आदि की मूर्तियोंके दर्शन करते हुए हम आगे बढ़े। सबसे प्राचीन मन्दिर हमें सं० १२७२ का मिला। मन्दिरोंकी बनावटसे माळूम होता है कि ये मन्दिर भिन्न भिन्न समयके बने हुए हैं।

ग्रीक, रोमन, सारसेनिक, मिसरानी—सब जगहकी बनावटोंके नमूने यहाँ पाये जाते हैं। एक दो मन्दिरोंके विषयमें हमारा विश्वास है कि वे ७०० वर्षसे भी पुराने हैं; चाहे मूर्तियाँ उनमें पीछे स्थापित की गई हों।

महावीर स्वामीकी मूर्तिको देखकर विक्रम सम्वत्से ४७० वर्ष पूर्वका जमाना आँखोंके सामने आखड़ा होता है। इसी समय भगवान् बुद्ध भारतसे वाममार्ग दूर कर रहे थे और अहिंसाके महामंत्रका दान हिंसक राजाओंको दे रहे थे। जिस समय जनसमूहको भगवान् बुद्ध निर्वाणपदकी ओर आकर्षित कर रहे थे; उसी समय महावीरस्वामी भी अपनी शान्तिशक्तिके सहारे अपने अटल सिद्धान्तोंका प्रचार कर रहे थे।

भारतवर्ष इन दोनों महापुरुषोंके आनेके पहले वाममार्गमें लिप्त था, वेदोंमेंसे मोहन, मारण और वशीकरणके प्रयोग निकाले जाते थे–सत्यको सब लोग भूल चुके थे।

जिधर देखो उधर पशुहिंसाका अकंटक राज्य था। यज्ञोंमें कोई पुत्रके लिए, और कोई संसारी क्षणभंगुर विजयके लिए, सैकड़ों निरपराध जीवोंका हनन कर यज्ञके पवित्र नामको बदनाम कर रहे थे। महावीरस्वामी और बुद्धदेवके निर्वाणपद प्राप्त करनेके पीछे भारतकी दशा ही और हो गई। कन्याकुमारीसे लेकर हिन्दुस्थानके हिन्दूकुश तक ही नहीं बल्कि गान्धार (कन्दहार), ईरान, मोसोपोटामिया, पारथिया आदि देशोंमें भी 'अहिंसा परमो धर्मः' की दुदुंभी बज चुकी थी; बंगालसे गुजरात तक सैकड़ों बौद्धमन्दिर, जैनमन्दिर और इन धर्मोंके सैकड़ों संघ (Monusteries) स्थापित हो चुके थे–जहाँसे प्रतिवर्ष सैकड़ों बालक धर्मके प्रचारार्थ माता वसुन्धराको अपनी शेषशय्या बनाकर दूर दूरके देशोंमें भ्रमण करते थे; जो उनपर कठोरताका वर्ताव करते थे उनपर वे शीघ्र ही दयाका श्रोत बहाते थे–वे दयाके पुतले थे।

इन संघोंमें राजा अपने प्रिय पुत्रको भी जन्मदिनके दिन जीवन भरके लिये छोड़ देता था! इसी कारणसे धर्मकी उन्नति होती थी। जहाँ लोग २४ घंटे संसारी कीड़े बने रहें और १० मिनिटके लिए मन्दिरमें जाकर चावल, खारक, नारियल या बादाम फेंक आवें क्या वहाँ किसी भी धर्मकी उन्नति होना सम्भव है?

प्राचीन समयमें मन्दिर विद्या-प्रचारके स्थान होते थे, और खास करके तीर्थक्षेत्रोंपर उपयोगी विषयोंपर व्याख्यान देनेवाले और वार्तालाप करनेवाले विद्वान् लोग अवश्य ही वास करते थे। सोनागिर

क्षेत्रपर यदि कोई ऐसी सभा स्थापित की जावे जिसमें कुछ चुने हुए विद्वान् वहाँ सदा उपस्थित रहें और आनेवाले यात्रियोंको—जो चाहे जैनी हों या हिन्दू, या अन्य कोई भी--जो प्रेमवश खिंचे चले आये हैं उन सबको अपने धर्मकी श्रेष्ठता समझावें तो विशेष लाभ होनेकी संभावना है। यह अवश्य ही बहुत कठिन बात है कि बिना दूसरे धर्मोंके खंडन किये अपने धर्मकी पुष्टि की जाय; परन्तु लाभ किसी भी धर्मको अनावश्यक न छेड़नेमें ही है। हमको यह देखकर अवश्य खेद हुआ कि धर्मशालाके पास ही एक सज्जन छोटे छोटे ट्रैक्ट बेच रहे थे—जिनमें अशान्ति और पारस्परिक द्वेषके बीज मौजूद थे।

यदि कोई ऐसे पण्डित महाशय वहाँ रहें जो यात्रियोंको दर्शन करते समय उन तीर्थंकरोंके जीवनचरित बतलावें जिनकी मूर्तियाँ वहाँ स्थापित हैं तो भी बहुत लाभ होगा। एक महाशय पूजन कर रहे थे पूजन कर चुकनेपर हमारे एक मित्रने पूछा कि महाशय, यह मूर्ति किनकी है? उनके उत्तरसे हमको कुछ शर्मिन्दा होना पड़ा—उन्होंने कहा कि यह तो हम नहीं जानते—केवल भगवान् मानकर पूजते हैं।

तीसरी बात यह देखी कि बहुतसे लोग नाम अमर रखनेके लिए मन्दिरोंकी दीवारोंपर अपना नाम कोयलेसे पैंसिलसे या गेरूसे लिख आते हैं; परन्तु उन्हें मालूम हो कि नाम मन्दिरोंमें लिखनेसे अमर नहीं होता—नाम अमर करनेके लिए कई जन्मों तक लगातार निःस्वार्थ काम करना होता है और पापबीज नाश करना पड़ते हैं। देवबंदके कोई जयचन्दजी नामके सज्जन मन्दिरोंकी दीवारोंपर तिथि, संवत् और नाम उर्दू, हिन्दी और अँगरेजमें लिख आये हैं!

चौथी बात जो मैंने देखी वह यह कि मन्दिरोंमें सफाईकी ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता है।

ब्रजमोहनलाल वर्म्मा।

नोट—वर्मा महाशय बड़े ही सज्जन हैं। यद्यपि आप जैनी नहीं हैं तो भी जैनधर्मको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। आपके विचार पढ़कर हमारे पाठक बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। —सम्पादक।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

१. जातिभेद-विचार।

हम देखते हैं कि जैनसमाजमें जातिभेदका प्रश्न उठ खड़ा हुआ है और उसकी अनुकूल प्रतिकूल चर्चा भी खूब सरगर्मीसे होने लगी है। परन्तु इस प्रश्नका विचार जिस तरहसे होना चाहिए उस तरहसे नहीं हो रहा है। कोई तो पञ्चमकाल आजानेका या होनहारका रोना रो रो कर हमें कोस रहे हैं और कोई केवल यही कह कर सन्तुष्ट हो रहे हैं कि जैनियोंमें जातिभेद न रखना चाहिए—यह सचमुच ही बहुत हानिकर है। परन्तु इस प्रकारकी चर्चासे कुछ लाभ नहीं। किसी प्रश्नके समाधान करनेकी यह पद्धति नहीं है। हमारी समझमें इसके अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही पक्षवालोंको शान्ति और धैर्यके साथ इस विषयपर विचार करना चाहिए और अपने अपने विचारोंको सर्व साधारण लोगोंपर प्रगट करना चाहिए। ऐसा करनेसे लोगोंको इस प्रश्न पर अच्छी तरहसे सोच विचार करनेका मौका मिलेगा और तब इसके अनुकूल और प्रतिकूल लोकमतके पल्ले कितने ऊँचे नीचे होते हैं यह निश्चय करनेका सुभीता होगा। इस विषयकी आलोचना करते समय नीचे लिखी हुई तथा और भी इसी तरहकी सब बातोंका विचार होना चाहिए:—

१. जाति किसे कहते हैं? जातियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई? वर्णमें तथा जातिमें क्या अन्तर है?

२. जातिभेदके विषयमें धर्मशास्त्रोंकी क्या सम्मति है ?

३. जातिभेदका तोड़ देना और कई समान जातियोंमें विवाह-सम्बन्ध प्रचलित करना ये दो बातें क्या एक ही हैं ? अर्थात् भिन्न जातियोंका सम्बन्ध होने लगनेसे क्या जातिभेदका तोड़ना कहलायगा ?

४. शास्त्रोंमें अनुलोमविवाहपद्धतिकी आज्ञा है अर्थात् शास्त्रानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने नीचेके चार तीन और दो वर्णोंकी कन्यायें ले सकते हैं। इस पद्धतिसे क्या वर्णव्यवस्थाका उल्लंघन होता था ? यदि नहीं तो एक ही वर्णकी भिन्न भिन्न जातियोंमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होनेसे वर्ण या जातिव्यवस्थाका उल्लंघन कैसे होगा ?

५. अनुलोम विवाहपद्धति क्यों उठा दी गई ? इस समय उसके अनुसार विवाह करनेसे शास्त्रोंकी आज्ञाके उल्लंघनका पातक तो न होगा ?

६. जातिभेद लौकिक धर्म है या पारलौकिक ?

७. लौकिक धर्मके नियमोंमें–जो कि लोकाश्रित होते हैं–देशकालानुसार कुछ परिवर्तन हो सकता है या नहीं ?

८. जुदा जुदा जैनजातियोंकी जनसंख्या कम होनेसे अविवाहितोंकी संख्या बढ़ती है और इससे उनका क्षय होता जाता है, यह बात दर असलमें सच है या नहीं ? यदि नहीं, तो इसके सुबूत क्या हैं ? और दूसरे कौन कौनसे कारण क्षय होनेके हैं ?

९. यदि जातियोंकी अल्पजनसंख्या ही क्षयका कारण हो तो फिर उन शास्त्रोंके वाक्य–जो कि भिन्न भिन्न वर्णोंमें भी विवाहसम्बन्ध

---

१ "आनुलोम्येन चतुस्त्रिद्विवर्णकन्याभाजना ब्राह्मणक्षत्रियविशः ।"
—नीतिवाक्यामृत सोमदेवसूरिकृत।

उचित बतलाते हैं–क्या हमें एक ही वर्ण और धर्मकी अन्तर्गत जाति-येंमें भी विवाहसम्बन्ध करना उचित न बतला सकेंगे ?

१०. जैनसमाजको जीवित रखना और वर्तमान जातिव्यवस्थाका थोड़ासा उल्लंघन करना इन देोमें अधिक महत्त्वकी बात कौनसी है?

११. अस्तोन्मुख जैनजातियोंके साथ कन्याव्यवहार प्रचलित करना स्थितिकरण कहलायगा या नहीं ?

१२ वर्तमान जैनजातियोंकी गणना किन किन वर्णोंके भीतरकी जा सकती है ? शूद्र वर्णकी भी कोई जाति है या नहीं ?

१३. यदि जैनजातियाँ कई वर्णकी हों, तो उनमेंसे कमसे कम एक वर्णकी अन्तर्गत जातियाँ तो परस्पर विवाहसम्बन्ध कर सकती हैं या नहीं ?

१२. जातिभेदके उठा देनेसे अथवा सम्पूर्ण जैनजातियोंमें परस्पर विवाहादि सम्बन्ध जारी कर देनेसे धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और व्यावहारिक क्या क्या हानियाँ हो सकती हैं ?

१५. भिन्न भिन्न जातियोंका रक्तसम्बन्ध होनेसे शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे कोई हानि तो न होगी ? कई विद्वानोंकी राय है कि भिन्न जाति और भिन्न वर्णके साथ विवाहसम्बन्ध होनेसे बलिष्ठ और दीर्घ-जीवी सन्तान उत्पन्न होती है। यह सिद्धान्त कहा तक ठीक है ?

१६. जैनियोंकी भिन्न भिन्न जातियोंमें कन्याव्यवहार न हो सक-नेमें क्या क्या बाधायें हैं ? उनका दूर करना क्या सर्वथा असंभव है ?

हम आशा करते हैं कि हमारे जैनसमाजके विद्वान् इन सब बातोंका ऊहापोह करके अपने अपने विचार सर्व साधारणपर प्रगट करनेकी कृपा करेंगे जिससे कि जातिभेदके प्रश्नको लोग शीघ्र ही हल कर सकें।

२. पं० पन्नालालजी गोधाकी सम्मति ।

जैनगजट अंक ३१ में श्रीयुक्त गोधाजीने एक लेख लिखकर हमारे जातिभेदसम्बन्धी आन्दोलन पर बड़े गहरे गहरे कटाक्ष किये हैं और इसे अँगरेजोंका अनुकरण बतलाया है। उनके लेखका प्रारंभ तो एकदम पञ्चम स्वरसे हुआ है; परन्तु आगे उतरते उतरते वह स्वर बिलकुल हलका हो गया है–और अन्तमें आपने स्पष्ट शब्दोंमें केवल जैनियोंका ही नहीं किन्तु सब ही समाजोंका परस्पर रोटीबेटीव्यवहार होना संभव तथा उचित बतला दिया है। आप कहते हैं कि "देश देशमें समाज समाजमें भोजनादिककी क्रिया पृथक् पृथक् है और एक दूसरेको अपवित्र मानता है, तब कहिए सबका खानपान एक कैसे हो सकता है ? जरा विचार करके देखो, इसी वास्ते कहना पड़ता है कि प्रथम आचरणकी शुद्धि कीजिए। जब सर्व समाजोंका शुद्धाचरण शास्त्रोक्त हो जायगा, तब कोई भी किसीको दोष नहीं लगा सकेगा–तब स्वसमान शुद्ध कुलवालेके साथ स्वयं ही एक पंक्तिमें भोजन कर सकेंगे। उस समय आप बेटीव्यवहारका कार्य एक करनेकी चेष्टा करोगे तो सफलीभूत हो सकोगे–अन्यथा अशक्यानुष्ठान ही समझिए।" अन्तमें आपने अपने लेखका सारांश बतलाया है कि—"आप शीघ्र ही शास्त्रोक्त शुद्ध खानपानकी प्रवृत्ति चलानेपर कमर कसिए जिससे समाज एक सूत्रमें बँध जाय, तो खानपान एक होकर विवाहादि सर्वके साथ होकर जातिबन्धन मिट सकता है।" आपके कहनेका अभिप्राय यह है कि अभी जितनी जातियाँ हैं उन सबके खानेपीनेके रीति-रवाज शुद्धता अशुद्धता, छुआछूत, सखरी निखरी, कच्ची पक्की, जूँठन ऊँठन आदिके विचार जुदा जुदा हैं। वे एक जातिके दूसरी जातिको और एक देशवालेके दूसरे देशवालोको पसन्द नहीं आते हैं—सब अपनी अपनी

बातोंको ही अच्छा और दूसरोंकीको बुरा समझते हैं। ऐसी हालतमें रोटी–बेटी–व्यवहार एक नहीं हो सकता। इसलिए पहले सबके खान-पानको सुधारकर शास्त्रोक्त कर देना चाहिए। ऐसा होनेपर सब जा-तियोंमें रोटी–बेटी–व्यवहार होनेमें कोई हर्ज नहीं है। इस बातको हम भी मानते हैं। शास्त्रोक्त खानपानकी शुद्धताको हम बहुत आव-श्यक समझते हैं, परन्तु गोधाजीके लेखसे एक तो यह मालूम नहीं हुआ कि उन्होंने जो जुदा जुदा जातियोंके खानपानसम्बन्धी रवाज बतलाए उनमेंसे कौनसे शास्त्रोक्त हैं और कौनसे अशास्त्रोक्त। इसका ज्ञान हो जानेसे शास्त्रोक्त आचारोंकी ओर जोर दिया जा सकता था। दूसरे खानपानसम्बन्धी रवाजोंकी भिन्नता रोटीबेटीव्यवहारका कोई प्रधान बाधक कारण नहीं है। ऐसी कई जातियाँ हैं जिनके एक प्रान्तमें रहनेवाले लोगोंके रवाज दूसरे प्रान्तमें रहनेवाले लोगोंसे नहीं मिलते, तो भी उनमें रोटी बेटीव्यवहार होता है। इसके सिवा रोटी-बेटीव्यवहार जारी हो जायगा तो शनैः शनैः भिन्न भिन्न जातियोंके आचारोंपर भी परस्परका प्रभाव पड़ेगा और समयान्तरमें दोनोंका प्रायः समान आचार व्यवहार हो ही जायगा। तीसरे जहाँ तक हमारा खयाल है जैनियोंकी सब ही जातियोंका खानपान प्रायः शुद्ध है–साधारणतः अभक्ष्य पदार्थोंका व्यवहार सब ही जातियोंमें वर्जित है–मद्य, मांस, मधु आदिके सेवनका रवाज किसीके यहाँ भी नहीं है–न्यूनाधिक छुआछूत भी सब ही मानते हैं। तब जैनजातियोंमें परस्पर रोटीबेटीव्यवहार जारी करनेमें डर किस बातका है? क्या सखरी निखरी, कच्ची पक्की, चौका चूल्हा, दाहिना हाथ शुद्ध और बायाँ अशुद्ध ऐसी छोटी छोटी और प्रायः अज्ञानतामूलक बातोंके भेदके कारण ही इस जैनसमाजके जीवनमरणके प्रश्नको दबा देना चाहिए? अस्तु, इस विषयमें तो हमारा और गोधाजीका मतभेद रहा कि खानपानका

भेद रोटीबेटीव्यवहारमें बाधक कारण है; परन्तु इस विषयमें गोधाजीकी भी पूर्ण सम्मति है कि जैनजातियोंमें परस्पर रोटीबेटीव्यवहार हो सकता है। पर इसके पहले वे सबका खानपान शास्त्रोक्त करा देना आवश्यक समझते हैं। अच्छी बात है।

३. छोटी छोटी जैनजातियोंकी दुर्दशा।

जैनियोंकी सब जातियोंमें परस्पर रोटी-बेटी-व्यवहार होने लगे इसके विरुद्धमें प्रायः वे ही लोग हैं जो आप किसी जनसम्पन्न जातिमें उत्पन्न हुए हैं और दूसरी अल्पजनसंख्यक जातियोंकी दुर्दशाका जिन्हें जरा भी ज्ञान नहीं है। ऐसे लोगोंके कठिन हृदयोंको द्रवित करनेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक छोटी जातिकी दुर्दशाका चित्र उनके सामने रक्खा जाय और बतलाया जाय कि बिना वर्तमान जातिबन्धनोंको शिथिल किये इनका क्षय अवश्यंभावी है। पिछले अंकमें हमने ऐसी दो तीन जातियोंका थोड़ासा उल्लेख किया था। इस महीनेमें दो जातियोंके दुर्दशा-चित्र और भी हमारे पास आये हैं। उनका आभास हम यहाँ प्रकट किये देते हैं और आशा करते हैं कि हमारे पाठक आगामी अंक तक दश पाँच छोटी छोटी जातियोंका वर्णन और भी हमारे पास प्रकाशित करनेके लिए भेजेंगे। जैनमित्रके भूतपूर्व उपसम्पादक बाबू सूरजमलजीने '**लमेचू जातिका अवश्यंभावी नाश**' शीर्षक एक विस्तृत लेख हमारे पास भेजा है। उसका सारांश यह है कि लमेचू जातिके सब मिलाकर लगभग ५००—६०० घर हैं। करहल (मैनपुरी) और अटेर (ग्वालियर) तथा इनके समीपवर्ती ग्रामोंमें इस जातिकी अधिक बस्ती है। इनके सिवा हरदा, सनावद और भेलसा इन तीन

स्थानोंमें भी ३०–३९ घर हैं। कोई दश बारह वर्ष पहले करहलमें लमेचू जातिके ३०० घर थे; परन्तु इस समय केवल २०० ही घर रह गये हैं और उनमें भी ९० घर ऐसे हैं जिनमें एक एक दो दो विधवायें या रंडुए हैं। अतएव १०–१५ वर्षमें इन ५० का भी नाश समझिए ! इस तरह यह जाति बिलकुल मरणोन्मुख हो रही है। यदि ये ५००–६०० घर ही एकताके सूत्रसे बँधे होते तो भी कुछ आशा की जा सकती थी; पर नहीं इनमें भी दो भेद हो रहे हैं– एक नीच और एक ऊँच ! ऊँचनीचोंमें रोटी-व्यवहार तो है पर बेटीव्यवहारमें 'मीनमेप' लगती है। ऊँच, नीचकी बेटी ले तो लेते हैं पर देते नहीं हैं ! ऊँचोंकी संख्या कम है, इसलिए उन्हें अपनी कन्याओंके लिए यथेष्ट वर नहीं मिलते। इससे पूर्वमें जो जो गोत्र सम्बन्ध करते समय टाले जाते थे उनका भी अब ग्रहण होने लगा है और अनमेल विवाह तो बहुत ही होते हैं। नीच समझे जानेवालोंकी यह स्थिति है कि उन्हें कन्यायें नहीं मिलती हैं। इसलिए पचासों युवक कुँवारे ही फिर रहे हैं। इसके सिवा बदला भी होता है और कन्या-विक्रय भी जारी है। होना ही चाहिए। 'अर्थी दोषो न पश्यति।' जिन्हें अपने पुत्र ब्याहना हैं, उन्हें लाचार होकर यह करना पड़ता है; इसमें उनका दोष नहीं। इस तरह लमेचू जाति बड़ी दुर्दशामें है। दो वर्ष हुए करहलमें हमने अपने लमेचू भाइयोंको एकत्र करके समझाया था कि यह ऊँच नीच भेद मिटा देना चाहिए; पर सुनता कौन है ? जहाँ शिक्षाका अभाव है और अपनी स्थितिका ज्ञान नहीं है, वहाँ ऐसी बातोंपर कौन ध्यान देता है ? प्यारे भाइयो, अपने भविष्यका विचार करके अब भी सचेत होजाओ और अपनी रक्षाका यत्न करो। थोथी बडाई और ऊँचनीचपनके चक्करमें पड़कर अपना सर्वनाश मत कर लो। हम हरदानिवासी इस ऊँचनीचपनके भेदको तोड़नेके

लिए तैयार हैं। इस विषयमें जिन्हें कुछ पूछताछ करना हो हमसे करें। हम एक 'लमेचू' नामक मासिकपत्र निकालनेवाले हैं—डिक्लैरेशनके लिए दरख्वास्त दे दी है।" दूसरा लेख श्रीयुक्त दुलीचन्द लालमन सरावगी, पो० कोथली जिला बुलडानासे आया है। उसका सारांश यह है—"जैनहितैषीके गताङ्कमें पैंचविसों और गोलालारे भाइयोंके मिलनेका समाचार पढ़कर बहुत खुशी हुई। क्योंकि हम भी गोलालारे हैं। इस प्रान्तमें हमारे कुल ४०—५० घर हैं। हम लोगोंके कष्टका तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। हमारे यहाँ अविवाहित ही अविवाहित दिखते हैं। थोड़े घर होनेके कारण दो हजार रुपयोंसे कममें तो विवाह हो ही नहीं सकता। विधवा स्त्रियोंकी संख्या विवाहितोंसे अधिक है। अत्याचार भी बहुत होते हैं। परवारोंमें तो आठ साँकें मिलाई जाती हैं पर यहाँ तो चारका भी ठिकाना नहीं है—दो साँकें मिलाकर ही निर्वाह करना पड़ता है। लोगोंमें मूर्खता बहुत ज्यादह है। सब घरोंमें पांच सात पुरुष ही ऐसे होंगे जो भगवानका पूजनपाठ पढ़ सकें! जातिका एक मन्दिर है, पर दर्शन करनेको कोई विरला ही जाता होगा! एक बड़ी ही भयंकर बात यह है कि आजकल हमारी जातिके कई लोग जहाँ तहाँ एट्ठके होकर पुनर्विवाह जारी करनेकी चर्चा किया करते हैं!! इसका कारण यही है कि अविवाहितों और विधवाओंकी संख्या बढ़ रही है। इन सब बातोंको देखकर हमें अपनी जातिका भविष्य बहुत ही निराशाजनक मालूम होता है। मेरी प्रार्थना है कि आप लोग कुछ उपाय करके इस दीन जातिका उद्धार करें जिससे यह रसातलमें जानेसे बच जावे। दमोह जिलेके गोलालारोंसे हमारा मेल करा दीजिए हम तैयार हैं। वहाँके कुछ मुखियोंका पता ठिकाना हमें बतला दीजिए जिससे हम उनसे पत्रव्यवहार कर सकें।" इस पिछले लेखके विषयमें हमें इतना

कहना है कि गोलालारा जातिके घर दमोह और बुलडानाके सिवा इटावा तथा झाँसी आदि जिलोंमें भी हैं। इसलिए इस जातिके मुखि-योंको चाहिए कि अपने तमाम घरोंका पता लगाकर उनसे टूटा हुआ सम्बन्ध जोड़नेका यत्न करें और साथ ही पँचविसा आदि और भी दो एक जातियोंसे सम्बन्ध करनेका भी उद्योग करें।

४. जैनगजटका मौनभङ्ग।

कई महीने चुप रहनेके बाद जैनगजटका कण्ठ फिर खुला है। वह अपने ग्रहण किये हुए मौनव्रतकी रक्षा न कर सका—हितैषी और उसके दलके 'दुष्टोंसे' छेड़छाड़ न करनेकी प्रतिज्ञाको वह तोड़ बैठा और अब वह अपनी सारी शक्तियोंका व्यय केवल अपने कण्ठको तीव्र करनेमें ही कर रहा है। उसके अभी अभीके चार पाँच अंक देखनेसे तो मालूम होता है कि वह बिलकुल पंचम तक पहुँच चुका है; परन्तु आगे यह देखना है कि इस स्वरको वह अब तक स्थिर रखता है। अच्छा हो यदि उसे पहलेके समान थकावट या (गौर-वकी भाषामें) वैराग्य उत्पन्न न हो जाय और उसके मित्र उसे फिर मौन धारण करनेकी सम्मति न देने लगें। हम उसके मौनको उतना अच्छा नहीं समझते जितना कि उसके तीव्र कण्ठशोषको अच्छा सम-झते हैं। जैनसमाजका कल्याण भी हम इसीमें देखते हैं। क्योंकि अभी तक जैनसमाजके थोड़ेसे लोगोंमें उसके पुराने नामके कारण उसपर कुछ श्रद्धा बनी हुई है और वह तब ही दूर होगी जब कि वह हम लोगोंपर ऐसी ही सभ्य वाक्यवृष्टि करता रहेगा जैसी कि उसने अभी चार पाँच अंकोंसे फिर शुरू कर दी है। उसका दूस-रोंको स्वार्थी, भ्रष्ट, कृतघ्न, नीच आदि सिद्ध करनेका असत्प्रयत्न ही

उसे बचे खुचे श्रद्धालुओंकी आँखोंसे उतारनेका कारण होगा। इसमें हमें जरा भी सन्देह नहीं है और इसलिए हम उसके मौनभङ्गपर हर्षः प्रगट करते हैं। वसन्तकाल आ गया है, अब पाठकोंको 'काक काकः पिक पिकः' के समझनेमें बहुत कष्ट न उठाना पड़ेगा!

५. मौनभङ्ग हुआ क्यों?

जब तक श्रीमती रत्नमालाके जिम्मे यह गाली गलौज और कोसने कलपनेका काम रहा, तब तक जैनगजटके दूरदर्शी संचालकोंने कोई जरूरत न समझी कि इस काममें जैनगजट शरीक किया जाय और उसकी पालिशीमें व्यर्थ ही कुछ अन्तर डाला जाय; परन्तु जब इधर कोसते कलपते कलपते रत्नमालाका अन्त हो गया और सेठोंकी आम्नायका एक अच्छा सहारा गिर गया तब लाचार होकर उसे अपना मौन भङ्ग करना पड़ा। रत्नमालाके बन्द हो जानेके कारण जैनसमाजकी जो हानि हुई थी आशा है कि जैनगजट उसको बहुत शीघ्र पूरी कर देगा।

---

६ जैनगजटके आक्षेप।

अबकी बार जैनगजटकी दशा बड़ी ही शोचनीय हो गई है। अपनी उमरके १८ वर्षोंमें वह इतना नीचे कभी न आया था। उचित अनुचित, झूठ सच, बुरे भलेका विचार छोड़कर अब तो वह जो चाहता है वही बक देता है। इस कार्यमें उसके कुछ समविचारवालोंने भी योग दिया है। उसकी कृपासे वर्षोंके बाद उन्हें भी सुरसे सुर मिलानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया है। वे अब श्रीमती रत्नमालाके अभावके कष्टको भूल रहे हैं। हितैषीपर जो कुछ आक्षेप किये जाते हैं, उनका उत्तर देनेमें वह कभी नहीं चूकता—अब भी वह आक्षेपोंके उत्तर देगा; परन्तु जो आक्षेप ही नहीं हैं—कटाक्ष ही नहीं हैं—मतभेदस-

म्बन्धी आक्रमण ही नहीं हैं—निरी गालियाँ हैं, जिनमें सभ्यताकी, सत्यताकी, शालीनताकी गन्ध ही नहीं है—केवल हार्दिक कलुषताके उद्गार हैं उनका क्या तो उत्तर दिया जाय और क्या समाधान किया जाय। हमारी समझमें ऐसे आक्षेपोंका समाधान हमारे तथा जैनगजटके पाठक स्वयं ही कर लेंगे—हमारे भाई अब इतने भोले नहीं रहे हैं कि हमारे बिना लिखे वे उनकी असलियतको स्वयं न समझ सकें। हाँ, जो आक्षेप ऐसे होंगे जिनसे लोगोंको भ्रम हो जानेकी संभावना होगी उनका समाधान अवश्य कर दिया जायगा।

७. हितैषी और ग्रन्थरत्नाकर।

जैनगजटके सम्पादक महोदयको अथवा उसके लेखकोंको जब जैनहितैषीके विषयमें कुछ लिखनेके लिए लाचार होना पड़ता है और उसके विचारोंके खण्डनके लिए उन्हें युक्तियाँ मिलती नहीं हैं तब उन्हें जैनग्रन्थरत्नाकरका स्मरण करना पड़ता है और उसके सम्बन्धसे दश पाँच उल्टी-सीधीं कहकर सन्तोष मान लेना पड़ता है। जिन दिनोंमें लोग छापेको बुरा समझते थे—इसके लाभोंसे वे अपरिचित थे, उन दिनोंमें तो यह चतुराई कुछ काम कर भी जाती थी; परन्तु ये महात्मा ऐसे दूरदर्शी हैं कि अब भी वही रोना रोते जाते हैं और समझते हैं कि अब भी यह युक्ति काम कर जायगी। बेचारोंकी इस अज्ञानतापर बड़ा ही तरस आता है। जैनगजटके सम्पादक महाशय कहते हैं—"जैनहितैषीकी आन्तरिक इच्छा है कि लोग जितने अधिक भ्रष्ट होंगे उतनी ही अधिक छपी पुस्तकोंकी विक्री होगी। ये लोग समाजकी धार्मिक दशापर कुछ विचार नहीं करते हैं और छपी हुई पुस्तकोंकी दूकानको रत्नागार (?) बनानेके अभिप्रायसे ठकबाजी (?) लगा कागज़ी

घोड़े (जैनहितैषी आदि) दौड़ाकर समाजकी आँखोंमें धूल झोंक रहे हैं।" आगे चलकर लोगोंकी दरिद्रताकी दुहाई देकर आप पुस्तक छपानेवालोंके अत्याचारका वर्णन करते हुए कहते हैं—" जैनियोंमें अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं जो कठिन परिश्रमसे आजीविका करते हैं और अपने बालकोंको जिस तिस प्रकार विद्याध्ययन कराते हैं। लिखनेकी अपेक्षा उन्हें पुस्तकोंका एक एकका आठ गुना मूल्य देना असह्य मालूम होता है—कितने ही गरीब तो इस बोझके मारे दूरसे ही हाथ जोड़कर अपने बालकोंको घर बिठा लेते हैं और जैनहितैषीके जीको रोते हैं किन्तु इन काहिलोंको क्या कोई राजा हो या रङ्क इन्हें तो अपने मांडे हलवासे मतलब। समाज भले ही अशिक्षित रहो इसकी इन्हें कुछ परवा नहीं। इनका पेट पहले भर देना चाहिए—धर्मशिक्षा प्राप्त न होनेके कारण जैनी अपनी आत्मिक उन्नति भले ही न कर सकें और रसातलको पहुँच जायँ परन्तु स्वार्थान्ध महापुरुष और कृतघ्नियोंको उसका कुछ दर्द नहीं है। उन्हें तो केवल अपने अर्थसे प्रयोजन है। धिक्कार है ऐसे उद्देश और आजीविकाको कि जिसमें आप डूबें और साथमें बहुतोंको ले बैठें।" इन उद्गारोंको पढ़कर एक साधारण आदमी भी समझ सकता है कि जैनगजट सम्पादकका असली अभिप्राय क्या है। हितैषीको छापेके बहानेसे बदनाम करके विना युक्तिके ही उसके पक्षको असत् सिद्ध करनेका ही यह हास्यास्पद प्रयत्न है अन्यथा समुद्रयात्राके लेखके खण्डन इनसे उद्गारोंका क्या सम्बन्ध था? पिछले अवतरणमेंसे यदि 'जैनहितैषी' आदि दो एक शब्द निकाल कर उनके स्थानमें छापेके विरोधियोंके नाम लिख दिये जायँ तो पाठकोंको विश्वास हो जायगा कि ये वाक्य छापेके विरोधियोंके लिए ही लिखे गये हैं और वास्तवमें छापेके प्रचारकोंके विषयमें तो ये आक्षेप

किये ही नहीं जा सकते हैं। पाठक, कृपाकरके उक्त अवतरणको 'जैनहितैषी' आदि दो एक शब्द निकालकर एक बार अवश्य पढ़िए और देखिए कि उसकी गालियाँ किसपर पड़ती हैं? जैनगजट सम्पादक ठीक ही लिखते हैं कि "लोग पुस्तकोंके बिना भले ही अशिक्षित रहो इसकी इन्हें क्या परवा? कोई राजा हो या रङ्क इससे इन धनोन्मत्त काहिलोंको क्या? इत्यादि।" छापा अच्छा है या बुरा इस प्रश्नको उठानेकी यहाँ जरूरत नहीं है—इसकी चर्चा पहले बहुत हो चुकी है—इसका समाधान भी हो चुका है और जो थोड़ी बहुत कसर थी उसे वर्तमान समय और छापेका प्रत्यक्ष लाभ पूरा कर रहा है। जैनगजट और उसके दश बीस दुराग्रही अनुयायियोंको छोड़कर आज सारे जैनसमाजमें छापेकी प्रतिष्ठा स्थापित हो चुकी है। अब रही जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयकी लूटकी बात, सो इसके लिए इस कार्यालयके स्वामी आज प्रतिज्ञा करते हैं कि "यदि जैनगजटके श्रद्धास्पद सर्वस्व धर्मात्मा सेठ और पण्डितगण सर्वसाधारणको जैनग्रन्थ इसी प्रकार सुलभतासे देनेका प्रण करें—कोई ऐसा हस्तलेख—कार्यालय खोल देवें जिसमें प्रत्येक ग्रन्थकी हजार हजार दो दो हजार शुद्ध प्रतियाँ हर समय तैयार मिल सकें और दाम भी उनका छापेके ही लगभग रक्खा जाय अथवा एक शुद्धप्रेस ही ऐसा खोल देवें—जिसमें सारी वस्तुयें और सारे कर्मचारी शुद्ध हों और उसमें शुद्ध जैनग्रन्थ छापे जावें—तो हम आज ही इस कार्यालयको उठा देते हैं—अबसे एक भी जैनग्रन्थ हमारे द्वारा प्रकाशित न होगा।" पर यदि आप या आपके स्वामी ऐसा करनेके लिए तैयार न हों—केवल जैनसमाजको अपने ही जैसे कूपमण्डूक बनाये रखना चाहते हों, तो बस चुप रहिए—आपकी बकबकपर कोई ध्यान नहीं दे सकता।

८. समुद्रयात्रा।

जैनहितैषीके गत दूसरे अंकमें साहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'समुद्रयात्रा' शीर्षक लेखका अनुवाद प्रकाशित हुआ था। रवीन्द्रबाबूके लेख कैसे युक्तिपूर्ण और गवेषणा पूर्ण होते हैं, इसके बतलानेकी यहां आवश्यकता नहीं है। उनके लेखपर किसी प्रकारकी टीका टिप्पणीकी आवश्यकता न थी तो भी हमारे पाठकोंको कुछ भ्रम न हो जाय इस कारण हमने उसके नीचे एक विस्तृत नोट लगा दिया था और उसमें बतला दिया था कि जैनशास्त्र समुद्रयात्राका विरोध नहीं करते। अपने सम्यक्त्व और चारित्रकी रक्षा करके पृथ्वीके प्रत्येक भागमें जानेके लिए जैनीको आज्ञा है; परन्तु जैनगजटको न तो रवीन्द्रबाबूका लेख ही पसन्द आया और न हमारा नोट। उसने अपने पाठकोंको विश्वास करा दिया कि "जैन हितैषीकी आन्तरिक इच्छा है कि लोग जितने अधिक भ्रष्ट होंगे उतनी ही अधिक छपी पुस्तकोंकी विक्री होगी।" वह पूछता है कि "क्या विलायतके मार्गमें और विलायतमें इन्होंने अपने गुरुभाई नियत कर रक्खे हैं जो जहाजमें चौका लगाकर शुद्ध प्रासुक भोजन परोसेंगे अथवा विलायतमें जैन आश्रम स्थापित करके प्रेमीजीके प्रेमियोंकी बाट जो रहे हैं।" इस विषयमें उसने एक लम्बा चौड़ा लेख लिखकर विलायतयात्राका निषेध किया है। उसकी एक युक्ति तो यह है कि लाभान्तरायके क्षयोपशमसे अर्थकी प्राप्ति होती है—चाहे स्वदेशमें रहो चाहे विलायतमें जाओ। विलायत जानेवाले भी दरिद्र देखे जाते हैं और स्वदेशमें रहनेवाले भी धनी हो जाते हैं। दूसरे विलायतमें शुद्ध भोजन नहीं मिल सकता और न धर्मकी रक्षा हो सकती है। इसकी पुष्टिमें उसने एक बैरिस्टर साहबका लेख उद्धृत

किया है जिसमें बतलाया गया है कि ' प्रेजइनके ' भोजमें बैरिस्टरोंको कैसा खाना खाना पड़ता है। इस विषयमें हमारा निवेदन यह है कि अमुक अमुक लोगोंने इंग्लेंडमें अभक्ष्य भक्षण किया था अथवा वहाँ यहाँ सरीखे खानेपीनेके सुभीते नहीं हैं अथवा वहाँ छुआछूत नहीं पलता है, इन सब बातोंसे समुद्रयात्राका निषेध नहीं हो सकता। क्योंकि ये सब अड़चनें ऐसी हैं जो प्रयत्न करनेसे दूर हो सकती हैं। इनसे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि कोई धर्मरक्षापूर्वक विलायतयात्रा कर ही नहीं सकता। किसी समय यह बात ठीक थी; परन्तु अब विलायत-प्रवासी भारतवासियोंकी संख्या इतनी बढ़ गई है कि उनके उपयो-गमें आनेवाली आवश्यक वस्तुयें वहाँ सुभीतेसे मिलने लगी हैं और इस प्रकारके साधन वहाँ दिनपर दिन बढ़ते जाते हैं। और थोड़ी देरके लिए ऐसा भी मान लिया जाय कि जैनियोंकी धर्मरक्षाका वहाँ अब भी कोई साधन नहीं है तो क्या इतनेसे समुद्रयात्राका निषेध हो गया और समुद्रयात्राकी अनावश्यकता सिद्ध हो गई? नहीं, जो जैन-जातिको उन्नत अवस्थामें देखना चाहते हैं उनका कर्तव्य होना चाहिए कि वे विलायतयात्राकी आवश्यकताका प्रतिपादन करें और इसके लिए जातिके धनिक लोगोंको उपदेश देवें कि वे वहाँपर ऐसे साधन खड़े कर देवें जिससे कि एक साधारण जैनी भी अपने आचा-रकी रक्षा करके विलायतयात्रा कर सके। जैनगजटके सम्पादक महा-शय धैर्य रक्खें—वह दिन बहुत दूर नहीं है जब विलायतमें भी जैना-श्रम खुल जावेगा और जैनजातिके प्रेमी वहाँ अपने प्रेमियोंकी बाट देखा करेंगे। आपने जिस समय यह लेख लिखा है उसके पहलेहीसे बम्बईके कई धनिक इस विषयपर विचार कर रहे हैं। लाभान्तरायके क्षयोपशमकी तो एक ही कही। इस उद्योगशीलता, उन्नति और बढ़ा-

बढ़ीके जमानेमें ऐसा ऊँचा उपदेश आप जैसे महात्माओंके बिना और कौन दे सकता था? अरे भाई, यह समुद्रयात्रा आप जैसे कूप-मण्डूकोंके और संतोषियोंके लिए थोड़े ही है। यदि ऐसा होता तो हम तो इसका बिलकुल ही निषेध कर देते; परन्तु यह जमाना तो जैनियोंमें भी ऐसे लोग उत्पन्न कर रहा है जो संसारके दूसरे उन्नति पथके पथिकोंसे जरा भी पीछे नहीं रहना चाहते हैं। धन और ज्ञान दोनोंके सम्पादनके लिए उन्हें विलायतयात्रा आवश्यक प्रतीत हो रही है। केवल निषेध कर देनेसे या लाभान्तरायके क्षयोपशमकी युक्ति दे देनेसे ये कैसे मान जावेंगे? अब लाभ तो इसीमें है कि उनकी धर्मरक्षाके साधन वहाँपर खड़े कर दिये जायँ और उनसे कहा जाय कि भाइयो, उद्योग करो! देशमें, विदेशोंमें, जलमें, स्थलमें सर्वत्र परिभ्रमण करके जिस तरह हो अपनी जन्मभूमिके, अपनी जातिके और अपने धर्मके गौरवकी वृद्धि करो!

९ दूसरी चढ़ाई।

पूज्यवर पं० गोपालदासजी बरैयापर 'दस्सों बीसोंके मामले'को लेकर जो पहली चढ़ाई की गई थी, उसे हमारे पाठक अभीतक भूले न होंगे। वर्षोंकी 'तू-तू मैं-मैं' के बाद वह किसी तरह शान्त हुई थी कि अब जैनगजट और उसके पृष्ठपोषकोंने पण्डितजीपर एक दूसरी चढ़ाई करनेकी तैयारी की है। इटावामें किसी ईसाईके प्रश्न करनेपर पण्डितजीने कहा था कि "एक तो जहाँ जहाँ मनुष्योंका निवासस्थान है वहाँ जीवनापयोगी वनस्पतियाँ अवश्य ही मिलती हैं; पर यदि कहीं न भी मिलती हों तो भी वहाँके मनुष्य किसी एक मांसको त्याग कर या सबको ही ग्रहण करते हुए अव्रतसम्यग्दृष्टिरूप जैन

धर्मको धारणकर अपनी शक्तिके अनुसार आत्मकल्याण कर सकते हैं। क्योंकि गोम्मटसारमें अव्रतसम्यग्दृष्टिका लक्षण करते हुए कहा है कि वह न तो इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होता है और न त्रस तथा स्थावर जीवोंकी हिंसाका त्यागी होता है-केवल जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए तत्त्वोंका श्रद्धान करता है।" बस, अबकी बार पंडितजीका यही कथन चढ़ाईकी तैयारीका कारण हुआ है। इस कथनसे पण्डितजीका अभिप्राय यह है कि जैनधर्म सार्वभौम और सार्वजनिक धर्म है। इसे सब कोई धारण कर सकते हैं। जाति पाँति, उच्चत्व नीचत्व, देश विदेश, रंग रूप आदि बातें इसके धारण करनेमें बाधक नहीं हो सकती हैं। सूर्यके प्रकाशसे लाभ उठानेका जिस तरहसे प्रत्येक जीवको अधिकार है जैनधर्मसे भी आत्मकल्याण करनेका सबको अधिकार है। तब जिस तरहसे शाकभोजी या अन्नभोजी जैनधर्मको धारण कर सकते हैं उसी तरहसे मांसभोजी भी उससे वंचित नहीं रह सकते। यद्यपि जैनधर्ममें ऐसी शक्ति है कि यह अपना प्रभाव डालकर धीरे धीरे मांसभोजीको अन्नभोजी बना देगा; परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि मांसभोजीकी अवस्थामें वह जैनधर्मका श्रद्धान विश्वास—भी नहीं कर सकेगा। पण्डितजीका यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि अव्रतसम्यग्दृष्टी जैनी मांस खाने लगे; किन्तु वे कहते हैं कि मांस खानेवाला अव्रतसम्यग्दृष्टि हो सकता है। उनकी स्वतन्त्र विचारशक्तिको जो सहन नहीं कर सकते हैं अथवा उनकी स्पष्टवादिताके कारण जो उनके शत्रु हो गये हैं वे लोगोंको यह कहकर भड़का रहे हैं कि लो, अब पण्डितजी सम्यग्दृष्टियोंको मांसभक्षण सिद्ध करने लगे हैं। ऐसी बातोंसे साधारण बुद्धिके लोग सचमुच ही भड़क उठते हैं और समाजमें एक बड़ी भारी अशान्ति खड़ी हो जाती है। जैनग-

जटमें इस विषयपर कई लेख निकल चुके हैं और शायद आगेके अंकोंमें भी उनका ताँता जारी रहेगा। हम इन सब लेखोंको पढ़कर आगामी अङ्कमें एक विस्तृत लेख लिखेंगे। तब तक पाठकोंको चाहिए कि इस विषयपर धीरतासे विचार करें और यह विश्वास रक्खें कि पण्डितजीने जो कुछ कहा है वह जैनशास्त्रोंसे सर्वथा अनुकूल है। इसे जैनसमाजका दौर्भाग्य ही समझना चाहिए कि वह अपने एक स्वाधीनचेता विद्वानकी खोजकर निकाली हुई नवीन युक्तिका इस तरह सत्कार करता है। जैनधर्मको 'सार्वभौम' बनानेके लिए पण्डितजी जो परिश्रम कर रहे हैं उसका क्या जैनसमाज इसी रूपमें बदला चुकावेगा ? शोक !

सुधार और सुधारक।

संसारके प्रत्येक पदार्थमें कुछ न कुछ परिवर्तन निरन्तर ही हुआ करता है। एक पदार्थकी जो अवस्था आज है वह कल नहीं रहती और जो कल है वह परसों नहीं रहती; बल्कि सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि जो अवस्था इस समय है वह इसके दूसरे ही समयमें नहीं रहती है। यह परिवर्तन जिस तरह जडजगत्में हुआ करता है अर्थात् जिस तरह कुछ समय बीतनेपर किसी जड वस्तुका रँगरूप बदल जाता है, अंग भंग हो जाता है, उसमें जीर्णता, दुर्बलता, मलिनता आ जाती है उसी तरहसे चैतन्यजगतमें भी परिवर्तन होते रहते हैं। जड़ पदार्थोंके समान मनुष्यके धार्मिक, सामाजिक आदि विचारों, सिद्धान्तों, रीति-रवाजों, और क्रियाकर्मोंके भी रंगरूप बदलते रहते हैं, अंगभंग होते रहते हैं और उनमें दुर्बलता, मलिनता, जीर्णता आदि रोग प्रवेश करते रहते हैं। जब किसी पदार्थ, या संस्थाकी ऐसी

जीर्णशीर्ण हालत हो जाती है तब उससे प्रेम रखनेवाले लोग उसे उसकी पूर्वावस्थामें लानेका प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्नको ही सुधार या संस्कार कहते हैं और इसके करनेवाले सुधारक या संस्कारक कहलाते हैं।

जब जब कोई धर्म, सम्प्रदाय या संस्था अवनतिके गड्ढेमें गिरनेके सम्मुख होती है तब तब उसमें इस प्रकारके सुधारक या संस्कारक भी उत्पन्न हो जाते हैं और वे अपने सतत प्रयत्नसे उस संस्थाको संस्कारित करके उसे उन्नतिपथगामिनी बना देते हैं। इस प्रकारके संस्कारक प्रत्येक धर्म और प्रत्येक समाजमें बराबर हुआ करते हैं। गीतामें श्रीकृष्णजीने जो यह कहा है कि "जब जब लोगोंमें धर्मकी ओरसे ग्लानि होने लगती है और अधर्मका उत्थान होने लगता है तब तब मैं अवतार लेता हूँ।" इसका भी यही अभिप्राय यह है कि धर्मकी जब अवनति होने लगती है तब सुधारक या संस्कारक जन्म लेते हैं और वे अपने सत्कर्मोंके कारण ईश्वरावतार या ईश्वरतुल्य समझे जाने लगते हैं।

जैनधर्म और जैनसमाजमें भी ऐसे अनेक सुधारक हो गये हैं और उन्होंने समय समयपर जैनधर्म और जैनसमाजको अवनतिके गड्ढेमें गिरते हुए बचाया है। जैनसाहित्यकी आलोचना करनेसे हमें ऐसे अनेक सुधारकों या संस्कारकोंका पता लग सकता है। अनेक तीर्थंकर ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने पहलेके विच्छिन्न हुए मार्गको फिरसे चलाया है और इस लिए उन्हें भी हम सुधारक कह सकते हैं। बीच-बीचमें जैनधर्ममेंसे जिन अनेक शिथिल पन्थोंकी सृष्टि हुई थी उनके उपद्रवोंसे जैनधर्मकी रक्षा करनेवाले जितने प्रधान प्रधान आचार्य हो गये हैं वे सब सुधारक थे। भट्टारकोंके शिथिलाचार और यथेच्छा-

चारसे जैनधर्मकी रक्षा करनेवाले अनेक तेरहपन्थी विद्वान् भी अपने समयके सुधारक या संस्कारक हो गये हैं।

इस तरह सुधार और सुधारक ये दोनों ही कोई ऐसे पदार्थ नहीं जो घृणाकी दृष्टिसे देखे जायँ; परन्तु वर्तमानमें कुछ महापुरुषोंकी कृपासे सुधार या सुधारक ये शब्द इतने बदनाम हुए हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। पुराने खयालके लोग तो इन सुधारों और सुधारकोंसे इतने डरते हैं जितने कि छोटे छोटे बच्चे 'हौआ' से भी नहीं डरते हैं। कुछ समयसे हमारे जैनसमाजमें भी जहाँ तहाँ ये शब्द सुनाई देने लगे हैं और हमारे शुभचिन्तकोंको जैनहितैषी और उसके लेखकोंमें सुधारों तथा सुधारकोंकी तीव्र गन्ध आने लगी है। ऐसे लोगोंके भ्रम निवारणके लिए आवश्यकता हुई कि इस विषयका खुलासा अच्छी तरहसे कर दिया जाय।

सुधारक होना सहज नहीं है। इसके लिए बड़ी भारी योग्यता चाहिए और वह हममें है नहीं, इसलिए सुधारक पदको प्राप्त करनेका सौभाग्य तो हमें प्राप्त हो नहीं सकता; परन्तु यह कहनेमें हमें कुछ भी संकोच नहीं मालूम होता कि हम सुधारकोंके अनुयायी, सेवक और उनके विचारोंके प्रचारक अवश्य हैं। हम देखते हैं कि इस समय जैनसमाजकी वह अवस्था है—वह इतना दुर्बल, निश्चेष्ट, अकर्मण्य, और और मृतप्राय हो रहा है कि यदि उसका इस समय सुधार-संस्कार नहीं किया जायगा, उसकी पूर्वावस्था उसे प्राप्त न कराई जायगी और देशकालके अनुकूल चलनेका पाठ उसे न सिखलाया जायगा तो संसारमें उसका जीवित रहना कठिन है। इसलिए इस समय जैनसमाजमें सुधारकोंकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। जैनहितैषीके द्वारा यदि इस आवश्यकताकी पूर्तिस्वरूप कुछ सेवा होती हो तो हम इसे अपना सौभाग्य समझते हैं।

इस समय भारतवर्षमें सुधार और सुधारकोंकी धूम है। जिसे देखिए वही सुधारक बननेका दम भरता है। जो विदेशी रीति-रवाजोंको सर्वाङ्गसुन्दर और निर्दोष समझता है, देशकी प्रत्येक पुरानी बातमें जिसे दोष ही दोष दिखते हैं, शरीरसुख और वासनाओंकी तृप्ति जिस मार्गसे हो सकती है उसीको जो आदर्श धर्म समझता है, उच्छृङ्खलता और स्वेच्छाचारिताका जो उपासक है, वर्तमान परिभाषाके अनुसार वही सुधारक कहलाता है और इन सब बातोंका अनुयायी होना इस पश्चिमी सभ्यताके साम्राज्यमें बिलकुल मामूली बात है। ऐसी अवस्थामें सुधारकोंके दलके दल होना ही चाहिए। इन्हीं सुधारक लोगोंकी कृपाका यह फल है जो आज सुधारक जैसे पवित्र नामको भी सर्व साधारण लोग बहुत बुरी दृष्टिसे देखते हैं।

पर वास्तवमें सुधारक बनना बहुत ही कठिन है। हमारी समझमें सच्चा सुधारक वह है जो अपने देश, समाज और धर्मके मर्मको अच्छी तरहसे समझता है, जिसने अपनी और दूसरी सभ्य जातियोंकी अन्तर्बाह्य अवस्थाओंका भली भाँति पर्यवेक्षण किया है, जो वर्तमान देश-कालकी आवश्यकताओंको जानता है और यह सब जानकर जो सुधारके सरल और सुलभ मार्गको ढूँढ़ निकालता है। सच्चा सुधारक वह है जिसका आत्मा विशाल है, जीवमात्रके प्रति जिसका बन्धुभाव है, जो दूसरोंके सुखमें सुखी और दुखमें दुखी होता है, अपनी सारी शक्तियोंको जो दूसरोंके लिए लगा देता है, अनवरत परिश्रमसे जिसे कभी थकावट नहीं होती, बड़े बड़े कार्य करके भी जिसे सन्तोष नहीं होता, और कार्य करके जो उससे कीर्ति आदि फलकी आकांक्षा नहीं रखता। सच्चा सुधारक वह है जो त्याग और संयमकी मूर्ति है,

वासनायें जिस पर कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकतीं, संसारके वैभव और विलासके पदार्थ जिसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते, सादगीके जीवनको जो पवित्र और कल्याणकारी समझता है और ठाठवाट तथा आडम्बरके जीवनको जो निम्नपथमें ले जानेका मार्ग समझता है। सच्चा सुधारक वह है जो रूढ़ियोंको पट्टीपर खींची हुई रेखायें समझता है, विरोधियोंके विरोधोंकी ओर जो बेपरवा होकर देखता है, अपने प्रतिपक्षियोंकी गालियोंको जो अपना आभूषण समझता है, चाहे जितने कष्ट पड़नेपर भी जो सत्यतासे च्युत नहीं होता है और इस तरह निम्नलिखित श्लोक जिसका मोटो है:—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथं प्रवचलन्ति पदं न धीराः॥

विविध समाचार।

नई उमरकी दीक्षा—श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायोंमें आठ आठ नव नव वर्षके लड़के लड़कियोंको मुनि—अर्जिकाकी दीक्षा दे दी जाती है। इस तरह प्रतिवर्ष पचासों मुनि और अर्जिकाओंकी सृष्टि हुआ करती है। यदि ये नये दीक्षित अपने चरित्रसे और ज्ञानसे जैनधर्मका कुछ गौरव बढ़ाते तो कोई हर्जकी बात न थी; परन्तु बात इससे उलटी होती है। ये बच्चे ज्यों ही युवावस्थामें पैर बढ़ाते हैं त्यों ही इतने दुराचार करते हैं कि सुननेसे बड़ा ही दुःख होता है। सुनते हैं इस नई उमरकी दीक्षाके कुफलोंपर विचार करके जोधपुर दरबारने अपने राज्यमें कानून जारी कर दिया है कि छोटी उमरमें किसी भी

धर्मका गुरु किसीको भी दीक्षा न दे सकेगा। इसके पहले मोरवीके ठाकुरसाहब तो एक बालककी दीक्षाका दृश्य देखकर इतनी कड़ी आज्ञा जारी कर चुके हैं कि मोरवीशहरमें किसीको भी साधुदीक्षा नहीं दी जाय। जैनहितेच्छुके सम्पादक महाशय इस विषयमें आन्दोलन कर रहे हैं। 'दीक्षा किसे दी जा सकती है,' इस विषयके कई लेख जैनहितेच्छुकी इस संख्यामें प्रकाशित हुए हैं। ईडरके पंच महाशयोंसे हम आग्रह करते हैं कि वे भी उक्त लेखोंको एक बार पढ़ जावें और फिर अपने 'युवराज भट्टारक' जीको 'महाराज भट्टारक' के पदपर प्रतिष्ठित करें।

दिल दहलानेवाला दान—अमेरिकाका प्रसिद्ध धनिक पिअरपोन्ट अभी हाल ही परलोकवासी हुआ है। वह तो चला गया पर अपना नाम अमर कर गया। उसने जो दान किया है उसकी तफसील सुन लीजिए—न्यूयार्कके प्रसूतिगृहमें ४०९००००रुपया, वहांके औद्योगिक विद्यालयमें १५००००० रु०, पेरिस हौस ऑफ सेंटज्याजिसमें ९०००००० रु०, हावर्डयूनीवर्सिटीमें ३००००० रु०, एक क्रिश्चियन मन्दिरमें १५००००० रु०। इसके सिवा उसने और भी बीसों छोटे मोटे दान किये हैं।

मुकद्दमेबाजी—तीर्थक्षेत्रोंसम्बन्धी मुकद्दमे लड़नेमें जैनियोंका नम्बर कोई भी नहीं ले सकता। इस समय दिगम्बरी और श्वेताम्बरियोंमें परस्पर चार और दीगर लोगोंसे तीन इस प्रकार सात मुकद्दमे चल रहे हैं। इनके सिवा श्वेतताम्बरी भाइयोंने भी चार छह मुकद्दमे चला रक्खे होंगे—जो हमें माल्रम नहीं। क्या तीर्थक्षेत्रोंको कलहस्थान बनानेमें जैनियोंके धर्मशास्त्र कुछ विशेष पुण्य बतलाते हैं?

खंडेलवालोंमें पहले एम. ए.—अलीगढ़ निवासी लाला फूल-

चन्दजी खंडेलवाल जैनी हैं। आप इस वर्ष एम. ए. और एल. एल. बी. की परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं।

सुवर्णपदक—बनारसकी यशोविजय जैनपाठशाला अच्छा काम कर रही है। कलकता यूनिवर्सिटीकी न्याय मध्यम और व्याकरण मध्यम परीक्षामें जो विद्यार्थी गतवर्ष पास हुए थे उनमेंसे चार विद्यार्थियोंको यूनीवर्सिटीकी ओरसे सुवर्णपदक मिले हैं। इस वर्ष भी पाठशालाके ११ विद्यार्थी कलकत्ता यूनीवर्सिटीकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं।

पाठशालाकी सहायता—सागरकी सत्तर्कसुधातरंगिणी जैनपाठशालाकी सहायताके लिए हाल ही प्रयत्न किया गया था। हर्षकी बात है कि सिंगई कारेलाल कुन्दनलालजीने १५००) और भाई कन्हैयालाल हुकमचन्दजीने १०००) इक मुश्त सहायता दी। मासिक चन्दा भी थोड़ासा हुआ है।

जैन लायब्रेरीसे लोभ—यहाँकी मुनि मोहनलालजी जैन सेन्ट्रल लायब्रेरीसे लोगोंको बहुत लाभ हो रहा है। प्रतिदिन लगभग ४०० पाठक लायब्रेरीमें आकर अपने ज्ञानकी वृद्धि करते हैं। क्या यहांके दिगम्बरी भाई भी एक ऐसी ही हिन्दीकी लायब्रेरी नहीं खोल सकते? यह बड़ी लज्जा की बात है कि बम्बई जैसे शहरमें हिन्दीकी कोई छोटीसी भी लायब्रेरी नहीं है जिससे हिन्दी जाननेवाले कुछ लाभ उठा सकें।

विद्वान्का आगमन—जर्मनीके प्रसिद्ध विद्वान् और जैनग्रन्थोंके अनुवादक मि० हर्मन जैकोबी आगामी वर्षमें भारत भ्रमण करनेके लिए आनेवाले हैं।

अदालतमें जैनमुनि—जमानेकी खूबी है। मुनियोंको अब अदालतोंमें भी हाजिर होना पड़ता है। सूरतकी कोर्टमें मि० माणेकलाल

वेलाभाईने श्वेताम्बर समाजके कुछ अगुओंपर मानहानिकी नालिश की है। इस मुकद्दमेमें मुनि आनन्दसागरजी गवाह बनकर अदालतमें उपस्थित हुए थे।

आश्रमका प्रवास—श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरके विद्यार्थी १९ आगस्तको प्रवासके लिए निकलेंगे और मेरठ, दिल्ली आदि स्थानोंमें रहते हुए सितम्बरके अन्तमें सोनागिर पहुँचेंगे।

सम्पादकका देहान्त—हमें यह लिखते हुए बहुत शोक होता है कि जैनगजटके सहकारी सम्पादक बाबू अमोलकचन्दजी लुहाड़ाका देहान्त हो गया।

जैनहितैषीकी समालोचना।

अहमदाबादके 'जैनहितेच्छु' (अंक ६) में जैनहितैषीके विषयमें उसके उदार सम्पादकने जो सम्मति प्रकाशित की है उसका हिन्दी अनुवाद—

"जैनहितैषीके विषयमें हमारी आदरबुद्धि दिनपर दिन बढ़ती जाती है। विषयोंका चुनाव करनेमें, निष्पक्ष सम्मति देनेमें, सुलहका प्रचार करनेमें, अन्यायके सम्मुख गर्जना करनेमें और जैनतत्त्व तथा इतिहासके ज्ञातव्य विषय प्रगट करनेमें इस पत्रका बहुत लक्ष्य रहता है। जैनधर्मके सामयिक पत्रोंमें इस पत्रको प्रथम स्थान देनेमें हमें कोई पक्षपात नहीं माळूम होता। इसकी रसीली शुद्ध और निश्चित भाषा हमें बहुत ही आनन्द प्रदान करती है। इस पत्रके सम्पादक कहीं भी कोई सुन्दर लेख या समाजहितकर विचार देखते या बाँचते हैं तो उसे अपने पत्रमें मूल लेखकके नामसहित उद्धृत करते हैं। इससे उनकी उदारता और सत्यप्रियता प्रगट होती है। हम चाहते हैं बल्कि प्रेमपूर्वक आग्रह करते हैं कि सम्पादक महाशय जैनियोंकी तीनों सम्प्र-

दायोंकी ज्ञातव्य घटनाओंपर अपने विचार प्रगट किया करें। हमने सुना है कि आपको चतुर और अच्छे काम करनेवाले सहायक नहीं मिलते हैं; परन्तु जैनपत्रसम्पादकोंके लिए यह एक साधारण कठिनाई है—सबको ही यह भोगनी पड़ती है। ऐसे पत्र धनिकोंकी सहायताके सर्वथैव पात्र हैं।

इसके चैत्रवैशाखके अंकमें ' जैनधर्मका प्रसार कैसे हो ' यह लेख खास तौरसे बाँचने योग्य है। 'महाजनोंके मरण समयके वचन' मनन करने योग्य हैं। ' जैन न्याय ' में बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीयने बहुतसी ऐतिहासिक और शास्त्रीय जाँचोका परिणाम प्रगट किया है। 'ऋण-शोध ' नामक कहानीमें एक परोपकारी भक्तिमान् युवाका सरस चरित्र लिखकर पाठकोंपर उच्च जीवनका अच्छा प्रभाव डाला गया है। ' धर्म ' शीर्षक लेखमें जैन फिलासोफीका विषय है। सम्पादक महाशयके तीर्थपर्यटनमें बहुतसी जानने योग्य बातें हैं। ' सद्धर्म-सन्देश ' नामकी कविता अत्यन्त उत्साहप्रेरक और बोधप्रद है और उसकी खूबीसे अपने पाठकोंको परिचित करनेके लिए उसे हम इस अंकमें उद्धृत करते हैं।

' महाराष्ट्र और कर्नाटकके जैनराजवंश ' एक ऐतिहासिक लेख है। बाबू जुगलकिशोरजीने ' जैनियोंके अत्याचार ' शीर्षक लेखमें अन्य धर्मियोंको जैनतत्त्वज्ञान सिखलानेके विषयमें जैनियोंकी लापरवाही, स्त्रियोंको शिक्षा देनेके विषयमें उदासीनता आदि बातोंको लेकर बड़ी गहरी चुटकी ली है। सम्पादकीय टिप्पणियोंमें जातिभेदके प्रश्नकी चर्चा बड़ी अच्छी पद्धतिसे की गई है। ये तथा और दूसरी टिप्पणियाँ विचारस्वातन्त्र्य, दीर्घदृष्टि और निष्पक्षपातताके खयालसे प्रशंसा करनेके योग्य हैं।

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

नववाँ भाग] श्रावण, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [१० वाँ

तीर्थ-पर्यटन ।

(४)

चढ़ाव शुरू होते ही दाहने हाथकी ओर बाबू धनपतिसिंहजीकी पहली टोंक मिलती है। यह मुर्शिदाबाद (बंगाल) निवासी रायबहादुर बाबू धनपतिसिंहजीकी माता महताब कुँवरिकी बनवाई हुई है। वि० संवत् १९४५ में इसकी नीव डाली गई थी और १९५९ में प्रतिष्ठा हुई थी। इसमें मुख्य मन्दिर आदीश्वर भगवानका है। इसकी सजावटमें खूब रुपया खर्च किया गया है। कुछ काम अभी हो भी रहा है। बाबू धनपतिसिंहजी उन धनवानोंमें नहीं थे जो केवल मन्दिर-प्रतिष्ठादि कार्य करनेको ही धर्मप्रभावनाकी चरम सीमा समझ लेते हैं। उन्होंने मन्दिरोंकी प्रतिष्ठाके साथ साथ सरस्वतीदेवीकी भी प्रतिष्ठा की थी। जिस समय धर्म ग्रन्थोंको छपाकर प्रकाशित करना बड़ा भारी पाप समझा जाता था, गतानुगतिक समाजके भयके मारे जब किसीको इस विषयकी चर्चा करनेका भी साहस न होता था, उस समय इस महापुरुषने अपने असीम उत्साह और अध्यवसायसे श्वेता-

म्बर सम्प्रदायके पैंतालीसों सूत्रग्रन्थ मूल, संस्कृत टीका और पुरानी गुजराती टीकाओंसहित छपाकर प्रकाशित कर डाले थे! वि० संवत् १९३३ के लगभग इस कार्यका प्रारंभ किया गया था। सुनते हैं कि इस ग्रन्थोद्धार-कार्यमें आपने लगभग एक लाख रुपये खर्च किये थे! आप प्रत्येक ग्रन्थकी केवल ५०० प्रतियाँ छपाते थे और वे सब इसलिए कि मैं भारतवर्षकी पांचसौ स्थानोंमें पांचसौ सूत्रपुस्तकालय स्थापित कर दूँ। अजीमगंजमें उन दिनों एक 'जैनबुक सुसाइटी' स्थापित हुई थी। उसके कार्यकर्ताओंने देखा कि बाबू साहबके छपाये हुए ये सब ग्रन्थ जैनियोंको तो बिना मूल्य प्राप्त हो जावेंगे; परंतु दूसरे लोग यदि लेना चाहेंगे तो उन्हें न मिल सकेंगे। इसलिए उन्होंने बाबू साहबसे बातचीत करके यह तय कर लिया कि प्रत्येक ग्रन्थकी ५०० कापियाँ और भी छपा ली जाया करें; उनका खर्च हम दे देवेंगे और हम ही उनकी विक्री करेंगे। गरज यह कि प्रत्येक ग्रन्थकी हजार हजार प्रतियाँ छपाई गईं। पूरे मूल्यमें लेनेसे इन सब ग्रन्थोंके लिए कई सौ रुपये लगते हैं! आदीश्वरके मन्दिरमें इन सब ग्रन्थोंका भण्डार रहता है। सुयोग्य साधु और साध्वियोंको ये ग्रन्थ मुफ्त वितरण किये जाते हैं। यह सरस्वतीसेवाका कार्य करके बाबू साहब अपना नाम अमर कर गये हैं। इतना समय बीत गया, तो भी ग्रन्थोद्धारका इतना बड़ा कार्य अब तक किसी धनिक या किसी भी संस्थासे न हो सका। यदि जैनसम्प्रदायमें रा० ब० धनपतिसिंहजी जैसे दश बीस ही धर्मात्मा धनिक उत्पन्न हो जायँ तो थोड़े ही समयमें सारे जैनसाहित्यका उद्धार हो जाय।

इस टोंकको छोड़कर कुछ ऊँचे चढ़नेपर एक विश्रामस्थल मिलता है जिसे 'धोली परवका विसामा' कहते हैं। यहाँ पानीकी एक प्याऊ

(प्रपा) लगी है। इस तरहके विश्रामस्थलों, प्रपाओं, कुंडों तथा जलाशयोंका प्रबन्ध थोड़ी थोड़ी दूरपर सारे ही पर्वतपर हो रहा है। इनसे यात्रियोंको बहुत आराम मिलता है। धूप और शक्तिसे अधिक परिश्रमसे व्याकुल हुए स्त्रीपुरुष इन प्रपाओंके शीतल जलको पीकर मानो खोई हुई शक्तिको फिरसे प्राप्त कर लेते हैं। इस प्याऊके समीप ही एक छोटीसी देहरी है जिसमें भरतचक्रवर्तीके चरण स्थापित हैं। इनकी स्थापना वि० सं० १५८५ में हुई है। इस तरहकी देहरियाँ जगह जगह बनी हुई हैं जिनमें कहीं चरण और कहीं प्रतिमायें स्थापित हैं।

आगे एक जगह कुमारपाल कुण्ड और कुमारपालका विश्रामस्थल है। कहते हैं कि यह गुजरातके चालुक्यवंशीय राजा कुमारपालका बनवाया हुआ है।

जब पर्वतकी चढ़ाई लगभग आधी रह जाती है तब हिंगलाज देवीकी देहरी मिलती है। यहाँ एक बूढ़ा ब्राह्मण बैठा रहता है जो बड़े जोर जोरसे चिल्लाकर कहता है कि "आदीश्वर भगवानके इतने करोड़ पुत्र सिद्धपदको प्राप्त हुए हैं" और देवीको कुछ चढ़ाते जानेके लिए सबको सचेत करता रहता है। भोले लोग समझते हैं कि हिंगलाजकी पूजा करनेसे पर्वतके चढ़नेमें कष्ट नहीं होता है! यहाँसे चढ़ाई बिलकुल खड़ी और टाँठी होनेके कारण कुछ कठिन है।

आगे सबसे अन्तिम टेकरीपर हनुमानकी देहरी मिलती है। इसमें सिन्दूरलिप्त वानराकार हनुमानकी मूर्ति विराजमान् है। इसी प्रकारकी गणेश, भवानी आदि हिन्दू-देव-देवियोंकी मूर्तियाँ और भी कई जगह स्थापित हैं। इनकी स्थापना पर्वतके ब्राह्मण पुजारियों या सिपाहियोंने की होगी।

यहाँसे आगे दो रास्ते निकले हैं । दाहनी ओरके रास्तेसे पहले कोटके भीतर जाना होता है। यहाँ एक झाड़के नीचे एक मुसलमान पीरकी कब्र बनी हुई है। इसके विषयमें एक दन्तकथा प्रचलित है कि—अंगारशा नामका एक करामाती फकीर था। वह जब जीता था तब पाँच भूतोंको अपने काबूमें रख सकता था। उसने एकबार गर्वित होकर आदिनाथ भगवानकी प्रतिमापर कुछ उत्पात मचाया, इससे किसीने उसे मार डाला। मरकर वह पिशाच हुआ और मन्दिरके पुजारियोंको तरह तरहकी तकलीफें देने लगा और आखिर इस शर्तपर शान्त हुआ कि इस स्थानपर मेरी हड्डियाँ गड़ाई जायँ। लाचार होकर लोगोंने वहाँ उसकी कब्र बना दी। कर्नल टाडसाहबको इस प्रवादपर विश्वास नहीं है। वे कहते हैं कि हिन्दू लोग इस प्रकारकी दन्तकथायें गढ़ लेनेमें बड़े ही सिद्धहस्त हैं। यदि कभी किसी मौकेपर उनके धर्मका अपमान हो और वे अपने प्रतिपक्षीसे टक्कर न ले सकें तो वे उस अपमानको दूर करनेके लिए इसी हिकमतको काममें लाया करते हैं। इस विषयमें श्रावक लोगोमें जो प्रवाद चला आ रहा है वह अवश्य ही कुछ ठीक जान पड़ता है। प्रवाद यह है कि बादशाह अलाउद्दीनके समयमें श्रावकोंने अपनी रक्षाके लिए यह कब्र बनवाई थी। एक मुसलमान फकीरकी कब्रके कारण—जो कि बहुत ही पूज्य समझा जाता था—बहुत संभव है कि मुसलमानोंने इस पवित्र तीर्थपर उत्पात मचाना उचित न समझा हो। शुरूसे यह स्थान श्रावकोंके ही अधिकारमें चला आता है।

पर्वतकी चोटीके दो भाग हैं। ये दोनों ही लगभग तीन सौ अस्सी अस्सी गज लम्बे हैं और सर्वत्र ही मन्दिरमय हो रहे हैं। मन्दिरोंके समूहको टोंक कहते हैं। टोंकमें एक मुख्यमन्दिर और दूसरे अनेक

छोटे मोटे मन्दिर होते हैं। यहाँकी प्रत्येक टोंक एक एक मजबूत कोटसे घिरी हुई है। एक एक कोटमें कई कई दर्वाजे हैं। इनमेंसे कई कोट बहुत ही बड़े बड़े हैं। उनकी बनावट बिलकुल किलोंके ढँगकी है। टोंकें विस्तारमें छोटी बड़ी हैं। अन्तकी दशवीं टोंक सबसे बड़ी है। उसने पर्वतकी चोटीका दूसरा हिस्सा सबका सब रोक रक्खा है।

पर्वतकी चोटीके किसी भी स्थानमें खड़े होकर आप देखिए हजारों मन्दिरोंका बड़ा ही सुन्दर दिव्य और आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाई देता है। इस समय दुनियामें शायद ही कोई पर्वत ऐसा हो जिसपर इतने सघन, अगणित और बहुमूल्य मन्दिर बनवाये गये हों। मन्दिरोंका इसे एक शहर ही समझना चाहिए। पर्वतके बहिः-प्रदेशोंका सुदूरव्यापी दृश्य भी यहाँसे बड़ा ही रमणीय दिखलाई देता है।

कोटके भीतर प्रवेश कीजिए कि एक चौकके बाद दूसरा चौक और दूसरेके बाद तीसरा; इसी तरह एक मन्दिरके बाद दूसरा मन्दिर और दूसरे बाद तीसरा,—चौक और मन्दिर मिलते चले जायँगे। मन्दिरोंकी कारीगरी, उनकी बनावट, उनमें लगा हुआ पत्थर और उनके भीतरकी सजावटका सैकड़ों प्रकारका सामान आदि सब ही चीजें बहुमूल्य हैं। प्रतिमाओंकी तो कुछ गिनती ही नहीं है। एक श्रद्धालु भक्तकी जिधरको नजर जाती है, उधर ही उसे मुक्तात्मा-ओंके प्रतिबिम्ब दिखलाई देते हैं। कुछ समयके लिए तो मानो वह आपको मुक्तिनगरीका एक पथिक समझने लगता है!

पर्वतपर हजारों मन्दिर हैं। उन सबका वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नहीं। इसलिये हमारे पाठकोंको थोड़ेसे खास खास मन्दिरोंका परिचय पाकर ही सन्तोष करना पड़ेगा।

१ **सम्प्रति राजाका मन्दिर**—यह यद्यपि संप्रतिराजाका मन्दिर कहलाता है; परन्तु इसे संवत् १६१८ में कमलशी सोनावालेने बनवाया था। संप्रति अशोकके पुत्र कुणालका बेटा था। लगभग २२०० वर्ष पहलेकी बात है। इससे संभव है कि इस स्थानपर पहले संप्रतिका बनवाया हुआ मन्दिर रहा हो।

२ **चौमुखका मन्दिर**—यह मन्दिर क्या है एक बड़ा भारी गढ़ है। इसकी लम्बाई ६३ फुट और चौड़ाई ५७ फुट है। इसका गुम्बज ९६ फुट ऊँचा है। इसमें आदिनाथकी चार बड़ी भारी प्रतिमायें चारों दिशाओंकी ओर मुँह किये हुए विराजमान हैं। इसी लिए इसे चौमुखका मन्दिर कहते हैं। इस मन्दिरको और खरतरवंशी टोंकके विशाल चौकको जो कि २१६ फुट चौड़ा और २७० फुट लम्बा है—अहमदाबादके सेठ सबाई सोमजीने वि० सं० १६७५ में बनवाया था। उस समय सुल्तान नुरुद्दीन जहाँगीरका राज्य था। मीराते अहमदीके लेखानुसार सेठ सोमजीने इस कार्यमें ५८ लाख रुपया खर्च किया था। एक प्रवाद चला आ रहा है कि इस कार्यके लिए पर्वतके नीचेसे जो सामान ऊपर लाया गया था उसके लानेमें कोई ८४००० रुपयोंकी तो रस्सियाँ ही खर्च हो गई थीं!

३ **पाण्डवोंका मन्दिर**—संवत १७२२ में सेठ दलीचन्द कीकावालेने इसे बनवाया था। इसमें पाँचों पाण्डवोंकी, द्रोपदीकी और कुन्तीकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यह बात विशेष देखी गई कि उसके मन्दिरमें तीर्थकरों और साधारण सिद्धोंके समान अन्यान्य पुराणप्रसिद्ध पुरुषों और स्त्रियोंकी मूर्तियाँ भी स्थापित की जाती हैं। दिगम्बर सम्प्रदायमें भी यद्यपि यह पद्धति है जैसे कि

---

१ अंक ५ पृष्ठ २५९ में सम्प्रति अशोकका पुत्र छप गया है, पौत्र होना चाहिए।

मूडबिद्रीके बाहुबलिस्वामी और बावनगजाके इंद्रजीत, कुंभकर्ण; तो भी बहुत कम है। इस तीर्थपर हमने गौतम, पुण्डरीक, भरतचक्रवर्ती, माता मरुदेवी आदिकी ऐसी बहुतसी प्रतिमायें देखीं।

४ **नन्दीश्वर द्वीपका मन्दिर**—शेठ हेमाभाई बखतचन्दकी टोंकके मुख्य मन्दिरको नन्दिश्वरका मन्दिर कहते हैं। इसकी रचना नन्दीश्वर द्वीपकी रचनाके समान है। बीचमें एक विशाल मन्दिर है और चारों दिशाओंमें ५२ मन्दिर हैं। इसकी दीवालोंपर बहुत अच्छा काम किया हुआ है। संवत् १८९७ में यह बना है।

५ **मोदी प्रेमचन्द लालचन्दके मन्दिर**—अहमदाबादका यह एक बड़ा नामी सेठ हो गया है। इसने इस पर्वतके अनेक जीर्णमन्दिरोंका उद्धार कराया, उनको श्रृंगारित किया, उनके चारों ओर विशाल कोट बनवाया और उनके निर्बाहके लिए लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति अर्पण की। कर्नल टाड साहबने अपने पश्चिम भारतके प्रवासवर्णनमें लिखा है कि " मोदी प्रेमचन्दकी दौलतका कुछ ठिकाना नहीं था। उसकी कीर्तिने सम्प्रति जैसे प्रतापी और उदार राजाकी कीर्तिको भी ढँक दी है।" प्रेमचन्द लालचन्दकी टोंक इसीकी बनवाई हुई है। इसमें तीन बड़े बड़े मन्दिर हैं।

६ **आदिबुद्धका मंदिर**—आदि बुद्धकी प्रतिमा १८ फुट ऊंची और एक घुटनेसे दूसरे घुटने तक १४॥ फुट चौड़ी है। यह पहाड़में उकीरी गई है। मन्दिर पीछेसे इसकी रक्षाके लिए बना दिया गया है। आदिबुद्धका अर्थ श्रावक लोग आदिनाथ तीर्थंकर बतलाते हैं। दूसरे लोग इसे भीम पाण्डवकी प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा प्राचीन मालूम होती है।

७ मोतीसाकी टोंक— इसमें कई अच्छे अच्छे मन्दिर हैं। इसके भीतर एक विशाल चौक है जिसे बम्बईके प्रसिद्ध व्यापारी मोतीसा अमीचन्दने बनवाया था। कहते हैं इस चौकके बनानेमें चार या पांच लाख रुपया और सारी टोंककी रचनाके लिये लगभग एक करोड़ रुपया खर्च किया गया था!

८ जगत्सेठका मंदिर—मुर्शिदाबाद (बंगाल) के जगत्प्रसिद्ध सेठ अमीचन्दका नाम हमारे पाठकोंने सुन रक्खा होगा। अपने समयमें यह केवल हिंदुस्थानका ही नहीं किन्तु तमाम दुनियाका भी सबसे बड़ा धनिक सेठ गिना जाना था। इतिहासमें लिखा है कि ई० सन् १७४२ के अप्रेल महीनेमें कुछ मराठा सवारोंने जिनका कि सरदार उड़ीसाका दीवान मीर हतीब था—जगत्सेठके यहांसे लगभग अढ़ाई करोड़ रुपया लूट ले गये थे। यह रकम इतनी बड़ी थी कि इसकी चोट उस समयके यूरोपके किसी बड़ेसे बड़े राजाके भी चित्तको डावाँडोल कर सकती थी; परन्तु जगत्सेठके चित्तपर इसका असर इतना थोड़ा हुआ कि उसने इस घटनाके बाद ही लगभग एक करोड़ रुपयोंकी सरकारी दर्शनी हुंडियोंके सिकारनेका काम जारी रक्खा। एक बार हाउस आफ कामन्समें बर्क साहबने जगत्सेठके विषयमें कहा था कि इस सुप्रसिद्ध सेठका कारोबार बेंक आफ इंग्लेंडके बराबर था! जगत्सेठके विषयमें यह किंवदन्ती तो प्रायः सर्वत्र ही प्रसिद्ध है कि एक बार उसने गंगाके मार्गको रुपयोंसे पूर देनेका विचार किया था! जगत्सेठका वंश भी बहुत बड़ा था। एक इतिहास—लेखकने लिखा है कि ईस्वी सन् १७८६ में जगत्सेठके कुटुम्बमें दो हजारके लगभग मनुष्य थे। विमलवंशी टोंकके भीतर एक मन्दिर इन्हीं जगत्सेठका बनवाया हुआ

कहलाता है; परन्तु यह मन्दिर इस दर्जेका नहीं है कि इससे जगत-सेठके नामका कुछ भी गौरव हो सके। इसके मूलनायक सुमतिनाथ तीर्थंकर हैं। सुमतिनाथकी प्रतिमाकी आसनमें एक शिलालेख है। उससे तो माल्लम होता है कि इसे संवत् १८१० में संघवी कचरा कीकाजीने बनवाया था। माल्लम नहीं कि फिर जगत्सेठसे इसका सम्बन्ध क्यों जोड़ा गया ?

९ **कुमारपालका मंदिर**—यह मन्दिर बहुत ऊँचा है । इसमें मुख्य प्रतिमा आदिनाथकी हे। यह मन्दिर बहुत ही पुराना है; परंतु इसकी मरम्मत इतनी बार कराई गई है कि इसमें प्राचीनताका एक अंश भी विश्वासपूर्वक नहीं बतलाया जा सकता; पर पूराका पूरा गिराकर नये सिरेसे भी यह कभी नहीं बनवाया गया। यह अणहिल्लपाटणके राजा कुमारपालका मन्दिर कहलाता है।

१० **दिगम्बर मंदिर**—सारे पर्वतपर केवल यही एक दिगम्बर मन्दिर है। इसे वि० संवत् १६८६ में अहमदाबादके हूंमड़ज्ञातीय संघवी राघवजी रामाजीने बनवाया था। दिगम्बर सम्प्रदायके और मन्दिर यहाँ बने ही नहीं—साम्प्रदायिक संकीर्णताके कारण बनने ही न दिये गये या किसी समय जो थे वे श्वेताम्बर-सम्प्रदायके बना लिये गये, इन बातोंके जाननेका इस समय कोई साधन नहीं है। दिगम्बरसम्प्रदाय तो एक जुदा सम्प्रदाय है—यदि उसकी प्राचीनताके चिह्न यहाँ न रहे हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; टाड साहबके कथनानुसार तो श्वेताम्बर सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त जो खरतरगच्छ और तपागच्छ हैं उन्हींमें इतना अधिक मात्सर्य रहा है कि उनकी कृपासे शत्रुंजयके प्राचीन चिह्नोंका एक तरहसे लोप ही हो गया है। अस्तु। जब शत्रुंजय पर्वत दिगम्बरसम्प्रदायमें

भी सदासे पूज्य सिद्धक्षेत्र माना जा रहा है तब इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसके भी यहाँपर अनेक मन्दिर या पूज्यस्थान रहे होंगे।

११ **आदीश्वरका मन्दिर**—शत्रुंजय पर्वतका सबसे प्राचीन, सबसे अधिक प्रसिद्ध मन्दिर यही है। इसके विषयमें कर्नल टाड लिखते हैं कि "प्राचीनता और पवित्रताके विषयमें जो कुछ ख्याति है, वह सब इसी टोंककी है। परन्तु पारस्परिक द्वेषके कारण, आप आपको स्थापक प्रसिद्ध करनेकी तीव्र लालसाके कारण, और एक प्रकारकी धर्मान्धताके कारण लोगोंने यहाँकी प्राचीनताको बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। मैंने यहाँके विद्वान् जैन साधुओंके मुहँसे सुना है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके खरतरगच्छ और तपागच्छ नामक मुख्य दो पक्षोंने यहांके पुराने चिह्नोंको नष्ट करनेमें वह कार्य किया है जो मुसलमानोंसे भी नहीं हुआ है! जिस समय तपागच्छवालोंका जोर हुआ उस समय उन्होंने खरतरगच्छके शिलालेखोंको नष्ट कर दिया और उनके स्थानमें अपने नवीन शिलालेख जड़ दिये, इसी तरह सिद्धराज राजाके समयमें जब खरतरगच्छका जोर हुआ तब उन्होंने उन लेखोंको भी नष्ट भ्रष्ट कर डाला। फल इसका यह हुआ कि इस पर्वत पर एक भी सम्पूर्ण मन्दिर ऐसा नहीं है जो अपनी प्राचीनताका दावा कर सके। सब ही मन्दिर ऐसे हैं जो या तो नये सिरेसे बनवाये गये हैं या मरम्मत किये हुए हैं या उनमें फेरफार किया गया है।" यद्यपि यह मन्दिर बहुत ही विशाल और दर्शनीय है; परन्तु इसी प्रकारके और भी कई मन्दिर बन जानेके कारण अब इसमें कुछ विशेषता नहीं माळूम होती। इसके गर्भगृहमें आदिनाथ भगवानकी एक विशाल प्रतिमा है जिसके चक्षुओंमें प्रकाशमान् हीरे जड़े हैं। सब मिलाकर इस मन्दिरमें कई सौ प्रतिमायें हैं। इस मन्दिरके अब तक अनेक

जीर्णोद्धार हो चुके हैं और श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें उनकी क्रमबद्ध सूची मिलती है। यह सूची भरत चक्रवर्तीके समयसे शुरू होती है। इसका बारहवाँ उद्धार पाण्डवोंने कराया था। तेरहवाँ विक्रमादित्यके सौ वर्ष पीछे काश्मीरके व्यापारी जावड़शाने, चौदहवाँ अणहिलपाटणके राजा सिद्धराजके मंत्रीने, पन्द्रहवाँ दिल्ली नरेशके काका सुमरा सारंगने संवत् १३७१ में, और सोलहवाँ चित्तौड़के प्रधान मंत्री करमसा डोसीने संवत् १५७९ में। तेरहवेंसे सोलहवें उद्धार तकका पता यहाँके शिलालेखोंसे भी चलता है। कुमारपालके वटड़ा नामक मंत्रीने एक नया मन्दिर बनानेमें और इस मन्दिरके उद्धारमें दो करोड़ सत्ता-नवे लाख रुपया खर्च किये थे! यह बात वि० सं० १२११ की है। खंबात निवासी तेजपाल सोनीका एक शिलालेख मिला है। इस धनिकने वि० सं० १६४६ के लगभग यहाँके नन्दिवर्धन नामक चैत्यका उद्धार किया था। लेखसे माऌम होता है कि महाभाग तेज-पालने चैत्यके शिखरपर चढ़ानेके लिए सोनेका एक शिखर बनवाया था जिसकी लम्बाई ९२ हाथ थी! इसके सिवा सोनेके १२४५ कलश भी बनवाये थे! इस चैत्यके निमित्त जो धन खर्च हुआ था उसकी गणना सुनकर लोग कहते थे कि तेजपालके पास कोई इच्छित धन देनेवाला कल्पवृक्ष है। इस मन्दिरके पास ही एक स्थानमें आदिनाथ तीर्थंकरके चरण बने हुए हैं। उनके ऊपर एक खिरनीका वृक्ष है। कई श्रावकों और पुजारियोंसे पूछा तो उन्होंने कहा कि यह वही वृक्ष है जिसके नीचे बैठकर आदि भगवानने तपस्या की थी! यह अमर वृक्ष है कभी नष्ट होनेवाली नहीं!

१२ हीरविजयसूरिका मन्दिर—आचार्य श्रीहीरविजयका नाम हमारे बहुतसे पाठकोंने सुना होगा। बादशाह अकबरके समयमें यह

एक बड़े नामी और प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये हैं। संस्कृतमें इनकी गुणावलीके प्रकाशित करनेवाले 'हीरसौभाग्य' आदि बड़े बड़े काव्य-ग्रन्थ हैं। यह मन्दिर उन्हीं आचार्य महाराजका है। इसमें उनके केवल चरण प्रतिष्ठित हैं। यह मन्दिर १८८५ में निर्माण हुआ था। इस मन्दिरको देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। यह इस बातका प्रमाण है कि जैनसमाज अपने आचार्यों तथा विद्वानोंका भी सत्कार करना जानता है। सुनते हैं कहीं पर आचार्य हेमचन्द्रका भी एक अच्छा स्मारक प्रतिष्ठित हो चुका है। दिगम्बर सम्प्रदायके किसी आचार्यका स्मृतिमान्दिर अवश्य ही कहीं नहीं सुना!

खास खास मन्दिरोंका थोड़ासा परिचय हम करा चुके। इससे अधिक परिचय करानेके लिए हमारे पास स्थान नहीं। लिखा जाय तो कहाँ तक? मन्दिरोंकी कुछ गिनती हो तब न? शत्रुंजयपर इतने अधिक मन्दिर बन चुके हैं कि अब और मन्दिरोंकी जरूरत नहीं। आजसे लगभग १०० वर्ष पहले ही मन्दिरोंकी यह अधिकता—श्वेताम्बरसमाजके अगुओंको खटक गई थी! आदीश्वरस्वामीके मन्दिरके द्वारपर एक गुजरातीभाषाका शिलालेख लगा हुआ है। उसका अभिप्राय यह है कि "—चैत्र सुदी १५ संवत् १८६७ के दिन समस्त संघने एकत्र होकर निश्चय किया कि हाथीपोलके चौकमें कोई नया मन्दिर न बनवाने पावे। यदि कोई बनवायगा तो वह तीर्थका और समस्त संघका घातक समझा जायगा। समस्त देशावरोंके संघने एकत्र होकर लिखवाया है कि चौकमें, सावली (?) तथा पीपलकी सायामें दक्षिण, उत्तर, पूर्व, पश्चिम दिशाओंमें जो कोई मन्दिर बनवायगा वह समस्त संघका अपराधी होगा।" माळूम नहीं लोगोंनें इस लेखकी आज्ञाका पालन कहाँ तक किया है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब नये मन्दिर बनवानेवाले जैनसंघका अपराध ही कर रहे हैं।

कोई १२ बजेके लगभग हम लोग बन्दना करके लौट पड़े और जगह जगह विश्राम लेते हुए नीचे उतरने लगे। थकावट बहुत हो गई थी; बड़ी मुश्किलसे तलेटी पाई। यहां 'भाथा' बाटा जाता है। प्रत्येक यात्रीको मोतीचूरका लगभग पावभरका एक लड्डू और कुछ बेसनके सेव मिलते हैं। इसीको 'भाथा' कहते हैं। इसे खाकर और ऊपरसे ठंठा जल पीकर यात्री सन्तुष्ट हो जाते हैं। हमारे साथ छोटा बच्चा था, उसकी क्षुधानिवृत्ति इसी भाथेसे की गई। यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि जैनियोंका यह भक्ष्य मिष्टान्न विलायती शक्करसे प्रस्तुत किया जाता है! हम लोगोंके पैरोनें जबाब दे दिया था, लाचार हमें अपने डेरे तक एक टाँगे पर बैठकर जाना पड़ा।

धर्मशालामें पहुँचकर देखा तो मालूम हुआ कि कुछ लोग हमसे पहले ही बन्दना करके लौट आये हैं। एक सज्जनसे पूछनेपर मालूम हुआ कि वे केवल अपने दिगम्बरी मन्दिरके दर्शन करके चले आये हैं दूसरे मन्दिरोंको उन्होंने बिलकुल सरसरी तौरसे देखा है। इस समय हमें अपने देशके एक 'भाईजी साहब'का स्मरण हो आया। आप हमें गिरनारजीकी तलेटीमें मिले थे। 'भाईजी साहब' शत्रुंजयसे आ रहे थे और मैं शत्रुजयको जा रहा था, इस लिए मैंने शत्रुजयके मन्दिरोंके विषयमें उनसे कुछ पूछताँछ की थी। उस समय आपने अपना सम्यग्दृष्टित्व व्यक्त करते हुए कहा था कि "प्रेमाजी, सच पूछो तो मैं श्वेताम्बरी मन्दिरोंके बीचमेंसे एक तरहसे आँखें बन्द करके ही गया आया था! मन्दिरोंको तो बाहरसे सरसरी नजरसे मैंने थोड़ा बहुत देख भी लिया होगा; परन्तु प्रतिमाओंको तो मैंने भरसक न देखनेका ही प्रयत्न किया! मैंने सोचा, आया पुण्य कमानेके लिए हूँ, कहीं कुछ भाव बदल गये—सांशयिकोंके मतमें कुछ सन्मानबुद्धि उत्पन्न हो गई तो

नाहक पापी बनना पड़ेगा। मैंने तो अपने मन्दिरके दर्शन किये और अपनी रास्ता धर ली।" इस तरहके सम्यग्दृष्टि हमारे यहाँ हजारों हैं। इस दृष्टिका ही यह फल है जो हम दूसरे देशवासियों और सर्वथा भिन्न धर्मियोंके विषयमें जितना जानते हैं उतना अपने पड़ोसियों और एक साथ रहनेवालोंके विषयमें नहीं जानते।

म्हसाणा।

पालीताणेमें हम लोग एक दिन और रहे। ता० १९ को शामके ५ बजे पालीताणा छोड़ दिया। दूसरे दिन सवेरे ८॥ बजे म्हसाणा जंकशनपर उतर जाना पड़ा। स्टेशनके पास ही एक धर्मशाला है उसमें जाकर ठहरे। म्हसाणा बड़ोदा राज्यका छोटासा शहर है। यहाँ श्वेताम्बर सम्प्रदायके कई बड़े बड़े मन्दिर हैं। यशोविजय जैनपाठशाला बनारसकी एक 'शाखा पाठशाला' भी यहाँपर है। यहाँ श्रेयः साधकवर्ग नामकी एक संस्था है जो जैनग्रन्थोंके प्रचारके सिवा शिक्षा-संस्थाओंको भी सहायता देती है। इसके संचालक तीन लाख रुपयेका फण्ड करना चाहते हैं। समय न मिलनेके कारण हम इन संस्थाओंके दर्शन न कर सके। ता० २० की शामको ३ बजे आबूरोड़का टिकट लेकर हम गाड़ीपर सवार हो गये और रातको ८॥ बजे खराड़ीमें उतर गये।

खराडी।

खराड़ीमें एक श्वेताम्बर धर्मशाला है। हम सब लोग उसीमें जाकर ठहरे। प्रबन्ध अच्छा है। हमको कोई तकलीफ न हुई। बस्ती छोटीसी है। पीछेसे मालूम हुआ कि वस्तीमें एक दिगम्बरी मन्दिर भी है। दूसरे दिन भोजनादिसे निश्चिन्त होकर हम लोग आबूपर्वतपर जानेके लिए तैयार हो गये। यहाँ नगीनदास हरगोविन्ददास कम्पनी-

की ओरसे सब तरहकी सवारियोंका इन्तजाम रहता है। इक्केका एक तरफका किराया ४) लगता है। एक इक्केमें तीन सवारियाँ बैठ सकती हैं। ग्यारह बजे रवाना होकर हमारा इक्का चार बजेके लग-भग पर्वतके ऊपर पहुँच गया। देलवाड़ा जब दो मील रह गया तब इक्केवालेने हमें उतार दिया। वहाँसे मजदूर करके और उसके सिरपर बोझा रखके हम दिन अस्त होते होते देलवाड़ा पहुँच गये और दिगम्बरी मन्दिरकी धर्मशालामें जाकर ठहर गये।

[क्रमशः ।]

कर्नाटक-जैनकवि।

(गत चौथे अंकसे आगे)

५६ महाबल कवि—समय ई० स० १२५४। यह कवि भार-द्वाज गोत्रीय ब्राह्मण था। इसके पिताका नाम रायिदेव, माताका राजियक्का और गुरुका माधवचन्द्र था। माधवचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्ति इसके विद्यागुरु मालूम होते हैं। क्योंकि अपने नेमिनाथपुराणके प्रत्येक आश्वासके अन्तमें यह "माधवचन्द्रत्रैविद्यचक्रवर्तिश्रीपाद-पद्मप्रसादासादितसकलकलाकलाप" इत्यादि पद लिखकर अपना नाम लिखता है। सहजवविमनोगेह, माणिक्यदीप, और विश्वविद्या-विरंचि इन तीन उपनामोंसे इसकी प्रसिद्धि है। इसका बनाया हुआ नेमिनाथ पुराण नामका एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है। यह कनड़ी भाषाका चम्पू ग्रन्थ है। इसमें २२ आश्वास हैं और प्रधानतासे हरिवंश और कुरुवंशका वर्णन है। इसके प्रारंभमें नेमिनाथ तीर्थंकर, सिद्ध, सरस्वती आदिकी स्तुति करके भूतबलिसे लेकर पुष्पसेन पर्यन्त गुरु-

ओंका स्तवन किया गया है। इसके बाद अपने आश्रयदाता केतनाय-कका और अपना परिचय देकर कविने ग्रन्थका प्रारंभ किया है। केत-नायक परम वीर और स्वयं भी कवि था। उसीके अनुरोधसे इस ग्रन्थकी रचना हुई थी। ग्रन्थकी रचना सुन्दर और प्रौढ है। कविने इस ग्रन्थको शक संवत् ११७६ अर्थात् ई० सन् १२५४ में समाप्त किया है।

५४ **केशिराज**—समय ई० स० १२६०। यह सूक्तिसुधार्ण-वके कर्त्ता मल्लिकार्जुनका पुत्र, होयशालवंशीय राजा नरसिंहके कट-कोपाध्याय सुमनोवाणका दौहित्र और जन्न कविका भांनजा हैं। इसके बनाये हुए चोलपालकचरित, सुभद्राहरण, प्रबोधचन्द्र, किरात और शब्दमणिदर्पण ये पांच ग्रन्थ हैं; पर इनमेंसे केवल एक शब्दमणि-दर्पण उपलब्ध है। यह कर्नाटक भाषाका सुप्रसिद्ध व्याकरण है। इस-की जोड़का विस्तृत और स्पष्ट व्याकरण कनड़ीमें दूसरा नहीं। इसकी रचना पद्यमयी है और इस कारण कविने स्वयं ही इसकी वृत्ति भी लिख दी है। सन्धि, नाम, समास, तद्धित, आख्यान, धातु, अपभ्रंश अव्यय और प्रयोगसार इन आठ अध्यायोंमें यह ग्रन्थ विभक्त है।

५५ **समुदायकर माघनन्दि**—समय ई० सन् १२६०। इसने शास्त्रसारसमुच्चय नामक ग्रन्थकी कर्नाटकी टीका लिखी है। माघनन्दिश्रावकाचार नामक कनड़ीमिश्रित संस्कृत ग्रन्थ भी इसका बनाया हुआ है। इसने अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार बत-

---

१ जन्न कविके वृत्तान्त (पृष्ठ ८५) में जन्न कविको मल्लिकार्जुनका बहनोई और केशिराजका भानजा लिख दिया है। यह गलत है। वास्तवमें जन्न मल्लि-कार्जुनका साला और केशिराजका मामा था।

लाई है—श्रीधरदेव, शिष्य वासुपूज्य, पुत्र उदयेन्दु, पुत्र कुमुदेन्दु और कुमुदेन्दुका शिष्य मैं (माघनन्दि)। इस कविके विषयमें और अधिक परिचय नहीं मिलता।

५६ बालचन्द्र—समय ई० स० १२७३। द्रव्यसंग्रहसूत्रपर इसने शक संवत् ११९५ में एक टीका लिखी है। इस टीकाके अन्त्य पद्योंसे माल्रम होता है कि इसके गुरु नेमिचन्द्र और अभयचन्द्र थे।

५७ कुमुदेन्दु—समय ई० स० १२७५। परवादिगिरिवज्र और सरसकवितिलक ये इस कविके उपनाम थे। कुमुदेन्दु-रामायण नामका ग्रन्थ इसका बनाया हुआ है। ग्रन्थकी रचना सुन्दर है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे माल्रम होता है कि साहित्यकुमुदवनचन्द्रचतुर-चतुर्विधपाण्डित्यकलाशतदलविकसनदिनमणि-वादिधराधरकुलिश -कवि-मुखमणिमुकुरश्रीपद्मनन्दिव्रतिका यह पुत्र था, कामांबिका इसकी माता थी और परमागमनाटकतर्कव्याकरणनिघण्टुछन्दोलङ्कृतिचारितपुराण-षडङ्गस्तुतिनीतिस्मृतिवेदान्तभरतसुरतमन्त्रोषधिसहित नरतुरगगजमाणि-गणपरीक्षापरिणत श्रीअर्हनन्दिव्रति इसके पितृव्य (बड़े काका) थे।

५८ बालचन्द्र—समय ई० स० १२८३। इस कविका बनाया हुआ 'उद्योगसार' नामका केवल एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है जो कि कनड़ी भाषामें है। इस ग्रन्थमें कवि अपना नाम तो प्रगट नहीं करता है; परंतु निम्नलिखित पद्यमें आपको नेमिचन्द्रका शिष्य बतलाता है—

श्रुतनिधिविमलदयाम्बुधिविततयशोधामनेमिचन्द्रमुनीन्द्रः।
श्रुतलक्ष्मीद्वितयक्कं सुतनोनिसि सुतत्वदर्शियेति सुवुदरिदे॥

श्रवणबेलगुलमें ई० स० १२८३ का लिखा हुआ एक शिलालेख है। उसमें श्रीमन्महामण्डलाचार्य श्रीमूलसंघीय इंगलेश्वरदेशीयगणाग्रगण्य राजगुरु नेमिचन्द्र पण्डितदेवका वर्णन करके उनके शिष्य बालचन्द्रका

जिक्र किया है। इससे अनुमान होता है कि उद्योगसारका रचयित बालचन्द्र वही बालचन्द्र है।

५९ हस्तिमल्ल—समय ई० स० १२९०। इस कविने ई० स० १२९२ में आदिपुराण नामका ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; परन्तु कुछ समय पहले इसके कुछ अंशका अनुवाद प्रो० पाठकने इंडियन आंटिक्वेरीमें प्रकाशित किया था। देवचन्द्र कविने अपने राजावली ग्रन्थमें एक हस्तिमल्लाचार्यका जिक्र किया है जो गोविन्द-भट्टका पुत्र था, हस्तिको दमन करनेसे जिसका हस्तिमल्ल नाम प्रसिद्ध हुआ था, जिसके पार्श्वपण्डित आदि पुत्र थे, जो उभयभाषाकविचक्रवर्ती कहलाता था और लोकपालार्य नामका जिसका शिष्य था। मालूम नहीं आदिपुराणका कर्त्ता और यह हस्तिमल्ल दोनों एक ही हैं अथवा जुदा जुदा। देवचन्दवर्णित हस्तिमल्लके बनाये हुए सुभद्राहरण, विक्रान्तकौरवीय, अंजनापवनंजय और मैथिलीपरिणय आदि कई संस्कृत-नाटक हैं। विक्रान्तकौरवीय नाटककी प्रशस्तिसे मालूम होता है कि हस्तिमल्लका पिता गोविन्दभट्ट देवागमसूत्रको सुनकर सम्यग्दृष्टि हो गया था। उसके छह पुत्र थे—श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदय-भूषण, हस्तिमल्ल और वर्द्धमान। ये छहों ही स्वर्णयक्षिके प्रसादसे प्राप्त हुए थे और छहों ही अच्छे कवि थे। इनमेंसे कईके तो कई ग्रन्थ भी मिलते हैं। ये सब दाक्षिणात्य थे।

६० अद्दकवि या अर्हद्दास—समय ई० स० १३०० के लगभग। यह जैन ब्राह्मण था। गंगवंशीय महाराजा मारसिंहके सेनापति काडमरसके वंशमें इसका जन्म हुआ था। यह अपने नामके साथ जिननगरपति, गिरिनगराधीश्वर आदि विशेषण लिखता है इससे मालूम होता है कि यह किसी नगरका राजा था। इसके वंशका मूल

पुरुष काडमरस बड़ा ही वीर था। बारेंदुरके जीतनेवाले महाराज मार-सिंहका तलकाडु नामका किला था। इस किलेको किसी चक्रवर्ती राजाकी सेनाने घेर लिया था। मारसिंहकी आज्ञासे काडमरसने बड़ी बहादुरीके साथ चक्रवर्तीकी सेना भगा दी, ध्वजा गिरा दी, और बारह सामन्तोंको परास्त करके छोड़ा। इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने काडमरसको २५ ग्रामोंकी एक जागीर पारितोषिकमें दे दी। इस काडमरसकी पन्द्रहवीं पीढ़ीमें नागकुमार नामका पुरुष हुआ। अर्हद्दास इसी नागकुमारका पुत्र था। गंगवंशीय मारसिंह दशवीं शता-ब्दिके मध्यमें हुआ है। कविके वंशका मूल पुरुष काडमरस इसीका सेनापति था, अतएव उसके बाद १५ पीढ़ी गुजरनेमें लगभग ३०० वर्ष लग गये होंगे अर्थात् अर्हद्दास ई० सन् १३००के लगभग हुआ होगा। इसका बनाया हुआ अट्ठमत नामका कनड़ी ग्रन्थ है। शककी १४ वीं शताब्दिमें भास्कर नामके आन्ध्रकविने इस ग्रन्थका तेलगूभाषानुवाद किया है अतएव उससे पहले ई० सन् १३०० के लगभग अर्हद्दासका समय माना जा सकता है। इसका अट्ठमत ग्रन्थ समग्र नहीं मिलता। उपलब्ध भागमें वर्षाके चिन्ह, आकस्मिक लक्षण, शकुन, वायुचक्र, गोप्रवेश, भूकम्प, भूजातफल, उत्पातलक्षण, परि-वेषलक्षण, इन्द्रधनुर्लक्षण, प्रथमगर्भलक्षण, द्रोणसंख्या, विद्युल्लक्षण, प्रतिसूर्यलक्षण, संवत्सरफल, ग्रहद्वेष, मेघोंके नाम-कुल-वर्ण, ध्वनिविचार, देशवृष्टि, मासफल, राहुचक्र, नक्षत्रफल, सङ्क्रान्तिफल आदि विषय कहे गये हैं। संस्कृतके मुनिसुव्रतकाव्य, भव्यजनकण्ठाभरण, जीवंधरचम्पू, पुरुदेवचम्पू आदि ग्रन्थोंका कर्त्ता अर्हद्दास नामक कवि शायद अट्ठमतके रचयितासे जुदा है।

—अपूर्ण।

जैनसिद्धान्तभास्करके आक्षेपोंपर विचार।

गत वर्ष जैनमित्रके उपहारमें मेरी लिखी हुई 'विद्वद्रत्नमाला' नामक पुस्तक दी गई थी। जैनसिद्धान्तभास्करके २–३ रे अङ्कमें उसकी समालोचना की गई है। समालोचना कैसी हुई है इस विषयमें मुझे कुछ कहनेका अधिकार नहीं; परन्तु उसमें जो इतिहाससम्बन्धी दो तीन आक्षेप किये गये हैं उनसे पाठकोंको भ्रम हो जानेका डर है इस लिए मैं उनका समाधान कर देना आवश्यक समझता हूँ।

१ 'जिनसेन और गुणभद्राचार्य' नामक निबन्धमें मैंने लिखा है कि वीरसेनके शिष्य यद्यपि जिनसेन थे; परन्तु वीरसेनके बाद आचार्यका पद पद्मनन्दिको मिला था और तत्पश्चात् जिनसेनको। इसी प्रकारसे जिनसेनके प्रधान शिष्य यद्यपि गुणभद्र थे; परन्तु जिनसेनके बाद उनके सतीर्थ विनयसेन आचार्य हुए थे और तत्पश्चात् गुणभद्र। देवसेनसूरिकी निम्नलिखित गाथायें इस बातको पुष्ट करती हैं:—

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी।
सिरिपउमणंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो ॥ ३१ ॥
तस्स य सिस्सो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो।
पक्खोवासमंडिय महातवो भावलिंगो य ॥ ३२ ॥
तेण पुणोवि य मिच्चुं णेऊण मुणिस्स विणयसेणस्स।
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३३

संस्कृतच्छाया:—

श्रीवीरसेनशिष्यो जिनसेनः सकलशास्त्रविज्ञानी।
श्रीपद्मनन्दिपश्चात् चतुःसंघसमुद्धरणधीरः ॥ ३१

तस्य च शिष्यो गुणवान् गुणभद्रो दिव्यज्ञानपरिपूर्णः ।
पक्षोपवासमण्डितः महातपः भावलिङ्गश्च ॥ ३२
तेन पुनोपि च मृत्युं नीत्वा मुनेः विनयसेनस्य ।
सिद्धान्तं घोषित्वा स्वयं गतं स्वर्गलोकस्य ॥ ३३

इन गाथाओंका अभिप्राय यह है कि श्रीवीरसेनाचार्यके शिष्य जिनसेन–जो कि सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता थे–श्रीपद्मनन्दिके पश्चात् चारों संघके स्वामी अर्थात् आचार्य हुए । फिर उनके शिष्य गुणवान् गुणभद्र हुए जो कि दिव्यज्ञानसे परिपूर्ण, एक एक पक्षका उपवास करनेवाले, बड़े भारी तपस्वी और सच्चा मुनिलिङ्ग धारण करनेवाले थे। उन्होंने श्रीविनयसेन मुनिकी मृत्यु होनेपर सिद्धान्तोंका उपदेश किया और पीछे वे भी स्वर्गलोकको सिधारे ।

देवसेनसूरिका दर्शनसार—जिसकी कि ये गाथायें हैं–सं० ९०९ का बना हुआ है। वह पट्टावलियोंकी अपेक्षा बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ है । ऐतिहासिक दृष्टिसे तो वह और भी अधिक महत्त्वका है, क्योंकि उसमें प्रत्येक संघकी उत्पत्तिका समय सम्वत् तक दिया हुआ है। इस लिए जब तक कोई पुष्ट प्रमाण इस बातका न मिले कि जिनसेनके बाद गुणभद्र ही आचार्य हुए हैं तब तक उसे प्रमाण मानना ही पड़ेगा। इसके सिवा दर्शनसारके अनुसार आचार्यपरम्परा माननेमें कुछ हर्ज भी तो नहीं है । विनयसेनके विषयमें तो कुछ शंका ही नहीं की जा सकती । क्योंकि जिनसेनस्वामीने पार्श्वाभ्युदयकी प्रशस्तिमें उन्हें अपने गुरु वीरसेनके शिष्य या अपने सतीर्थ बतलाये हैं और इसलिए जिनसेनस्वामीके बाद उनका आचार्यपदपर सुशोभित होना सर्वथैव उचित है । इसके सिवा जिनसेनस्वामीकी मृत्युके बहुत समय पीछे गुणभद्रस्वामीने उनके अपूर्ण महापुराणको पूर्ण किया है–जिनसेनस्वामीकी

मृत्यु शक संवत् ७६५ के लगभग हुई है और महापुराण शक संवत् ८२० के लगभग पूर्ण हुआ है। अतएव इससे भी मालूम होता है कि जिनसेनस्वामीके बाद विनयसेन और फिर गुणभद्र आचार्य-पट्टपर बैठे होंगे तथा आचार्यावस्थामें ही उन्होंने महापुराणका लिखना उचित समझा होगा। अब रहे पद्मनन्दि सो इनके विषयमें केवल यह शंका हो सकती है कि पद्मनन्दि इस नामसे ये सेनसंघके नहीं मालूम पड़ते। पद्मनन्दि ऐसा नाम प्रायः नन्दिसंघके आचार्योंका होता है। परंतु यह कोई ऐसी बात नहीं है कि इसके कारण दर्शनसारके कथनको अप्रमाणित कर दिया जाय। सम्भव है कि पद्मनंदि पहले नन्दिसंघमें दीक्षित हुए हों और फिर कारणवश सेनसंघके पट्टपर बैठ गये हों नन्दि और सेनादि संघोंमें आजकलके तेरहपंथ और बीसपंथके समान द्वेष तो था ही नहीं। इन्द्रनन्दिने इन चारों ही संघोंमें कोई विशेष भेद नहीं बतलाया है (न तत्र भेदः कोप्यस्ति प्रवृज्यादिषु कर्मसु), तब एक संघके विद्वानका दूसरे संघके पट्टपर बैठना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। अथवा यह भी कोई अनुलङ्घनीय नियम नहीं मालूम होता कि अमुक संघके विद्वानोंका अमुक प्रकारका नाम होना ही चाहिए। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार कथामें लिखा है कि वीरसेनस्वामी चित्रकूटपुर-निवासी एलाचार्यके पास सिद्धान्त पढ़नेके लिए गये। कुन्दकुन्दके नामोंमें पद्मनन्दि और एलाचार्य एकार्थवाची हैं तदनुसार यदि एला-चार्यका ही नामान्तर पद्मनन्दि हो और वे ही वीरसेनस्वामीके बाद उनके पट्टके अधिकारी हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

इन सब बातोंको मैंने विद्वद्रत्नमालामें अच्छी तरहसे स्पष्ट करके लिख दिया है तो भी भास्करके सम्पादक महाशय दूसरी तीसरी किर-णमें लिखते हैं कि—"देवसेनसूरिके दर्शनसारकी गाथाके अनुसार

प्रेमीजीने जिनसेनके बाद पद्मनन्दि इनके बाद विनयसेन तत्पश्चात् गुणभद्रको क्रमशः आचार्यपदवी धारण करनेको लिखा है। मैं यह बात निरी निर्मूल नहीं कहता हूं किन्तु सेनगणकी पट्टावलीमें इनका नाम नहीं है और महापुराणमें भी इनका वर्णन कहीं नहीं आया है। पहले समयमें आचार्यपद विद्याके अनुसार लोगोंको दिया जाता था। यदि पद्मनन्दि सेनगणमें मान लिये जायँ तो भी संभव है कि पद्मनन्दि और विनयसेनकी अपेक्षा गुणभद्र अधिक विद्वान् थे। इसलिए जिनसेनके बाद गुणभद्र ही आचार्यपट्टाधीश हुए।" इसमें सम्पादक महाशयने इतनी कृपा की है कि पद्मनन्दिके आचार्य होनेकी बात 'निरी निर्मूल' नहीं बतलाई है; परन्तु भास्करकी प्रथम किरणके ४९ वें पृष्ठमें आपने इसी बातको इन शब्दोंमें लिखा है—"लोग कहा करते हैं कि वीरसेन और जिनसेनके बीचमें पद्मनन्दिने आचार्यपद सुशोभित किया था, परन्तु यह बात **'एकदम निर्मूल'** मालूम होती है।" इस तरह जिस बातको पहली किरणमें आपने 'एकदम निर्मूल' बतलाई थी उसीको दूसरी तीसरी किरणमें 'कुछ कुछ निर्मूल' बतलाई है, इससे आशा होती है कि चौथी किरणमें शायद आप इसको ठीक भी मान लें। तीसरी चौथी किरणके उक्त नोटके विषयमें मेरे निम्नलिखित वक्तव्य हैं:—

१. इतिहाससम्बन्धी लेखोंको जरा सावधानीसे लिखना चाहिए। विद्वद्रत्नमालामें जिनसेनके बाद पद्मनन्दि, फिर विनयसेन और फिर गुणभद्र, यह परिपाटी कहीं भी नहीं लिखी गई है। जैसा कि प्रारंभमें दिखलाया जा चुका है और पहली किरणमें आपने भी लिखा है मैंने "वीरसेन-पद्मनन्दि–जिनसेन–विनयसेन–गुणभद्र" इस क्रमसे आचार्य परम्पराको माना है।

२. देवसेनसूरि जैसे प्राचीन विद्वान्के वचनोंपर आपको विश्वास क्यों नहीं होता है? योगिराज पण्डिताचार्यकी एक कल्पितकथाको सत्य

सिद्ध करनेके लिए तो आपने सारा इतिहाससागर मथ डालनेका प्रयत्न प्रारंभ किया है फिर देवसेनके विषयमें इतनी अनुदारता क्यों ? कुछ युक्तियाँ भी तो दीजिए।

३. सेनगणकी पट्टावलीमें पद्मनन्दिका नाम न होनेसे उनका आचार्य होना असिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि आपकी प्रकाशित की हुई पट्टावली आधुनिक समयकी बनी हुई है। उसमें शब्दोंके घटाटोपके सिवा बहुत ही कम तथ्य है। उसके बनानेवालेने संस्कृत गद्य अच्छा लिखा है पर इतिहाससे उसका बहुत कम परिचय मालूम होता है। क्योंकि एक तो उसमें जिनसेनस्वामीको 'धवलमहाधवलपुराणादिसकलग्रन्थकर्तारः' विशेषण दिया है, पर जिनसेनस्वामीने जयधवला टीकाहीका कुछ अंश लिखा है। और उनके शिष्य गुणभद्राचार्यको द्वादशांग और चतुर्दशपूर्वका ज्ञाता बतलाया है जो कि बिलकुल ही बेबुनियाद है। दूसरे उसमें आचार्यपरम्पराका क्रम बिलकुल ही नहीं है—पहलेके आचार्योंको पीछे और पीछेके आचार्योंको पहले लिख दिया है। इसी प्रकारकी और भी कई बातें ऐसी हैं जिससे इस पट्टावली पर कुछ अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। और ऐसी पट्टावली तो शायद ही कोई मिले जिसके विषयमें यह कहा जा सके कि इसमें सब ही आचार्योंके नाम आ चुके हैं।

४. महापुराणमें पद्मनन्दि और विनयसेनका यदि नाम नहीं आया तो भी क्या हुआ ? उससे क्या यह सिद्ध हो गया कि पद्मनन्दि और विनयसेन हुए ही नहीं ? महापुराणके प्रारंभमें जिन जिन विद्वानोंका उल्लेख किया गया है प्रायः वे सब पुराणकर्त्ता, कवि, वाग्मी, नैयायिक आदि थे। संभव है कि पद्मनन्दि ग्रन्थकर्त्ता या कवि न हों और इस लिए उनका स्मरण न किया गया हो। अथवा पद्मनन्दिका और भी

कोई प्रसिद्ध नाम हो और उस नामसे महापुराणमें उनका उल्लेख किया गया हो। श्रुतावतार कथामें लिखा है कि वीरसेनस्वामी एलाचार्यके पास सिद्धान्त पढ़नेके लिए गये, इस हिसाबसे एलाचार्य जिनसेन स्वामीके गुरुके गुरु हुए; परन्तु उन्होंने अपने महापुराणमें तो उनका स्मरण न किया! महापुराणके कर्त्ताने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की थी और न ऐसा कोई बन्धन ही उन्हें था कि वे सब ही आचार्योंका उल्लेख करते। विनयसेनका उल्लेख तो पार्श्वाभ्युदयके अन्तमें उन्होंने किया ही है।

५. आचार्यपद विद्वत्ताके खयालसे नहीं किन्तु अनुभव, प्रभाव, संघशासनकी शक्ति, प्रौढ वय, गंभीरता, धीरता आदि बातोंके विचारसे दिया जाता था। बहुतसे विद्वान् ऐसे होते हैं जिनमें किसी संघ या समूहपर शासन करनेकी योग्यता बिलकुल नहीं होती। और यदि यह भी मान लिया जाय कि केवल पाण्डित्यके ही लिहाजसे आचार्यपद दिया जाता था, तो भी आपने यह कैसे निश्चय कर लिया कि पद्मनन्दि और विनयसेनसे गुणभद्र अधिक विद्वान् थे? मैं कहता हूँ कि नहीं थे! पद्मनन्दि तो गुणभद्रके गुरु जिनसेनसे भी पहले आचार्य हुए थे इससे आचार्यपदकी योग्यता उनमें गुणभद्रसे ही क्यों उनके गुरु जिनसेनसे भी अधिक रही होगी और विनयसेन जिनसेन स्वामीके सतीर्थ गुरु भाई थे, इस लिए गुणभद्र स्वामीसे उनकी अवस्था भी अधिक होगी और शायद पाण्डित्य भी विशेष होगा। पद्मनन्दि और विनयसेनके कोई ग्रन्थ हैं नहीं जिनसे आप यह बतला सकें कि इनका पाण्डित्य गुणभद्रसे कम था।

६. विद्वद्रत्नमालामें एक जगह नोट किया गया है कि संवत १३६में श्वेताम्बर संघकी उपत्ति मानी जाती है। क्योंकि दर्शनसारमें लिखा है:—

एकसए छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो॥

अर्थात् विक्रमराजाकी मृत्युके १३६ वर्ष पीछे श्वेताम्बर संघकी उत्पत्ति हुई। इसपर सम्पादक महाशय कहते हैं:—"एक जगह लिखा है कि विक्रमके १३६ वर्ष पीछे श्वेताम्बर सम्प्रदाय अलग हुआ है। किन्तु यह बात एकदम निर्मूल माल्रम होती है। क्योंकि यह बात सर्वमान्य तथा सर्वप्रसिद्ध है कि भद्रबाहु स्वामीके समयमें दिगम्बर सम्प्रदायसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय अलग हुआ है।" इस विषयमें मेरा वक्तव्य केवल इतना ही है कि पहले आप भद्रबाहुका समय निश्चय कर लीजिए तब देवसेनसूरिके समयको निर्मूल बतलाइए। आपके भद्रबाहुओंका तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। कभी आप चन्द्रगुप्तके समकालीन भद्रबाहुको श्रुतकेवली बतलाते हैं, कहीं अष्टाङ्ग निमित्तज्ञ बतलाते हैं और कहीं कुछ और ही। आपका चन्द्रगिरिका शिलालेख तो स्पष्ट शब्दोंमें कहता है कि चन्द्रगुप्तके गुरु भद्रबाहु श्रुतकेवली नहीं थे किन्तु उनकी परम्परा या परिपाटीके दूसरे आचार्य थे और वे अष्टांग निमित्तके जाननेवाले थे; परन्तु आपके प्रगट किये हुए कई शिलालेख उन्हें श्रुतकेवली बतलाते हैं। पहले आप इन उलझनोंको तो सुलझालें। इसके सिवा यह भी बतला दें कि भद्रबाहुके समय श्वेताम्बरसंघ उत्पन्न होनेकी बात सर्वमान्य तथा सर्वप्रसिद्ध क्यों हैं? इसकी सर्वमान्यतामें आपके पास क्या क्या प्रमाण हैं। मैने जो कुछ लिखा है वह निर्मूल नहीं किन्तु एक प्रामाणिक ग्रन्थका आधार रखता है। उसके निर्मूल सिद्ध करनेके लिए कोई समूल प्रमाण दीजिए।

अन्तमें मैं यह बात और जानना चाहता हूँ कि आपने जो इस बात- पर जोर दिया है कि चन्द्रगुप्तकी राजसभामें भद्रबाहु बराबर आते जाते थे

सो इसका आपके पास क्या प्रमाण है ? और उनका राजसभामें जाना न माननेसे कौनसे ऐतिहासिक विषयपर आघात पहुँचता है ?

श्रीमती एनी बिसेंट और हमारे देशके शिक्षित ।

थियासोफिकल सुसाइटीकी प्रधान अध्यक्षा श्रीमती एनी बिसेंटका नाम पाठकोंने सुना होगा । बनारसका हिन्दूकालिज आपहीके प्रभाव और परिश्रमका फल है । श्रीमतीजी यद्यपि गौराङ्गना हैं, तो भी हिन्दू धर्मपर आप अपनी अटल श्रद्धा प्रगट करती हैं । आप बड़ी नामी व्याख्यात्री, उद्योगशीला और परोपकारिणी महिला हैं । आपके इन गुणोंके कारण इस देशके लाखों नवयुवकोंकी आपपर अकाट्य श्रद्धा है । धार्मिक विषयोंमें आप जो कुछ कहती हैं उसे शिक्षित दल बिना कुछ चूँ किये सिर आँखोंसे मान लेता है । अपने भक्तोंको आप अध्यात्म, योग, आत्मविद्या आदिकी सीढ़ियोंपर बराबर चढ़ाती चली गईं और अब वहाँ सबको गाढ़श्रद्धाके सहारेपर बिठाकर आपने एकसे एक विचित्र करामातें दिखानी शुरू कर दी हैं । पहले तो आपने एक मद्रासी लड़केमें महात्मा ईसा बुद्धदेव श्रीकृष्ण आदिके अवतार लेनेके विश्वास फैलानेकी कोशिश की और अब आपने और आपके सहयोगी मि० लेटवीटरने एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें इन दोनों दैवी जीवोंका ६–७ हजार वर्ष पहलेके जन्म जन्मान्तरोंका चरित लिखा गया है । मि० लेटवीटर त्रिकालदर्शी महात्मा कहलाते हैं । आप कृष्णमूर्ति नामके मद्रासी लड़केके शिक्षक थे । उपर्युक्त चरितमें लिखा हैं कि कई हजार वर्ष पहलेके एक जन्ममें श्रीमती बिसेंट एक पुरुष थीं और मि० लेटवीटर उनकी

स्त्री। स्त्रीके ८–१० बाल बच्चे थे! सारी पुस्तक इसी प्रकारकी बातोंसे भरी हुई है। मालूम नहीं श्रीमतीके भक्तोंपर इस चरितका क्या प्रभाव पड़ेगा। उनकी गाढ़ श्रद्धाकी इमारत अब भी फिसलेगी या नहीं। इस समय श्रीमतीकी जो परिस्थिति है और उनके विषयमें इधर बीचकी अनेक घटनाओंके कारण इस देशके वातावरणमें जो हलचल मच गई है, उससे तो अनुमान होता है कि यदि इस देशके युवक बिलकुल ही जडपिण्ड नहीं हैं–उनमें कुछ भी स्वाधीनबुद्धि शेष है तो अब वे श्रीमतीके इस अवतारजालसे आपको मुक्त कर डालेंगे।

धार्मिक जगतकी इस बड़ी भारी घटनासे इस बातका पता लग सकता है कि शिक्षित कहलानेवाले लोगोंमें भी अन्धश्रद्धाकी मात्रा कितनी अधिक होती है और जिन विषयोंपर धर्मका, आत्मज्ञानका या ब्रह्मज्ञानका परदा डाल दिया जाता है उनके सोचने समझनेमें इस देशके शिक्षितसमुदायकी बुद्धि कितनी परावलम्बिनी है। अकसर खयाल किया जाता है कि पाश्चात्य शिक्षा मिलनेसे लोग स्वाधीन बुद्धिवाले हो जाते हैं इसलिए वे बिना सोचे समझे किसी भी बातको माननेके लिए तैयार नहीं होते हैं और अपने देशके हजारों वर्षोंके पुराने विचारोंको, सिद्धान्तोंको, रीति-रवाजोंको वे स्पष्ट शब्दोंमें 'बाहियात' कह डालते हैं। यदि सचमुच ही ऐसा होता कि पाश्चात्य शिक्षासे लोग स्वाधीनचेता हो जाते तो यह देशके लिए बड़ा ही शुभ संवाद होता; परन्तु थोड़े बहुत अपवादोंको छोड़कर वास्तवमें यह बात नहीं है। ये लोग हो तो जाते हैं और भी अधिक पराधीनचेता; परन्तु हमें इनकी करतूतोंसे ऐसा मालूम होता है कि शायद ये स्वाधीनचेता हैं और ये प्रगट भी यही करते हैं। पुराने खयालोंके गतानुगतिकोंमें और इनमें यदि कुछ अन्तर है तो इतना ही कि पुराने लोग तो इस

देशके पुराने विद्वानोंकी बातें बिना कुछ सोचे समझे मान लेते हैं; पर इस समयके विद्वानोंकी नहीं मानते और ये पश्चिमीशिक्षाग्रसित लोग पाश्चात्य लोगोंकी बातोंको बिना 'कथं कस्मात्' किये ही माननेके लिए तैयार रहते हैं पर पुरानेलोगोंकी बातोंको नहीं मानते। इसके सिवा इनमें और कोई अन्तर नहीं। यही कारण है जो देशके हजारों ग्रेज्युएट श्रीमती बिसेंट और मि० लेडवीटरको त्रिकालदर्शी माननेमें अपनी बुद्धिकी जरा भी पराधीनताका अनुभव नहीं कर सके।

एक तो जितने शिक्षित होते हैं वे सब ही स्वाधीनबुद्धिके पात्र नहीं होते —हजारोंमें एकको स्वाधीनतापूर्वक विचार करनेकी शक्ति प्राप्त होती है और दूसरे मनुष्य कुछ स्वभावसे ही अन्धश्रद्धालु या गतानुगतिक होता है। इस कारण यह खयाल करना कि पश्चिमी शिक्षासे लोग स्वाधीन विचारवाले हो जावेंगे—उनमें अन्धश्रद्धा या गतानुगतिकता न रहेगी हमें ठीक नहीं मालूम होता। हाँ, अँगरेजी शिक्षाने इसमें सन्देह नहीं कि हमें हमारी पुरानी शिक्षाकी अपेक्षा स्वाधीन विचार-शक्तिको काममें लाना बहुत कुछ सिखलाया है और हमें अपने सैकड़ें हजारों झूठे विश्वासोंसे मुक्त कर दिया है; पर साथ ही, इसके बदलेमें हमारी बुद्धिको पश्चिमकी एक प्रकारकी दासी बना दिया है—'बाबा-वाक्यं प्रमाणं' की जगह अब उसे 'साहबवाक्यं प्रमाणं' का पाठ पढ़ा दिया है।

पश्चिममें शिक्षाका विस्तार हमारे यहाँकी अपेक्षा बहुत ही अधिक है। ऊँचे दर्जेकी शिक्षा तो वहाँ इस देशकी अपेक्षा सैकड़ों गुणी मिलती है। यदि पश्चिमी शिक्षामें अन्धश्रद्धाको उड़ानेका कोई अमोघ गुण होता तो आज यूरोप और अमेरिकाका धार्मिक जगत् उलट-पलट हो गया होता; परन्तु ऐसा नहीं है—आज भी वहाँ इस देशके

समान ही ढोंगी धर्मात्माओंकी खूब पूजा होती है और हजारों झूठे विश्वासोंको लोग धर्मके नामसे सच मान रहे हैं। कहते हैं कि इग्लेंडके भूतपूर्व मंत्री और सुप्रसिद्ध विद्वान् ग्लैडस्टनको विश्वास था कि ईसा सचमुच ही कुमारिकाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था अर्थात् उसकी उत्पत्ति पुरुषके संयोगके बिना ही हो गई थी। यह उदाहरण हमें स्पष्टतया बतला रहा है कि विद्वान् या शिक्षित हो जानेसे ही कोई अन्धश्रद्धासे मुक्त नहीं हो जाता।

हमको आशा है कि हमारे देशके शिक्षित युवक श्रीमतीके उक्त जन्मजन्मान्तरके इतिहासको पढ़कर यह जाननेका प्रयत्न करेंगे कि हमारी स्वाधीन बुद्धि और विचारशक्तिका वास्तविक मूल्य एक विदेशी महिला या पुरुषने कितना समझा है!

—एक शिक्षित

तारन-पन्थ।

(१)

[गत चतुर्थाङ्कसे आगे]

पिछले अंकमें तारनस्वामीकी जीवनी प्रकाशित की गई है। इस जीवनीपर तारनपंथी भाइयोंका पूरा पूरा विश्वास है; परन्तु हम समझते हैं कि यदि जीवनीमें लिखी हुई बातोंकी अच्छी तरहसे छानबीन की जायगी तो वे निरी मनगढ़न्त मालूम होंगीं और सो भी किसी ऐसे महात्माकी गढ़ी हुई कि जिसका ज्ञान बहुत ही उथला और मर्यादित था। अस्तु। हम यहाँपर जीवनीकी दो चार बातोंपर बहुत ही संक्षेपमें विचार करेंगे:—

दिगम्बर जैनग्रन्थोंमें राजा श्रेणिककी जो जीवनी है उसीमें थोड़ा-सा परिवर्तन करके तारनस्वामीकी जीवनी बना ली गई है और उसीके बीच बीचमें जगह न रहने पर भी तारनस्वामीके लिए जर्बदस्ती जगह की गई है। यदि जीवनीका गढ़नेवाला इतिहाससे थोड़ासा परिचय रखता होता तो उसकी इस गढ़न्तका सहज ही पता नहीं लग सकता—वह गूढ़ हो जाती; परन्तु ऐतिहासिकतत्त्वशून्य होनेके कारण वह गढ़न्त स्वयं पुकार कह कर रही है कि मैं कपोलकल्पित हूँ।

भगवान् महावीरका निर्वाण हुए २४३९ वर्ष व्यतीत हो गये, यह बात अब अच्छी तरहसे निर्णीत हो चुकी है। राजा श्रेणिक और महावीरस्वामी समकालीन थे, यह एक बहुत ही प्रसिद्ध बात है। भगवानके निर्वाणके कुछ ह। समय पहले श्रेणिककी मृत्यु हुई थी अर्थात् श्रेणिककी मृत्यु हुए आजसे लगभग २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके। तारनजीवनीके अनुसार श्रेणिकका जीव १७५० वर्ष पहले नरकमें रहा और फिर वहाँसे च्युत होकर भद्रबाहु आचार्य हुआ। अर्थात् वीरनिर्वाण संवत् १७०० के लगभग भद्रबाहुका जन्म हुआ समझिए! अब हमें यह देखना चाहिए कि भद्रबाहु आचार्य वास्तवमें कब हुए हैं।

भद्रबाहु नामके दो आचार्य हुए हैं। इनमेंसे पहले भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली थे और श्रुतावतार, हरिवंशपुराण, आदि प्रायः सब ही ग्रन्थोंके अनुसार इनका समय वीर नि० सं० १६२ के पहले निश्चित है। महावीर भगवानके निर्वाणके १६२ वें वर्षमें भद्रबाहु श्रुतकेवलीका देहान्त हो चुका था। दूसरे भद्रबाहु आचारांगके ज्ञाता थे। शायद अष्टांगनिमित्तज्ञ भी यही कहलाते थे। आचाराङ्गके ज्ञाता चार आचार्योंमें ये तीसरे थे। वीर भगवान्के ६८३ वर्ष पीछे तक

अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही है और ये चारों आचार्य ११८ वर्षके भीतर हुए हैं। इस लिए वीर नि० संवत ६९० के लगभग दूसरे भद्रबाहुका समय निश्चित होता है। इस तरह ये दोनों ही आचार्य ऐसे समयोंमें हुए हैं कि उनमें श्रेणिकका जीव किसी भी प्रकारसे नरककी १७५० वर्षकी आयु पूर्ण करके जन्म नहीं ले सकता है।

इसके बाद तारनकी जीवनी रचनेवाले कहते हैं कि भद्रबाहुने ९९ वर्षकी उमर पाई और फिर वे कुन्दकुन्दाचार्य हो गये। परन्तु यह बात भी बे-सिरपैरकी है। क्योंकि भद्रबाहु स्वामीके समान कुन्दकुन्दाचार्यका समय भी ऐसा ही है कि उसमें श्रेणिकके जीवका अवतार लेना नहीं बन सकता है। जीवनीके अनुसार भद्रबाहुसे ९९ वर्ष पीछे अर्थात् वीर निर्वाण सं० १८०० के लगभग कुन्दकुन्दाचार्य होना चाहिए। परन्तु दर असलमें वे बहुत ही पहले हुए हैं। यद्यपि अभीतक कुन्दकुन्दके समयका बिलकुल निश्चय नहीं हो गया है तो भी नन्दिसंघकी पट्टावलीके अनुसार शक संवत् ४९ अर्थात् वीर नि० सं० ६९४ के लगभग उनका समय माना जाता है और यदि इसमें कुछ अन्तर होगा तो अधिकसे अधिक १००–२०० वर्षोंका होगा; परन्तु वीर संवत् १८०० के लगभग तो वे किसी तरह भी नहीं हो सकते हैं। क्योंकि वीर नि० सं० १८०० अर्थात् विक्रम संवत् १३३० के पहलेके बने हुए तो बीसों ग्रन्थ ही ऐसे मिलते हैं जिनके रचयिता विद्वानोंने कुन्दकुन्दस्वामीका स्मरण किया है। इसके सिवा यह बात भी नहीं बन सकती है कि दूसरे भद्रबाहु ही दूसरे जन्ममें कुन्दकुन्द हो गये हों। क्योंकि इनके बीचमें इतना थोड़ा अन्तर नहीं है। श्रुतावतारके अनुसार भद्रबाहुके बाद लोहार्य, विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त, अर्हद्बलि, माघनन्दि आदि अनेक

आचार्य हो गये हैं, तब कुण्डकुण्डग्रामनिवासी पद्मनन्दि या कुन्द-कुन्दाचार्य हुए हैं।

गरज यह कि उक्त जीवनीकी पहले श्रेणिक, फिर भद्रबाहु, फिर कुन्दकुन्द और अन्तमें तारनस्वामी होनेकी बात बिलकुल गप्प है—इसमें जरा भी तथ्य नहीं। केवल तारनस्वामीका महत्त्व प्रगट करनेके लिए यह गप्प गढ़ ली गई है। पहले नरकके पहले पाथड़ेकी जो १७५० वर्षकी आयु कल्पित की गई है, उसके लिए किसी भी शास्त्रका आधार नहीं है। दिगम्बर श्वेताम्बरादि सब ही जैन सम्प्रदायोंमें पहले नरककी आयु कमसे कम दश हजार वर्षकी बतलाई गई है। इसी प्रकारसे सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके देवोंकी आयु भी जैनसिद्धान्तोंमें ३३ सागर बतलाई है। यदि तारनस्वामी जैसे महात्माओंके लिए कोई स्पेशल नियम बनाया गया हो जिसके अनुसार ८२,००० वर्षकी भी आयु हो सकती हो, तो वह हमें मालूम नहीं। सर्वार्थसिद्धिके किसी विमानका जयन्त नाम भी अबतक किसी ग्रन्थमें नहीं सुना गया। तारनपन्थका भी ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसमें इन खास खास बातोंका उल्लेख हो। वास्तवमें जीवनी लिखनेवालेका यह उद्देश्य था कि तारनस्वामी एक महत्पुरुष सिद्ध किये जावें और उसे अपनी बुद्धिके अनुसार इससे अच्छी कोई युक्ति न सूझी कि तारन पूर्वकालके राजा श्रेणिक, भद्रबाहु, कुन्दकुन्द जैसे प्रसिद्ध पुरुष और आगामी कालके पद्मनाभ तीर्थंकर बना दिये जावें। इसी लिए उसे इन सब आयु आदि घटा-बढ़ानेकी झंझटोंमें पड़ना पड़ा और राजाश्रेणिककी नरकायुके ८४००० वर्ष किसी तरह पूरे कर देना पड़े। पर इस हिसाबमें भी एक बड़ी भारी गलती रह गई है। वह इस तरह कि-श्रेणिककी नरकायु १७५० वर्ष+भद्रबाहुकी आयु ९९+ कुन्दकुन्दकी ८४+ तारनस्वामीकी ६७+

और सर्वार्थसिद्धिकी ८२०००=सबका जोड़ हुआ ८४००० । परन्तु अब पूछना यह है कि भद्रबाहु, कुन्दकुन्द और तारनने गर्भवास भी तो किया होगा, उसके २७ महीने कहाँ चले गये ? इस जीवनीके विषयमें एक बात और भी विचारणीय है कि इसके लेखकको यह भूत-भविष्यत्कालका ज्ञान कहाँसे हुआ ? क्या उसे भी मि० लेडवीटरके समान कोई दिव्यज्ञान प्राप्त हो गया था ?

जैनशास्त्रोंमें लिखा है कि राजा श्रेणिक पहले नरक गया है। वहाँसे च्युत होकर वह आगामी कालका पद्मनाभ तीर्थंकर होगा। इस बातको लेकर तारनपंथी पण्डित अपने शिष्योंको समझाते हैं और दूसरे लोगोंसे भी कहते हैं कि नरकका जीव एकदम तीर्थंकर कैसे हो सकता है ? यह बिलकुल असंभव बात है ! तीर्थंकर जैसी सर्वश्रेष्ठ पदवी क्या एक नारकीको मिल सकती है ? भोले लोगोंपर यह युक्ति अकसर चल जाया करती है आर उन्हें इस बातपर विश्वास हो जाता है कि पद्मनाभ तीर्थंकर सर्वार्थसिद्धिस्वर्गसे च्युत होकर ही होंगे । परन्तु जैनसिद्धान्तोंमें इसके एक नहीं सैकड़ों प्रमाण मौजूद हैं कि जीव नरकसे निकल कर भी तीर्थंकर हो सकता है । मामूली चरचाशतकका पढ़नेवाला भी इस बातको जानता है; त्रैलोक्यसार गोम्मटसार आदिके पढ़नेवाले तो जानते ही हैं ! सम्यग्दर्शनका अधिकसे अधिक महत्त्व इसी बातसे प्रगट होता है कि उसके प्रभावसे नारकी भी अगले ही जन्ममें त्रैलोक्यपूज्य तीर्थंकर हो सकता है । जैनशास्त्रोंके अनुसार आगामी कालमें ऐसे कई तीर्थंकर होंगे जो इस समय नरकवास कर रहे हैं ।

---

१ सातते निकसि पसु छट्ठे नर व्रत नाहिं, पांचैं महाव्रत चौथेसेती मोख-सार है । तीजे दूजे पहलेतैं आय जिनराय होय, भौनत्रिक सुरग दोय एकेंद्री धार है ॥—८८ ॥

जीवनीकी एक बात यह भी विचारणीय है कि दिल्लीमें उस समय ऐसा कौनसा बादशाह था जो इतना नालायक था कि किसीके लड़केके बुद्धिवैभवको सुनकर ही उसे मरवा डालता ! जीवनीके लेखकने भूत और भविष्यत् कालतककी तो बातें बतला दी हैं; पर यह बतलानेका कष्ट न जाने क्यों स्वीकार न किया कि उक्त बादशाहसाहबका नाम क्या था ! यदि यह बतला दिया होता तो इतिहास जाननेवालोंको एक नई बात मालूम हो जाती ।

यह बात भी हमारी समझमें न आई कि गुढ़ासाहुको मिथ्यात्वकर्मकी ऐसी कौनसी प्रकृतिका उदय हुआ जिससे कि वे अपने महात्मा पुत्रके सारे महत्त्वको भूल गये ! मालूम नहीं तारनपन्थमें मिथ्यात्वकर्मका ऐसा कौनसा लक्षण किया है जो स्मृतिको भी लुप्त कर देता है । एक ५–६ वर्षके लड़केके इस अपराधपर कि उसने प्रतिमा कहींकी कहीं कर दीं ऐसा कौन पिता होगा जो उसे जानसे मार डालनेका उद्योग करने लगे ! असलमें यह प्रतिमाको पानीमें डुबानेकी कथा केवल मूर्तिपूजाका निषेध करनेके लिए–यह बतलानेके लिए कि पत्थरकी प्रतिमामें क्या रक्खा है–उसमें कुछ शक्ति नहीं होती–गढ़ की गई है ।

इस तरह तारनजीवनीके विषयमें बीसों दलीलें पेश की जा सकती हैं जिनसे उसका अधिकांश कपोलकल्पित ही जान पड़ता है ।

इस जीवनीके साथ साथ हम उस किंवदन्तीपर भी एक दृष्टि डालना चाहते हैं जो तारनपंथके प्रतिपक्षियोंमें प्रचलित है ।

इस किंवदन्तीका एक अंश तो तारनजीवनीसे ही कुछ परिवर्तित करके ले लिया गया है । अर्थात् जिस तरह जीवनीमें लिखा है कि गुढ़ासाहु एक बार बाहर चले गये और अपने लड़केको पूजाका कार्य

सोंप गये, उसी तरह किंवदन्तीमें भी कहा है कि गुढ़ासाहु जब व्यापारके लिए दूसरे गाँवको जाते थे, तब तारनको पूजाका कार्य सोंप जाते थे। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ जीवनीमें प्रतिमापूजाके निषेधको पुष्ट करनेका प्रयत्न किया गया है वहाँ इसमें तारनने प्रतिमापूजनका निषेध क्यों किया यह बतला कर उनकी निन्दा करनेका प्रयत्न किया गया है। तारनपन्थके मन्दिरोंमें शास्त्र पढ़े जानेके पीछे प्रसाद बाँटा जाता है। वास्तवमें देखा जाय तो इस प्रसादको निर्माल्य किसी तरहसे नहीं कह सकते। क्योंकि भगवतके सम्मुख जो द्रव्य मन्त्रोच्चार पूर्वक चढ़ाया जाता है, उसे ही निर्माल्य कहते हैं। परंतु तारनपन्थी भाई अपने प्रसादको चढ़ाते नहीं है। एक तरहसे वह लोगोंको एकत्र करनेकी एक तरकीब है; परन्तु किंवदन्ती गढ़नेवालेने प्रसादमें निर्माल्यकी कल्पना करके उसका बादरायणसम्बन्ध तारनस्वामीतकसे जोड़ दिया! इससे उसने दो बातें सिद्ध कीं—एक तो प्रसाद बाँटनेकी पद्धतिकी—जिसे कि वह अपने सम्प्रदायमें प्रचलित न होनेसे स्वयं बुरी समझता था—बुनियाद बतला दी और दूसरे तारनस्वामीके चरित्रको निन्दित ठहराकर यह दिखला दिया कि उन्होंने अपना जुदा पन्थ क्यों चलाया था। तारनस्वामीने नटोंसे जादूगरी सीखी और उस जादूगरीके प्रभावसे अपने १४ ग्रन्थोंको आकाशसे उतरते हुए दिखलाया, यह उस कथाका एक तरहसे अनुवाद ही है जो हरिवंशपुराणमें लिखी है और जिसमें एक असुरने वेद ग्रन्थोंको आकाशसे उतरते हुए दिखलाया था। तारनपन्थके १४ ग्रन्थोंको लोगोंने कैसे मान लिये—उनपर विश्वास कैसे कर लिया, इस बातका खुलासा करनेके लिए उक्त बात गढ़ी गई है। इसी तरहसे किंवदन्तीमें बतलाई हुई दफन करने और अग्नि-

संस्कार करने आदिकी बातें भी हैं। गरज यह कि जीवनीके समान यह किंवदन्ती भी कपोलकल्पित है। इन दोनोंहीमें कुछ सत्यांश है पर वह बहुत थोड़ा है। निष्पक्ष समालोचक इनमेंसे केवल इतना सार निकाल सकता है कि तारनस्वामीका जन्म अमुक समयमें हुआ था, वे अमुक कुलमें उत्पन्न हुए थे, देशकी और जैनधर्मकी तत्कालीन परिस्थिति-योंके अनुसार उन्होंने प्रतिमापूजनका निषेध किया, धर्ममार्गमें जाति-पाँतिको प्रतिबन्धक नहीं समझा, इन बातोंका उन्होंने कुछ ग्रन्थ रच-कर अपनी बुद्धिके अनुसार प्रतिपादन किया, उनमें ग्रन्थ लिखनेकी प्रतिभा तो नहीं थी; परन्तु चरित्र उनका अच्छा था, इस कारण हजारों लोग उनके अनुयायी हो गये, बहुतसे नीच जातिके लोगोंको भी उन्होंने अपना शिष्य बनाया और अपने पन्थकी जड़ पक्की जमाये बिना ही वे चल बसे। (अपूर्ण।)

वैश्य जातिके जैनियोंमें पारस्परिक विवाह।

अमली कार्रवाई।

जबसे लाला अजितप्रसादजी एम. ए. एल. एल. बी. ने दिगम्बर जैनप्रान्तिकसभा बम्बईके सभापति होनेपर अपने व्याख्यानमें जैन-समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि रोटीबेटीव्यवहारके संकुचित हो जानेसे जैनियोंकी बहुत क्षति हुई है तबहीसे जैन-समाजमें एक नया आन्दोलन खड़ा हो गया है। हमारे समाचारपत्र हमें बतला रहे हैं कि जब जातिबन्धन ऐसा हानिकारक है तब वह क्यों न तोड़ डाला जाय? जैनशास्त्रोंके अनुसार खण्डेलवाल, ओस-वाल, अग्रवाल, परवार आदि कोई भी ऐसी जाति नहीं है कि जिसमें परस्पर रोटीबेटीव्यवहार न हो सके। वास्तवमें ये सब जातियाँ एक

ही वर्णमें गर्भित हैं। स्थानान्तर हो जानेसे, दूरीके कारण पारस्परिक सम्बन्ध टूट जानेसे, तथा ऐसे ही और अनेक कारणोंसे एक वर्णकी ये अनेक जातियाँ बन गई हैं और पीछे ग्रामादिके नामसे तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषोंकी सन्तान होनेसे उनके नाम पड़ गये हैं। एक दूसरे-से दूर हो जानेके कारण जब बिलकुल परिचय ही नहीं रहा, तब आपसमें रोटीबेटीका व्यवहार होना तो कैसे संभव होता एक दूसरेसे मिलना भी नहीं हो सकता था। ये भेद धीरे धीरे यहां तक बढ़े कि एक एक जातिके ही कई कई भेद हो गये। जैसे, एक अग्रवालोंमें ही पूर्वी और पश्चिमी ऐसे दो टुकड़े हो गये और उनमें आपसमें कोई भी भी सम्बन्ध बाकी न रह गया। उधर मारवाड़ी अग्रवालोंकी एक जुदा ही जाति बन गई और अन्य अग्रवालोंसे उसका इतना अन्तर पड़ गया कि जैनी अग्रवाल दूसरे वैष्णव अग्रवालोंसे तो सम्बन्ध रखते हैं परन्तु मारवाड़ी जैनी अग्रवालोंसे नहीं रखते। अन्य जातियोंमें भी इसी प्रकारके अनेक भेद प्रभेद हो गये हैं।

परन्तु अब यह विरोध और भेदभाव रखनेका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। वर्तमानमें रेल तार आदिके सुभीते हो जानेसे सब एक दूसरेसे मिलते हैं, एक दूसरेके यहां जाकर ठहरते है और स्नेह भी रखते हैं—केवल एक विवाहसम्बन्ध रुका हुआ है।

जैन शास्त्रोंमें वर्णभेद माना है अर्थात् आचार तथा जीविकादिके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण माने गये हैं; परन्तु रोटीबेटीके लिए एक वर्णके भीतर कोई जातिभेद कहीं नहीं पाया जाता। वर्णभेद अनादि है; परन्तु रोटीबेटीका सम्बन्ध छुड़नेवाला जातिभेद कुछ समयसे हुआ है। यह सबको स्वीकार है और यह भी कहा जा स-कता है कि जातिभेद किसी ऋषि महार्षिके वाक्यानुसार नहीं है देशकालकी

परिस्थितियोंके कारण हो गया है। परन्तु अब समय पलट गया है। वर्तमान समयमें जातिभेदकी कोई आवश्यकता नहीं दिखती। जातिभेद कोई पारलौकिक धर्म नहीं है—लौकिक या सांसारिक रीति है और सांसारिक रीति रवाज समयके अनुसार सदा ही बदला करते हैं।

एक 'हिन्दी जैनगजटको' छोड़कर जैनियोंके और सब समाचारपत्र इस विषयमें एकमत हैं कि जातिभेदसे बहुत हानियाँ हैं—एक तो मेल जोल कम होता है—परस्पर रोटीबेटीव्यहवार होनेसे जो प्रेम बढ़ता है वह नहीं बढ़ने पाता, दूसरे विवाहका क्षेत्र संकुचित होनेसे सन्तान निर्बल होती है, तीसरे योग्य सम्बन्ध नहीं मिल सकता, चौथे निर्धन लड़कोंका विवाह नहीं होता, और पाँचवें छोटी छोटी जातियोंका दिनपर दिन क्षय होता जाता है। जैनहितैषीके आषाढ़के अंकमें प्रकाशित हुआ है कि करहलमें लमेचू जातिके ३०० घर दशवर्षमें कम होते होते२००रह गये और आगेके १०वर्षमें ५० घरोंका नाश और भी हो जानेवाला है, क्योंकि सैकड़ों पुरुष कुँवारे फिर रहे हैं। ऐसा ही शोकदायक वृत्तान्त कुछ खण्डेलवालों,गोलालारों आदिका भी है—उनके यहाँ कुँवारे ही कुँवारे दिखाई पड़ते हैं। कुछ दिन पहले अंग्रेजी जैनगजटमें ऐसा ही एक दुःखप्रद वृत्तान्त मि० ए. बी. लट्ठेने महाराष्ट्रदेशके जैनियोंका प्रगट किया था। एक वर्णकी जातियोंमें परस्पर बेटीव्यवहार होनेसे किसीने कोई भी हानि नहीं बतलाई है सिवा इसके कि आचार विचारोंमें इस समय भिन्न भिन्न जातियोंमें अन्तर है। पर इस विषयमें मेरा खयाल यह है कि जिन लोगोंको यह अन्तर माळूम होता है—वे आपसमें रोटी—बेटी—व्यवहार न करें; परन्तु जिन्हें यह अन्तर नहीं माळूम होता—जो ऐसे अन्तरोंको अन्तरही नहीं समझते उनको परस्पर सम्बन्ध करनेसे क्यों रोका जाय? उनमें सम्बन्ध होने लगेगा, तो और लोग भी सुधर जावेंगे।

अतः प्रस्ताव किया जाता है कि वैश्य वर्णकी विविध जैनजातियोंमें जो लोग परस्पर रोटी—बेटी—व्यवहार करना चाहें उनको सहर्ष करने देना चाहिए। क्योंकि यह बात जैनशास्त्रोंके अनुकूल है और इससे लाभ भी बहुत हैं। इससे जैनधर्मका विस्तार होगा, उसकी प्रभावना होगी और प्रेम तथा एकताके बढ़नेसे जैनसमाजकी उन्नति होगी। इसके सिवा सन्तान सुशील और बलवान् होगी, गार्हस्थ्य सुखकी वृद्धि होगी, बेटी बेचनेका रवाज उठ जायगा और और भी कई बुरे रवाज बन्द हो जायँगे।

यह प्रस्ताव जैनसमाचारपत्रोंकी बहु सम्मतिसे तो पास हो चुका है; अब जरूरत है कि इसकी अमली कार्रवाई की जाय। समस्त जैन सज्जनोंसे प्रार्थना है कि जो महाशय इस प्रस्तावके अनुकूल हों वे अपना नाम, पता और जाति लिखकर मेरे पास भेज दें। जो महाशय अपना नाम प्रकाशित न कराना चाहते हों वे सूचित कर दें— उनका नाम गुप्त रक्खा जायगा।

इस प्रस्तावको नियमानुसार काममें लानेके लिए एक कमेटीके बनानेकी आवश्यकता है। इसलिए जो महाशय इस प्रस्तावको कार्यमें परिणत करनेकी कार्यवाही करनेके लिए तत्पर हों वे अपने नामसे और वे क्या सहायता देंगे इससे शीघ्र ही सूचित करें।

इस प्रस्तावकी अमली कार्रवाई करनेके लिए स्थान स्थानपर कमेटीके जल्से कराये जावेंगे, लड़के लड़कियोंकी सूची बनाई जावेगी जिससे योग्य सम्बन्ध मिलानेमें सुगमता हो, प्रत्येक पंचायतीके अगुओंकी सूची तैयार की जायगी, छोटे छोटे ट्रक्ट छपाकर मुफ्त वितरण किये जावेंगे और व्याख्यानादि दिलाये जावेंगे। इन कामोंमेंसे जो सज्जन जो काम उत्साहपूर्वक करना चाहें वे मुझे सूचित करें। इस

काममें कुछ खर्चकी भी जरूरत होगी, इसलिए जो महाशय इससे सहानुभूति रखते हों वे सहायता भेजनेकी भी कृपा करें।

जातिसेवक—

१७-८-१३ } **चेतनदास बी.ए.,**
ग० हाईस्कूलसुलतानपुर।

समाधिमरण*।

परम पंच परमेष्ठिका ध्यान धर।
परब्रह्मका रूप आया नजर ॥
परब्रह्मकी मुझको आई परख।
हुआ उरमें सन्यासका है हरख ॥ १ ॥
लगन आतमारामसे लग गई।
महामोह—निद्रा मेरी भग गई ॥
खुली दृष्टि चैतन्य चिद्रूपपर।
टिकी आन अब ब्रह्मके रूपपर ॥ २ ॥
परम रसकी अब है गटागट मेरे।
सुधातम रहसकी रटारट मेरे ॥
यहां आज रोनेका क्या शोर है।
मेरे हर्ष आनन्दका जोर है ॥ ३ ॥
निरंजनकी कथियाँ सुनाओ मुझे।
न कुछ और बतियाँ बताओ मुझे ॥
न रोओ मेरे पास इस वक्तमें।
कि तिष्ठा हूँ खुशहाल खुशवक्त मैं ॥ ४ ॥

* यह कविता खतौलिनिवासी स्व० प० शिवलालजीने अपने पुत्रकी मृत्युके समय बनाई थी।

जरा रोवनेका तअम्मुल करो ।
नजर मिहरवानीकी मुझपर धरो ॥
उठो अब मेरे पाससे सब कुटुम्ब ।
तजो मोह मिथ्यात्वका सब विटम्ब ॥ ५ ॥
जरा आतमा-भाव उर आने दो ।
परब्रह्मकी लव मुझे ध्याने दो ॥
मुझे ब्रह्मचर्चासे बरतै हुलास ।
करो और चर्चा नहीं मेरे पास ॥ ६ ॥
जो भावै तुम्हें सो न भावै मुझे ।
न झगड़ा जगतका सुहावै मुझे ॥
जो काया पै पुटकी पड़ी मौतकी ।
नदा आई शिवलोकके नाथकी ॥ ७ ॥
कि यह देह चिरकालकी है मुई ।
मेरी जिन्दगानीसे जिन्दा हुई ॥
तजा हमने नफरतसे यह मुरदा आज ।
चलो यार, अब चल करें मोक्षराज ॥ ८ ॥
जिसम झोपड़ीमें लगी आग जब ।
हुई मेरे वैराग्यकी जाग तब ॥
संभाले सुखद रत्न मैं अपने तीन ।
लिया ब्रह्म अपनेको मैं आप चीन ॥ ९ ॥
जिसे मौत है उसको है मुझको क्या ।
मुझे तो नहीं ? फेर भय मुझको क्या ॥
मेरा नाम तो जीव है जीव हूँ ।
चिरंजीवि चिरकाल चिरजीव हूँ ॥ १० ॥

अखण्डित अमण्डित अरूपी अलख ।
अदेही अगेही अनेही परख ॥
परम ब्रह्मचारी परम शान्त हूँ ।
निरालोक लोकेश लोकान्त हूँ ॥ ११ ॥
परम ज्योति परमेश परमातमा ।
परम शुद्ध सिद्धेश शुद्धातमा ॥
चिदानन्द चैतन्य चिद्रूप हूँ ।
निरञ्जन निराकार शिवभूप हूँ ॥ १२ ॥
चितामें धरो इसको ले जाके तुम ।
हुए तुमसे रुखसत क्षमा लेके हम ॥
कहीं जाओ यह देह क्या इससे काम ।
तजी इसकी रगवत मुहव्वत तमाम ॥ १३
मुए संग रह रह बहुत कुछ मुए ।
मगर आज निर्गुण निरञ्जन हुए ॥
तिहूँ जगमें सन्यासकी यह घड़ी ।
मेरे हाथ आई है अद्भुत जड़ी ॥ १४ ॥
विषय विषसे निर्मल हुआ आज मैं ।
चलाचलसे अविचल हुआ आज मैं ॥
परब्रह्म लाहा लिया आज मैं ।
परभ भाव अंमृत पिया आज मैं ॥ १५ ॥
घटा आत्म उपयोगकी आई झूमि ।
अजब तुर्फतुरियाँ बनी रंगभूमि ॥
शुकल ध्यान टलनीकी (?) टंकोर हैं ।
चिदानन्द झाँझनकी झंकोर है ॥ १६ ॥

ये संसारके जीव मरते डरें।
इसी अर्थ शौलाल बंदन करें॥

प्रेषकः—**शशिपति**

अन्योक्ति-पुष्पावली।

पथिक।

पथिक, सुगुण यदि पास न तेरे, तो क्यों मूढ़ यहाँ आया?
गुण—ग्राहक यह कूप, अगुणने, कभी न इससे जल पाया॥

ऊँट।

यद्यपि सब जीवोंमें ऊँचे, पर न ऊँच पदवी पाई।
अहो ऊँटजी, बिना गुणोंके, कहो कीर्ति किसने पाई?॥ १ ॥

चन्द्रमा।

करता है प्रसन्न सब जगको, बिना कहे ही इन्दु उदार।
सज्जन बिना याचनाके ही, करते हैं सबका उपकार॥

कनेर।

है सुगंन्धिका लेश नहीं, पर शोभा सचमुच भारी है।
हे कनेर, तू प्रगट कह रहा, हेम न सौरभधारी है॥ २ ॥

सिंह।

भूखे रहनेपर भी देखो, नहीं सिंह तृण खाता है।
विपत्कालमें भी कुलीन जन, हीन काम नहिं करता है॥

हंस।

करै हंस, यदि तू भी आलस, क्षीर—नीर अलगानेमें।
तो फिर कौन रहेगा न्यायी, ऐसे गिरे जमानेमें॥ ३

चन्दन।

चरित चारु यह तेरा चन्दन, ग्रहण कौन जन कर सकता।
तुझे पीसते घिसते उनको, तू सौरभसे खुश करता॥

सज्जन।

दुःखदग्ध होते भी सज्जन, परको सुख पहुँचाते हैं।
चन्दनकण पड़के पावकमें, सुखद गन्ध फैलाते हैं॥ ४॥

बन्दर।

नख–रदसे सत्कार अतिथिका, चीतकारसे संभाषण।
कपिसमाजमें यही उचित है, तरुशाखाओंका आसन॥

बबूल।

कभी न तुझको देखा सुन्दर, कुसुम पल्लवोंसे मण्डित।
हे बबूल, कँटकयुत तुझपर, रीझें कैसे अलि–पण्डित?॥

शिवसहाय चतुर्वेदी
देवरी, (सागर)

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

१ जैनशासनका आक्षेप।

जैनहितैषीके गत आठवें अङ्कमें हमने शत्रुंजयतीर्थका वर्णन करते हुए लिखा था कि "श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस पर्वतके विषयमें एक विलक्षण विश्वास है। वह यह कि गिरनारपर्वत शत्रुंजयका ही एक शिखर है। शत्रुंजय या सिद्धाचलके १०८ शिखर हैं जिनमें गिरनार पाँचवाँ शिखर है। आबू वगैरह भी शायद इसीके शिखर हैं। इसकी ऊँचाई भी घटती बढ़ती रहती है। अवसर्पिणीके पहले आरेमें यह ८०, दूसरेमें ७०, तीसरेमें ६०, चौथेमें ५०, पाँचवेमें १२ योजन और छट्ठेमें ७ हाथ ऊंचा रहता है।"

इस लेखको पढ़कर सहयोगी जैनशासन जोशमें आ गया है और अपने ३० जुलाईके अंकमें हमें कई भली बुरीं सुना बैठा है। सहयोगी चाहता तो हमारे लेखके उक्त अंशके विषयमें अपनी सम्मति दूसरे रूपमें प्रकाशित कर सकता था; परन्तु उसके नवयुवक 'न्यायतीर्थ' सम्पादकने यह बात अपनी शानके खिलाफ समझी–उन्होंने न्याय पढ़कर आक्षेपोक्तिका ऐसा अच्छा मौका हाथसे गवाँ बैठना उचित न समझा। अस्तु, यह अपनी अपनी लेखनपद्धति है–शायद सम्पादक महाशय इस लेखनशैलीको ही अपने विचारोंके फैलानेका मार्ग समझते होंगे। इस विषयमें हमें कुछ कहना नहीं है। हम सिर्फ अपने ऊपर किये हुए आक्षेपका समाधान कर देना चाहते हैं। न्यायतीर्थ महाशयको माळूम हो कि जैनहितैषीका सम्पादक अपनेको किसी भी शास्त्रका ज्ञाता नहीं समझता श्वेताम्बर शास्त्रोंका, परमज्ञाता होना तो बहुत बड़ी बात है। उसकी समझमें किसी शास्त्रका 'ज्ञाता' होना बहुत ही कठिन है। उसने कभी किसी जगह ऐसा प्रगट भी नहीं किया है कि मैं श्वेताम्बर शास्त्रोंका ज्ञाता हूँ, आप घबड़ाइए नहीं। 'विलक्षण विश्वास' लिखनेका कारण यह था कि 'हितैषी'के अधिकांश ग्राहक वे लोग हैं जो गिरनार शत्रुंजय आदिको जुदा जुदा पर्वत समझते हैं। अतः उनके लिए यह विश्वास बिलकुल ही विलक्षण है। आप लिखते हैं कि शत्रुंजयपर्वतकी ८०–७० आदि योजनोंकी ऊँचाई नहीं चौड़ाई है। ऊँचाई बतलाना मनःकल्पना है। इसके उत्तरमें निवेदन यह है कि श्रीयुक्त दौलतचन्द पुरुषोत्तम बरोडिया बी. ए. नामक श्वेताम्बर सज्जनने गुजरातीमें एक 'गिरनार-माहात्म्य' नामका ग्रन्थ लिखा है। वह संस्कृत शत्रुंजयमाहात्म्यके आधारसे लिखा गया है। उसके पृष्ठ ८८ में लिखा है–" पहेला आरामां शत्रुंजय ८०

योजन, बीजामां ७० योजन, त्रीजामां ६०, चौथामां ५० ने पांचमामां १२ योजन **ऊंचो** होय छे. ने छठ्ठा आरामां सात हाथ छेवटे **ऊंचो** रहे छे. तेथी आ तीर्थ शाश्वत छे." अपने लेखमें हमने इसी ग्रन्थके आधारसे उक्त अंश लिखा था और एक बी. ए. लेखककी कृतिमें सन्देह करनेका कोई कारण भी नहीं था। तब इस विषयमें हमारा कोई दोष नहीं। यदि दर असलमें वह ऊँचाई नहीं चौड़ाई है तो आप ही किसी ग्रन्थका प्रमाण देकर बतला दीजिए—हम तो एक श्वेताम्बरी लेखकके ग्रन्थका प्रमाण दे चुके। इसके सिवा साथ साथमें यह भी बतलानेकी कृपा कीजिए कि योजनका माप क्या है और इस पाँचवें आरेमें उसकी १२ योजनकी चौड़ाई कहाँसे कहाँ तक समझनी चाहिए।

---

२ भिन्न भिन्न जातियोंके आपसमें मिलनेके उदाहरण।

आवश्यकताके समय जैनियोंकी एक जाति अपनी प्रतिवासिनी दूसरी जातिको आपमें मिला लेती थी और उसके साथ रोटीबेटी-व्यवहार जारी कर देती थी तलाश करनेसे इसके अनेक दृष्टान्त मिल सकते हैं। किसी समय खण्डेलवालोंने बीजा वर्गियोंको अपनेमें मिला लिया था, यह बात तो प्रायः सब ही जानते हैं; अब जैनमित्रमें किसी पद्मावती पुरवार महाशयने लिखा है कि "पहले पद्मावतीपुरवालोंमें वैष्णव ब्राह्मण व्याह पढ़ाया करते थे; परन्तु एक बार किसी बातपर उन्होंने व्याह पढ़ाना बन्द कर दिया। यह देखकर हमारी जातिके मुखियाओंने गौड़ ब्राह्मणोंके कुछ घरोंको जैनी बनाकर अपनेमें मिला लिया और उनसे व्याह पढ़ानेका कार्य लेना प्रारंभ कर दिया। ये ब्राह्मण अब पांडे कहलाते हैं—इनके साथ हमारा कच्ची पक्की रोटीका और बेटी-

का सबन्ध बराबर होता है। इसके सिवा एक बार मैनपुरीमें मेला हुआ था और उसमें पद्मावतीपुरवालों और बुढ़ेलोंके परस्पर मिल जानेका प्रस्ताव हुआ था। सब कुछ तय हो गया; परन्तु पीछेसे एक-पक्ष वालेके यह कहनेसे कि हम बेटी सिर्फ लेंगे–देगें नहीं–काम बिगड़ गया।" आबू पर्वतके प्रसिद्ध मन्दिरोंके एक शिलालेखसे मालूम होता है–जो कि वि० सं० १२९० का लिखा हुआ है–कि प्रसिद्ध धनिक मन्त्री तेजपालकी द्वितीया स्त्री श्रीमती सुहडादेवी मोढ जातिके महाजनकी लड़की थी। तेजपाल प्राग्वाट या पोरबाड़ जातिके थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय पोरबाड़ और मोढ़ जातिमें परस्पर विवाह सम्बन्ध होता था; परन्तु वर्तमानमें यह बात नहीं है। गुजरातके पोरबाड़ और मोढ़ परस्पर विवाह नहीं करते।

३ विदेशी भाषाओंमें जैनसाहित्य।

विदेशी विद्वानोंकी ज्ञानलिप्सा अपरिमित है। वे अपने देशकी भाषाओंके साहित्यको अहर्निशि परिश्रम करके बढ़ा रहे हैं। चाहे जिस देशके, चाहे जिस विषयके ज्ञातव्य विचार हों उन्हें वे अपनी भाषामें संकलित करना अपना कर्तव्य समझते हैं और इससे वे अपने देशका और अपने जिज्ञासु देशवासियोंका अनन्तकल्याण साधन करते हैं! वैदिक और बौद्धसाहित्यकी ओर तो इनका चित्त कभीका खिंच चुका था–इस विषयके हजारों ही ग्रन्थ अँगरेजी, जर्मन, फ्रेंच, इटाली भाषाओंमें अनुवादित हो चुके हैं और लिखे जा चुके हैं। जैनसाहित्यपर इनकी दृष्टि बहुत पीछे पड़ी है; परन्तु पड़ चुकी है। थोड़े ही दिनोंमें जैनसाहित्यके भी पचासों ग्रन्थ यूरोपकी भाषाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। बीचमें कुछ वर्षों तक यह कार्य कुछ शिथिलतासे चलता था; परन्तु इन दिनों इसमें फिर

तेजीसी आ गई है। बंगलाके 'भारतवर्ष'के एक लेखसे मालूम हुआ कि अभी हाल ही इटाली भाषामें कई जैनग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। प्रो० बालिनि नामके विद्वानने 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' की आलोचना विषयक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसका नाम है cont riduto allo studio dclla upamiti Bhavaprapancha Katha-di siddharsi। इसमें सिद्धर्षिका जीवनवृत्तान्त, उनके ग्रन्थ, उ० भ० कथाकी समालोचना, उसकी भाषा तथा रचनाप्रणाली इत्यादि बातोंका विवेचन किया है। इसके सिवा उपमितिभवप्रपञ्चाके तृतीय प्रस्तावका इटाली भाषानुवाद, वर्द्धमानसूरिरचित वासुपूज्य-चरित, हेमचन्दसूरिकृत वासुपूज्यचरित (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरि-तका एक भाग) ये तीन ग्रन्थ और भी उक्त विद्वानने प्रकाशित किये हैं। भावनगरके जैनशासनसे मालूम हुआ कि डा० एल. पी. टेसटोरीने धर्मदासगणिकृत उपदेशमाला रोमन लिपिमें प्रकाशित की है और उसकी एक सुन्दर इटालियन प्रस्तावना लिखी है। डा० ए. बालिनि प्रशमरतिप्रकरण सटीक और मुनिपतिचरित सारोद्धारको इटाली भाषामें प्रकाशित कर रहे हैं। डा० मिरोनो न्यायप्रवेशको 'बिब्लीओथेका बुद्धिका'में टीकासहित प्रकाशित कर रहे हैं। डा० बोननेग्ले नामके जर्मन विद्वानने 'अथर्वपरिशिष्ट' नामका ग्रन्थ प्रका-शित किया है। डा० हर्टलने 'नेरेटिव लिटरेचर आफ दि जैनाज' नामका एक निबन्ध अँग्रेजी भाषामें लिखा है। सुनते हैं कि इस निबन्धका हिन्दी अनुवाद पं० चन्द्रधरशर्मा गुलेरी, बी. ए. कर रहे हैं। पाठक, एक हमारा साहित्यप्रेम है जो हम अपने साहित्यको ही अपनी भाषामें प्रकाशित करना आवश्यक नहीं समझते और एक इन विदेशियोंका साहित्यप्रेम है जो अपनेसे सात समुंदर पारके एक अल्पपरिचित

धर्मके साहित्यको अपनी भाषाओंमें प्रकाशित करनेके लिए यत्नशील रहा करते हैं।

४ दिगम्बर और श्वेताम्बरसाहित्यका प्रकाशन।

जैनधर्मकी दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो मुख्य शाखायें हैं, अतएव जैनसाहित्यके भी मुख्य दो भेद हैं एक दिगम्बरजैनसाहित्य और दूसरा श्वेताम्बरजैनसाहित्य। जिस समय इस देशमें मुद्रणकलाके प्रचारका प्रारम्भ हुआ उस समय दोनों ही सम्प्रदायके लोग अपने साहित्यको छपाकर प्रकाशित करना पापका कार्य समझते थे; परन्तु धीरे धीरे कुछ लोगोंकी प्रवृत्ति इस ओर हुई और उन्होंने जैनग्रन्थोंके छपानेका प्रारम्भ कर दिया। जहाँ तक हम जानते हैं पहले श्वेताम्बर ग्रन्थोंके छपनेका प्रारम्भ हुआ और पीछे दिगम्बर ग्रन्थोंका। परन्तु प्रारम्भ होनेपर यह कार्य बन्द किसीका न हुआ। पंचमकालने लोगोंपर पूरा प्रभाव डाल दिया और ३०–३६ वर्षमें ही सैकड़ों जैनग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो गये। पर इस कालका प्रभाव जितना अधिक श्वेताम्बरपर पड़ा उतना दिगम्बर सम्प्रदायपर नहीं पड़ा। क्योंकि जब श्वेताम्बर सम्प्रदायमें छापेका विरोध करनेवाला ढूँढ़नेपर कहीं एकाध मुश्किलसे मिलेगा, तब दिगम्बरसम्प्रदायमें आज सैकड़ों सज्जन ऐसे हैं जो छापेको रातदिन कोसा करते हैं और उसके प्रचारको रोकनेके लिए सदा ही कमर कसे रहते हैं। यद्यपि इन सज्जनोंको भी अपनी चुंगलमें फँसानेको इस प्रचण्ड शक्तिशाली कलिराजको दश पन्द्रह वर्षसे अधिक नहीं लगेंगे, तो भी इन्होंने दिगम्बरसम्प्रदायके साहित्यप्रचारकार्यकी गतिको बहुत कुछ मन्द कर रक्खा है और इससे श्वेताम्बरसम्प्रदायमें पुस्तकप्रकाशनका कार्य जितनी तेजीसे हो

रहा है उसकी चतुर्थांश तेजी भी दिगम्बरसम्प्रदायमें नहीं है। श्वेताम्बरसम्प्रदायमें इस समय कई अच्छी अच्छी संस्थायें हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित हुआ करते हैं। इनमेंसे कई तो ऐसी हैं जो बिलकुल निःस्वार्थ भावसे—जैनसाहित्यके प्रचारकी ही वासनासे ग्रन्थप्रकाशनका कार्य कररही हैं। इन संस्थाओंका जिक्र हम जैनहितैषीमें कई बार कर चुके हैं। पर दिगम्बरसम्प्रदायमें अब तक ऐसी एक भी नाम लेने योग्य संस्था स्थापित नहीं हुई है जो इस कार्यमें कुछ विशेष सफलता दिखला सकी हो। यही कारण है जो इस समय सुधीसमाजमें जैनसाहित्यकी जो कुछ चर्चा होती है वह प्रायः श्वेताम्बरसाहित्यके अवलम्बनसे होती है। दिगम्बरसाहित्य बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है—सर्वसाधारणको वह प्राप्त नहीं हो सकता है तब उसकी चर्चा कम होना ही चाहिए।

५ श्वेताम्बरसम्प्रदायका संस्कृतसाहित्य।

संस्कृत प्राकृत साहित्यके प्रकाशित करनेके लिए श्वेताम्बर सम्प्रदायमें बहुत कुछ प्रयत्न हो रहा है। इस विषयमें काशीकी यशोविजय जैनग्रन्थमाला सबसे अधिक उल्लेख योग्य है। इस ग्रन्थमालाके प्रत्येक मासिक अंकमें १०० पृष्ठ रहा करते हैं और अबतक इसमें सब मिलाकर कोई ३०–३२ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिन सबका मूल्य लगभग ७९) होगा। इसके सहायक श्वेताम्बर समाजके अनेक धनी सज्जन हैं इसलिए आशा है कि यह ग्रन्थमाला बराबर निकलती रहेगी। भावनगरकी जैनधर्मप्रसारक सभा, आत्मानन्द जैनसभा, आदि और भी कई श्वेताम्बर जैनसंस्थायें ऐसी हैं जो पचासों संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी हैं और करती जा रही हैं। बम्बईमें सेठ देवचन्द लालचन्दजी जैनपुस्तकोद्धार फण्ड नामकी एक संस्था

है जो अपने प्रकाशित किये हुए ग्रन्थ लागतसे आधे मूल्यमें बेचती है। इसकी ओरसे भी कई संस्कृतके ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। कलकत्तेकी रायल एशियाटिक सुसाइटीका ध्यान भी श्वेताम्बर साहित्यकी ओर अधिक है। उसकी ओरसे अबतक १२-१३ संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। एक संस्था अहमदाबादमें अभी हाल ही स्थापित हुई है। इसका नाम है 'श्रीजैनागमप्रकाशक सभा'। इसकी ओरसे जो पहला ग्रन्थ प्रकाशित होगा वह इतना बड़ा होगा कि उसका आगामी मूल्य ३२) रक्खा गया है। इस कार्यके लिए एक धनिक सज्जनने फिलहाल २५ हजार रुपयेकी रकम दे दी है। गरज यह कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके संस्कृत–प्राकृत–साहित्यके प्रकाशित करनका यथेष्ट प्रयत्न हो रहा है।

६ दिगम्बरसम्प्रदायका संस्कृत-साहित्य।

परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायियोंका ध्यान इस ओर बहुत ही कम है। अब तक जितना दिगम्बर साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें अधिक भाग भाषाका है। संस्कृतका साहित्य बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है। और जो कुछ हुआ भी है उसमें दिगम्बरी भाइयोंकी अपेक्षा दूसरे लोगोंने अधिक उद्योग किया है। निर्णयसागरकी काव्यमाला और सनातनजैनग्रन्थमाला, श्रीयुक्त कुप्पूस्वामीशास्त्रीकी सरस्वतीग्रन्थसीरीज, रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला आदि सब ऐसी ही संस्था हैं जिनके स्वामी दिगम्बरी नहीं हैं; पर इनके द्वारा दिगम्बरसाहित्यके बीसों नामी नामी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यद्यपि दिगम्बरसम्प्रदायके अनुयायियोंमेंसे सेठ नाथारंगजी गांधी, पं० कलापा भरमापा निटवे और पं० पन्नालालजी बाकलीवाल

आदि सज्जनोंने इस विषयमें थोड़ा बहुत प्रयत्न किया है जिसके फल—स्वरूप १०—२० ग्रन्थ और भी प्रकाशित हो चुके हैं तथापि अबतक ऐसा उद्योग तो एक भी नहीं किया गया है जिससे कि नियमितरूपसे कुछ ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेका प्रबन्ध हुआ हो। हमारी समझमें दिगम्बरसम्प्रदायके लिए यह केवल लज्जाका ही विषय नहीं है किन्तु यदि इसका परिणाम सोचा जाय तो यह भी मालूम होगा कि इससे दिगम्बरसाहित्यके विषयमें विद्वानोंको भ्रम हो जायगा—लोग यह न जान सकेंगे कि इसमें किस विषयके और कैसे कैसे ग्रन्थ हैं। इसका परिणाम इस समय भी हम देख रहे हैं कि जैनेतर विद्वानोंके लिखे हुए ग्रन्थों तथा निबन्धोंमें जो कुछ चर्चा होती है उसका मुख्य आश्रय श्वेताम्बरसाहित्य रहता है। क्योंकि उसकी प्राप्ति लोगोंको सहज ही हो जाती है। इस लिए यह आवश्यक है कि अब दिगम्बरी भाई इस ओर ध्यान देवें और दो चार संस्थायें स्थापित करके संस्कृत-साहित्यके प्रकाशित करनेका उद्योग करें। इसके बिना संसार यह न जान सकेगा कि दिगम्बराचार्य कैसे कैसे अपूर्व, विलक्षण, महत्त्व-पूर्ण और अनन्यलभ्य ग्रन्थरत्न लिखकर छोड़ गये हैं।

७ सस्कृत-साहित्यके प्रकाशित करनेकी आवश्यकता।

जैनसमाजमें जैनधर्मकी शिक्षाके प्रचार करनेके लिए हम जितना उपयोगी देशभाषाओंके साहित्यको समझते हैं उतना संस्कृत और प्राकृतसाहित्यको नहीं समझते। पर इससे संस्कृतप्राकृतसाहित्यके प्रकाशित करनेकी आवश्यकता कम नहीं होती। संस्कृत और प्राकृत इस देशकी पुरानी भाषायें हैं। साहित्यमें इनका बहुत ही ऊँचा दर्जा है। इस देशके लोग तो इन भाषाओंको पूज्य समझते ही हैं साथ ही

विदेशी विद्वान् भी इनका अध्ययन मनन करते हैं। प्राचीन इतिहासके अध्ययन और परिशीलन करनेवालोंका तो इन भाषाओंके जाने बिना काम ही नहीं चल सकता। दार्शनिक और तात्त्विक विचार करनेवाले भी प्रायः इन्हीं भाषाओंके पण्डित होते हैं। इस लिए जैनसमाजकी अपेक्षा जैनेतर लोगोंके दृष्टिपथतक पहुँचानेके लिए और इस तरह सर्वसाधारणके संस्कृतसाहित्यकी वेदीपर जैनसाहित्यको भी स्थान देनेके लिए संस्कृतप्राकृतसाहित्यके प्रकाशित करनेकी आवश्यकता है। जैन-समाजको भी इससे कम लाभ न होगा। संस्कृतप्राकृतमें ऐसे सैकड़ों ग्रन्थ हैं जिनके नाम भी भाषा जाननेवालोंको मालूम नहीं हैं। उनके प्रकाशित होनेसे संस्कृतज्ञ जैनी उन्हें पढ़ेंगे, समझेंगे और फिर उन्हें भाषामें अनुवाद करनेका प्रयत्न करेंगे। जैनसाहित्यका और जैना-चार्योंका इतिहास भी संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके प्रकाशित होनेसे बन सकेगा। इस लिए भाषासाहित्यके समान संस्कृतप्राकृतसाहित्यके प्रका-शित करनेका भी प्रयत्न होना चाहिए।

८ इसके लिए खास संस्थायें खोलना चाहिए।

संस्कृत–प्राकृत-साहित्यके प्रकाशित करनेमें एक बड़ी भारी कठि-नाई यह है कि इसके पढ़नेवाले बहुत ही कम हैं इस लिए भाषासाहित्यके प्रकाश करनेके समान केवल ग्राहकोंके ही भरोसे यह कार्य नहीं चल सकता है। यही कारण है कि जो लोग व्यवसायदृष्टिसे पुस्तक-प्रकाशनका कार्य करते हैं उनके द्वारा इस कार्यके होनेकी यथेष्ट आशा नहीं। यदि संस्कृत ग्रन्थोंकी लागतकी पूँजी ही दो चार वर्षमें उठ आवे तो एक दो पुस्तकप्रकाशक भी इस कार्यके करनेके लिए तैयार हो सकते हैं; परन्तु फिलहाल दिगम्बरसमाजकी ऐसी दशा है कि उससे इतने ग्राहक मिलनेकी आशा नहीं। इसलिए इस कार्यके

लिए अन्य धार्मिक संस्थाओंके समान दो चार खास संस्थायें खोलना चाहिए और उनके द्वारा मासिक द्विमासिक या त्रैमासिक रूपमें संस्कृत प्राकृत ग्रन्थ प्रकाशित होना चाहिए। उद्योग करनेसे इन संस्थाओंको ग्राहक भी इतने मिल सकते हैं जिनसे कमसे कम लागतकी पूँजी उठ आ सकती है। क्योंकि बहुतसे लोग इन धार्मिक तथा सार्वजनिक संस्थाओंको सहायता पहुँचानेके खयालसे ही ग्राहक बन जावेंगे। ऐसी संस्थाओंके लिए बहुत बड़ी बड़ी रकमोंकी भी जरूरत नहीं है। दश दश बीस बीस हजार रुपयोंकी पूँजीसे ही इस प्रकारकी संस्थायें खुल सकती हैं और यदि हमारे दिगम्बर सम्प्रदायके धनिक सज्जन इस ओर ध्यान देवें तो सहज ही दो चार संस्थायें स्थापित हो सकती हैं।

९. काशीकी सनातनजैनग्रन्थमाला।

जैनहितैषीके पाठकोंको श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी बाकलीवालका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। जैनसाहित्यके प्रकाशित करनेके लिए और उसका प्रचार करनेके लिए जितना परिश्रम आपने किया है हमारे खयालसे दिगम्बर समाजमें उतना और किसीने भी नहीं किया। आपकी सारी उमर इसी कार्यमें व्यतीत हुई है। स्वयं आपके द्वारा तो नहीं परन्तु आपके उद्योगसे दूसरोंके द्वारा संस्कृत प्राकृतके अनेक अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यदि आपको जैनसमाजसे यथेष्ट सहायता मिली होती, तो आपके द्वारा अबतक सैकड़ों संस्कृत प्राकृत ग्रन्थ प्रकाशित हो जाते; परन्तु आपके पास धन नहीं और यथेष्ट सहायता आपको मिली नहीं, इस कारण आपके अनेक बारके प्रयत्न निष्फल हो गये। पर इससे आप निराश नहीं हुए। अब आपने काशीमें श्रीजैनधर्मप्रचारिणी सभा स्थापित की है और उसकी ओरसे सनातनजैनग्रन्थमाला नामकी संस्कृत ग्रन्थमाला निकालना प्रारंभ किया है। इसके

दो अंक छपकर तैयार हो चुके हैं। पहले अंकमें विद्यानन्दि-स्वामीकृत सटीक आप्तपरीक्षा और पत्रपरीक्षा ये दो पूर्ण ग्रन्थ छपे हैं और दूसरे अंकमें समयसारप्राभृत अमृतचन्द्रसूरि और जयसेनसूरिकी दो संस्कृतटीकाओंसहित छप रहा है। कागज खूब पुष्ट और छपाई सुन्दर हुई है। आगेके अंकोंमें देवागम-न्याय वसुनन्दि और अष्टशती टीकासहित, राजवार्तिक, पद्म-पुराण आदि ग्रन्थ छपेंगे। ग्रन्थमालाका वार्षिक मूल्य आठ रुपया रक्खा गया है। हमारी समझमें दिगम्बर जैनसमाजको अपनी इस इकलौती ग्रन्थमालाको सब प्रकारसे आश्रय देना चाहिए। जो लोग संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी चाहिए कि इसके ग्राहक बन जायँ और इसके ग्रन्थोंको या तो अपने यहाँके मन्दिरके सरस्वतीभंडारोंमें स्थापित कर दें या संस्कृत पाठशालायोंके विद्यार्थियोंको या अन्यमती संस्कृत विद्वानोंको दान कर दें। धनवान् धर्मात्माओंको तो चाहिए कि वे इसके प्रत्येक ग्रन्थकी दश दश बीस बीस प्रतियाँ खरीद कर लिया और फिर उन्हें दान कर दिया करें। जो लोग अपने मृत स्नेहियों या परिवारके लोगोंके स्मरणमें दान किया करते हैं उन्हें चाहिए कि किसी एक ग्रन्थके प्रकाशित करने योग्य द्रव्य दे देवें और उस ग्रन्थपर अपने स्नेहीकी स्मृतिपत्रिका तथा फोटो छपवा देवें और उसे वितरण कर देवें। इस तरह ग्रन्थमालाको अनेक प्रकारसे सहायता पहुँचाई जा सकती है। यह लेख हमारे पाठकोंको दशलक्षण पर्वके समीप ही पढ़नेके लिए मिलेगा। हमें आशा है कि वे अपनी अपनी शक्तिके अनुसार ग्रन्थमालाको सहायता पहुँचानेका तथा उसके ग्राहक बनानेका अवश्य प्रयत्न करेंगे। इस कार्यसे जैनधर्मकी बड़ी भारी प्रभावना होगी। क्योंकि प्रत्येक धर्मका प्रभाव और प्रचार मुख्यतः उसके साहित्यके प्रचार पर निर्भर है।

१० कौनसी संस्था खोली जाय ?

श्रीमान् सेठ तिलोकचन्द कल्याणमलजी इन्दौरके एक नामी बेंकर और व्यापारी हैं। आपकी ओरसे हमें जैनहितैषीमें प्रकाशित करनेके लिए एक सूचना मिली है। उसका सारांश यह है कि—"हम यह जानना चाहते हैं कि विधवाश्रम, जैनबोर्डिंग, ब्रह्मचर्याश्रम, आर्ट-स्कूल आदि संस्थाओंमेंसे कौनसी संस्था खोली जाय जिसकी कि सबसे अधिक आवश्यकता हो और जिससे जैनजातिका सुधार हो सके। हम इन्दौरमें एक संस्था खोलना चाहते हैं। उसके लिए ७५०) मासिक खर्च करनेका हमारा विचार है। यह रकम हम अपने फार्मसे जुदा रक्खेंगे। इस विषयमें विद्वानोंको अपने अपने विचार हमारे पास लिख भेजनेकी कृपा करना चाहिए।" इस सूचनाको पढ़कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रसन्नताका कारण एक तो यह है कि जिन सामायिक संस्थाओंके लिए लगभग २० वर्षसे आन्दोलन किया जा रहा है उनकी ओर अब समाजके धनिक पुरुषोंका चित्त भी आकर्षित होने लगा है और इससे आशा होती है कि इसी तरह धीरे धीरे हमारे दूसरे आन्दोलन भी सफल होंगे। दूसरा कारण यह है कि सेठजीने इसके लिए समाजके विद्वानोंकी सम्मति चाही है—वे एक तो समयोपयोगी संस्था खोलना चाहते हैं और सो भी ऐसी कि जिसको सब विद्वान् आवश्यक समझते हों। तीसरा कारण यह है कि संस्थाके लिए जो द्रव्य दिया जायगा उसकी रकम सन्तोष योग्य है। अर्थात् सेठ कल्याणमलजी इस कार्यके लिए फिलहाल दो लाख रुपये देनेवाले हैं। आपकी चिट्ठीसे यह भी माॡम होता है कि इस रकमको आप अपने फार्मसे अलग कर देगें अर्थात् योग्य ट्रष्टियोंके हाथमें सोंप देगें। जहाँ तक हम जानते हैं दिगम्बर जैनसमाजमें आप सबसे पहले धनिक हैं जिन्होंने

किसी एक समयोपयोगी संस्थाके लिए इकमुश्त इतनी बड़ी एकम दे डालनेका साहस किया है। यद्यपि हमको यह दृढ विश्वास है कि अधिकसे अधिक २०–२५ वर्षके भीतर ही वह समय आ जानेवाला है जब हमारे आन्दोलनकी सफलता होने लगेगी और हमारे समाजके धनिक आवश्यक संस्थाओंके लिए दश दश बीस बीस लाख रुपया दे डालनेमें भी संकोच न करेंगे; परन्तु दिगम्बरजैनसमाजकी वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए हम बिना किसी संकोचके कह सकते हैं कि इस समय सेठजीका यह दो लाख रुपयोंका दान ही आगेके बीस बीस लाख रुपयोंके दानसे कहीं बढ़कर है। हम आशा करते हैं कि सेठजीकी यह इच्छा बहुत जल्दी कार्यमें परिणत होगी और हम थोड़े ही समयमें मालवा प्रान्तमें एक अच्छी उपयोगी संस्थाके देखनेका सौभाग्य प्राप्त करेंगे। अब प्रश्न यह है कि ऐसी कौनसी संस्था खोली जाय जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। हमारी समझमें इस प्रश्नका उत्तर बहुत ही धीरता, गंभीरता और विचारशीलतासे दिया जाना चाहिए। समाजमें जो संस्थायें चल रही हैं उनकी वास्तविक दशाका विचार करके, जिन संस्थाओंकी आवश्यकता है उनके समुचित साधनोंका खयाल करके, देश और स्थानकी परिस्थितियोंको सोच करके और जैनसमाजकी वर्तमान आवश्यकताओंकी चिन्ता करके इस प्रश्नका उत्तर देना चाहिए। संस्थायें तो सब ही अच्छी हैं, जैनियोंमें सब ही की जरूरत है और प्रत्येक संस्थासे कुछ न कुछ लाभ होता ही है, इस प्रकारके शिथिल विचार रखनेवालोंसे इस प्रश्नका वास्तविक उत्तर पानेकी आशा न रखना चाहिए। हमको आशा है कि समाजके हितैषी शिक्षित पुरुष इस विषयमें अपने अपने विचारोंको या तो समाचारपत्रोंके द्वारा प्रगट करेंगे या उक्त सेठजीके पास लिख भेजेंगे।

जब तक कि इस प्रश्नका समाधान हो, तब तक हम अपने शिक्षित युवकोंसे पूछते हैं कि यह एक संस्था तो खुलती है—बल्कि खुल गई ही समझिए, पर यह तो कहिए कि इसको चलायगा कौन? संस्थायें केवल धनसे नहीं चलती हैं, उनके लिए सुयोग्य और स्वार्थ-त्यागी संचालकोंकी आवश्यकता रहती है। आपकी संख्या कई हजार है; क्या आपमेंसे एक दो महाशय ऐसे भी निकल सकते हैं जो कुछ स्वार्थत्याग करके इस संस्थाके सेवक हो जायँ और इसे उन्नतिके शिखरपर चढ़ा कर दिखला सकें? यदि ऐसे कोई महाशय निकलें तो उनकी इच्छानुसार ही यह संस्था खुल सकती है। अर्थात् उनकी इच्छा जिस प्रकारकी संस्थाकी सेवा करनेकी होगी, उसी प्रकारकी संस्थाके खोलनेके लिए सेठजी विचार कर सकते हैं।

११ सप्तव्यसनसेवीका सम्यग्दर्शन।

पूज्यवर पं० गोपालदासजी अभी कुछ ही समय पहले लाहौरसे लौटते हुए देहली ठहरे थे। वहाँ आपसे शास्त्रसभामें लाला जिनेश्वरदासजीने प्रश्न किया था कि "सप्तव्यसनका सेवन करनेवाला सम्यग्दृष्टी हो सकता है या नहीं?" इसका उत्तर पण्डितजीने जो कुछ दिया था, वह भी वैसा ही था जैसा कि इटावाके किसी क्रिश्चियनके प्रश्नका उत्तर था और जिसको लेकर पण्डितजीपर दूसरी चढ़ाई की गई है। वास्तवमें उक्त दोनों प्रश्न और दोनों उत्तर एक ही हैं, केवल शब्दों-का भेद है। पण्डितजीके एक शिष्यने सप्तव्यसनसम्बन्धी प्रश्नका समाधान हमारे पास भेजा है। उसका सारांश यह है:—"संसारमें जितने संज्ञी पर्याप्त भव्य हैं उन सबको ही सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है—उनमें सम्यग्दर्शनके प्राप्त करनेकी योग्यता रहती है। तब मनुष्य तो सम्यग्दर्शनका पात्र है ही—इसमें तो कहना ही क्या है।

मनुष्य उच्चकुलवाले और नीचकुलवाले इस तरह दो प्रकारके हैं। इनमेंसे जो उच्चकुलके मनुष्य हैं उनकी तो स्वभावसे ही सप्तव्यसनोंमें प्रवृत्ति नहीं होती–सप्तव्यसनोंके सेवन करनेसे उनके कुलमें बट्टा लगता है। इस तरह जब मिथ्यादृष्टि अवस्थामें ही वे सप्तव्यसनोंका सेवन नहीं करते तब सम्यग्दृष्टि अवस्थामें—जब कि समस्त विषयोंसे नितान्त अरुचि हो जाती है–क्यों करने लगे ? अब रहे नीच कुलके म्लेच्छ, भील आदि, सो उनमें जन्मसे ही सप्तव्यसनोंके सेवनकी प्रवृत्ति रहती है। जब उन्हें यथार्थ तत्त्वज्ञान होनेके कारण सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है, तब उनकी सप्तव्यसनादिकोंमें रुचि तो बिलकुल नहीं रह जाती है; परन्तु उनके अप्रत्याख्यानावरणादि चारित्रमोहनीय कर्मोंका तीव्र उदय रहता है। इसलिए वे अपने चिरअभ्यस्त सप्तव्यसनोंको शीघ्र ही नहीं छोड़ सकते हैं। स्मरण रहे कि विषयोंमें अरुचि हो जाना और उन्हें छोड़ देना ये दो जुदा जुदा बातें हैं। ऐसी अवस्थामें जब कि वे म्लेच्छादिक सप्तव्यसनोंसे विरक्त होकर भी उन्हें सेवन करते हैं, तब त्याग करनेके अन्तिम समयपर्यंत उनके सप्तव्यसनोंका सद्भाव पाया जाता है। अतएव इस अपेक्षासे सप्तव्यसनोंका सेवन करनेवाला भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है। यही पण्डितजीके कथनका अभिप्राय था।" आशा है कि इस लेखसे उन लोगोंका समाधान हो जायगा जो पण्डितजीके विरोधियोंके बहकानेसे बहक गये हैं। सत्य-वादीके पिछले अंकमें एक विस्तृत लेख पं० खूबचन्दजीका लिखा हुआ भी इसी विषयमें प्रकाशित हुआ है।

१२ शोकजनक स्वर्गवास।

हमको यह जानकर बहुत ही शोक हुआ कि अहमदाबादके

जैनहितेच्छु नामक मासिकपत्रके सम्पादक और श्रीयुक्त वाडी-लालजीके पिता मोतीलाल मनसुखराम शाहका गत पहली अगस्तको स्वर्गवास हो गया। इस समय आपकी अवस्था ९६ वर्षकी थी। आप स्थानकवासी थे। स्थानकवासी जैनसमाजकी और जैन-साहित्यकी आपने खूब सेवा की थी। गुजरातीके आप अच्छे लेखक थे। आपका गुजराती शब्दकोष सरकारी और बड़ोदा राज्यके शिक्षा-खातेमें जारी है। आपके द्वारा सम्पादित होकर कई ग्रन्थ भी प्रका-शित हुए हैं। जैनसमाजकी उन्नतिकी ओर आपका बहुत अधिक लक्ष्य था। आप पहले एक अच्छे धनिक थे; परन्तु पिछले साबरमतीनदीके भीषण पूरमें आपकी सारी सम्पत्ति और कुटुम्ब नष्ट हो गया था। पर इस बड़ी भारी हानिसे भी आपकी स्थिति शोचनीय नहीं हुई। आपने अपनी उद्योगपरतासे अपनी गृहस्थिति फिर अच्छी कर ली। लगभग ३ माससे आप बीमार थे। आपने खूब सावधानीके साथ समाधिमरण किया। मृत्युके समय आपके सुयोग्य पुत्र श्रीयुक्त वाडी-लालजी आपके समीप उपस्थित थे। मोतीलालजीकी मृत्युसे जैनसमा-जने एक पुरुषरत्न खो दिया।

पुस्तकसमालोचना।

स्वाधीन विचार—अनुवादक संग्रहकर्त्ता और प्रकाशक पं० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी. ए., पटकापुर—कानपुर। पृष्ठ सं० ९३। मूल्य चार आना। देहलीनिवासी लाला हरदयालजी, एम. ए. अँगरे-जीके बड़े नामी लेखक हैं। सभ्य जगतमें आपके लेख बड़े चावसे पढ़े जाते हैं। अंगरेजीके समान फ्रेंच, संस्कृत और फारसीके भी आप पण्डित हैं। इस समय आप अमेरिकाके स्टेनफर्ड—विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके प्रोफेसर हैं। विदेशमें रहकर भी आप सदा भारत और

भारतवासियोंके उत्थानके सन्देश भेजा करते हैं। इस पुस्तकमें आपके ९ लेखोंका संग्रह है। पुस्तकका जैसा नाम है लेख भी सचमुच वैसे ही स्वाधीन विचारोंसे भरे हुए हैं। भाषा और जातिका सम्बन्ध, धर्मप्रचार, अमेरिकामें भारतवर्ष, कुछ आन्दोलनोंपर विचार आदि लेख बहुत ही महत्त्वके हैं। आप यूरोप और अमेरिकामें खूब घूमे हैं। इस लिए वहाँकी सामाजिक राजनैतिक धार्मिक अवस्थाओंसे आप अच्छी तरहसे परिचित हैं। आपके प्रत्येक लेखमें इस बातका प्रमाण मिलता है। 'यूरोपकी नारी' शीर्षक लेख उन लोगोंके बाँचने योग्य है जो समझते हैं कि पाश्चात्य देशोंकी स्त्रियाँ सुखस्वर्गमें निवास करती हैं– पूर्ण स्वाधीन हैं और हमारे देशकी दुःखी पराधीन। यद्यपि आपके खयालमें स्त्रियोंकी दशा अच्छी तो कहींपर भी नहीं है उनके ऊपर अन्याय सब जगह होते हैं; परन्तु फिर भी यूरोपसे भारतकी स्त्रियाँ बहुत कुछ सुखी हैं। आपके लेखोंमें किसी धर्मविशेषकी या सम्प्रदायकी गन्ध भी नहीं है। आपका धर्म केवल देश और देशवासियोंकी उन्नति है। इस उन्नतिके झोंकमें आपने इस देशके आध्यात्मिक और तात्त्विक विचारोंको निःसार, थोथा और झूठा तक लिख मारा है। यों तो धार्मिक विषयोंमें लालाजी जैसे विचार रखनेवाले इस देशमें सैकड़ों शिक्षित हैं; परन्तु उनका हृदय इतना निर्भीक और बलवान् नहीं–उनमें इतना साहस नहीं कि अपने विचारोंको प्रकट कर सकें। लालाजीमें यह विशेषता है कि वे अपने मनके विचारोंको निर्भय होकर साफ शब्दोंमें प्रगट कर देते हैं। इस स्पष्टवादिताके कारण आप सचमुच ही प्रशंसाभाजन हैं और हमारी समझमें आप उन 'भीतर कुछ और बाहर कुछ' रखनेवाले शिक्षितोंसे बहुत अच्छे हैं। आपके विचार जान कर उनको भ्रमपूर्ण सिद्ध करनेका प्रयत्न तो

किया जा सकता है। अस्तु। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक अच्छी और प्रत्येक विचारशीलके पढ़ने योग्य है।

उपदेशरत्नमाला—लेखिका, एक जैन महिला। प्रकाशक—कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा। मूल्य ॥)। यह कन्या विद्यावलाम्बिनी पुस्तकमालाका प्रथम पुष्प हैं। इसमें 'बालिकाओंके कण्ठमें धारण करने योग्य धार्मिक, शारीरिक, नैतिक और मानसिक उपदेशोंके रत्न पिरोये गये हैं।' पुस्तक सचमुच ही अच्छी बनी है। भाषा शुद्ध और सरल है। प्रत्येक पाठ लड़कियोंकी बुद्धिका खयाल करके लिखा गया है। पर इसके द्वितीय गुच्छका तत्त्वोपदेश अवश्य ही बहुत कम लड़कियोंको समझमें आयगा। अन्तकी दौलतस्तुति' भी बालिकाओंके योग्य नहीं है। 'ऐतिहासिक स्त्रियाँ'के समान इस पुस्तकका नामकरण भी ठीक नहीं हुआ। इस नामसे यह नहीं मालूम हो सकता कि यह कोई बालिकोपयोगिनी पुस्तक है। छपाई कागज आदि सब दर्शनीय हैं।

बालिका-विनय—यह छोटी १२ पृष्ठकी पुस्तक भी उक्त जैनमहिलाकी लिखी हुई है। प्रकाशक भी बाबू देवेन्द्रप्रसादजी ही हैं। इसमें कोई १० प्रार्थनायें तथा गजले आदि हैं। ये बालिकाओंके लिए लिखी गई हैं। इनमें दो एक कवितायें हमें ऐसी मालूम हुई जैसे उन्हें हमने पहले कभी सुना है—उनमें कुछ थोड़ासा रद्दोबदल कर दिया गया है। दूसरोंकी रचनाको इस तरह अपना लेना ठीक नहीं। रचना विशेष अच्छी नहीं। मूल्य एक आना।

चित्रावली—सम्पादक बाबू जगन्मोहन वर्मा प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा काशी। पृष्ठ संख्या २३६। मूल्य लिखा नहीं। अभी तक हिन्दी भाषाका कोई अच्छा इतिहास नहीं लिखा गया। वह

लिखा भी नहीं जा सकता। क्योंकि अभी तक हिन्दी भाषाके प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए। जब तक हिन्दीके पुरानेसे पुराने ग्रन्थ प्रकाशित न हो जायँ और उनकी भाषाकी अच्छी तरहसे जाँच नहीं की जाय तबतक यह नहीं मालूम हो सकता कि हिन्दी भाषा कबसे लिखी जाने लगी, उसमें क्या और कितने कितने परिवर्तन कब कब हुए, उसके कितने भेद थे, उसके गद्य पद्यके कौन कौन लेखक हुए। इत्यादि। इस लिए काशीकी नागरीप्रचारिणी सभा हिन्दीके प्राचीन ग्रन्थोंकी खोज कराया करती हैं और उन्हें प्राप्त करके प्रकाशित भी किया करती है। इस ग्रन्थका रचयिता उसमान नामका एक मुसलमान कवि है। वह गाजीपुरका रहनेवाला था। ई० सन् १६१३ में उसने इस ग्रन्थको रचा है। इसमें नेपालके राजा धरनीधरके पुत्र सुजान और रूपनगरके राजा चित्रसेनकी कन्या चित्रावलीके असीम प्रेमकी कहानी है। कहानीमें अप्राकृतिक अतिमानुषिक बातें बहुत हैं; परन्तु वर्णन बहुत सुन्दर है। सम्पादक महाशयने भूमिकामें लिखा है कि उसमान कवि सूफी मतका था। सूफी मत हिन्दुओंके वेदान्तका मुसलमानी रूपान्तर है। उसकी यह कथा आध्यात्मिक मालूम होती है। अर्थात् उसने एक कथाके रूपमें कुछ आध्यात्मिक तत्त्व बतलाये हैं। सारा ग्रन्थ दोहा और चौपाई छन्दोंमें है। ग्रन्थका संशोधन और सम्पादन अच्छा हुआ है। प्राचीनभाषाके ग्रन्थोंका सम्पादन करना बहुत ही कठिन कार्य है। इसके लिए बड़े पाण्डित्यकी आवश्यकता है। वर्मा महाशय इतिहासके और भाषाशास्त्रके बड़े अच्छे जानकार हैं; ऐसे ग्रन्थोंके सम्पादन करनेके वे सर्वथैव पात्र हैं।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

नववाँ भाग] श्रावण, श्रीवीर नि० सं० २४३९ [११ वाँ

खण्डगिरि और कलिङ्गाधिपति खारवेल।

उड़ीसा प्रदेशमें खण्डाचल या खण्डगिरि नामक एक पर्वत है। भारतके प्राचीन शिल्पकौशल्यका यह एक बहुत ही गौरवप्रद स्थान है। इस पर्वतके दो भाग हैं। एक खण्डगिरि और दूसरा उदयगिरि। दोनोंहीमें अनेक गिरि-गुफायें हैं। कुछ समय पहले इन गुफाओंका कोई नाम भी न जानता था—सघन झाड़ीके भीतर छुपी होनेके कारण मनुष्योंके दृष्टिपथसे ये परे थीं; साहित्यमें भी इनकी चर्चा न थी। परन्तु जब सन् १८२० मि० स्टारलिंग साहबने इनको खोज निकाला और हस्तीगुफाके एक पुरातन शिलालेखको प्रकाशित किया, तबसे इस स्थानके विषयमें लोगोंका कुतूहल बढ़ा और साहित्यमें भी इसकी चर्चा शुरू हो गई। इस विषयमें कई पुस्तकें भी अँगरेजीमें लिखी गईं और गुफाओंमेंसे प्राप्त हुए शिलालेखोंके समयादि निर्णयके विषयमें सैकड़ों लेख भी प्रकाशित हुए। इस तरह अब यह स्थान बहुत प्रसिद्ध हो चुका है और प्रति वर्ष सैकड़ो पुरातत्त्व प्रेमी उसके दर्शन करके अपने नेत्रोंको सफल करते हैं।

कुछ समय पहले इतिहासज्ञोंका खयाल था कि ये सब गुफायें बौद्धोंकी हैं; परन्तु जब डाक्टर भगवानलाल इन्द्रजीने हस्तिगुफाके शिलालेखका पाठोद्धार किया और उससे खारवेल नामक कलिंगदेशाधिपतिकी कीर्ति-कहानीको प्रकाशित किया तबसे इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि यह स्थान प्रधानतः जैनियोंका है और खारवेल स्वयं जैनधर्मानुयायी था। इस शिलालेखने जैनधर्मके इतिहासपर एक नवीन ही प्रकाश डाला है। अबतक जैनियोंकी इससे पहलेकी कोई भी ऐतिहासिक कीर्ति-कहानी प्रकाशित नहीं हुई थी। उड़ीसा जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशमें—जहाँ कि इस समय एक प्रकारसे जैनियोंका चिन्ह भी नहीं है—एक समय जैनधर्मकी विजयदुन्दुभि बजती थी, यह जानकर किस जैनीको आनन्द और आश्चर्य न होगा ?

बंगलाभाषाके 'साहित्य' नामक पत्रसे मालूम हुआ कि श्रीयुत् मनोमोहन गंगोपाध्याय विद्यारत्न, बी. ई. एम. आर. ए. एस. नामक बंगाली विद्वान्ने Orissa and her Remains Ancient and Mediævals (उड़ीसा और उसके ध्वंसावशेष नामका अंगरेजी ग्रन्थ लिखा है। इसे Thacker Spink & Co. ने प्रकाशित किया है। उड़ीसाके प्रायः समस्त खण्डहरों, प्राचीन स्थानों और शिल्पकौशलोंका इसमें वर्णन है। खण्डगिरि और उदयगिरिका भी इसमें विस्तृत विवरण दिया गया है। इस ग्रन्थकी बहुत ही प्रशंसा हुई है। कहते हैं कि उड़ीसाके विषयमें अबतक ऐसा एक भी महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था। हमारे जो पाठक अँगरेजी जानते हों उन्हें यह ग्रन्थ अवश्य ही पढ़ना चाहिए। विद्यारत्न महाशयका विश्वास है कि खण्डगिरिकी हस्तिगुफा सबसे अधिक प्राचीन है। वह ईस्वीसन्के पूर्व चौथी शताब्दीकी बनी हुई है और वहाँकी नवमुनिगुफा सबसे पीछेकी है;

परन्तु तो भी वह ईस्वीसन्‌के प्रारंभकी है। उनका कथन है कि खण्डा-चलमें बौद्ध और जैन दोनों ही सम्प्रदायके लोगोंके कीर्तिचिह्न पाये जाते हैं। खण्डगिरिके शिखरपर जो जैनमन्दिर बना हुआ है उसे वे आधुनिक समझते हैं और महाराष्ट्रीय लोगोंकी कीर्तिका चिह्न बतलाते हैं।

बंगला 'साहित्यमें' 'सागरिका' नामकी एक ऐतिहासिक लेखमाला प्रकाशित हो रही है। उसकी श्रावणकी संख्यामें कलिङ्गका इतिहास दिया है। इस इतिहासमें महाराजा खारवेलके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अनुवाद यह है:—

"अशोककी मृत्यु होते ही उसके विश्वविख्यात विपुल साम्राज्यका छत्रभंग हो गया और तब अंग—बंग—कलिंगने फिर स्वतंत्र होजानेका मौका पाया। ईस्वीसन्‌के दोसौ वर्ष पहले एक प्रबल पराक्रमी राजाका आविर्भाव हुआ। इसका नाम था **महामेघवाहन खारवेल**। खण्डगिरिकी हस्तिगुफाके द्वारपर उसका सुप्रसिद्ध शिलालेख प्राप्त हुआ है।

"खारवेलके विषयमें अबतक और कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं हुआ है। उक्त शिलालेख ही उसके अस्तित्वका एक मात्र प्रमाण है। शिलालेखसे मालूम होता है कि वह जैनधर्मानुरक्त था। अशोकके समान उसने भी धर्मराज्य स्थापित करनेकी चेष्टा की थी। शिला-लेखमें उसका 'क्षेमराज' नामसे उल्लेख किया गया है।

"खारवेलको १५ वर्षकी अवस्थामें यौवराज्यपद प्राप्त हुआ था और २४ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने सिंहासनको अलंकृत किया था। वे कलिंग राजवंशमें उत्पन्न हुए थे। इस वंशके वे तीसरे राजा थे। उनकी राजधानीका नाम कलिंगनगरी था। जिस समय खारवेल सिंहासनपर बैठे, उस समय यह नगरी जीर्णशीर्ण दशाको प्राप्त हो

रही थी। इससे महाराजने अपने विजयराज्यके पहले ही वर्षमें उसका जीर्णसंस्कार कराया था। यह कलिंगनगरी कहां थी, इस विषयमें अब तक कोई अनुसंधान नहीं किया गया है। खण्डाचलको छोड़ कर अन्य किसी भी स्थानमें जैन-प्रभावका परिचय नहीं पाया जाता, इसलिए कोई कोई लोग भुवनेश्वर तीर्थको ही खारवेलकी कलिंगनगरी अनुमान करते हैं।"

"खारवेलको केवल कलिंग देशहीसे संतोष न था। गिरिलिपिसे मालूम होता है कि उन्होंने अपने विजयराज्यके दूसरे वर्ष पश्चिमकी ओर विजययात्रा की थी; और चौथे वर्ष 'राष्ट्रीकगणों'को अपना अनुगत बनाकर मगधदेशपर्यन्त आक्रमण किया था। तब क्या यह दिग्विजयी राजा कलिंगकी सीमासे सटे हुए बंगदेशके प्रति उदासीन था? ऐसा मालूम होता है कि उस समय अंग–बंग–कलिंग एक संयुक्त राज्य था–अर्थात् कलिंगमें अंगदेश और बंगदेश भी शामिल था इसलिए खारवेलका प्रभाव अंग–बंगमें भी व्याप्त होगा। किन्तु अंग–बंगमें इसकी जनश्रुति वर्तमान नहीं है। पक्षान्तरमें, कलिंग देशमें तो जैनप्रभावके कीर्तिचिन्होंकी अनधिकता देखी जाती है; पर अंग बंगमें अब भी उसके नाना निदर्शन वर्तमान हैं। खारवेलका राज्य अशोकके पीछे हुआ है, इस विषयमें किसी किसीको संशय है; परन्तु अधिकांश पण्डित खारवेलको अशोकके पीछे ही समझते हैं।"

"खारवेलके विजयराज्यका परिणाम क्या हुआ था, इसके जाननेका कोई उपाय नहीं है। पर उनके समयमें कलिंग शूरता, वीरता, ऐश्वर्य और कलाकौशल्यमें खूब बढ़ा चढ़ा था, गुफाओंमें इस विषयके स्मृतिचिह्न अब भी देखे जाते हैं। उनका राज्य संभवतः पीछेसे फिर

स्वातंत्र्यच्युत होकर किसी दूसरे प्रबल साम्राज्यके अन्तर्गत हो गया होगा। ईस्वीसन्‌की दूसरी शताब्दीमें नागार्जुन अन्ध्रराजाओंका आश्रय पाकर महायान–बौद्धमतके प्रचारकार्यके लिए उद्यत हुआ था। उसके प्रयत्नसे उड़ीसामें बौद्धमत प्रचलित हुआ था। तिब्बतके बौद्ध साहित्यमें इस प्रकारकी एक जनश्रुतिका उल्लेख है। उसके आधारसे कई विद्वानोंने अनुमान किया है कि उस समयका कलिंगराज्य अन्ध्र साम्राज्यके अन्तर्युक्त था और अंग-बंगमें भी उसका प्रभाव व्याप्त था। अभिप्राय यह कि दूसरी शताब्दीमें कलिंगराज्य अन्ध्रराजाओंके अधिकारमें आ गया था; परन्तु इस साम्राज्यका परिणाम क्या हुआ, सो भी अन्धकारमें विलीन हो रहा है। "

यह आजसे २१०० वर्ष पूर्वकी घटना है। महावीर भगवान्‌के निर्वाण हुए उस समय लगभग ३५० वर्ष ही बीते थे। श्रुतकेवलियोंका अस्त हो चुका था; परन्तु ग्यारह अंग और दशपूर्वके धारण करनेवाले जो विशाखदत्त आदि ग्यारह आचार्य हुए हैं उनमेंसे अन्तके गंगदत्त या धर्मसेन अवश्य विद्यमान् होंगे। अष्टांगनिमित्तज्ञ भद्रबाहु इसके बहुत पीछे हुए हैं। जैनधर्म उस समय अखण्ड था–उसमें दिगम्बर–श्वेताम्बर–संघ–गण–गच्छादि भेद नहीं हुए थे। जैनधर्मके इसी उन्नत समयमें महामेघेश्वर खारवेल महाराजा हुए हैं। जिस तरह प्रियदर्शी महाराज अशोकने बौद्ध धर्मको जगद्व्यापी बनानेका उद्योग किया था उसी प्रकारसे खारवेलने भी जैनधर्मको विश्वव्यापी करनेका प्रयत्न किया था। परन्तु उस प्रयत्नका फल क्या हुआ–कहाँ कहाँ जैनधर्मका प्रचार हुआ इसका कुछ भी पता नहीं चलता है। यह बड़े दुःखका विषय है कि इतने बड़े प्रतापी और धर्मप्रचारक जैनराजाका किसी भी जैनग्रन्थमें कहीं भी कुछ उल्लेख नहीं मिलता है।

अपने इतिहासके अभावसे हमने न जाने ऐसे कितने प्रतापशाली और कीर्तिशाली नर-पुंगवोंका नाम सदाके लिये विस्मृतिसागरके गभीर गर्भमें डुबा दिया है।

आत्मवाद और अनात्मवाद।

SPIRITUALISM *vs.* MATERIALISM.

वर्तमान समयमें भारतनिवासी किस ओर झुक रहे हैं इसको प्रायः सब ही जानते हैं। जिस ओर वे झुक रहे हैं उस ओरसे उन्हें कोई नहीं रोकना चाहता इस लिए उनको ऐसा करनेसे रोकनेके विषयमें हम एक पंक्ति भी नहीं लिखेंगे।

भारतवासी इस समय विशेष कर Materialism जड़-विज्ञानके इच्छुक हैं और इसकी इस शताब्दीमें निस्सन्देह बड़ी आवश्यकता है। जिस देशमें जितना ज्यादा जड़विज्ञान है, वह देश उतनाही उन्नत समझा जाता है। यहांतक कि Spiritualism आत्म-विद्याके द्वारा किये हुए चमत्कार भी जड़विज्ञानके ही आधारपर सिद्ध किये जाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि जहाँ जितनी ही Materialism की मात्रा कम देखनेमें आती है वहाँ उतनी ही सभ्यताकी कमी समझी जाती है। हमको इसपर विचार करनेको न तो अवकाश है और न हमारी ऐसी करनेकी इच्छा ही है कि जड़विज्ञान अच्छा है या बुरा, चाहे वह कैसा ही हो; परन्तु इस समय तो हमको भी उसहीकी शरण लेनी पड़ेगी। विचारशील मनुष्योंका कर्तव्य ही यही है कि वे समयके अनुसार ही कार्य्य करें। इस समय जड़विज्ञानके प्रतिकूल लेखनी उठाना मानो उन्नतिकी जड़में कुठार मारना है। यह हमको इतना प्रिय हो गया है कि हम अबसे दस वर्ष पहिले इसके प्रतिकूल ऋषि-

प्रणीत शास्त्रोंमें पाये हुए वचनोंको केवल यही समझा करते थे कि उनको अध्यात्म Spiritualism की धुनिमें जड़विज्ञानकी आवश्यकता ही न थी और इसी वास्ते उन्होंने इसके प्रतिकूल लिखमारा है। परन्तु शनैः शनैः हमारा प्रेम जड़विज्ञानकी ओर बहुत बढ़ चला और अब यहाँतक नौबत आगई है कि हम उन शास्त्रोंको झूठा बल्कि कभी कभी उनके रचयिताओंको पाखंडी कहने लग जाते हैं। एक दिन शीघ्र आनेवाला है कि जब जड़विज्ञान सर्वत्र फैला होगा और Spiritualism आत्मविज्ञान ढूँढ़ा न मिलेगा। उस समय इसकी आवश्यकता होगी और फिर सर पकड़ कर रोना पड़ेगा।

यह बात संसारभरमें प्रसिद्ध है कि भारतमें पहिले योगी बहुत थे—दूसरे शब्दोंमें आत्मविज्ञान बहुत उन्नतिपर था और Materialism बिलकुल न था। भारतवासी न तो साइंस जानते थे, न विज्ञानसे परिचित थे—शिल्पकला इत्यादिसे शून्य थे इत्यादि। यह बात चाहे सत्य हो और चाहे असत्य हो, हम इसपर बहस करके अपना समय नष्ट नहीं किया चाहते और न अपने पाठकोंको भी व्यर्थ कष्ट दिया चाहते हैं। हम दूसरे लोगोंकी ही बातको सत्य मान कर—चाहे वह बिल्कुल पक्षपातसे कही गई हो और चाहे उसके कहनेका यही अभिप्राय हो कि 'येन केन प्रकारेण' अपनेको यह भारतनिवासी मूर्खोंकी औलाद समझ कर मूर्ख रह जावें—यह सिद्ध किया चाहते हैं कि आत्मविज्ञानके आगे जड़विज्ञान कुछ भी चीज नहीं है। हम इस आक्षेपका उत्तर भी इस लेखमें देना चाहते हैं कि यदि भारतके प्रत्येक मतद्वारा माने हुए ग्रन्थोंमें विज्ञानका सम्पूर्णतया वर्णन है तो क्यों नहीं उस मतके अनुयायी आविष्कार करते हैं? क्या वजह है कि मोटर, ग्रामोफोन, वायुयान इत्यादि भारतवासियोंके दिमागमें नहीं आये? इसमें कोई सन्देह नहीं

कि आत्मविज्ञानके ग्रन्थोंमें जड़विज्ञानका कथन पूर्ण रूपसे नहीं किया जा सकता। जिस विषयका जो ग्रन्थ होता है उसमें उसी विषयका कथन किया जाता है। इस लिए यदि वे अपने पूज्य ग्रन्थोंमें आये हुए थोड़े विज्ञानके कथनके आधारपर इस बातकी सिद्धि करते हैं कि उनके पूर्व पुरुषविज्ञान शास्त्रमें निपुण थे तो यह झूठ मानने योग्य बात नहीं है। आक्षेप करनेवाला केवल यही चाहता है कि मैं किसी न किसी प्रकारसे भारतनिवासियोंको आत्मबलहीन कर दूँ। परन्तु भारतनिवासियोंको इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देना चाहिए। यदि उनके ग्रन्थोंमें थोड़ासा भी कथन है तो निस्संदेह उस समय उस विद्याके पारगामी अवश्य मौजूद थे—यह संभव है कि उस ग्रन्थका रचयिता स्वयं उस विषयमें निपुण हो या न हो।

क्या तुम्हें इस बातके माननेमें सन्देह हो सकता है कि आज-कलके बनाये हुए इतिहासमें यदि कहीं आगगाड़ीका वर्णन कर दिया जाय तो क्या आगामी आनेवाली सन्तान इस बातको नहीं मानेगी कि बीसवीं शताब्दीमें आगसे चलनेवाली गाड़ी भी मौजूद थी और हमारे पुरुष बड़े विज्ञानशास्त्रज्ञ थे। अवश्य वे इस बातको स्वीकार करेगें इतना ही नहीं बल्कि वह इसपर अभिमान करेंगे। तुमको यह बात नहीं माळूम कि अपने पुरुषाओंपर अभिमान करनेसे उन्नतिमार्गस्थ जीवोंकी गतिमें कितनी शीघ्रता आजाती है। यदि इस बातका तुमको तनिक भी ज्ञान होता तो तुम ऐसे निराशाके शब्दोंपर कदापि विश्वास न करते; बल्कि शायद उन वाक्योंके कहनेवाले पर भी तुमको विश्वास न होता।

हमारे शास्त्रोंमें मान लो कि कहीं भी विज्ञान शिल्प इत्यादिका कथन नहीं है और न हमारे पुरुषा इस बातको जानते ही थे। उन्होंने

विमान इत्यादि भी—जिनका स्पष्टतया वर्णन है—नहीं बनाये थे, परन्तु नीतिका वाक्य है कि शेरका बच्चा शिकार ही खेलेगा, गीदड़का बच्चा शेरोंके साथ भी रहता हुआ शिकार नहीं खेल सकता। मनुष्योंका भी यही हाल है। मूर्ख मातापितासे उत्पन्न हुए बालक विद्वान् नहीं हो सकते और विद्वान् मातापिताके बालक कुछ न सीखने पर भी बहुत होशियार होंगे; बल्कि बालकोंके देखनेसे मातापिताकी विद्वत्ताका पता चलता है। इस बातको तो आप जरूर ही मानते होंगे कि एक ताकतवर आदमी भी यदि तमाम उम्र चक्की न चलावे तो चार रोजमें उम्रभर चक्की चलाने वालेसे बाजी मार सकता है। यदि पहिले दिन उससे चक्की न चले तो उसको बलहीन या बल-शून्य समझना बड़ी भारी भूल है। या उसको चक्की न देकर आटा पीसनेकी ताकत न होनेमें शंका करना जान बूझकर उसकी मान-हानि करना है।

उपर्युक्त उदाहरण आपके समक्ष रखकर मैं भारतवासी और यूरोप-निवासी दोनोंकी तुलना किया चाहता हूँ। इस समय यूरोपनिवासी चक्कीवाले और भारतनिवासी बिना चक्कीवाले हैं। यदि दोनोंको समान अवस्थामें मान लिया जावे तो यूरोपनिवासी भारतकी चक्कियोंकी घर-घराहटको ही इतना आश्चर्य्यजनक समझेंगे कि अपनी चक्कियाँ बन्द करके तमाशा देखने लग जायँगे।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतके मुख्य मुख्य व्यक्ति हैं जो अम-रिका आदि देशोंमें गये और उन्होंने वहींकी भाषामें व्याख्यान देकर वहांके निवासियाको चकित किया।

प्रतिदिन यह सुननेमें आता है कि अमुक भारतवासी अमुक महाविद्यालयमें छात्र था और अमुक अमुक विषयमें सबसे

प्रथम था। अभी आपको यह नहीं मालूम कि अन्य देशोंमें भारतीय छात्रोंके साथ किस प्रकारका वर्ताव किया जाता है। यदि वे देशीय और विदेशीय छात्रोंके वर्तावमें समानता रखते तो न मालूम इन भारतवासियोंकी क्या अवस्था होती—ये कितने श्रेष्ठ गिने जाते।

मेरी इस बातमें—कि हमारे यहाँके छात्र यदि उनको पूरा पूरा कार्यस्थल दिया जाय तो विदेशीय छात्रोंसे कहीं बढ़ जाते हैं—आप अवश्य सहमत होंगे। क्योंकि आपको माऌम है कि Wirilen Idyraply का विचार सबसे प्रथम भारतनिवासीके ही दिमागमें आया था। यही नहीं, यदि खोज लगाओगे तो तुमको इस बातका पता लग जायगा कि वर्तमानसमयकी सभी अनोखी वस्तुओंका विचार पहले भारतनिवासियोंके ही दिमागमें आया था। और मुझे पूर्ण आशा है कि यदि आप aeroplanic इत्यादिके आविष्कर्ताओंसे यह पूँछेंगे कि आपने यह विचार कहाँसे लिया तो शायद यही उत्तर मिलेगा कि भारतवर्षसे या भारतनिवासियोंसे।

जब हमारे देशनिवासियोंकी यह हालत है तब तुमको यह अभिमान होना चाहिए कि हमारे पूर्व पुरुष बड़े विद्वान् थे। शिल्पकला इत्यादिमें बड़े निपुण थे और अगर समयके घोर परिवर्तनके हो जानेसे, शिल्पकला सम्बन्धी पुस्तकोंके न मिलनेसे आपको किसी प्रकारका सन्देह भी है तो यह मान लेनेमें आपकी क्या हानि है कि अध्यात्ममें वह शक्ति है कि जिसके द्वारा जड़विज्ञान मिनटोंमें आसकता है। केवल इतना ही नहीं किन्तु एक मनुष्यके कितने ही पहले पीढियों किये हुए योग्याभ्यासियोंके संस्कार भी उसके लिये सुखकर होते हैं।

अन्तमें मेरा यही निवेदन है कि आप आत्मविज्ञानको न छोड़ते हुए जड़विज्ञानमें उन्नाति करें और जितना बनें उतना आत्मवि-

ज्ञान नित्यप्रति अमेरिका आदि देशोंको भेजते रहें और उसके बदलेमें भौतिक ज्ञान लेते रहें। याद रहे कि यदि आत्मावज्ञीन बनानेवाली मशीनमें किसी भी प्रकारका धक्का लग गया तो तुम दीनके रहोगे न दुनियाके। आत्मविज्ञानके भेजने और उसकी मशीनको चंगा रखनेमें अधेड़ और बुड्ढोंको लगाओ और तुम जवान जड़विज्ञानके जहाज लाद लाद कर विलायतसे यहाँ ला डालो। आत्मविज्ञान और जड़विज्ञान दोनोंको उन्नतिके कांटेके पलड़े समझो, कांटेकी समानतामें खूबी है, याद रक्खो, एक भी पलड़ा झुका और खराबी आई।

मुझे इस लेखके लिखनेकी आवश्यकता यों हुई कि मैं अनेक धार्मिक जीवोंको मार्गच्युत होता हुआ देखता हूँ जिनको कि मैंने अपनी आँखसे धर्म पथपर आरूढ़ देखा था। धर्मपथसे मेरा मतलब आत्मविज्ञान ही है। वह आज पूरे जड़वादी पाये जाते हैं। इससे बड़ी हानिकी सम्भावना है इसलिए इस विषयमें बड़े आन्दोलनकी आवश्यकता है। क्योंकि भारतमें जड़विज्ञानकी कमीके साथ साथ आत्मविज्ञान भी कम हो चला है। इस लिए कहीं ऐसा न हो कि इस देशका हाल रोटी मुँहमें दबाकर नदी पार करनेवाले कुत्तेका सा हो जावे। इससे आपको सचेत होकर वास्तविक बातको समझ लेना चाहिए। और आत्मविज्ञानका पुनरुद्धार करना चाहिए।

—भगवानदीन।

कर्नाटक-जैनकवि

६१ नाचिराज—समय ई० स० १३००। इसने अमरकोषकी एक कन्नड़-व्याख्या लिखी है जिसे 'नाचिराजीय' कहते हैं।

६२ नविल्गुंद मादिराज—समय ई० स० १३००। द्वितीय गुणवर्मकृत पुष्पदन्तपुराणकी एक प्रतिके अन्तमें दो पद्य लिखे हैं, उनमें प्रतिके लेखकका परिचय दिया है। यह लेखक ही मादिराज कवि था। पद्योंकी रचना देखनेसे माळूम होता है कि यह एक अच्छा कवि था। 'बुधमाधव' इसकी उपाधि थी। लिपि तो इसकी बहुत ही सुन्दर है। साकल्य कुलमें इसका जन्म हुआ था। इसके पिताका नाम चाम और माताका महादेवी था। नविल्गुन्द ग्राममें इसका जन्म हुआ था। पुष्पदन्तपुराण ई० स० १२३६ के लगभग बना है। उसकी प्रतिलिपि करनेके कारण यह उससे पीछे १३०० के लगभग हुआ होगा। रचनाशैलीसे भी माळूम होता है कि यह इसी समयमें हुआ होगा।

६३ नागराज—समय ई० स० १३३१। यह कौशिकगोत्रोद्भव था। सेचेंबपुरनिवासी जिनशासनदीपक विवेकविठ्ठलदेव इसके पिता, भागीरथी माता, तिप्परस भाई और अनन्तवीर्य योगी गुरु थे। इसका 'पुण्यास्रवचम्पू' नामका एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें १२ अध्याय और ५२ कथायें हैं। ग्रन्थावतारमें जिनेन्द्र, पंचपरमेष्ठि, सरस्वती आदिकी स्तुति करके वीरसेनसे लेकर अनन्तवीर्यपर्यन्त गुरुओंको नमस्कार किया गया है। इसके बाद गृहस्थधर्मका विवरण करके तत्सम्बन्धी प्रसिद्ध पुरुषोंकी कथायें लिखी हैं। ग्रन्थकी अन्तप्रशस्तिसे माळूम होता है कि इस कविकी सुललितकविताकल्पवल्लीवसन्त, भारतीभालनेत्र, सरस्वतीमुखतिलक, कविमुखमुकुर, उभय-

कविताविलास आदि उपाधियाँ थीं। कविने अपने गुरु अनन्तवीर्यकी आज्ञानुसार सगर–नगरनिवासियोंके उपकारके लिए इस ग्रन्थकी रचना की थी। अनुमानसे मैसूर प्रान्तका सागर नामक स्थान ही सगर--नगर होगा। यह किसी संस्कृत ग्रन्थका कनड़ी भाषान्तर है। शक संवत् १२९३ अर्थात् ई० स० १३३१ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है।

६४, ६५ यशश्चन्द्र और पुष्पदन्त—समय ई० स० १३५० के लगभग। धर्मनाथपुराणके कर्त्ता मधुर (ई० स० १३८५) और जीवंधरषट्पदीके लेखक भास्कर (१४२३) ने यशश्चन्द्र नामक कविकी स्तुति की है। इसके सिवा मधुरने एक पुष्पदन्त नामक कविका भी स्मरण किया है। परन्तु न तो इन कवियोंका कोई ग्रन्थ उपलब्ध है और न यह माळूम है कि इनके बनाये हुए कौन कौनसे ग्रन्थ हैं। मधुरका समय १३८५ के लगभग है इसलिए इन दोनों कवियोंका समय उससे पहले १३५० के लगभग माना जा सकता है।

६६ केशव वर्णी—समय ई० स० १३५९। यह अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका शिष्य था। इसकी बनाई हुई दो कनड़ी टीकायें उपलब्ध हैं। एक अमितगतिश्रावकाचारवृत्ति और दूसरी गोम्मटसारवृत्ति। देवचन्द्र कविका बनाया हुआ एक 'राजावली कथा' नामका ग्रन्थ है। उसमें अनेक कवियोंका वृतान्त लिखा है। उससे मालूम होता है कि केशवर्णीने सारत्रय (समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय) की टीका लिखी है। मंगराज कविने एक जगह केशववर्णीका उल्लेख करते समय उसे सारत्रयवेदि विशेषण दिया है, इससे भी मालूम होता है कि उसकी एक सारत्रयकी टीका होगी; परन्तु वह हमें उपलब्ध नहीं हुई। इसने गोम्मटसारकी कर्नाटकी वृत्ति शक

संवत् १२८१ (ई० स० १३५९) में धर्मभूषण भट्टारककी आज्ञासे निर्मित की, ऐसा उक्त वृत्तिके अन्तिम पद्योंसे मालूम होता है। ये धर्म-भूषण संभवतः न्यायदीपिकाके कर्त्ता होंगे। गोम्मटसारकी संस्कृत टीका भी केशववर्णीकी बनाई हुई है।

६७ **मंगराज**—इस नामके तीन कवि हुए हैं। उनमेंसे पहला होयसळ देशके देवलिगे प्रान्तके मुख्य पत्तन मुगुळेयपुरका स्वामी था। यह विजयनगरके हरिहर राजाके समयमें हुआ है। आपको यह पूज्य-पादका शिष्य बतलाता है। इसकी पत्नीका नाम कामलता था और तीन उसके पुत्र थे। सुललित कवि पिकवसन्त, विधुवंशललाम, कवि जनैकमित्र, अगणितगुणनिलय, अखिलविद्याजलनिधि, पंचगुरुपदा-म्बुजभृंग आदि इसकी विरदावली थी। सारत्रयवेदि केशववर्णीका इसने स्तवन किया है, इसलिए यह उनका समकालीन या और उनसे कुछ ही पीछेका कवि है। हरिहर राजाका भी यही समय है। इसका बनाया हुआ एक खगेन्द्रमणिदर्पण नामका ग्रन्थ है। इसमें स्थावर विषोंकी प्रक्रिया और प्रायः सब ही विषोंकी चिकित्सा लिखी है। यह १६ अध्यायोंमें विभक्त है। इसके प्रारंभमें पार्श्वनाथ, सिद्ध, सरस्वती, पद्मा, गजधर आदिका स्तवन और समन्तभद्रसे लेकर केशववर्णीपर्यंत विद्वानोंकी स्तुतिकी है। अन्तमें लिखा है कि यह ग्रन्थ पूज्यपादके वैद्यक ग्रन्थसे संग्रहीत है। वैद्यक ग्रन्थ होनेपर भी इसकी कविता सुन्दर काव्य-मयी है।

६८ **मंगराज द्वितीय**—समय ई० स० १३९४। यह 'कम्मे' कुलके विश्वामित्र गोत्रीय रेम्मार्य रामरसका पुत्र था यह अभिनव मंगराजके नामसे प्रसिद्ध है। इसने मंगराजनिघण्टु या अभि-नवनिघण्टु नामका कोश लिखा है। कविने शशिपुरके सोमेश्वरके प्रसादसे शक १३२० में अपने कोशग्रन्थको समाप्त किया है।

६९ मंगराज तृतीय—समय ई० स० १५०९। यह होयसळ देशके होसवृत्ति प्रान्तके कल्लहल्लि राज्यका स्वामी था और महामण्डलेश्वर चंगाळव राजाके मंत्रीके वंशमें उत्पन्न हुआ था। अपने सब ग्रन्थोंमें यह आपको कल्लहल्लिनरेश विजयेन्द्रका पुत्र बतलाता है। यह सम्यक्त्वकौमुदी, जयकुमारषट्पदी, नेमिजिनेशसंगति, पाकशास्त्र, प्रभंजनचरित, और श्रीपालचरित इन छह ग्रन्थोंका रचयिता है। सम्यक्त्वकौमुदीकी रचना इसने शक १४३१ में की है। श्रवणबेलगोलाका १०८ वाँ संस्कृत शिलालेख—जो शक १४४३ का लिखा हुआ है—इसी मंगराज कविका लिखा हुआ है। उक्त लेखमें कवि अपने विषयमें इस प्रकार लिखता है:—

प्रबन्धध्वनिसम्बन्धा सद्रगोत्पादनक्षमा।
मङ्गराजकवेर्वाणी वाणी–वीणायते तराम्॥

७० अभिनवश्रुतमुनि—समय ई० स० १३६५। इसने मल्लिषेणसूरिकृत सज्जनचित्तवल्लभकी कर्नाटकी व्याख्या लिखी है।

७१ मधुर—समय ई० स० १३८५। यह वाजिवंशके भारद्वाजगोत्रमें उत्पन्न हुआ था। पिताका नाम विष्णु और माताका नागाम्बिका था। बुक्कराजके पुत्र हरिहरराजका मंत्री इसका पोषक था। ‘भूतनाथास्थानचूडामणिमधुरकवीन्द्र’ इस विशेषणसे यह हरिहररायका आस्थानकवि या सभाकवि था, ऐसा मालूम होता है। कविविलास, कविराजकलाविलास, कविमाधवमधुरमाधव, सरसकविरसालवसन्त, भारतीमानसकेलिराजहंस, विश्वविद्यासमुदयसुमनस्संचराञ्चञ्चरीक आदि उपाधियाँ या विशेषण इसके नामके साथ जोड़े जाते थे। इसके बनाये हुए केवल दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक धर्मनाथपुराण और दूसरा गुम्मटाष्टक। इनमेंसे धर्मनाथपुराणकी समग्र प्रति मिलती

नहीं है। जितना भाग प्राप्त है उससे माछूम होता है कि यद्यपि यह चौदहवीं शताब्दिका कवि था तो भी इसकी रचना पिछले कवियोंके समान प्रौढ़, हृदयहारिणी और सुन्दर है। इसके बहुतसे पद्य सोलहवीं शताब्दिके अभिनववादि विद्यानन्दिने अपने काव्यसारमें और सत्रहवीं शताब्दिके भट्टाकलंकने अपने शब्दानुशासनमें उद्धृत किये हैं।

८२ जिनाचार्य—समय ई० स० १४००। सोलहवीं शताब्दिमें शृङ्गारकविराजहंस नामका एक कवि हो गया है। उसने अपने रत्नाकराधीश्वरशतक नामक ग्रन्थमें अग्गल (११८९) नेमि (११७१), रत्न (९९३), कुमुदेन्दु (१२७५) आदि कवियोंके साथ साथ जिनाचार्य नामक कविका भी उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि इसने भी कुछ रचना की होगी जो कि इस समय उपलब्ध नहीं है।

परिशिष्ट।

७३ शान्तिनाथ—समय ई० स० १०६८। शिखारिपुरके १३६ वें शिलालेखसे मालूम होता है कि इसने 'सुकुमारचरित' नामक ग्रन्थ लिखा है। उक्त शिलालेख शक संवत् ९९० का लिखा हुआ है। यह भुवनैकमल्ल (१०६८–१०७६) पराजित लक्ष्मनृपति का मंत्री था। इसके उपदेशसे लक्ष्म नृपतिने बलिग्राममें शान्तिनाथ भगवानका मन्दिर बनवाया था। इसके पिता गोविन्दराज, भाई कन्नपार्य और गुरु वर्धमान व्रति थे। जिनमताम्भोजिनीराजहंस, सरस्वतीमुखमुकुर, सहजकवि, चतुरकवि, निस्सहाय कवि आदि इसके विरुद्ध हैं।

७४ रवाकोठ्याचार्य—समय ई० स० ११८०। इसके एक ग्रन्थक कुछ भागका अनुवाद इंडियन ऑन्टिक्वेरी वाल्यूम XII पेज ९६में प्रकाशित हुआ है।

अन्तिम निवेदन।

लीजिए, पाठक महाशय, कर्नाटक प्रान्त और कर्नाटकी (कनड़ी) भाषाके जैनकवियोंका संक्षिप्त परिचय समाप्त हो चुका। कोई डेड़ वर्षमें यह लेख सम्पूर्ण हुआ। संभव है कि इसे पढ़ते पढ़ते बहुत लोग ऊब गये हों—उन्हें इससे अरुचि हो गई हो और ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योंकि हमारा समाज जिस तरह इतिहाससे और उसके महत्त्वसे अपरिचित है उसी तरह ऐतिहासिक विषयोंकी ओर उसकी रुचि भी नहीं है। परन्तु जो लोग इतिहासके लाभोंसे परिचित हैं और यह जानते हैं कि एक छोटा सा भी ऐतिहासिक लेख कितने परिश्रमसे लिखा जाता है उन्होंने समझा होगा कि यह लेख कितने महत्त्वका हुआ है और इसके लिए कितना परिश्रम किया गया होगा। यदि सच पूछा जाय और आत्मप्रशंसा न समझी जाय तो यह कहनेमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी कि हिन्दी साहित्यमें कर्नाटकके कवियोंका परिचय करानेवाला यह सबसे पहला लेख है। केवल हिन्दी ही क्यों बंगला, मराठी, गुजराती जैसी प्रौढ भाषाओंमें भी कर्नाटक साहित्य सम्बन्धी लेख क्वचित् ही दृष्टिगोचर होते हैं। क्योंकि इन भाषा भाषियोंके लिए कर्नाटकी भाषा इतनी कठिन और अपरिचित है कि वे उसके साहित्यसे बिलकुल ही अनभिज्ञ रहते हैं। ढाका (बंगाल) से ढाका–रिव्यू नामका एक प्रसिद्ध मासिक पत्र निकलता है। आरा निवासी बाबू देवेन्द्रप्रसादजीसे मालुम हुआ कि हमारे इस लेखका अनुवाद उक्त पत्रमें क्रमशः प्रकाशित हो रहा है और उसके सम्पादकने इसे एक बहुत ही महत्त्वका लेख समझा है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि हिन्दीमें "कर्नाटक–जैनकवि" एक असाधारण लेख हुआ है और भले ही आज इसे बहुतसे पाठकों-

ने रुचिसे न पढ़ा हो, परन्तु हमको विश्वास है कि आजसे दश बीस वर्ष पीछे जैन साहित्यमें इसको अच्छा स्थान दिया जायगा। जिनसे हमारा नित्यका परिचय है उन संस्कृत और हिन्दी भाषाओंके १०–२० जैन कवियोंका भी परिचय करनेवाला लेख जब हिन्दी साहित्यमें कोई नहीं है तब एक अपरिचित साहित्यके लगभग ७९ कवियोंका शृङ्खलाबद्ध परिचय करानेवाला लेख क्या असाधारण नहीं कहा जायगा ?

इस लेखमें केवल कनड़ी भाषाके कवियोंका ही परिचय नहीं है; किन्तु इससे संस्कृत और प्राकृतके उन नामी नामी आचार्यों तथा विद्वानोंका समयादि भी मालूम होता है जो संस्कृत प्राकृतके सिवा कनड़ीके भी कवि थे अथवा कर्नाटकी कवियोंसे जिनका गुरु शिष्यादिका सम्बन्ध था और जिनसे हम लोग प्रायः बिलकुल ही अजान थे। अतएव इस लेखसे संस्कृतसाहित्यके इतिहासमें भी बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

कनड़ी भाषामें 'कर्नाटक कवि चरित्र' नामका एक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें कनड़ी भाषाके कई कवियोंका चरित परिचय दिया गया है और प्रत्येक कविके जितने उपलब्ध ग्रन्थ हैं, उनमेंसे प्रत्येक ग्रन्थके विषय, उसकी रचनाके नमूने, उसका महत्त्व, ग्रन्थनिर्माणसमय आदि सब बातोंकी खूब विस्तारके साथ आलोचना की गई है। जब हमने सुना कि इस ग्रन्थमें बहुतसे जैन कवियोंका भी चरित है तब हम अपनी उत्कण्ठाको न रोक सके और कनड़ी भाषाका ज्ञान न होनेपर भी हमने इसे मँगा लिया। अब हमें इस बातकी चिन्ता हुई कि किसी कनड़ी भाषा जाननेवाले सज्जनसे इसका अनुवाद कराया जाय; परन्तु कठिनाई यह हुई कि

कनड़ी जाननेवाले हिन्दी नहीं जानते और हिन्दी जाननेवाले कनड़ीसे कोरे। अन्तमें ऐसे सज्जनोंसे हमें अपनी इच्छा पूर्ण करना पड़ी जो थोड़ी थोड़ी हिन्दी जानते हैं अथवा मुश्किलसे अपने भाव हिंदीमें प्रगट कर सकते हैं। ये सज्जन अपनी हिन्दीमें ज्यों त्यों करके जो कुछ लिख देते थे या समझा देते थे उसे हम अपनी भाषामें संस्कृत करके लिख लेते थे। इन सज्जनोंमें एक तो श्रीयुक्त व्येंकटराव नामके महाशय हैं। आप यद्यपि जैनी नहीं हैं तो भी आपने उदारता और प्रसन्नतापूर्वक कोई ३०–३२ कवियोंका परिचय लिख देनेकी कृपा की। आपकी इस कृपाके हम अतिशय आभारी हैं। दूसरे सज्जन मोरेना जैन पाठशालाके विद्यार्थी श्रीयुक्त वासुदेवजी उपाध्याय हैं और तीसरे सज्जन काशी स्याद्वादपाठशालाके भूतपूर्व विद्यार्थी श्रीयुक्त के. कुमारय्या महाशय हैं। शेष ४० कवियोंका परिचय आप ही दोनों महाशयोंके परिश्रमका फल है। आपके भी हम बहुत ही अनुग्रहीत हैं।

यद्यपि यह सारा लेख 'कर्नाटककविचरित' के ही आधारसे लिखा गया है तथापि जिन कवियोंमे हम परिचित हैं अर्थात् जो कनडीके समान संस्कृतके भी कवि हैं उनके विषयमें हमको और भी जो जो बातें मालूम थीं वे सब इसमें शामिल कर दी हैं। ऐसी बातोंके लिए कर्नाटक कविचरितके लेखक नहीं किन्तु हम उत्तरदाता हैं।

यदि इस लेखमें प्रमादवश कोई भूलें रह गई हों तो उनके लिए हम पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं।

—सम्पादक।

नोट—यदि कोई धर्मात्मा सज्जन जैनसाहित्यकी प्रभावनाके लिए इस लेखको जुदा पुस्तकाकार छपानेकी और अल्पमूल्यमें प्रचार करनेकी उदारता दिखलावेंगे तो हम बहुत ही प्रसन्न होंगे।

तीर्थ-पर्यटन।

(५)

आबू।

सिरोही राजस्थानकी छोटी किन्तु प्रसिद्ध रियासत है। इसकी वार्षिक आमदनी लगभग सवापाँच लाख रुपये हैं। आबूपर्वत सिरोही राज्यके दक्षिण-पूर्व-हिस्सेमें है। यह यद्यपि अर्बलीपवर्तश्रेणीसे जुदा खड़ा हुआ है तो भी इससे सम्बन्ध रखनेवाली छोटी छोटी पर्वत श्रेणियाँ अर्बलीसे मिल जाती हैं। इस पर्वतके ऊपरी भागकी लम्बाई लगभग १२ मील और चौड़ाई २ मील हैं। यह ईशानसे नैऋत कोणकी ओर चला गया है। समुद्र तटसे यह ४००० फीट और धरातलसे ३००० फीट ऊंचा है। इसकी सबसे ऊंची चोटी गुरुशिखर ५६५० फीट है। यह पर्वत बहुत ही प्राचीन है और प्राचीन कालसे जैन, शैव, शाक्त, वैष्णवादि विविध धर्मके उपासक इसे पवित्र मानते आ रहे हैं। ग्रीस देशवालोंके इतिहासमें इस पर्वतका उल्लेख मिलता है। महाभारतमें भी इसकी उत्पत्तिकी कथा लिखी है। इसके चौतरफके ढलाव अनेक प्रकारके सघन वृक्षोंसे भरे हुए हैं। यहाँकी प्राकृतिक शोभा बड़ी ही मनोहारिणी है। उष्णकालमें यहाँ खासी सर्दी पड़ती है। राजस्थानका यह सैनेटेरियम या स्वास्थदायक स्थान है। राजपूतानेके एजेंट गवर्नर जनरल साहब यहीं रहते हैं। पहले यहाँका मार्ग बहुत ही बिकट था-जंगली लोगोंके सिवा दूसरे लोगोंकी यहाँ मुश्किलसे गुजर होती थी; परन्तु अब खराड़ीसे १८ मील लम्बी पक्की सड़क बन गई है जिससे हर किस्मकी सवारियां यहाँपर आरामसे आ जा सकती हैं। अब यहाँ रेजडिन्सी, सरकारी अफसरोंके बंगले, सरकारी आफिस, गिरजाघर,

स्कूल, अस्पताल, राजा महाराजाओं तथा धनिकोंके बंगले, होटलें बाजार आदि सब कुछ बन गये हैं इसलिए बहुत ही सुहावना मालूम होता है। यहाँकी आब हवा खराब न हो जाय इस कारण साधारण लोगोंको सख्त ताकीद रहती है कि वे इस स्वास्थ्यप्रद स्थानमें न जाने पावें! मुसाफिरके स्टेशनपर उतरते ही इस बातकी आगाही कर दी जाती है।

देलबाड़ा।

यह स्थान देवालयोंके लिए प्रसिद्ध है। देवालयोंके कारण ही इसका नाम देवलबाड़ा या देलबाड़ा पड़ा है। यहाँ देलबाड़ा नामका एक छोटासा ग्राम है। समय समयपर यहाँ अनेक मतोंका प्रचार रहा है। यहाँ जितने शिलालेख मिले हैं उनमें सबसे पुराना संवत् ७२७ का है। उससे मालूम होता है कि उस समय यहाँ शैवलोगोंका प्राबल्य होगा। विमलशाहका प्रसिद्ध जैनमन्दिर वि० सं० १०८८ का बना हुआ है। उस समय जैनधर्मका जोरोशोर था। इसके बाद ही फिर एक बार शैवोंका प्राबल्य हुआ है और १५ वीं शताब्दीसे १७५२ तक फिर जैनधर्मका अभ्युदय रहा है। इसके आगे फिर शैवधर्म चमका है। ईस्वी सन् १८२१ में सिरोहीके राजा माधवसिंहने यहाँके बहु-तसे शैव मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया था।

यहाँके मन्दिरोंमें आदिनाथ और नेमिनाथके जैनमन्दिर कारीग-रीकी उत्तमताके खयालसे संसार भरमें अनुपम हैं। ये दोनों मन्दिर संगमर्मरके बने हुए हैं। इनमें भी पुराना और कारीगरीकी दृष्टिसे कुछ अधिक सुन्दर आदिनाथका मन्दिर है। विमल–वसहीके नामसे इसकी प्रसिद्धि है। इसे विमलशाह नामके पोरबाड़ महाजनने बनवाया था। विमलशाह अणहिल पाटणके सोलंकी राजा भीमदेवका मंत्री था।

भीमदेवने ई० स० १०२२ से १०६० तक राज्य किया है। आबूका परमार वंशीय राजा धंधुक उसका सामन्त या करदराजा था। यह भीमदेवसे बिगड़कर मालवेके परमार राजा भोजदेवसे जाकर मिल गया। इससे भीमदेव बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने विमलशाहको अपनी ओरसे दण्ड नामक (सेनापति) नियत करके आबू भेज दिया। विमलशाहने अपनी बुद्धिमानीसे धंधुकको बुलवा लिया और भीमदेवसे उसकी सुलह करवा दी। धंधुकने प्रसन्न होकर विमलशा-हको बहुतसी जमीन दी और हर तरहसे सहायता दी जिससे कि विमलशाहने अपनी कीर्तिको अजरामर कर देनेवाला यह प्रासिद्ध मन्दिर बनवाया।

इसमें गर्भगृहके सामने विशाल सभामंडप है और चौतरफ छोटे छोटे ५२ जिनालय हैं। मन्दिरमें मुख्य मूर्ति आदिनाथ भगवानकी है और उसके दोनों तरफ एक एक खड़ी मूर्ति है। पालनके जिनालयोंकी मूर्तियाँ जुदा जुदा वक्तोंमें जुदा जुदा लोगोंके द्वारा स्थापित हुई हैं ऐसा उनके लेखोंसे मालूम होता है। इस मंदिरके भीतर पैर रखते ही ऐसा मालूम होता है कि हम किसी काल्पनिक सृष्टिमें आ पहुंचे हैं। यहाँके स्वच्छ पाषाणपर जो अपूर्व काम किया गया है उसे देखकर विस्मित होना पड़ता है। प्रत्येक खंभेपर, मंडपके प्रत्येक पत्थरपर, प्रत्येक तोरणपर और प्रत्येक स्थानपर जो जो नक्काशीका काम है वह अपनी शानी नहीं रखता। उसमें सैकड़ों पौराणिक और काल्पनिक चित्र हैं। प्राकृतिक चित्रोंकी भी यहाँ कमी नहीं है। मण्डपके मध्यभागमें जो सुन्दर मृणालाश्रित कमल गुच्छ और किंचित्प्रस्फुटित सरोरुहदल हैं, उनकी सुकुमारता, सुन्द-रता और मनोवेधकता देखकर शिल्पियोंकी शतमुखसे प्रशंसा करनी

पड़ती है। इस रचनाको जब देखो तब ही नवीनता मालूम होती है और सहसा मुखसे निकल पड़ता है:—

" पुनः पुनर्यन्नवता मुपैतितदेव रूपं रमणीयतायाः।"

मन्दिरके सामने हस्तिशाला बनी है जिसमें द्वारके सामने विमलशाहकी अश्वारूढ पत्थरकी मूर्ति है। विमलशाहके सिरपर गोल मुकुट है और घोड़ेके पास एक पुरुष लकड़ीका बना हुआ छत्र लिये हुए खड़ा है। हस्तिशालामें पत्थरके बने हुए दशहाथी हैं जिनमेंसे ६ वि० सं० १२०५ में नेढक, आनन्दक, पृथ्वीपाल, धीरक, लहरक और भीनक नामक पुरुषोंने बनवाकर रक्खे थे। ये सब महामात्य या प्रधान मंत्री थ। बाकीके हाथियोंमेंसे एक परमार जगदेवने, दूसरा महामात्य धनपालने तीसरा महामात्य धववलकने बनवाया था। एक हाथीपरका लेख पढ़ा नहीं जाता। पहले इन सब हाथियोंपर मूर्तियां बनी–हुई थीं; परन्तु इस समय केवल तीनपर हैं जो चतुर्भुज हैं। ये सब हाथी बड़े ही सुन्दर हैं। कई, लोगोंका खयाल है कि हस्तिशाला मन्दिर बननेसे पीछे की बनी हुई है। इसकी–कारीगरी भी मन्दिरके जोड़की नहीं।

इस अनुपम मान्दिरका कुछ हिस्सा मुसलमानोंने तोड़ डाला था। जिससे वि० सं० १३७८ में लल्ल और बीजड़ नामक दो साहूकारोंने इसका जीर्णोद्धार करवाया और ऋषभदेवकी मूर्ति स्थापित की। इस बातका उल्लेख जिनप्रभसूरिने अपने 'तीर्थकल्प' नामक ग्रन्थमें किया है।

इस मन्दिरकी कारीगरीकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। स्तंभ, तोरण, गुंबज, छत, दरवाजे आदिपर जहाँ देखा जावे वहीं कारीगरीकी सीमा पाई जाती है। राजपूतानेके प्रसिद्ध इतिहास

लेखक कर्नल टाडने लिखा है:—**यह मन्दिर भारतके सम्पूर्ण देवालयोंमें सबसे सुन्दर है और आगरेके ताजमहलको छोड़कर और कोई भी इमारत ऐसी नहीं है जो इसकी समता कर सके।** यह बात बिलकुल निर्विवाद है। भारतके धनिक भक्तोंमेंसे एक प्रसिद्ध भक्तके स्थापित किये हुए आनन्ददर्शक और अभिमान योग्य कीर्तिस्तंभकी निःसीम सुन्तरताका वर्णन करनेकी कलममें शक्ति नहीं।"

इस मन्दिरके पास ही लूणवसही नामक नेमिनाथका मन्दिर है। इसे लोग वस्तुपाल तेजपालका मन्दिर कहते हैं। इसे प्रसिद्ध मंत्री वस्तुपालके छोटे भाई तेजपालने अपने पुत्र लूणसिंह और अपनी स्त्री अनुपमादेवीके कल्याणार्थ करोड़ों रुपया लगाकर बनवाया था। यही एकं मन्दिर है जो कारीगरीमें उक्त विमलशाहके मन्दिरकी समता कर सकता है। इसके विषयमें भारतीय शिलाके प्रसिद्ध ज्ञाता फर्ग्युसन साहबने अपनी 'पिक्चर्स इलस्ट्रेशन्स ऑफ एन्श्यंट आर्किटेक्चर इन् हिन्दुस्तान' नामक पुस्तकमें लिखा है कि—"इस मन्दिरमें—जो संगमर्मकार बना हुआ है—अत्यन्त परिश्रम सहन करनेवाली हिन्दुओंकी टाँकीसे फीते जैसी बारीकीके साथ ऐसी मनोहर आकृतियाँ बनाई गई हैं कि उनकी नकल कागजपर बनानेको कितने ही समय तथा परिश्रमसे भी मैं समर्थ नहीं हो सकता।" यहाँके गुम्बजकी कारीगरीके विषयमें कर्नल टॉडसाहब लिखते हैं कि "इसका चित्र तैयार करनेमें लेखिनी थक जाती है और अत्यन्त परिश्रम करनेवाले चित्रकारकी कलमको भी महान् श्रम पड़ता है।" गुजरातके प्रसिद्ध इतिहास 'रासमाला' के कर्ता फार्बस साहबने विमलशाह और वस्तुपाल—तेजपालके मन्दिरोंके विषयमें लिखा है कि "इन मन्दिरोंकी खुदाईके

काममें स्वाभाविक निर्जीव पदार्थोंके चित्र बनाये गये हैं; इतना ही नहीं किन्तु सांसारिक जीवनके दृश्य, व्यापार तथा नौकाशास्त्र सम्बन्धी विषय एवं रणखेतके युद्धोंके चित्र भी खुदे हुए हैं।" यह मन्दिर भी विमलशाहके मन्दिरकीसी बनावटका है। इसमें गर्भगृह, उसके आगे गुम्बजदार सभामंडप और उनके अगल बगलपर छोटे छोटे जिनालय तथा पीछेकी ओर हस्तिशाला है। इस मंदिरमें मुख्यमूर्ति नेमिनाथकी है और छोटे छोटे जिनालयोंमें अनेक मूर्तियाँ हैं। यहाँपर दो बड़े बड़े शिलालेख हैं जिनमेंसे एक धोलकाके राणा वीरधवलके पुरोहित तथा 'कीर्ति कौमुदी' 'सुरथोत्सव' आदि काव्योंके रचयिता प्रसिद्ध कवि सोमेश्वरका रचा हुआ है। उसमें वस्तुपाल-तेजपालके वंशका वर्णन, अर्णोराजसे लेकर वीरधवलतककी बघेल राणाओंकी नामावली, आबू तथा उसके परमार राजाओंका वृत्तान्त, इस मन्दिरकी प्रशंसा तथा हस्तिशालाका वर्णन है। यह ७४ श्लोकोंका छोटासा सुन्दर काव्य है। दूसरे लेखमें मन्दिरके वार्षिकोत्सवादिकी व्यवस्थाका वर्णन है। इन लेखोंके सिवा छोटे छोटे जिनालयोंमेंसे बहुधा प्रत्येकके द्वारपर भी सुन्दर लेख खुदे हुए हैं। इस मन्दिरको बनवाकर तेजपालने अपना और अपने कुटुम्बके अनेक स्त्री पुरुषोंका नाम अमर कर दिया। क्योंकि इस मन्दिरमें भी जो ५२ जिनालय हैं उनके द्वारपर उसने अपने सम्बन्धियोंके नामके अनेक लेख खुदवा दिये हैं। गर्भगृहके द्वारकी दोनों ओर बड़ी कारीगरीसे बने हुए दो ताक हैं। इन्हें वस्तुपालने अपनी दूसरी स्त्री सुहड़ादेवीके कल्याणके निमित्त बनावया था। सुहड़ादेवी पाटण निवासी मोढ़जातीय महाजन जल्हणके पुत्र ठाकुर आसाकी पुत्री थी। ऐसा उनपर खुदे हुए लेखोंसे पाया जाता है। इससे मालूम होता है कि उस समय मोढ़ और पोरवाड़ोंमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होता था।

इस मन्दिरकी हस्तिशालामें बड़ी कारीगरीसे बनाई हुई संगमर्मरकी १० हथनियाँ एक पंक्तिमें खड़ी हैं, जिनपर, चंडप, चंडप्रसाद, सोमसिंह, अश्वराज, लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल, जैत्रसिंह, और लावण्यसिंहकी बैठी हुई मूर्तिया थीं; परन्तु अब उनमेंसे एक भी नहीं रही। इन हथनियोंके पीछेकी पूर्वकी दीवारमें १० ताक बने हुए हैं जिनमें इन्हीं १० पुरुषोंकी स्त्रियों सहित पत्थरकी खड़ी मूर्तियाँ हैं। जिन सबके हाथोंमें पुष्पोंकी मालायें हैं और वस्तुपालके सिरपर पाषाणका छत्र भी है। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्रीका नाम मूर्तिके नीचे खुदा हुआ है। अपने कुटुम्ब भरका इस प्रकारका स्मारक चिन्ह बनानेका काम इस देशके और किसी भी पुरुषने नहीं किया। पहले ताकमें आचार्य उदयसेन और विजयसेनकी भी मूर्तियाँ हैं। यह मन्दिर शोभनदेव नामके शिल्पीने बनाया था। मुसलमानोंने इसे भी तोड़ डाला था जिससे इसका जीर्णोद्धार पेथड़ नामके संघपतिने करवाया था। जीर्णोद्धारका लेख एक स्तंभपर खुदा हुआ है।

वस्तुपाल और तेजपाल भाई भाई थे। ये अनहिलवाड़े (पाटण)के रहनेवाले पोरबाड़ महाजन आसराजके पुत्र और धोलकाके सोलंकी राणा वीरधवलके मंत्री थे। ये बड़े पराक्रमी और उदार थे। कहते हैं कि जैन धर्मस्थानोंके निमित्त असीम धन खरचनेवाला इनके समान कोई दूसरा धनिक नहीं हुआ। इन्होंने हजारों मन्दिर, तलाव, कुआ, बावड़ी, स्तूप, बाग वगैरह बनवाये थे। गिरनारका नेमिनाथका मन्दिर इन्हींका बनवाया हुआ है। वस्तुपालकी स्त्रीका नाम ललितादेवी और तेजपालकी स्त्रीका नाम अनुपमादेवी था। कहते हैं कि एक बार अनुपमादेवीको अपनी अपार सम्पत्ति देखकर चिन्ता हुई कि इसका क्या उपयोग किया जाय? इसी चिन्तामें उसे निद्रा आ गई और

स्वप्नमें किसीने कहा कि इसे आबू पर्वतपर रख दो जिससे कि सारा संसार देख सके। इसीके अनुसार उसने पतिसे आग्रह करके यह मन्दिर बनवाया। एक किंवदन्ती यह भी प्रसिद्ध है कि दुष्कालके कारण उस साल लाखों मजदूर इकठे हुए थे और उनकी पालना करनेके लिए अनुपमा तथा ललितादेवीने इस मन्दिरकी नीव डलवाई थी। जो हो पर इसमें सन्देह नहीं कि अनुपमा और ललितादेवीकी धर्मबुद्धि ही इस मन्दिरके बननेमें प्रधान कारण थी। निःसीम धर्म-बुद्धि और निष्काम भक्तिके बिना ऐसे महत्कार्य नहीं हो सकते। आबू जैसे दुर्गम पर्वतपर ३००० फीटकी ऊँचाईपर संगमर्मरका ऐसा विशाल काम बनवाना साधारण औदार्यका काम नहीं! आबूसे कोई २९ मीलकी दूरीपर एक खानि है वहाँसे इस मन्दिरके लिए पाषाण लाया गया है ऐसा माढ्रम होता है।

इन दोनों मन्दिरोंकी देखरेख सिरोही दरबारकी ओरसे होती है। इनकी आमदनी लगभग ६ हजार और खर्च ५ हजार रुपयोंका है। दरबारका एक मुनीम यहाँ रहता है। फागुन वदीमें बड़ा भारी उत्सव होता है।

मन्दिरमें जूते पहिन कर जानेकी किसीको आज्ञा नहीं है; परन्तु युरोपियनोंको केवल टोप उतारना पड़ता है! यह भेदभाव बहुत ही खटकता है। यह केवल अन्याय ही नहीं किन्तु एक देवस्थानकी घोर अवज्ञा भी है। क्या यूरोपियनोंके जोड़े पवित्र होते हैं? दरवाजेमें प्रवेश करते ही इस भेदभावप्रदर्शक नोटिसपर प्रत्येक यात्रीकी नजर पड़ती है।

वस्तुपालके मन्दिरसे थोड़े अन्तरपर भीमासाह या भैंसासाहका मन्दिर है जिसमें १०८ मन तौलकी पीतलकी प्रतिमा है। यह आदि-नाथकी प्रतिमा वि० सं० १५२५ में स्थापित हुई थी।

इन मन्दिरोंके सिवा देलवाड़ेमें दो श्वेताम्बर मन्दिर और हैं जिनमें कोई विशेषता नहीं। इस मन्दिरसमूहके भीतर ही एक छोटासा दिगम्बरी मन्दिर है जो सत्रहवीं शताब्दीका बना हुआ है।

दूसरा दिगम्बरी मन्दिर देलवाड़ेसे अचलगढ़ जानेके रास्तेमें कुछ ऊंचाईपर बना हुआ है। पहले यह मन्दिर बिलकुल बुरी हालतमें पड़ा था; परन्तु अब दानवीर सेठ माणिकचन्दजी और बाबू पूनमचन्दजी काशलीवालके प्रयत्नसे इसकी मरम्मत हो गई है। इसीमें कुछ कोठरियां धर्मशालाके तौरपर उपयोगमें लाई जाती हैं। हम यहींपर ठहरे थे। प्रबन्धके लिये एक मुनीम, एक पुजारी और एक सिपाही रहता है। प्रबन्ध अच्छा है—तीर्थक्षेत्र कमेटीकी इसपर देखरेख है। तलाश करनेसे माद्धम हुआ कि यहाँ आमदनी कम और खर्च ज्यादा है और इसका कारण यह है कि यहाँ दिगम्बरी यात्री बहुत कम आते हैं यह ठीक है कि यह कोई सिद्धक्षेत्र नहीं है तो भी जब यहांके मन्दिरोंको देखनेके लिए विलायत जैसे दूर देशोंके दर्शक आते हैं तब दिगम्बरियोंके लिए तो यह अवश्य दृष्टव्य है।

इन मन्दिरोंसे कुछ दूरपर आसपास कई जीर्ण शीर्ण मन्दिर पड़े हुए हैं। इनमें एक मन्दिर वि० सं० १४५२ का बना हुआ है जिसे लोग रसियाबालम (ऋषि बाल्मीकि)का मन्दिर कहते हैं।

अचलगढ़।

देलबाड़ेसे अनुमान ९ मील उत्तर-पूर्वमें अचलगढ़ नामका प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान है। पहाड़के नीचे अचलेश्वर महादेवका प्राचीन मन्दिर है। ये परमारों और चौहानोंके कुल देवता माने जाते थे। इसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ है। इसमें शिवलिंग नहीं किन्तु शिवके पैरके अँगूठेका चिन्हमात्र है। इस मन्दिरमें अष्टोत्तर शत

लिंगके नीचे एक बहुत बड़ा शिलालेख वस्तुपाल तेजपालका खुदवाया हुआ है जिससे मालूम होता है कि वस्तुपाल तेजपालने इसका उद्धार करवाया था। इसका उल्लेख और भी कई जगह मिला है कि इन मंत्रियोंने जैन होनेपर भी अनेक शिवमन्दिरोंका उद्धार करवाया था। उस समयके धार्मिक जगतकी यह बात बहुत विचारणीय है। यहांपर १४ वीं, १५ वीं, और १७ वीं शताब्दिके और भी कई शिलालेख हैं। इस मन्दिरके अहातेमें विष्णु आदि देवोंके और भी कई मन्दिर हैं। एक जगह एक पत्थरकी चौखट खड़ी हुई है। जिसे लोग धर्मका काँटा कहते हैं। इसके ऊपर दो छोटी दिगम्बर जैनमूर्तियाँ हैं। एक दहलीके द्वारकी चौखटमें भी जैनप्रतिमा है। इस मन्दिरके समीप ही मन्दाकिनी नामका छोटासा तालाब या कुण्ड है जिसकी लम्बाई ९०० फीट और चौड़ाई २४० फीटकें क़रीब है। इसके तटपर परमारवंशी राजा धारावर्षकी धनुष सहित सुन्दर मूर्ति है जिसके आगे पूरे क़दके तीन भैंसे एक दूसरेके पास खड़े हुए है जिनके शरीरके आरपार एक एक छिद्र है। इसका आशय यह है कि धारावर्ष ऐसा पराक्रमी था कि पास पास खड़े हुए तीन भैंसोंको एक ही बाणसे बेध देता था। जैसा कि पार नारायणके लेखमें उसके विषयमें लिखा मिलता है। परमार धारावर्षने वि० सं० १२२०से १२७६ तक राज्य किया है। लोगोंमें इस मूर्तिके विषयमें एक विलक्षण ही प्रकारका विश्वास है। कहते हैं कि इस कुण्डमें पानीके बदले घी भरा जाता था और तीन दैत्य भैंसेका रूप धारण करके उसे पी जाते थे। एकबार पता लगाकर आदिपाल नामके पराक्रमी पुरुषने उन्हें तीरसे मार डाला और फिर इस घटनाके स्मारक स्वरूप धनुर्धारीकी और भैंसोंकी मूर्तियां स्थापित की गई। एक शिलालेखसे मालूम होता है कि यह स्मारक धारावतीमें

तेजसिंहके शासन समय संवत् १३४२ में बनाया गया। मन्दाकिनीके दूसरे किनारेपर एक लोहदण्ड पड़ा हुआ है जिसे लोग भीमकी गदा कहते हैं। इस कुण्डसे ही निकट सिरोहीके महाराव मानसिंहका मन्दिर है जो एक राजपूतके हाथसे आबू पर मारे गये थे यहाँ दग्ध किये गये थे। इसमें मानसिंहकी मूर्ति पाँचो रानियों समेत शिवकी आराधना करती हुई खड़ी हैं। यहाँ आसपास और भी कई मन्हिर हैं। यहाँके कई मन्दिर देलवाड़ाके मन्दिरोंसे भी पहलेके मालूम होते हैं।

अचलेश्वर मन्दिरसे थोड़ी दूरपर शान्तिनाथका जैनमन्दिर है। कहते हैं इसे गुजरातके सोलंकी राजा कुमारपालने बनवाया था। इसमें तीन मूर्तियाँ हैं जिनमेंसे एकपर वि० सं० १३०२ का लेख है।

इससे आगे अचलगढ़के ऊपर चढ़नेका मार्ग है इस पहाड़पर एक गढ़ बना हुआ है जिसे अचलगढ़ कहते हैं। मार्गमें कुन्थुनाथका जैनमन्दिर है जिसमें संवत् १५२७ की बनी हुई पीतलकी मूर्ति है। आगे पार्श्वनाथ नेमिनाथ और आदिनाथके मन्दिर हैं। इनमें आदिनाथका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। इसे चतुर्मुख विहार कहते हैं। यह दो मँजिला है और इसके नीचे तथा ऊपरकी मँजिलोंमें चार चार पीतलकी बड़ी बड़ी मूर्तियाँ हैं। सब मूर्तियोंकी संख्या १४ है जो वजनमें १४४४ मनकी समझी जाती हैं। साधारण लोगोंमें यह प्रसिद्धि है कि सोनेकी हैं; परन्तु यह गलत है। प्रतिमाओंके आसनमें जो लेख है उन्हींमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें लिखी हुई है कि वे पीतलकी हैं। परन्तु पीतल इतना अच्छा है और उनकी प्रक्षालादि इतनी सावधानीसे होती है कि प्रतिमायें सोने ही जैसी चमकती हैं। इन प्रतिमाओंमें सबसे पुरानी प्रतिमा महाराणा कुंभाके समय वि० सं० १५१८ में बनी थी।

यहाँके एक मन्दिरके आसपास कई देहरियाँ बनी हुई हैं उनमें अन्तकी तीन देहरियोंकी प्रतिमाओंमें लँगोटका चिन्ह नहीं है इससे माऌम होता है कि वे दिगम्बरी प्रतिमा हैं। जब तक देलवाड़ेमें दिगम्बरी भण्डार स्थापित नहीं हुआ था तब तक सुनते हैं कि इन प्रतिमाओंमें नेत्र नहीं जड़े जाते थे जिससे दिगम्बरी यात्री यहाँके दर्शन करके श्वेताम्बरी भण्डारमें ही चन्दा दे जाया करते थे पर अब बहुत करके हमेशा ही इन प्रतिमाओंपर चक्षु बैठाये जाते हैं।

यहाँसे कुछ ऊपर 'सावन' 'भादवा' नामके दो जलाशय हैं जिनमें साल भर तक जल रहता है और पर्वतके शिखरके पास अचलगढ़ नामका टूटा किला है जो मेवाड़के महाराणा कुंभाजी ने वि० सं० १५०९ में बनवाया था। यहांसे कुछ नीचेकी ओर पहाड़को काटकर बनाई हुई गुफा है जिसे कोई कोई सत्यवादी 'राजा हरिश्चन्द्रकी गुफा' और कोई कोई 'गोपीचन्द भरथरीकी गुफा' कहते हैं।

ता० २२ को अचलगढ़ देखकर हम लोग लौट आये और ता० २३ के ३ बजे देलवाड़ासे चल दिये। ५॥ बजे इक्केपर बैठकर रातके ८॥ बजे आबूरोड़ (खराड़ी) स्टेशनपर आगये। धर्मशालामें हम अपना कुछ सामान छोड़ गये थे उसे लेकर ११ बजे रातको चल दिये और दिन निकलनेके पहले ही म्हसाणा स्टेशनपर उतर गये यहाँ भोजनादि करके हम १२ बजे तारंगाहिलका टिकट लेकर गाड़ीमें सवार हो गये और २॥। बजे स्टेशनपर जा उतरे। यहाँ यात्रियोंके सुभीतेके लिए पानी वगैरहका प्रबन्ध है। तलेटी यहाँसे कोई ३—४ मील है। बैलगाड़ियाँ मिलती हैं। गाड़ी करके हम लोग तलेटीमें पहुंचे और वहांसे मजदूर करके लगभग ५॥। बजे पर्वतपर

जा पहुंचे। पर्वतका चढ़ाव बहुत कठिन नहीं तो भी सहज भी नहीं है।

तारंगा।

यह सिद्धक्षेत्र है। निर्वाणकाण्डमें 'नगर तारवर' के नामसे इसका उल्लेख है। दिगम्बरी इस पर्वतपरसे वरदत्तराय आदि साढ़ेतीन करोड़ मुनियोंका मोक्ष जाना मानते हैं। यहां पर दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंकी कोठियां और धर्मशालायें हैं। प्रबन्ध अच्छा है। तीर्थक्षेत्रकमेटीकी देखरेख है। दिगम्बरी मन्दिर दो हैं जिनमें एक पुराना संवत् १६०० के लगभगका है और दूसरा बड़ा शोलापुर-वालोंका बनवाया हुआ लगभग ५० वर्ष पहलेका है। श्वेताम्बरी मन्दिर बहुत विशाल हैं। उसमें ठाटबाट भी खूब है। मन्दिरके शिखरपर तरह तरहकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ए अश्लील मूर्तिको देखकर हमें बड़ी घृणा हुई। अफसोस है कि मन्दिरके प्रबन्धकर्त्ताओंकी उक्त मूर्तिपर अबतक भी दृष्टि नहीं पड़ी। ता० २९ सबेरे ही हम वन्दना करनेके लिए चल दिये। यहाँकी वन्दना कठिन नहीं, क्योंकि पर्वतकी चढ़ाई बहुत ही कम है। पर्वतकी टोंकोंपर कई जगह चरण हैं—एक दो जगह मूर्तियाँ भी हैं। जल्दीके कारण हम यहाँ पर अधिक न ठहर सके। भोजन करके १२ बजे ही वापस जानेकी तैयारी की। यहाँ प्रति आदमी ३ आना टैक्स देना पड़ता है। इसका प्रबन्ध श्वेताम्बर कोठीके जिम्मे है।

२ बजे हम लोग स्टेशनपर आगये और ३॥ बजे गाड़ीमें बैठकर म्हसाणा पहुँचे और वहाँसे ९॥ बजे रातको अहमदाबाद उतर पड़े।

अहमदाबाद।

सेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द दि० जैनबोर्डिंगमें एक छोटीसी धर्मशाला है। हम लोग उसीमें जाकर आरामके साथ ठहरे। ता० २६ को सवेरे हमने बोर्डिंगको सरासरी तौरसे देखा। ४५ विद्यार्थी बोर्डिंगमें रहते हैं जिनमेंसे १९ म्याट्रिक कक्षामें पढ़नेवाले हैं और शेष दूसरी कक्षाओंमें पढ़ते हैं। बोर्डिंगके सुप्रिंटेंडेंट और धर्मशास्त्रके अध्यापक अजैन हैं। प्रबन्ध अच्छा है। कमसे कम बोर्डिंगोंके अध्यापक तो अवश्य ही जैन होना चाहिये। यहाँ बड़ी त्रुटि है। बोर्डिंगमें विद्यार्थियोंके लिए एक पुस्तकालय है। अनेक विद्यार्थियोंमें पुस्तक पढ़नेकी अभिरुचि मालूम हुई। भोजन करनेके बाद शहरके दो चार स्थान देखे। यहाँ हटी भाईका मन्दिर एक देखने योग्य मन्दिर है। बहुत विशाल है। चारों ओर ५२ मन्दिर बने हुए हैं। अहमदाबाद बहुत बड़ा शहर है। इसको देखनेके लिए कई दिन चाहिये। अनवकाशवशतः इसका निरीक्षण आगे फिर कभीके लिये छोड़कर २ बजेकी गाड़ीसे हम पावागढ़के लिए चल दिये और बड़ोदा होते हुए ता० २६ की रातको कोई ७॥ बजे चाँपानेर जा पहुँचे।

चाँपानेर।

यह स्थान बड़ोदासे लगभग २५ मील दूर है। बड़ोदासे गोधरा रतलाम जानेवाली रेलवे लाइनपर चाँपानेर रोड नामका स्टेशन है। जिस समय चाँपानेर तक रेल नहीं थी, उस समय यात्रियोंके सुभीतेके लिए कम्पनीने यह नाम रक्खा था। पहले यात्री इस स्टेशनसे उतरकर बैलगाड़ी, घोड़ा आदि सवारियोंके द्वारा या पैदल ही चाँपानेर जाते थे; पर अब यह बात नहीं है। चाँपानेरसे कुछ आगे शिवराजपुर नामका एक स्थान है। वहाँ मेंगेनीज धातु निकलती है। एक अँगरेज कम्पनीने उसके निकालनेका ठेका लेकर माल लाने लेजानेके

सुभीतेके लिए चाँपानेर शिवराजपुर लाईट रेल्वे नामकी एक छोटीसी रेलवे लाइन खोल दी है। चाँपानेर सिटी इसी लाईनका एक स्टेशन है। नामके साथ 'सिटी' देखकर पाठक सोचते होंगे कि शायद चाँपानेर कोई बड़ाभारी शहर होगा; परन्तु वह असलमें यह बात नहीं है। यह एक छोटासा गाँव है जिसमें लगभग ९० घरोंकी आबादी है। 'सिटी' केवल इसलिए कहलाता है कि किसी समय यह एक बड़ाभारी शहर था। अर्थात् इस 'सिटी' से केवल इसके प्राचीन वैभवका स्मरण हो आता है और समय क्यासे क्या कर देता है इसका एक दृष्टान्त आँखोंके सामने खड़ा हो जाता है।

चाँपानेर चम्पानगरका अपभ्रंश है। वनराज नामका राजपूत राजा इस नगरका स्थापक समझा जाता है। उसकी सुन्दरी और सुशीला स्त्रीका नाम चम्पावती था। चम्पावतीका नाम अजर अमर करनेके लिए उसने इस नगरको बसाया था और पावागढ़ नामका मजबूत किला बनवाया था। इस विषयमें एक आख्यायिका इस प्रकारकी भी प्रसिद्ध है कि अणहिलुपाटणके संस्थापक वनराज चावड़ाके शासन समयमें चाँपा नामके एक वणिकने इस नगरको बसाया था इसलिए इसका नाम चाँपानेर पड़ा। इसके कोई २०० वर्ष पीछे चंपानगरका स्वामित्व तुवरवंशके राजपूतोंको मिला और फिर उसपर चोहानोंका अधिकार हुआ।

ईस्वी सन् १२९१ के लगभग बादशाह अलाउद्दीन खिलजीने जब मेवाड़के चोहान राजपूतोंको हराया तब चोहान गुजरातमें आगये और पावागढ़के आश्रयमें आकर रहने लगे। उसी समय पर्वतकी तलहटीमें जो चंपानगर वसा हुआ था उसमें वे राजधानी स्थापित करके राज्य करने लगे। चोहानोंने यहाँपर १९० वर्षतक राज्य किया इसके बाद अहमदाबादके मुसलमान बादशाह महमूदबेगने ईस्वी

सन १४८३ में पावागढ़का किला और चाँपानेर अपने अधिकारमें कर लिया इसी समयसे यहाँपर मुसलमानी हुकूमत सुरू हुई; परन्तु आज वह भी नहीं है ! इस समय यह स्थान अँगरेजी अमलदारीमें है। गोधराके कलेक्टर यहांका शासन करते हैं।

चाँपानेर किसी समय बहुत बड़ा शहर था। यहांके मीलोंतक पड़े हुए खण्डहरोंको देखकर इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं रहता। चाँपानेरसे आगे एक हलोल नामका स्टेशन है और एक और कई मीलकी दूरीपर कलोल नामका ग्राम है। कहते हैं कि ये दोनों स्थान एक समय चाँपानेर शहरके ही अन्तर्गत थे। हलोलमें हलवाइयोंका बाजार था और कलोलमें शराब बनानेवाले कलवार रहते थे। इसी तरहसे जहाँ इस समय गोधरानगर वसा हुआ है वहाँ उस समय चाँपानेरका गोवंश चरनेके लिए जाता था।

स्टेशनसे लगभग ढाई तीन फर्लांगकी दूरीपर चाँपानेरकी वस्ती है। बस्तीमें एक अच्छी जैनधर्मशाला और उसके भीतर एक सुन्दर जैनमन्दिर है। यह मंदिर सं० १९४४ का बना हुआ है। इसकी प्रतिष्ठा शोलापुरके सेठ गोतमचन्द नेमिचन्दने करवाई है। धर्मशालामें पावागढ़ तीर्थका प्रवन्ध करनेवाले मुनीम और पुजारी रहते हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा यहाँ यह बात विशेष देखनेमें आई कि प्रत्येक ट्रेनके आनेके समय एक दो आदमी स्टेशनपर उपस्थित रहते हैं। इससे यात्री बहुतसी दिक्कतोंसे बच जाते हैं और आनन्दके साथ धर्मशालामें जाकर टिक जाते हैं। प्रत्येक तीर्थपर इस प्रकारके प्रबन्धकी जरूरत है। हम लोग आरामसे धर्मशालामें आकर ठहर गये और रातभर निश्चिन्ततासे सोये।

[शेष आगे।]

क्या यह सुन्दरता है?

सौन्दर्यपर संसार मोहित है। संसारी जीव सौन्दर्यपर अपना सर्वस्व निछावर कर रहे हैं। सब ही सुन्दर होना चाहते हैं। ऐसा कोई नहीं जिसे सुन्दरता प्यारी न हो; किन्तु यह कोई नहीं जानता कि सुन्दरता क्या चीज है। इस घिनौने शरीरके उज्ज्वल वर्णको, मुहकी गठन विशेषको और चमड़ेकी चमक दमककोही संसारीजीव सुन्दरता कहते हैं और इसहीपर लट्टू हैं। इस सौन्दर्यपर मरमिटनेवाले कवियोंने वे वे अश्लील कवितायें बनाई हैं कि जिनके पढ़ने और सुनने मात्रसे एक विलक्षण प्रकारका मोह उत्पन्न होता है। पुरुष हो या स्त्री, वृद्ध हो या युवा, इन कविताओंकी जिसके कानोंमें भनक भी पड़ जाती है उसपर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह विषयवासनाका दास हो जाता है और अपने अमूल्य जीवनको कौड़ी कामका कर डालता है।

मैं यह पूछता हूँ कि जिस मुँहमें कफ, जिन आँखों और कानोंमें मल, और जिस नाकमें घिनौना रहँट, भरा हुआ है वे किस आधारसे सुन्दर कहे जा सकते हैं? शरीरके भीतर रक्त, मांस, मज्जा, चर्बी आदि अस्पर्श्य पदार्थ भरे हुए हैं—जिनके छूनेसे भी हाथ धोनेकी आवश्यकता होती है, फिर माॡम नहीं कि ये शरीरी उसे सुन्दर बतलाकर क्यों अकड़े फिरते हैं।

जिन पुरुषोंने ऐसे शरीरको सुन्दर मान रक्खा है या मानते हैं, वे बड़े भारी भ्रममें पड़े हुए हैं। पहले तो यह सुन्दर ही नहीं है और यदि मान भी लिया जाय कि इसमें कुछ सुन्दरता है तो सुन्दरताप्रिय लोग बतलावें कि यह शारीरिक सुन्दरता कितने दिन स्थिर रहनेवाली है। यदि किसीकी दो कटोरियोंसी आँखोंमेंसे एक फूट गई, तो वह सुन्दरता कहाँ चली गई? जरासी शारीरिक या मानसिक पीड़ा

के होते ही शरीर कुम्हला जाता है। फिर किसीको यह गुमान भी नहीं होता कि किसी समय यह वृद्ध भी सुन्दर था।

शरीर-सौन्दर्यका जब यह हाल है तब माळूम नहीं कि संसारी जीव इसपर क्यों आसक्त हुए फिरते हैं—पुरुष स्त्री, वृद्ध युवा, धनी निर्धन आदि सब ही क्यों इसे प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं। इसकी वास्तविकतापर क्यों विचार नहीं करते।

एक साधु किसी नगरमें भिक्षा माँगने गया। एक सुन्दर स्त्रीने उसे भक्तिभावसे भोजन दिया। साधु भोजन करना भूल गया और स्त्रीके रूप लावण्यपर मुग्ध हो गया। अब क्या था, ज्यों ही भोजनका वक्त हुआ कि साधु जंगलसे उठकर सीधा उस स्त्रीके द्वारपर आ पहुँचने लगा। दो दिन बीते, चार दिन हुए, जब स्त्रीने साधुका नित्यका आवागमन देखा. तब उसे चिन्ता हुई। वह समझ गई कि साधु महाराज अपने व्रतसे डिग गये हैं और मेरी इस नाशवान् देहपर गीध गये हैं। अन्यथा कोई कारण न था कि नगरके हजारों घर छोड़कर प्रतिदिन मेरे ही द्वारपर अलख जगाते। यदि कुछ दिन और भी यही दशा रही तो मैं बदनाम हो जाऊँगी और साधु महाराज भी तपसे भ्रष्ट हो जावेंगे। स्त्री बहुत ही बुद्धिमती थी—उसने अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करके उनका रहस्य जाना था। बहुत कुछ सोच विचार कर उसने साधु महोदयको शिक्षा देनेका निश्चय किया। उसने एक चतुर हकीमको बुलवाकर अपने शरीरकी फस्त खुलवा दी और उससे कई सेर रक्त निकलवाकर उसे एक मिट्टीके वर्तनमें भरकर रख दिया। यह सब ही जानते हैं कि जब शरीरका रक्त निकल जाता है, तब दुर्बलता आ जाती है, सुन्दरता उड़ जाती है और रंग बदल जाता है। उस स्त्रीकी भी यही दशा हुई। नियत समय साधुजी

आये और स्त्री कृश होनेके कारण गिरती पड़ती भोजन लेकर उपस्थित हुई। साधुजीके प्यासे नेत्र स्त्रीके मुँह पर पड़े। वे देखकर विचार करने लगे कि यह कौन स्त्री है? वह आज कहाँ चली गई? यह तो वह कदापि नहीं है जो प्रतिदिन भोजन लेकर आती थी। इस तरहका सोच विचार करते हुए बहुत देर हो गई और साधुजी भोजन लेना भूल गये। स्त्री बोली—महाराज, आप किस चिन्तामें पड़े हैं? भोजन क्यों नहीं लेते? देखिए तो मैं कबसे भोजन लिये खड़ी हूँ। अब साधु महाराजकी आँखें खुली। आप चौंककर बोले, लाओ भोजन दो; भोजन लेनेमें मुझे क्या उज्र है? पर यह तो बतलाओ कि जो स्त्री मुझे नित्य भोजन देती थी वह आज कहाँ है? स्त्रीने उत्तर दिया, क्या आप मुझे भूल गये? मैं ही तो आपको प्रतिदिन भोजन देती हूँ। साधुने और भी आश्चर्यमें पड़कर कहा नहीं, मैं यह कभी नहीं मान सकता कि तुम वही हो। वह तो बहुत ही सुन्दर थी उसके गालोंपर गुलाब जैसी आभा थी, उसकी आँखें हरिणीके समान मनोहारिणी थीं। तुममें और उसमें आकाश पातालका अन्तर है। स्त्री बोली—अहा! महाराज, मैं समझ गई। आप मुझे नहीं किन्तु मेरे सौन्दर्यको पहचानते हैं और उसीके देखनेके लिए आतुर हो रहे हैं। अच्छा तो आइए! भीतर आइए! मैं आपको वह सौन्दर्य दिखलाती हूं जिसकी प्रशंसाका आप पुल बाँध रहे हैं। ऐसा कह वह भीतर लिबा लेगई और वह रक्तका घड़ा दिखलाकर बोली, लीजिए, देखिए मेरा सौन्दर्य यह रक्खा है। मैंने कल शामको फस्त खुलवाकर अपने शरीरका यह रक्त निकलवा दिया है जिससे आज मैं आपको कुरूप जान पड़ती हूँ। वास्तवमें इस शरीरमें जरा भी सुन्दरता नहीं। यह स्वयं अशुद्ध है, घिनौना है। इसके स्पर्शसे केशर कर्पूर

चन्दन जैसी वस्तुयें भी अपवित्र, दुर्गन्धियुक्त और अस्पर्श्य हो जाती हैं। जो इस जड़ पिण्डको पवित्र सुन्दर और स्थायी समझते हैं वे बड़े भारी भ्रममें हैं। आप तो ज्ञानी हैं, समझदार हैं, धर्मके मर्मज्ञ हैं, आपको यह भ्रम क्यों हुआ ?

ज्ञानवती स्त्रीका यह उपदेश सुनकर साधु महाराज होशमें आ गये—उनकी मोहनिद्रा दूर हो गई। वे हाथ जोड़कर बोले माता, तुम्हे धन्य है, तुमने मुझे बचा लिया, डूबतेसे उबार लिया। तुम्हारे इस उपकारको मैं कदापि न भूलूँगा।

कहाँ हैं वे मानव जो शारीरिक चमक दमकको सुन्दर समझकर अपना अहित कर रहे हैं ? कहाँ हैं वे सौन्दर्यके वशीभूत प्राणी जो इसके पीछे अपने धर्मको मान-मर्यादाको जलाञ्जुली दे रहे हैं और कहाँ हैं वे रसिक जो शरीर सौन्दर्यके नशेमें मन्दोन्मत हुए झूमते फिरते हैं ? उन्हें समझना चाहिए कि यह शारीरिक सौन्दर्य सौन्दर्य नहीं एक प्रकारका भ्रम है। स्वप्नका विकल्प है, आकाशका दुर्ग है, माया-मरीचिका है।

जैन प्रदीपसे।

अनुवादक, **विश्वंभरदास गार्गीय,** मोरेना।

मन्दिर बनवानेमें पाप है या पुण्य ?

यह प्रश्न बहुतोंको अचम्भेमें डालेगा। वे कहेंगे कि यह प्रश्न हो ही नहीं सकता; क्योंकि मन्दिर बनवाना धर्म कार्य है उससे और पापसे क्या सम्बन्ध ? वह अधर्मी है जो ऐसा प्रश्न उठाता है और मन्दिर बनवानेमें पापकी कल्पना करता है। वह नास्तिक है जो मन्दि-

रमें लगे हुए द्रव्यको व्यर्थ गया हुआ समझता है, वह धर्मका शत्रु है जो ऐसी बातोंका झगड़ा उठाता है, वह अभव्य है जो एक महान् धार्मिक कार्यमें भी पापका सम्बन्ध लगाता है और वह अवश्य ही नारकी जीव है जो मन्दिरोंमें लगते हुए लाखों करोड़ों रुपयोंके रोकनेका यत्न करता है।

मैं ऐसे महाशयोंसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग अपने हृदयमें थोड़ीसी विचार शक्तिको जगह दें। यह प्रश्न नया नहीं है—बहुत पुराना है। सच्चे जैनी वे ही हैं जो जैनधर्मके अनेकान्त वादको मानते हैं; किन्तु जो किसी प्रश्नका विचार एकान्तसे—एक नयसे करते हैं वे मिथ्याती हैं। केवल जैनधर्म ही सच्चा धर्म है। इसका कारण यह है कि वह प्रत्येक विषयको अनेकान्त नयसे देखता है। जो एक एक नयसे किसी वस्तुको देखते हैं वे अन्धोंके समान हैं। किसी वस्तुका यथार्थ ज्ञान उसके एक दो धर्मोंके विचारसे नहीं हो सकता।

जो कार्य एक दृष्टिसे एक समय पापका कारण होता है वही दूसरी दृष्टिसे दूसरे समय पुण्यका कारण हो सकता है। राजा वज्रकर्णने अपनी अँगूठीमें प्रतिमा बनवाई थी इस अभिप्रायसे कि वे जिनेन्द्र देवके सिवा किसीको नमस्कार न करते थे—उस प्रतिमाको ही नमस्कार कर लिया करते थे। उनका यह कार्य प्रशंसनीय कहा गया है; परन्तु हममेंसे कोई ऐसा करे तो वह अविनयका भागी होगा। इसी प्रकार अकलङ्कदेव जिन प्रतिविम्बपर धागा डालकर लाँघ गये थे और उन्होंने यह प्रगट न होने दिया था कि हम जैनधर्मावलम्बी हैं। वह वक्त ही ऐसा था—उन्हें बौद्धधर्मका अध्ययन करना था। और भी देखिए कि जो लोग निरन्तर आरम्भ करते रहते हैं—और संसा-

रमें लवलीन हैं उनके लिए दर्शन पूजन करनेका उपदेश है जिससे कि वे धर्ममार्गमें लग जावें; परन्तु मुनियोंके लिए यह उपदेश नहीं है।

किसीको ज्वर आता है तो उसके उतारनेके लिए दवा दी जाती है; परन्तु कोई कोई रोग ऐसे भी हैं कि उनमें ज्वर लानेकी अथवा उसको बनाये रखनेकी चेष्टा की जाती है। यदि ऐसा न किया जाय तो रोगी व्याधिसे मर जाय। अर्थात् जो ज्वर मृत्युका कारण है वही मृत्युसे बचानेवाला भी है। इसी प्रकार गृहस्थके लिए जो कार्य पुण्यका कारण है अवस्था विशेषमें वही पापका कारण हो सकता है। अभिप्राय यह है कि पुण्य या पापका होना समय, अवसर, पात्र, मन्तव्य आदिपर निर्भर है और इसलिए इस संसारमें जितने कार्य किये जाते हैं उन सबके सम्बन्धमें यह प्रश्न किया जा सकता है कि यह पुण्यकार्य है या पापकार्य। इसके सिवा यह मन्दिर बनवानेका प्रश्न तो हमारे जैनशास्त्रोंमें भी मिलता है।

स्वर्गीय पण्डित सदासुखजीने रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी टीकामें यह प्रश्न उठाया है कि मन्दिर बनवानेमें हिंसा होती है, तब यह पुण्यकार्य कैसे हो सकता है? और फिर इसका समाधान इस प्रकार किया है:—

"जो गृहस्थ आरम्भादिकका त्यागी है। अर जाका परिणाम वीतराग रूप होय धनके उपार्जनादिकसे विरक्त हो गया ताकों तो मन्दिरादिक बनवाना जोग नहीं। अर जाका राग धन परिग्रहसूं आरंभसूं घट्या नहीं अपने भोगनिके अर्थि हवेली महल चित्रशालादिक बनावे है अपने व्यवहार करनेके स्थान बनावे है विवाहादिकमें बहुत धन लगावे हैं तिनकों धर्मात्मा शिक्षा करे हैं कि इन पापके आरंभनिकों त्यागि जिनमन्दिर बनवानेका आरंभ करो जिसके प्रभावतैं तुम्हारा अशुभराग घटि जाय और तुम्हारे परिणाम वीतरागताके सन्मुख हो जाय अनेक जीव स्वाध्याय करि शास्त्र श्रवण करि वीतरागका दर्शन भावना शील संयम

ध्यानकी वृद्धि करना इत्यादि उत्तम कार्य करि धर्मकी वृद्धि करें जिनमंदिरका निमित्तसूं अनेक जीव पापाचार छोड़ि जिनमंदिर आवे तदि जिनधर्मके शास्त्र श्रवण करें तदि निज पर द्रव्यनिका भेद विज्ञान उपजे तदि मिथ्यादेव मिथ्यागुरु मिथ्याधर्मकी उपासना छांड़ि सर्वज्ञ वीतरागके धर्ममें प्रवर्तन करें जाते जिनमंदिर कराया सो बहुत जीवनिका उपकार किया बहुरि आपका हू बड़ा उपकार है वह सुलटे मार्गमें लग जाय है वह विचारे है मैं जिनमंदिर-वीतरागका मंदिर कराया है अब जो मैं अन्यायमार्ग चलूँगा तो जगतमें निंद्य हो जाऊंगा मैं झूट कैसे बोलूं व्यसननिमें कैसें प्रवर्तूं।"

अब विचारशील पुरुष इस विषयपर अच्छी तरहसे विचार करें। पण्डितजीने जिन मन्द्रिरका बनवाना इस अभिप्रायसे पुण्यकार्य बतलाया है कि इससे अन्य मतियोंकी जिनधर्मकी ओर रुचि होती है और वे मन्दिरोंमें आकर अपने मिथ्या विचारोंको त्यागते तथा जिनधर्मका अंगीकार करते हैं। इसके सिवा मन्दिर बनवानेवाला सांसारिक कार्योंसे विरक्त हो धर्मके कार्योंमें लगता है तथा पापके कामोंसे डरने लगता है।

अब जरा इस समयके मन्दिर बनवानवालोंकी अवस्था देखकर कहिए कि मंदिर बनवानेमें पुण्य होता है या पाप? मैने स्वयं देखा है और पाठक महाशयोंमेंसे भी बहुतोंने देखा होगा कि मन्दिर बनवानेसे अगर इन लोगोंके आचारविचारोंमें कुछ परिवर्तन होता है तो प्रायः यही होता है कि वे पहलेसे अधिक बेईमान और पापी हो जाते हैं। उनको मुकद्दमे लड़नेका खूब शौक हो जाता है और कचहरियोंमें वे अपने और अपने पड़ोसियोंके भी धनधर्मको बरबाद करने लग जाते हैं। अब उनके मन्दिरोंसे औरोंको जो लाभ होता है उसपर भी एक नजर डाल लीजिए। उनके और पहलेके मन्दिरोंके अधिष्ठाताओंके बीच खूब ही झगड़े होते हैं। एक कहता है अमुक विवाहका रुपया हमारे मन्दिरमें जमा होना चाहिए, दूसरा कहता है नहीं, तुम्हारे

मन्दिरका उक्त विवाहसे कोई सम्बन्ध नहीं–हमारेही मन्दिरका हक है। एक मन्दिरोंके रुपयोंका हिसाब नहीं देता है, दूसरा उन्हें बिलकुल हड़प जाना चाहता है और तीसरा उन रुपयोंके वसूल करनेके लिए अदालतकी शरणमें जाता है। एक मन्दिरके प्रवन्धकर्त्ता एकको दस्सा कहकर, दूसरेको नीच कहकर, और तीसरेको बिनैकया बतलाकर मन्दिरमें नहीं आने देते हैं—उनका पूजा प्रक्षाल बन्दकर देते हैं और वहींपर पंचोंको एकत्र करके गाली गलोंज करते हैं। मन्दिरोंके पीछे तड़बन्दी या फूटका होना तो एक बहुत ही मामूली बात है। जहाँ जितने अधिक मन्दिर होंगे वहाँ उतनी ही अधिक फूट होगी।

इससे मालूम होता है कि मन्दिर बनवाना पुण्यका कार्य भी है और पापका कार्य भी है। पुण्यका कार्य तो उस समय है जब कि मन्दिर ऐसे स्थानपर बनवाया जावे जहाँपर पहलेसे कोई अच्छा मन्दिर न हो और वह हरएक मनुष्यके दर्शन पूजनके लिए बनवाया जावे। इसके सिवा बनवानेवालेके भाव धर्मपूर्ण होना चाहिए—वह केवल नाम या कीर्तिके लिए ही न बनवावे। उसकी यह उत्कट इच्छा होनी चाहिए कि मेरे इस धर्मस्थानसे अगणित जीवोंको धर्मलाभ हो। उनका मिथ्यात्त्व छूटे, वे सत्यके अनुयायी बनें, और वीतरागधर्मकी सारे संसारमें प्रभावना हो। यही मन्दिर बनवाना उस अवस्थामें अतिशय पापका कार्य है जब कि वह मान बड़ाईके लिए बनवाया जाय और ऐसे स्थानपर बनवाया जाय जहाँ कि पहलेहीसे कई मन्दिर हों।

लखनऊ, सहारणपुर, कलकत्ते जैसे शहरोंमें मन्दिर बनवाना तब पुण्यका कार्य हो सकता है जब कि वह अच्छे मौकेकी जगहपर सड़-कके किनारे, बहुत फैलावके साथ प्राङ्गण छोड़कर बनवाया जाय जिससे कि वहाँ सब प्रकारके लोग आ कर दर्शन कर सकें, धर्मोप-देश सुन सकें और शास्त्रस्वाध्याय कर सकें।

या मन्दिर बनवाना पुण्यका कार्य तब हो सकता है जब कि वह उन अन्यदेशोंमें बनवाया जाय जहाँ कि थोड़े बहुत जैनी भाई जा बसे हों और उनके धर्मसाधनका कोई स्थान न हो। अवधमें यदि सुलतानपुरमें मन्दिर बनवाया जाय तो पुण्यका कार्य होगा। यहाँपर दो घर जैनियोंके हैं और वे चारों और अन्य धर्मावलम्बियोंसे घिरे हुए हैं—उनका ध्यान जैनधर्मकी और नहीं है। इस नगरमें और आसपासके ग्रामोंमें बहुतसे अग्रवाल ऐसे सुने जाते हैं जो पहले जैनी थे परन्तु अब वैष्णव हैं। यदि यहाँपर मन्दिर हो तो वे सब जैनी हो जावें। यहाँपर उनके लिए धर्मपर स्थिति रहनेका या सत्य धर्म जाननेका कोई साधन नहीं है।

मुझे आशा है कि अब हमारे जैनी धनिक चेत जावेंगे और अपने धनको सत्यधर्मके कार्यमें लगावेंगे न कि उन स्थानोंमें मन्दिर बनवानेमें जहाँ कि कोई आवश्यकता नहीं है। जिनेन्द्रदेवसे प्रार्थना है कि हमको धर्ममार्गपर चलनेकी रुचि उत्पन्न हो।

चेतनदास बी. ए.।

लिपिसंबंधी एक आवश्यक प्रस्ताव।

संस्कृत व्याकरणका एक नियम है कि अपदांतके अनुस्वारसे आगे कोई वर्गीय अक्षर आजाय तो अनुस्वारका नित्य परसवर्ण हो जाता है अर्थात् अनुस्वार वर्गोंके पंचम अक्षर ङ् ञ् ण् न् म् के रूपमें बदल जाता है। जैसे शङ्का, पङ्क, पञ्च, कण्ठ, सङ्ग इत्यादि। यद्यपि यह नियम संस्कृतके प्रायः सब ही व्याकरणोंमें है तथापि खोज करनेसे मालूम हुआ है कि बहुत पुराने समयसे इस नियमकी पालनामें प्रमाद होता आ रहा है। वर्तमान मुद्रणकलाके प्रचार होनेके पहलेके

जितने लिखित ग्रंथ आप देखेंगे उनमें शायद ही कोई ऐसा मिलेगा जिसमें पंचमाक्षरके दर्शन हों नहीं तो सबहीमें अनुस्वारका साम्राज्य मिलेगा। अब तक मैंने संस्कृतके लगभग आठ सौ वर्ष पहले तकके लिखे हुए कई हज़ार हस्तलिखित ग्रंथोंका निरीक्षण किया होगा और भाषाके भी कई सौ ग्रंथ मैंने देखे होंगे; परन्तु मुझे तो अब तक एक भी ग्रंथ ऐसा नहीं मिला जिसमें पंचमाक्षरके नियमका कहीं पालन किया गया हो। कई ग्रंथ ऐसे भी दृष्टिगोचर हुए जिनके लेखक अच्छे नामी विद्वान् वैयाकरण थे; परन्तु उन्होंने भी सर्वत्र अनुस्वार ही लिखा हैं। यह बात केवल नागरी या देवनागरी लिपिकी ही नहीं है, कर्णाटकी, गुजराती और मराठी आदि लिपियोंमें जो संस्कृतके ग्रंथ मिलते हैं, उनमें भी पंचमाक्षरके नियमकी अवहेलना देखी जाती है। ऐसी अवस्थामें यह बात विचारणीय है कि इस नियमकी अवज्ञाका कारण क्या है?

१ पंचमाक्षरोंके लिखनेमें कठिनाई पड़ती है—यह नियम लिपिसारल्यको नष्ट करनेवाला है।

२ इनसे लिपिकी सुंदरता नष्ट हो जाती है और स्थान भी अधिक विरल रहता है।

३ साधारण पढ़े लिखे लोगोंको पढ़ने बाँचनेमे कठिनाई पड़ती है।

४ जो उच्चारण पंचमाक्षर लिखनेमें होता है वही अनुस्वार लिखनेमें भी होता है—कोई भेद नहीं होता।

इन्हीं सब कारणोंसे मालूम होता है कि प्राचीन कालके विद्वानोंने लिखनेके सुभीते खयालसे अनुस्वार लिखनेकी पद्धति जारी कर दी थी। पंचमाक्षरके नियमका सूत्र केवल व्याकरण ग्रंथके भीतर चरितार्थ होता था।

प्रसिद्ध श्वेताम्बर साधु श्रीयुक्त इंद्रविजयजी महोदयके मुखसे सुना गया है कि "प्रसिद्ध ग्रंथकर्त्ता श्री हेमचंद्राचार्यके समयमें समस्त देशके विद्वानोंकी एक सभा हुई थी और उसमें सर्व सम्मतिसे यह नियम बनाया गया था कि पंचम अक्षरोंके स्थानमें अनुस्वार ही लिखा जाय। क्योंकि अनुस्वार लिखनेसे कोई उच्चारण भेद नहीं होता।" इससे मालूम होता है कि प्राचीनकालके विद्वानोंने इस विषयमें अच्छी तरहसे विचार किया था ऐसा नहीं है कि अनुस्वार लिखनेकी पद्धति योंही लेखकोंके प्रमादसे चल पड़ी हो।

वर्तमान समय साहित्यकी उन्नतिका है। लिखने पढ़नेका प्रचार अब पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक होता जाता है। सभ्य संसारमें इस बातपर विचार हो रहा है कि सबसे अधिक सुगम और संपूर्ण लिपि कौनसी है। विद्वान् लोग अपनी अपनी लिपियोंके दोष दूर करनेमें लगे हुए हैं और सरल तथा शीघ्र लिखी जानेवाली लिपिको बहुत अधिक पसंद करते हैं। ऐसे समयमें मैं उन लोगोंके समक्ष—जो कि नागरीको राष्ट्र लिपि बनाना चाहते हैं—यह प्रस्ताव लकर उपस्थित हुआ हूँ। मेरी समझमें नागरी लिपिमेंसे पंचम अक्षर लिखनेकी पद्धतिको हटा देना चाहिए—इससे नागरी लिपिके प्रचारमें सुभीता होगा।

जिस तरहसे क ख प फ से पूर्वका विसर्ग विकल्पसे जिंहामूलीय व उपध्मानीय हो जाता हैं; परन्तु लिखनेके कष्टके कारण प्रायः सब ही लेखक गजकुंभाकृति और वज्राकृति जिंहामूलीय उपध्मानीय अक्षरोंको न लिखकर विसर्ग ही लिखा करते हैं और व्याकरणके अनुसार आकारके आगेके विसर्गको स्वर व घोषवत् अक्षरोंके आनेसे लोप अथवा य कर देनेका नियम है; परन्तु हिन्दीके लेखक इस नियमकी

पालना नहीं करते हैं तथा इसी प्रकारके और भी अनेक नियमोंका उल्लंघन किया जाता है, उसी प्रकारसे यदि पंचम अक्षरोंके स्थानमें अनुस्वार लिखनेकी ही पुरानी पद्धति फिरसे जारी कर दी जाय तो मेरी समझमें कोई हानि नहीं होगी।

छापेका प्रचार होनेके पहले तक अनुस्वार लिखनेकी ही पद्धति प्रचलित थी। छापेका प्रचार हो जानेपर भी बहुत समय तक विद्वान् अनुस्वार ही लिखते थे; परन्तु अब ज्यों ज्यों साहित्यका प्रचार बढ़ा है त्यों त्यों पंचमाक्षरोंके लिखनेकी पद्धतिने जोर पकड़ा है। इस समयके नामी लेखक तो इसके अनन्य भक्त हैं। उनकी देखादेखी दूसरे भी इसके अनुयायी होते जाते हैं; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इसके हानिलाभ सोचकर ही इसका प्रचार किया गया है। हिंदी और संस्कृत दो जुदा जुदा भाषायें हैं। इसलिए यह कोई जरूरत नहीं है कि संस्कृतके व्याकरणके नियमोंके अनुसारही हिंदी चलाई जाय। हिंदीके लिए संस्कृत–व्याकरणकी अपेक्षा प्राकृतका व्याकरण अधिक लागू है। क्योंकि हिंदीका जितना संबंध प्राकृतसे है उतना संस्कृतसे नहीं। हिंदीकी साक्षात् जननी प्राकृत है न कि संस्कृत। और प्राकृतके किसी भी व्याकरणमें अनुस्वारके पंचमाक्षर हो जानेका नियम नहीं है, तब यह कहाँका न्याय है कि सीधी सादी हिंदीके सिर पर अतिशय क्लिष्ट संस्कृतका नियम लादा जाय? हिंदीका जितना पुराना गद्य-पद्य साहित्य है उसमें सर्वत्र ही अनुस्वारका आदर है—पंचमाक्षरोंकी उसमें जरा भी पूछ नहीं, फिर वर्तमान हिंदीने ही क्या अपराध किया है जो उसके प्रचारके मार्गमें यह रोड़ा अटकाया जा रहा है।

अनुस्वार लिखनेकी पद्धति ऐसी है कि उससे पढ़ने लिखनेमें सुभीता होगा, लिपि सुंदर दिखेगी, स्थान कम घिरेगा अर्थात् एक

पृष्ठ यदि पंचमाक्षर युक्त छपाया जायगा तो उसमें जितना मजमून आयगा, उससे दो तीन लाइन अधिक मजमून अनुस्वारयुक्त आ जायगा। इसके सिवा साधारण पढ़े लिखे लोगोंमें साहित्यका प्रचार अधिक होगा। इन सब लोंगोंको देखकर कोई कारण नहीं माळूम होता जो यह प्रस्ताव स्वीकृत न किया जाय।

आशा है कि नागरीप्रचारिणी सभायें तथा साहित्यसभायें मेरे इस प्रस्तावपर विचार करेंगी और समाचारपत्रोंके सम्पादक इस विषयमें अपनी अपनी सम्मतियाँ प्रगट करनेकी कृपा दिखलावेंगे। आगामी दिसम्बरमें होनेवाले साहित्य सम्मेलनके अवसरपर भी यदि इस विषयकी–चर्चा उठाई जायगी तो बहुत कुछ लाभ होनेकी संभावना है।

जो महाशय मेरे पास इस प्रस्तावके अनुकूल या प्रातिकूल युक्तियाँ भेजनेका कष्ट उठाएँगे उनका मैं बहुत ही अनुग्रहीत हाऊगा।

—**पन्नालाल बाकलीवाल.**

मैंदागिनी जैन मन्दिर, काशी।

बादशाह औरंगजेब और उसकी शिक्षा।

इतिहासके पाठक मुगल सम्राट् औरंगजेबसे अच्छी तरहसे परिचित हैं। यह बादशाह जितना धर्मान्ध था। यद्यपि धर्मान्धताके कारण और हिन्दुओंसे अतिशय द्वेष रखनेके कारण यह अपनी विद्वत्ताका सदुपयोग न कर सका और इसीसे मुग़लोंकी बढ़ी चढ़ी बादशाहत की जड़को कमजोर करनेका कारण यही हुआ तो इसमें सन्देह नहीं कि उसका पाण्डित्य एक बड़े भारी राज्यके स्वामीके सर्वथा योग्य था।

इस लेखमें हम उसके शिक्षा-सम्बन्धी ऊँचे और अच्छे विचारोंको प्रगट करना चाहते हैं। हमको आशा है कि ये विचार हमारे समाजके लिए बहुत ही शिक्षाप्रद होंगे। क्योंकि इस समय हमारे यहाँ जो शिक्षा दी जाती है वह कुछ कुछ उसी ढँगकी है जैसी कि औरंग-जेबको उसके विद्यागुरुने दी थी।

जिस समय औरंगजेबका विद्यागुरु मुल्लासालह अपने शिष्यको बादशाह सुनकर उसके पास इस आशासे आया कि मुझे दरबारमें कोई ऊँचा पद मिलेगा। उस समय बादशाह औरंगजेबने उसे नीचे लिखा हुआ उत्तर दिया था:—

" मुल्लाजी, आप मुझसे क्या चाहते हैं? आपकी क्या इच्छा है? क्या आप समझते हैं कि मुझे आपको एक बहुत बड़ा अमीर बना देना चाहिये? अच्छा, तो मैं इस बातका विचार करता हूँ कि आप किसी ऐसे पदके योग्य हैं या नहीं। मैं इस बातको मानता हूँ कि यदि आप मुझे कोई अच्छी और उपयोगी शिक्षा देते तो आप अवश्य किसी ऊँचे पदको पाने योग्य समझे जाते; परन्तु आप यह तो फर-माइए कि आपने मुझे सिखलाया क्या? आपने मुझे यह सिखलाया कि सारा यूरोप एक छोटेसे द्वीपके बराबर है और उसमें पोर्तुगालका बादशाह सबसे अधिक शक्तिशाली है, फिर हालेण्डका और उसके बाद इंग्लेण्डका फ्रान्स, एन्दलूसिया इत्यादि देशोंके बादशाहोंके विष-यमें आपने कहा कि वे हिन्दुस्तानके छोटे छोटे राजाओंसे बढ़कर नहीं हैं; यहाँके बादशाहोंकी प्रभुताके सामने और देशोंके बादशाहोंकी प्रभुता तुच्छ है। हुमायूँ, अकबर, जहांगीर और शाहजहाँ ही सबसे बड़े सौख्यशाली, सबसे बड़े बहादुर और सबसे बड़े शक्तिशाली थे और फारस, उजबक, काशगर, चीन, तातार, पीगू

और शामके नरेश—बादशाहे—हिन्दका नाम सुनते ही काँपते थे। महान् भूगोलवेत्ता! अद्भुत इतिहासज्ञ! मेरे शिक्षकको क्या यह उचित न था कि वह पृथ्वीकी सारी बादशाहतोंका सही सही हाल कहता, उनकी सेना—सामग्री और सम्पत्तिका वर्णन करता; उनकी युद्धप्रणाली, सामाजिक अवस्था, धार्मिक विचार और राज्यपद्धतिका विवरण बतलाता? क्या उसका यह धर्म न था कि वह यथा नियम इतिहास सिखलाकर प्रत्येक बादशाहतकी उत्पत्ति, उन्नति और अवनतिका कारण मुझको बतलाता; और आकस्मिक घटनाओं तथा राज्यशासन-सम्बन्धी भूलोंका वर्णन करके यह दिखलाता कि उनके कारण कौन कौनसे परिवर्तन हुए, क्या क्या हानिलाभ उठाना पड़े और देशपर उनका कैसा प्रभाव पड़ा। मनुष्यजातिके इतिहाससे मुझे अच्छी तरह अभिज्ञ करा देना तो दूर रहा आपने मुझे मेरे उन पूर्वजोंके नाम तक ठीक ठीक न बतलाये जिन्होंने इस विस्तृत बादशाहतकी नीव डाली। उनके जीवन—चरितके विषयमें, उनके बादशाह होनेकी कारणीभूत घटनाओंके विषयमें और उनके विजयी होनेके मूल साधनोंके विषयमें आपने मुझे बिलकुल ही अँधेरेमें रक्खा। अपने आसपासके देशोंकी भाषाओंका जानना बादशाहके लिए बहुत ही आवश्यक बात है; परन्तु आपने मुझे अरबीकी शिक्षा दी। ऐसा करनेसे शायद आपने यह समझा कि आपने मेरा कोई बहुत बड़ा उपकार किया। इसी लिए आपने मेरा बहुतसा समय इस भाषाके सीखनेमें व्यर्थ व्यतीत कराया। आपने यह न समझा कि बिना दश बारह वर्षके परिश्रमके कोई भी ऐसी क्लिष्ट भाषाकी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकता। आपने यह न जाना कि कौनसे उपयोगी विषयोंमें एक बादशाह—जादहकी शिक्षा होनी चाहिये। आपने बस यह समझा कि उसके लिए व्याकरणकी

उतनी ही योग्यता दरकार है जितनी कि एक बहुत बड़े वैयाकरणको होनी चाहिए। मेरे लड़कपनका अमूल्य समय इस प्रकार आपने शुष्क, अनुपयोगी और कठिन शब्दोंके रटानेमें व्यर्थ खोया।

क्या आपको यह न माद्धम था कि लड़कपनमें दी हुई शिक्षा कभी नहीं भूलती? उस समय स्मरणशक्ति प्रबल रहती है इसलिए लड़कपनमें दिये हुए उपदेश चित्तमें जम जाते हैं। इस समय यदि अच्छी शिक्षा दी जाय तो मनुष्य बड़े बड़े काम करनेमें समर्थ हो सकता है और उसके विचार परिमार्जित होकर ऊँचे दर्जेको पहुँच जा सकते हैं। क्या विज्ञान और धर्मशास्त्रकी शिक्षा केवल अरबीमें ही दी जा सकती है? क्या ईश्वरका भजनपूजन और विद्याध्ययन हमारी मातृभाषामें नहीं हो सकता? आपने मेरे पिता शाहजहाँसे यह कहा था कि आप मुझे तत्त्वविद्या और दर्शनशास्त्र पढ़ाते हैं। यह सच है। मुझे बखूबी याद है कि बहुत वर्षों तक मूर्खतासे भरी हुई और निरर्थक बातोंपर व्याख्यान दे देकर आप मेरा मगज खाली करते रहे। आपने मुझे ऐसी बातें सिखलाई कि जिनका कुछ काम नहीं पड़ता और जिनसे मनुष्यको जरा भी सन्तोष नहीं होता। आपने ऐसी ऐसी कल्पनाओंको मेरे मगजमें भरनेकी कोशिश की, जो बिलकुल निस्सार थीं, जो बहुत परिश्रमपूर्वक याद करनेपर भी शीघ्र ही भूल जाती थीं और जिनके कारण मनुष्यकी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। हाँ, आपने अपनी वह प्यारी तर्कविद्या मुझे सिखलाई जिससे मेरे जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ गया; और जब मैं आपसे अलग हुआ तब सिवा कुछ अर्थहीन, क्लिष्ट और द्व्यर्थक शब्दोंके आपकी गूढ़ विद्याकी और कोई बात मुझे स्मरण न रही। आपसे मैंने वे पारिभाषिक शब्द सीखे जो दर्शनशास्त्रको जाननेका सा भाव बतलानेवालोंने अपने अभिमान

और अज्ञानको ढकनेके लिए गढ़े हैं। ये दर्शनशास्त्री आप ही समान लोगोंपर यह प्रगट करते हैं कि वे अपना प्रचण्ड ज्ञान दूसरोंको देकर उनको भी सज्ञान कर सकते हैं और उनके पेचीदा शब्दसमूहमें कोई विलक्षण ज्ञान भरा हुआ है। यदि आपने मुझे वह तर्कना-प्रणाली सिखलाई होती जिसमें कार्य-कारण-भाव प्रधान माना जाता है और जिसमें चित्तको तब तक सन्तोष नहीं होता जब तक किसी वस्तुका सच्चा ज्ञान नहीं हो जाता। यदि आपने मुझे ऐसी शिक्षा दी होती जिससे आत्माकी उन्नति होती है और जिसके कारण विपत्ति आनेपर मनुष्य स्थिर रह सकता है। यदि आपने मुझे मनुष्यके स्वाभाविक धर्म सिखलाये होते, सृष्टिकी रचना समझाई होती और उनकी उत्पत्ति और नाश होनेका वर्णन किया होता, तो मैं आपका उतना ही कृतज्ञ होता जितना सिकन्दर अरस्तूका हुआ था। कहिए, क्या राजा और प्रजाके धर्म सिखलाना भी आपको उचित न था? यह एक ऐसा विषय है कि जिसका जानना बादशाहके लिए बहुत ही आवश्यक है। क्या कभी स्वप्नमें भी आपने मुझे युद्धविद्या सिखलाई या व्यूह-रचना सिखलाई या चढ़ाई करना सिखलाया? सौभाग्यवश इन विषयोंमें मैंने आपसे अधिक विज्ञ पुरुषोंसे सलाह ली। निकलिए, सीधे अपने गांवको चले जाइए! आजसे कभी किसीसे यह न कहना कि आप कौन हैं!"

जिस समय मुल्लाजीपर वाग्बाणोंकी यह वर्षा हुई, हकीमुलमल्लक दानिशमंदखाँ वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने यह व्याख्यान यूरोपके प्रसिद्ध यात्री वर्नियरको सुनाया और वर्नियरने उसे यथातथ्य अपनी पर्यटन पुस्तकमें प्रकाशित किया।—'मेवाड़के इतिहाससे'।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

१ इन्दौरकी होनहार संस्था।

इन्दौरके प्रसिद्ध धनिक सेठ तिलोकचन्द कल्याणमलजी दो लाख रुपयेकी रकमसे एक उपयोगी संस्था खोलनेवाले हैं, इसका समाचार हमारे पाठक गत अंकमें पढ़ चुके हैं। संस्था कौनसी खोली जावे, इस विषयमें अभी विचार हो रहा है। जैनमित्रके सम्पादक महाशयने तथा और भी कई सज्जनोंने सलाह दी है कि इस रकमसे इन्दौरमें एक **हाईस्कूल** खोला जावे और उसमें जैन अजैन सब ही विद्यार्थियोंको शिक्षा दी जावे। आर्यसमाज जैसे छोटेसे समाजमें इस समय कोई ६–७ हाईस्कूल और एक अच्छा कॉलेज है, हमारे श्वेताम्बरी भाइयोंका भी बम्बईमें एक हाईस्कूल हैं; परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायमें एक भी हाईस्कूल नहीं है; यदि इन्दौरमें यह हाईस्कूल खुल जावे तो दिगम्बर-सम्प्रदायकी एक बड़ी भारी कमी मिट जावे। हमारी समझमें यह हाईस्कूल बिलकुल नये ढँगसे खोला जाना चाहिए–अर्थात् सरकारी हाईस्कूलोंके समान केवल अँगरेजी शिक्षाके लिए ही यह न होना चाहिए; किन्तु अँगरेजी हाईस्कूलोंमें जितने विषय सिखलाये जाते हैं इसमें उन सब विषयोंकी शिक्षा हिन्दी भाषाके द्वारा दी जानी चाहिए। यह बात अब सब ही विद्वान् स्वीकार करते हैं कि एक विदेशी भाषाके द्वारा जो शिक्षा दी जाती है, वह बिलकुल अस्पष्ट और बहुश्रम साध्य होती है। अँगरेजी भाषाका ज्ञान हो जाने पर भी उससे विद्यार्थियोंकी मानसिक उन्नति नहीं होती–विचार शक्तियोंका विकाश नहीं होता और शारीरिक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। भाषा मात्रका ज्ञान हो जाना कोई ज्ञान नहीं–भावज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। जो विषय अँगरेजी भाषाके द्वारा सिखलाये जाते हैं वे ही यदि मातृभाषाके द्वारा सिखलाये जावें

तो थोड़े ही परिश्रमसे उनका अच्छा ज्ञान हो जाता है और समयकी भी बहुत बचत होती है। पर वर्तमान परिस्थितिके अनुसार हमे अँगरेजीका जानना भी जरूर है—उसके विना इस समय हमारी गुजर नहीं, इसलिए प्रस्तावित हाईस्कूलमें सेकेंड लेंग्वेज या दूसरी भाषाके तौरपर अँगरेजी भी सिखलाई जानी चाहिए और म्याट्रिक कक्षा तक वह इतनी पढ़ा देनी चाहिए कि यदि कोई विद्यार्थी आगे कालेजमें पढ़ना चाहे तो उसको कोई रुकावट न हो। इस समय देशमें ऐसी कई प्राइवेट संस्थाये चल रही हैं जिन्हें इस प्रकारकी शिक्षा पद्धतिसे सफलता हुई है। इस स्कूलमें संस्कृत और धार्मिक शिक्षाका भी प्रबन्ध होना चाहिए परन्तु वह वर्तमान पाठशालाओंकी पद्धतिपर न होना चाहिए। अर्थात् इसमें तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरंड, द्रव्यसंग्रह आदि संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थ रटानेकी ज़रूरत नहीं किन्तु पहले इन ग्रन्थोंका ज्ञान मातृभाषाके ही द्वारा कराया जाय और आगेकी कक्षाओंमें संस्कृतका ज्ञान नवीन सुगम और सहज पद्धतिसे कराया जाय जिससे थोड़े ही परिश्रमसे विद्यार्थियोंका म्याट्रिक तक इतना ज्ञान हो जाय कि वे सहल संस्कृतको अच्छी तरह समझने लगें। धार्मिक शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थीके लिए आवश्यक रक्खी जाय और वह सम्पूर्ण कक्षाओंमें क्रमबद्ध दी जाय। औद्योगिक शिक्षाका खास प्रबन्ध होना चाहिये। कारण जब तक कोई जीविकोपयोगी शिक्षा न दी जायगी तब तक इन्दौर जैसे स्थानमें पढ़नेवाले ही न मिलेंगे। इसमें उद्योग सम्बन्धी शिक्षा कमसे कम इतनी अवश्य मिल जानी चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण कर चुकनेपर कमसे कम ३०–४० रुपया मासिककी कोई स्वतंत्र जीविका कर सके। चित्रकारी, लुहार बढ़ई दर्जीका काम, टाइप राइटिंग, शार्ट हैंड राइटिंग, मोजे बुनना बुनयाइन आदि

बुननेका काम, बही खातेका तथा मुनीमगीरीका काम आदि काम ऐसे हैं कि इनकी शिक्षा थोड़े खर्चमें और थोड़े ही समयमें दी जा सकती है। हाईस्कूलके साथ एक छात्राश्रमकी भी जरूरत है जिसमें रहकर विद्यार्थी अपने चरित्रको उन्नत कर सकें और पारस्पारिक सहानुभूति, स्वार्थत्याग, समाजसेवा आदि गुणोंकी उपलब्धि कर सकें। स्कूलके साथ एक अच्छा पुस्तकालय रहे जिसमें संस्कृत, अँगरेजी, हिन्दी आदिके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका संग्रह रहे और उनसे विद्यार्थी अपने ज्ञानको विशाल बना सकें।

इस स्कूलके लिए जो ७५०) मासिक सहायता स्वीकार हुई है वह यद्यपि बहुत कम है; परन्तु हमने सुना है कि सेठजी आगे और भी एक अच्छी रकम इस पुण्यकार्यमें देनेवाले हैं इसलिये इस विषयमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। हम आशा करते हैं कि यह विद्यालय बहुत शीघ्र खुलेगा और थोड़े ही समयमें जैनियोंका यह एक आदर्शविद्यालय बन जायगा तथा इसको देखकर जैनसमाज और भी ऐसे अनेक विद्यालय स्थापित करनेके लिए उत्साहित होगा।

---

२ हमारे देशकी अँगरेजी–शिक्षा–प्रणाली।

अँगरेजी-शिक्षा-प्रणालीके विषयमें कविवर श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने एक निबन्धमें कहा है:—“ हमारी शिक्षाप्रणालीमें कलका अंश अधिक है–वह कल या मशीनके समान चल रही है। जिस भाषाके द्वारा हमारी शिक्षासम्पन्न होती है, उस भाषामें प्रवेश करनेमें हमारा बहुत समय चला जाता है। तब तक केवल द्वारके समीप खड़े होकर हथोड़ा पीटते और ताला-खोलनेके तत्त्वका अभ्यास करते करते ही हम मर-मिटते हैं। हमारा मन तेरह चौदह वर्षकी उमरसे ही

ज्ञानका आलोक और भावका रस ग्रहण करनेके लिए प्रस्फुटित होने लगता है, उसी समय ही यदि रातदिन उसके ऊपर विदेशी भाषाका व्याकरण और रटन्त-विद्याका शिलावृष्टि-वर्षण हुआ करे, तो वह पुष्ट कैसे हो सकता है! प्रायः तीस वर्षकी अवस्था तक निरन्तरकी मारा-मारीके बाद अँगरेजी भाषापर हमारा स्वाधीन अधिकार होता है किन्तु तब तक हमारे मनको कौनसी जीवन-प्रद खुराक मिली है! हम क्या सोच सके हैं, हमारा हृदय कौनसा रस आकर्षण कर सका है; हमारी कल्पनावृत्तिने सृष्टिकार्य-चर्चाके लिए कौनसे उपकरणसंग्रह किये हैं? जो कुछ हम ग्रहण करते हैं—सीखते हैं, उसे यदि साथ साथमें हम प्रकाशित किया करें तो भी धारणा कुछ पक्की हुआ करे। परन्तु जिस तरहसे विदेशी भाषाका ग्रहण करना कठिन है उसी तरहसे प्रकाशित करना भी कठिन है। अतएव रचना करनेकी—प्रकाश करनेकी चर्चा न रहनेसे हम जो सीखते हैं उसपर हमारा अधिकार दृढ़ नहीं होने पाता। 'की' मुखस्थ करके सीखना और लिखना, इस तरह दोनों काम चला देने पड़ते हैं। जिस उमरमें मन बहुत कुछ पक जाता है उस उमरका लाभ पूरा लाभ नहीं कहला सकता। जिस कच्ची उमरमें मन बिना—जाने अपने खाद्यको खींच सकता है और ज्ञान तथा भावको अपने रक्तमांसके साथ अच्छी तरहसे मिलाकर अपनेको सजीव और सबल बनाता है, वह उमर हमारी व्यर्थ चली जाती है।........इस प्रकारकी शिक्षाप्रणालीसे हमारा मन अपरिणत रह जाता है और हमारी बुद्धिका पूरा विकाश नहीं होने पाता, यह बात हमें स्वीकार करनी पड़ेगी। हमारा पाण्डित्य बहुत ही थोड़ा आगे बढ़ता है, हमारी उद्भावनाशक्ति अन्त तक नहीं पहुँचती और हमारी धारणाशक्ति बलिष्ठ नहीं होती।" इससे पाठक समझ सकते हैं कि

विदेशी भाषाके स्थानमें मातृभाषाकी प्रतिष्ठा करनेकी कितनी अधिक आवश्यकता है और विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा मिलनेसे हमारी कितनी हानि हो रही है।

---

३ डाक्टर हरमन जैकोबी और जैनसमाज।

जर्मनीके प्रसिद्ध संस्कृत और प्राकृतके विद्वान् डाक्टर हरमन जैकोबी कलकत्ता यूनीवर्सिटीमें व्याख्यान देनेके लिए शीघ्र ही इस देशमें आनेवाले हैं। इस समय आपकी अवस्था लगभग ६० वर्षकी है। आपके जीवनका बहुत बड़ा भाग जैनसाहित्यके अध्ययन और परिशीलनमें व्यतीत हुआ है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनेक सूत्रग्रन्थोंका आपने अँगरेजी भाषामें अनुवाद किया है। यूरोपमें जैनसाहित्यकी चर्चा करनेवालोंमें आप सबसे प्रधान हैं। आपके द्वारा जैनसाहित्यका अध्ययन करनेकी ओर यूरोपके बीसों विद्वानोंका चित्त आकर्षित हो चुका है। आपने जैनधर्मके सम्बन्धमें अबतक जो व्याख्यान दिये हैं तथा निबन्ध लिखे हैं वे बहुत ही महत्त्वके हैं। अब प्रश्न यह है कि आपके भारत आगमनसे जैनी क्या लाभ उठा सकते हैं। हमारी समझमें सबसे पहले तो बम्बईमें समग्र जैनसमाजकी ओरसे आपको एक अभिनन्दनपत्र देना चाहिए और फिर प्रार्थना करना चाहिए आप जैनसाहित्यके विषयमें यहाँपर दश पाँच व्याख्यान देनेकी कृपा करें और जर्मनीमें पहुँचकर आप एक जैनसाहित्यका विस्तृत इतिहास लिख देवें। इस काममें जो कुछ खर्च पड़े उसके लिए चन्दाकर लेना चाहिए। दिगम्बर सम्प्रदायकी ओरसे आपके पास एक खास डेप्यूटेशन जाना चाहिए जो आपसे दिगम्बर सम्प्रदायके प्रधान प्रधान ग्रन्थोंका अँगरेजी भाषामें अनुवाद करने या करा देनेकी प्रार्थना करें

और दिगम्बरसाहित्यका महत्त्व आपको समझावें। जहाँ तक हमारा खयाल है आप दिगम्बरसाहित्यसे उतने परिचित नहीं हैं जितने कि श्वेताम्बरसाहित्यसे हैं। आपको ईडर, नागौर, जयपुर, आरा आदिके सरस्वतीभंडार और दूसरी और भी विद्यासंस्थाओंका निरीक्षण कराना चाहिए। हम आशा करते हैं कि जैकोबी महाशयका भारतागमन जैनसमाज और जैनधर्मके लिए लाभकारी होगा।

---

४ समालोचनाकी जरूरत।

जैनग्रन्थोंके प्रकाशित होनेका कार्य दिनपर दिन बढ़ता जाता है और नये नये प्रकाशक होते जाते हैं, यह बहुत प्रसन्नताकी बात है। क्यों कि जितना ही–जैनसाहित्य प्रकाशित होगा उतना ही उसका अधिक प्रचार होगा और जैनज्ञानकी वृद्धि होगी। परन्तु जैन ग्रन्थोंके प्रकाशित होनेकी जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता इस बातकी है कि वे योग्य व्यक्तियोंके द्वारा सम्पादित और संशोधित होकर प्रकाशित हों। यह काम अयोग्य व्यक्तियोंके हाथमें जानेसे न केवल जैनसाहित्यकी अप्रभावना ही होती है किन्तु साथही अच्छे ग्रन्थोंके प्रचारमें बाधा पड़ती है। एक बड़ीभारी हानि और भी होती है। वह यह कि अभी हमारे समाजके बहुतसे लोग जैनग्रन्थोंके छपानेके विरोधी हैं। वे निरन्तर इसी ताकमें लगे रहते हैं कि छापेके दोष बतलावें और इसकी ओरसे लोगोंको भड़कावें। ऐसी दशामें जैनग्रन्थ ऐसी सावधानीसे छपाये जावें, उनका संशोधन और सम्पादन ऐसी योग्यतासे किया जावे कि उन्हें देखकर छापेके विरोधी भी प्रसन्न हो जावें और उन्हें विश्वास हो जावे कि हस्तलिखित ग्रन्थोंकी अपेक्षा मुद्रित ग्रन्थ बहुत शुद्ध और सुगम होते हैं। हम ऐसे अनेक

भाइयोंको जानते हैं जो पहले छापेके कट्टर विरोधी थे; परन्तु कई एक अच्छे मुद्रित ग्रन्थोंको देखकर छापेके अनुयायी हो गये। जो ग्रन्थ अच्छी तरहसे शुद्ध होकर प्रकाशित हों उन्हींका प्रचार हो—अशुद्ध और बुरी तरहसे छपे हुए ग्रन्थोंका प्रचार न हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि सब प्रकारके छपे हुए जैनग्रन्थोंकी निष्पक्ष भावसे विस्तृत समालोचनायें प्रकाशित की जावें। जैनियोंके समाचारपत्र अभी तक इस विषयमें प्रायः उदासीन हैं। एक तो उनके सम्पादक समालोचना करते ही नहीं हैं और यदि करते भी हैं तो ऊपरा ऊपरी देखकर और दो चार बातें लिखकर छुट्टी पा लेते हैं। इसका फल यह हुआ है कि अनधिकारी लोग स्वच्छन्दतासे चाहे जैसी अशुद्धियोंसे भरे हुए बुरे टाइप और बुरे कागजोंपर ग्रन्थ छपाने लगे हैं और भोलेभाइयोंमें उनकी बिक्री करके खूब रुपया कमाते हैं। इस तरहके कई नये टीकाकार और अनुवादक भी बन गये हैं जिन्होंने अपनी रचनामें खूबही अनर्थ किये हैं। पत्र सम्पादकोंका कर्तव्य है कि वे इस अनर्थको रोकें और अशुद्ध तथा असंस्कृत ग्रन्थोंकी खूब ही कड़ी समालोचना करें जिससे शुद्ध—परिमार्जित साहित्यका प्रचार हो और अशुद्ध साहित्यके प्रकाशित करनेवाले सावधान हो जावें।

---

५ म्लेच्छदेशोंमें जैनधर्म।

जैन धर्म जीवमात्रका हितकारी धर्म है। प्रत्येक जीव इसके धारण करनेका अधिकारी है। प्रत्येक जाति और प्रत्येक देशके लोग इसे धारण कर सकते हैं। जिस तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि उच्चवर्णके लोग जैनी हो सकते हैं उसी तरहसे शूद्र, म्लेच्छ, शक, यवन आदि नीच माने हुए लोग भी जैनधर्मके उपासक हो सकते हैं। एक समय

ऐसा था जब विदेशोंके साथ हमारा बहुत ही कम सम्बन्ध था—विदेशोंमें जाने आनेके साधन बहुत कम थे; परन्तु अब विदेश हमारे लिए बहुत ही समीप हो गये हैं। पहले एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तके जानेमें जितनी कठिनाई थी उतनी अब यूरोप और अमेरिका जैसे सात समुद्र पारके देशोंके जानेमें भी नहीं है। इस समय हमारे देशके अनेक धर्मोंका प्रचार अमेरिका जैसे सुदूरदेशोंमें होने लगा है। ऐसी अवस्थामें जैनियोंके हृदयमें इस प्रकारकी आकांक्षाका उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है कि हमारे धर्मका प्रचार विदेशों और विदेश वासियोंमें उत्पन्न हो, परन्तु बहुतसे पुराने खयालके लोगोंको यह बात पसन्द नहीं—वे इसका घोर विरोध करते हैं और अपने विरोधमें शास्त्रोंकी दुहाई देते हैं। सरनौ-निवासी लाला रघुनाथदासजीने कुछ दिन पहले जैन गजटमें इस विषयमें एक लेख प्रकाशित किया था। उस लेखका उत्तर देवबन्दनिवासी बाबू जुगलकिशोरजीने जैनमित्रके गत २२ वें अंकमें प्रकाशित कराया है। यह लेख बहुत ही महत्त्वका है। लेखक महाशयने आदिपुराणके अनेक श्लोक प्रमाण स्वरूप देकर यह बात अच्छी तरहसे सिद्ध कर दी है कि इस पंचमकालमें जैनधर्म आर्यदेशको छोड़कर प्रान्त देशोंमें फैलेगा और म्लेच्छदेशके निवासी जैन धर्मको धारण करेंगे। आदिपुराणके कर्त्ताकी यह भविष्यद्वाणी है और वर्त्तमानकालकी प्रगतिको देखकर विश्वास होता है कि वह सत्य है और शीघ्र ही वह समय आनेवाला है जब यूरोप अमेरिकादि प्रान्त देशों या म्लेच्छ देशोंमें जैनधर्मकी ध्वजा फहरावेगी। उक्त लेखको पढ़कर हमको आशा है लाला रघुनाथदासजी अपने विचारोंको बदल देवेंगे और इस तरहके प्रगति–रोधक लेख लिखना छोड़कर प्रगतिशील लेख लिखनेमें दत्तचित्त होंगे।

पुस्तक-समालोचना।

विनोद। लेखक, कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी और पं० पन्नालाल शर्मा। प्रकाशक, राजतपूत प्रेस—आगरा। पृष्ठ संख्या २२४। मूल्य आठ आना। आगरेके स्वदेशबान्धवमें समय समय पर आख्यायिकायें प्रकाशित हुआ करती हैं। अब तक जितनी आख्यायिकायें प्रकाशित हुई हैं उनमेंसे यह आठ चुनी हुई आख्यायिकोंका संग्रह है। प्रायः सब ही आख्यायिकायें शिक्षाप्रद हैं और सरल भाषामें लिखी गई हैं युवा, बालक, बालिकायें सब ही इससे लाभ उठा सकते हैं। नाम इसका विनोद रक्खा गया है परन्तु कहानियोंमें विनोदका अंश बहुत ही कम है। ये केवल नीतिशिक्षा और सद्विचारोंके मुख्य उद्देश्यसे लिखी गई हैं. विनोद या मनोरंजन करनेके लिए नहीं। हमारी समझमें जिन आख्यायिकायोंसे गुरुकी भाँति उपदेश नहीं मिलता किन्तु उनमें चित्र किये हुए प्रकृत चरित्रोंसे अनायास ही लोग शिक्षाग्रहण कर लेते हैं उनका असर अच्छा पड़ता है इनके कथानक भी उत्कण्ठा या आकांक्षा बढ़ाने वाले नहीं।

मेवाड़का इतिहास। लेखक—कुँवर हनुमन्तसिंह और ठाकुर पूर्ण सिंह वर्मा। प्रकाशक,—राजपूत प्रेस आगरा। मूल्य १।) पृष्ठ संख्या ३११। राजपूतोंका इतिहास मुर्दोंमें भी जान डाल देनेवाला है और उसमें भी चित्तौड़ तथा उदयपुरके राणाओंका इतिहास तो संसारमें अपनी समता नहीं रखता। किसी भी देशके इतिहासमें ऐसी वीरता और अभिमानके योग्य चरित्र नहीं मिलते जैसे इन वीरोंके इतिहासमें पाये जाते हैं। लेखकोंने इस ग्रन्थको लिखकर हिन्दी साहित्यका बड़ा भारी उपकार किया है। इसमें राणावंशके आदि पुरुषसे लेकर अबतकके महाराणाओंका श्रृंखलाबद्ध इतिहास दिया है। सारा ग्रन्थ वीरता, साहस, देश-

भक्ति, आत्मगौरव और स्वार्थत्यागके उदाहरणोंसे भरा हुआ है। प्रत्येक भारत वासीको इस ग्रन्थका स्वाध्याय करके अपने देशके आदर्शवीरों का परिचय प्राप्त करना चाहिए। ग्रन्थकी भाषा सरल, सुगम और प्रायःशुद्ध है। इसमें एक जगह लिखा है कि महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी राणा हम्मीरसिंहके भाई सुजनसिंहके वंशमें हुए हैं; परन्तु यह ठीक नहीं। स्वर्गीय जस्टिस रानडेने अपने एक निबन्धमें इसबातका खण्डन किया है और इसे वंश विशेषसे मनुष्यकी प्रतिष्ठा समझनेवाले लोगोंकी निर्मूल कल्पना बतलाया है। ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें ऐसी बातें बहुत छान बीनके साथ लिखी जानी चाहिए।

जैन पंचायतीके नियम–प्रकाशक, शान्तिनाथ दिगम्बर जैन पंचायत–झालरापाटण शहर। जातिसम्बन्धी नियम है, जिन्हें देखनेकी जरूरत हो प्रकाशकसे मँगा लेवें। नियम विचार पूर्वक बनाये गये हैं, अन्य पंचायतियोंके अनुकरण करने योग्य हैं।

प्रभा–प्रकाशक और सम्पादक, श्रीयुक्त कालूराम–गांगराड़े बी. ए. एल. एल बी, खण्डवा। हिन्दीमें अभी तक उच्चश्रेणीकी मासिक पत्रिका केवल दो हैं एक सरस्वती और दूसरी मर्यादा। अब खण्डवेसे इस तीसरी पत्रिकाका जन्म हुआ है। इसका आदर्श बहुत ऊँचा है। यह महात्मा स्टेडके 'रिव्यू आफ रिव्यूज' की पद्धतिपर चलने वाली है। इसके अब तक तीन अंक प्रकाशित हुए हैं। प्रत्येक अङ्कमें रायल अठपेजी साइजके लगभग ६० पृष्ठ और चार पाँच चित्र रहते हैं। छपाई कागज वगैरह सुन्दर है। तीसरा अंक इस समय हमारे सामने है। इसमें कई अच्छे अच्छे लेख और कवितायें हैं, 'स्वामि-भक्त मन्त्री' शीर्षक कविता सुन्दर और हृदयद्रावक है। 'मध्यप्रदे-शमें हिन्दी' तथ्यपूर्ण लेख है। महात्मा स्टेडका चरित बहुत ही शि-

क्षाप्रद और पाण्डित्यपूर्ण है। 'ग्रीष्मवनधरा' बहुत ही क्लिष्ट और संस्कृत बहुल कविता है, तिसपर भी विशेषता रहित है। 'माधवी–माधव' जैसे समालोचक लेखोंकी हिन्दीमें बहुत जरूरत है। ऐसे लेखोंके बिना अच्छे ग्रन्थोंका प्रचार और कूड़ा-कर्कटकी रुकावट नहीं हो सकती। हम आशा करते हैं कि प्रभा अपनी विशेषता स्थिर रखनेके लिए इस प्रकारके लेख खास तौरसे प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेगी 'विविध विचार, बहुत विचारपूर्वक लिखे गये हैं; यदि वे कुछ विस्तारके साथ लिखे जावें तो और अच्छा हो। प्रत्येक हिन्दी हितैषीको इस नवोदित प्रभाका आव्हान करना चाहिए। प्रभा समयपर नहीं निकलती, यह त्रुटि जितनी जल्दी दूर हो जाय उतना अच्छा।

——o——

विविध–समाचार।

विद्यादान—कलकत्तेके डा० रासविहारी घोषने कलकत्ता यूनीवर्सिटीको वैज्ञानिक शिक्षाके लिए १० लाख रुपयेका दान किया है! भारतवासियोंकी दानशीलताका प्रबाह अब विद्याकी ओर बढ़ा है—ये अच्छे लक्षण हैं।

उपवाससे मृत्यु—सूरतके पास काल्याबाड़ी नामक ग्रामकी एक श्वेताम्बरयुवती पर्युषणके लगातार आठ उपवास करनेके कारण मर गई! उपवास कषाय और विषयोंके क्षीण करनेके लिए हैं न कि आत्मघातकर डालनेके लिए। स्त्रियोंमें उपवास करनेका रोग बहुत बढ़ रहा है।

शाखा सभा नहीं रही—महासभाकी कार्रवाइयोंसे असन्तुष्ट होकर दिगम्बर जैनप्रान्तिकसभा बम्बईने उसके महत्त्वका जूआँ अपने

कन्धेसे उतारकर अलग कर दिया। अब वह महासभाकी शाखा सभा नहीं रही।

पाँच लाखका दान—मुजफ्फरपुरकी एक जमीनदारिण अपनी मृत्युके समय अपनी पाँच लाख रुपयाकी जायदाद—जिसकी वार्षिक आमदनी २०००० रुपयाकी है—गरीब कायस्थ विद्यार्थियोंकी सहायताके लिए दे गई है!

आत्माका अस्तित्त्व—सुप्रसिद्ध शास्त्रज्ञ सर ऑलिवर लॉजने अभी हाल ही अपने एक व्याख्यानमें कहा कि—"मानसिक और आध्यात्मिक शास्त्रोंकी छानबीन करके ३० वर्षके अनुभवसे मेरा यह विश्वास हो गया है कि मृत्युसे शरीरका नाश हो जानेपर भी जीवात्मा नष्ट नहीं होता; बल्कि उसकी इस देहसम्बन्धी वासना और स्मृति भी नष्ट न होकर कायम रहती है। इसलिये विद्वान् शोधकोंको ऐसी बुद्धि न रखवा चाहिए कि जो चीज माऌम न हो या दिखती न हो उसका अस्तित्व ही नहीं है और दृश्यके समान अदृश्य और ज्ञातके समान अज्ञात सृष्टिमें भी अपनी छानवीन जारी रखना चाहिये।"

बोर्डिंग हाउस—दिगम्बर जैनसम्प्रदायके बोर्डिंगोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती जाती है। इस समय बम्बई, कोल्हापुर, बेलगांव, सांगली, हुबली, बेंगलोर, मैसोर, अहमदाबाद, रतलाम, जबलपुर, वर्धा, आकोला, मेरठ, बिजनौर, लाहौर, इलाहाबाद, आदिमें कोई १७–१८ बोर्डिंग हाउस हैं।

तीसहजारका दान—बम्बईके श्राविकाश्रमको सेठ चुन्नीलाल हेमचन्द जरीवालेकी पुत्री श्रीमती कीकीबाई अपनी मृत्युके समय तीस हजार रुपयेका दान दे गई हैं। इस रकमसे आश्रम चिरस्थायी हो जायगा।

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

९ वाँ भाग] आश्विन, श्री०वी०नि०स०२४३९। [१२ वाँ अंक।

तीर्थ-पर्यटन ।

(६)

धर्मशालामें दो चौक हैं और उन दोनोंमें दो कुए हैं। दूसरे चौकका काम अधूरा पड़ा है। सामने कई छोटी छोटी दूकाने हैं जिनमें आटा सामान ईंधन वगैरह मिल जाता है। यात्रियोंको साधारणतः किसी बातकी दिक्कत नहीं होती। सबेरे प्रातःक्रियासे निश्चिन्त होकर और क्षुधानिवृत्ति करके हम लोग चाँपानेरके खण्डहरोंको देखनेके लिए निकल पड़े।

जिस तरफको दृष्टि डालिए उधर ही अस्तव्यस्त पड़े हुए बड़े बड़े महलोंके ढेर, कूप, वापिका, दरगाहें, मसाजिद, मन्दिर आदि दिखलाई देते हैं। सर्वत्र ही निर्जनता और शून्यताका साम्राज्य है। स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़े हुए जंगली झाड़ोंसे और घासपातसे मार्ग बन्द हो रहे हैं, भयंकरता बढ़ रही है और प्रत्येक स्थलपर मूर्तिमान् उदासीनता दिखलाई देती है।

पुरानी इमारतोंमें यहाँकी एक मसजिद दर्शनीय है। यह इस समय गाँवसे बाहर है; परन्तु पहले शायद नगर कोटके भीतर थी। इसे लोग जुम्मा मसजिदके नामसे पुकारते हैं। इसके विषयमें एक दन्तकथा प्रचलित है कि पहले इस स्थलपर राजा पताई रावलके युवराजका महल था; परन्तु महमूदबेगने चाँपानेर और पावागढ़के जीतनेके लिए घेरा डाला, उस समय उसने प्रतिज्ञा की कि चाँपानेरको सर किये बिना मैं यहाँसे न टलूँगा और इसी प्रतिज्ञाको पालनेके लिए उसने उक्त महलको तोड़कर वर्तमान जुम्मा मसजिदका बनाना शुरू कर दिया। मसजिदकी रचनापरसे माळूम होता है कि वह उक्त घेरेके समय पूर्ण न हो सकी होगी किन्तु चाँपानेरके अन्तिम राजपूत राजाका पतन होनेके बाद पूरी हुई होगी। संसारकी लीला बड़ी विचित्र है। आज जिस तरह चाँपानेरके स्थापकोंके सारे विभव-चिह्न धूलमें लोट रहे हैं, उसी प्रकार उन पर विजय प्राप्त करनेवाले गर्वित धर्मोन्मत्त मुसलमानोंके धर्मस्थानकी भी यह दशा है कि वहाँ-पर कोई एक चिराग जलानेवाला भी नहीं है! यद्यपि मसजिद जीर्णा-वस्थामें है; परन्तु लार्ड कर्जनकी उस आज्ञाकी कृपासे—जिससे कि पुरानी इमारतोंकी रक्षा होने लगी है—कई जगह इसकी मरम्मत करा दी गई है। मसजिद बहुत सुन्दर और विशाल है और काम भी इसका बहुत मजबूत है। यही कारण है जो आज लगभग ५०० वर्ष बीतनेपर भी वह आकाशमें ऊँचा मस्तक किये हुए खड़ी है।

मसजिदके पास ही उत्तरकी ओर एक बड़ी भारी बावड़ी है जिसमें नीचे तक जानेके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसका आकार चौकोर है। लोग इसे 'पातर तालाब' या 'कसबण तालाब' कहते हैं। चाँपा-नेरके सकरखान नामके एक धनिक पठानने लगभग ३०० वर्ष पहले

इसे बनवाया था। इस समय यह बिलकुल ऊजड़ स्थानमें पड़ी हुई है। गर्मीके दिनोंमें इसके पानीमें बदबू आने लगती है। इसके पास ही सकरखानकी कब्र भी बनी हुई है।

चाँपानेरके चारों ओर जो कोट था उसका कुछ हिस्सा अब भी कहीं कहीं मौजूद है। गाँवमें प्रवेश करनेका जो द्वार है वह एक किलेके समान माळूम होता है। बाजूके बुर्ज अभी तक खण्डित अवस्थामें खड़े हैं और दर्वाजेकी कमान गिरनेकी तैयारीमें है। दर्वाजेके ऊपर अर्बी भाषाके लेख खुद रहे हैं। माळूम नहीं उनमें क्या लिखा है। इस दर्वाजेके फिसलकर पड़े हुए पत्थरोंको देखनेसे ऐसा माळूम होता है कि यह कोट और ये दर्वाजे बहुत करके महमूद-बेगके ही बनवाये हुए हैं। क्योंकि इसमें हिन्दूमन्दिरोंके चित्रित पत्थ-रोंका उपयोग किया गया है और वे अस्तव्यस्त रूपसे जहाँ तहाँ लगा दिये गये हैं। ऐसा खयाल किया जाता है कि फतह करनेके बाद महमूदबेगने यहीं पर अपने रहनेका निश्चय किया था।

इन स्थानोंके सिवा और भी बहुतसे छोटे मोटे मन्दिर तथा मका-नोंके खण्डहर देखनेमें आये; परन्तु उनके विषयमें कोई विशेष उल्लेख योग्य बात नहीं पाई गई।

लौटकर हमने देखा कि धर्मशालाके दर्वाजेपर एक पत्थरकी ऊँची देहरीसी बनी हुई है। पूछनेसे मालूम हुआ कि इसे 'परबड़ी' कहते हैं। इस पर बहुतसा अन्न डाला जाता है जिसे कबूतर चुगते हैं! इसके बनवानेमें जो पत्थर लगा है वह तो सरकारसे मुफ्त मिला है, तिसपर भी १७००) और लग गये हैं! जैनियोंकी इस जीवदयाको देखकर बड़ी दया आई। दानके विषयमें हम लोग कुछ ऐसे विचार-

हीन हो गये हैं कि सिवा दान करनेके हम यह जानते ही नहीं कि दान किसे कहते हैं, वह क्यों किया जाता है और दानयोग्य पात्र कान है। प्रकृतिने कबूतर जैसे स्वाधीन और स्वच्छन्दविहारी जीवोंके पालन पोषणका प्रबन्ध स्वयं कर रक्खा है–ये जीव धर्मात्माओंके आश्रित नहीं हैं। यदि जैनी लोग ये परबड़ियाँ उठवा दें अथवा लोग कबूतर चुगाना छोड़ दें तो कबूतरोंके लिए भोजनका दुष्काल पड़नेकी संभावना नहीं। कोई जमाना होगा, जब लोगोंको इसी प्रकारके दान करके दानकी हवस मिटाना पड़ती होगी अर्थात् उस समय मनुष्यसमाजमें भूखे प्यासे और परावलम्बी लोगोंकी इतनी कमी होगी कि दातारोंको भोजनदान करनेके लिए कोई मिलता ही न होगा और तब वे इसी तरह पशुपक्षियोंको अन्न चुगाकर अपनी हवस मिटाते होंगे। परन्तु यह समय तो ऐसा नहीं है। इस समय तो इस देश लाखों करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें कभी भर-पेट भोजन नहीं मिलता। दूसरोंमें क्यों धनगर्वित जैन जातिमें ही आज हजारों अनाथ ऐसे हैं जिनके पेटके लिए अन्नकी जरूरत है; परन्तु उन्हें कोई पूछता ही नहीं–उनकी कोई खबर लेनेवाला भी नहीं; पर यहाँ कबूतरोंके लिए हजारों रुपये खर्च किये जाते हैं! कबूतरोंको चुगानेमें पुण्य होगा; परन्तु गरीब मनुष्योंको अन्न देनेमें भी तो पुण्य होता है–यह भी तो पापका काम नहीं है। न मालूम हम लोग अपने दानद्रव्यका सदुपयोग करना कब सीखेंगे। इस प्रकारकी 'परबड़ी' और भी कई तीर्थोंमें बनी हैं।

कारणवश हमको यहाँ पर ता० ३० तक रहना था, इस लिए हम २७ और २८ को बन्दना करनेके लिए न जा सके। यहाँ हमें कुछ थोड़ीसी पुस्तकें और समाचारपत्र पढ़नेके लिए मिल गये, इस

लिए हमारा समय अच्छी तरह व्यतीत हो गया। इस तीर्थका प्रबन्ध बड़ोदाके सेठ लालचन्द कहानदासजीके हाथमें है। आपने एक प्रबन्ध-कारिणी कमेटी स्थापित कर रक्खी है। उसीकी सम्मतिसे आप यहाँकी देख रेख रखते हैं। आपके कारण तीर्थका कार्य व्यवस्थित पद्धतिसे चलता है। सेठजी विद्याप्रेमी हैं, इस लिए आपने इस वर्षसे यहाँपर एक विद्यादान फण्ड खोल दिया है। प्रत्येक यात्री इसमें कुछ न कुछ देता ही है। इस तरह इसमें जो कुछ वार्षिक आमदनी होगी वह किसी विद्या-संस्थाको दे दी जाया करेगी। प्रत्येक तीर्थ पर इसका प्रबन्ध होना चाहिए। यहाँ एक मुनीम, एक पुजारी और एक नौकर रहता है। मुनीम और पुजारीमें कुछ अनबन रहती है। यह जानकर हमको खेद हुआ कि मुनीमजीका भाषाज्ञान और धार्मिकज्ञान इतना स्वल्प है कि वे यात्रियोंको न अच्छी तरहसे शास्त्र पढ़कर सुना सकते हैं और न कुछ बोध ही करा सकते हैं। हाँ, इन्तजाम वगैरहके काममें विशेष-करके राज्यसम्बन्धी काम काजोंमें आप कुछ दक्ष मालूम होते हैं; परन्तु रिपोर्टके देखनेसे मालूम हुआ कि आप सरकारी नौकरों चाक-रोंकी खुशामदमें अनाप शनाप रुपया खर्च किया करते हैं। मेरी सम-झमें एक धर्मभण्डारका रुपया ऐसे कामोंमें खर्च न होना चाहिए।

पावागढ़ और पावागिरि।

ता० २९ के सबेरे कोई ४॥ बजे हम लोग पर्वतकी बन्दनाके लिए चल दिये। चाँपानेरसे पावागढ़को पश्चिम द्वारँ होकर जाना पड़ता है। बस्तीसे थोड़ी ही दूर चलनेपर पर्वतका चढ़ाव शुरू होता है। यह स्थान बिलकुल झाड़ीमय है। आसपासका प्रदेश भी घोर अर-ण्यसे व्याप्त हो रहा है जिसमें अकसर जंगली पशु रहा करते हैं। निर्वाणकाण्डमें इस पर्वतका नाम पावागिरि लिखा है। यहाँसे रामच-

न्द्रके दो पुत्रोंने, और लाड नरेन्द्र आदि पाँच करोड़ मुनियोंने मोक्ष प्राप्त किया है। परन्तु यह माळूम नहीं होता कि इसका नाम पावागिरि कैसे हुआ। इस पर्वतके कटिदेशमें एक किला है उसका नाम है पावागढ़। पावकगढ़, पवनगढ़ और पावनगढ़ भी उसके नामान्तर हैं। कई लोगोंका अनुमान है कि इस किलेपर बिना किसी प्रतिबन्धके खूब जोरों-शोरसे पवन आता है इसी लिए इसका नाम पवनगढ़ या पावागढ़ रक्खा गया होगा। परन्तु इस अनुमानमें कुछ तथ्य नहीं। मालूम होता है कि पावागिरि इस पर्वतका बहुत पुराना नाम है और उसी नामके सम्बन्धसे किलेका नाम पावागढ़ रख दिया गया है।

पर्वत बहुत ऊँचा है। बहुत दूर दूरसे इसके दर्शन होते हैं। बड़ोदानगरकी ऊँची इमारतोंपरसे देखनेसे भी इस पर्वतके स्पष्ट दर्शन हो सकते हैं। पवनदुर्गकी सबसे ऊँची चोटी सपाट जमीनसे लगभग ३५०० फीट ऊँची है।

गढ़पर चढ़नेका मार्ग इस समय एक ही माळूम होता है; पर पूर्वकालमें—जब यह किला आबाद होगा तब—अनेक मार्ग रहे होंगे जिनपरसे पैदल, घुड़सवार, तोपें, तथा तरह तरहकी सवारियाँ आ जा सकती होंगीं। इस समय तो केवल एक पगडंडी मात्र है और सो भी ऐसी है कि एक एक पैर सँभालके रखना पड़ता है। मार्गमें सागोन, सीताफल, करोंदा, आदि वृक्षोंकी झाड़ियाँ लग रही हैं। पहले कुछ दूर तक तो सीधा और सरल मार्ग है; परन्तु आगे बहुत ही बिकट माळूम होता है। पूर्वदिशाको छोड़कर शेष सब दिशाओंमें पर्वतके सीधे खड़े भाग दिखलाई देते हैं। यहाँसे लेकर कालिकाके शिखर तक लगभग दो कोशका चढ़ाव है। पर्वतके पूर्वभागमें एक

अच्छा मजबूत तट और बुर्ज है। किलेकी ईशान दिशासे नैऋत्य दिशा तक चौड़ाई लगभग दो मील और लम्बाई दो मीलसे कुछ अधिक होगी।

आगे कुछ दूर चढ़नेपर अटक नामक दर्वाजेके भीतर जाना पड़ता है। इस दर्वाजेका आगेका भाग तो गिरनेकी तैयारीमें है; परन्तु पीछेका भाग मजबूत है। अटकके दर्वाजेके नीचेके तटमें जगह जगह बड़े बड़े बुर्ज हैं। भीतरकी तरफ कोई ५०० कदमकी दूरीपर हिना नामका तालाब और हिना नामका महल है। आगे एकके बाद एक ऐसे तीन दर्वाजे मिलते हैं। अखीरका दर्वाजा बहुत मजबूत है। इसके आगे तीसरे तटका आरंभ होता है। यह तट बहुत ही मजबूत है और द्वारके बुर्ज भी बहुत मजबूत हैं। तीसरे तटके अन्तर्भागमें जाते हुए कोई १५० कदम चलनेपर दाहिनी ओरको पर्वतका सीधा भाग आ जाता है। यहाँ एक समाधि बनी हुई है। कहते हैं कि इसमें एक राजपूत राजकन्या जीती गाड़ दी गई थी! इसीके पास एक सात खनका महल है जो पताई रावलके किसी धनिक नागरिकका बनवाया हुआ बतलाया जाता है।

आगे माची हवेली मिलती है। यहाँसे चढ़ाई आधी रह जाती है। यहाँ लोग विश्राम करते हैं। यहाँ रातको ओढ़ने बिछानेके लिए कपड़े भी मिल सकते हैं। भैंसोंका दूध भी यहाँ मिल जाता है पर और कोई खाने पीनेकी चीज नहीं मिलती। पासमें ‘तेलिया’ नामका तालाब है। इसका पानी अच्छा है।

माची हवेलीसे आगे दो रास्ते हैं। एक महाकालीके मंदिरको जाता है और दूसरा भद्रकालीके मन्दिरको। भद्रकाली जानेका मार्ग बहुत बिकट है। जरा पैर फिसला कि बस कल्याण हुआ ही समझिए।

इस मार्गमें मोतीतालाब और जौहरी तालाब मिलते हैं। जौहरी ताला-बके बनानेवालेके पास कहते हैं अटूट धन था। उसने तालाबके बँधवानेमें ईंटोंकी जगह जवाहरात जड़वाये थे ! आगे कुछ दूरीपर पताई रावलके राजमहलके अंशस्वरूप तीन कोठरियाँ हैं। कहते हैं इनमें दो बड़े बड़े भोंहिरे हैं। एकका मुँह चाँपानेर स्टेशनके पास तक है और दूसरेका गोधरा तक। इस स्थानका उपयोग संकटके समय राजाओंके छुपकर निकल जानेके लिए होता था।

पताई रावलके राज्यके पतनका कारण इस प्रकार बतलाया जाता है:—चाँपानेरका यह अन्तिम हिन्दूराजा १४७९ में राज्य करता था। यह बड़ा प्रसिद्ध राजा था। सारे गुजरातमें इसकी ख्याति थी। इतिहाससे इस बातका पता लगता है। महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकालिका ये तीन देवियाँ चाँपानेरकी अधिष्ठात्री समझी जाती थीं। गुजरातमें नवरात्रिका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। चाँपा-नेर तो इस उत्सवमें तन्मय हो जाता था। सारा शहर दीपालोकसे प्रकाशित किया जाता था। स्त्रियाँ जगह जगह 'गरवा' गाकर अपना आनन्द प्रगट करती थीं। पताई रावलकी राणीको भी 'गरवा' गानेका शौक था। उनके कारण एक बड़ाभारी युवतीमण्डल एकत्र होता था। बड़े बड़े घरोंकी सुन्दर सुन्दर स्त्रियाँ इसमें आती थीं। एकबार महा-काली देवीको भी इस मण्डलमें सम्मिलित होनेकी अभिलाषा हुई। वे प्रतिदिन अपने अपूर्व रूपलावण्यको लेकर आने लगीं—और गरवा गाकर चली जाने लगीं। इस अनोखी स्त्रीको कोई पहचानता नहीं था, पर इसकी चर्चा सारे शहरमें फैल गई। राजा जयसिंहने भी सुनी। दशहरेकी रात्रिको वह छुपकर यह कौतुक देखनेके लिए आया और महाकालीका दिव्यरूप देखकर तथा दिव्यकण्ठका सुर श्रवणकर

मुग्ध हो गया। अन्तमें जब महाकाली वहाँसे जाने लगी तब राजाने मार्गमें उसका हाथ पकड़ लिया। देवीने समझाया कि राजाका कार्य प्रजाका पालन करना है। राज्यकी तमाम स्त्रियाँ उसकी पुत्रियोंके तुल्य हैं। इत्यादि। परन्तु उसने कुछ न सुना और वह अपना अधिकार तथा बल प्रकट करने लगा। अन्तमें देवीने अपना प्रकृत परिचय दिया और राजाको शुभ मार्गपर आनेका उपदेश किया; परन्तु कामान्ध राजा तो भी न समझा। उसने कहा, 'अच्छा यदि तू देवी है तो क्या हानि है? मुझपर प्रसन्न हो और मेरी स्त्री होकर रह'। इस पर देवीने अतिशय क्रुद्ध होकर शाप दी कि 'राजा, तेरा यह विशाल राज्य शीघ्र नष्ट हो जायगा'। इतना कहकर और अपना हाथ छुड़ाकर देवी अन्तर्द्धान हो गई! राजा दिङ्मूढ़ होकर रह गया। देवीने अपना असली वासस्थान छोड़ दिया और पर्वतके दूसरे नाकेपर नगरकी ओर पीठकर वह भद्रकालीके रूपमें रहने लगी। साधारण लोगोंका यह विश्वास है कि जिस नगरकी ओर देव-देवियोंकी पीठ होती है उसका नाश हो जाता है। कुछ समयमें देवीका शाप सत्य हो गया। ईस्वीसन् १४८५ में महमूदबेगने चाँपानेर और पावागढ़को अपने हस्तगत कर लिया।

उक्त किंवदन्तीका वास्तविक स्वरूप यह मालूम होता है कि जो मनुष्य सामान्यतः धन बल और विद्यासे सम्पन्न रहता है और धर्म-मार्गपर चलता रहता है वह जगतमें सुखी रहता है। जब तक वह धर्ममार्गको नहीं छोड़ता है, तब तक धन, बल और विद्याके ऊपर उसकी सत्ता स्थिर रहती है; परन्तु ज्यों ही यह छोड़ा कि इन तीनोंसे भी उसकी सत्ता चली जाती है। चाँपानेरकी महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीको वहाँका ऐश्वर्य, धन, और विद्या समझना चाहिए।

इन तीनोंकी चाँपानेर और उसके स्वामीपर कृपा थी। वहाँके राजा धार्मिक थे, वे अपनी इन तीनों शक्तियोंका दुरुपयोग नहीं करते थे इसी लिए उनका राज्य सुरक्षित था। जयसिंहने उनका दुरुपयोग किया–धर्ममार्ग छोड़ दिया, इसलिए उसका पतन हो गया।

ऐसा मालूम होता है कि राजा जयसिंहने भद्रकाली नामकी किसी कुलीन कन्यापर बलात्कार किया होगा और इस पाशविक अत्याचारको सहन करनेमें असमर्थ होकर उसने प्राण दे दिये होंगे। और जिस तरह उसकी घोर आन्तरिक पीड़ाने राजाका पुण्य क्षीण कर दिया, उसी तरह संभव है कि उसके (भद्रकालीके) कुटुम्बियोंने भी वैर धारण करके उक्त महाराज्यका अनिष्ट साधन किया होगा।

यहाँसे कुछ आगे चलनेपर दूरसे एक पर्वतशिखर दिखलाई देता है जिसपर महमूदबेगने अपने लिए एक सुन्दर महल बनवाया था। इसके आगे लकड़ीका पुल है। यद्यपि इस समय यह जीर्ण अवस्थामें है, परन्तु मालूम होता है कि पहले इस पुलकी रचना इस ढँगकी होगी कि जब जरूरत होती होगी तब यह लगा दिया जाता होगा और पीछे खींचकर अलग कर लिया जाता होगा। नीचे एक गहरी खाई खोदी गई है उसपर यह पुल बना है। आगे छाशिया तालाब है। इसके मार्गमें दाहनी ओर एक जैनमन्दिर है–इसकी नये सिरेसे मरम्मत की गई है। इसमें जो मुख्य प्रतिमा है वह तो नई है। जीर्णोद्धार करानेवालेने संवत् १९६७ में स्थापित की है। शेष दो प्रतिमायें पुरानी हैं। एक तो संवत् १६४२ माघ सुदी ७ सोमवारको वादिभूषण गुरुके उपदेशसे प्रतिष्ठित हुई है और दूसरी संवत् १५४८ की प्रसिद्ध प्रतिमाप्रचारक जीवराज पापड़ीवालकी प्रतिष्ठा कराई हुई

है। दूसरा एक मन्दिर और भी पासमें है। उसकी मरम्मत की गई है। उसमें एक काले पाषाणकी प्रतिमा है। वह संवत् १६६२ की है। वादिभूषण भट्टारकने उसकी भी प्रतिष्ठा कराई थी। प्रतिष्ठापक अहमदाबादके एक हूमड़ धनिक थे। यहाँ पहले पाँच छह मन्दिरोंका एक समूह था। इन सबके बीचमें एक विशाल चौक रहा होगा। पर्वतपर सब मिलाकर १० जीर्ण जैनमान्दिर हैं, इनमेंसे तीनका तो जीर्णोद्धार हो गया है और एककी मरम्मत की गई है—शिखर बाकी है। तीसरा या चौथा मन्दिर रास्तेके दहिनी तरफ धराशायी हो रहा है। इसे हमने भीतर घुसकर देखा तो माळूम हुआ कि गर्भालयकी दो चौखटोंपर तो गणेशकी मूर्तियाँ हैं और उत्तर तरफकी बाहरी दीवालपर जो तीन मूर्तियाँ हैं वे श्वेताम्बर सम्प्रदायकी हैं। उनकी भुजाओंमें बाजूबन्द और हाथोंमें कंकण हैं। आसनमें हाथीका चिह्न है। इसके आगे एक विस्तृत मन्दिर धराशायी हो रहा है। इसमें नन्दीश्वर द्वीपके समान चारों ओर ५२ जिनालय थे। इसी जगह बम्बईके सेठ चुन्नीलाल हेमचन्दजी जरीवालोंने मन्दिर बनवाकर उसकी वीर नि० सं० २४३७ में प्रतिष्ठा कराई है। आगे बड़े मन्दिरके सामने एक छोटीसी देहरी है। यह अभी हाल ही बनी है। इसमें जो चरण हैं उनकी स्थापना संवत् १९६७ में हुई है। इस देहरीकी पीठपर कहींका एक पुराना पड़ा हुआ पत्थर जड़ दिया गया है जिसमें ऋद्धि-सिद्धि-युक्त गणेशजीकी मूर्ति है। बनवानेवालोंकी यह बड़ी भारी गलती है। ऐसी बातोंमें एक तो सम्प्रदायिक झगड़े उठ खड़े होते है और दूसरे हमारी मूर्खता प्रगट होती है। बड़े मन्दिरमें बड़ी प्रतिमा और कई छोटी छोटी प्रतिमायें तो परंढा (शोलापुर) निवासी सेठ गणेश गिरिधरकी है और तीन प्रति-

मायें पुरानी हैं; वे क्रमसे १६४५,१६६९ और १६६९ की हैं। यह मन्दिर बहुत विस्तारमें था और प्राचीन माळूम होता है। मरम्मत केवल बीचके भागकी करा ली गई है। इसके पास ही दो मन्दिर और थे जिनमेंसे एकका तो मकानसा बना लिया गया है—इस समय उसमें पर्वतके जैन मन्दिरोंकी पूजा करनेवाले पुजारी रहते हैं और एक बिलकुल नामशेष हैं—दालान यों ही पड़ी है। मन्दिरके पास ही तालाब है। माळूम होता है यह मन्दिरके सुभीतेके लिए ही बना होगा। इस समय इसमें जैनेतर यात्री स्नान करते हैं।

यहींसे कालिकाकी टोंक पर चढ़ना होता है। बड़ी कड़ी चढ़ाई है। लगभग १०० वर्ष पहले यहाँ पर ग्वालियर नरेश आलीजाह बहादुर महादजी सेंधिया आये थे। उस समय यहाँकी चढ़ाई और भी कठिन थी। उसे देखकर महाराज सीढ़ियाँ बनवानेकी आज्ञा दे गये थे तदनुसार २२६ सीढ़ियाँ बना दी गई हैं। इन सीढ़ियोंमें जो पत्थर लगाया गया है वह पहाड़ ही परसे संग्रह कर लिया गया है। यह देखकर हमें खेद हुआ कि इन सीढ़ियोंमें मामूली पत्थर समझकर छह सात जैन मूर्तियाँ लगा दी गई हैं। ये मूर्तियाँ बहुत करके श्वेताम्बर सम्प्रदायकी हैं; क्योंकि उनके लँगोटका चिह्न दिखलाई देता है।

यद्यपि इस समय पर्वतपर कोई श्वेताम्बरमन्दिर नहीं है और श्वेताम्बरसम्प्रदायके यात्री भी यहाँ नहीं आते हैं तो भी माळूम होता है कि—यहाँ पर पहले श्वेताम्बर मन्दिर अवश्य रहे होंगे और ये प्रतिमा उन्हीं मन्दिरोंकी होंगीं। पावागिरिको श्वेताम्बर सम्प्रदायमें माळूम नहीं कि सिद्धक्षेत्र माना है या नहीं। *

कालिकाका मन्दिर पर्वतकी सबसे ऊँची चोटी पर है। मन्दिर बिलकुल साधारण है। गर्भालयमें महाकालीकी मूर्ति है। दो मूर्तियाँ

और भी हैं। यहाँके मुनीमजीके द्वारा मालूम हुआ कि यह मन्दिर वास्तवमें जैनमन्दिर था। इसके द्वारकी चौखटमें जिनप्रतिमायें अब तक बनी हैं; परन्तु वे इस तरह ढँक दी गई हैं कि दिखलाई नहीं दे सकतीं।

इस मन्दिरके शिखरके आगे 'सदन पीर' की दरगाह है! या तो महमूद बेगने हिन्दुओंकी मूर्तियोंका अपमान करनेके लिए यह बनवाई होगी या हिन्दुओंने अपनी रक्षाके लिए इसे यहाँ स्थान दिया होगा।

कालिकाके मन्दिरकी छतपर खड़े होकर हमने देखा दूर दूर तककी प्राकृतिक शोभा यहाँसे दिखलाई देती है। जिस विशाल तालाबसे बड़ोदा शहरको पानी मिलता है और जिसका घेरा १२ मील है, वह यहाँसे बिलकुल ही छोटासा दिखता है और चाँपानेर शिवराजपुर लाइट रेलवेकी दौड़ती हुई ट्रेन अजगर सर्पके समान जाती हुई दिखलाई देती है। वायुके झोके तो यहाँपर ऐसे आते हैं कि सारी थकावट दूर हो जाती है।

इस पर्वतको हिन्दू और जैन दोनों ही पूज्य मानते हैं। ता० २९ के लगभग १२ बजे हम लोग पर्वतसे नीचे उतर आये और ता० ३० के शामको रवाना होकर बड़ोदा आ गये। ३१ को हम बड़ोदाके दो चार दर्शनीय स्थान देखकर और शामको वहाँसे रवाना होकर १ अप्रैलके सबेरे बम्बई आ पहुँचे। इस तरह हमारा यह तीर्थपर्यटन समाप्त हुआ।

जैन लाजिक।

(अङ्क ९ से आग)

मल्लवादि (ई० सन् ५२७ के लगभग)

८२—ये श्वेताम्बर आम्नायके आचार्य हुए हैं। इन्होंने बौद्ध न्यायग्रन्थ न्यायबिन्दुटीकापर धर्मोत्तर–टिप्पणी लिखी है। एक जैन दंतकथाके अनुसार 'मल्ल' महाराज शिलादित्यके भानजे थे। वे वादिके नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने वादविवादमें बौद्धोंको परास्त करके पुनः जैनधर्मका उद्धार किया था और काठियावाड़में शत्रुंजय तीर्थ पर आदिनाथ भगवानकी दिव्य विशाल मूर्तिको पूर्ववत् उद्घाटित किया था।

८३–धर्म्मोत्तर–टिप्पणीका एक हस्तलिखित ताड़पत्र अणहिलपाटणमें अबतक मौजूद है और कहते हैं कि उस पर 'सम्वत् १२३१ अर्थात् ईस्वी सन् ११७४' लिखा हुआ है। प्रभावक चरितके अनुसार मल्लवादि एक पद्मचरितके कर्त्ता भी थे और वीर सम्वत् ८८४ अर्थात् ई० ३५७ में हुए हैं। परन्तु यह असंभव है, क्योंकि धर्मोत्तर जिनकी न्यायबिंदुटीका पर मल्लवादिने टिप्पणी लिखी

---

१. पिटर्सन साहबकी चौथी रिपोर्ट पृष्ट ३,४–जिसमें प्रबंध चिन्तामणिकी रामचन्द्र वाली बम्बईकी आवृत्ति पृष्ठ २७३ से उक्त दंतकथा दी हुई है।

२. इति धर्मोत्तर टिप्पणके श्रीमल्लवाद्याचार्यकृते तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः मङ्गलं महाश्रीः।

संवत् १२३१ वर्षे भाद्रपद शुदि १२ रवौ अद्येह जंत्रावलिग्राम वास्तव्य व्य० दाहड सुतव्य० चाहडेन धर्म्मार्थे धर्म्मोत्तरटिप्पणकं लिखापितम्।

(पिटर्सन साहिबकी ५ वीं रिपोर्टमें)

३. देखो क्लाट, वीना, ओरियंटल जरनल जिल्द ४, पृ. ६७।

है ई०सन् ८३७ के लगभग हुए हैं। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्रसूरिने जो ई०सन् १०८८ और ११७२ के बीचमें हुए हैं मल्लवादिका जिकर किया है। अतएव संभव यह है कि संवत् ८८४–जिसमें मल्लवादि हुए हैं–वीर संवत् नहीं हैं; किन्तु विक्रम संवत् है। इस कल्पनाके अनुसार मल्लवादि ई०सन् ८२७ में हुए हैं और वे धर्मोत्तरके समकालीन थे।

प्रद्युम्नसूरि (ई० स० ९८०)

८४—ये[2] श्वेताम्बर आम्नायके राजगच्छमें हुए हैं। माणिक्यचंद्र कृत पा[3]र्श्वनाथचरितमें उनके विषयमें ऐसा कहा है कि:—

गुरुमहाराज प्रद्युम्नसूरि संसारके रोग विकारोंको जड़ मूलसे नष्ट करने लिये उत्पन्न हुए। उन्होंने मनुष्योंके शरीरमेंसे सारे विकार नष्ट कर दिए अर्थात् तार्किकोंके तर्कशास्त्र सम्बन्धी सारे दूषण जान लिए और अपने सिद्धान्तोंसे वादियोंके मानरूपी ज्वरको दूर कर दिया।

८५—इसी ग्रंथमें इस बातका उल्लेख है कि उन्होंने बेंकपट्टके दिगम्बरियोंपर उस प्रांतके राजाके सम्मुख विजय प्राप्त की। प्रद्युम्नसूरिने ८४ स्थानोंपर शास्त्रार्थमें विजय पाकर वहांके राजाओंको प्रसन्न किया। वे माणिक्यचन्द्रसूरिसे–जिन्होंने पार्श्वनाथचरित सम्वत् १२७६ अर्थात् ईस्वी सन् १२१९ में लिखा है—ग्यारहवीं पीढ़ीमें हुए हैं। प्रद्युम्न ई० सन् ९८० में हुए होंगे क्योंकि वे अभयदेवसूरिके गुरु थे जो ईस्वी सन् १०३९ से कुछ पहिले हुए हैं।

---

१. अनुमल्लिवादिनं तार्किकाः तस्मादन्ये हीना इत्यर्थः

(सिद्धहेमशब्दानुशासन बृहत् टीका २–२–३९)

२. प्रद्युम्नसूरिके विषयमें विशेष जाननेके लिए देखो पिटरसन साहबकी चौथी रिपोर्ट।

३. पुंसां विग्रहजं विकारमखिलं निर्मूल मुन्मूलयँ—
स्तत्राद्यः समभूद्भवामयभिषक्प्रद्युम्नसूरिर्गुरुः।

अभयदेवसूरि (ई० स० १००० के लगभग)

८६–अभयदेवसूरि श्वेताम्बर आम्नायके आचार्य हुए हैं। वे प्रद्युम्नसूरिके शिष्य और पट्टाधिकारी थे। वे एक प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने 'वादमहार्णव' नामक एक न्यायग्रन्थ और सम्मतितर्क-सूत्रकी टीका तत्त्वार्थबोधविधायिनी लिखी है। उनके विषयमें लिखा है कि वे एक सिंहके सदृश थे जो न्याय शास्त्रोंके दुर्गम वनमें स्वतंत्रतासे विचरते थे। भिन्न भिन्न विरोधी सम्मतियोंके नद सच्चे मार्गको बहा न ले जाएँ इस कारण अभयदेवने वादमहार्णव लिखा था। उनके बाद जिनेश्वरसूरि उनके पट्टाधिकारी हुए जो महाराज मुंजके

येन स्वेदयता प्रयुज्य तरलां तर्कोज्ज्वलां भारतीं
वादीन्द्राः प्रविलापिनो घनतरं दर्पज्वरं त्याजिताः ॥ ४ ॥
दिगम्बरसमाक्रान्तं वेङ्कपट्टं समाददे
यः प्रत्यक्षं नरेन्द्रस्य जगतस्तद्यशः पुनः ॥ ५ ॥
नीरागतानिधी राजगच्छभूर्गुणवारिधिः
सूरिः प्रद्युम्नसूर्याख्यः पूर्वं वः पूर्वजोऽभवत् ॥ २७ ॥
सपादलक्षगोपालत्रिभुवनगिर्यादिदेशगोपालान् ।
यश्चतुरधिकशीत्या वादजयै रंजयामास ॥ २८ ॥
श्रीअभयदेवसूरिस्तच्छिष्यस्तर्कभूरभूत्
भग्नासनालितुमुला गीर्यद्दास्यमाशिश्रियत् ॥ २९ ॥

(पार्श्वनाथचरित जिसका पिटरसनसाहबने अपनी तीसरी रिपोर्टमें पृष्ठ ५७—१६४ पर उल्लेख किया है।)

१ तर्कग्रन्थविचारदुर्गमवनीसञ्चारपञ्चानन-
स्तत्पट्टेऽभयदेवसूरिरजनि श्वेताम्बरग्रामणीः ।
सद्वाक्यश्रुतिलालसामधुकरीकोलाहलाशङ्किनी
हित्वा विष्टरपंकजं श्रितवती ब्राह्मी यदीयाननम् ॥ ६ ॥
दृङ्भिन्नगाः सत्पथभेदमेता
ध्रुवं करिष्यन्ति जडैः समेताः

समकालीन थे। वे सिद्ध देवसूरिसे—जिन्होंने सम्वत् १२४२ अर्थात् ई० सन् ११८५ में 'प्रवचनसारोद्धारवृत्ति' लिखी है—नवीं पीढ़ीमें थे। सम्भवतया यही अभयदेवसूरि हैं, जो जगद्विख्यात थे और शांतिसूरिके—जो सम्वत् १०९६ अर्थात् ई० सन् १०४९ में स्वर्ग-वासी हो गए—गुरु थे।

इतीव रोधाय चकार तासां
ग्रन्थं नवं वादमहार्णवं यः ॥ ७ ॥
विद्वन्मण्डलमौलिमण्डनमणिः प्रेङ्खत्तपोऽहर्मणि—
र्निर्ग्रन्थोऽपि जिनेश्वरः समजनि श्रीमांस्ततः सद्गुरुः
यः स्फूर्जद्गुणपुञ्जमुञ्जजगतीजिष्णोः पुरः प्रश्निलान्
वादे वादिवरान् विजित्य विजयश्रीसंग्रहं स व्यधात् ५

(पार्श्वनाथचरित माणिक्यचन्द्रकृत जिसका पिटर्सन साहबने अपनी तीसरी रिपोर्टमें उल्लेख किया है।)

२ देखो आर. मित्रका सूचीपत्र १० पृष्ठ ३९—४०।

३. अभयदेवसूरिके विषयमें विशेष जाननेके लिए देखो पिटर्सन साहबकी चौथी रिपोर्ट पृष्ट ३।

४. बेबरसाहबकी किताब पृष्ठ ८५१ जिल्द १,२ तथा पृष्ठ १२१ जिल्द ४,५। जिनेश्वरसूरि सम्भवतया धनेश्वरसूरिके धर्मभाई थे।

५. यस्याभूद्गुरुरागमे गुणनिधिः श्रीसर्वदेवाह्वयः
सूरीशोऽभयदेवसूरिरचितख्यातप्रमाणेऽपि च।
तस्येयं सुगुरुद्वयादधिगत (?) दल्पात्म विद्यागुण (?)
प्रत्याख्याय चिरं भुवि प्रचरतु श्रीशान्तिसूरेः कृतिः ॥

(शान्त्याचार्यकृत उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति जिसका डाक्टर आर. जी. भांडार-करने अपनी १८८३,१८८४ की संस्कृत हस्तालिखित ग्रंथोंकी रिपोर्ट पृष्ठ ४४ में उल्लेख किया है।

देखो बेबर साहबकी जर्मनभाषाकी किताब।

लघु समंतभद्र (ई० सन् १००० के लगभग)

८७—इन्होंने विद्यानंदस्वामीकी अष्टसहस्री पर 'अष्टसहस्री-विषमपदतात्पर्य टीका' लिखी है। ये दिगम्बर आम्नायके आचार्य मालूम होते हैं और ई०सन् १००० के लगभग हुए हैं।

अनंतवीर्य (ई० सन् १०३९ के लगभग)

८८—अनंतवीर्य दिगम्बर आम्नायमें हुए हैं। इन्होंने माणिक्यनंदीकी परीक्षामुख पर परीक्षामुखपंजिका अर्थात् प्रमेयरत्नमाला तथा अकलंकस्वामीके न्यायविनिश्चय पर 'न्यायविनिश्चयवृत्ति' लिखी है। इन्होंने परीक्षामुखपंजिकाको शांतिसेनके लिए विजयके पुत्र हीरपके अनुरोधसे लिखी थी। शांतिसेन शांतिसूरि ही समझे जाते हैं जो संवत् १०९६ अर्थात् ईस्वी सन् १०३९ में स्वर्गवासी हो गए। अतएव इनके समाकालीन अनंतवीर्य अवश्य उसी समय हुए होंगे। अनंतवीर्य १४ वीं शताब्दीसे पहिले हुए हैं; क्योंकि माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें जैनदर्शनके अध्यायमें उनका उल्लेख किया है।

---

१. अष्टसहस्री–विषमपदतात्पर्य टीकाका पिटर्सन साहबकी पांचवीं रिपोर्टमें पृष्ठ २१६–२१९पर उल्लेख है। यथाः—

देवस्वामिनममलं विद्यानंदं प्रणम्य निजभक्त्या।
विवृणोम्यष्टसहस्रीविषमपदं लघुसमन्तभद्रोऽहम् ॥

२. वैजेयप्रियपुत्रस्य हीरपस्योपरोधतः।
शांतिषेणार्थमारब्धा परीक्षामुखपञ्जिका ॥ ६ ॥
(परीक्षामुख सटीक जिसका पिटर्सन साहबकी पांचवीं रिपोर्टके पृष्ठ १५५ पर उल्लेख है।)

३. देखो इंडियन, एण्टिकेरी जिल्द ११ पृष्ठ २५३ और डाक्टर भांडारकरकी हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथोंकी १८८३–८४ की रिपोर्ट पृष्ठ १२८।

देवसूरि (ई० सन् १०८६--११६९)

८९—देवसूरि जो वादिप्रवरके नामसे प्रसिद्ध थे श्वेताम्बर आम्नायमें माणिक्यचन्द्रसूरिके शिष्य हुए हैं। ये प्रसिद्ध न्यायशास्त्र ' प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार ' के रचयिता थे। इन्होंने इसीपर स्वयं ' स्याद्वादरत्नाकर ' नामक विशद टीका भी लिखी है। इन्होंने दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्रको गुजरातके अणहिलपुर पाटणमें जयसिंहदेवकी राजसभामें स्त्रीनिर्वाण विषयपर विवादमें बिलकुल निरुत्तर कर दिया था, जिससे दिगम्बरियोंका उस शहरमें जाना ही बंद हो गया। यह शास्त्रार्थ संवत् ११८१ अर्थात् ११२४ ई०में हुआ था।

९०—देवसूरिके एक शिष्य रत्नप्रभसूरि अपनी उपदेशमाला टीकामें—जो संवत् १२३५ अर्थात् ई० सन् ११८१ में बनाई गई है—लिखते हैं कि:—" गुरुमहराज श्रीदेवसूरिने—जो पूज्य श्रीमुनि-

---

१. स्याद्वादरत्नाकर इत्यस्ति ग्रन्थो महत्तमः।
वादिवृन्दारकश्रीमद्देवसूरिविनिर्मितः ॥ ४ ॥
(मलधारी राजशेखरसूरिकी स्याद्वादरत्नाकरावतारिका पर पञ्जिका)

२. चन्द्राष्टशिववर्षेऽत्र वैशाखे पूर्णिमादिने।
आहूतौ वादिशालायां तौ वादिप्रतिवादिनौ ॥
(प्रभावकचरित २१, जिल्द ९५ जिसका डाक्टर क्लाटने अपने 'जैनियोंके' ऐतिहासिक ग्रंथ शीर्षक लेखमें सितम्बर १८८२ की इंडियन एंटिकुवेरी में उल्लेख किया है)

३. रत्नप्रभसूरि कहते हैं:—
शिष्यः श्रीमुनिचन्द्रसूरिगुरुभिर्गीतार्थचूडामणिः।
पट्टे स्वे विनिवेशितस्तदनु स श्रीदेवसूरिप्रभुः ॥
आस्थाने जयसिंहदेव नृपतेर्येनास्तदिग्वाससा।
स्त्रीनिर्वाणसमर्थनेन विजयस्तम्भः समुत्तम्भितः ॥
तत्पट्टप्रभवोभवन्नथगुणग्रामाभिरामो दयाः।

चन्द्रसूरिके चूड़ामणि शिष्य थे और उनके पट्टाधिकारी हुए—महाराज जयसिंह देवकी राज्यसभामें दिगम्बरियोंको परास्त करके और स्त्री-निर्वाणका समर्थन करके अर्थात् स्त्रियोंको निर्वाण हो सकता है यह पूर्णतया सिद्ध करके मानो विजयस्तम्भ गाढ़ दिया।

९१—संवत् १२०४ अर्थात् ई० सन् ११४७ में देवसूरिने चैत्य बनाया, फलोवरधी ग्राममें बिम्ब स्थापित किया और अरॉसनमें

श्रीभद्टेश्वरसूरयः शुचधियस्तन्मानसप्रीतये ॥
श्री रत्नप्रभसूरिभिः शुभकृते श्रीदेवसूरिप्रभोः।
शिष्यैः सेयमकारिसम्मदकृते वृत्तिर्विशेषार्थनाम् ॥

(उपदेशमाला टीका जिसका पिटर्सनसाहबने अपनी तीसरी रिपोर्टके पृष्ठ १६७ पर उल्लेख किया है)

मुनि-सुंदरसूरि भी अपनी गुर्वावलीमें-जो उन्होंने सम्वत् १४६६ में बनाई है—ऐसा ही हाल लिखते हैं:—

येनादितश्चतुरशीतिसुवादिलीला—
लब्धोल्लसज्जयरमामदकेलिशाली।
वादाहवे कुमुदचन्द्रदिगम्बरेन्द्रः
श्रीसिद्धभूमिपतिसंसदि पत्तनेऽस्मिन् ॥ ७४ ॥
स्याद्वादरत्नाकरतर्कवेधा
मुदे स केषां न हि देवसूरिः।
यतश्चतुर्विंशति सूरिशाखं
यस्यैव नाम्ना विदितं बभूव ॥ १५॥
वेद मुनीशमितेऽब्दे
देवगुरुर्जगदनुत्तरोऽभ्युदतः।
श्रीमुनिचन्द्रगुरोरिति
शिष्या बहवाऽभवन् विदिताः ॥ १६ ॥

(गुर्वावली पृष्ठ १८–१९ यशोविजयजैनग्रंथमाला बनारसमें प्रकाशित)

४. देखो पिटर्सनकी चौथी रिपोर्ट। तथा क्लाट इन्डियन एंटिकुवेरी ९, पृष्ठ २५४।

नेमिनाथ भगवानकी प्रतिमा बिराजमान की। वे सम्वत् ११४३ अर्थात् ई० सन् १०८६ में उत्पन्न हुए, सम्वत् ११७४ अर्थात् ई० सन् १११७ में उन्होंने सूरि पदवी प्राप्त की और सम्वत् १२२६ अर्थात् ई० सन् ११६९ में स्वर्गवासी हो गए। (क्रमशः)

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.।

आत्मनिरीक्षण।

"हे मनुष्य, रात हो गई, तू सोनेके लिए तैयार हो! परन्तु जब तक तू सारे दिनमें किये हुए कामोंकी अन्तःकरणसे जाँच न कर ले, तबतक निद्राके वशीभूत मत हो। अपने मनमें तू विचार कर कि मैंने आज कौन कौनसे कार्य किये हैं, उनमें मैंने क्या क्या भूलें की हैं, मैंने अपने करने योग्य कौनसा कार्य नहीं किया? इस रीतिसे जाँच करनेसे यदि तुझे ऐसा मालूम हो कि आज मेरे हाथसे कोई अयोग्य कार्य हुआ है, तो इसके लिए तू अपने आपकी तीव्र निन्दा कर और यदि तुझसे कोई अच्छा कार्य बन गया है तो उसके लिए आनन्द मान।"— **पैथेगोरस।**

ये शब्द बहुत ही गंभीर अर्थयुक्त हैं। इनका वास्तविक अर्थ वही समझ सकता है जो इनका अन्तःकरणपूर्वक बारीकीसे विचार करता है और इनके अनुसार अपना आचरण बनाता है।

---

१. शिखिवेदशिवे जन्मदीक्षायुग्मशरेश्वरे।
वेदाश्वशंकरे वर्षे सूरित्वमभवत्प्रभोः॥
रसयुग्मरवीवर्षे श्रावणे मासि संगते।
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यामपराह्णे गुरोर्दिने।
मर्त्यलोकस्थितं लोकं प्रतिबोध्य पुरंदरे।
बोधका इव ते जग्मु दिवं श्रीदेवसूरयः॥

(प्रभावकचरित)

कुछ विद्वानोंके खयालमें देवसूरि संवत् ११३४ अर्थात् ई० १०७७ में उत्पन्न हुए थे।

कौनसा काम करने योग्य है और कौनसा करने योग्य नहीं है- यदि इस विषयका ज्ञान मनुष्यको हो जाय तो उसे इस बातका खयाल सहज ही आ जाता है कि मुझसे भूल कहाँ हुई है और मैंने कौनसा कार्य नहीं किया। इस ज्ञानके होनेसे ही मनुष्य शुभकार्यकी प्रशंसा कर सकता है। इसीलिए इस लेखमें करने योग्य और न करने योग्य कार्योंकी सूची दी गई है। आत्मशुद्धिकी इच्छा करनेवाले प्रत्येक पुरुषको उसपर अच्छी तरहसे विचार करना चाहिए।

प्रतिदिन सोते समय हमें इसी विषयका विचार करना चाहिए। निरन्तर ऐसा करते रहनेसे हमारी याददाश्त या स्मरणशक्ति बढ़ती जायगी और धीरे धीरे भूल करनेकी आदत कम होती जायगी। जिस तरह व्यापारी पुरुष रातको अपने हानिलाभका हिसाब लगाता है, उसी तरह हमें भी आत्माके व्यापारका प्रत्येक रात्रिको हिसाब देखना चाहिए। अपने अन्तःकरणरूप न्यायाधीशके सम्मुख हमें अपने सारे दिनके कार्योंका हिसाब पेश करना चाहिए। अपने आत्म-प्रभुके सामने हमें प्रत्येक रात्रिको नीचे लिखी बातोंका उत्तर देना चाहिए—

१. मैंने कहाँ और कौनसी भूल की है?

२. मैंने क्या क्या कार्य किये?

३. मैंने करने योग्य कौनसा कार्य नहीं किया?

इन तीन बातोंमें और सभी बातोंका समावेश हो जाता है।

हमें अपने इष्टदेवकी ओर भक्तिभाव रखना चाहिए। अपने माता-पिता और गुरुजनोंके विषयमें पूज्यभाव रखना चाहिए। सत्पुरुषोंका समागम करना चाहिए। अपने मनोविकारोंको और क्षुद्र वासनाओंको संयममें रखना चाहिए। व्यापारमें तथा और सब प्रकारके व्यवहारोंमें

न्यायपूर्वक वर्ताव करना चाहिए। जीवनकी क्षणिकता और लक्ष्मीकी चञ्चलताका निरन्तर विचार करना चाहिए। उच्च विचारों और भावनाओंपर मन स्थिर रखना चाहिए। प्रत्येक कार्य करते समय और प्रत्येक शब्द बोलनेके पहले खूब सोच विचार कर लेना चाहिए। किसी भी विषयमें दुराग्रह या हठ न करके सत्यशोधक बनना चाहिए। सार यह है कि जिनसे दुर्गुण दूर हों, सद्गुणोंकी वृद्धि हो और आत्माकी सम्मुखता प्राप्त हो, वे सब उपाय योजित करना चाहिए। इन सबका कर्तव्यमें अर्थात् करने योग्य कार्योंमें समावेश हो जाता है।

इस बातका एक बार अच्छी तरह विश्वास हो जानेसे कि ऊपर बतलाये हुए कार्य करने योग्य हैं हमें अपने आत्मप्रभुके समक्ष अपने कार्योंकी आलोचना करनेमें बहुत सुभीता हो जायगा।

अपने सारे दिनके कार्योंकी आलोचना करने पर यदि हमारे हृदयमें यह निश्चय हो जाय कि इन सब नियमोंमेंसे एक भी नियम मुझसे भंग हुआ है तो उसी समय हमारा अन्तःकरण हमारे कण्ठमें दिव्य आनन्दकी माला पहना देता है और यदि बारीकीसे विचार करने पर हमें ऐसा माळूम होता है कि आज मुझसे कई दोष बन गये हैं तो वही अन्तःकरण हमें पश्चात्तापकी अग्निसे जलाता है। जैसे सोनेका मैल अग्निसे जल जाता है, उसी तरह आत्मापर लगा हुआ मैल इस पश्चात्तापकी आगसे जल जाता है और आत्मा शुद्ध हो जाता है। इसी लिए प्रतिदिन सोते समय सारे दिनके कार्योंकी आलोचना करनेकी बहुत बड़ी जरूरत है।

प्रारम्भमें कुछ दिनों तक इस कामके करनेमें तुम्हारा शरीर तुम्हारे लिए विघ्नस्वरूप होगा, कभी कभी आलोचना किये बिना ही तुम्हारी सोजानेकी इच्छा होगी; परन्तु इससे तुम डगमगाना नहीं, अपने

निश्चयपर दृढ़ बने रहना। यदि तुम्हारा अपने आत्माको पवित्र बनानेका संकल्प दृढ़ होगा तो इस विघ्नको दूर करनेमें तुम्हें देर न लगेगी। कुछ दिनोंमें अभ्यास हो जाने पर शरीर तुम्हारी आज्ञानुसार चलने लगेगा।

पापोंके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तो करने योग्य कार्योंके न करनेसे पाप बँधते हैं और दूसरे नहीं करने योग्य कार्योंके करनेसे पाप बँधते हैं। इस लिए हमें अपने अन्तःकरणसे दो जुदा जुदा प्रश्न पूछना चाहिए। एक तो यह कि मैं आज करने योग्य कौनसा कार्य भूल गया हूँ और दूसरा यह कि मैंने आज नहीं करने योग्य कौनसा कार्य कर डाला है।

इनमेंसे एक पाप तो विधिमार्गका उल्लङ्घन है और दूसरा प्रतिषेध मार्गका उल्लङ्घन है। जैसे धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है कि 'मातापिताकी भक्ति करना'। जो मनुष्य मातापिताकी भक्ति नहीं करता है वह इस विधिमार्गसे विरुद्ध चलता है। इसी तरह शास्त्रोंमें लिखा हे कि 'चोरी नहीं करना'। यह प्रतिषेध या निषेधमार्ग है। अब जो पुरुष चोरी करता है, वह प्रतिषेध मार्गका उल्लङ्घन करता है।

आलोचना करते समय अकसर बहुतसे कार्य स्मरण नहीं रहते। अतः कोई कार्य भूलसे रह न जावे इसके लिए एक उपाय बतलाया जाता है:—

प्रातःकालसे प्रारम्भ करनेके बदले रात्रिसे आरम्भ करके अपने कार्योंका अवलोकन करना चाहिए। अर्थात् रातको जब अवलोकन करने लगे तब वहींसे आरम्भ करे कि सोनेसे पहले मैंने कौनसा कार्य किया था? उसके पहले मैं कहाँ था? वहाँ क्या करता था? उससे भी पहले कहाँ और क्या करता था? इस तरह पीछे चलते

चलते ठीक प्रातःकाल तकके कार्योंका स्मरण करना चाहिए। ऐसा करनेसे तुम एक भी कार्यको न भूल सकोगे और इस तरह तुम अपने कृतकार्योंका बारीक अवलोकन अपने अन्तरात्मारूप न्यायाधीशके सामने अच्छी तरहसे कर सकोगे। अपना अन्तरात्मा या अन्तःकरण ही अपना न्यायाधीश है। उसके समान शक्तिशाली और सत्यप्रिय न्यायाधीश तुम्हें अन्यत्र कहीं भी न मिल सकेगा। अन्तःकरणसे कुछ भी छुपा नहीं रहता, वह सच्चा न्याय करता है, उसमें पक्षपातका लेश भी नहीं है। हम दूसरोंके उपदेशोंकी तो अवहेलना कर सकते हैं; परन्तु इस अन्तःकरणकी आज्ञा ऐसी अमोघ होती है कि उसे माने बिना हम रह ही नहीं सकते।

इस तरह प्रतिदिन बुद्धिपूर्वक सच्चे अंतःकरणसे प्रयत्न किया जाय तो हम अशुभ कार्य करनेसे हिचकने लगेंगे, शुभकार्योंमें हमारी स्वाभाविक रीतिसे प्रवृत्ति होने लगेगी और हमारा हृदय निर्मल और पवित्र हो जायगा। यदि इन सब लाभोंको तुम सचमुच ही चाहते हो और आत्मशुद्धि करना चाहते हो तो प्रतिदिन सोते समय एकाग्र होकर नीचे लिखे हुआ लेख बाँचो, विचारो और उसके अनुसार चलनेका यत्न करोः—

हे परम कृपालु क्षमावान् प्रभो, आज इस पूर्ण होनेवाले दिवसमें इस जीवसे मन, वचन और कायके द्वारा जो कुछ पाप बने हों, उनकी आपके सामने सच्चे अंतःकरणसे क्षमा माँगनेके लिए मैं तैयार हुआ हूँ। हे प्रभो, आप सब जानते हैं, इससे मुझसे जो सब अपराध हुए हैं वे आपसे छुपे नहीं हैं। तो भी करने योग्य नहीं करनेसे और नहीं करने योग्य कार्य करनेसे मैंने जो अपराध किये हैं वे सब मैं आपके समक्ष निवेदन करता हूँ। हे देव, आपकी कृपासे मैं इस

बातको जानता हूँ कि शुद्ध आचरण कौनसा है और अशुद्ध कौनसा है। इससे मैं बिलकुल अनभिज्ञ नहीं हूँ तो भी क्रोध, अहंकार, कपट लोभ, कामादिके वश होकर मैंने अशुभाचरण किया है। उसे आपके सामने प्रगट करके मैं क्षमा माँगता हूँ और चाहता हूँ कि मुझे ऐसा आत्मिक बल प्राप्त हो जाय कि मुझसे फिर ऐसा आचरण कभी न बने।

प्रमादसे अथवा अज्ञानतासे (निम्न लिखित) दश अधर्मोंमेंसे जो अधर्म मुझसे बन गया हो उसका मैं स्मरण करता हूँ, उसे हे प्रभो, आत्मसाक्षीसे और आपकी साक्षीसे मैं अनुचित गिनता हूँ, निन्दता हूँ और फिर कभी उस कामको नहीं करूँगा, ऐसी दृढ प्रतिज्ञा आपके सम्मुख लेता हूँ।

दश अधर्म ।

तीन मानसिक पाप ।

१. पराये धनकी अनुचित इच्छा करना।
२. किसी भी प्राणीका बुरा सोचना।
३. असत्य बातको सत्य मान स्वीकार करना।

चार वाचनिक पाप ।

१. दूसरेको दुःख पहुँचानेवाला कटुक वचन कहना।
२. अपने भीतरी विश्वासके विरुद्ध बोलना।
३. दूसरेकी निन्दा या चुगली करना।
४. बे-मतलबकी बे-सिरपैरकी बातोंमें व्यर्थ समय खोना।

तीन शारीरिक पाप।

१. दूसरेकी बिना दी हुई वस्तु लोभ या अन्यायसे ले लेना।

२. किसी जीवकी हिंसा करना।

३. पराई स्त्रीके साथ दुराचार करना।

दशधा धर्म।

१. शम अर्थात् मनको अपने वशमें रखना और जुदा जुदा विचारोंमें तथा विषयोंमें उसे भटकने न देना।

२. दम अर्थात् निरन्तर अपनी इन्द्रियोंको सम्पूर्णतः वशमें रखना।

३. सदा सत्य बोलना।

४. अपराधियोंको, अपनी बुराई करनेवालोंको हृदयसे क्षमा कर देना।

५. प्रतिदिन कुछ न कुछ दान रहना।

६. जीव मात्रपर दया करना, कोई न कोई दयाका कार्य प्रतिदिन करना।

७. परमात्मपूजन, गुरुभक्ति और मातापितादि गुरुजनोंकी विनय करना।

८. मन, वचन और कायसे शुद्ध रहना।

९. कुछ न कुछ समय प्रतिदिन ज्ञान प्राप्त करनेमे व्यतीत करना।

१०. प्रातिदिन कमसे कम पाँच मिनिट यह भावना करना कि जगतके समस्त जीवोंका कल्याण हो।

हे भगवन्! इन दशप्रकारके करने योग्य कार्योंमेंसे—आचरण करने योग्य धर्मोंमेंसे यदि मैं आज कोई भी धर्म किसी भी अंशमें कर सका होऊँ तो उसे मैं अच्छा समझता हूँ, उससे मैं आनन्दित होता हूँ और मुझे ऐसा कार्य करनेका विशेष बल प्राप्त हो इस प्रकार अपने हृदयमें तीव्र आकांक्षा रखता हूँ। इस रीतिसे हे प्रभो, मेरे दुर्गुण दूर

हों, सद्गुण धीरे धीरे बढ़ते जावें, और मुझमें जो शक्तियाँ हों वे परोपकारके कार्योंमें चरितार्थ होवें। अन्तमें मेरी यही याचना है:—

अहं सर्वान् क्षमे जीवान् ते च क्षाम्यन्तु मां सदा।
मैत्री मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित्॥

अर्थात्, मैं सब जीवोंको क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें मेरी सब जीवोंसे मित्रता है; मेरा किसीके भी साथ वैरभाव नहीं है।

शिवमस्तु सर्व जगतः परहितनिरताः भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र जनः सुखी भवतु॥

सर्व जगतका कल्याण हो, समस्त जीव दूसरोंके हित करनेमें तत्पर हों, सब दोष नाशको प्राप्त हों और सर्वत्र लोग सुखी हों! *

—आत्मनिरीक्षक।

विद्वानोंके बहुमूल्य वचन।

एक घड़ेने कुएमें पानी भरनेके लिए जाते हुए दूसरे घड़ेसे कहा "भाई, तू उदासीन क्यों है?" दूसरेने उत्तर दिया-"अपने जीवनके विषयमें विचार करनेसे बड़ी भारी ग्लानि होती है। हम बारबार भरे जाते हैं; परन्तु अन्तमें खाली ही हो जाते हैं!" यह सुनकर पहले घड़ेने कहा, "हम ऐसा उलटा विचार क्यों करें? हम खाली जाते हैं परन्तु आते हैं भरे हुए, इस दृष्टिसे विचार कर और मेरे समान तू भी आनन्दसे रह।" **—हार्डी**

× × × ×

जिसके हृदयमें स्नेह है परन्तु धर्म नहीं है वह उसकी अपेक्षा बहुत ही पवित्र है कि जिसके हृदयमें धर्म है पर प्रेम नहीं है। जो

---

* श्रीयुत मणिलाल नथूभाई दोशी बी. ए. के गुजराती लेखका मर्मानुवाद।

वर्षमें या सप्ताहमें एक बार प्रार्थना करके बैठ रहता है और धर्मी होनेका ढोंग करता है, उसकी अपेक्षा वह बहुत उन्नत है जो निरन्तर अच्छे विचार किया करता है।

× × × ×

मुझे ऐसे स्थानमें रहनेकी तीव्र इच्छा है कि जहाँसे हजारों मनुष्य आते जाते रहते हैं; भले ही वे मनुष्य अच्छे या बुरे, दुर्बल या दृढ, चतुर या मूर्ख हों। क्योंकि मैं भी ऐसा ही हूँ। और जब ऐसा है अर्थात् मैं भी उन्हींके समान हूँ तब दूर रहकर उनका तिरस्कार करनेसे क्या लाभ?

मैं अपने ही घरमें रहकर जनसमूहका प्यारा बन सकूँ, तो मेरे लिए इतना ही बस है।

—वॉल्टर फॉस।

× × × ×

आज अपने विचारोंको प्रगट कर देना और कल ज्ञानरूपी सूर्यका प्रकाश पड़ते ही उन्हें बदल देना, छोड़ देना अथवा ज्योंके त्यों रखना।

× × × ×

सृष्टिसौन्दर्य, तारागण, विशाल समुद्र, कोमल रसप्रद पृथिवी, सुगन्धित पुष्प और शान्तिदायक वृक्षोंकी ओर स्नेह रखना और उनके साथ एकान्तमें काल व्यतीत करना; परन्तु तड़फते हुए, भटकते हुए दुखी स्त्रीपुरुषों तथा दूसरे प्राणियोंपर इससे भी अधिक स्नेह रखना।

× × × ×

दूसरोंके विचारोंको शान्तिपूर्वक सुनना और अपने निश्चित विचारोंके अनुसार चलना; परन्तु अपने अन्तःकरणके निश्चयके अनुसार मनुष्यको शोभा दे इस प्रकार वर्ताव करनेमें कभी न डगमगाना।

—राल्फ वाल्डो ट्राइन।

इतिहास ।

कुछ समयसे जैनसमाजमें भी इतिहासकी चर्चा होने लगी है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायके साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिकपत्रोंमें अब तक बीसों ऐतिहासिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं और दो चार छोटी मोटी पुस्तकें भी इस विषयकी मुद्रित हो चुकी हैं। दिगम्बर सम्प्रदायकी ओरसे तो इस विषयकी चर्चा करनेके लिए एक खास त्रैमासिक पत्र निकलने लगा है। यह एक बहुत ही प्रसन्नताकी बात है। इतिहास जैसे महत्त्वपूर्ण विषयकी ओर एक पीछे पड़े हुए समाजका इतना अधिक ध्यान जाना कोई साधारण बात नहीं।

परन्तु हम देखते हैं कि जैनसमाजके अधिकांश लेखक इतिहासके असली उद्देश्यको न समझकर उसे बलपूर्वक धार्मिक या साम्प्रदायिक कक्षामें घसीट ले जानेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह सर्वथा अनुचित है। इतिहास सत्य घटनाओंका प्रकाशक होता है। किसी मत या सम्प्रदायके कारण वह सत्यका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। इसलिए इतिहासलेखकका कर्तव्य है—चाहे वह स्वयं किसी मत या सम्प्रदायपर विश्वास करनेवाला हो—कि वह जो घटना जिस समय और जिस रूपमें घटित हुई हो, उसे उसी समय और उसी रूपमें प्रकाशित करे। सत्यका पोषण करना ही उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है। किसी मत या सम्प्रदायकी अपेक्षा उसे सत्यका सबसे अधिक एकनिष्ठ उपासक होना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि किसी प्रकारके पक्षपातसे किसी घटनाको अयथार्थरूपमें प्रकाशित करना इतिहासकी हत्या करना है। उसे विश्वास होना चाहिए कि सत्य ही इतिहासका जीव है और सजीव इतिहास ही मनुष्यको सुमार्ग बतला सकता है

जो कि इतिहास पढ़नेका सबसे प्रधान लाभ है। वास्तवमें देखा जाय तो जिस मत या सम्प्रदायके मोहमें पड़कर कोई छोटीसी घटना बढ़ाकर प्रकट की जाती है और बड़ी भारी घटना बिलकुल सामान्य बना दी जाती है, उसी मत या सम्प्रदायकी इससे सबसे अधिक हानि होती है। क्योंकि एक सत्य घटनासे मनुष्य जो कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है, वह शिक्षा उसके अनुयायियोंको नहीं मिलने पाती। जिन कारणकलापोंके मिलनेका परिणाम बुरा होना चाहिए, झूठे इतिहाससे उनका परिणाम अच्छा विदित होता है और तब उस पर विश्वास करनेवाले बबूल बोकर आम खानेकी आशा करने लगते हैं। इसके सिवा इतिहास लेखक जानता है कि समय अनन्त है और पृथ्वी बहुत विस्तृत है। इसलिए मेरे छुपानेपर भी कोई ऐतिहासिक सत्य छुपा न रहेगा—एक न एक दिन वह सब पर प्रगट हुए बिना न रहेगा और तब मेरी गणना सत्यकी हत्या करनेवालोंमें की जायगी, इस लिए कभी भूलकर भी वह किसी सत्य घटनाको अयथारूपमें प्रकाशित करनेका प्रयत्न नहीं करता।

कल्पना कीजिए कि आजसे पाँचसौ वर्ष पहले एक ऐसा जैनाचार्य हुआ था जो बड़ा विद्वान् था और उसके पाण्डित्यके प्रकाशित करने वाले इस समय कई ग्रन्थ मिलते हैं। अपने हृदयकी दुर्बलताके वश उसने किसी समय कोई दुष्प्रवृत्ति की थी, परिग्रह धारण कर लिया था, और जैनधर्मके अन्तर्गत जो कई सङ्घ हैं उनमें शत्रुता बढ़ानेकी कोशिश की थी। एक अपरिणामदर्शी धर्मात्मा धर्ममोहके कारण उसकी इन दुष्प्रवृत्तियोंको ढँकनेका प्रयत्न कर सकता है। उसे यह शङ्का हो सकती है कि इस घटनाके प्रकाशित होनेसे जैनधर्मके गौरवकी हानि होगी; परन्तु एक ऐतिहासिक लेखक इस घटनाको यथा-

तथ्य प्रकट करनेमें जरा भी कुण्ठित न होगा। क्योंकि वह जानता है कि व्यक्ति विशेषके चरितकी हीनता और उच्चतासे किसी समूचे समाज या सम्प्रदायके चरितकी माप नहीं हो सकती। और इस घटनाके छुपानेसे ऐतिहासिक सत्योंसे लोगोंको जो शिक्षा मिलती है उससे वे वञ्चित हो जायँगे। लोग इससे जान सकते हैं कि विद्वान् होनेसे ही कोई चरित्रवान् नहीं हो सकता है। ज्ञान दूसरी बात है और चारित्र दूसरी। मानव चरितकी जो दुर्बलता आजकलके भट्टारकोंमें पाई जाती है उसका पाँचसौ वर्ष पहले भी अस्तित्व था। उस समय भट्टारकोंके आचरणका सूत्रपात हो गया था। सङ्घमोह या सम्प्रदाय मोहने उस समयके विद्वानोंपर भी अपना अधिकार जमा लिया था। और इससे उक्त विद्वानके ग्रंथोंमें यदि उसके चरितकी दुबलताका कुछ प्रभाव पड़ा हो तो उसका सावधानतासे विचार करना-चाहिए—उन्हें सर्वज्ञवचनोंके समान बिना तर्क वितर्क किये माननेके लिए तैयार न हो जाना चाहिए। इत्यादि अनेक बातें ऐसी है जिनसे हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। इसके सिवा जिन प्रमाणोंसे उक्त विद्वानके चरितकी दुर्बलता प्रकट होती है वे यदि आज किसी तरहसे छुपा भी दिये जायँ तो भी यह निश्चय हैं कि कभी न कभी उनका वास्तविक रूपमें प्रकाश हुए विना न रहेगा।

हाँ, इस बातका खयाल अवश्य रखना चाहिए कि जिन लेखों या प्रमाणोंसे उक्त दुर्बलताका अंश प्रकट होता है वे अविश्वस्त तो नहीं हैं। अर्थात् वे किसी ऐसे मनुष्यके लिखे हुए तो नहीं हैं जो स्वयं किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक मोहसे अन्धा था—अर्थात् दूसरे सम्प्रदायका गौरव घटानेके लिए तो उसने उक्त प्रयत्न नहीं किया है। परन्तु ऐसे मौकोंपर भी इतिहास लेखकको धैर्य और

सत्यका आग्रह न छोड़ देना चाहिए। हृदयमें किसी प्रकारका विकार या क्रोधादि न लाकर इस बातकी खूब जाँच कर लेनी चाहिए कि वास्तवमें ही उक्त प्रमाण विश्वस्त नहीं हैं। यदि थोड़ी भी शंका रह जाय तो उस शंकाको छुपा न रखना चाहिए—अपने लेखमें उसका भी उल्लेख कर देना चाहिए।

जैनधर्मके ग्रन्थोंमें, शिलालेखोंमें, पट्टावलियोंमें भारतवर्षके इतिहासकी बहुमूल्य सामग्री छुपी हुई है। भारतवर्षका जो इतिहास तैयार हो रहा है, उसको सम्पूर्ण और सुस्पष्ट बनानेके लिए जैनियोंको चाहिए कि वे अपने साहित्यका आलोढ़न और पर्यवेक्षण करके उसमेंसे महत्त्वपूर्ण तथ्योंका प्रकटीकरण करें। इससे न केवल जैनसाहित्यका महत्त्व प्रगट होगा किन्तु भारतवर्षका इतिहास भी अधूरा न रहेगा। परन्तु इस कार्यमें सफलता तब ही प्राप्त हो सकेगी जब कि हम इतिहासको इतिहासकी ही दृष्टिसे देखेंगे। ऐसा न करके यदि हम धार्मिक पक्षपातमें पड़ जावेंगे, अपने इतिहासको यदि हम भारतके इतिहासका ही एक अंश न समझेंगे—केवल अपना ही महत्व प्रकट करनेवाला समझेंगे, तो हमारा विश्वास उठ जायगा और जो काम हम करना चाहते हैं वह हमसे यथेष्ट रूपमें न हो सकेगा।

हमारा कुछ आधुनिक कथासाहित्य ऐसा है जिसमें बहुतसे सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषोंके चरित निबद्ध हैं और जहाँ तक हमने इस विषयमें विचार किया है वे सर्वथा भ्रमशून्य नहीं है। इतिहासकी दृष्टिसे वे लिखे भी नहीं गये, केवल धर्मप्रभावनाको प्रकट करनेके खयालसे लिखे गये हैं। भक्तामरस्तोत्रके कर्त्ता मानतुङ्गसूरिके विषयमें हमारे यहाँ जो कथायें हैं वे चार पाँच प्रकारकी हैं और प्राय: एक दूसरीसे विरुद्ध हैं। एक कथाका पं० जयचन्द्रजीने अनुवाद किया है

उसमें राजा भोजके समयमें बाण, मयूर, कालिदास आदि भिन्न भिन्न समयवर्ती प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियोंको एकत्र कर दिया है। श्वेताम्बर-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी इसी ढँगकी एक कथा है। एक कथा भट्टारक विश्वभूषणके भक्तामरचरितमें है जिसका कि अनुवाद पं० विनोदीलालजीने किया है। इसमें भोज, भर्तृहरि, शुभचन्द्र, कालिदास, धनंजय, वररुचि, मानतुङ्ग आदि सबको समसामायिक बतलाया है और अन्तमें यह बतलाया है कि भोज और कालिदासने जैनधर्म स्वीकार कर लिया! परन्तु भोजदेव और कालिदासके ग्रन्थों तथा शिलालेखोंसे इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता-प्रत्युत उनके वेदानुयायी होनेके ही सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। इन सब कथाओंमें जब यह लिखा है कि राजा भोजके द्वारा अड़तालीस या चवालीस कोठरियोंके भीतर कैद किये जानेपर मानतुङ्गसूरिने भक्तामरस्तोत्रकी रचना की, तब आचार्य प्रभाचन्द्रने भक्तामरकी संस्कृत टीकाके प्रारम्भमें लिखा है कि मानतुङ्ग पहले बौद्ध थे, जैनधर्म ग्रहण करनेपर उन्होंने अपने दीक्षागुरुके कहनेसे यह स्तोत्र बनाया! योगिराट् पण्डिताचार्यने पार्श्वाभ्युदयकी टीकामें मेघदूतके कर्त्ता कालिदासके जिनसेनस्वामी द्वारा अपमानित होनेकी कथा लिखी है। परन्तु भगवज्जिनसेन कालिदाससे बहुत पीछे हुए हैं और इसके लिए आयहोलीके जैनमन्दिरका कविवर रविकीर्तिकृत शिलालेख बहुत ही पुष्ट प्रमाण है। दर्शनसारके कर्त्ता देवसेनसूरिने काष्ठासंघकी उत्पत्ति शक संवत् ७९३ में बतलाई है और उसका उत्पादक, जिनसेनके सतीर्थ विनयसेनके शिष्य कुमारसेनको बतलाया है; परन्तु बुलाकीदासजीने अपने वचनकोशमें काष्ठासंघके उत्पादक लोहाचार्यको बतलाकर काठकी प्रतिमा पूजने आदिके सम्बन्धमें एक कथा ही गढ़ डाली है। आराधनाकथाकोशमें लिखा है कि अक-

लङ्कभट्ट पुरुषोत्तम नामक ब्राह्मणके पुत्र थे; परन्तु भट्टाकलङ्कके ही बनाये हुए राजवार्तिकमें एक श्लोक है, उससे मालूम होता है कि वे लघु 'हव्व' नामक नृपतिके ज्येष्ठ पुत्र थे। वह श्लोक यह है:—

जीयाच्चिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहव्वनृपतिवरतनयः।
अनवरतनिखिलविद्वज्जननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः॥

बहुतसी कथायें ऐसी हैं जिनमें दो महापुरुषोंके चरित इस तरह लिखे गये हैं कि उनमें एक दूसरेका अनुकरण करके लिखे जानेका भ्रम होता है। जैसे श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेनसूरिकी और दिगम्बराचार्य समन्तभद्रस्वामीकी कथा। इनमेंसे एकने अपने प्रभावसे उज्जैनके महाकालेश्वरका लिङ्ग फाड़कर उसमेंसे जिन भगवानकी प्रतिमा प्रगट की और दूसरेने काशीमें महादेवका लिङ्ग फाड़कर चन्द्रप्रभकी प्रतिमा प्रगट की! अनेक कथायें ऐसी भी हैं जिनमें वैदिक और बौद्धधर्मके प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजाओं और विद्वानोंके विषयमें यह कहा गया है कि वे पीछेसे जैनधर्मानुयायी हो गये थे। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें बहुतसी कथायें ऐसी भी हैं जिनमें उमास्वाति, सिद्धसेन, मानतुङ्ग, भूपाल, आदि आचार्योंको अपना अपना बतलानेका प्रयत्न किया गया है। अर्थात् इन विद्वानोंको एक कथा श्वेताम्बर सम्प्रदायका बतलाती है और दूसरी दिगम्बर सम्प्रदायका।

हम यह नहीं कहते कि इन कथाओंमें कुछ भी तथ्य नहीं है अथवा ये बिलकुल ही मिथ्या हैं; परन्तु जो लोग इतिहासकी खोज करना चाहते हैं और सत्यान्वेषी हैं उनसे यह प्रार्थना अवश्य कर देना चाहते हैं कि वे इन कथाओंपर एकाएक पूर्ण विश्वास न कर बैठें और न इन कथाओंके तथ्योंको ही अपना उद्देश्य मानकर उनके पुष्ट

करनेके लिए जमीन आसमान एक कर डालें। जब कोई इतिहासज्ञ विद्वान् किसी व्यक्तिके समयका पता लगाना चाहता है, तब वह पहलेसे किसी ऊँटपटाँग समयकी कल्पना करके फिर उसके सिद्ध करनेवाले प्रमाण नहीं ढूँढ़ता; किन्तु इस विषयके जितने प्रमाण मिल सकते हैं उनका संग्रह करके फिर उनका तारतम्य मिलाकर समय निश्चित करता है। इसी तरहसे इन कथाओंमें कही हुई बातोंको सिद्ध करनेका निश्चय करके फिर उनकी पुष्टिके लिए अस्तव्यस्त प्रमाण ढूँढ़ना ठीक नहीं। चाहिए यह कि पहले प्रमाण ढूँढ़े जावें और फिर उनपरसे कथाओंकी सत्यता सिद्ध की जावे। भक्तामरकी इस कथाको स्वयंसिद्ध मानकर कि बाण, मयूर, भोज और कालिदास एक समयमें थे—जो महाशय ढूँढ़ खोज करेंगे, संभव है कि उन्हें दो चार इतिहासानभिज्ञ एतद्देशीय विद्वानोंके और चार छह चञ्चुप्रवेशकारी यूरोपियन विद्वानोंके ऐसे प्रमाण मिल जावें, जिनसे यह समकालीनता सिद्ध हो जावे; और इससे वे आपको कृतकृत्य समझ बैठें; परन्तु इस प्रकारकी सिद्धि करना एक बात है और ऐतिहासिक सत्यकी खोज करना दूसरी बात है। विक्रमकी सातवीं शताब्दीके कान्यकुब्जाधिपति महाराज श्रीहर्षके सभाकवि बाण मयूरको, महाराज विक्रमादित्यके समयवर्ती महाकवि कालिदासको और ग्यारहवीं शताब्दीके परमारवंशीय महाराज भोजको एक जगह बिठलानेका साहस कोई इतिहाससेवक तो नहीं कर सकता। इसके सिवा हमें यह भी तो सोचना चाहिए कि हमारे ही जुदा जुदा कथा-ग्रन्थोंमें जब एकवाक्यता नहीं है तब इन कथाओंको—केवल इसलिए कि ये हमारी हैं—प्रमाणभूत कैसे मान लिया जाय? पहले इनकी एकवाक्यता कीजिए, अथवा रचयिताओंकी योग्यतापर विचार करके किसी एकको विशेष प्रामा-

णिक मानिए और फिर दूसरे शिलालेखादि बाहरी प्रमाणोंसे उसकी पुष्टि कीजिए और तब उनका ऐतिहासिक सत्यके रूपमें प्रचार कीजिए।

उक्त कथाओंके समान हमारी पट्टावलियाँ भी भ्रमसे खाली नहीं हैं। जहाँसे पट्टावलियोंका प्रारम्भ होता है, वहींसे आचार्योंका समय ठीक ठीक नहीं मिलता। मूलसंघके जिन जिन आचार्योंके ग्रन्थादि मिलते हैं अथवा शिलालेखादिसे उनका समय निश्चित होता है, पट्टावलीसे उस समयको मिलाइए तो नहीं मिलता। ऐसी दशामें लेखक लोग कभी तो पट्टावलियोंके सम्वतको विक्रम संवत मान लेते हैं और कभी शक संवत् मान लेते हैं और जब इससे भी पूरा नहीं पड़ता, तो विक्रम और शकके जन्म और मृत्युके दो दो जुदा जुदा संवत् मानकर अपना काम निकालते हैं। इस भ्रमका कारण यह माळूम होता है कि या तो असली पट्टावलियाँ नष्ट भ्रष्ट हो गई हैं या वे हमारे प्राचीन भण्डारोंमें कहीं छुपी हुई पड़ी हैं और उनके स्थानमें दो सौ चार सौ वर्ष पहलेके भट्टारकोंकी बनाई हुई पट्टावलियाँ प्रचलित हो गई हैं और रचयिताओंकी इतिहासानभिज्ञताके कारण उनमें भूलें हो गई हैं। ऐसी दशामें इतिहासशोधकोंको चाहिए कि वे प्रयत्न करके इनका संशोधन करें, इनके यथार्थत्वका पता लगावें और जब तक इस विषयमें सफलता न हो, तब तक किसी आचार्यके समयादिका निर्णय करते समय केवल इन्हींपर अवलम्बित न रहें।

यदि सत्य कहना कोई अपराध न हो, तो हमें कहना पड़ेगा कि हमारा आधुनिक साहित्य—वह साहित्य जिसे कि बहुत करके पिछले पाँच सौ छह सौ वर्षके भट्टारकोंने या दूसरे विद्वानोंने लिखा है और जिसका बहुभाग कथाओंसे परिपूर्ण है प्रायः दुर्बल, भ्रमपूर्ण, संकीर्ण और निम्न-

श्रेणीका है। और आश्चर्यकी बात यह है कि इस समय इसीका सबसे अधिक प्रचार है। कथासम्बन्धी दशवीं ग्यारहवीं शताब्दीके पहलेके प्राचीन ग्रन्थोंके तो कहीं दर्शन भी नहीं होते हैं। ऐसी दशामें इतिहासशोधकोंको चाहिए कि वे इस पिछले कथासाहित्यसे जो प्रमाण संग्रह करें उन्हें बहुत विचारके साथ उपयोगमें लावें-उनके विषयमें सर्वथा निःशङ्क न हो जावें।

जो लोग जैनधर्मका इतिहास लिखना चाहते हैं, उन्हें सारी दुनियाँका नहीं, तो कमसे कम भारतवर्षके समग्र ऐतिहासिक ग्रन्थोंका अध्ययन अवश्य करना चाहिए। केवल जैनसाहित्यकी खोजसे ही जैनियोंका इतिहास बन जावेगा, ऐसा खयाल करना गल्त है। क्योंकि भारतवर्षसे–भारतवर्षके दूसरे धर्मोंसे–जन साधारणसे जैनधर्म कभी जुदा नहीं रहा। जिस तरह जैनसाहित्यकी सहायताके बिना समग्र भारतका इतिहास सम्पूर्ण नहीं होता, उसी तरह भारतके इतिहासकी सहायताके बिना जैनधर्मका इतिहास भी नहीं बन सकता।

इतिहासकी भाषामें और साहित्यकी भाषामें भेद होता है। जहाँ साहित्यकी भाषा अलङ्कार और आडम्बरपूर्ण होती है, वहाँ इतिहासकी भाषा सीधीसादी मर्यादित और तुली हुई होती है। हमारे इतिहासलेखकोंका ध्यान इस ओर बहुत कम है। वे जब किसी जैनाचार्य या जैनराजाका इतिहास लिखते हैं, तब इतिहास लिखना छोड़कर अत्युक्ति और आडम्बरपूर्ण काव्य लिखने लगते हैं। यह न होना चाहिए, इतिहासका प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द मर्यादासे बाहर न जाना चाहिए।

इतिहासमें अनुमानसे बहुत काम लेना पड़ता है; परन्तु उस अनुमानकी भी तो कुछ सीमा है? हमने बहुतसे लेखोंमें पढ़ा है कि उनके

लेखकोंने यदि कहींपर कोई प्राचीन प्रतिमा पा ली और उसमें कोई सन् संवत् लिखा न पाया, तो बस उन्होंने उसी समय लिख मारा कि 'यह प्रतिमा अनुमानसे चौथे कालकी माद्धम होती है!' भला, यह भी कोई अनुमान है? ऐसे अनुमानोंसे इतिहासलेखकोंको बचना चाहिए।

किसी व्यक्तिका समय, उसकी रचना और उसका पाण्डित्य आदि लिख देना ही इतिहास नहीं है। इतिहासमें इन बातोंका विशेष महत्त्व नहीं। उस समयके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जगतकी क्या अवस्था थी, लोगोंके विश्वास कैसे थे, कौनसे धर्मकी प्रधानता और प्रचारबहुलता थी, उनके रीतिरवाज, आहारविहार, वेषभूषा आदि कैसे थे, धार्मिक स्थिति कैसी थी, नगरों और ग्रामोंकी क्या अवस्था थी, विदेशियोंसे कहाँतक सम्बन्ध था, उस समय जो युद्धादि हुए उनके वास्तविक कारण क्या थे, युद्धादिके कारण प्रजाकी शान्ति कहाँतक भंग होती थी, सङ्घशक्ति कैसी थी, विद्याचर्चा कितनी थी और वह किस तरह चलती थी, लोगोंमें स्वार्थत्याग, परार्थपरता, देशभक्ति आदिके भाव कैसे थे, इत्यादि बातोंका इतिहासमें विशेषताके साथ विचार होना चाहिए। इतिहासका यही भाग लोगोंके लिए विशेष पथप्रदर्शक होता है; परन्तु हम लोगोंका ध्यान इसी ओर बहुत कम जाता है।

लगभग १०-१२ वर्ष पहले लाला बनारसीदासजी एम. ए. एल एल. बी. ने एक जैन इतिहास सुसाइटी स्थापित की थी और उसकी ओरसे एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई थी; परन्तु वह थोड़े ही दिन चलकर लालासाहबके उदासीन होजानेके कारण बन्द हो गई। उस समय इस विषयकी ओर लोगोंका बहुत कम ध्यान था; परन्तु अब समय आगया है कि जैनी अपनी एक 'इतिहास समिति' स्थापित करें. और उसके द्वारा अपने इतिहासकी यत्र तत्र पड़ी हुई सामग्रीको संग्रह

करें, नई नई खोजें करें और भारतके इतिहासके एक बहुत ही आवश्यक अङ्गकी पुष्टि करें।

प्रस्तावित हाईस्कूल और कालेज।

यह बड़े ही सन्तोषका विषय है कि कुछ समयसे जैनसमाजका ध्यान शिक्षाविस्तारकी ओर आकर्षित हुआ है और इस विषयमें अब वह अपनी चालको बराबर बढ़ाता जा रहा है। कुछ वर्षोंसे शायद ही कोई वर्ष ऐसा जाता हो जिसमें जैनसमाजकी ओरसे दो चार शिक्षासंस्थाओंका जन्म न होता हो। इन संस्थाओंपर लोगोंकी श्रद्धा भी बढ़ती जाती है और इस कारण संस्थाओंको आर्थिक सहायता भी अच्छी मिलने लगी है। यद्यपि अभीतक जैनसमाज कोई उच्च श्रेणीकी आदर्श शिक्षा संस्था स्थापित नहीं कर सका है, तो भी कुछ समयसे समाजके गण्यमान्य धनिकोंका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ जान पड़ता है और इससे आशा होती है कि अब वह ऐसी भी संस्थायें खोलनेके लिए समर्थ हो सकेगा।

इस समय जैनियोंमें बोर्डिंग हाऊस, संस्कृत विद्यालय, पाठशाला आदि अनेक संस्थायें हैं; परन्तु उच्च श्रेणीकी लौकिक शिक्षा देनेकी स्वतन्त्र संस्था एक भी नहीं है। इस लिए समाजके जो शिक्षित अगुए हैं वे चाहते हैं कि हमारे दश पाँच स्वतन्त्र हाईस्कूल और कमसे कम एक स्वतन्त्र कालेज स्थापित हो जाय। वे कहते हैं कि आर्यसमाज, सिक्ख समाज, ब्रह्मसमाज आदिके जब स्वतन्त्र हाईस्कूल और कालेज हैं तब जैनसमाजके क्यों न हों? हिन्दू और मुसलमान लोग जब अपनी अपनी स्वतन्त्र यूनीवर्सिटियाँ खोल रहे हैं, तब क्या जैनी एक कालेज भी स्थापित न कर सकेंगे?

इसका उत्तर यह है कि जैनी यदि चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं और यदि वे सबसे पीछे न जागे होते, तो अब तक उनके हाईस्कूल और कालेज भी खुल चुके होते; परन्तु वे सबसे पीछे जागे हैं और एक दृष्टिसे विचार किया जाय तो उनके लिए यह बुराईमें भी भलाई-की सूरत निकल आई है—यह पीछेका जागना उनके लिए लाभकारी हुआ है। जिस मार्गपरसे वे जाना चाहते थे वह मार्ग वास्तवमें सुख प्रद है या नहीं, इस बातका निश्चय अब वे घर बैठे ही कर सकते हैं—इसके लिए उन्हें जोखिममें पड़नेकी जरूरत नहीं।

यदि हमारा केवल यही अभीष्ट हो कि जैसा दूसरोंने किया है और कर रहे हैं—वैसा ही हम करें, तो इसमें रुकावट डालनेकी किसीको आवश्यकता नहीं, खुशीसे कीजिए; परन्तु यदि हमारा अभीष्ट यह है कि हम विद्याकी उन्नति करें, तो हमें चाहिए कि हम जिनका अनुकरण करना चाहते हैं उनकी अच्छी तरहसे जाँच कर लें और विश्वास कर लें कि वे जिस मार्गपर चल रहे हैं वह सचमुच ही लाभकारी है या नहीं। हमें अपने पीछे पड़े रहनेसे इस लाभको कदापि हाथसे न जाने देना चाहिए।

भारतवर्षको अँगरेजीके हाईस्कूलों और कालेजोंसे कितना लाभ पहुँचा है, वास्तविक शिक्षाका कितना विस्तार हुआ है, वास्तविक मनुष्य कितने तैयार हुए हैं और यह अँगरेजी शिक्षा हमारे लिए स्वाभाविक शिक्षा है या नहीं; इन सब बातोंका उत्तर वे लोग दे सकते हैं जो शिक्षाशास्त्रके ज्ञाता हैं, जिन्होंने अपने जीवनका अधि-कांश समय इसी विषयकी आलोचनामें व्यतीत किया है और जिन्होंने जुदा जुदा देशोंकी शिक्षाप्रणालीके साथ भारतकी शिक्षाप्रणालीका मिलान किया है। वर्तमानमें शिक्षा विषयने एक स्वतन्त्र विज्ञानशा-

स्त्रका रूप धारण कर लिया है और उसका पारंगत होना दूसरे विज्ञानशास्त्रोंके समान ही कठिन है। उन्नत भाषाओंमें शिक्षाविज्ञानके सैकड़ों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बन चुके हैं। हमारी पीछे पड़ी हुई हिन्दीमें भी 'शिक्षा' आदि एक दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। गरज यह है कि इस समय हमारे सामने जो शिक्षासम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित है—हम जो यह निश्चय करना चाहते हैं कि जैनियोंको किस प्रकारकी शिक्षासंस्थायें स्थापित करना चाहिए, दूसरे लोगोंके अनुकरणस्वरूप हाईस्कूल और कालेज खोलना चाहिए या कि उनमें कुछ विशेषता होना चाहिए, इसका निर्णय करना बहुत ही कठिन कार्य है। यह न केवल पुराने विचारोंके अनुयायी पण्डितोंका कार्य है और न केवल नई सभ्यताकी रोशनीसे चकचोंधे हुए अनुभवहीन बाबुओंका कार्य है। यह उनका कार्य है जिन्होंने इस विषयका स्वयं अनुभव किया है, और शिक्षाविज्ञानके ग्रन्थोंका बारीकीके साथ अध्ययन किया है।

भारतमें इस समय जो सरकारी और गैर-सरकारी हाईस्कूल तथा कालेज हैं उनमें जो प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च श्रेणीकी शिक्षा दी जाती है, वह सब अँगरेजी भाषाके द्वारा दी जाती है। अर्थात् हमारे विद्यार्थियोंको सहजसे सहज और कठिनसे कठिन सब ही विषय अँगरेजी भाषाके द्वारा सीखने पड़ते हैं। इनमेंसे जो हाईस्कूल और कालेज खास खास समाजों और सम्प्रदायोंके हैं उनमें इतनी विशेषता है कि वहाँ घण्टे दो घण्टे कुछ धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी दी जाती है और थोड़ा बहुत प्रयत्न साप्रादयिक भावोंके बढ़ानेके लिए भी किया जाता हैं; परन्तु कोर्स सबमें सरकारी यूनीवर्सिटियोंका ही होता है। क्योंकि इसके विना सरकार उनकी शिक्षाको मान्य नहीं करती—विद्यार्थी बी. ए. एम. ए., आदिकी पदवियाँ प्राप्त नहीं

कर सकते। जैनी चाहते हैं कि इसी प्रकारके हाईस्कूल और कालेज हम भी स्थापित करें। उनका खयाल है कि हमारे बालक सरकारी स्कूलों और कालेजोंमें पढ़कर अपने जैनत्वको भूल जाते हैं, धार्मिक भाव उनमें नहीं रहते और इस कारण अपने समाजकी सेवा करनेकी और उनकी रुचि नहीं होती। हमारे निजी स्कूलों और कालेजोंके होने यह त्रुटि दूर हो जायगी।

परन्तु, क्या इन हाईस्कूलों और कालेजोंकी शिक्षामें केवल इतनी ही त्रुटि है? और क्या इस त्रुटिके दूर होते ही वे पूर्ण हो जायँगे? नहीं, शिक्षाविज्ञानके ग्रन्थोंके पढ़नेसे माळूम होता है कि वर्तमान स्कूल और कालेजोंकी शिक्षा भारतवर्षके लिए बिलकुल ही अस्वाभाविक अनुपयोगी और जडत्वका प्रचार करनेवाली है। बंगालके जगत्प्रसिद्ध स्वाधीन लेखक और एशियाके सर्वश्रेष्ट कवि श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुरने शिक्षासम्बन्धी जो आठ दश लेख प्रकाशित किये हैं, उनका पाठ करनेसे माळूम होता है कि हम लोग शिक्षाविस्तारके लिए जो उद्योग कर रहे हैं वह बिलकुल ही उलटे मार्गसे हो रहा है। उनके लेख पुकार पुकार कर रह रहे हैं कि यदि हमें वास्तविक शिक्षाका विस्तार करना है, जैसे चाहिए वैसे शिक्षित तैयार करना है, स्वाधीनचेता विद्वानोंकी हमें जरूरत है, गुलामगीरीसे हमें सचमुच ही घृणा हो गई है और सभ्यदेशोंकी पंक्तिमें बैठनेकी हमारी इच्छा है तो शिक्षाके मार्गको हमें बिलकुल बदल देना चाहिए और इस विषयमें सरकारी कृपाकी आशा न रखकर हमें स्वयं ही अपने पैरोंसे खड़े होनेका साहस दिखलाना चाहिए।

रवीन्द्रबाबू इस बातके सख्त विरोधी हैं कि किसी देशके विद्यार्थियोंको उनकी मातृभाषाका अपमान करके किसी विदेशी भाषामें

शिक्षा दी जाय। अँगरेजी भाषा हम लोगोंके लिए बिलकुल ही विजातीय भाषा है। उसका प्रत्येक शब्द हमें याद करना पड़ता है। उसके शब्दविन्यास, पदविन्यास, भावविन्यास और विषयप्रसङ्ग आदि सब ही बातोंसे हम अपरिचित रहते हैं। इसलिए धारणाशक्ति उत्पन्न होनेके पहले ही हमें कण्ठस्थ करने या रटनेका अभ्यास करना पड़ता है। इससे हमारी वही दशा होती है जो अन्नको बिना चबाये ही निगल जानेवालेकी होती है। अर्थात् जो कुछ हम पढ़ते हैं उसे हजम नहीं कर सकते, उसे केवल तोते जैसा रट भर लेते हैं। इस शिक्षाका हमारे मनपर परिणाम नहीं होता। अँगरेजी इतनी कठिन भाषा है कि उसमें प्रवेश करनेमें ही हमारा बहुत बड़ा समय चला जाता है। केवल भाषाके सीखनेमें हमारा जो समय लग जाता है, उस समयका यदि सदुपयोग होता अर्थात् हमें अपनी मातृभाषामें शिक्षा मिलती तो हम अपनी भाषा भी अच्छी तरहसे सीख लेते और जो विषय हमें पढ़ाये जाते उनके भावोंको भी अच्छी तरह अपने हृदयमें बिठा लेते। परन्तु विदेशी भाषाके व्याकरणकी और रटन्त विद्याकी शिलावृष्टि निरन्तर होते रहनेके कारण हमारा मन कुचल जाता है—वह पुष्ट और बलवान् नहीं हो सकता। प्रायः वीस वर्षकी अवस्था तक निरन्तर सिरपच्ची करते रहनेके बाद हमारे बालक बड़ी कठिनाईसे अँगरेजी भाषापर अपना अधिकार जमा पाते हैं; परन्तु इतने दिनों तक उनके मनोंको लङ्घनें करना पड़ती हैं अर्थात् उन्हें भावोंके ग्रहण करनेकी तथा स्वाधीनतापूर्वक सोचने विचारनेकी खुराक नहीं मिलती और इस कारण उनकी यह शक्ति नष्ट हो जाती है। धारणा या स्मरणशक्ति भी उनकी पक्की नहीं होने पाती। क्योंकि यह तब ही पक्की होती है जब सीखे हुए विषयोंके प्रकट करते

रहनेका भी अभ्यास होता रहे । परन्तु यह होता नहीं। कारण किसी विदेशी भाषाका जिस तरह ग्रहण करना कठिन है उसी तरह उसका प्रकाशित करना और भी कठिन है । इस तरह प्रकाशित करनेका अभ्यास न रहनेसे बालक जो कुछ पढ़ते हैं उसपर उनका दृढ अधिकार नहीं होने पाता। केवल 'पास होनेकी कुंजियाँ' रट-रटाकर काम निकाल लेना पड़ता है। बालकोंकी जो उमर केवल भाषाके सीखनेमें चली जाती है, वही एक ऐसी अवस्था है जब मन बिना जाने—अज्ञातभावसे अपने खाद्यको खींच सकता है। उस समय ही वह ज्ञान और भावको अपने रक्तमांसके साथ अच्छी तरहसे मिलाकर अपनेको सजीव और समर्थ बना सकता है। किन्तु छात्रोंका यही समय व्याकरण और कोशके ऊसर और नीरस मैदानमें मार दिया जाता है। इससे उनकी बुद्धिका और स्वास्थ्यका कितना घात किया जाता है, इसका कुछ हिसाब नहीं।

विचारशक्ति और कल्पनाशाक्ति ये दो शक्तियाँ जीवन निर्वाहके लिए बहुत ही आवश्यक हैं। इनके विना कोई वास्तविक मनुष्य नहीं बन सकता। इनके बढ़ानेकी ओर बालकपनसे ही लक्ष्य देना चाहिए। यदि उस समय इनका ध्यान न रक्खा जायगा तो कामकाजके समय छात्रोंके चाहते ही ये उन्हें तैयार नहीं मिल सकतीं। हमारी अँगरेजी शिक्षाप्रणालीमें इनके बढ़ानेका मार्ग भी एक तरहसे बन्द है। क्योंकि अँगरेजी इतनी कठिन भाषा है और स्कूलोंके प्रारंभिक मास्टर इतने अल्पबुद्धि होते हैं कि बालकोंके मनोंमें भाषाके साथ साथ भावोंका सहज ही प्रवेश नहीं होने पाता। इसी लिए अँगरेजी भावोंका थोड़ासा परिचय प्राप्त करनेके लिए भी बालकोंकाबहुत समयय लग जाता है और तब तक उनकी विचारशक्ति अपन योग्य किसी

कामको न पाकर बिलकुल ही निश्चेष्ट या निकम्मी पड़ी रहती है। एण्ट्रेन्स और फर्स्ट आर्टतक तो उनका समय केवल साधारण अँग-रेजी सीखते ही जाता है कि इसके बाद ही एकाएक बी. ए. में उनके सामने बड़े बड़े पोथे और अतिशय विचारसाध्य विषय रख दिये जाते हैं। परन्तु इस समय न तो उनको अच्छी तरह समझनेका अवसर ही मिलता है और न छात्रोंकी इतनी शक्ति ही रहती है—तब उन्हें सबको मिलाकर और एक बड़ासा गोला बना कर एक ही कौरमें एक ही साथ निगल जाना पड़ता है। फल यह होता है कि बी. ए. एम. ए. की डिगरियाँ तो छात्रोंको किसी तरह मिल जाती है; परन्तु उनका पढ़ा हुआ उन्हें अच्छी तरह हजम नहीं होता—पठित विषयों-का परिपाक होकर उनके मनको पुष्ट नहीं कर सकता—मनकी कल्पना शक्ति और विचार शक्ति विकसित नहीं होने पाती।

शिक्षाका परिणाम जिस तरह मन पर होना आवश्यक है उसी प्रकार मनुष्यके जीवन पर भी होना चाहिए। परन्तु अँगरेजी शिक्षा-प्रणाली हमारे जीवनसे भी जुदा रहती है। छात्रोंकी विद्या बढ़ती है एक ओर, और उनका जीवन जाता है दूसरी ओर। इसका कारण एक तो यह है कि जब तक हमारे बालक भाषा सीखते हैं तब तक भावोंके सीखनेका उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता और जब उनके मनपर भावोंका परिणाम नहीं होता, तब उनका जीवन भी शिक्षाके अनुकूल नहीं बन सकता। वे केवल रटी-रटाई थोड़ीसी बातोंका बोझा खींचते हुए बालकपनसे कैशोर और किशोरावस्थासे यौवनमें प्रवेश करते हैं। सरस्वतीके साम्राज्यमें वे केवल मजदूरी करके मरते हैं। रटते रटते उनकी कमर झुक जाती है, परन्तु उनके मनु-ष्यत्वका सर्वाङ्गीण विकाश नहीं होने पाता। आगे जब वे भाषा-

शिक्षासे थोड़ी बहुत छुट्टी पाकर अँगरेजी भावराज्यमें प्रवेश करते हैं तब वहाँ भी अच्छी तरह अन्तरङ्गके समान तन्मय होकर विहार नहीं कर पाते। यद्यपि उन भावोंको वे किसी तरह समझ लेते हैं; परन्तु अपने मर्मस्थलमें स्थापित नहीं कर सकते; अपने व्याख्यानों और लेखोंमें व्यवहार करते हैं, किन्तु जीवनके कार्यमें परिणत नहीं कर सकते। अर्थात् वे भाव उनके बाहर-ही-बाहर रह जाते हैं, अन्तरंगके साथ-जविनके साथ उनका सम्बन्ध नहीं होता। दूसरा कारण यह है कि हमारे बालकोंको जिस भावसे या जिस ढँगसे जीवननिर्वाह करना है, अँगरेजी शिक्षा उसके अनुकूल नहीं। उन्हें जिस घरमें जीवन भर रहना है उस घरका उन्नत चित्र उनकी पाठय पुस्तकोंमें नहीं रहता; जिस समाजमें उन्हें उमर बितानी है उस समाजका कोई उच्च आदर्श अँगरेजी साहित्यमें नहीं रहता; वे अपने मातापिताओंको, भाईबहिनोंको, मित्रबन्धुओंको उसमें नहीं देख पाते, उनके दैनिक कार्यकलाप उसमें स्थान नहीं पाते, उनके आकाश और पृथिवी, निर्मल प्रभात और सुन्दर सन्ध्या, मनोमोहक हरेभरे खेत उसमें दिखालाई नहीं देते और उनकी देशलक्ष्मी रूप नदीकी कलकल ध्वनि उसमें सुनाई नहीं पड़ती। अतएव उनकी शिक्षाके साथ उनके जीवनका जैसा चाहिए वैसा सघन मिलन नहीं हो सकता; दोनोंके बीच एक बड़ा भारी अन्तर अवश्य रहेगा। इस शिक्षासे उनके जीवनकी सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति कभी न हो सकेगी। जिस जगह उनके जीवनकी दीवाल खड़ी हुई है वहाँसे सैकड़ों हाथोंकी दूरीपर उनकी शिक्षाकी वृष्टिधारा पड़ती है, ऐसी अवस्थामें जो कुछ रस बीचकी रुकावटोंको दूर करके उनके पास तक जा पहुँचता है, वह उनके जीवनकी शुष्कता दूर करनेके लिए यथेष्ट नहीं। तब उनका यह शिक्षा उपकार क्या करती है? यही कि इसकी कृपासे वे नौकरी करनेके योग्य बन जाते हैं।

इस तरह भाषा, भाव और जीवनके असामञ्जस्यके कारण अँगरेजी शिक्षाप्रणाली हम लोगोंके लिए कल्याणकारी नहीं। जिस शिक्षामें इन तीनोंका सामञ्जस्य नहीं,—समतुल्यता नहीं,वह शिक्षा ही नहीं, एक प्रकार-का बोझा है। भारतमें अँगरेजी शिक्षाका प्रचार हुए पचास वर्षसे अधिक हो गये; परन्तु उसका परिणाम जितना अच्छा होना चाहिए उतना नहीं हुआ। बतलाइए, यहाँ नई नई बातोंका पता लगानेवाले आविष्कारक, स्वाधीन प्रतिभाशक्तिका परिचय देनेवाले मेधावी, ग्रन्थकर्त्ता, लेखक, आदि कितने हैं? यदि अँगुलियोंपर गिनने लायक थोड़े बहुत हैं भी, तो इसमें इस शिक्षाप्रणालीकी कुछ कृपा नहीं। वे अपनी स्वाभाविक शक्तिके जोरसे ही अपना मस्तक ऊँचा उठानेको समर्थ हुए हैं—इसका यश अँगरेजी शिक्षाको नहीं मिल सकता। इन्हें छोड़कर और जितने हैं—भले ही वे साधारण दृष्टिसे उन्नत दिखते हों—प्रायः वे सब ही दूसरोंके पदचिह्नोंपरसे चलनेवाले, दूसरोंकी ध्वनिकी अपने ढँगसे प्रतिध्वनि करनेवाले, परावलम्बी, अनुकरणकारी, और प्रतिभाहीन हैं—उनमें निजकी कोई शक्ति नहीं। आयर्लेण्ड पर भी इस शिक्षाका यही प्रभाव पड़ा है। जिस समय वहाँके विद्यालयोंमें वहाँकी मातृभाषा आइरिशमें शिक्षा दी जाती थी, उस समय आयर्लेण्डकी विद्याका सारे यूरोपमें शोर था; परन्तु जब आइरिश भाषाका स्थान अँगरेजीको दिया गया, तब वहाँ भी ऐसे ही शिक्षित तैयार होने लगे जैसे कि हमारे देशमें होते हैं। इसके विरुद्ध जापानने थोड़े ही समयमें क्यासे क्या कर दिखाया? इसमें सन्देह नहीं कि उसने जापानियोंको सारी शिक्षा अँगरेजी ढँगकी ही दी; परन्तु दी उनकी मातृभाषामें। अपने देशके बालकोंको उसने विदेशी भाषाके कारागारमें कैद रखकर निःसत्व नहीं बनाया, किन्तु उनकी मातृभाषाका स्वाभाविक दूध पिलाकर उनके

मनको और जीवनको सबल, सरस और सफल बनाया। इसीका यह फल है कि आज जापान विद्या विज्ञानादि विषयोंमें किसी भी सभ्य देशसे पीछे नहीं। जिस समय भारतकी शिक्षाका प्रश्न अँगरेज गवर्नमेण्टके सामने सबसे पहले उपस्थित हुआ, उस समय उदारचेता महामति लार्ड मेकालेने कहा था कि भारतवासियोंको भारतकी ही भाषाओंमें शिक्षा देना चाहिए। यदि भारतके सौभाग्यसे मेकालेका वचन कार्यमें परिणत होता, तो आज भारतवासी भी सच्चे शिक्षित कहलानेका अधिकार प्राप्त करके संसारमें धन्य होते।

अब समय आया है कि हम इस विदेशी भाषाकी शिक्षाके दोषोंको समझ जावें और अपने हाईस्कूल और कालेज ऐसे खोलें जिनमें सब विषय देशभाषाओंके द्वारा सिखलाये जावें और हमारे बालक स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन लेकर संसारयात्राके लिए तैयार हों।

अब प्रश्न यह है कि अँगरेजी भाषा राजकीय भाषा है—उसको राजाश्रय प्राप्त है, उसके बिना हमारी गुजर नहीं। उसको छोड़कर हम कैसे चल सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि हम अँगरेजी भाषाके विरोधी नहीं, इस समय वह संसारकी सर्वमान्य भाषा है, उसका साहित्य अपार है, इसलिए उसका पढ़ना बहुत ही आवश्यक है; परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वह हमारी नहीं है और किसी तरह हमारी हो भी नहीं सकती। इसलिए उसके द्वारा देशकी सर्वसाधारण जनतामें शिक्षाप्रचारकी आशा करना व्यर्थ है। उसे हमें अपनी शिक्षासंस्थाओंमें सेकिंड लेंग्वेज या दूसरी भाषाके रूपमें पढ़ाना चाहिए और इतनेसे हमारा काम निकल सकता है। हमारे व्यवहारके काम जिससे अटक न जावें, इतनी अँगरेजी हम इस तरह सीख ले सकते हैं। अब रहा यह कि सरकारी बड़ी बड़ी नौकरियाँ,

बिकालती, आदि ऊँची अँगरेजीके बिना मिल नहीं सकतीं, सो जो केवल इस पराधीनताके लिए पढ़ना चाहते हैं उनके लिए देशमें सरकारी स्कूलों और कालेजोंकी कमी नहीं—वे उनमें खुशीसे पढ़ें; परन्तु इससे विरुद्ध इच्छा रखनेवाले भी तो लोग हैं, उनके लिए भी तो कुछ उपाय होना चाहिए। क्या नौकरीके सिवा भारतमें और कोई व्यवसाय ही नहीं रहा ?

और दूसरे लोगोंकी अपेक्षा जैनियोंमें एक विशेषत्व है। वह यह कि जैनजाति एक प्रधान व्यापारी जाति है। तब क्या जैनसमाजसे भी यही आशा रखना चाहिए कि वह भी देशकी बढ़ी हुई गुलामगीरीको और भी अधिक बढ़ानेवाली शिक्षासंस्थायें खोलेगा ? कमसे कम उसे तो अपने विशेषत्वका खयाल होना चाहिए। वह अपने हाईस्कूल और कालेज अवश्य खोले; परन्तु उनमें शिक्षा देनेकी भाषा अँगरेजी न होकर हिन्दी मराठी आदि कोई देशभाषा हो। अँगरेजी साहित्यमें जो कुछ अच्छा हो वह सब अपने बालकोंको सिखलावे; परन्तु सिखलावे सब देशभाषाओंके द्वारा। विदेशी भाषाद्वारा शिक्षा देनेकी इस दूषित प्रणालीकी ओर देशके प्रधान प्रधान विचारशीलोंका ध्यान जा चुका है और हमारे पाठकोंको मालूम होगा कि इस तरहकी चार छह शिक्षासंस्थायें देशमें स्थापित भी हो चुकी हैं तथा स्थापित करनेके प्रयत्न भी हो रहे हैं। जयपुरका वर्धमान विद्यालय और हस्तिनापुरका आश्रम हमारी ये दो संस्थायें भी कुछ कुछ इसी पद्धतिकी हैं। जैनसमाजको चाहिए कि वह इस विषयमें अच्छी तरहसे विचार करे और अपने प्रस्तावित हाईस्कूलों और कालेजोंको वास्तविक शिक्षाप्रचार करनेवाली संस्थाओंके रूपमें जन्म देवे।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

१ एक अतिशय प्राचीन शिलालेख।

अजमेरसे लगभग ३२ मीलकी दूरीपर 'भिणाय' नामका एक ग्राम है। वहाँ एक किसानके यहाँ एक पत्थर पड़ा हुआ था जो तमाखू कूटनेके काममें लाया जाता था। अजमेरके पुरातत्त्वान्वेषी श्रीयुक्त पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने जब उसे देखा, तब उन्हें शंका हुई कि इसके नीचे कोई लेख होगा। आखिर उन्होंने पत्थरको उलटवा करके देखा तो उसमें कुछ अक्षर मालूम हुए। साधारण शिक्षित लोग उन अक्षरोंको नहीं पढ़ सकते थे; परन्तु ओझाजी प्राचीन लिपियोंके पढ़नेमें सिद्धहस्त हैं। उन्होंने परिश्रम करके उक्त लेखको पढ़ लिया। यद्यपि लेख पूरा नहीं है, पत्थर खंडित होनेसे उसके बहुत अक्षर चले गये हैं तो भी जितने अक्षर मौजूद हैं वे ये हैं—

विरय भगवत....थ चतुरसीति....काये सालामालिनि........ रंणि विठ माझमिके.... । इसका अभिप्राय यह मालूम हुआ है कि महावीर भगवानसे ८४ वर्ष पीछे शालामालिनी नामके राजाने माझमिका नामक नगरीमें—जो कि पहले मेवाड़की राजधानी थी—किसी बातकी स्मृतिके लिए यह लेख लिखवाया था। अभी तक जैनियोंके जितने शिलालेख मिले हैं उनमें यह सबसे प्राचीन है। आजसे २३५६ वर्ष पहले यह लिखा गया था! उस समय वीरभगवानका निर्वाण हुए केवल ८४ वर्ष व्यतीत हुए थे, अतएव लेख लिखे जानेके समय बहुतसे ऐसे लोग भी जीते होंगे जिन्होंने भगवान्के साक्षात् दर्शन किये होंगे अथवा निर्वाणकल्याणकका तात्कालिक वृत्तान्त सुना होगा। बहुतसे लोगोंको अभी तक जो यह शंका थी कि बुद्ध और महावीर दोनों एक ही हैं—महावीर नामके कोई जुदा महात्मा हुए ही

नहीं हैं, वह इस शिलालेखसे न रहेगी। यह लेख इस बातपर भी प्रकाश डालता है कि पहले वीर निर्वाण संवत् प्रचलित था और उसका उपयोग लेखादिकोंमें किया जाता था। यह शिलालेख इस समय संभवतः अजमेरके ब्रिटिश म्यूजियममें सुरक्षित है। इसकी एक नकल हमारे पास केकड़ीकी जैनसभाके मन्त्री बाबू तिलोकचन्दजी पाटणीने भेजनेकी कृपा की है। इसके लिए हम उक्त महाशयके कृतज्ञ हैं। इस शिलालेखका विस्तृत विवरण प्रकाशित करनेका हम प्रयत्न कर रहे हैं।

---

२ जैनसाहित्य अन्धकारमें है।

जैनधर्मका प्राकृत और संस्कृत साहित्य बहुत विपुल है। परन्तु अभीतक वह अन्धकारमें पड़ा हुआ है। संसारके विद्वान् उससे बहुत ही कम परिचित हैं। जैनेतर साहित्यके विषयमें अबतक जो कुछ गवेषणा और छानबीन हुई है उसके सामने जैनसाहित्यकी छानबीन किसी गिनतीमें नहीं। वह एक तरहसे लोगोंकी दृष्टिमें कुछ महत्त्व ही नहीं रखता। चार छह देशी और विदेशी विद्वानोंका यदि इसकी ओर लक्ष्य नहीं जाता, तो अबतक इसके विषयमें जो थोड़ी बहुत चर्चा होती है, वह भी नहीं होती। इसका कारण यह है कि जैनधर्मके ग्रन्थ लोगोंको मिलते नहीं, वे अभीतक बहुत ही थोड़ी संख्यामें प्रकाशित हुए हैं और जो कुछ हुए हैं उनका सम्पादन इस ढँगसे हुआ है कि उनकी ओर लोगोंका लक्ष्य ही नहीं जाता। इस लिए जैन समाजको चाहिए कि अब वह इस ओर विशेष लक्ष्य दे और अपने ग्रन्थरत्नोंको भण्डारोंके अँधेरे कमरोंमें से निकालकर प्रकाशमें लावे। ऐसा किये बिना जैनधर्मके विषयमें जो लोगोंके भ्रमपूर्ण विश्वास हो

रहे हैं वे कभी दूर न होंगे । आषाढ़के प्रवासी नामक बंगला पत्रमें श्रीशरच्चन्द्र घोषाल एम. ए. बी. एल. विद्याभूषण काव्यतीर्थने 'जैन-धर्मग्रन्थावली' शीर्षक लेख लिखा है और उसमें गोम्मटसारके आधारसे सम्पूर्ण अंगों और उपाङ्गोंका विवरण दिया है। इस लेखके कुछ वाक्य हम यहाँ उद्धृत करते है "जैनधर्म भारतवर्षके धर्मोमें से एक प्रधान धर्म है। इस धर्मके अनुयायी बहुत बड़े बडे धनवान् हैं और उन्होंने अजस्त्र अर्थव्ययसे परम रमणीय मन्दिर बनवाये हैं, इसलिए जैनधर्मसे बहुत लोग परिचित हैं। किन्तु जैनसाहित्यमें जो अमूल्य रत्न निहित हैं उनका सन्धान अब तक बहुत ही कम हुआ है। यहाँ तक कि 'जैनधर्म बौद्धधर्मकी एक शाखा है' इस विश्वासने इतिहास तकमें स्थान पा लिया है। इसका प्रधान कारण जैनधर्मग्रन्थों और अन्यान्य पुस्तकोंकी अनभिज्ञता ही है। वास्तवमें जैनधर्म बौद्धधर्मकी शाखा नहीं है। यह एक पृथक् धर्म है।....जैनधर्मकी श्रुतियाँ अब भी प्रकाशित और अनुवादित नहीं हुई हैं ।....संस्कृत साहित्यके विषयमें बहुत गवेषणा हुई है और होती है। किन्तु विपुल प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंने जैनसाहित्यको अलङ्कृत किया है। जैनसाहित्यकी अब तक आशानुरूप गवषेणा नहीं हुई है। प्राचीन भारतका इतिहास संकलन करनेके लिए यदि जैनसाहित्यकी आलोचनाकी जायगी तो बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। जो लोग नूतन तत्त्वोंका अनुसन्धान करनेमें रत होना चाहते हैं उन्हें जैनसाहित्यके अनुशीलनमें अवश्य नियुक्त होना चाहिए। ऐसा करनेसे अनेक अमूल्य ऐतिहासिक तत्त्वोंके साथ साथ अनेक लुप्तप्राय संस्कृत ग्रन्थोंका भी उद्धार होगा।" इन वाक्योंको पढ़कर जैनियोंको चाहिए कि वे अपने साहित्यका प्रकाश करनेका प्रयत्न करें और दूसरे लोगोंको चाहिए कि वे जैनसाहित्यकी आलोचनामें प्रवृत्त होवें।

३ नेपालमें जैनधर्मकी चर्चा ।

समयने पलटा खाया है। हमको अपना धर्म इतना प्यारा है कि हम उसे अपने देशसे बाहर नहीं जाने देना चाहते। हमने इसके लिए आक्रोश आक्रन्दन बहुत कुछ मचाया, परन्तु विदेशोंके आमन्त्रण और आकर्षण हमारे धर्मको अब अपने घरमें नहीं रहने देते। विदेशोंमें अब उसकी गति होने लगी है। नेपाल आजकल हमारे लिए एक प्रकारसे विदेश ही है। वहाँ डाक्टर मजूमदार नामके एक बंगाली विद्वान् हैं। उनकी एक लड़की मिडवाइफ श्रीमती रमाबाई और दूसरी श्रीमती मोहनाबाई हैं। इस कुटुम्बको जैनधर्मसे बहुत प्रेम है। स्वर्गीय बैरिस्टर वीरचन्दजी गाँधीके अनेक व्याख्यानों तथा दूसरे ग्रन्थोंसे जैनधर्मकी इस कुटुम्बको अच्छी जानकारी है। उक्त तीनों महाशय और महाशयाओंके इस समय नेपालमें जैनधर्मके विषयमें खूब व्याख्यान हो रहे हैं। गत २५ अक्टूबरको डाक्टर मजूमदारका जो जैनधर्मके विषयमें व्याख्यान हुआ, उसका सारांश श्रीमती रमाबाईने हमारे पास भेजनेकी कृपा की है और आगे और भी व्याख्यान भेजनेका आश्वासन दिया है। इस कृपाके लिए हम श्रीमतीके कृतज्ञ हैं। स्थानाभावके कारण हम व्याख्यान प्रकाशित नहीं कर सके परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि व्याख्यान जैनधर्मकी प्रभावना करनेवाला, उसका महत्त्व बतलानेवाला और हिन्दुओं जैनियोंको परस्पर भ्रातृभाव बढानेकी शिक्षा देनेवाला है।

४ दक्षिणआफ्रिकाके भारतवासियोंपर अत्याचार !

पाठकोंको माल्रम होगा कि दक्षिणआफ्रिकामें जीवननिर्वाहके लिए हमारे देशके बहुसंख्यक लोग जा बसे हैं । एक दिन ऐसा था जब

वहाँपर भारतवासियोंकी जरूरत थी और वहाँ वे आदरपूर्वक बसाये गये थे। परन्तु आज यह दिन है कि वहाँ भारतवासियोंको घोर अपमान, अमानुषिक अत्याचार और तरह तरहके कष्ट भोगना पड़ते हैं। ट्रान्सवालमें कालोनीज गवर्नमेन्ट है। बृटिशसाम्राज्यकी छत्रछायामें रह कर वहाँवाले अपना शासन स्वयं करते हैं। भारतवासियोंमें यह बड़ा भारी दुर्गुण है कि वे बहुत ही सादगीसे रहते हैं और थोड़े खर्चमें अपनी गुजर कर लेते हैं। विलासितासे वे बहुत ही दूर रहते हैं। परन्तु इसके विरुद्ध गोरे लोगोंका खर्च बहुत ही जियादा है। सादगीसे वे अपनी गुजर कर नहीं सकते। विलासिता उनकी नसनसमें भरी हुई है। जिस व्यापारको भारतवासी थोड़ासा मुनाफा लेकर कर सकता है और उसमें अपना निर्वाह कर लेता है उसको उतने मुनाफे पर कोई भी गोरा नहीं कर सकता। बस, गोरे और कालोंकी लड़ाईका मूल कारण यही है। गोरे नहीं चाहते हैं कि काले भारतवासी यहाँ रहें और हमारे लाभके अन्तराय बनें। इसके लिए गोरोंकी गवर्नमेंटने कालोंपर अमानुषिक अत्याचार करना शुरू किये हैं जिससे कि काले लोग दुःखी होकर वहाँका निवास ही छोड़ दें। प्रत्येक भारतवासी पुरुष स्त्रीको ४९) वार्षिक टैक्स देना पड़ता है। कहीं जाने आनेके लिए खास तौरसे आज्ञा लेनी पड़ती है, अँगूठेकी छाप देनी पड़ती है। एकसे अधिक किसी भारतवासीकी स्त्री हों तो उनकी गणना वैश्याओंमें की जाती है। काले गारोंके साथ रेलमें नहीं बैठ सकते, फूटपाथोंपरसे नहीं चल सकते! गरज यह कि भारतवासियोंकी गणना मनुष्योंमेंही नहीं की जाती। पर इस अपमानको अब भारतवासी सहन नहीं कर सकते। परम स्वदेशभक्त कर्मवीर गांधी बैरिस्टरको अपना नेता बनाकर उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध करना शुरू

किया है। उन्होंने एक मन एक प्राण होकर प्रतिज्ञा की है कि जब तक दक्षिण आफ्रिकाकी गवर्नमेंट अपने अत्याचारी कानूनोंको न बदलेगी, तब तक हम उसकी आज्ञा माननेके नहीं। इसका फल यह हुआ है कि हजारों भारतवासी जेलमें जा रहे हैं, कोड़ोंकी मार खा रहे हैं, स्त्री पुत्रोंसे जुदा किये जा रहे हैं, जीविकारहित हो रहे हैं, भूखों मरते हैं और असंख्य यातनायें सहन करते हैं। इस तरह इस समय वहाँ धर्मका युद्ध बड़े जोरोशोरसे चल रहा है। भारतवर्षमें भी इसके लिए बड़ी भारी उत्तेजना फैली है। जगह जगह सभायें की जा रही हैं गोरोंके इस राक्षसी कृत्यकी निन्दा की जा रही है और अपने भाइयोंकी सहायताके लिए रुपया एकत्र करके भेजा जा रहा है। अब तक कोई एक लाखका चन्दा भेजा जा चुका है। बैरिस्टर गांधी जो कि जैनधर्मपर अगाध श्रद्धा रखनेवाले हैं इस समय अपने भाइयोंकी रक्षाके लिए जेलमें महान् तपस्या कर रहे हैं। उनकी इस अपूर्व स्वार्थत्यागकी तपस्यापर आज सारे सभ्य जगतके मुँहसे धन्य धन्यकी आवाज निकल रही है। गाँधीको विश्वास है कि हमारी इस युद्धमें अवश्य जीत होगी, पर होगी बहुत कष्टके बाद। इस समय प्रत्येक भारत सन्तानका कर्तव्य है कि उदार बनकर वह अपने भाइयोंके लिए अपनी थैलियोंके मुँह खोल दें। हम आशा करते हैं कि हमारे जैनी भाई इस पुण्य कार्यमें किसीसे भी पीछे न रहेंगे। जिन लोगोंको चन्दा भेजना हो वे माननीय मि० गोखलेकी सर्वेण्ट सुसायटी आफ इण्डियाके पास बम्बई भेज दें, या जैनमित्रके दफ्तरमें भेज दें। यहाँसे सब रकम आफ्रिका भेज दी जायगी।

---

५. तिलोकचन्द हाईस्कूल, इन्दौर।

इन्दौरमें अभी कुछ दिन पहले 'तिलोकचन्दजी हाईस्कूल'के लिए

एक कमेटी हुई थी जिसमें जैनसमाजके अनेक सुप्रतिष्ठित सज्जन और विद्वान् एकत्र हुए थे। उस समय ट्रस्टीड नियत कर दिये गये, प्रबन्धकारिणी कमेटी बना दी गई, पाठ्यपुस्तकों आदिके सम्बन्धमें विचार हुआ और आगामी माह सुदी १३ को हाईस्कूलका खोल देना निश्चित किया गया। यह जानकर पाठक और भी प्रसन्न होंगे कि जयपुरनिवासी बाबू अर्जुनलालजी सेठी, बी. ए. ने कुछ समयके लिए हाईस्कूलका प्रिन्सिपाल बनना भी स्वीकार कर लिया है।

६. जैनहितैषीका नया वर्ष।

इस अङ्कके साथ जैनहितैषीका यह वर्ष समाप्त होता है। अभी तक जैनहितैषीके ग्राहकोंको प्रतिवर्ष कोई न कोई नया ग्रन्थ उपहारमें दिया जाता था; परंतु खेद है कि हम आगामी वर्षके लिए अबकी बार कोई भी ग्रन्थ तैयार नहीं कर सके। लगभग ढाई महीनेसे हम बीमार हैं, कोई दूसरा सहायक हमारे पास हैं नहीं, हितैषीके लेखोंका लिखना ही हमारे लिए कठिन हो रहा है। ऐसी दशामें हम लाचार हैं और अब की बार इस विषयमें अपने ग्राहकोंसे क्षमा चाहते हैं। इस वर्ष उपहार न रहनेसे हितैषीका मूल्य केवल १॥) डेढ़ रुपया रहेगा। आशा है कि ग्राहकगण पहले अंकका वी. पी. पहुँचते ही एक रुपया नौ आना देकर उसे स्वीकार कर लेंगे और प्रतिवर्षकी नाईं अपने मित्र बन्धुओंमेंसे एक एक दो दो नये ग्राहक बनाकर हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे। इस क्षमा-प्रार्थनाके करनेपरभी जिन महाशयोंको उपहारके बिना हितैषीके ग्राहक रहना असह्य हो, उनसे सविनय प्रार्थना है कि वे एक एक कार्ड भेजकर अपना नाम ग्राहक श्रेणीसे अलग करा लेवें जिससे हमे नाहक नुकसान न उठाना पड़े। हमको विश्वास है कि जो सज्जन

लेखोंकी कदर करनेवाले हैं और उसमें कुछ विशेषता देखते हैं वे केवल उपहारके कारण इसका पढ़ना कभी न छोड़ेंगे। आगामी वर्षमें हितैषी पहलेसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी लेखोंके द्वारा समाजकी सेवा करेगा।

पुस्तक-समालोचन।

श्रीयशोधरचरित्र—लेखक, श्रीयुत हीराचन्द अमीचन्द शहा शोलापुर। प्रकाशक, हरीभाई देवकरण शोलापुर। मूल्य आठ आना। पुस्तक मराठी भाषामें है। इसमें यशोधर महाराजका चरित्र लिखा गया है। इसकी रचनाशैली तो कुछ नये ढँगकी है; परन्तु वर्णनशैली पुरानी ही है। वर्णनशैली भी यदि नवीन पद्धतिकी होती, तो बहुत अच्छा होता। पुस्तककी छपाई सफाई दर्शनीय है, साथ ही इसमें बम्बईके प्रसिद्ध चित्रकार धुरंधरके बनाये हुए छह चित्र भी जुदा जुदा प्रसङ्गोंके हैं। जैनसाहित्यसंसारमें यह बिलकुल नई बात है। चित्र साधारणतया अच्छे हैं, परन्तु धुरंधर चित्रकारके चित्रकौशलके अनुरूप नहीं। इस पुस्तकके तैयार करानेमें खर्च बहुत किया गया है, तो भी मूल्य इसका आठ आना रक्खा गया है जो कि बहुत कम है। शोलापुरकी धानिक मंडली पुस्तकप्रचारके कार्यमें खूब प्रयत्न कर रही है, इसके लिए जैनसमाज उसका चिरकृतज्ञ रहेगा। प्रत्येक मराठी जाननेवाले भाईको यह पुस्तक खरीदना चाहिए।

जैनेन्द्रप्रक्रिया, पूर्वार्द्ध। गांधीनाथारंगजी जैनग्रन्थमाला अंक २। सम्पादक, पं० श्रीलाल जैन व्याकरणशास्त्री। प्रकाशक, पं० पन्नालालजी बाकलीवाल बनारस। मूल्य सम्पूर्ण ग्रन्थका ॥।)। जैनियोंमें पूज्यपादस्वामी एक प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हैं। उनका बनाया हुआ

जैनेन्द्र व्याकरण सुप्रसिद्ध व्याकरण है। इस व्याकरण पर अनेक विद्वानोंने अनेक वृत्ति, प्रक्रिया, भाष्य, न्यास आदि टीकाग्रन्थ लिखे हैं, उनमेंसे यह आचार्य गुणनन्दिकी बनाई हुई प्रक्रिया है। गुणनंदि पूज्यपादस्वामीके ही शिष्य या प्रशिष्य थे। प्रकाशक महाशयका कथन है कि जैनेन्द्रका सूत्रपाठ जो उत्तर भारतमें प्रचलित है, वह अपूर्ण और परिवर्तित है। अभयनन्दिकी महावृत्तिमें भी असली सूत्रपाठ नहीं है और उसमें नई वार्तिकें बनाई गई हैं जो कि जैनेन्द्रके महत्त्वको कम करनेवाली हैं; परन्तु इस प्रक्रियामें और सोमदेवकृत शब्दार्णवचन्द्रिकामें यह बात नहीं है। यह प्रक्रिया शोलापुरके उदारधी शेठ नाथारंगजीकी सहायतासे प्रकाशित की जाती है—शब्दार्णवचन्द्रिका की प्रेसकापी तैयार है। यदि कोई धर्मात्मा सहायता करें तो वह भी प्रकाशित हो जाय। पूज्य पं० पन्नालालजी संस्कृतसाहित्यके प्रकाश करनेके लिए तन मनसे परिश्रम कर रहे हैं, जैनसमाजको उनके इस पुण्यकार्यमें सहायता देनेसे न चूकना चाहिए।

सत्यार्थयज्ञ अर्थात् कवि मनरंगलालकृत चौवीसी पूजा। सम्पादक और प्रकाशक, लाला अजितप्रसादजी, एम. ए., एल. एल. बी., वकील हाईकोर्ट, लखनौ। पृष्ठ संख्या १४४। मूल्य आठ आना। वि० संवत् १८८७ के लगभग कवि मनरंगलालजी पल्लीवाल कन्नौजमें हो गये हैं। यह चौवीसी पाठ आपहीका बनाया हुआ है। लाला अजितप्रसादजीको इस पाठकी रचना इतनी पसन्द आई कि आपने स्वयं ही इसे प्रकाशित करनेका भार अपने ऊपर ले लिया। आप लिखते हैं कि "जो पदलालित्य इस पाठमें है वह औरमें नहीं, जितने हृदयरोचक छन्द इसमें हैं उतने और पाठोंमें नहीं, जो अर्थकी गंभीरता और तत्त्वचर्चाका सार इसकी जयमालाओंमें गूँथा गया है वह

अन्य पाठोंमें नहीं मिलता और भक्तिरस तो इसमें छलका ही पड़ता है।" यह पाठ निर्णयसागरप्रेसमें सुन्दरतापूर्वक छपाया गया है और इसपर कपड़ेकी पक्की जिल्द बाँधी गई है। प्राचीन भाषाका परिचय न होनेके कारण इसके संशोधनमें प्रमाद बहुत हुआ है। कहीं कहीं अपभ्रंश शब्द शुद्ध करके लिख दिये गये हैं जिसके कारण छन्दोभङ्ग भी बहुत हो गया है। आशा है कि द्वितीयावृत्तिमें यह दोष न रहेगा। पूजनपाठके प्रेमियोंको इसकी एक एक प्रति अवश्य मँगा लेना चाहिए।

ऐतिहासिक जैनस्त्रिया। अनुवादक, रा॰ रा. नागेश गणेश नवरे, कोल्हापुर। बाबू देवेन्द्रप्रसादकी हिन्दी पुस्तकका यह मराठी अनुवाद है। फलटण (सतारा) के माणिकचन्द मोतीचन्द कालुसकरकी द्रव्यसहापतासे यह प्रकाशित किया गया है और उन्हींसे बिना मूल्य मिलता है। जो मूल्य देकर मँगाना चाहें वे चार आनेमें बम्बईके श्राविकाश्रमसे मँगा लेवें।

दिगम्बरजैन--दीपमालिकाका खास अंक। सम्पादक और प्रकाशक मूलचन्द किशनदास कापड़िया, सूरत। मूल्य इस अंकका एक रुपया। पिछले वर्षसे भी यह अंक बढ़ चढ़ कर निकला है। इसमें हिन्दी, मराठी, गुजराती, संस्कृत और अँगरेजीके लगभग २५ लेख हैं। पृष्ठसंख्या १६० है। चित्रोंकी संख्या तो बहुत अधिक अर्थात् लगभग ६० के है। कोई कोई चित्र रंगीन भी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कापड़िया महाशयने इस कार्यमें निःसीम परिश्रम और अर्थव्यय किया है। जैनसमाजमें आप जैसे कार्य करनेवाले लोग बहुत थोड़े हैं। आप यह सब परिश्रम बिलकुल निःस्वार्थभावसे करते हैं। आपके कारण 'दिगम्बरजैन' का प्रचार खूब होता जाता है

और इस प्रकारके सचित्र साहित्यसे लोगोंमें पढ़नेकी रुचि बढ़ती है। हम आपके परिश्रमका हृदयसे अभिनन्दन करते हैं। परन्तु हम और भी अधिक प्रसन्न होते यदि लेखोंके संग्रह करनेमें और चुनावमें कुछ अधिक योग्यतासे काम लिया जाता। इस बड़े भारी अंकमें हमें महत्त्वके पठनीय लेख बहुत ही कम मिले।

बालबोध जैनधर्म (प्रथम द्वितीयभाग)। प्रकाशक, सेठ रावजी सखाराम दोशी, शोलापुर। मूल्य डेड़ आना—-यह बाबू दयाचन्दजी, बी. ए. के हिन्दी बालबोध जैनधर्मके दो भागोंका मराठी अनुवाद है। मराठी जैनपाठशालाओंके लिए उपयोगी है।

कन्याविक्रयनिषेध—प्रकाशक, जैनोन्नतिकारिणी सभा, अजमेर। मूल्य आध आना। जैनियोंमें कन्याविक्रयका बाजार बहुत गर्म है। इसके रोकनेके लिए सभाने यह ट्रैक्ट छपवाया है और इसमें इस रवाजके दोष दिखलाये हैं।

दिगम्बरजैनग्रन्थमाला—इस ग्रन्थमालाकी चार पुस्तकें हमारे पास समालोचनार्थ आई हैं। १ **शुं ईश्वर जगत्कर्त्ता छे?** यह बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय, बी. ए. के 'क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है,' इस लेखका गुजराती अनुवाद है। मूल्य कुछ नहीं! २ **जैनसिद्धान्तप्रवेशिका**। यह न्यायवाचस्पति पं० गोपालदासजी बरैयाकी प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तकका गुजराती अनुवाद है। मूल्य चार आना। ३ **महावीरचरित्र** निर्वाणकाण्ड मूल, भाषा और महावीरपूजासहित। मूल्य डेड़ आना। यह हिन्दी भाषामें है। [illegible] निर्वाण पूजाके समय पढ़ने योग्य है। ४ **पुत्रीको माताका सिखापन**। बिना मूल्य। यह एक गुजराती पुस्तकका अनुवाद है। है। पं० दीपचन्दजी उपदेशकने इसका अनुवाद किया है। यह

पुस्तक अच्छी है। प्रत्येक लड़की इससे लाभ उठा सकती है। ये चारों पुस्तकें दिगम्बरजैन (गुजराती) के ग्राहकोंको भेटस्वरूप बाँटी गई हैं। श्रीयुक्त मूलचन्दजी जैनसाहित्यके प्रचारमें निःसीम परिश्रम कर रहे हैं। उनका यह कार्य प्रत्येक शिक्षितके लिए अनुकरणीय है।

जैनभजनपददोहन भाग पहला। संग्रहकर्त्ता, शा शिवजी देवसी। प्रकाशक, मेसर्स मेघजी हीरजी एण्ड कम्पनी पायधूनी बम्बई। बिना मूल्य वितरित। इसमें गुजराती और हिन्दीके ९२ भजनोंका संग्रह है। और विशेषता यह है कि जैन कवियोंके समान कबीर, सूरदास आदि जैनेतर कवियोंके चुने हुए भजन भी इसमें संगृहीत हैं जो जैनियोंके उपयोगमें भी आ सकते हैं। हिन्दीके भजनोंके संशोधनमें कहीं कहीं भूलें रह गई हैं जिनका रहना गुजराती लेखकोंके लिए स्वाभाविक है।

Shrimad Yashovijayaji लेखक, Mohanlal Dalichand Deshai, B. A. LL.B., High Court Vakil प्रकाशक, Messrs Meghji Hirji &co, Bombay. विक्रम संवत् १७०० के लगभग काशीमें महामहोपाध्याय श्रीयशोविजयजीके नामके एक बड़े नामी श्वेताम्बराचार्य हो गये हैं। यह उन्हींका ऐतिहासिक चरित्र है। उनके बनाये हुए सम्पूर्ण संस्कृत और गुजराती ग्रन्थोंके इसमें नाम दिये गये हैं और परिश्रमपूर्वक समयादिका निर्णय किया गया है। अच्छा होता यदि यह पुस्तक गुजराती या संस्कृत भाषामें प्रकाशित की जाती।

पञ्जाबप्रान्तमें हिन्दीका प्रचार। हिन्दीसाहित्यसम्मेलनकी ओरसे श्रीयुक्त परित्राजक सत्यदेवजीने गत ७ मार्चसे १० [illegible] लोग पंजाबप्रान्तमें हिन्दीका प्रचार करनेके लिए जो भ्रमण किया था उसका इस छोटीसी पुस्तिकामें विवरण दिया गया है। पंजाबप्रान्त

उर्दूमय हो रहा है -वहाँके हिन्दी बोलनेवाले भी हिन्दी नहीं जानते, इस लिए जरूरत है कि वहाँ हिन्दीके प्रति प्रेम उत्पन्न कराया जाय। हर्षका विषय है कि देशभक्त सत्यदेवजीने इस भ्रमणमें अच्छी सफलता प्राप्त की है। इस समय आप राजपूतानेमें दौरा कर रहे हैं। हिन्दीप्रचारके लिए ऐसे सैकड़ों उपदेशकोंकी जरूरत है। आशा है कि हमारे शिक्षित युवकगण इस विषयमें सत्यदेवजीका अनुकरण करके अपनी मातृभाषाकी सेवा करेंगे।

श्रीपालचरित्र—लेखक, कल्लापा अनन्त उपाध्याय, कोल्हापुर। मूल्य पाँच आना। पृष्ठ संख्या ५२। श्रीपाल राजाका संक्षिप्त चरित्र मराठी भाषामें लिखा गया है। प्रस्तावनासे मालूम हुआ कि यह किसी मागधी भाषाके ग्रन्थका मराठी रूपान्तर है। परन्तु यह स्पष्ट न हुआ कि मागधीके जिस ग्रन्थका यह अनुवाद या सारांश है वह कौनसे विद्वान्का बनाया हुआ है। हिन्दीमें जो कवि परमल्लका बनाया हुआ श्रीपालचरित्र है उससे इसकी रचना, कथाशैली आदि अच्छी मालूम होती है। पुस्तककी छपाई, कागज आदिपर दृष्टि देते हुए इसका मूल्य पाँच आना बहुत ही जियादा है।

प्रथम वार्षिक रिपोर्ट जैनबोर्डिङ्ग वर्धा—मुनि मोहनलालजी जैन लायब्रेरी और पाठशालाकी रिपोर्ट। स्याद्वाद महाविद्यालय काशीकी रिपोर्ट। श्राविकाश्रमकी तीसरी रिपोर्ट। आदि सादर स्वीकार की जाती हैं।

विविध समाचार।

दिवालीमृत्यु और दान—शोलापुरके शेठ वालचन्द रामचन्द जी (हरीभाई देवकरणवाले) की माताका गत २ नवम्बरको स्वर्गवास हो गया। आप मृत्युसमय १५०००) रुपयाका दान कर गई हैं।

भूल संशोधन—गताङ्कमें सेठ चुन्नीलाल हेमचन्दकी पुत्री
बाईके तीस हजार रुपयेके दानका समाचार छपा है, सो
नहीं। वास्तवमें ५०००) का दान हुआ है और कीकी बाई
सेठ चुन्नीलाल जवेरचन्दजीकी पुत्री थीं। पाठक, इस भूलको सु
लेवें।

पन्द्रह लाखका दान—कलकत्ताके सुप्रसिद्ध वैरिसृर मि० पा
ने विज्ञान शिक्षाके लिए अपना १५ लाख रुपयाका सर्वस्व दान
दिया है।

बड़वानीका मेला—प्रतिवर्षकी नाई इस वर्ष भी सिद्धक्षेत्र ब
वानीका मेला ४ जनवरीसे १२ जनवरी १९१४ तक होगा। मेल
व्याख्यान सभादिका प्रबन्ध भी होगा।

अध्यापकोंकी जरूरत—इन्दौरका सेठ तिलोकचन्दजी हा
स्कूल माघ सुदी १३ को खुल जावेगा। अध्यापकोंकी जरूरत है।
जैनी खास तौरसे पसन्द किये जावेंगे। उम्मेदवारोंको अपनी दर-
ख्वास्तें सर्टिफिकटोंकी नकलोंके साथ 'बाबू बुधमलजी पाटणी, मंत्री
तिलोकचन्द हाईस्कूल, नलिया बाखल–इन्दौर' के पास शीघ्र ही भेजना
चाहिए।

स्याद्वादविद्यालय काशीका नवम वार्षिकोत्सव—
दिसम्बर १९१३ तक होना निश्चित हुआ है। प्रो० हरमन जैके
डाक्टर वेनिस, सी. आई. ई., महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्या
षण, एम. ए., पी. एच. डी. आदि बड़े बड़े विद्वान् इस उत्स
लिए निमन्त्रित किये गये हैं।